कृष्णदास संस्कृत सीरीज १२२

महाकविभवभूतिप्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

'शान्ति' संस्कृत हिन्दी-व्याख्यया समुपेतम्

व्याख्यादिप्रणेता सम्पादकश्च

डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी

B/5

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

॥ श्रीः ॥

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

१२२

महाकविभवभूतिप्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

'शान्ति' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यया समुपेतम्

व्याख्यादिप्रणेता सम्पादकश्च

डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी

व्याकरणाचार्यः, पुराणेतिहासाचार्यः (लब्धस्वर्णपदकः)

सांख्य-योगाचार्यः (लब्धस्वर्णपदकः), एम० ए०

(संस्कृत), पी-एच० डी०

प्राध्यापकः,

संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान-संकायः,

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः, वाराणसी–५

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९९०

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४७

मूल्य : रू० ५०-००

R. SK S. LIBRARY
Acc No. 10865
Call No.

10865

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८
चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१
(भारत)
फोन : ६२१५०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES

122

UTTARARAMACHARITA

OF

MAHAKAVI BHAVABHUTI

With

'Shanti' Sanskrit-Hindi Commentaries

Commentator & Editor

Dr. Ramashankar Tripathi

M. A., Ph. D.

Acharya in Vyakaran, Puranetihasa, Sankhya-yoga

Senior Lecturer : Banaras Hindu University, Varanasi.

KRISHNADAS Academy

Varanasi–221001

1990

Publisher : Krishnadas Academy, Varanasi

Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

Edition : First, 1990

Price : Rs. 50-00

© Krishnadas Academy

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(INDIA)

Phone : 62150

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

समर्पण

मेरी श्रद्धापूर्ण भावनाओं के पावन प्रतीक, कृश भी काय में ज्वालामुखी की धधकती तेजस्विता को धारण किये हुए, अदम्य साहस से समलंकृत, निर्भीकता, ओजस्विता और वाग्मिता की त्रिवेणी के पवित्र सङ्गमस्थल, न्याय की बलिवेदी पर न्योछावर होने के लिये सर्वदा समुद्यत, संस्कृत विद्या और विद्वानों के लिये आधुनिक भोज, विख्यात विधिवत्ता, केन्द्रीय बार समिति, वाराणसी, के भूतपूर्व अध्यक्ष, काशी के गौरव, कलाविदों के ललित-ललाम, जनतान्त्रिक मूल्यों के प्रतीक,

पण्डित हरिशङ्कर पाठक

एम० ए०, एल० एल० बी०,

को

सादर सविनय समर्पित.

—रमाशङ्कर त्रिपाठी

"सरयूपारीण"

प्राक्कथन

साहित्य लतिका के दो सुमधुर मनोहर गलित फल हैं—(१) कविता-कामिनी-विलास महाकवि कालिदास एवं (२) कविकृति-विभूति महाकवि भवभूति। एक की लेखनी शृङ्गार-सुधा-सिन्धु को उद्वेलित करती है तो दूसरे की कारुण्यामृत की अविरल वृष्टि करने में **परम** प्रवीण है। एक शृंगार-साम्राज्य का एकच्छत्र अधिपति है तो दूसरा करुणामयी कविता का केश-वेश। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों को महारत हासिल है। पहला पत्थर के हृदय पर वसन्त का वैभव विकसित कर सकता है तो दूसरा अपनी कविता के बलपर पत्थर के हृदय को भी पसीजने के लिए विवश करने का सामर्थ्य रखता है। कहने का भाव यह है कि दोनों ही महाकवि अपनी-अपनी दिशा के दिग्गज हैं।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की व्याख्या बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। उससे प्रसन्न होकर बहुत से अध्यापकों एवं छात्रों की सस्नेह सत्प्रेरणा 'उत्तररामचरितम्' की व्याख्या के लिये समय-समय पर प्राप्त होती रही। उन्हीं सत्प्रेरणाओं का फल है यह कृति।

उत्तररामचरित का यह नवीन संस्करण साहित्य-रसिकों की सेवा में उपस्थित होने जा रहा है। 'छात्रों को अधिक से अधिक सहायता पहुँचाई जा सके' इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए यह संस्करण तैयार किया गया है। कोई भी व्यक्ति इस संस्करण की सहायता से, बिना किसी का आश्रय लिये हुए भी, कविता-विभूति महाकवि भवभूति के गम्भीर भावों के तल का स्पर्श अनायास कर सकता है। अध्यापकों आलोचकों तथा नई एवं पुरानी विचारधाराओं के विद्वानों के लिये भी इस संस्करण का उतना ही महत्त्व हो, जितना कि छात्रों के लिये—एतदर्थ भी प्रयास किया गया है। प्रारम्भ में अनुसन्धानात्मक भूमिका के साथ इस संस्करण को अन्वय, शब्दार्थ, अर्थ, टीका, टिप्पणी तथा व्युत्पत्ति आदि से सजाने का भरपूर प्रयास किया गया है। उद्देश्य में कहाँ तक सफलता मिली है, इसका आकलन करना मेरा काम नहीं है। संक्षेप में यह प्रयास किया गया है कि यह संस्करण काव्य के अर्थ एवं भाव को, स्वच्छ दर्पण की भाँति, प्रतिबिम्बित कर पाठकों की विनम्र अपेक्षित सेवा कर सके।

नाटककार भवभूति भावों एवम् अभिव्यञ्जनाओं के महाकवि हैं। स्वल्प समाश्रित शब्दों से यह कवि जिस प्रकार गम्भीर भावों की अभिव्यञ्जना करता **है**, वह देखने ही लायक होती है। अतः उनकी कविता के भावों को स्वल्प सरल शब्दों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त करने में जो कठिनाइयाँ होती हैं उन्हें कोई भुक्तभोगी विद्वान् ही जान सकता है। यह देखने में आता है कि दिग्गज विद्वान् तथा व्याख्याकार भी महाकवि के भावों का दिग्दर्शन कराने में दिग्भ्रमित हो जाते हैं। कविवर भवभूति की कविता-किशोरी को अपने अङ्क में पूर्णतः समेट लेने का दावा दम्भमात्र होगा। यही कारण है कि मैंने यत्र-तत्र अन्य व्याख्याकारों से भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। मेरा यह कार्य बाल-चापल्य नहीं, अपितु अनुभव की सुदृढ़ आधार शिला पर

प्रतिष्ठित है। निर्णय पाठकों के विवेक पर निर्भर है। अस्तु, इस प्रकार के कार्य के लिये सारस्वत साधना के साथ ही बाह्य सुविधाओं का होना भी नितान्त आवश्यक है। अन्यथा व्यक्ति को महती कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मेरे लिये तो ये कठिनाइयाँ और अधिक बढ़ जाती हैं। यतः मैं विश्व विद्यालय का वेतन-भोगी सेवक हूँ। अपने परिवार का अभिभावक हूँ। बालक बालकृष्ण, आनन्द कृष्ण, श्रीकृष्ण, राधाकृष्ण एवं गोपालकृष्ण का सम्मानित शिक्षक हूँ। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का वैधानिक अवैधानिक सलाहकार हूँ। "कृष्ण-कदम्ब" (आवास) का काल्पनिक कर्ता हूँ। घर का सार्वकालिक अवैतनिक सेवक हूँ। कहाँ तक कहूँ ? बस, यही समझ लिया जाय कि मैं विवाहित गृहस्थ हूँ। इस तरह के व्यक्ति को वैचारिक मन्थन में, कवि के अभिप्रायानुधावन में, कितनी कठिनाइयाँ होती है इसे तो गृहस्थ लेखक या विचारक ही समझ सकता है। फिर भी मैंने इस कार्य को पूर्ण किया है। इसके लिये ईश्वर और गुरुचरणों के आशीष का विशेष आभार स्वीकार करता हूँ।

इस संस्करण को वर्तमान रूप देने में परोक्ष-अपरोक्ष रूप से बालक बालकृष्ण, आनन्दकृष्ण, श्रीकृष्ण, राधाकृष्ण, गोपालकृष्ण त्रिपाठी, अनुज हरिशङ्कर त्रिपाठी एवं अर्धाङ्गिनी, अशान्ति मचाने वाली, शान्ति त्रिपाठी ने जो सहयोग दिया है, उसके लिये इन्हें आशीर्वाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

उत्तरामचरित के इस संस्करण को बनाने में, सजाने-सवारने में संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी के कतिपय उपलब्ध संस्करणों से सहायता प्राप्त हुई है। पाठ की दृष्टि से निर्णय सागर के सस्करण को निर्णायक माना गया है। भूमिका आदि लेखन में श्री रामनारायण लाल विजयकुमार, इलाहाबाद, तथा मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, के संस्करण विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त जिन भी विद्वान् लेखकों की कृतियों से सहायता मिली है, उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ। इस ग्रन्थ की पूर्णता में वाराणसी के सुप्रसिद्ध **अधिवक्ता श्री ज्ञानचन्द्र खत्री** एवं मानवता के साक्षात् विग्रह प्रिय **गणेशप्रसाद** मिश्र, सीनियर मार्केटिंग इंस्पेक्टर, वाराणसी, को हार्दिक साधुवाद देते हुए सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज के सुयोग्य सञ्चालक बन्धुद्वय सेठ विट्ठलदास एवं टोडरमल जी तथा राज प्रेस के स्वामी श्री उमाशङ्करसिंह भी अपने पूर्ण सहयोगात्मक कृत्यों के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीया
वि० सं० २०४७
११-५-१९९०

—**रमाशङ्कर त्रिपाठी**
"कृष्णकदम्ब"
बी. ३२/५२ ए, नरिया,
वाराणसी—५

प्रस्तावना

(१) महाकवि भवभूति

महाकवि 'जयदेव' के विषय में विचार करते हुए मैंने 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में लिखा है कि—'अपनी प्रतिभा के प्रकाश से विश्व को आलोकित करनेवाले महाकवियों ने अपनी दैशिक तथा कालिक परिधि के उल्लेख की कोई आवश्यकता ही न समझी। इस अकिञ्चन बात की ओर उनका ध्यान ही न गया। वे सार्वदैशिक तथा सार्वकालिक कवि थे। उनकी महत्ता की इयत्ता देश तथा काल से घेरी नहीं जा सकती। अपने स्थान एवं काल की बात को लिखना वे अधिक महत्त्वपूर्ण न समझते थे।' अपनी काव्यप्रतिभा से विश्व को चमत्कृत करने वाले सरस्वती के वरदपुत्र, रसवर्षी महाकवि कालिदास ने भी अपने जन्मस्थान एवं काल के विषय में कुछ विशेष निर्देश नहीं किया है। कदाचित् वे समस्त जगत् को ही अपनी जन्मस्थली मानते थे। अखण्ड काल के प्रवाह में अपने लिये सीमा-रेखा खींचना शायद उन्हें अभीप्सित न था। ऐसे कवियों की कालजयी कृति ही उनका पूर्ण परिचय था, उनका सर्वस्व था। देशखण्ड, कालखण्ड तथा मानवखण्ड से जोड़ कर वे अपनी सारस्वत आराधना का मूल्य कम करना नहीं चाहते थे।

किन्तु महाकवि भवभूति के विषय में उपर्युक्त बात लागू नहीं होती। इन्होंने अपनी तीनों कृतियों—महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तरराम चरित–में अपने वंश, स्थान एवं काल के विषय में प्रभूत सामग्री प्रस्तुत की है। उसी के अनुसार उनके वंश, स्थान एवं काल का विचार आगे प्रस्तुत किया जा रहा है––

जन्मस्थान—भवभूति दक्षिणापथ अर्थात् दक्षिण भारत के निवासी थे। उनके पूर्वज पद्मपुर नामक नगर में रहते थे[१]। कुछ संस्करणों में पद्मपुर को विदर्भ (बरार) के अन्तर्गत बतलाया गया है। समग्र संस्करणों को देखने के अनन्तर प्रतीत होता है कि 'विदर्भेषु' यह पाठ बाद में जोड़ा गया है। पद्मपुर को विदर्भ से जोड़ना बाद की कल्पना है। विदर्भ से जिस पद्मपुर को जोड़ा गया गया है वह ग्राम है और महाकवि भवभूतिने पद्मपुर को नगर बतलाया है, ग्राम नहीं।

---

(१) (क) अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्।

(महावीरचरित, प्रस्तावना)।

(ख) अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्।

(मालतीमाधव, प्रस्तावना, टीकाकार त्रिपुरारिसंमत पाठ)

(ग) अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुर ···।

(मालतीमाधव, प्रस्तावना जगद्धरसंमत पाठ)

भवभूति के पूर्वज—महाकवि भवभूति के पूर्वज कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अध्येता थे। इनका गोत्र था काश्यप। ये कश्यप गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। इन्हें चरणगुरु कहा जाता था, चरण अर्थात् वेद की शाखाओं को पढ़नेवाले वेदज्ञों को ये गुरु थे। इन्हें पंक्तिपावन ब्राह्मण माना जाता था। पंक्तिपावन का अर्थ है—पंक्ति पावयन्तीति, अथवा पंक्तौ पावनाः, अर्थात् पंक्ति को पवित्र करने वाले अथवा भोज आदि के अवसर पर बैठने वाली ब्राह्मण-पंक्ति में सर्वाधिक पावन। ब्राह्मणों की श्रेणी में पंक्तिपावन ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठमाने जाते हैं। भवभूति के पूर्वज सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों में से थे। मनु के अनुसार जो ब्राह्मण यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद में पारङ्गत होते थे, जो उच्च कोटि के वेदज्ञ विद्वान् होते थे, उन्हें ही पंक्तिपावन कहा जाता था--

> "अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च।
> श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः॥"
> यजुषां पारगो यस्तु साम्नां यश्चापि पारगः।
> अथर्वशिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥
> (मालती माधव की टीका में जगद्ध द्वारा उद्धृत)

ये पञ्चाग्निहोत्र करते थे। पंचाग्नियों के नाम ये हैं--दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य। ये धृतव्रत अर्थात् चान्द्रायण आदि व्रतों के कर्ता सोमपीथी यानी सोमयाग में सोम रस को पान करने वाले थे। इनका प्रसिद्ध उपनाम उदुम्बर था। कुछ संस्करणों में इनका नाम डम्बर बतलाया गया है। ये ब्रह्मवादी, वेदज्ञ, वेदप्रवचनकर्ता एवं ब्रह्मवेत्ता थे। वेदाध्यायी होने के कारण इन्हें श्रोत्रिय ब्राह्मण कहा जाता था। ये ब्रह्मरुद्री तत्त्व को जानने के लिये निष्काम भाव से षडङ्गवेद के अध्ययन में निरत रहते थे। ये लोग इष्ट (यज्ञादि) तथा पूर्त (धर्मार्थ कूपतडागादिनिर्माण) के लिये धनसंग्रह करते थे। वंश चलाने के लिये विवाह करते थे तथा तपोमय जीवन बिताने के लिये शरीर धारण करते थे।[1]

भवभूति के पिता का नाम **नीलकण्ठ**, माता का **जतुकर्णी** और पितामह का भट्टगोपाल था। इनके कुल में काव्य-कला की उपासना भी होती थी, क्योंकि इनके

---

१. तत्र केचित् तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिनः उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। (महावीरचरित, प्रस्तावना)

> ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय,
> भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।
> इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान्
> दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः॥ (मालतीमाधव, प्रस्तावना)

पाँचवे पूर्वज कोई 'महाकवि' थे[1]। डॉ० भण्डारकर का कहना है कि भवभूति के जन्मस्थान के आसपास इस समय भी कुछ कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाध्यायी महाराष्ट्र ब्राह्मणों के कुल विद्यमान हैं।

कवि का नाम--कवि ने अपने को 'भट्टश्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम' लिखा है। अतः कुछ टीकाकारों का मत है कि इनका असली नाम 'श्रीकण्ठ' था। किन्तु--

'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः।'

अथवा

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ॥

इन पद्यों में बड़े ही लालित्य ढंग से कवि ने "भवभूति" शब्द का प्रयोग किया है। अतः विद्वानों ने इन्हें "भवभूति" कहना प्रारम्भ कर दिया—यह पण्डितों के बीच प्रचलित एक प्रसिद्धि है।

दार्शनिक-जगत् में भवभूति उम्बेक के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने गुरु का नाम "ज्ञाननिधि" बतलाया है किन्तु 'मालतीमाधव' के एक प्राचीन हस्तलेख में उन्हें कुमारिल भट्ट का शिष्य कहा गया है। अतः यह निश्चय है कि वे कुमारिल भट्ट के शिष्य थे तथा उनका नाम था उम्बेक। इस तथ्य से प्राचीन दार्शनिक विद्वान् एक मत हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति पर 'बालक्रीडा' व्याख्या के लेखक 'विश्वरूप' से भी भवभूति की एकता बतलाई जाती है। परन्तु यह बात सर्वमान्य नहीं हैं। पर इतना तो निःसंशय कहा जा सकता है कि भवभूति केवल नाटककार भर ही न थे, प्रत्युत वे अपने समय के एक मान्य तत्त्व वेत्ता भी थे। उनके नाटकों में उनकी दार्शनिक दृष्टि के प्रर्याप्त उदाहरण देखे जा सकते हैं।

तत्कालीन समाज में भवभूति की स्थिति--

भवभूति ने जिस डिंडिमघोष से अपने कुल का उल्लेख किया है उस रूप से अपने जीवन की घटनाओं का निर्देश नहीं किया है। अतः उनके जीवन की घटनाएँ अज्ञानान्धकार में छिपी हैं। उनके ग्रन्थों की आलोचना से ज्ञात होता है कि कविवर भवभूति को तत्कालीन विद्वत्समाज आदर की दृष्टि से नहीं देखता था।

पहले इन्हें किसी राजा का आश्रय भी नहीं प्राप्त था। यही कारण है कि इनके नाटकों का अभिनय राज्य-सभा में न होकर उज्जयिनी के महाकाल की

---

१. तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तिर्नीलकण्ठस्यात्मसंभवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः। महावीरचरित, प्रस्तावना।

यात्रा के अवसर पर जनता के समक्ष हुआ है। परन्तु हम देखते हैं कि भवभूति को अपने जीवन के अन्तिम भाग में कान्य-कुब्ज के विद्वान् राजा यशोवर्मा का आश्रय प्राप्त था। सम्भव है भवभूति को अपनी अलौकिक नाटचकला के कारण विद्वत्प्रेमी यशोवर्मा का आश्रय मिला हो। जीवन के पूर्वार्ध में तात्कालिक साहित्य-सेवियों के द्वारा सम्मानित न होने की बात इनकी कतिपय गर्वोक्तियों से भी सिद्ध होती है। मालतीमाधव की प्रस्तावना में भवभूति ने ऐसे ही दुरालोचकों को लक्ष्य करके अपने जी की जलन को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पस्त्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी॥

अर्थात् जो कोई मेरी अवज्ञा करते हैं, उन अज्ञों के लिये मेरा यह प्रयत्न नहीं है। समय की सीमा नहीं तथा पृथिवी की परिधि भी विशाल है। इसमें इस समय जो कोई मेरा स्पर्धी सम्प्रति है अथवा आगे पैदा होगा उसके लिये मेरा यह नाटक-रचना-रूप यत्न समझना चाहिये।

श्रीकण्ठपदलाञ्छन और भवभूति

उत्तररामचरित, महावीरचरित और मालतीमाधव के रचयिता कवि का असली नाम क्या था—भवभूति अथवा श्रीकण्ठ? इस विषय में विद्वद्वर्ग एकमत नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि भवभूति का असली नाम 'भवभूति' ही है। और 'श्रीकण्ठ' उनकी उपाधि अथवा उपनाम है। 'लाञ्छन' शब्द का अर्थ है 'चिह्न', उपनाम। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का कथन है कि कवि का मूल नाम 'श्रीकण्ठ' है और भवभूति उनकी उपाधि अथवा उपनाम हैं, कविनाम है। जो लोग मूल नाम 'श्रीकण्ठ' मानते हैं, वे प्रायः टीकाकारों का आश्रय लेते हैं। इस विषय में निम्न-लिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं:—

(१) 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः' का अर्थ है—श्रीकण्ठ शब्द जिसका लाञ्छन अर्थात् नाम है। 'भवभूतिर्नाम' का अर्थ है—भवभूति नाम से प्रसिद्ध। यहाँ नाम शब्द का अर्थ नाम नहीं है, अपि तु यह प्रसिद्धिसूचक अव्यय है—

(क) श्रीकण्ठः इति पदं शब्दः लाञ्छनं यस्य स तथोक्तः। श्रीकण्ठनामक इत्यर्थः। भवभूतिर्नाम भवभूतिरिति प्रसिद्धनामवान्।

(उत्तरराम० वीरराघवकृत टीका)

(ख) श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं यस्य सः। भवभूतिरिति व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम्।

(मालती० श्लोक ७, त्रिपुरारि कृत टीका)

(ग) श्री=सरस्वती कण्ठे यस्य सः श्रीकण्ठः । तद्वाचकं पदं लाञ्छनं चिह्नं यस्य सः । नाम्ना श्रीकण्ठः । प्रसिद्धया भवभूतिरित्यर्थः ।

(मालती० जगद्धरकृत टीका)

(घ) श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं नाम यस्य सः । पितृकृतनामेदम् ।

(महावीर० वीरराघवकृत टीका)

(ङ) उत्तररामचरित के टीकाकार वीरराघव का यह भी कथन है कि-- "साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः" इस पद्य में "भवभूति" शब्द के सुन्दर प्रयोग को देखकर प्रसन्न हुए राजा ने कवि को 'भवभूति' इस उपनाम से अलंकृत किया--

एतत्कृतः 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इति श्लोकश्रवणसन्तुष्टो राजा भवभूतिरित्येनं ख्यापयामासेति कथा अत्रानुसन्धेया । एवमन्यत्रापि कवितानुसारेण तत्तन्नामधेयम् । यथा रत्नखेटकः, कोटिसार इति ।

(उत्तरराम० वीरराघवकृतटीका तथा महावीर० वीरराघव कृत टीका)

वीरराघव का कहना है कि पद्यों के आधार पर भी कवियों का नामकरण हुआ करता है, जैसे--रत्नखेटक, कोटिसार आदि) ।

(च) कुछ लोगों का कथन है कि—आर्यासप्तशती के टीकाकार अनन्त पण्डित ने श्लोक (१।३९) की टीका में भवभूति का यह पद्य उद्धृत किया है--

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव ।
गिरिजायाः कुचौ वन्दे भवभूतिसिताननौ ।।

सदुक्तिकर्णामृत में भी यह श्लोक भवभूति के नाम से प्रायः इसी रूप में उद्धृत किया गया है । इस श्लोक में 'भवभूति' शब्द के सुन्दर प्रयोग को देखकर विद्वानों ने कवि को 'भवभूति' इस उपनाम से अलंकृत किया ।

यह मत पीछे दिये गये मत (ङ) से कुछ अलग अस्तित्व नहीं रखता ।

(छ) एक मत यह भी है कि भव अर्थात् शिव से कवि को भूति अर्थात् ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई थी अथवा शिव ने ब्राह्मण का रूप धारण कर कवि को भूति-विभूति प्रदान की थी, अतः इन्हें भवभूति कहा जाने लगा ।

भवात् शिवात् भूति र्भस्म यस्य, ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण विभूतिर्दत्ता, तदा प्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धो जात इति च परावरविदो वदन्ति । (उत्तरराम० प्रस्तावना, टीकाकार घनश्यामकृत व्याख्या)

(ज) व्याख्याकार घनश्याम के अनुसार "श्रीकण्ठपदलाञ्छन" का अर्थ है-- श्रीकण्ठ=शिवके पद=दोनों चरण हैं लाञ्छन=विरुद जिसके वह, अर्थात् शिव के चरण कमलों में संलग्न । श्रीकण्ठस्य शिवस्य पदे पादावेव लाञ्छनं विरुदं यस्येति वार्थः । शिवपादाब्जनिरत इति यावत् । (उत्तर० प्रस्तावना, व्याख्याकार घनश्याम),

ऊपर दिये गये विवरणों से ज्ञात होता है कि व्याख्याकारों ने जनश्रुति के आधार पर लेखक का नाम श्रीकण्ठ और भवभूति पद को उनकी उपाधि माना है। डॉ० बेल्वल्कर इसी मत को मानते हैं।

किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि कवि का असली नाम भवभूति था और श्रीकण्ठ उनकी उपाधि थी। नीचे दिये गये तथ्य इसी बात का समर्थन करते हैं।

(१) कविवर भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में अपने लिये 'भवभूतिर्नाम' यह प्रयोग किया है। स्पष्टतः इसका अर्थ यही है कि नाटककार का नाम भवभूति ही है। जो लोग 'भवभूति र्नाम' में प्रयुक्त नाम शब्द को प्रसिद्धि सूचक अव्यय मानते हैं और इसका अर्थ करते हैं—'भवभूति' इस नाम से प्रसिद्ध, उनकी अयथार्थता मालती माधव में प्राप्त जगद्धर स्वीकृत पाठ 'भवभूतिनामा' से सिद्ध हो जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनका नाम भवभूति ही है। यहाँ भवभूति शब्द को उपाधि मानना सर्वथा असंभव है। इसी बात का समर्थन आगे मूल पाठ में प्राप्त 'भवभूतिनाम्ना' इस कथन से भी होता है।

"ततो यदस्माकमर्पितं प्रियसुहृदाऽत्र भवता भवभूतिनाम्ना प्रकरणं स्वकृतं मालतीमाधवं नाम"। यहाँ सूत्रधार कह रहा है कि—प्रिय मित्र भवभूति नामक कवि ने अपनी मालतीमाधव नामक कृति हमें दी है। स्पष्टतः यहाँ 'नाम' का प्रयोग नामक अर्थ में ही है, न कि प्रसिद्धि अर्थ में।

(२) "श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम" इस अंश का अर्थ यह करना कि भवभूति उपाधि है और श्रीकण्ठ कवि का नाम है, सर्वथा अनुचित है। यदि कवि को ऐसा ही अर्थ द्योतित करना अभीष्ट होता तो इसका पाठ इस प्रकार होता—"भवभूतिपदलाञ्छनः श्रीकण्ठनामा"। किन्तु नाटककार को अभीष्ट है कि वह अपना नाम भवभूति स्पष्ट रूप से द्योतित करे। कविता के अंश को तोड़-मरोड़ कर अर्थ करना नितान्त असंगत है।

(३) सुभाषित ग्रन्थों में तथा अन्यत्र भी उत्तररामचरित आदि के जितने भी उद्धरण दिये गये हैं, वे सभी भवभूति के नाम से दिये गये हैं, कहीं भी श्रीकण्ठ के नाम से नहीं।

(४) कवि का नाम श्रीकण्ठ और भवभूति उपाधि मानने वाले टीकाकारों ने एकमात्र जनश्रुति को ही आधार माना है। किसी ने भी कोई ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत नहीं किया है। इस पक्ष की असारता इस बात से भी सिद्ध होती है कि यदि भवभूति उपाधि होती तो उसके लिये कोई एक प्रमाणिक कथा होती। उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है कि भवभूति नाम अथवा उपाधि के लिये तीन विभिन्न

जन श्रुतियाँ दी गई हैं—१-कविता से प्रसन्न हुए किसी राजा ने भवभूति उपाधि दी, २—विद्वानों ने "भवभूतिसितानन्नौ" के कारण भवभूति उपाधि दी तथा ३—भगवान् शिव (भव) ने प्रसन्न होकर भूति (भस्म, सम्पत्ति) दी अतः कवि का नाम भवभूति पड़ा। इन बातों से इतना तो स्पष्ट ही है कि भवभूति इस उपाधि अथवा उपनाम के पीछे कोई पुष्ट तर्क या विचार नहीं है। एकमात्र कल्पना अथवा जनश्रुति के अधार पर यह प्रवाद चल पड़ा भवभूति उपाधि या उपनाम है। कालान्तर में इस धारणा के आधार पर विभिन्न मत उपस्थित किये गये।

(५) कतिपय मान्य टीकाकारों ने भी यह स्वीकार किया है कि कवि का नाम भवभूति ही है और श्रीकण्ठ यह उनका उपनाम है। टीकाकार त्रिपुरारि के अनुसार कवि के नाम हैं—श्रीकण्ठ और भवभूति। श्रीकण्ठ लिखने-पढ़ने का नाम है और भवभूति लोक व्यवहार में पुकारने का[1]।

प्रसिद्ध टीकाकार जगद्धर भट्ट ने कवि का प्रसिद्ध नाम भवभूति माना है और श्रीकण्ठ का अर्थ किया है—सरस्वती जिसके कण्ठ में निवास करती हैं वह कवि[2]। टीकाकार घनश्याम ने "श्रीकण्ठपदलाञ्छनः" का अर्थ किया है—शिव के चरण कमलों में लीन, अर्थात् शिव भक्त[3]।

उपर्युक्त विवरणों से यह विदित होता है कि टीकाकारों की मण्डली भी 'श्रीकण्ठ-पदलाञ्छानः' में श्रीकण्ठ का अर्थ श्रीकण्ठ नाम मानने में एक मत नहीं है। इसके अतिरिक्त वे यह भी स्वीकार करते हैं कि कवि का प्रचलित नाम भवभूति ही था।

(६)—निष्कर्ष—सूक्ष्म दृष्टि से, विवेक पूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि का यथार्थ नाम भवभूति ही था। इसका समर्थन मालती माधव के 'भवभूतिनामा' तथा 'भवभूतिनाम्ना' इन पदों के द्वारा भी होता है। भवभूति विषयक जनश्रुतियों का आधार यह प्रतीत होता है कि सूर, तुलसी, केशव आदि कवियों की भाँति भवभूति को भी यह प्रिय था कि वे अपनी कविता में यथा-वसर भवभूति शब्द का प्रयोग करें और लेख के द्वारा अपना नाम तथा भवभूति (शिव का ऐश्वर्य, शिव का भस्म आदि) अर्थ प्रकट करें। भवभूति के ऐसे प्रयोगों

१—भवभूतिरिति व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम् (मालती० प्रस्तवना, त्रिपुरारिकृत टीका)।

१—श्रीः सरस्वती कण्ठे यस्य सः श्रीकण्ठः। तद्वा पदं लाञ्छनं चिह्नं यस्य सः। नाम्ना श्रीकण्ठः। प्रसिद्धया भवभूतिरित्यर्थः। (मालती० प्रस्तावना, जगद्धरकृत टीका)।

२—शिवपादाब्ज निरत इति। (उत्तरराम० प्रस्तावना, घनश्याम कृत टीका)।

से तत्कालीन राजा और विद्वान् बहुत प्रसन्न थे। उन लोगों ने भवभूति नाम को सार्थक मानते हुए उसकी प्रशंसा में विभिन्न जन श्रुतियाँ कल्पित की।

उत्तररामचरित आदि तीनों नाटकों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कवि का व्यावहारिक नाम श्रीकण्ठ नहीं था और न तो किसी ने कवि को यह उपाधि ही प्रदान की थी। संभवत: माता-पिता आदि के द्वारा घर में व्यवहृत होनेवाला उनका यह नाम था। ऐसा हम लोगों के घरों में बहुधा हुआ करता है। हमने अपने बड़े लड़के का घर में पुकारने का नाम बिहारीदत्त और स्कूल–कालेज का नाम बालकृष्ण त्रिपाठी रक्खा है। कवि भवभूति को यह अभिप्रेत था कि उनका यह घर का नाम भी लोगों को ज्ञात रहे, अत: उन्होंने अपने नाटकों में "श्रीकण्ठपदलाञ्छन:" यह प्रयोग जानबूझ कर किया है। वस्तुत: इसका अर्थ है—श्रीकण्ठ शब्द जिसका लाञ्छन (उपनाम अथवा सूचक शब्द) है। टीकाकार जगद्धर ने मालतीमाधव की प्रस्तावना में "भट्टश्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिनामा" यह पाठ स्वीकार करके इसी अभिप्राय को असन्दिग्ध रूप से स्पष्ट किया है। भवभूति को घर-गाँव में श्रीकण्ठ नाम से दुलार के साथ पुकारा जाता था। पिता नीलकण्ठ के नाम के सादृश्य पर घर-गाँव में पुकारने के लिये श्रीकण्ठ शब्द चुना गया होगा। इसके पीछे भावना थी की यह बालक महान् विद्वान् होगा और श्री अर्थात् सरस्वती इसके कण्ठ में विराज मान होंगी।

(२) भवभूति का काल

सौभाग्य से महाकवि भवभूति का काल निश्चित रूप से निर्णीत हो चुका है। कालिदास के समान वह कई शताब्दियों के झमेले में नहीं पड़ा हुआ है। राज तरंगिणी में ललितादित्य नामक विजयी काश्मीर–नरेश का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। राज्य-विस्तार की उदात्त भावना से प्रेरित होकर ललितादित्य ने अपनी विजय-वैजयन्ती समस्त उत्तर भारत में फहराई थी। उसने केवल आस-पास के राजाओं को ही अपने अधीन नहीं किया बल्कि सुदूर गौड़ देश (बंगाल) को भी अपने अधीन किया था। इसी पराक्रमी नरेश ने कान्यकुब्ज के महाराज यशोवर्मा को समराङ्गण में परास्त किया था। ललितादित्य के पराक्रम के वशीभूत यशोवर्मा ने उसके पराक्रम का लोहा मान लिया[१]।

कान्यकुब्जाधिपति यशोवर्मा न केवल विद्वानों, कवियों का आश्रय दाता था, अपितु यह स्वयं विद्वान् और कवि था। उसने "रामाभ्युदय" नामक नाटक की रचना की थी। निश्चय ही अपने समय में 'रामाभ्युदय' नाटक विद्वानों के समादर

१—कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवित:।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

का पात्र था। दशरूपक आदि ग्रन्थों में इस नाटक का उल्लेख है, परन्तु अभी तक यह प्रकाशित नहीं हुआ है। इन्हीं यशोवर्मा की सभा भवभूति, वाक्यपतिराज आदि कवि-सम्राटों से सुशोभित थी। श्रीयुत् शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित ललितादित्य के राज्यारोहण का काल ६७५ ई० मानते हैं। उनकी राय में ललितादित्य का दिग्विजय काल उसके शासन के आरम्भिक दिन थे। अत: भवभूति का काल ७०० ई० के आस-पास पड़ेगा। किन्तु चीन देशीय इतिहास के अनुसार ललितादित्य का समय ३२ वर्ष उतर कर होना सिद्ध होता है, क्योंकि उसका राज्याभिषेक ७२५ ई० के आस-पास हुआ था। वाक्पतिराज–रचित गउडवहो (८२७ गाथा) में उल्लिखित एक सूर्यग्रहण के समय से भी चीन देशीय उक्त इतिहासकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। डॉ० याकोवी ने यह प्रदर्शित किया है कि यह सूर्य-ग्रहण १४ अगस्त सन् ७३३ ई० में कन्नौज में दिखलाई पड़ा था। इसीलिये यशोवर्मा का समय ७३३ ई० के आस-पास सिद्ध होता है, क्योंकि गउडवहो में यशोवर्मा द्वारा मारे गये गौड देश के किसी राजा का वृत्तान्त वर्णित है, परन्तु ललितादित्य के द्वारा उसके पराजित किये जाने की चर्चा तक भी नहीं है। यशोवर्मा ने ७३३ ई० के लगभग काश्मीर नरेश की अधीनता स्वीकार की थी। अत: महाकवि भवभूति का समय भी आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना अधिक समीचीन होगा।

यदि कविराज कल्हण ने भवभूति के नामोल्लेख को न भी किया होता, तो भी इन परवर्ती कवियों के द्वारा प्रदत्त उद्धरणों से भवभूति का काल निश्चित करने में हम समर्थ हो सकते थे। सर्वप्रथम आलंकारिक शिरोमणि आचार्य वामन ने अपनी "काव्यालंकार सूत्रवृत्ति" में भवभूति के कतिपय पद्यों को उद्धृत किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भवभूति वामन के पूर्ववर्ती थे वामन का समय आठवीं शती का उत्तरार्द्ध तथा नवीं शती का आरम्भ माना जाता है। अत: भवभूति के आठवीं शती में वर्तमान होने में सन्देह नहीं है।

(३) भवभूति-विरचित ग्रन्थ

अब तक जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि—भवभूति की तीन रचनाएँ हैं, और तीनों रचनायें नाटक ही हैं—

(१) मालती-माधव—यह दश अंशों का एक विशाल प्रकरण है। इसमें मालती तथा माधव का प्रेम बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। इस प्रकरण में यौवन के उन्मादक प्रेम का बड़ा ही रस-भावपूर्ण चित्रण है। समूचे प्रकरण में प्रेम की बड़ी ही सजीव और उदात्त कल्पना दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत की गई है। धर्म से विरोध करनेवाले प्रेम को भवभूति ने समाज के लिये हानिप्रद समझ कर

उसकी एकदम उपेक्षा की है । कदाचित् उनके सामने गीता का यह उपदेशक श्लोक अवश्य रहा होगा—

"धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।"

(२) **महावीरचरित**--महावीर चरित में राम-कथा का वर्णन किया गया है । इसमें अङ्कों की संख्या छः है । इस नाटक में कथानक को सुसम्बद्ध रखने का श्लाघनीय प्रयास किया गया है । इसमें राम के विरुद्ध जितने भी कार्य किये गये हैं वह सब रावण की प्रेरणा से ही किये गये हैं । इसमें वर्णित राम का चरित नितान्त उदात्त एवं वीरभाव से संवलित है । महावीरचरित का अङ्गी है—वीर रस । राम को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने के लिये भवभूति ने राम के कितने दोषों को भिन्न रूप से प्रदर्शित किया है । उदाहरण के लिये—वाली रावण का सहायक बन कर राम से युद्ध करने के लिये आया था । यही कारण था कि राम ने उसका बध किया ।

(३) **उत्तररामचरित**–इसमें रामायण का उत्तरार्द्ध वर्णित है । सात अङ्कों के इस नाटक में राम के वन–प्रत्यागमन के बाद राजगद्दी पाने से लेकर सीता–मिलन तक की सम्पूर्ण कथाएँ, कुछ काल्पनिक घटनाओं के साथ, वर्णित की गई हैं । भवभूति की कवि प्रतिभा का यह सर्वोच्च निदर्शन है । इस नाटक का प्रारम्भ "चित्र-दर्शन" से होता है । इसके बाद रामचरित की सारी प्राचीन घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं और राम उन पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हैं । अयोध्या के लोगों में राम के राज्याभिषेक से उत्पन्न प्रतिक्रिया का निरीक्षण कर दुर्मुख आता है और राम से सीता के रावण की लंका में निवास के विषय में उत्पन्न लोकनिन्दा की चर्चा करता है । गर्भवती सीता वन देखने की इच्छा अभिव्यक्त करती है और लक्ष्मण उसे वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ आते हैं । वहीं सीता दो पुत्रों को जन्म देती है । दिग्विजय के प्रसंग में राम से इन पराक्रमी पुत्रों का परिचय वाल्मीकि कराते हैं और अन्त में राम को सीता सौंपते हैं । अति संक्षेप में यही है उत्तररामचरित की कथा है ।

(४) **उत्तर रामचरित्र के प्रत्येक अङ्क की संक्षिप्त कथा**—

प्रथम अंक

(स्थान–अयोध्या) नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार नाटककार कवि भवभूति का परिचय प्रदान करता है । उसी समय वह यह भी सूचित करता है कि राज्याभिषेक के सन्दर्भ में आये हुए अतिथियों को महाराज राम ने विदाकर दिया है । महाराज दशरथ की बेटी शान्ता के पति ऋष्यशृंग ने बारह वर्ष तक चलने वाला यज्ञ प्रारम्भ किया है । उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये गुरु वसिष्ठ के नेतृत्व में

अरुन्धती के सहित राम की माताएँ गई हुई हैं। यहीं सूत्रधार सीता विषयक लोकापवाद का संकेत करता है और नट कहता है कि सीता की अग्नि-परीक्षा पर लोगों को अविश्वास है। सूत्रधार आशंका प्रकट करता है कि यदि इस बात को राम जानेंगे तो अनिष्ट की संभावना है। नट विश्वास प्रकट करता है कि देवगण सर्वथा कल्याण करेंगे। अपने पिता जनक की विदाई से सीता दुःखी हैं। उन्हें सान्त्वना देने के लिये महाराज राम अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। (यहीं प्रस्ताना समाप्त होती है।)

इसके बाद सीता को सान्त्वना देते हुए राम रङ्गमञ्च पर प्रवेश करते हैं। इसी समय ऋष्यशृंग के आश्रम से महर्षि वसिष्ठ आदि का सन्देश लेकर अष्टावक्र आते हैं। उन्होंने गुरु वसिष्ठ के सन्देश को सुनाते हुए यह भी कहा कि गुरु जी ने सीता को आशीर्वाद देते हुए कहा है कि—"सीता वीरप्रसविनी बनें।" अरुन्धती एवं शान्ता आदि ने राम से आग्रह किया है कि वे सीता की सारी गर्भेच्छाओं (दोहदों) को पूरी करें। ऋष्यशृंग ने कहा है कि वे पुत्रवती सीता का दर्शन करेंगे। वसिष्ठ ने राम को आदेश दिया है कि वह प्रजा का सर्वदा अनुरञ्जन करें। सन्देश को सुनने के अनन्तर राम का कथन है कि मैं प्रजाको प्रसन्न रखने के लिए सीता का भी परित्याग कर सकता हूँ। यहाँ यह ध्यान देना है कि राम का यह कथन भावी सीता-परित्याग की सूचना देता है। अष्टावक्र के चले जाने पर लक्ष्मण प्रवेश करते हैं। वे उदास सीता के मन को बहलाने के लिए राम और सीता को चित्रवीथी में रामचरित से सम्बद्ध चित्रों के अवलोकन के लिये ले जाते हैं। इस चित्रवीथी में सीता की अग्नि-शुद्धि तक के चित्र हैं। इस प्रसङ्ग को देख कर राम सीता की पूर्ण पवित्रता की घोषणा करते हैं। जृम्भक अस्त्रों के चित्रों को देखकर राम-सीता को यह वरदान देते हैं कि—"ये अस्त्र तुम्हारे पुत्रों को भी प्राप्त होंगे।" इसके अनन्तर राम-सीता विवाह से लेकर वनवास तक की सारी घटनाओं को देखते है। चित्रदर्शन से ही सीता को वन-विहार और भागीरथी के दर्शन का दोहद उत्पन्न होता है। इसे पूरा करने के लिये राम लक्ष्मण को रथ लाने की आज्ञा देते हैं। सीता गर्भभार से श्रान्त होकर सो जाती है। इसी बीच दुर्मुख नामक दूत राम को सीता के विषय में फैले लोकापवाद की सूचना देता है। इस वाग्वज्र से राम मूर्च्छित हो जाते है। आश्वस्त होने पर वे लोकाराधन के लिये सीता के निर्वासन का निश्चय करते हैं। राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीता को रथ में बैठाकर वन में छोड़ने के लिये ले जाते हैं।

द्वितीय अङ्क

(स्थान—दण्डकारण्य का जनस्थान-भूभाग) विष्कम्भक में सीता परित्याग के

अनन्तर बारह वर्षों में घटित घटनाओं की सूचना दी गई है। सबसे पहले तपस्विनी आत्रेयी और वनदेवता प्रवेश करती हैं। आत्रेयी सूचित करती है कि किसी देवता ने महर्षि वाल्मीकि को कुश और लव नाम वाले दो बालक लाकर समर्पित किया है। ये दोनों ही बालक अद्भुत गुणगणों से समलंकृत हैं। इन्हें रहस्यों के सहित जृम्भकास्त्र जन्म से ही प्राप्त हैं, जन्म सिद्ध हैं। महर्षि वाल्मीकि ने इन बालकों का संस्कार कर इन्हें धनुर्वेद के साथ ही वेदत्रयी का भी भली-भाँति अभ्यास कराया है। दोनों बालक अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न हैं। इसी प्रसङ्ग में वह यह भी सूचित करती है कि—महर्षि ने निषाद के द्वारा क्रौञ्च के बध को देख कर अति करुणावश यह श्लोक अनायास ही कहा—"मा निषाद०"। इस पर ब्रह्मा ने वाल्मीकि को आर्षदृष्टि प्रदान कर रामायण की रचना का आदेश दिया। आत्रेयी यह भी कहती है कि ऋष्यशृंग का बारह वर्ष तक चलने वाला यज्ञ समाप्त हो गया है। वसिष्ठ, अरुन्धती आदि के सहित राम की माताएँ राम से अप्रसन्न हैं, क्योंकि उन्होंने अकारण सीता का परित्याग कर दिया है। अतः वे सभी वाल्मीकि के आश्रम में पधारे हैं। उधर राम अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ किये हैं और उसमें पत्नी के स्थान पर सीता की सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित किये हैं। दिग्विजय के निमित्त छोड़े गये अश्व के रक्षकों का नेतृत्व लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु कर रहे हैं। आत्रेयी यह भी कहती है कि—इसी बीच एक ब्राह्मण के बालक की मृत्यु हो गई। राजा राम को आकाशवाणी के द्वारा यह ज्ञात होता है कि इसकी मृत्यु का कारण शम्बूक नामक एक शूद्रमुनि की तपस्या है। अतः उसे मारकर ब्राह्मण बालक को जीवित करो। इसलिये राम शम्बूक को ढूँढ़ते हुए दण्डकारण्य में आये हैं। (विष्कम्भक समाप्त)

इसके बाद राम शम्बूक का वध कर देते हैं। शम्बूक दीव्य रूप धारण कर राम की स्तुति करते हुए यह बतलाता है कि यह दण्डकारण्य है। दण्डकारण्य को देखकर राम को सारी पूर्व घटनाएँ स्मृत हो उठती हैं। वे खूब विलाप करते हैं। इसके बाद अगस्त्य के आमन्त्रण पर राम पंचवटी का भली-भाँति दर्शन किये बिना ही पुष्पक विमान से अगस्त्याश्रम के लिये चले जाते हैं।

तृतीय अंक

तमसा

(स्थान—दण्डकारण्य का पंचवटी प्रदेश)। विष्कम्भक में तमसा एवं मुरला नामक दो नदी देवताएँ प्रवेश करती हैं। उनकी बातचीत से ज्ञात होता है कि सीता के परित्याग से राम अत्यधिक दुःखी हैं। गोदावरी नदी को राम के जीवन के प्रति सावधान रहने के लिये कहा गया है। इन्हीं नदी-देवताओं से यह भी सूचना प्राप्त होती है कि वाल्मीकि के तपोवन के पास सीता को छोड़कर लक्ष्मण के लौट जाने

पर प्रसव-पीड़ा से व्याकुल सीता ने अपने-आप को गंगा में डाल दिया और वहीं उन्होंने दो बालकों को जन्म दिया। गंगा और पृथिवी सीता को रसातल में ले गईं। दूध छोड़ने के बाद बालकों को भागीरथी ने महर्षि वाल्मीकि को अर्पित कर दिया। इधर राम अगस्त्य के आश्रम से लौट कर पंचवटी में आते हैं। गङ्गा के मन में यह आशङ्का है कि कहीं राम कुछ अनिष्ट न कर बैठें, अतः सीता को लेकर वह गोदावरी के पास आती हैं। उस दिन कुश और लवकी १२ वीं वर्ष गाँठ थी। गंगा के आदेश से सूर्य-पूजा के लिये सीता स्वयं पुष्पचयन करती हैं। गंगा के वरदान के कारण वन देवियाँ और स्वयं राम भी सीता को नहीं देख पाते हैं। गोदावरी के जल से निकलती हुई सीता साक्षात् करुणा की मूर्ति-सी प्रतीत होती हैं। (यहीं विष्कम्भक समाप्त हो जाता है)।

पञ्चवटी में प्रवेश करने के बाद पूर्व परिचित स्थानों को देखकर राम मूर्च्छित होते हैं। सीता के हाथ के स्पर्श को प्राप्त कर राम की मूर्च्छा दूर हो जाती है। राम सीता के विषय में मर्मस्पर्शी उद्गारों को प्रकट करते हैं। अदृश्य रह कर सीता राम के इन भावों को देखती है। इसी समय वनदेवता वासन्ती पञ्चवटी में राम से मिलती है। राम-वासन्ती का वार्तालाप होता है। उधर राम आदि के लिये अदृश्य रह कर सीता तमसा से बातें करती है। राम पञ्चवटी के दृश्यों को देखकर पूर्व की स्मृतियों में खो जाते हैं, विलाप करते हैं। इसी प्रसङ्ग में वासन्ती राम से सीता के विषय में पूछती है और सीता-परित्याग के लिये राम की भर्त्सना करती है। राम दुःखी होते हैं, रोते हैं और आशङ्का प्रकट करते हैं कि वन में सीता को हिंसक पशु खा गये होंगे। विलाप करके राम मूर्च्छित होते हैं। सीता अपने हाथ के स्पर्श से उन्हें चेतना में वापस लाती है। राम सूचित करते हैं कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है। उसमें उन्होंने सीता की प्रतिमा को अपनी सहधर्मचारिणी बनाया है। इसके बाद राम अश्वमेध यज्ञ के लिये अयोध्या लौट जाते हैं। इधर सीता अपने पुत्रों की वर्ष-ग्रन्थि मनाने के लिये गङ्गा के पास वापस जाती है। यहीं पर तृतीय अङ्क समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ अङ्क

(स्थान—महर्षि वाल्मीकि के आश्रम का परिसर)। अंक के प्रारम्भ में ही वाल्मीकि के शिष्य सौधातकि और दण्डायन के परस्पर वार्तालाप से विदित होता है कि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती, राम की माताएँ और जनक आदि अतिथि के रूप में पधारे हैं। सीता के शोक से सन्तप्त राजर्षि जनक आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हैं। (विष्कम्भक समाप्त हुआ)।

महाराज जनक प्रवेश करते ही सीता के शोक में विलाप करते हुए दिखलाई

पड़ते हैं। वसिष्ठ के आदेशानुसार अरुन्धती के साथ कौसल्या जनक से मिलने जाती हैं। जनक और कौसल्या सीता के साथ घटी घटना से अत्यन्त शोकाकुल हैं। वे दोनों राम और सीता के विवाह के पश्चात् घटी घटनाओं का स्मरण करके दुःखित होती हैं। अरुन्धती कहती हैं कि उनके प्रति देवगुरु वसिष्ठ का कथन है कि इन घटनाओं का परिणाम सुखद होगा। इसी समय नेपथ्य में शिष्टानध्याय के कारण खेलते हुए बालकों का कोलाहल सुनाई पड़ता है। इन बालकों में राम की आकृति-वाला एक बालक दिखलाई पड़ता है। महाराज जनक उसे अपने पास बुलवाते हैं। बालक लव आकर अत्यन्त शिष्टता के साथ उन वृद्धों को प्रणाम करता है। कौसल्या को यह देखकर प्रसन्नता होती है कि लव की आकृति सीता की आकृति से मिलती-जुलती है। कौसल्या लव से उसके जननी-जनक का नाम पूछती हैं। लव अपने आपको महर्षि वाल्मीकि का पुत्र बतलाता है। प्रसङ्गवश लव रामायण की कथा और उसके पात्र राम, लक्ष्मण एवं जनक आदि की जानकारी प्रकट करता है। जनक के यह पूछने पर कि दशरथ के किस-किस पुत्र के कितनी सन्ताने हैं ? लव इसके उत्तर में कहता है कि--"यह अंश अभी तक गुरुजी ने प्रकाशित नहीं किया है और उन्होंने इसे मेरे बड़े भाई कुश के संरक्षण में अभिनय के लिये भरत मुनि के पास भेजा है। इसी बीच अश्वमेध का अश्व आश्रम के पास पहुँचता है। बालक घोड़ा दिखलाने के लिये लव को ले जाते हैं। अश्व-रक्षकों से विवाद बढ़ जाने के कारण लव युद्ध के लिये संनद्ध हो जाता है।

पञ्चम अङ्क

(वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान)। सारथि सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण-पुत्र सुमन्त्र प्रवेश करते हैं। दोनों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि लव ने सैनिकों को परास्त कर दिया है, मार भगाया है। चन्द्रकेतु लव को युद्ध के लिये ललकारता है। लव और चन्द्रकेतु का वीर-संवाद प्रारम्भ होता है। इसी समय इस संवाद में विघ्न करने वाले सैनिकों को, जृम्भकास्त्र के प्रयोग से, लव निश्चेष्ट कर देता है। लव राम के शौर्य को कुछ नहीं समझता है और उन पर आक्षेप भी करता है। इस पर क्रुद्ध चन्द्रकेतु लव से लड़ने के लिये तैयार हो जाता है।

षष्ठ अङ्क

(स्थान-महर्षि वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती परिसर)। विष्कम्भक में विद्याधर और विद्याधरी के संवाद द्वारा सूचना मिलती है कि सम्प्रति लव और चन्द्रकेतु में भीषण संग्राम चल रहा है। दोनों योद्धा दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं। इसी समय शम्बूक का वध कर राम पञ्चवटी से लौट कर युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। (विष्कम्भक समाप्त)।

चन्द्रकेतु और लव राम को प्रणाम करते हैं। लव को देखकर राम को बड़ी प्रसन्नता होती है। राम लव को गले लगाते हैं। लव जृम्भक अस्त्र को संहृत कर लेता है। राम की जिज्ञासा पर लव उन्हें सूचित करता है कि जृम्भकास्त्र उसे जन्म-सिद्ध हैं। इसी समय भरत के आश्रम से लौटे हुए कुश प्रवेश करते हैं। लव के द्वारा राम का परिचय प्राप्त कर कुश उन्हें प्रणाम करते हैं। लव-कुश युगल हैं। इन्हें जृम्भक अस्त्र जन्म से ही प्राप्त हैं और इनकी आकृति सीता की आकृति से मिलती-जुलती है। अतः इन्हें सीता का पुत्र होना चाहिए—ऐसा राम अनुमान करते हैं। अपने अनुमान की पुष्टि के लिये राम उनसे कई प्रश्न पूछते हैं। किन्तु सीता के विषय में उनके उत्तर तटस्थ हैं। अतः राम अनुमान त्याग देते हैं। शिशु-कलह की बात को सुनकर वसिष्ठ, वाल्मीकि, जनक, दशरथ की रानियाँ और अरुन्धती वहाँ पहुँचते हैं। शोक तथा लज्जा से अभिभूत राम उनको प्रणाम करने के लिये जाते हैं।

सप्तम अङ्क

(स्थान—वाल्मीकि के आश्रम का पार्श्ववर्ती स्थान)। इस अन्तिम अङ्क में वाल्मीकि के आश्रम के पास गङ्गा के तट पर वाल्मीकि की रचना का अप्सराओं के द्वारा अभिनय प्रदर्शित किया गया है। इस अभिनय को देखने के लिये राम के सहित सारी प्रजा उपस्थित होती है। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से चराचर के सहित देवों और असुरों को भी बुला लिया है। इस गर्भ-नाटक का उद्देश्य है, मुख्य नाटक के अवसान पर, सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके उनके साथ कुश और लव का राम से समागम। इस प्रकार नाटक सुखान्त बन जाता है। इसमें सीता के परित्याग से लेकर कुश-लव के जन्म की कथा का वर्णन किया गया है। सीता प्रसव की वेदना से पीडित होकर अपने आपको गङ्गा में डाल देती है। वहीं सीता पुत्रों को जन्म देती है। गङ्गा और पृथिवी एक-एक बच्चे को लिये हुए सीता को सहारा देकर जल से बाहर लाती हैं। पृथिवी सीता का परित्याग करने के कारण राम पर अप्रसन्न होती हैं। गंगा उन्हें समझाती हैं। आकाश प्रकाश से आच्छन्न हो जाता है। प्रकाशमय जृम्भक अस्त्र कुश तथा लव को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी के कहने से सीता बालकों का तब तक पालन-पोषण करती है, जब तक वे दूध पीना नहीं छोड़ देते हैं। इसके बाद गंगा दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि को समर्पित कर देती हैं। सीता के रसातल गमन की बात को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी समय सीता गंगा और पृथ्वी के साथ जल से प्रकट होती है। सीता के हाथ का स्पर्श पाकर राम चेतना में आते हैं। पृथ्वी सीता की रक्षा के अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होती है। राम पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अरुन्धती सीता की पवित्रता की घोषणा करती हैं। सभी उसका समर्थन करते हैं। राम निर्दोष सीता को स्वीकार करते हैं। इसी समय कुश और लव को लिये हुए महर्षि वाल्मीकि प्रवेश करते हैं। बालकों का अपने माता-पिता से मिलन होता है। इसके बाद भरत वाक्य के साथ ही नाटक की समाप्ति होती है।

(५) मूलकथा और उसमें परिवर्तन

(क) कथा का आधार

उत्तररामचरित की कथा का मूल आधार है—वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड। उत्तरकाण्ड में राम के राज्याभिषेक तथा सीता के परित्याग के बाद की घटनाओं का वर्णन है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटकीय काव्यकौशल प्रतिभा का परिचय देते हुए मूल कथा में कतिपय परिवर्तन किया है। रामायण की कथा दुःखान्त है, किन्तु भवभूति ने भारतीय पद्धति के आधार पर अपने नाटक को सुखान्त बनाया है।

महाभारत (सभापर्व अ० ३८, वनपर्व अ० २७७), ब्रह्मपुराण, गरुडपुराण, स्कन्दपुराण आदि में राम कथा का वर्णन है। किन्तु इनमें राम के राज्याभिषेक के बाद की घटनाओं का वर्णन नहीं है।

पद्मपुराण के चतुर्थखण्ड (पातालखण्ड, अध्याय १ से ६८) तथा पञ्चमखण्ड (सृष्टिखण्ड, अ० २६९-२७१) रामकथा का वर्णन है। किन्तु दोनों स्थलों की कथाओं में साम्य नहीं है। सृष्टिखण्ड की कथा वाल्मीकि रामायण की कथा से साम्य रखती है, परन्तु पातालखण्ड की कथा और उत्तररामचरित की कथा में पर्याप्त एकरूपता है। यदि यह माना जाय कि भवभूति ने उत्तररामचरित की कथा का आधार पातालखण्ड की कथा को बनाया है तो कोई अनुचित न होगा। भवभूति ने पद्मपुराण की कथा में कतिपय परिवर्तन किया है। यह परिवर्तन महाकवि की अपनी मौलिकता तथा कल्पना का ही फल है।

(ख) वाल्मीकि रामायण में वर्णित कथा

वाल्मीकि रामायण के उत्तरखण्ड (सर्ग ४२ से सर्ग ९७ तक) में राम के राज्याभिषेक से लेकर सीता के पृथ्वी में अन्तर्धान होने तक का वर्णन है। उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

राम का राज्याभिषेक होता है। सीता गर्भवती हैं—यह बात जान कर सबको बड़ी प्रसन्नता होती है। राम सीता से उनके गर्भदोहद (गर्भिणी की इच्छा) को पूछते हैं। इस पर सीता पवित्र तपोवन को देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं। एतदर्थ राम ने उन्हें स्वीकृति प्रदान कर दी। उसी दिन राजसभा में भद्रनामक सभासद् ने जनता में फैली लोकापवाद की बात कही कि रावण द्वारा अपहृत सीता को राम ने

तुरन्त स्वीकार कर लिया है तथा उन्होंने इसकी स्वल्प भी निन्दा नहीं की है। यह सुनकर राम को बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि—"सीता को रथ पर बैठा कर वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आओ।" लक्ष्मण ने आदेश का पालन किया। विलाप करती हुई सीता को देखकर मुनि-बालकों ने इसकी सूचना महर्षि वाल्मीकि को दी। महर्षि ने सीता को आश्वस्त किया और उन्हें अपने आश्रम में लाये। कुछ काल के बाद राम ने मधुराधिपति लवणासुर को मारने के लिये सेना सहित शत्रुघ्न को मधुपुर (आधुनिक मथुरा) भेजा। जाने के समय शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में विश्राम किये। उसी दिन रात्रि में सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया -"तामेव रात्रीं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्—६६--१।"

लवणासुरको मारकर १२ वर्ष बाद शत्रुघ्न लौटने के समय पुनः वाल्मीकि के आश्रम में रुके। उस समय कुश-लव बारह वर्ष के हो गये थे। उन्हें रामायण कण्ठस्थ थी। शत्रुघ्न अयोध्या लौटे। महाराज राम ने उन्हें मधुपुर का राजा बना कर भेज दिया। कुछ समय के बाद किसी ब्राह्मण का लड़का मर गया। ब्राह्मण बालक के शव को राजा के द्वार पर रखकर कहने लगा कि उसके बालक की मृत्यु राजा के दोष के कारण हुई है। राम ने महर्षियों के सामने यह प्रश्न रक्खा। इस पर नारद ने कहा कि—आपके राज्य में एक शूद्र तपस्या कर रहा है। उसी के कारण इस बालक की अकाल मृत्यु हुई है। राम पुष्पक विमान से तपस्वी शूद्र को ढूँढने निकलते हैं। उन्होंने दक्षिण में पहाड़ पर शम्बूक नामक शूद्र को तपस्या करते हुए देखा और उसका वध कर दिया। ब्राह्मण का बालक जीवित हो उठा। इसके बाद राम अगस्त्यमुनि का दर्शन करके अयोध्या लौटते हैं। फिर राम ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। उसमें उन्होंने महर्षि वाल्मीकि को सादर आमन्त्रित किया। महर्षि के साथ लव-कुश भी आते हैं। वे यज्ञ में रामायण का गान करते हैं। लोगों के द्वारा परिचय पूछने पर महर्षि बतलाते हैं—"ये सीता के पुत्र हैं।" दूतों के द्वारा सीता को अयोध्या की यज्ञ-भूमि में बुलवाया गया और सीता से कहा गया कि वह वाल्मीकि के समक्ष अपनी निर्दोषता प्रमाणित करे। सीता ने यज्ञ-भूमि में अपनी निर्दोषता की शपथ लेते हुए पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह अपने अन्दर उसे स्थान दे दे। इसी समय पृथ्वी फटती है। उसके भीतर से एक दिव्य सिंहासन निकलता है। पृथ्वी उस पर विराजमान है। उसने सीता का अभिनन्दन किया। हाथ पकड़ कर उसे सिंहासन पर बैठाया। उस समय देवों ने सीता के ऊपर पुष्प-वृष्टि की। फिर वह आसन सीता समेत भूमि के भीतर समा गया।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह कथा दुःखान्त है। भवभूति ने वाल्मीकि रामायण के तीन श्लोकों (अंक ६–३१,३२ और ३६) को मूलरूप में दिया है।

क्रौञ्च कथानक (अङ्क २) पूरा का पूरा लिया है। अङ्क ७ में महर्षि वाल्मीकि को रङ्गमञ्च पर भी प्रदर्शित किया है। इस प्रकार वे वाल्मीकि के पूर्ण ऋणी हैं।

भवभूति ने रामायण की मूल कथा में निम्नलिखित परिवर्तन किया है—

१. शत्रुघ्न लवणासुर का वध करने के लिए जाते समय महर्षि के आश्रम में नहीं रुकते हैं (अंक १)। २. नाटक में बालकों के दूध छोड़ने के बाद सीता गंगा की देखरेख में पाताल में निवास करती हैं और दोनों बालक १२ वर्ष वाल्मीकि के पास रहते हैं (अंक ३)। ३. राम और वासन्ती का मिलन (अंक ३)। ४. अदृश्य सीता का तमसा से मिलन (अंक ३)। ५. अदृश्य सीता के द्वारा राम की मूर्च्छा को दूर करना। (अंक ३)। ६. वसिष्ठ, जनक और कौसल्या आदि का महर्षि के आश्रम में आवास (अंक ४)। ७. लव और चन्द्रकेतु का युद्ध (अंक ५)। नाटक की परिसमाप्ति पर राम-सीता का मिलन (अंक ७)।

(ग) पद्मपुराण में वर्णित कथा

उत्तररामचरित की कथा पद्मपुराण की कथा से प्रायः साम्य रखती है। इस लिये पद्मपुराण को उत्तररामचरित की कथा का उपजीव्य माना जा सकता है। पद्मपुराण (पातालखण्ड, अ० १–६८) वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

राम का राज्याभिषेक होता है। जनापवाद से भयभीत होकर राम सीता का परित्याग करते हैं। वाल्मीकि कुश-लव का पालन करते हैं और उन्हें अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा प्रदान करते हैं। राम के अश्वमेध का यज्ञ वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचता है। लव अश्वमेधीय अश्व को पकड़ते हैं। सैनिकों के साथ लव का युद्ध होता है। वाल्मीकि लव-कुश का परिचय राम से कराते हैं तथा अन्त में राम और सीता का मिलन होता है।

इस प्रकार पद्मपुराण की कथा सुखान्त है और उत्तररामचरित में वर्णित प्रायः सारे तथ्य इसमें प्राप्त होते हैं।

भवभूति ने पद्मपुराण की मूलककथा में निम्न परिवर्तन किया है—

पद्म पुराण	उत्तररामचरित
१—अश्वमेधीय अश्व का रक्षक भरत का पुत्र पुष्कल है।	१—अश्वरक्षक सैन्य का नेतृत्व लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु करते हैं।
२—वाल्मीकि ने कुश-लव को अस्त्र विद्या की शिक्षा प्रदान की है।	२—कुश-लव को जृम्भकास्त्र स्वतः सिद्ध हैं।
३—लव पहले विजयी होता है किन्तु बाद में बन्दी बना लिया जाता है। बाद में कुश सेना पर विजय प्राप्त करके लव को मुक्त करते हैं। सीता बीच में पड़कर सेनापतियों को और अश्व को मुक्त कराती हैं।	३—लव पराजित नहीं होते हैं। कुश को युद्ध नहीं करना पड़ा है। नाटक के मध्य वाल्मीकि राम के साथ लव-कुश का परिचय कराते हैं।

पद्मपुराण	उत्तररामचरित
४—अश्वमेध यज्ञ में राम के साथ लव-कुश का परिचय होता है।	४—नाटक के मध्य वाल्मीकि राम के साथ लव-कुश का परिचय कराते हैं।
५—यज्ञ में सीता को बुलवाया जाता है और वाल्मीकि के कहने पर राम सीता को ग्रहण करते हैं।	५ वाल्मीकि के आश्रम में नाटक-प्रदर्शन के मध्य सीता राम से मिलती है और राम अरुन्धती के कहने पर सीता को ग्रहण करते हैं।
६ राम युद्ध-भूमि में नहीं आते हैं।	६—राम युद्ध-भूमि में उपस्थित होते हैं।
७—पृथिवी प्रकट होकर राम के सामने नहीं आती है।	७—पृथिवी गंगा और सीता के साथ राम के समक्ष उपस्थित होती है।

(६) उत्तररामचरित में प्रधान रस

उत्तररामचरित में प्रधान रस कौन है ? करुण अथवा करुण-विप्रलम्भ शृंगार ? इस विषय में विद्वन्मण्डली एक मत नहीं है। कुछ लोग इसमें करुण-विप्रलम्भ नामक शृंगार रस मानते हैं तो कुछ लोग यह कहते हैं कि इसका मुख्य अर्थात् अङ्गी रस है करुण। दोनों पक्षों की ओर से कई तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शास्त्र दोनों पक्षों का समर्थन करते हैं। किन्तु यथार्थ तो यह है कि महाकवि भवभूति के उत्तर-रामचरित में करुण रस का सागर नहीं महासागर लहरा रहा है। कोटि प्रयत्न करने पर भी यह तथ्य छिपाया नहीं जा सकता कि इस नाटक का अङ्गी रस है करुण। इतना ही नहीं महाकवि भवभूति तो एक रसवादी हैं। उनकी दृष्टि से एक ही रस है—करुण रस। शृङ्गार आदि रस तो इसी रस के भेद हैं, विकार हैं, पोषक हैं। उनकी दृष्टि में करुण रस अन्य रसों का आधारभूत रस है। वे यह मानते हैं कि करुण रस रूपान्तरित होकर शृंगार, वीर आदि रसों के रूप में परिणत होता है। सर्वत्र रसों की आत्मा के रूप में करुण रस ही है। करुण रस प्रकृति है और शृंगार आदि अन्य रस विकृति हैं। इसी बात को वे डिण्डिमघोष के साथ इस प्रकार कहते हैं—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समस्तम्॥
(उत्तर० ३।४७)॥

महाकवि भवभूति उत्तररामचरित में करुण रस की सत्ता को बहुत ही स्पष्ट

शब्दों में स्वीकार करते हैं। राम के अन्दर करुण रस का प्रवाह है। राम भीतर ही भीतर पुटपाक के सदृश घुटते रहते हैं और उनकी यह व्यथा बहुत ही घनी है— पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः। (उत्तर०३।१)। तृतीय अंक का प्रारम्भ "करुणो रसः" से और समापन "एको रसः करुण एव०" से होता है। इन दोनों ही स्थलों से कवि ने स्पष्ट निर्देश किया है कि उस नाटक का प्रधान रस है— करुण।

७. प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

(क) राम

राम इस नाटक के धीरोदात्त नायक हैं। जीवन में मर्यादा का अतिशय पालन करने के कारण राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। उनमें शक्ति, शील तथा सौन्दर्य आदि गुणों की पराकाष्ठा है। वे त्याग तथा तपस्या की साक्षात् मूर्ति हैं। राम इतने प्रबल पितृ-भक्त हैं कि पिता के सत्य का पालन करने के लिये मिले हुए राज्य का प्रसन्नता से परित्याग कर वनवास को अंगीकार करते हैं। वे एक आदर्श राजा हैं। प्रजानुरञ्जन को वे अपना पवित्र कर्तव्य एवं पावन धन मानते हैं। प्रजा की प्रसन्नता के लिये अपने भौतिक सुखों को तिलाञ्जलि देने में भी उन्हें हिचक नहीं होती। उनकी यह उद्घोषणा है कि--"लोकाराधन के लिये मुझे सब कुछ, यहाँ तक कि जानकी को भी, छोड़ने में कुछ भी कष्ट न होगा"—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥ १।१२ ॥

राम का राज्य एक आदर्श राज्य है। उनका जीवन त्रैकालिक जन के लिये आदर्श जीवन है। अपने जीवन और आदर्श में अपवाद का लगना उन्हें सह्य नहीं है। जीवन में आदर्श बनाये रखने के लिये बड़ा से बड़ा त्याग भी उनके लिये अकिञ्चित्कर है। यही कारण है कि जब वे अपनी प्राणाधिक प्रिया सीता के बारे में, तुच्छ प्रजा के द्वारा भी, लाञ्छन की बात सुनते हैं तो अपने हृदय पर पत्थर रख कर कठोरगर्भा सीता का परित्याग करके अपने आपको दुःख के सागर में, जीवन भर के लिये, निक्षिप्त कर देते हैं। यद्यपि सीता की पवित्रता के बारे में राम को परमाणु भर भी सन्देह न था, किन्तु फिर भी उन्होंने प्रजारञ्जन के लिये उनका परित्याग कर दिया था। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित में राम को आदर्श पति, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र और आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया है।

एक पत्नी-व्रती के रूप में राम सारे विश्व में अपना शानी नहीं रखते हैं। सीता के निर्वासन के अनन्तर विश्व की कोई भी सुन्दरी पति के रूप में उनका वरण करने में अपने आप को परम सौभाग्यवती समझती, अपने आपको धन्य-धन्य

मानती। परन्तु रामने ऐसी किसी घटना के लिये कोई अवसर ही नहीं आने दिया। अश्वमेध यज्ञ में कर्मकाण्ड की पूर्ति के लिये उन्होंने सीता की सुवर्णमयी प्रतिमा को अपने वाम भाग में स्थान देकर विश्व भर को चकित भर ही नहीं किया अपितु सीता के मन से दुःख के शल्य को सर्वदा के लिये निकाल दिया। यही कारण है कि सीता जब उक्त प्रसंग को सुनती हैं तो बरवश उनके मुख से निकल पड़ता है—"आर्यपुत्र ! इदानीमसि त्वम्। अहो ! उत्खातमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण" (पृ० २८४)। सीता परित्याग के दुर्निवार दोष को राम के मत्थे मढ़नेवाले लोगों के लिये यह स्थल अवश्य ही पठनीय और मननीय है। संसार में एक पत्नीव्रत का ऐसा अद्भुत उदाहरण दीपक लेकर अन्वेषण करने पर भी नहीं मिलेगा। सीता राम के घर की लक्ष्मी थीं, वह उनके नेत्रों की अमृतशलाका थीं, जीवन थीं, हृदय थीं। ऐसी कौन-सी प्रिय वस्तु थी जो राम के लिये सीता न थीं ?—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो–
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥१।३८॥

ऐसी प्राणप्रिया सीता को भी, प्रजारञ्जन के नाम पर, घोर वन में निर्वासित कर अपने जीवन के समस्त सुखों को बलि की वेदी पर न्यौछावर करने का काम केवल राम ही कर सकते हैं, विधाता की सृष्टि का और कोई दूसरा प्राणी नहीं कर सकता।

तृतीय अङ्क में वासन्ती निरपराध सीता को निर्वासित करने के लिये राम की कठोर आलोचना करती हुई कहती है—

अयि कठोर ! यशः किलते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम् ?

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः ? कथय नाथ ! कथं वत ? मन्यसे ? ॥३।२७

किन्तु इस सीता–निर्वासन में राम के जीवन की महत्ता तथा अलौकिकता का दर्शन होता है। कर्तव्य पालन का इससे उच्च आदर्श क्या होगा ? यह सत्य है कि राम एक पति भी थे ! उन्हें आदर्श पति होना चाहिये था। किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिये कि वे एक राजा थे, आदर्श राजा। दो कर्तव्यों अथवा आदर्शों में संघर्ष होने पर बड़े आदर्श के लिए छोटे आदर्श का त्याग करना ही पड़ता है। राम-सीता-निर्वासन रूप अपने नृशंस कर्म के लिए आजीवन अपने आपको धिक्कारते रहे, कोसते रहे। दुःखका असह्य वेग उनके हृदय को दलता रहा। उनके भीतर धधकता हुआ शोकानल उन्हें निरन्तर जलाता रहा। फिर भी धैर्यपूर्वक वे यह

सब सहन करते रहे, क्योंकि राम के भीतर तो दुःख संवेदन के लिए ही चैतन्य स्थापित था। महाकवि ने सत्य ही कहा है कि—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥ (२।७)।

राम विनय के साक्षात् विग्रह थे। अभिमान का भाव उनका स्पर्श भी न कर सका था। चित्रदर्शन के अवसर पर परशुरामविषयक अपनी वीरता की प्रशंसा को वे सुनना तक नहीं चाहते थे। अतः लक्ष्मण को बीच में ही रोक कर उन्होंने दूसरी ओर मोड़ा था। यही कारण है कि सीता स्वयं राम के इस विनय-माहात्म्य की प्रशंसा करते हुए कही थीं कि--"सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र एतेन विनयमाहात्म्येन।" (पृ० ५०)।

राम की क्षमाशीलता तथा उदारता भी ध्यान देने योग्य है। लक्ष्मण के द्वारा कैकेयी तथा मन्थरा के चित्र की ओर निर्देश किये जाने पर वे झटिति उस वृत्तान्त की तरफ से सीता का ध्यान हटाकर दूसरी ओर ले जाते हैं। इस पर लक्ष्मण की यह स्वगत उक्ति कितनी भावपूर्ण है—"अये, मध्यमाम्बावृत्तान्तमन्तरितमार्येण।" (पृ० ५४)।

लवणासुर के द्वारा प्रजापीडन की बात ज्ञात कर वे तुरन्त उसके विनाश के लिए शत्रुघ्न को मथुरा की ओर भेजते हैं तथा स्वयं शम्बूकवध के लिये प्रस्थान करते हैं। इससे प्रजाहित के कार्य में राम की तत्परता सूचित होती है। प्रथम दो अङ्कोंमें रामके सभी सद्गुणों की झाँकी हमें प्राप्त होती है, और आगे के अंक उस झाँकी का पोषण करते हैं। राम कर्तव्य-पालन में कठोर होते हुए भी कोमल तथा संवेदनशील स्वभाव के धनी व्यक्ति हैं। पञ्चवटी में पूर्वपरिचित प्रदेशों को देखकर सीता का स्मरण कर उनका अनेक बार मूच्छित होना उनके हृदय की कोमलता को सूचित करता है। युद्धक्षेत्र में कुश तथा लव को देखकर उनका हृदय वात्सल्य से भर जाता है। संक्षेप में महाकवि भवभूति के राम एक आदर्श व्यक्ति हैं। वस्तुतः राम तो राम ही जैसे हैं।

(ख) सीता

सीता नाटक की मुग्धा नायिका हैं। वे भारतीय परिवेश में पली हुई एक आदर्श ललना हैं। वे सती शिरोमणि हैं। अनके नाम के लेते ही हृदय में पवित्र भावों का सञ्चार होने लगता है। सीता का जीवन तपस्या का जीवन है। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित में सीता के निर्वासन की जो घटना प्रस्तुत की है, वह हृदय-द्रावक है, पत्थर के कलेजे को भी टुकड़े-टुकड़े कर देने वाली है। सीता के हृदय में राम के प्रति श्रद्धा और सम्मान की जो सरिता प्रवाहित होती

है, जो पूज्यभाव का महासागर उद्वेलित होता रहता है, उसका दर्शन प्रथम अङ्क में ही प्रेक्षावानों को प्राप्त हो जाता है। उनका यह कथन कि—"अच्छा, उनके ऊपर नाराज होऊँगी, यदि उन्हें देखकर अपने आपको वश में रख सकी तो।"—

"भवतु। अस्मै कोपयिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि।" (पृ० ११६)। कितना मार्मिक है इसे तो कोई सहृदय व्यक्ति ही जान सकता है। इससे राम के प्रति उनका अगाध प्रेम और आदर भाव कितना महान् था इसकी एक पवित्र झाँकी देखने को मिलती है। सीता के ये गुण तृतीय अंक में और भी अधिक स्पष्ट होकर सामने आते हैं। वासन्ती सीता-निर्वासन के लिये जब राम को दोष देती है तब अदृश्य बनी हुई सीता अपने प्राण-नाथ राम की इस निन्दा को सहन नहीं कर पाती और वासन्ती के प्रति—"त्वमेव सखि वासन्ति दारुणा कठोरा च यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि।" (पृ० २४४)। अर्थात् "सखी वासन्ती, तुम्हीं निष्ठुर और कठोर हो। जो इस प्रकार विलाप करते हुए (आर्य-पुत्र) को और रुला रही हो।" यह कह कर राम के प्रति प्रेम तथा आदर को प्रकट करती हैं। अपने अकारण निष्काशन के लिए सीता के हृदय में राम के प्रति कुछ क्षोभ अवश्य है जो उनके "दिष्टचा अपरिहीनराजधर्मः स राजा" इस कथन से सूचित होता है, किन्तु प्रभातचन्द्र की भाँति पाण्डु तथा परिक्षाम राम को देखते ही वह मूर्च्छित हो जाती हैं। इसके अनन्तर तमसा के द्वारा पाण्डुच्छाय तथा शोक से दुर्बल राम की अवस्था की ओर निर्देश किये जाने पर सीता अश्रुप्रवाह के अन्तराल में क्षणभर राम का दर्शन करके अपना नया जन्म मानती हैं। राम के प्रति सीता के इस अगाध तथा तथा सहज प्रेमका कुछ निर्देश भवभूति ने वाल्मीकि के इस श्लोक द्वारा किया है--

तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥६।३२॥

उत्तररामचरित की सीता त्याग, तपस्या और करुण रसकी साक्षात् मूर्ति प्रतीत होती हैं। उनका कृश गात्र, असंस्कृत बिखरा हुआ केश, परिक्षाम दुर्बल मुखमण्डल देखते ही दर्शक रो पड़ने के लिये विवश हो जाता है।

(ग) वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि का परिचय हमें सर्वप्रथम द्वितीय अंक में आत्रेयी से प्राप्त होता है। ये पुराण ब्रह्मवादी महर्षि हैं। इन्हें प्राचेतस के नाम से भी जाना जाता है। मुनि लोग इनके पास ब्रह्मपरायण के लिये आया करते हैं। ये लौकिक छन्दों के आदि कवि हैं। इन्होंने शब्द ब्रह्म के विवर्त रामायण नामक इतिहास की रचना की है जिसमें रामचरित का पावन वर्णन है। इन्हीं महर्षि को गङ्गा देवी ने लाकर

सीता के पुत्रों को उस समय समर्पित किया था जब उन्होंने माँ का दूध पीना छोड़ा था। महर्षि ने बालकों का धात्रिकर्म, आचार्यकृत्य, पालन-पोषण और सारी शिक्षा दीक्षा--सब कुछ ही की थी। इन्हीं महर्षि ने सीता-निर्वासन के बाद के कथाभाग को, आर्ष दृष्टि से देखकर, दृश्य प्रबन्ध का रूप देकर राम एवं उनकी सारी प्रजाओं के समक्ष अभिनय करवाया था। इसी के फलस्वरूप उन्होंने सीता के पवित्र चरित्र को सबके सामने प्रस्तुत किया। इस प्रकार कथावस्तु के विकास में और नाटक को सुखान्त बनाने में भगवान् वाल्मीकि का महान् योगदान रहा। फिर भी वे केवल नाटक के अवसान पर ही रङ्गमञ्च पर आते हैं।

(घ) चन्द्रकेतु

चन्द्रकेतु लक्ष्मण के सुपुत्र हैं। अश्वमेध के प्रसङ्ग में छोड़े गये अश्व की रक्षा में जो सेना नियुक्त थी उसके नायक राजकुमार चन्द्रकेतु ही थे। चन्द्रकेतु सूर्य वंशी क्षत्रिय की भाँति शूरवीर हैं। दूसरों के प्रति उनका व्यवहार अति शिष्टतापूर्ण है। दूसरे के गुणों का आदर करना वे भली-भाँति जानते हैं। बालक होने पर भी वे क्षात्रतेज से लबालब भरे हैं, युद्धविद्या में विशारद हैं। यही कारण है कि महाराज राम ने अश्वरक्षा का भार उसके प्रपुष्टस्कन्धों पर समारोपित किया है। लव को एकाकी ही अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ युद्ध करते देखकर चन्द्रकेतु उस शिशु-केशरी की प्रशंसा करता हुआ तृप्त नहीं होता है। वीर लव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिये ही वह अपने रथ से नीचे उतर जाता है। वह रथारूढ़ होकर पदाति लव से युद्ध करना अपना धर्म नहीं मानता। लव के द्वारा रथ से न उतरने की बात कही जाने पर वह उनसे भी आग्रह करता है—"तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलंकरोतु।" (पृ० ४१८)। अर्थात्—"तो अत्यन्त सौभाग्यशाली आप भी दूसरे रथ को अलंकृत करें अर्थात् दूसरे रथ पर सवार हों।" चन्द्रकेतु के इस कथन में कितनी शालीनता है यह कोई भी सरलता से देख सकता है।

अपने ज्येष्ठ तात रामचन्द्र के प्रति चन्द्रकेतु के हृदय में श्रद्धा का सागर लहरा रहा है। जिस समय लव राम के प्रति आक्षेप करता है उस समय चन्द्रकेतु की कोपज्वाला भभक उठती है और वह लव से युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाता है। राम के युद्ध-क्षेत्र में आने पर चन्द्रकेतु बड़ी ही उदारता के साथ राम से लव का परिचय कराता है। उस समय वह उसे अपना प्रियवयस्य कह कर सम्बोधन करता है। इससे उसके हृदय की उदारता तथा निर्मत्सरता स्पष्ट सूचित होती है।

(ङ) लव तथा कुश

लव और कुश यमज भाई हैं। कुश बड़े हैं और लव छोटे। ये दोनों ही अपने पिता राम के समान ही गुणों से परिपूर्ण हैं। स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने उनका पालन-

पोषण किया है, क्षत्रियोचित संस्कार करके सम्पूर्ण विद्याएँ प्रदान की हैं। इन दोनों कुमारों में सभी क्षत्रियोचित गुण अपनी पूर्ण पराकाष्ठा को प्राप्त किये हैं।

लव सरल तथा निर्दोष शिशु हैं। महाराज जनक को इस शिशु में सीता तथा राम की आकृति, कान्ति, वाणी, विनय और अनुभाव दृष्टिगोचर होता है। पञ्चम अङ्क में हमें लव की अद्‌भुत वीरता का दर्शन होता है। लव अपने भोलेपन के कारण राम की वीरता को भी अपनी वीरता से अधिक ऊँचा स्थान देने के लिये तैयार नहीं है। वह दर्प एवं वीरता की साक्षात् मुर्ति मालूम पड़ता है। सुजनता भी लव में कूट-कूट कर भरी हुई है। गुरुजनों के प्रति उसके हृदय में आदर का भाव है।

कुश लव का बड़ा भाई है। उसे ऋषि वाल्मीकि ने स्वयं रचित सन्दर्भ के साथ भरतमुनि के पास भेजा है। वहाँ से लौटते ही जब वह राज-सैनिकों के साथ अपने प्रिय लघु बन्धु के युद्ध की बात सुनता है तो उसके क्रोध की सीमा नहीं रहती। रघुवंशियों के साथ युद्ध को वह अपने धनुष का परम सौभाग्य समझता है। वह "दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः" इत्यादि (६।१९) में अपनी वीरता की घोषणा करता है। कुश के रोम-रोम से वीररस टपकता है। राम प्रथम दृष्टि पड़ते ही उसकी वीरता का आकलन इन शब्दों में करते हैं—

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥ (६।१९)

अर्थात्—"इसकी दृष्टि त्रिलोकी की शक्ति के उत्कर्ष को तृण की भाँति तिरस्कृत कर रही है। इसकी धीर और गर्वयुक्त गति पृथिवी को मानो झुका रही है। बाल्यावस्था में भी पर्वत के सदृश गौरव को धारण किये हुए क्या यह वीर रस है? अथवा साक्षात् गर्व ही आ रहा है ? ॥"

लव के समान ही कुश के हृदय में भी राम के प्रति परम आदर तथा श्रद्धा का भाव है। राम का प्रासादिक रूप तथा पावन अनुभव देखकर कुश उनके चरणों में श्रद्धावनत हो जाता है। महाराज राम जब उसका आलिङ्गन करते हैं तो उन्हें ऐसा आनुभव होता है मानो वे अमृत रस के सागर में गोते लगा रहे हों।

—रमाशङ्कर त्रिपाठी

नाटकीयपात्र-परिचयः

पुरुष-पात्र

सूत्रधारः—प्रधाननट ।

नटः—सूत्रधार का सहायक ।

रामचन्द्रः—अयोध्याऽधिपति सूर्यवंशीय राजा ।

लक्ष्मणः –सुमित्रापुत्र, राम के लघुबन्धु ।

शत्रुघ्नः – सुमित्रा के छोटे पुत्र, लक्ष्मण के अनुज ।

जनकः—मिथिलाधीश्वर और राम के श्वसुर ।

अष्टावक्रः—टेढ़े-मेढ़े अंगों वाले एक महामुनि ।

वाल्मीकिः—रामायण के निर्माता महर्षि, कुश-लव के संरक्षक ।

सौधातकिः—वाल्मीकि के शिष्य ।

दाण्डायनः— ,, ,,

कुशलवौः—राम के पुत्र, वाल्मीकि के शिष्य ।

चन्द्रकेतुः—लक्ष्मण के पुत्र ।

सुमन्त्रः—चन्द्रकेतु का वृद्ध सारथि ।

विद्याधरः—एक विशेष देवजाति ।

कञ्चुकी—अन्तःपुर में रहनेवाला एक वृद्धब्राह्मण ।

दुर्मुखः—राम का गुप्तचर ।

शम्बूकः—शूद्र तपस्वी ।

मुनिकुमार और सैनिक आदि ।

स्त्री-पात्र

सीतादेवी—जनकतनया, राम की पत्नी और नाटक की नायिका।

वासन्ती—वनदेवता, सीता की सखी।

आत्रेयी—ब्राह्मण जाति की एक ब्रह्मचारिणी।

तमसा—एक नदी की अधिष्ठात्री देवी।

मुरला— ,, ,, ,, ,,

गोदावरी— ,, ,, ,, ,,

भागीरथी—गंगादेवी।

कौशल्या—राम की माता।

पृथिवी—सीता की जननी।

अरुन्धती—वसिष्ठ की धर्मपत्नी।

विद्याधरी—विद्याधर की पत्नी।

प्रतीहारी—अन्तःपुर की द्वारपालिका।

अन्य उल्लिखित पात्र

वसिष्ठः—एक महर्षि। रघुकुल के कुल गुरु।

ऋष्यशृंगः—शान्ता के पति। राम के जीजा।

लवणः—एक राक्षस। मथुरा का राजा।

शान्ता—राम की बहन। ऋष्यशृङ्ग की पत्नी।

□

उत्तररामचरितम्

॥ श्रीः ॥

उत्तररामचरितम्

सटिप्पण 'रमा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

[चित्रदर्शनम्]

इदं कविभ्यः[1]पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे ।
[2]विन्देम देवतां वाच[3]ममृतामात्मनः कलाम् ॥ १ ॥

अन्वयः—पूर्वेभ्यः, कविभ्यः, नमोवाकम्, (वयम्), 'आत्मनः, अमृताम्, कलाम्, देवताम्, वाचम्, विन्देम', इदम्, प्रशास्महे ॥ १ ॥

शब्दार्थः—पूर्वेभ्यः=(बाल्मीकि आदि) पुरातन, कविभ्यः=कवियों को, नमोवाकम्=नमस्कारपूर्वक, (वयम्=हम), 'आत्मनः=परमात्मा की, अमृताम्=अमर, सनातन, कलाम्=कला, अंश, देवताम्=देवी, देवता, वाचम्=वाणी को, विन्देम=प्राप्त करें', इदम्=यह, प्रशास्महे=प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

टीका—तत्र श्रीमान् श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम महाकविः प्रारिप्सितस्य नाटकस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गभूतां स्तुतिपाठरूपां नान्दीमादौ अवतारयति—इदं कविभ्यः इति । पूर्वेभ्यः=प्राचीनेभ्यः, कविभ्यः=काव्यकर्तृभ्यः, व्यासवाल्मीकिभासकालिदासादिभ्य इति भावः, नमोवाकम्=नमस्कारोच्चारणपूर्वकमित्यर्थः, वचनं वाकः 'वच् परिभाषणे' इति धातोर्भावे घञ् कुत्वं च, नमो नमः शब्दस्य वाकः=उच्चारणं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा क्रियाविशेषणमिदम्, वयम्=ग्रन्थकर्ता पाठकाः सभ्याश्चेति शेषः, आत्मनः=परमात्मनः, अमृताम्—अविद्यमानं मृतम्=मरणम् यस्याः सा ताम् अमृताम्=नित्याम्,

---

१ 'गुरुभ्यः' इति पाठान्तरम् ।

२. 'वन्देमहि च तां' ।

३. वाणीम् ।

(वाल्मीकि आदि) पुरातन कवियों को नमस्कारपूर्वक (अर्थात् नमस्कार करके हम) 'परमात्मा की अमर कला देवी वाणी को (अर्थात् परमात्मा की अंशभूत अमर दिव्य वाणी को) प्राप्त करें', यह प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

सनातनीमित्यर्थः, कलाम्=अंशभूताम्, देवताम्=देवीम्, वाचम्=वाणीम्, वाग्देवतामित्यर्थः, विन्देम=लभेमहि, इदम्=एतत्, प्रशास्महे=प्रार्थयामहे । एष गुरुभ्यो व्यासादिभ्यः प्रणामः, तत्प्रसादान्मे ब्रह्मणः सूक्ष्मा कला वाक् स्फुरत्वीत्यभ्यर्थना। नान्दीश्लोकेनानेन संक्षेपतः काव्यार्थसूचनमपि भवति । 'आत्मनः' अनेन पदेन नायकस्य रामस्य ब्रह्मत्वं तथा 'कलाम्' इत्यनेन तच्छक्तिभूतायाः सीतायास्तदभिन्नत्वमादि सूचितं भवति । 'कविभ्यः पूर्वेभ्यः,। द्वाभ्यामाभ्यां पदाभ्यां वाल्मीकिकृतस्य रामायणस्योपजीव्यत्वं ज्ञापितं भवतीत्युक्तम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १ ॥

टिप्पणी—नमोवाकम्—यह क्रियाविशेषण है । उच्यते इति वचनं वचनमेव वाकः नमो वाको यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा । √वच् + घञ् भावे, कुत्वं विभक्तिकार्यम् । 'वचनं' और 'वाकः,' समानार्थक हैं । इसका अर्थ इस प्रकार समझें—उस कार्य को करके जिसमें नमस्कार का कथन किया गया है, अर्थात् नमस्कार करके ।

पूर्वेभ्यः कविभ्यः—वाल्मीकि व्यास आदि पुरातन कवियों के लिये । कुछ विद्वान् 'पूर्वेभ्यः कविभ्यः' से रामकथाके प्रवर्तक केवल वाल्मीकि का ही ग्रहण करते हैं । ये लोग 'कविभ्यः' में बहुवचन का प्रयोग आदरार्थक मानते हैं । 'उत्तररामचरितम्' के एक अन्य टीकाकार घनश्याम ने 'कविभ्यः' का अर्थ 'गणपतये' अर्थात् 'गणेश के लिये' किया है । अपनी व्याख्या के समर्थन में वे यह श्रुति-वचन उद्धृत करते हैं—'गणपतिं हवामहे कविं कवीनाम् ।' इस श्रुति-वचन में गणपति और कवि पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त हुए हैं । किन्तु ऐसी व्याख्या मान लेने पर 'कविभ्यः' का विशेषण 'पूर्वेभ्यः' व्यर्थ पड़ जाता है, क्योंकि गणपति तो एक ही हैं । अतः उन्हें न पूर्ववर्ती कहा जा सकता है और न पश्चाद्वर्ती ।

आत्मनः—आत्मन् का अर्थ आत्मा तथा परमात्मा दोनों ही होता है । किन्तु अकेले प्रयोग होने पर आत्मन् का अर्थ होता है—परमात्मा, ब्रह्म । साथ-साथ प्रयोग होने पर ईश्वर या ब्रह्म के लिये परमात्मा तथा आत्मा के लिए जीवात्मा शब्द का प्रयोग होता है ।

अमृतां कलाम्—वागधिष्ठात्री देवता सरस्वती परमात्मा की ही अंशभूता हैं । अतः वे अमृत=शाश्वत, मरणविहीन हैं । व्याकरण तथा मीमांसा के अनुसार शब्द नित्य भी हैं ।

विन्देम देवतां वाचम्—वीरराघव तथा घनश्याम इन दोनों ही टीकाकारों ने 'वन्देमहि च तां वाणीम्' ऐसा पाठ स्वीकार किया है । ऐसा पाठ स्वीकार करने

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः [1]कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः[2] पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम [3]जतुकर्णीपुत्रः।

पर श्लोक का अर्थ इस प्रकार होगा—(वाल्मीकि आदि) पुरातन कवियों के लिये हम इस नमस्कार-वचन का निर्देश करते हैं, और परमात्मा की कला उस नित्य वाणी (सरस्वती) को (भी) प्रणाम करते हैं।

वाचम्—वाच् (-क्) (स्त्री०)—√ वच् + क्विप्, दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। छन्द का लक्षण इस प्रकार है—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—नान्द्यते—नान्दी-मङ्गलाचरण अन्ते=समाप्ति पर=मङ्गलाचरण की समाप्ति पर। सूत्रधारः=प्रधान नट, मण्डली का नेता। अलम्=पर्याप्त, बस, बहुत हो चुका, अतिविस्तरेण=अधिक विस्तार से। यात्रायाम्=उत्सव के अवसर पर, मेले के अवसर पर, आर्यमिश्रान्=आदरणीय जनों में भी श्रेष्ठ महानुभावों को, विज्ञापयामि=विनम्रता पूर्वक सूचित कर रहा हूँ। अत्रभवन्तः=पूजनीय आप लोग। तत्र भवान्=आदरणीय, काश्यपः=कश्यप गोत्र में उत्पन्न, श्रीकण्ठपदलाञ्छनः='श्रीकण्ठ' इस उपाधि से विभूषित, पद=वाक्य-प्रमाणज्ञः=व्याकरण-मीमांसा तथा न्याय के मर्मज्ञ। जतुकर्णीपुत्रः=जतुकर्ण गोत्र में उत्पन्न स्त्री का पुत्र।

टीका—नान्द्यन्ते—नन्दयति=आनन्दयति जनानिति नान्दी, नन्दन्ति देवताः अनया वा नान्दी=नाटकादौ प्रथमं मङ्गलार्थं विहितं पद्यं नान्दीत्युच्यते। उक्तञ्चापि साहित्यदर्पणे—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देव-द्विज-नृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

अत्र द्वादशपदेयं नान्दी। उपसर्गतिङन्तयोः समासाभावः। अतः प्रोपसर्गस्य भिन्नपदत्वात् द्वादशपदत्वमवसेयम्। कैश्चिन्नान्द्यां पदनियमो नाद्रियते।

---

१. पाठा०—प्रिय०, २. लाञ्छनो भवभूतिर्नाम, ३. कविः जतुकर्णीपुत्रः।

(मङ्गलाचरण की समाप्ति पर)

सूत्रधारः—(मङ्गलाचरण का) अधिक विस्तार बन्द करो। आज भगवान् कालप्रियानाथ (नामक शङ्कर) के उत्सव के अवसर पर आदरणीय जनों में भी श्रेष्ठ (आप) महानुभावों को विनम्रता के साथ सूचित कर रहा हूँ। (इस सूचना को) इस प्रकार पूजनीय आप लोग समझें—आदरणीय, काश्यप गोत्र में उत्पन्न, 'श्रीकण्ठ' इस उपाधि से विभूषित, व्याकरण मीमांसा तथा न्याय के मर्मज्ञ, जतुकर्णी के पुत्र भवभूति नामवाले (एक महाकवि) हैं।

सूत्रधारः—सूत्रम्=नाटकप्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः=प्रधाननटः। उक्तश्च साहित्यदर्पणे सूत्रधारलक्षणम्—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

अलम्=पर्याप्तम्, प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः, ('अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः), अतिविस्तरेण=अधिकविस्तारेण, बहुनान्दीपाठेनेत्यर्थः। द्वादशपदात्मकनान्दीपाठेनैव विघ्नविध्वंसकमङ्गलनिर्वाहाद् वाक्यप्रसरभूयिष्ठमनावश्यकमिति भावः। अद्य=अस्मिन् दिने, खल्विति निश्चये वाक्यालङ्कारे वा, ('निषेधवाक्यालङ्कारजिज्ञासाऽनुनये खलु' इत्यमरः)। भगवतः=सर्वैश्वर्यविभूषितस्य, कालप्रियानाथस्य—कालप्रिया नाम दुर्गा तस्याः=नाथस्य=वल्लभस्य, शिवस्येत्यर्थः, केषाञ्चिन्मते कालप्रियानाथ उज्जयिन्या महाकालेश्वर इत्यवसेयम्। केचिद् विदर्भदेशे भवभूतिनिवासे पद्मपुरे स्थापितस्य शिवस्यैवाभिधानं कालप्रियानाथ इति स्वीकुर्वन्ति। एतन्मालतीमाधवाध्येतॄणामतिरोहितम्। यात्रायाम्=महोत्सवे, आर्यमिश्रान्—आर्यान्=आदरणीयांश्च तान् मिश्रान्=पठितबहुशास्त्रान्, अथवा आर्येषु=श्रेष्ठेषु मिश्राः=प्रधानास्तान्, अथवा आर्यमिश्रान्=गौरवितान् ('गौरवितास्त्वार्यमिश्रा' त्रिकाण्डशेषः), विज्ञापयामि'=सविनयं निवेदयामि। अत्रोपस्थिताः एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अत्रभवन्तः–अत्रोपस्थिता पूज्या यूयम्, विदाङ्कुर्वन्तु=जानन्तु। तत्र भवान्=अत्रानुपस्थितः पूज्यः श्रीमांश्च, काश्यपः=कश्यपगोत्रोत्पन्नः, श्रीकण्ठपदलाञ्छनः—श्रीकण्ठश्च तत् पदं श्रीकण्ठपदम्, तत् लाञ्छनम्=चिह्नम्, परिचायकमित्यर्थः, यस्य सः, श्रीकण्ठनामधेयः, श्रीकण्ठोपाधिक इत्यर्थः, पद-वाक्यप्रमाणज्ञः—पदम्=सुप्तिङन्तपदविषयकं व्याकरणशास्त्रम्, वाक्यम् वाक्यविवेचकं मीमांसाशास्त्रम्, प्रमाणम्=अनुमानादिप्रमाणविषयकं न्यायशास्त्रम्, पदं च वाक्यं च प्रमाणं च पदवाक्यप्रमाणानि तानि जानातीति पदवाक्यप्रमाणज्ञः, व्याकरण—मीमांसान्यायशास्त्रतत्त्वज्ञ इत्यर्थः, भवभूतिर्नाम=भवभूतिरिति प्रसिद्धनामवान्, नामेति प्रसिद्धिसूचकमव्ययम्, भवभूतिः—भवस्य=शङ्करस्येव भूतिः=ऐश्वर्यम् ज्ञानसम्पत्तिरिति यावत्, यस्य सः, भवात्=शङ्करात् शङ्करप्रसादादित्यर्थः, भूतिः=

यं १ब्रह्माणमियं देवी २वाग्वश्येवानुवर्तते ।
उत्तरं रामचरितं ३तत्प्रणीतं ४प्रयोक्ष्यते ॥ २ ॥

ज्ञानादिकं यस्य तादृशः, शिवप्रसादाल्लब्धज्ञानसम्पत्तिरिति भावः, जतुकर्णीपुत्रः= जतुकर्णगोत्रोत्पन्नायाः स्त्रियाः पुत्रः=सुतः अस्तीति पूर्वतोऽन्वयः ।

टिप्पणी--नान्दी--√ नन्द (समृद्धौ) + घञ् + ङीप् । सूत्रधारः–सूत्र + √ धृ + कर्मण्यण् अत्र 'उपपदमतिङ्' इति सूत्रेण उपपदसमासः । विस्तरेण--वि + √ स्तृ + अप् + तृतीयैकवचने विभक्तिकार्यम् ।

कालप्रियानाथस्य—कालप्रिया=भवानी के नाथ=स्वामी को अर्थात् शङ्करको 'कालप्रियानाथ' कहा गया है । कुछ विद्वानों के अनुसार उज्जयिनी के महाकाल को ही यहाँ 'कालप्रियानाथ' इस नाम से कहा गया है । अन्य लोगों का मत है कि विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर नामक नगर में स्थापित तत्काल प्रसिद्धि प्राप्त शङ्कर का ही नाम 'कालप्रियानाथ' था । भवभूति पद्मपुर के ही निवासी थे ।

यात्रायाम्--मेले के अवसर पर । प्राचीन काल में भी, आज की भाँति, वर्ष में एक बार प्रसिद्ध देवों के स्थानों पर मेला लगा करता था ।

अत्र भवान्, तत्र भवान्—ये दोनों शब्द अत्यन्त आदरणीय व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होते हैं । सामने प्रस्तुत आदरणीय व्यक्ति के लिये 'अत्र भवान्' तथा सामने अनुपस्थित आदरणीय व्यक्ति के लिये 'तत्र भवान्' शब्द प्रयुक्त होता है ।

श्रीकण्ठपदलाञ्छनः—उत्तररामचरित के प्रसिद्ध टीकाकार वीरराघव तथा घनश्याम के अनुसार 'श्रीकण्ठ' यह कवि का पैतृक नाम था । डॉ॰ बिल्ववलिकर भी यही मानते हैं । परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार यह कवि की उपाधि थी, नाम नहीं (देखिये—भूमिका) ।

पद-वाक्य-प्रमाणज्ञः—सुबन्त तिङन्त पदों का विवेचन करने के कारण व्याकरण को पद (पदशास्त्र), वाक्य का विवेचन करने के कारण मीमांसा को वाक्य (वाक्यशास्त्र)तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों की मीमांसा करने के कारण न्याय को प्रमाण (प्रमाणशास्त्र) कहा जाता है । प्राचीन समय में व्याकरण–मीमांसा तथा न्याय की विद्वत्ता वैदुष्य का निकष मानी जाती थी । अपनी इसी विशेषता को सूचित करने के लिए भवभूति ने अपने लिये इस विशेषण का प्रयोग किया है ।

अन्वयः---यम्, ब्रह्माणम्, इयम्, देवी, वाक्, वश्या, इव, अनुवर्तते । तत्प्रणीतम्, उत्तरम्, रामचरितम्, प्रयोक्ष्यते ॥ २ ॥

---

१. ब्राह्मणम्, २. वश्यैवान्ववर्तत, ३. यत्, ४. प्रयुज्यते ।

जिस (भवभूति नामक) ब्राह्मण का यह भगवती वाणी (अर्थात् वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती) वशवर्तिनी (स्त्री) की अरह अनुसरण करती है। उस (ब्राह्मण कवि भवभूति) के द्वारा रचित उत्तररामचरित (नामक नाटक) अभिनीत किया जायगा ॥ २ ॥

शब्दार्थः—यम्=जिस, ब्रह्माणम्=ब्राह्मण को (ब्राह्मण का) इयम्=यह, देवी=भगवती, वाक्=वाणी, वागधिष्ठात्री सरस्वती, वश्या=वशवर्तिनी (स्त्री), सेविका, इव=तरह, अनुवर्तते=अनुसरण करती है, तत्प्रणीतम्=उस (ब्राह्मण कवि) के द्वारा रचित, उत्तरम्=(वनवास के) बाद में घटित होने वाला, रामचरितम्=राम का चरित, अथवा 'उत्तररामचरितम्' (नाम नाटक), प्रयोक्ष्यते=अभिनीत किया जायगा, प्रदर्शित किया जायगा ॥ २ ॥

टीका—नाटककर्तुर्वैदुष्यातिशयं वर्णयन् सूत्रधारः कथयति—**यं ब्रह्माणमिति**। यम्=पद-वाक्य-प्रमाणज्ञं यं भवभूतिमित्यर्थः, ब्रह्माणम्=ब्राह्मण 'कुलोत्पन्नम्' ('ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' इत्यमरः), अध्ययनादिषट्कर्मनिरतं ब्राह्मणं वेत्यर्थः, इयम्=एषा, प्रसिद्धेत्यर्थः, देवी=भगवती, वाक्=वागधिष्ठात्री सरस्वतीत्यर्थः, वश्या=अधीना, इव=यथा, अनुवर्तते=अनुसरति। यथा प्रजापतिं ब्रह्माणं वागधिष्ठात्री देवता सरस्वती अनुवर्तते तद्वदेव सा भवभूतिमप्यनुसरतीति श्लेषमूल उपमालङ्कारः। तत्प्रणीतम्—तेन=तादृशेनेत्यर्थः प्रणीतम्=रचितम्, उत्तरम्=रावणवधात्परं वनवासान्निवृत्य राज्याभिषेकानन्तरभवमित्यर्थः, रामचरितम्—रामस्य=रामचन्द्रस्य चरितम्=जीवन-वृत्तम् अथवा उत्तरं रामस्य चरितं यस्मिन् तत्, उत्तररामचरितनामनाटकमित्यर्थः, उत्तरं रामचरितमधिकृत्य कृतं नाटकमुत्तररामचरितं वेति, प्रयोक्ष्यते=अभिनेष्यते, अस्माभिरिति शेषः। राज्याभिषेकात्पूर्वकालिकस्य रामचरित्रस्य महावीरचरिते वर्णनं विहितमास्ते कविना। अत्र 'वश्येव' इत्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, तथा च ब्रह्मपदसूचित उप-मालङ्कारो व्यङ्ग्यः। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ २ ॥

टिप्पणी—ब्रह्माणम्—इस शब्द में श्लेष है। 'ब्रह्मा' का अर्थ है ब्राह्मण एवं ब्रह्मा नामक देवता—दोनों ही ('ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' अमरकोष)। 'ब्रह्माणं' शब्द के प्रयोग से यहाँ उपमा अलङ्कार की व्यञ्जना कराई गई है। इस व्यञ्जना का अभिप्राय यह है कि—सरस्वती जिस प्रकार अपने पति ब्रह्मा का अनुवर्तन करती हैं, उसी प्रकार वह भवभूति का भी अनुवर्तन करती हैं।

वश्येव—सरस्वती कविकी वशवर्तिनी थी। कवि ने काव्य लिखने का सङ्कल्प मात्र किया कि वह प्रसङ्गोचित शब्दों तथा अर्थों को ला-ला कर उसके मानस-पटल

[1]एषोऽस्मि कार्य[2]वशादायो[3]ध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः। (समन्तादवलोक्य) भोः भोः, यदा [4]तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोर्महाराजरामस्यायं [5]पट्टाभिषेकसमयो रात्रिन्दिवमसंहृतनान्दीकः[6], तत्किमिदानीं विश्रान्त[7]चारणानि चत्वरस्थानानि ?

पर उपस्थित करती थी। ऐसा अर्थ करने पर 'वश्येव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। कुछ विद्वान् 'वश्येव' में उपमा अलङ्कार स्वीकार करते हैं।

उत्तरं रामचरितम्—राम का उत्तरकालीन अर्थात् राज्याभिषेक के बाद का चरित। किन्तु अभेदोपचार से इसका अर्थ होगा उत्तररामचरित 'नाटक। इस तरह का अभेदोपचार प्रायः व्यवहृत हुआ करता है। शरीर में निवास करने के कारण शरीरी जीवात्मा को शारीरक कहते हैं। परन्तु अभेदोपचार से वेदान्त–सूत्रों पर लिखित शाङ्कर भाष्य को भी शारीरक कहते हैं, क्योंकि उसमें जीवात्मा के विषय का विवेचन किया गया है। यहाँ इसे ध्यान रखना है कि 'जीवनवृत्त' (Biography) को 'चरित' तथा 'शील' 'स्वभाव' (Character) को 'चरित्र' कहते हैं।

इस श्लोक में अनुष्टुप् अलङ्कार है। अलङ्कार का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ २ ॥

शब्दार्थः—कार्यवशात् =चभिनय आदि कार्य के प्रसङ्ग से, आयोध्यकः=अयोध्या का निवासी, तदानीन्तनः=उसी समय का, तात्कालिक, संवृत्तः=हो गया हूँ। पौलस्त्यकुलधूमकेतोः=रावण के कुल के लिये धूमकेतु, पट्टाभिषेकसमयः=राज्याभिषेक का समय, रात्रिन्दिवम्=रात-दिन, असंहृतनान्दीकः—असंहृत=नहीं रुक रहा है, अनवरत चल रहा है, नान्दीकः=माङ्गलिक वाद्यों का बजना जिसमें ऐसा, विश्रान्तचारणानि=चारणों, भाटों से शून्य, चत्वरस्थानानि=चतुष्पथ, चौराहे।

टीका–एष इति। एषः=अहं सूत्रधार इत्यर्थः, कार्यवशात्-कार्यस्य=अभिनयादिरूपस्य प्रयोजनस्येत्यर्थः वशात्=अनुरोधात्, आयोध्यकः—अयोध्यायाम्=रामनगर्यां जातो दृष्टो वा आयोध्यकः=अयोध्यावासी, तदानीन्तनः—तदानीम्=रामकाले इत्यर्थः, संवृत्तः–सञ्जातोऽस्मि। अत्रभवतः=पूज्यस्येत्यर्थः, पौलस्त्यकुलधूमकेतोः—

---

१. एषोऽहं, २. कविवशात्, ३. आयोध्यिकः, ४. तत्र भवतः, ५. अभिषेकसमयः, ६. असंहृतानन्दनान्दीकः, ७, विश्रान्तचरणानि, ०चारचरणानि।

सम्प्रति मैं (अभिनय आदि) कार्य के प्रसङ्ग से उसी समय का (अर्थात् राम के ही समय का) अयोध्यावासी हो गया हूँ। (चारों ओर देखकर) हे हे (राजकर्मचारियों यह तो बतलाओ) जब कि रावण के कुल के लिये (विनाश के हेतु) धूमकेतु, अत्यन्त आदरणीय, महाराज राम का यह, रात-दिन अनवरत माङ्गलिक वाद्यों (की ध्वनि) से युक्त, राज्याभिषेक का समय है, तो क्यों इस समय (माङ्गलिक गीत गाने वाले) चारणों से चौराहे शून्य (दिखलाई पड़ रहे) हैं ?

पौलस्त्यस्य=रावणस्य कुलम्=वंशः तस्य धूमकेतोः=उत्पातग्रहविशेषस्य, रावणवंश-विनाशकस्येति यावत्, पट्टाभिषेकसमयः=पट्टप्रधानः अभिषेकः पट्टाभिषेकः, शाक-पार्थिवादिसमासः, तस्य समयः तद्रूपाचारो वेति, राज्याभिषेककाल इत्यर्थः, रात्रिन्दिवम्=अहर्निशम्, रात्रौ चेति दिवा चेति विग्रहे द्वन्द्वः 'अचतुर' इत्यादिना रात्रेर्मान्तत्वनिपातः, असंहृतनान्दीकः—असंहृता=अविरतं वाद्यमाना नान्दी=मङ्गलपटहो यस्मिन् सः, 'नद्यृतश्चेति कप्, विश्रान्तचारणानि—विश्रान्ताः=अपगताः चारणाः=नटाः, ('नटाश्चारणाश्च कुशीलवाः' इत्यमरः), येभ्यो येषु वा तानि, चत्वर-स्थानानि=चतुष्पथभूमयः (चत्वरं स्यात्पथां श्लेषे स्थण्डिलाजिरयोरपि' इति हेमचन्द्रः)। विश्रान्तचरणानीति पाठे तु विश्रान्तानि=विशेषेण निवृत्तानि चरणानि=पादसञ्चारा येषु तथाभूतानीति समासः।

टिप्पणी—**कार्यवशात्**—'कार्यवशात्' का अर्थ है—'नाटकप्रयोग के अनुरोध से' 'अभिनयरूपकार्य के अनुरोध से,' 'किसी कार्य के प्रयोजनवश' आदि। **आयोध्यकः**=अयोध्यासम्बन्धी। कुछ दिनों से अयोध्या में आया हुआ। अयोध्या + शैषिको वुञ्, वुञः स्थाने अकादेशः। तदानीन्तनः—यहाँ 'तत्' शब्द के द्वारा पीछे के श्लोक के 'रामचरितम्' के एकदेश राम शब्द का निर्देश किया गया है। अतः 'तदानीन्तनः' का अर्थ है रामकालीन।

संवृत्तः—सम् + √वृत् + क्त कर्तरि। अभिषेकः—अभि + √सिच् + घञ् भावे।

धूमकेतोः—अग्नि अथवा धूमकेतु नामक उत्पातग्रह। धूमकेतु को पुच्छलतारा भी कहते हैं। पुच्छलतारा उदित होकर जिस देश या प्रदेश में दिखलाई पड़ता है, उसका विनाश या भीषण आपत्ति में पड़ना सुनिश्चित होता है। रामजी का उदित होना अर्थात् जन्म लेना ही रावण के कुल के लिये विनाश का सूचक था। कतिपय

(प्रविश्य)

नटः—भाव ! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना[१] ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत् ।

सूत्रधारः--आ, अस्त्येतन्निमित्तम् ।

टीकाकारों ने धूमकेतु का अर्थ अग्नि किया है । यह भी अर्थ यहाँ लग सकता है। पर यह कवि का अभिप्रेत अर्थ नहीं है । कवि को यदि धूमकेतु का अर्थ अग्नि करना होता तो वाक्य इस प्रकार होता--'पौलस्त्यवंशधूमकेतोः ।' आग वंश=बांस में लगती है कुल में नहीं ।

पट्टाभिषेकसमयः--यहाँ पट्ट का अर्थ है 'सुवर्ण का मुकुट', जो राज्याभिषेक के समय धारण किया जाता है । समय का अर्थ मुहूर्त तथा आचार--दोनों ही है ।

असंहृतनान्दीकः--इस में नान्दी पद का अर्थ है--शहनाई आदि माङ्गलिक वाद्य जो माङ्गलिक कार्यों के अवसर पर लगातार बजाए जाते हैं ।

चत्वरस्थानानि--चत्वर का अर्थ आँगन तथा चौराहा दोनों ही होता है। किन्तु आगे के प्रसङ्ग को ध्यान में रखकर इसका अर्थ चतुष्पथ=चौराहा ही करना अधिक समीचीन है । आयोध्यक ने आगे कहा है--'एहि, राजद्वारमुपतिष्ठावः ।'

शब्दार्थः—भाव=मान्य, महानुभाव, विद्वान्, प्रेषिताः=भेज दिये गये, लङ्कासमरसुहृदः—लङ्का-युद्ध के मित्र, सहायक, महात्मानः=महात्मा, धैर्यशाली, प्लवङ्गमराक्षसाः=कूद-कूद कर चलनेवाले कपि अर्थात् बन्दर और राक्षस, सभाजनोपस्थायिनः=अभिनन्दन करने के लिए समागत, नानादिगन्तपावनाः=अनेक दिशाओं को पवित्र करने वाले, ब्रह्मर्षयः=ब्राह्मण कुल में उत्पन्न वसिष्ठ आदि ऋषि, राजर्षयः=क्षत्रियकुल में उत्पन्न जनक आदि ऋषि, यत्समाराधनाय=जिनके स्वागतके लिये, एतावतः=इतने ॥

टीका--प्रविश्येति । प्रविश्य=नेपथ्यतो रङ्गशालायां प्रवेशं कृत्वा, नटः=पारिपर्श्विकः, सूत्रधारस्य सहकारी कश्चिन्नटः । भाव=हे विद्वन् सूत्रधार, ('भावो विद्वान्' इत्यमरः), प्रेषिताः=प्रस्थापिताः, लङ्कासमरसुहृदः—लङ्कायाम्=रावणनगर्य्याम् वृत्तो यः समरः=रणः तत्र ये सुहृदः=मित्राणि, उपकारिण इत्यर्थः, महात्मानः—महान् आत्मा=धैर्यम् प्रयत्नो या येषां ते महात्मानः=उदाराशया भूरिविक्रमाश्च

---

१. 'न्तागता' इति पा० ।

(प्रवेश करके)

नट——महानुभाव, जिनके स्वागत के लिये इतने दिनों तक (गीत-वाद्य आदि) आमोद-प्रमोद (चल रहा था, वे) लङ्का युद्ध के सहायक, धैर्यशाली (सुग्रीव आदि) बन्दर तथा (विभीषण आदि) राक्षस, एवं (राम का) अभिनन्दन करने के लिए समागत, अनेक दिशाओं को पवित्र करने वाले (वशिष्ठ आदि) ब्रह्मर्षि और (जनक आदि) राजर्षि महाराज (राम) के द्वारा अपने-अपने घरों के लिए भेज दिये गये हैं (अतः शहनाई आदि का बजना बन्द हो गया है)।

सूत्रधार—अच्छा, यह कारण है ?

('आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः' इत्यमरः) प्लवङ्गमराक्षसाश्च—प्लवङ्गमाश्च राक्षसाश्चेति प्लवङ्गमराक्षसाः=सुग्रीवादिकपयो विभीषणादयो राक्षसाश्चेत्यर्थः, सभाजनोपस्थायिनः—सभाजनाय=रामस्य अभिनन्दनं कर्तुम् उपतिष्ठन्ते=सेवन्ते इति उपस्थायिनः=समागता इत्यर्थः, नानादिगन्तपावनाः—नाना=भिन्नाः या दिशः=काष्ठाः तासाम् अन्ताः तान् पावयन्ति=पवित्रान् कुर्वन्तीति तथा, ब्रह्मर्षयः=ब्रह्मकुलोत्पन्नाः गौतमादय ऋषयः, राजर्षयः=क्षत्रियकुलोद्गता जनकादय ऋषय इत्यर्थः, यत्समाराधनाय—येषाम्=मित्रादीनामतिथीनाञ्च समाराधनम्=सत्कारस्तस्मै, एतावतः=इयतः, दिवसान्=दिनानि, व्याप्य उत्सव आसीदिति शेषः। येषां समाधाराधानाय गीतवाद्यादीनां प्रचलनमासीत्तेऽतिथयो मित्राणि च भगवता रामेण विसृष्टा अत एव चत्वरस्थानानि वाद्यादिशून्यान्यवलोक्यन्त इति भावः॥

टिप्पणी——**भाव**——भावयति=चिन्तयति पदार्थान् √भू+अच्। प्रेषिताः—प्र+√इष्+णिच्+क्त कर्मणि+ततो विभक्तिकार्यम्।

प्लवङ्गमराक्षसाः——लङ्का-विजय के पश्चात् बन्दरों तथा राक्षसों की सेना रामचन्द्र के ही साथ अयोध्या चली आई थी। बन्दरों के सेनानायक थे सुग्रीव और राक्षसों के अधिपति थे राक्षसराज विभीषण। ये सब राम के राज्याभिषेक को देखने के लिए अयोध्या में रुके थे। राज्यारोहण का उत्सव देख लेने के अनन्तर ये सब अपने-अपने घरों को चले गये। प्रभु राम ने इन्हें भाव-भीनी विदाई दी।

ब्रह्मर्षयः—ब्रह्मकल्पाः ऋषयः (शाकपार्थिवादिमासः)। वे ऋषि ब्रह्मर्षि कहे जाते हैं, जो जन्म से ब्राह्मण होते हैं।

राजर्षयः—राजानः ऋषयः इव राजर्षयः। वे ऋषि राजर्षि कहे जाते हैं, जो जन्म से राजकुल अथवा क्षत्रिय जाति से सम्बद्ध होते हैं॥

नटः—अन्यच्च—

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य [1]मातरः ।
अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ॥ ३ ॥

सूत्रधारः—वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि । कः पुनर्जामाता ?

नटः—कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत् ।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोम[2]पादाय तां[3] ददौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—वसिष्ठाधिष्ठिताः, देव्यः, रामस्य, मातरः, अरुन्धतीम्, पुरस्कृत्य, यज्ञे, जामातुः, आश्रमम्, गताः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—वसिष्ठाधिष्ठिताः=वसिष्ठ के द्वारा संरक्षित, देव्यः=महारानियाँ, रामस्य=राम की, मातरः=माताएँ, अरुन्धतीम्=अरुन्धती को, पुरस्कृत्य=आगे-आगे करके, यज्ञे=यज्ञ में, जामातुः=दामाद (ऋष्यशृङ्ग) के, आश्रमम्=आश्रम को, गताः=चली गई हैं ॥ ३ ॥

टीका—अन्यदप्युत्सवसमापनकारणं निर्दिशति नटः—**वसिष्ठेत्यादिः** । वसिष्ठाधिष्ठिताः—वसिष्ठेन=कुलगुरुणेत्यर्थः अधिष्ठिताः=संरक्षिताः, वसिष्ठेन नीयमाना इत्यर्थः, देव्यः=दशरथस्य महिष्यः, रामस्य=रामचन्द्रस्य, मातरः=कौशल्यादयो जनन्य इत्यर्थः, 'रामस्य मातरः' इति कथनेन सर्वासां रामे स्नेहाधिक्यं निर्दिष्टमिति, अरुन्धतीम्=वसिष्ठपत्नीम्, पुरस्कृत्य=अग्रे कृत्वा, यज्ञे=यज्ञनिमित्तमित्यर्थः, 'निमित्तात्कर्मयोगे' इति सप्तमी, जामातुः=कन्यापतेः, मुनेः ऋष्यशृङ्गस्येत्यर्थः, आश्रमम्=तपःस्थलम्, गताः=याताः । मित्राणामतिथीनां गुरुजनानाञ्चानुपस्थितौ कथं स्यादुत्सवपरम्परा इत्यस्ति श्लोकाभिप्रायः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ॥

टिप्पणी—**वसिष्ठाधिष्ठिताः**—वसिष्ठेन अधिष्ठिताः । अधि + √स्था + क्त कर्मणि, 'स्थाघ्वोरिच्च' (पा० १।२।१७) इत्यनेन आकारस्य स्थाने इकारः । वसिष्ठ राम के कुलगुरु थे । अतः महारानियों का समूह गुरु-पत्नी अरुन्धती को आदरपूर्वक आगे करके उनकी संरक्षता में ऋष्यशृङ्ग के आश्रम को गया । पुरस्कृत्य—पुरस् + √कृ + क्त्वो ल्यप् । **यज्ञे**—√यज् + यङ् ततःश्चुत्वे सप्तम्यैकवचने रूपम् ।

जामातुः—मुनि ऋष्यशृङ्ग कैसे दशरथ के दामाद हुए यह आगे बतलाया जा रहा है । इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है । छन्द का लक्षण—

---

१. पाठा०—राघवमातरः । २. लोमपादाय । ३. यां ।

नट--और भी (कारण है)--

वसिष्ठ के द्वारा संरक्षित (होकर) महारानियाँ राम की (कौसल्या आदि) माताएँ अरुन्धती को आगे करके यज्ञ में (सम्मिलित होने के लिये) दामाद (ऋष्यशृङ्ग) के आश्रम को गई हैं। (अतः राजधानी में उत्सव बन्द कर दिया गया है) ॥ ३ ॥

सूत्रधार—(अरे भाई मैं) परदेशी हूँ, अतः पूछ रहा हूँ। अच्छा (यह) दामादकौन है ?

नट—राजा दशरथ ने 'शान्ता' नामक पुत्री को पैदा किया था, जिसे दत्तक पुत्री के रूप में (उन्होंने) राजा रोमपाद को दे दिया था ॥ ४ ॥

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—वैदेशिकः=विदेशी, परदेशी, दूसरे देश का निवासी, अस्मि=हूँ, इति=अतः, इस कारण से, पृच्छामि=पूछ रहा हूँ। जामाता=दामाद, जमाई।

टीका—स्वानभिज्ञतायां हेतुं प्रदर्शयति सूत्रधारः—**वैदेशिक इति**। वैदेशिकः= विदेशे=अन्यस्मिन् प्रदेशे भवः वैदेशिकः=विदेशवासी, अस्मि=वर्ते, इति=अतः, पृच्छामि=जिज्ञासां करोमि। जामाता=पुत्रीपतिः। दशरथस्य सुतैवाप्रसिद्धा तर्हि कोऽयं तस्य जमाता जात इति प्रश्नाशयः।

टिप्पणी—**वैदेशिकः**-विदेशे भवः, विदेश+ठञ्। कः पुनर्जामाता–दशरथ की कन्या ही अप्रसिद्ध अथवा अज्ञात है। अतः कोई उनका दामाद कैसे हो सकता है? यही सूत्रधार के पूछने का अभिप्राय है।

अन्वयः—राजा, दशरथः, शान्ताम्, नाम, कन्याम्, व्यजीजनत्; याम्, अपत्यकृतिकाम्, राज्ञे, रोमपादाय, ददौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—राजा=राजा, दशरथः=दशरथने, शान्ताम्=शान्ता, नाम=नामक, कन्याम्=पुत्री को, व्यजीजनत्=पैदा किया था; याम्=जिसे, अपत्यकृतिकाम्=कृत्रिम पुत्री के रूप में, गोद ली गई पुत्री के रूप में, दत्तक पुत्री के रूप में, राज्ञे=राजा, रोमपादाय=रोमपाद को, ददौ=दे दिया था ॥ ४ ॥

टीका—जामातरं वर्णितुमुपक्रमते—**कन्यामिति**। राजा=नृपः, दशरथः= रामपिता, शान्तां नाम=शान्तानाम्नीम्, कन्याम्=पुत्रीम्, व्यजीजनत्=उत्पादयामास; याम्=यां कन्यामित्यर्थः, अपत्यकृतिकाम्–कृता=विहिता एव कृतिका=कृत्रिमा अपत्यं च सा कृतिका ताम् अपत्यकृतिकाम्=कृत्रिमकन्यारूपेण, स्वकीयां कन्यामिति स्वीकृत्येति भावः, राज्ञे=नृपाय, रोमपादाय=लोमपादनाम्ने नृपतये, ददौ=दत्तवान्। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४ ॥

नटः—अन्यच्च—

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य [1]मातरः।
अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ॥ ३ ॥

सूत्रधारः—वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता ?

नटः—कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोम[2]पादाय तां[3] ददौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—वसिष्ठाधिष्ठिताः, देव्यः, रामस्य, मातरः, अरुन्धतीम्, पुरस्कृत्य, यज्ञे, जामातुः, आश्रमम्, गताः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—वसिष्ठाधिष्ठिताः=वसिष्ठ के द्वारा संरक्षित, देव्यः=महारानियाँ, रामस्य=राम की, मातरः=माताएँ, अरुन्धतीम्=अरुन्धती को, पुरस्कृत्य=आगे-आगे करके, यज्ञे=यज्ञ में, जामातुः=दामाद (ऋष्यशृङ्ग) के, आश्रमम्=आश्रम को, गताः=चली गई हैं ॥ ३ ॥

टीका—अन्यदप्युत्सवसमापनकारणं निर्दिशति नटः—**वसिष्ठेत्यादिः**। वसिष्ठाधिष्ठिताः—वसिष्ठेन=कुलगुरुणेत्यर्थः अधिष्ठिताः=संरक्षिताः, वसिष्ठेन नीयमाना इत्यर्थः, देव्यः=दशरथस्य महिष्यः, रामस्य=रामचन्द्रस्य, मातरः=कौशल्यादयो जनन्य इत्यर्थः, 'रामस्य मातरः' इति कथनेन सर्वासां रामे स्नेहाधिक्यं निर्दिष्टमिति, अरुन्धतीम्=वसिष्ठपत्नीम्, पुरस्कृत्य=अग्रे कृत्वा, यज्ञे=यज्ञनिमित्तमित्यर्थः, 'निमित्तात्कर्मयोगे' इति सप्तमी, जामातुः=कन्यापतेः, मुनेः ऋष्यशृङ्गस्येत्यर्थः, आश्रमम्=तपःस्थलम्, गताः=याताः। मित्राणामतिथीनां गुरुजनानाञ्चानुपस्थितौ कथं स्यादुत्सवपरम्परा इत्यस्ति श्लोकाभिप्रायः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ॥

टिप्पणी—**वसिष्ठाधिष्ठिताः**—वसिष्ठेन अधिष्ठिताः। अधि + √स्था + क्त कर्मणि, 'स्थाघ्वोरिच्च' (पा० १।२।१७) इत्यनेन आकारस्य स्थाने इकारः। वसिष्ठ राम के कुलगुरु थे। अतः महारानियों का समूह गुरु-पत्नी अरुन्धती को आदरपूर्वक आगे करके उनकी संरक्षता में ऋष्यशृङ्ग के आश्रम को गया। पुरस्कृत्य—पुरस् + √कृ + क्त्वो ल्यप्। यज्ञे—√यज् + यङ् ततःश्चुत्वे सप्तम्यैकवचने रूपम्।

जामातुः—मुनि ऋष्यशृङ्ग कैसे दशरथ के दामाद हुए यह आगे बतलाया जा रहा है। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। छन्द का लक्षण—

---

१. पाठा०—राघवमातरः। २. लोमपादाय। ३. यां।

नट--और भी (कारण है)--

वसिष्ठ के द्वारा संरक्षित (होकर) महारानियाँ राम की (कौसल्या आदि) माताएँ अरुन्धती को आगे करके यज्ञ में (सम्मिलित होने के लिये) दामाद (ऋष्य-शृङ्ग) के आश्रम को गई हैं। (अतः राजधानी में उत्सव बन्द कर दिया गया है) ॥ ३ ॥

सूत्रधार—(अरे भाई मैं) परदेशी हूँ, अतः पूछ रहा हूँ। अच्छा (यह) दामादकौन है ?

नट—राजा दशरथ ने 'शान्ता' नामक पुत्री को पैदा किया था, जिसे दत्तक पुत्री के रूप में (उन्होंने) राजा रोमपाद को दे दिया था ॥ ४ ॥

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—वैदेशिकः=विदेशी, परदेशी, दूसरे देश का निवासी, अस्मि=हूँ, इति=अतः, इस कारण से, पृच्छामि=पूछ रहा हूँ। जामाता=दामाद, जमाई।

टीका—स्वानभिज्ञतायां हेतुं प्रदर्शयति सूत्रधारः—**वैदेशिक इति। वैदेशिकः**= विदेशे=अन्यस्मिन् प्रदेशे भवः वैदेशिकः=विदेशवासी, अस्मि=वर्ते, इति=अतः, पृच्छामि=जिज्ञासां करोमि। जामाता=पुत्रीपतिः। दशरथस्य सुतैवाप्रसिद्धा तर्हि कोऽयं तस्य जमाता जात इति प्रश्नाशयः।

टिप्पणी—वैदेशिकः-विदेशे भवः, विदेश+ठञ्। कः पुनर्जामाता—दशरथ की कन्या ही अप्रसिद्ध अथवा अज्ञात है। अतः कोई उनका दामाद कैसे हो सकता है ? यही सूत्रधार के पूछने का अभिप्राय है।

अन्वयः—राजा, दशरथः, शान्ताम्, नाम, कन्याम्, व्यजीजनत्; याम्, अपत्य-कृतिकाम्, राज्ञे, रोमपादाय, ददौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—राजा=राजा, दशरथः=दशरथने, शान्ताम्=शान्ता, नाम=नामक, कन्याम्=पुत्री को, व्यजीजनत्=पैदा किया था; याम्=जिसे, अपत्यकृतिकाम्=कृत्रिम पुत्री के रूप में, गोद ली गई पुत्री के रूप में, दत्तक पुत्री के रूप में, राज्ञे=राजा, रोमपादाय=रोमपाद को, ददौ=दे दिया था ॥ ४ ॥

टीका—जामातरं वर्णितुमुपक्रमते—**कन्यामिति**। राजा=नृपः, दशरथः= रामपिता, शान्तां नाम=शान्तानाम्नीम्, कन्याम्=पुत्रीम्, व्यजीजनत्=उत्पादयामास; याम्=यां कन्यामित्यर्थः, अपत्यकृतिकाम्—कृता=विहिता एव कृतिका=कृत्रिमा अपत्यं च सा कृतिका ताम् अपत्यकृतिकाम्=कृत्रिमकन्यारूपेण, स्वकीयां कन्यामिति स्वीकृत्येति भावः, राज्ञे=नृपाय, रोमपादाय=लोमपादनाम्ने नृपतये, ददौ=दत्तवान्। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४ ॥

विभाण्डकसुतस्तामृष्यश्रृङ्ग उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि[1]जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

सूत्रधारः-तत्किमनेन? एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः।

नटः-तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भावः।

टिप्पणी—**अपत्यकृतिकाम्**-कृता एव कृतिका, कृत + क स्वार्थे + टाप्। अपत्यं च तत् कृतिका च कर्मधारयसमासः। **रोमपादाय ददौ**—पुराणों में रोमपाद को लोमपाद भी कहा गया है। यह अङ्ग देश के प्रतापी राजा थे। रामायण के अनुसार शान्ता रोमपाद की ही बेटी थी। (दे० बालकाण्ड ११।२-५)। किन्तु विष्णुपुराण के अनुसार शान्ता महाराज दशरथ की पुत्री थी। दशरथ ने शान्ता को अपने निःसन्तान मित्र रोमपाद को गोद लेने के लिए दे दिया था। (वि० ४।१८।१६-१८)।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। लक्षण के लिये देखिये २, ३ श्लोकों की टिप्पणी ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—विभाण्डकसुतः=विभाण्डक (ऋषि) के पुत्र, उपयेमे=विवाह किया। सत्रम्=यज्ञ, कठोरगर्भाम्=पूर्णगर्भवाली, गुरुजनः=श्रेष्ठ लोग, बड़े बूढ़े, (कौशल्या आदि) सास-वर्ग ॥

टीका—विभाण्डकेत्यादिः। विभाण्डकसुतः-विभाण्डकस्य=एतन्नामकस्यैकस्य मुनेः सुतः=पुत्रः, ऋष्यश्रृङ्गः-ऋष्यस्य=ऋष्यनाम्नो मृगस्य श्रृङ्गम्=विषाणमिव श्रृङ्गं यस्य तादृशः, ताम्=शान्तामित्यर्थः, उपयेमे=उदवहत्। तेन=ऋष्यश्रृङ्गेण, द्वादशवार्षिकम्-द्वौ च दश च द्वादश द्वादशवर्षाणि व्याप्य भविष्यतीति द्वादशवार्षिकम्, सत्रम्=यज्ञः, आरब्धम्=उपक्रान्तः। तदनुरोधात्-तस्य=ऋष्यश्रृङ्गस्य अनुरोधात्=आग्रवशात्, कठोरगर्भाम्-कठोरः=पूर्णः गर्भः यस्याः सा तादृशीम्, जानकीम्=स्ववधूं सीताम्, विमुच्य=परित्यज्य, गुरुजनः=पूज्यजनः कौसल्यादिवृद्धवर्ग इत्यर्थः, तत्र=ऋष्यश्रृङ्गाश्रमे, यातः=गतः ॥

टिप्पणी—**ऋष्यश्रृङ्गः**—'ऋष्य' एक विशेष प्रकार का मृग होता है। ऋष्य मृग की सींग की तरह एक सींग उस मुनि के सिर पर थी, अतः उन्हे ऋष्यश्रृङ्ग कहा जाता था। एक बार अंग देश में भीषण अकाल पड़ा। वहाँ के राजा लोमपाद ने वेश्याओं के द्वारा बहकवा कर उस मुनि को अपने देश में बुलवाया। उनकी उपस्थिति के कारण अंग देश में प्रभूत वृष्टि हुई। फलस्वरूप प्रसन्न हुए राजा लोमपाद ने अपनी पुत्री शान्ता का ऋष्यश्रृङ्ग के साथ विवाह कर दिया। इन्हीं ऋष्यश्रृङ्ग ने दशरथ के लिये पुत्रकाम यज्ञ करवाया था।

---

१. 'वधूम्' इत्यधिकः पाठः।

विभाण्डक (ऋषि) के पुत्र ऋष्यशृङ्ग ने उस (शान्ता) से विवाह किया। उन (ऋष्यशृङ्ग) के द्वारा बारह वर्षों में समाप्त होने वाला यज्ञ (सम्प्रति) आरम्भ किया गया है। उन (ऋष्यशृङ्ग) के आग्रह से पूर्ण-गर्भवाली जानकी को (भी) छोड़कर (कौसल्या आदि) बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ वहाँ (ऋष्यशृङ्ग के आश्रम को) चली गई हैं।

सूत्रधार—तो इससे क्या (हम लोगों का मतलब) ? आओ, अपनी जाति (नट-जाति) के आचार-व्यवहार के अनुसार राजद्वार पर ही (हम दोनों) उपस्थित हों।

नटः—अत एव (अर्थात् राज-द्वार पर चलना है, इसलिये) विद्वान् आप राजा के समीप पहुँचने पर (करने योग्य) अत्यन्त विशुद्ध स्तुति (पदावली) को (पहले से ही) विचार लें।

द्वादशवार्षिकम्—बारह वर्षों तक चलनेवाला। द्वादशवर्ष + ठञ् (इक्)। 'अनुशतकादीनाञ्च (पा० ७–३–२०) इत्यनेनोभयपदवृद्धिः।

गठोरगर्भाम्—जानकी गर्भवती थीं। उनके प्रसव का समय अब बहुत दूर न था। उनके पेट का बच्चा पूरा हो चुका था।

शब्दार्थः—स्वजातिसमयेन=अपनी जाति के आचार के अनुसार, अपनी जाति के स्वभाव के अनुसार, उपतिष्ठावः=(हम दोनों) उपस्थित हों।

टीका—सूत्रधार इति। अनेन=उत्सवविरामहेतुचिन्तनेन, किम्=किं साध्यते, किमपि नेति भावः। स्वजातिसमयेन–स्वजात्याः=चारणजात्या इत्यर्थः समयेन=आचारेण, व्यवहारेणेति यावत्, ('समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः), राजद्वारम्–राज्ञः=नृपतेः, रामस्येत्यर्थः, द्वारम्=प्रतीहारम्, उपतिष्ठावः=उपसृत्य तिष्ठावः। वयं वैतालिकाः राजद्वारे स्थित्वा राज्ञः स्तुतिसम्पादनमस्माकमाचारः। अत एहि, आचारं पालयामः, अलमुत्सवालोचनरूपयाऽनधिकारचेष्टयेति।

टिप्पणी – स्वजातिसमयेन—अपनी नट जाति के आचार के अनुसार। नट, भाँट तथा चारण जाति के व्यक्ति राजाओं, महाराजाओं एवं सम्पन्नतम व्यक्तियों के द्वार पर खड़े होकर प्रशंसात्मक गीत गाया करते थे। यही उनकी जाति की जीविका का आधार था। फलस्वरूप नट-जाति के लोगों का यही आचार था कि वे जहाँ-तहाँ या किसी एक स्थान पर स्तुति पाठ करते हुए अपना जीवन-यापन करें।

उपतिष्ठावः—उप + √स्था × लटि उत्तम पुरुषे द्विवचने रूपम्।

शब्दार्थः—निरूपयतु=विचार लें, सोच लें, सुपरिशुद्धाम्=निर्दोष, उपस्थान-स्तोत्रपद्धतिम्=समीप पहुँचने पर (करने योग्य) स्तुति-परिपाटी को, स्तुति-पदावली को, भावः=श्रीमान् आप।

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृङ्ग उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि[1]जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

सूत्रधारः-तत्किमनेन? एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः।

नटः-तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भावः।

टिप्पणी—**अपत्यकृतिकाम्**-कृता एव कृतिका, कृत+क स्वार्थे+टाप्। अपत्यं च तत् कृतिका च कर्मधारयसमासः। **रोमपादाय ददौ**—पुराणों में रोमपाद को लोमपाद भी कहा गया है। यह अङ्ग देश के प्रतापी राजा थे। रामायण के अनुसार शान्ता रोमपाद की ही बेटी थी। (दे० बालकाण्ड ११।२-५)। किन्तु विष्णुपुराण के अनुसार शान्ता महाराज दशरथ की पुत्री थी। दशरथ ने शान्ता को अपने निःसन्तान मित्र रोमपाद को गोद लेने के लिए दे दिया था। (वि० ४।१८।१६-१८)।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। लक्षण के लिये देखिये २, ३ श्लोकों की टिप्पणी॥ ४॥

शब्दार्थः—विभाण्डकसुतः=विभाण्डक (ऋषि) के पुत्र, उपयेमे=विवाह किया। सत्रम्=यज्ञ, कठोरगर्भाम्=पूर्णगर्भवाली, गुरुजनः=श्रेष्ठ लोग, बड़े बूढ़े, (कौशल्या आदि) सास-वर्ग॥

टीका—विभाण्डकेत्यादिः। विभाण्डकसुतः-विभाण्डकस्य=एतन्नामकस्यैकस्य मुनेः सुतः=पुत्रः, ऋष्यशृङ्गः-ऋष्यस्य=ऋष्यनाम्नो मृगस्य शृङ्गम्=विषाणमिव शृङ्गं यस्य तादृशः, ताम्=शान्तामित्यर्थः, उपयेमे=उदवहत्। तेन=ऋष्यशृङ्गेण, द्वादशवार्षिकम्-द्वौ च दश च द्वादश द्वादशवर्षाणि व्याप्य भविष्यतीति द्वादशवार्षिकम्, सत्रम्=यज्ञः, आरब्धम्=उपक्रान्तः। तदनुरोधात्-तस्य=ऋष्यशृङ्गस्य अनुरोधात्=आग्रवशात्, कठोरगर्भाम्-कठोरः=पूर्णः गर्भः यस्याः सा तादृशीम्, जानकीम्=स्ववधूं सीताम्, विमुच्य=परित्यज्य, गुरुजनः=पूज्यजनः कौसल्यादिवृद्धवर्गं इत्यर्थः, तत्र=ऋष्यशृङ्गाश्रमे, यातः=गतः॥

टिप्पणी—**ऋष्यशृङ्गः**—'ऋष्य' एक विशेष प्रकार का मृग होता है। ऋष्य मृग की सींग की तरह एक सींग उस मुनि के सिर पर थी, अतः उन्हे ऋष्यशृङ्ग कहा जाता था। एक बार अंग देश में भीषण अकाल पड़ा। वहाँ के राजा लोमपाद ने वेश्याओं के द्वारा बहकवा कर उस मुनि को अपने देश में बुलवाया। उनकी उपस्थिति के कारण अंग देश में प्रभूत वृष्टि हुई। फलस्वरूप प्रसन्न हुए राजा लोमपाद ने अपनी पुत्री शान्ता का ऋष्यशृङ्ग के साथ विवाह कर दिया। इन्हीं ऋष्यशृङ्ग ने दशरथ के लिये पुत्रकाम यज्ञ करवाया था।

---

१. 'वधूम्' इत्यधिकः पाठः।

विभाण्डक (ऋषि) के पुत्र ऋष्यशृङ्ग ने उस (शान्ता) से विवाह किया। उन (ऋष्यशृङ्ग) के द्वारा बारह वर्षों में समाप्त होने वाला यज्ञ (सम्प्रति) आरम्भ किया गया है। उन (ऋष्यशृङ्ग) के आग्रह से पूर्ण-गर्भवाली जानकी को (भी) छोड़कर (कौसल्या आदि) बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ वहाँ (ऋष्यशृङ्ग के आश्रम को) चली गई हैं।

सूत्रधार—तो इससे क्या (हम लोगों का मतलब) ? आओ, अपनी जाति (नट-जाति) के आचार-व्यवहार के अनुसार राजद्वार पर ही (हम दोनों) उपस्थित हों।

नटः—अत एव (अर्थात् राज-द्वार पर चलना है, इसलिये) विद्वान् आप राजा के समीप पहुँचने पर (करने योग्य) अत्यन्त विशुद्ध स्तुति (पदावली) को (पहले से ही) विचार लें।

द्वादशवार्षिकम्—बारह वर्षों तक चलनेवाला। द्वादशवर्ष+ठञ् (इक्)। 'अनुशतकादीनाञ्च (पा० ७–३–२०) इत्यनेनोभयपदवृद्धिः।

गठोरगर्भाम्—जानकी गर्भवती थीं। उनके प्रसव का समय अब बहुत दूर न था। उनके पेट का बच्चा पूरा हो चुका था।

शब्दार्थः—स्वजातिसमयेन=अपनी जाति के आचार के अनुसार, अपनी जाति के स्वभाव के अनुसार, उपतिष्ठावः=(हम दोनों) उपस्थित हों।

टीका—सूत्रधार इति। अनेन=उत्सवविरामहेतुचिन्तनेन, किम्=किं साध्यते, किमपि नेति भावः। स्वजातिसमयेन–स्वजात्याः=चारणजात्या इत्यर्थः समयेन= आचारेण, व्यवहारेणेति यावत्, ('समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः), राजद्वारम्–राज्ञः=नृपतेः, रामस्येत्यर्थः, द्वारम्=प्रतीहारम्, उपतिष्ठावः=उपसृत्य तिष्ठावः। वयं वैतालिकाः राजद्वारे स्थित्वा राज्ञः स्तुतिसम्पादनमस्माकमाचारः। अत एहि, आचारं पालयामः, अलमुत्सवालोचनरूपयाऽनधिकारचेष्टयेति।

टिप्पणी – **स्वजातिसमयेन**—अपनी नट जाति के आचार के अनुसार। नट, भाँट तथा चारण जाति के व्यक्ति राजाओं, महाराजाओं एवं सम्पन्नतम व्यक्तियों के द्वार पर खड़े होकर प्रशंसात्मक गीत गाया करते थे। यही उनकी जाति की जीविका का आधार था। फलस्वरूप नट-जाति के लोगों का यही आचार था कि वे जहाँ-तहाँ या किसी एक स्थान पर स्तुति पाठ करते हुए अपना जीवन-यापन करें।

उपतिष्ठावः—उप+√स्था×लटि उत्तम पुरुषे द्विवचने रूपम्।

शब्दार्थः—निरूपयतु=विचार लें, सोच लें, सुपरिशुद्धाम्=निर्दोष, उपस्थान-स्तोत्रपद्धितम्=समीप पहुँचने पर (करने योग्य) स्तुति-परिपाटी को, स्तुति-पदावली को, भावः=श्रीमान् आप।

सूत्रधारः—मारिष !

सर्वथा व्यवहर्तव्यं[1] कुतो ह्यवचनीयता ।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥ ५ ॥

टीका--नट इति । तेन कारणेन, राजद्वारे स्तुतिः पठनीया इति हेतोरित्यर्थः, निरूपयतु=चिन्तयतु, सुपरिशुद्धाम्=सर्वथा दोषशून्याम्, उपस्थानस्तोत्रपद्धतिम्–उपस्थानस्य=सेवायाः, उपस्थानार्था=राजसमीपगमनार्था वा या स्तोत्रपद्धतिः–स्तोत्रस्य स्तुतेः पद्धतिः=पटिपाटी, शब्दावलीति यावत्, भावः=विद्वान्, भवानिति भावः ।

टिप्पणी--सुपरिशुद्धाम्=पूर्ण निर्दोष । जब बड़े व्यक्तियों की स्तुति की जाती हैं, तब यह ध्यान रक्खा जाता है कि स्तुति शब्दावली से कहीं अनुचित या अयोग्य अर्थ न ध्वनित हो जाय । अन्यथा उस बड़े व्यक्ति की कृपा के स्थान पर स्तुति-कर्ता को उसके कोप का ही भाजन बनना पड़ता है ।

भावः—अत्यन्त आदरणीय आप । 'भाव', 'विद्वान्' तथा 'अत्यन्त माननीय' आदि शब्द समानार्थक हैं ।

अन्वयः—सर्वथा, व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता, कुतः, हि, जनः, यथा, स्त्रीणाम्, साधुत्वे, दुर्जनः, भवति, तथा, वाचाम्, (साधुत्वे, अपि) ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—सर्वथा=सब तरह से, अर्थात् बिना किसी चिन्ता के, व्यवहर्तव्यम्=व्यवहार करना चाहिए; अवचनीयता=निर्दोषता, दोषशून्यता, कुतः=कहाँ से, कैसे (हो सकती है); हि=क्योंकि, जनः=लोग, यथा=जैसे, जिस प्रकार, स्त्रीणाम्=स्त्रियों की, साधुत्वे=साधुता, सच्चाई, पवित्रता, के विषय में, दुर्जनः=दोषदर्शी, (भवति=होते हैं), तथा=वैसे ही, उसी प्रकार से, वाचाम्=वाणी–समूह (काव्य आदि) के विषय में, (अपि=भी, दुर्जनः=छिद्रान्वेषी, दोषदर्शी, भवति=होते हैं) ॥५॥

टीका—सूत्रधार इति । मारिष=आर्य, ('आर्यस्तु मारिषः' इत्यमरः), सर्वथा =सर्वप्रकारेण, भयं परित्यज्येत्यर्थः, व्यवहर्तव्यम्=व्यवहारो विधेयः, अवचनीयता=निर्दोषता वचनीयम्=दोषस्तस्य भावो वचनीयता न वचनीयता अवचनीयता, कुतः=कस्मात्, सम्भवतीति शेषः, हि=यतः, जनः=लोकः, यथा=येन प्रकारेण, स्त्रीणाम्=महिलानाम् साधुत्वे=सत्यतायाम्, पातिव्रत्ये, दुर्जनः=दोषदर्शी, (भवति=अस्ति), तथा=तेनैव प्रकारेण, वाचाम्=वाणीनाम्, काव्यस्येत्यर्थः, (अपि=च, दुर्जनः=दोषदर्शी, भवति,) । अत आशङ्कां विहायैव स्वकर्तव्यं पूरणीयमिति वक्तुराशयः । अत्र 'यथास्त्रीणां तथा वाचाम्, इत्यत्र उपमालङ्कारस्तथा 'कुतो

---

१. 'व्यवहर्तव्ये' ।

सूत्रधार—आर्य, सब तरह से (अर्थात् बिना किसी चिन्ता के) व्यवहार करना चाहिए। (पूर्ण) निर्दोषता कैसे (हो सकती है) ? क्योंकि लोग, जिस प्रकार, स्त्रियों की पवित्रता के विषय में दोषदर्शी (होते हैं) उसी प्रकार वाणी-समूह (अर्थात् काव्य) के विषय में भी (दोषदर्शी होते हैं) ॥ ५ ॥

ह्यवचनीयतां' इति वाक्यं प्रति उत्तरार्धगतवाक्यस्य हेतुत्वाद्वाक्यार्थहेतुकः काव्यालिङ्गालङ्कारो विलसति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५ ॥

टिप्पणी—मारिष-नाटक में सूत्रधार के द्वारा नट के लिये 'आर्य' इस अर्थ में 'मारीष' का प्रयोग होता है ।

सर्वथा व्यवहर्तव्यम्—सब तरह से व्यवहार करना चाहिए। सूत्रधार का अभिप्राय यह है कि निन्दा आदि की चिन्ता बिना किये अपने कर्तव्य को करना चाहिए। यदि हम निन्दा आदि के भय से अपना कर्तव्य नहीं करेंगे, तब तो संसार का सब कार्य ही ठप पड़ जायगा। वि—अव + √ हृ + 'तव्य' (तव्यत्) प्रत्ययः ।

कुतः - कैसे, कहाँ से । किम् + तसिल्, किमः स्थाने 'कु' आदेशः ।

यथा स्त्रीणाम्—एक सुन्दरी स्त्री अपने पति की अनन्य भक्त है। उसने किशोरावस्था से लेकर अपने भरे-पूरे लहराते मदमाते इस यौवन की अवस्था तक किसी पर पुरुष का न तो स्पर्श किया है और न हृदय से चिन्तन ही । उसका जीवन गङ्गा की धारा के समान निर्मल और हिमालय के धवल उत्तुङ्ग शृङ्ग की भाँति स्वच्छ तथा उन्नत है । किन्तु फिर भी जब वह कभी सार्वजनिक स्थान से गुजरती है तो बहुत से व्यक्ति उसके व्यवहार एवं चरित्र पर अक्षेप करने लगते हैं, दोष निकालने लगते हैं ।

तथा वाचाम्—जमाने का जाना-माना कोई मेधावी व्यक्ति काव्य-निर्माण करता है। यद्यपि उसकी साहित्यिक कृति प्रायः दोषरहित तथा दर्पण की भाँति शब्दार्थ को प्रतिबिम्बित करनेवाली है। परन्तु बाल की खाल निकालने वाले आलोचक-बन्धु, ईर्ष्यावश, उसमें दोषों की गठरी दिखलाने का अनर्गल प्रयास करते हैं। यही है 'यथा स्त्रीणां तथा वाचां' आदि वाक्यों का अभिप्राय ।

दुर्जनो जनः—कविके इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि तात्कालिक विद्वत्समाज ने उसके महावीरचरित की कटु आलोचना की थी। समसामयिक समाज ने इस मानी कवि की रचनाओं का समुचित मूल्याङ्कन नहीं किया था। तुलना के लिये देखिये—'ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां' (मालती० १।६) ।

इस श्लोक के द्वारा कवि ने सीता विषयक अपवाद की अवतारणा की है ।

नटः—अतिदुर्जन इति वक्तव्यम् ।

[1]देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादो यतो जनः ।
[2]रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः ॥ ६ ॥

सूत्रधारः—यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति[3] स्यन्देत ततः कष्टं स्यात् ।

अन्वयः—यतः, हि, जनः, देव्याः, वैदेह्याः, अपि, सापवादः, (वर्तते), रक्षो-गृहस्थितिः, (तस्य), मूलम्, (अस्ति); अग्निशुद्धौ, तु, (जनस्य), अनिश्चयः, (एव, विद्यते) ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—यतः=क्योंकि, हि=यह वाक्य को सुन्दर बनाने के लिये प्रयुक्त किया गया है, जनः=व्यक्ति, देव्याम्=देवी, अयोनिजा, परमपुनीता, वैदेह्याः=विदेहराज (जनक) की पुत्री सीता की, अपि=भी, सापवादः=लाञ्छन लगाने वाले, (वर्तते= हैं); रक्षो-गृह-स्थितिः=राक्षस के घर में निवास, (तस्य=उस अपवाद का), मूलम् = मूल, (अस्ति=है); अग्निशुद्धौ=अग्नि-परीक्षा के विषय में, तु=तो, (जनस्य=लोगों का, अनिश्चयः=अविश्वास, (एव= ही, विद्यते=है) ॥ ६ ॥

टीका—अतिदुर्जनत्वे हेतुमाह—देव्या अपीति । यतः=यस्मात् कारणात्, इति वाक्यालङ्कारे, जनः=लोकः, देव्याः=परम-पूज्यायाः, अयोनिजायाः वा, वैदेह्याः=विदेह-राजसुतायाः, सीताया विषये इति शेषः, अपि=च, अपिना सीताचरितस्य लोकातिशा-यित्वं सूचितम्, सापवादः—अपवादेन=लाञ्छनेन सहितः सापवादः=निन्दापरः, (वर्तते=अस्ति), रक्षोगृहस्थितिः—रक्षसः=राक्षसस्य, राक्षसराजस्य रावणस्येत्यर्थः, गृहे=भवने स्थितिः=वासः, तस्य=तादृशस्य अपवादस्येति शेषः, मूलम्=कारणम्, (अस्ति=वर्तते); सीतायाः, अग्निशुद्धौ—अग्नौ=वह्नौ या शुद्धिः=चरित्रोत्कर्षनिर्णयः तस्याम्, अग्निपरीक्षायामित्यर्थः, तु=च, ('तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे' इति मेदिनी), जनस्य=लोकस्य, अनिश्चयः=निश्चयस्याभावः, संशय इत्यर्थः, (एव=हि, विद्यते=वर्तते) । इति शङ्कास्थानस्य सूचना । देवीवैदेहीपदाभ्यां सीतायाः अयोनिजत्वं विदेहस्य राजर्षेर्जनकस्य सम्बन्धश्च सूचितः । एतेन तस्याः परमपवित्र-त्वं ध्वनितम् । अत्र दोषाभावेऽपि दोषकथनाद् विभावना तथा अग्निशुद्धावपि तदनि-श्चयाद् विशेषोक्तिरलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—देव्याः—अयोनिजा अर्थात् मानवगर्भ से न उत्पन्न होने वाली । सीता जी की उत्पत्ति यज्ञ भूमि से उस समय हुई थी, जब कि महाराज जनक उसे सुवर्ण के हल से जोत रहे थे । व्यक्ति यदि मानव-गर्भ से उत्पन्न होता है, तो उसमें

---

१. देव्यामपि हि वैदेह्यां, २. रक्षोगृहे । ३. स्यात्, स्पृशेत्, परिस्पन्देत्; प्रतिष्ठेत ।

नट–(स्त्री-चरित तथा पर-कविता के विषय में 'लोग दोषदर्शी हैं'—ऐसा न कह कर) 'अत्यन्त दोषदर्शी हैं, ऐसा कहना चाहिये। क्योंकि व्यक्ति अयोनिजा, विदेहराज (जनक) की पुत्री (सीता) को भी लाञ्छन लगाने वाले (हैं)। राक्षस के घर में निवास (उस अपवाद का) मूल (है)। अग्नि-परीक्षा के विषय में तो (लोगों का) अविश्वास (ही है) ॥ ६ ॥

सूत्रधार--यदि फिर यह लोकप्रवाद महाराज (रामचन्द) तक पहुँच जाय, तो अनर्थ हो जायगा।

वे दोष सम्भावित होते हैं, जो कि उसके माँ-बाप में रहते हैं। किन्तु सीता के विषय में ऐसा नहीं है, क्योंकि वे अयोनिजा हैं। यही भाव 'देव्याः' पद से कहा गया है।

अपि—'अपि' शब्द से यह बताया गया है कि जब लोग त्रिलोकी की सर्वाधिक पुनीत देवी सीता पर भी लाञ्छन लगा देते हैं, तो सामान्य व्यक्तियों के विषय में क्या कहना है।

वैदेह्याः—अयोनिजा सीता को वैदेही अर्थात् विदेहराज जनक की पुत्री कह कर उनकी पारिवारिक पवित्रता सूचित की गई है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में कुल तथा वातावरण का प्रधानतम प्रभाव रहता है। इस तरह सीता दोनों ही तरह से पवित्र-चरित्र-सम्पन्न थीं।

जनः—जन शब्द जन-समूह का वाचक है। अतः इसमें एकवचन की विभक्ति के होने पर भी इसका अनुवाद बहुवचन में होता है।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। छन्द का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—किंवदन्ती=लोकप्रवाद, अफवाह, जनश्रुति, महाराजं प्रति=महाराज (रामचन्द्र) तक, स्यन्देत=रसते-रसते पहुँच जाय, धीरे-धीरे पहुँच जाय, ततः=तो, कष्टम्=अनर्थ ॥

टीका—**सूत्रधार इति**। यदि पुनः=चेत्, इयम्=एषा, किंवदन्ती=जनश्रुतिः, ('किंवदन्ती जनश्रुतिः, इत्यमरः), महाराजं प्रति=राजानं रामचन्द्रं प्रतीत्यर्थः, स्यन्देत–प्रस्रवेत्, श्रवणविषयी स्यादिति यावत्, ततः=तदा, कष्टम्=कृच्छ्रम्, स्यात्=भवेदिति ॥

टिप्पणी—किंवदन्ती—लोगों के बीच प्रचलित अफवाह। किं वदन्ति जनाः, किम् + √वद् + अच् + ई० पू०, अथवा √वद् + शतृ + ङीप्=वदन्ती (कहती हुई), कुत्सिता=घृणास्पदा वदन्ती, अथवा किञ्चिद् वदन्ती=किं वदन्ती, 'किम् क्षेपे' (पा० २।१।६४) इति समासः ॥

नटः——सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो[1] विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः, क्वेदानीं महाराजः ? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति——

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः ॥ ७ ॥

(इति निष्क्रान्तौ)

। इति प्रस्तावना ।

शब्दार्थः—सर्वथा=सब प्रकार से, श्रेयः=कल्याण, मङ्गल, विधास्यन्ति=करेंगे। एवम्=इस प्रकार, ऐसा।

टीका—नट इति सर्वथा=सर्वप्रकारेण, श्रेयः=मङ्गलम्, विधास्यन्ति=करिष्यन्ति (सान्त्वनावचनमेतत्)। एवम्=इत्थम् ॥ एवंविधस्य पुण्यात्मनो रामस्य पतिव्रतायाः सीतायाश्च न कदाचिदपि देवा ऋषयश्चाशुभं सहिष्यन्ते, प्रत्युत शुभमेव विधास्यन्ति, अतो नाशुभमाशङ्कनीयमिति भावः ॥

टिप्पणी——श्रेयः—श्रेयस्=प्रशस्य + ईयस् + विभक्तिकार्यम्।

परिक्रम्य——मानो राजभवन जाना चाहता है, अतः कुछ पग चलकर। परि-√क्रम् + क्त्वा=ल्यप्।

आकर्ण्य——यद्यपि इस तरह के सम्वाद में दूसरा व्यक्ति सामने नहीं रहता है। पर बात करने वाला ऐसा अभिनय करते हुए प्रश्नोत्तर करता है, जिससे प्रतीत होता है कि वह किसी से बातें कर रहा है। इस तरह के सम्वाद को आकाशभाषित कहते हैं ॥

अन्वयः——स्नेहात्, (रामम्), सभाजयितुम्, एत्य, (तथा), अमूनि, दिनानि, उत्सवेन, नीत्वा, जनकः, अद्य, विदेहान्, गतः। ततः, विमनसः, देव्याः, परिसान्त्वनाय, नरेन्द्रः, (रामः), धर्मासनात्, (उत्थाय), वासगृहम्, विशति ॥ ७ ॥

शब्दार्थः——स्नेहात्=स्नेहवश, (रामम् = रामको), सभाजयितुम्=अभिनन्दित करने के लिए, बधाई देने के लिए, एत्य=आकर, (तथा=और), अमूनि=इन, इतने, दिनानि=दिनों को, उत्सवेन=आमोद-प्रमोद से, नीत्वा=बिताकर, जनकः= जनक, अद्य=आज, विदेहान्=विदेहों के जनपदको, मिथिला को, गतः=चले गये, ततः=इस कारण, विमनसः=खिन्न-हृदया, देव्याः=महारानी (जानकी) को, परिसान्त्वनाय=सान्त्वना देने के लिए, नरेन्द्रः=महाराज, (रामः=राम), धर्मासनात्=

---

१. स्वस्तिकरिष्यन्ति।

नट---ऋषि तथा देवता लोग सब प्रकार से मङ्गल करेंगे। (चारों ओर घूमकर) हे, हे, महाराज सम्प्रति कहाँ हैं ? (सुन कर) लोग ऐसा कह रहे हैं---

स्नेहवश (राम को) बधाई देने के लिये आकर (और) इतने दिनों को आमोद-प्रमोद से बिताकर जनक आज मिथिला चले गये। अतः खिन्न-हृदया महारानी (जानकी) को सान्त्वना देने के लिए महाराज (राम) राजसिंहासन से उठकर वास-गृह में प्रवेश कर रहे हैं ॥ ७ ॥

(ऐसा कहकर दोनों निकल गये)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

राजसिंहासन से, (उत्थाय=उठकर), वासगृहम्=निवासगृह को, विशति=प्रवेश कर रहे हैं ॥ ७ ॥

टीका---किं जनाः कथयन्तीत्याह-**स्नेहादिति**। स्नेहात्=प्रीत्या, (रामम्=रामचन्द्रम्, सीतामपीति), सभाजयितुम्=अभिनन्दितुम्, सम्भाषणादिना वनात् प्रत्यागतं राज्ये चाभिषिक्तं रामं संवर्द्धयितुमित्यर्थः, सीताञ्च प्रीणयितुमित्यदि ज्ञेयम्, एत्य=मिथिलितः अयोध्याया राजभवनमागत्येत्यर्थः, (तथा=अपि च), अमूनि=एतानि, दिनानि=दिवसान्, उत्सवेन=आनन्दव्यापारेण, नीत्वा=यापयित्वा, जनकः=विदेहाधिपः, सीताजनकः, अद्य=अस्मिन्नेव=दिने, विदेहान्=विदेहानां जनपदम्, स्वराज्यमित्यर्थः, गतः=प्रस्थितः, ततः=तस्मात्, पितृगमनादित्यर्थः, विमनसः=विमनायमानायाः, देव्याः=सीतायाः, परिसान्त्वनाय=मनोविनोदाय, नरेन्द्रः=महाराजः, (रामः=रामचन्द्रः), धर्मासनात्=विचारासनात्, स्वसिंहासनादित्यर्थः, उत्थायेति शेषः, वासगृहम्=शुद्धान्तम्, वासभवनमित्यर्थः, विशति=प्रविशति। राजकार्यमपि परित्यज्य सीतायाः मनोविनोदाय गच्छतीति। अनेन सितायां रामस्य प्रेमातिशयो ध्वनितः ॥ ७ ॥

टिप्पणी--**सभाजयितुम्**-राज्याभिषेक के समय राम का अभिनन्दन करने के लिए। √सभाज्+तुमुन्। एत्य—आ+√इ (गतौ)+ल्यप् ('ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्') इति तुगागमः।

विदेहान्-विदेहानां जनपदः विदेहास्तान्। यदि निवासियों के नाम पर किसी देश का नाम हो तो वह बहुवचन में प्रयुक्त होता है, जैसे पाञ्चालाः, कलिङ्गाः, अङ्गाः आदि।

इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण—'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' ७ ॥

प्रस्तावना--प्रस्तावना को आमुख और स्थापना भी कहते हैं। जहाँ सूत्रधार नटी अथवा विदूषक आदि के साथ बातचीत करते हुए विचित्र उक्ति के द्वारा प्रस्तुत

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

रामः–देवि ! वैदेहि ! [1] समाश्वसिहि, ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान् । [2]

किंत्वनुष्ठाननित्यत्वं[3] स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥ ८ ॥

वस्तु का संकेत करता हुआ अपने कार्य की चर्चा करता है, उसे प्रस्तावना या आमुख कहते हैं—

नटी विदूको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥
(साहि० ६।३१–३२) ॥ ७ ॥

शब्दार्थः––प्रविशति=आविर्भूत होते हैं, प्रवेश करते हैं । उपविष्टः=बैठे हुए, समाश्वसिहि=धीरज रक्खो, धैर्यधारण करो, गुरवः=बड़े-बूढ़े, पुम्हारे पिता, विहातुम्= छोड़ने में ॥

टीका–अथाङ्कः प्रस्तूयते-**तत् इत्यादिना**। प्रविशति=आविर्भवति, उपविष्टः= आसनस्थः, आसनस्था सीताचेत्यपि बोध्यम् । समाश्वसिहि=समाश्वस्ता भव, शोकं परित्यजेत्यर्थः, गुरवः=तव पिता जनकः, गौरवेऽत्र बहुवचनम्, विहातुम्=विमोक्तुम्, चिरं विहाय स्थातुमित्यर्थः ॥

टिप्पणी––प्रविशति—नाटक का यह एक परिभाषिक संकेत है। बैठे हुए राम और सीता का चलकर रङ्गशाला में प्रवेश करना सम्भव नहीं है । अतः ऐसे स्थलों पर 'प्रविशति' का अर्थ 'आविर्भवति' किया जाता है ।

उपविष्टः––उप + √विश् + क्तः ।

गुरवः—यह पद एकमात्र जनक के लिए यहाँ प्रयुक्त हुआ है । बड़े-बूढ़ों को गुरु कहते हैं । आदर व्यक्त करने के लिये बहुवचन का प्रयोग किया जाता है ॥

अन्वयः—किन्तु, अनुष्ठाननित्यत्वम्, स्वातन्त्र्यम्, अपकर्षति, हि, आहिताग्नीनाम्, गृहस्थता, प्रत्यवायैः, सङ्कटा, (भवति) ॥ ८ ॥

शब्दार्थः––किन्तु=परन्तु, अनुष्ठाननित्यत्वम्=अनुष्ठान (यज्ञ आदि की) नियतकर्तव्यता, अनिवार्यता, स्वातन्त्र्यम्=स्वतन्त्रता को, स्वच्छन्दता को, अपकर्षति= छीन लेती है, हि=क्योंकि, आहिताग्नीनाम्=अग्निहोत्री जनों का, गृहस्थता=गृह-

---

पाठा०—१. विश्वसिहि, २. वियोक्तुम्, त एव; न ते हि गुरवश्चिरं शक्नुवन्त्यस्मान् वियोक्तुम्, ३. नित्यत्वात्, नित्यत्वे ।

(तदनन्तर बैठे हुए राम, और सीता, प्रवेश करते हैं)

राम—देवि, विदेहराज की पुत्री (सीते), धीरज रक्खो, वे गुरुजन (आपके पिता जनक आदि) हम लोगों को (अधिक समय तक) नहीं छोड़ सकते हैं।

किन्तु अनुष्ठान (अर्थात् यज्ञ आदि) की नियत-कर्तव्यता (अनिवार्यता) स्वच्छन्दता को छीन लेती है; क्योंकि अग्निहोत्री जनों का गृहस्थ-जीवन विघ्नों अथवा पापों से भरा हुआ होता है ॥ ८ ॥

स्थाश्रम, गृहस्थ-जीवन, प्रत्यवायैः-विघ्नों से, सङ्कटा=भरा हुआ, दुःखरूप, (भवति=होता है) ॥ ८ ॥

टीका—यदि तथा न शक्नुवन्ति, तर्हि कथमस्मान् परित्यज्य गता इत्याह—**किन्त्विति**। किन्तु=परन्तु, यत् तिष्ठति तत्र हेत्वन्तरं विरोधीति किन्तु शब्दार्थः, अनुष्ठाननित्यत्वम्—अनुष्ठानानाम्=अग्निहोत्रादिकर्तव्यविधीनाम् नित्यत्वम्=अनुल्लङ्घनीयता, अहरहः क्रियमाणत्वमित्यर्थः, अकरणे प्रत्यवायजनकत्वं, सति सम्भवे अपरिहार्यत्वं वेति, अथवा अनुष्ठानस्य=वैवाहिकेऽग्नौ कर्त्तव्यतया उपदिष्टस्य सायंप्रातर्होमरूपस्य कर्मणः नित्यत्वम्=नियतकर्तव्यता, अनुल्लङ्घनीयत्वमित्यर्थः, कर्तृपदमेतत्, स्वातन्त्र्यम्=स्वच्छन्दचारित्वम्, अपकर्षति=रुणद्धि, स्वैरावस्थानं न सहते इत्यर्थः, पारमार्थिककृत्यानि सांसारिकान् आमोदप्रमोदान् बाधन्ते इति भावः, हि—यस्मात्, एतदेव विशिष्य व्यनक्तीत्यर्थः, आहिताग्नीनाम्—आहितः=यथाविधि स्थापितः अग्निः=वह्निः यैस्ते तेषाम् आहिताग्नीनाम्=अग्न्याहितानाम्, साग्निकानामित्यर्थः, गृहस्थता=गृहस्थाश्रमः प्रत्यवायैः=विहितानाचरणजन्यपातकैः, सङ्कटा—सं=सङ्कीर्णः कटः=स्थानं यत्र तथोक्ता, विघ्नपूरिता दुःखरूपा वेत्यर्थः, भवतीति क्रियाशेषः। राजर्षिर्जनकस्तु साग्निको गृहमेधी आसीत्। आहिताग्नयो महानुभावा न चिरमन्यत्र स्थातुं शक्नुवन्तीनि शातातपवचनम्—

"निक्षिप्याग्नि स्वदारेषु परिकल्प्यार्त्विजं तथा।
प्रवसेत् कार्यवान् विप्रो वृथैव न चिरं वसेत् ॥"

अग्निहोत्रादिनित्यकर्मणां प्रतिनिधिविधानन्तु स्वल्पकालाभिप्रायकमिति सुधीभिरवधेयम्।

अत्र परार्द्धगतवाक्यार्थस्य पूर्वार्द्धं प्रति हेतुत्वेनोपन्यासात् पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्, द्वितीयार्द्धगतसामान्येन प्रथमार्द्धगतः विशेषोऽर्थः समर्थ्यते इति अर्थान्तरन्यासालङ्कारश्च। तयोरङ्गाङ्गि भावेनावस्थानात् सङ्करालङ्कारः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—**स्वातन्त्र्यम्** स्वतन्त्र+भावे ष्यञ्+विभक्तिकार्यम्। **आहिताग्नीनाम्**—श्रुति वचन है-"यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" अर्थात् 'जीवन-पर्यन्त अग्निहोत्र

सीता—जानामि आर्यपुत्र ! जानामि, किन्तु संतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति । [जाणामि अज्जउत्त ! जाणामि ! किदु संदावआरिणो बन्धुजणविप्पओआ होन्ति] ।

रामः—एवमेतत् । एते हि हृदयमर्मच्छिदः[1] संसारभावाः[2] । येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य [3]सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—रामभद्र ! (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) महाराज !—

करना चाहिए ।' अतः धार्मिक गृहस्थ व्यक्ति अपने विवाह के समय स्थापित अग्नि को कभी बुझने नहीं देते हैं । वे उसमें नियमित रूप से सायं-प्रातः हवन किया करते हैं । यदि वे अत्यन्त आवश्यक कार्यवश कहीं जाते हैं तो अग्निहोत्र का भार अपनी पत्नी अथवा किसी पुरोहित को सौंप जाते हैं । पर इस प्रकार का प्रतिनिधि-विधान अधिक दिनों के लिए नहीं किया जा सकता है—

"निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यार्त्विजं तथा ।
प्रवसेत् कार्यवान् विप्रो वृथैव न चिरं वसेत् ॥" (शातातप)

यहाँ विप्र शब्द अग्निहोत्र के अधिकारी द्विज का बोधक है । महाराज जनक भी अग्निहोत्री थे । अतः वे अयोध्या से अतिशीघ्र मिथिला को लौट गये, न कि राम या जानकी के प्रति स्नेह की कमी के कारण । अग्निहोत्री व्यक्तियों की मृत्यु के बाद उनका दाह-संस्कार भी उसी अग्निहोत्र वाली आग से ही किया जाता है ।

इस श्लोक में काव्यलिङ्ग तथा अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का सङ्कर अलङ्कार एवं अनुष्टुप् छन्द है ॥ ८ ॥

शब्दार्थः- आर्यपुत्र=सम्माननीय पतिदेव, जानामि=(इस बात को) समझ रही हूँ, सन्तापकारिणः=(हृदय को) सन्तप्त करने वाले, बन्धुजनविप्रयोगाः=भाई–बन्धुओं के बिछोह, वियोग ॥

टीका—आर्यपुत्रेति । आर्यपुत्र–आर्यस्य=गुरोः श्वसुरस्य पुत्रः=सुतस्तत्सम्बुद्धौ, आर्यपुत्रेति पत्नीकृतं पतिसम्बोधनम्; जानामि जानामीति शोकावेगाद्विरुक्तम् । सन्तापकारिणः–सन्तापम्=खेदम् कुर्वन्तीति सन्तापकारिणः=खेदजनकाः, भवन्ति, बन्धुजनविप्रयोगाः–बन्धुजनानाम्=स्वजनानामित्यर्थः विप्रयोगाः=वियोगाः ॥

पाठा०—१. ० भिदः, २. भागाः, भोगाः, ३. एतन्नास्ति क्वचित् ।

सीता--आर्यपुत्र, (इस बात को) समझ रही हूँ; किन्तु भाई-बन्धुओं के विछोह (हृदय को) सन्तप्त करने वाले होते हैं। (इसी कारण से कष्ट हो रहा है)।

राम--ऐसा ही (है) यह। निश्चय ही ये सांसारिक (संयोग-वियोग आदि) भाव (अथवा-ये सांसारिक विषय) हृदय के मर्म-स्थल को बींधने वाले हैं, जिनसे घृणा करते हुए मनीषी पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग कर जङ्गल में विश्राम (शान्ति-लाभ) करते हैं।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी--भले राम, (ऐसा आधा कहने पर भय के साथ) महाराज,—

टिप्पणी--आर्यपुत्र-आर्यस्य=आदरणीय व्यक्ति के, श्वसुर के, पुत्र=सुत 'आर्यपुत्र' इस सम्बोधन वाक्य का प्रयोग भारतीय ललनायें अपने पति को सम्बोधित करने के लिये किया करती थीं।

विप्रयोगः—वि-प्र + √युज् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ॥

शब्दार्थः—एवम्=ऐसा ही (है), एतत्=यह, हृदयमर्मच्छिदः=हृदय के मर्मस्थल को बींधने वाले, सांसारिक विषय, सांसरिक सम्बन्ध। बीभत्समानाः=घृणा करते हुए, विरक्त होते हुए, कामान्=कामनाओं को, मनीषिणः=मन को वश में करने वाले, आत्मदर्शी ॥

टीका--**राम इति**। एवम्=इत्थमेव, एतत्=त्वया यदुक्तं तत्, सत्यमेव त्वया कथ्यत इत्यर्थः। हृदयमर्मच्छिदः--हृदयस्य=मर्माणि=जीवनस्थानानि सन्धिस्थानानि वा छिन्दन्ति=भिन्दन्ति इति ते तथोक्ताः, संसारभावाः-संसरति=गच्छति आगच्छति च जीवः प्राक्तनकर्मणां भोगाय यत्र सः संसारस्तत्र ये भावाः=सम्बन्धाः, संयोगवियोगादयो भावा वा। बीभत्समानाः=जुगुप्समानाः, विरक्ता इति यावत्, कामान्-कामाः=विषयास्तान्, मनीषिणः--मनसो वशीकर्तारः, आत्मदर्शिन इत्यर्थः ॥

टिप्पणी—संसारभावाः--संसार के संयोग-वियोग आदि भाव, सांसारिक सम्बन्ध, सांसारिक विषय। उत्तररामचरित के प्रसिद्ध टीकाकार वीरराघव ने इसके स्थान पर 'संसारभागाः' पाठ स्वीकार किया है। 'भाग' शब्द का अर्थ है—सुख अथवा दुःख का वह भाग जो किसी भी प्राणी को अपने पूर्व कर्मों के अनुसार इस संसार में भोगना पड़ता है। एक दूसरे टीकाकार घनश्याम के अनुसार इसके स्थान पर 'भोगाः' पाठ समीचीन माना गया है। भोग का अर्थ है सुख अथवा दुःख का अनुभव ॥

शब्दार्थः--प्रविश्य=प्रवेश करके, रङ्गमञ्च पर आकर। रामभद्र=भले राम, साशङ्कम्=भय के साथ। महाराज=यह राजा के लिए प्रयुक्त होने वाला सम्बोधन है।

रामः—(सस्मितम्) आर्य ! ननु रामभद्र ! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते [1]तातपरिजनस्य । [2]तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम् ।

कञ्चुकी—देव ! ऋष्यशृङ्गाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः ।

सीता—आर्य ! ततः किं विलम्ब्यते (अज्ज ! तदो किं विलम्बीअदि) ।

रामः—त्वरितं प्रवेशय ।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

अष्टावक्रः—स्वस्ति वाम् ।

रामः—भगवन् अभिवादये, इत आस्यताम् ।

टीका—प्रविश्येति । प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, नेपथ्यस्थानाद्रङ्गमञ्चमागत्येत्यर्थः । रामभद्र=शोभनराम, कुमारावस्थासम्बोधनमेतत्, साशङ्कम्—आशङ्कया=भीत्या, सहितं साशङ्कम्=सभयम् । अहो मया प्रभोर्महाराजस्य नामग्राहं सम्बोधनं विहितम् । अतोऽपराद्धोऽस्मीति आशङ्काकारणम् । महाराज=प्रभो चक्रवर्तिन् ॥

टिप्पणी—कञ्चुकी—कञ्चुकः=चोलः अस्यास्तीति, लम्बा कुर्ताधारी । यह एक सदाचारी वृद्ध ब्राह्मण होता था । यह रनिवास का प्रधान अधिकारी अत्यन्त धार्मिक तथा परमविद्वान् होता था । कञ्चुकी का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ।
जरावैक्लव्ययुक्तेन विशेद् गात्रेण कञ्चुकी ॥

रामभद्र—बड़े-बूढ़े लोग राजकुमार के नाम के आगे 'भद्र' शब्द जोड़ कर बोलते थे । 'भद्र' शब्द के साथ आशीर्वाद का भाव जुड़ा हुआ है । महाराज दशरथ के समय कञ्चुकी राम को 'रामभद्र' ही कहा करता था । उसी पूर्व अभ्यास के कारण राजा बन जाने पर भी वह उन्हें 'रामभद्र' ही कह रहा था । किन्तु तत्काल ही वह पुनः सँभल गया । यही त्रुटि ही उसके भय का कारण है । राजा को 'महाराज' शब्द से सम्बोधित किया जाता है ।

शब्दार्थः—सस्मितम्=मुस्कराहट के साथ, मुस्कराकर । उपचारः=व्यवहार, तातपरिजनस्य=पिताजी के सेवकों का । यथाऽभ्यस्तम्=अभ्यास के अनुसार ॥

टीका—राम इति । सस्मितम्—स्मितेन=ईषद्धास्येन सहितं यथा स्यात्तथा । उपचारः=व्यवहारः, सेवाव्यवहार इत्यर्थः, तातपरिजनस्य—तातस्य=पितुः परि-

---

पाठा०—१. तातपाद०; २. यथाऽभ्यासमुच्यताम् ।

राम—(मुस्करा कर) आदरणीय महाशय, पिताजी के सेवकों का मेरे प्रति 'रामभद्र' इस शब्द से (ही) व्यवहार करना शोभा देता है। अतः (पहले के) अभ्यास के अनुसार ही बोलिये। (वही मुझे अच्छा लगता है)।

कञ्चुकी--महाराज, ऋष्यश्रृङ्ग के आश्रम से अष्टावक्र आये हुए हैं।

सीता--महानुभाव, तो क्यों विलम्ब किया जा रहा है (उन्हें यहाँ लाने में)?

राम--अतिशीघ्र अन्दर लाइये (उन्हें)।

[कञ्चुकी निकल गया]

(प्रवेश करके)

अष्टावक्र--आप दोनों का मङ्गल हो।

राम--आदरणीय महानुभाव, (आपको) प्रणाम कर रहा हूँ। इस तरफ पधारें (आप)।

जनस्य=सेवकवर्गस्य, यथाऽभ्यस्तम्—अभ्यस्तमनतिक्रम्येति यथाऽभ्यस्तम्=अभ्यासानुरूपमित्यर्थः ॥

टिप्पणी--उपचारः—उपचरत्येनेन, उप + √चर् + घञ् करणे।

शब्दार्थः--संप्राप्तः=आए हैं। ततः=तो। त्वरितम्=अतिशीघ्र। वाम्=आप दोनों का। इतः=इस तरफ, आस्यताम्=विराजिए, पधारें।

टीका--कञ्चुकीति। अष्टावक्रः—अष्टसु अवयवेषु वक्रः=कुटिलः, अष्टौ वक्राणि=कुटिलानि यस्य इति वा विग्रहः, ("अष्टनः संज्ञायाम्" ६।३।१२५ पा०) इति दीर्घः। अष्टावक्राख्य एक ऋषिरित्यर्थः। सम्प्राप्तः=समायातः। ततः=तस्मात्। त्वरितम्=अतिशीघ्रम्। वाम्=युवाभ्याम्, स्वस्ति=कुशलं भूयात्। इतः=अत्र, अस्यां दिशि वा, आस्यताम्=उपविश्यताम्।

टिप्पणी--**अष्टावक्रः**—'कहोड' नामक एक ऋषि थे। इन्होंने अपने गुरु उद्दालक की सुन्दरी पुत्री सुजाता से विवाह किया था। 'कहोड' पूरी-पूरी रात अध्ययन करने के आदी थे। एक दिन जब ऋषि रात्रि में अध्ययन-मग्न थे, उनकी प्यारी पत्नी बगल में बैठी उनकी ओर निहार रही थी। उसी समय एक अद्भुत घटना घटी। पूर्णगर्भा सुजाता के पेट का बच्चा बोल उठा--'पिता जी यह अनुचित है, जो कि आप समूची रात पढ़ा करते हैं। गर्भ की धृष्टता देखकर कहोड ने शाप दिया--'तुम्हारे आठ अङ्ग टेढ़े-मेढ़े हो जायेंगे।' बालक जब पैदा हुआ तो उसके हाथ-पैर आदि आठ अवयव वक्र थे। अतः बालक का नाम अष्टावक्र रक्खा गया। शारीरिक दृष्टि से कुरूप होते हुए भी ये बहुत बड़े शास्त्रज्ञ और तत्त्वज्ञानी ऋषि थे। (महाभारत, वन पर्व)।

सीता—भगवन्, नमस्ते । अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च ? [भअव, णमो दे । अवि कुसलं सजामातुअस्स गुरुअणस्स अज्जाए सन्ताए अ ।]

रामः—निर्विघ्नः सोमपीथी[1] [2]आवुत्तो मे भगवानृष्यशृङ्गः, आर्या च शान्ता: ?

सीता— अस्मानपि स्मरति ? (अम्हे वि[3] सुमरेदि ?)

अष्टावक्रः—(उपविश्य) अथ किम् । देवि ! कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह—

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि ! पार्थिवानां
येषां कुलेषु[4] सविता च गुरुर्वयं च ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—निर्विघ्नः=विघ्नरहित, सानन्द, सोमपीथी=सोमरस का पान करने वाले, आवुत्तः=भगिनीपति, जीजा, बहनोई ।

टीका—राम इति । निर्विघ्नः=विघ्नरहितः, सोमपीथी—पीथम्=पानम्, सोमस्य=औषधविशेषस्य पीथम्=पानं सोमपीथं, तदस्यातीति, "अत इनिठनौ" इतीनिः प्रत्ययः, सोमपीथी=सोमपः, आवुत्तः=भगिनीपतिः, आर्या=आदरणीया ।

टिप्पणी—सोमपीथी—सोम एक लता का नाम है । यह हिमालय की तराई में विशेषरूप से मिलती थी । इसका रस निकाल कर तथा उसमें शक्कर मिलाकर पीने से नशा चढ़ता है । इसे पीकर मुनि-जन गौरव का अनुभव करते थे । यह एक अतिपवित्र पान माना जाता था । यज्ञ के अवसर पर मुनिलोग इसे पीते थे ।

अन्वयः—हे नन्दिनि, भगवती, विश्वम्भरा, भवतीम्, असूत, प्रजापतिसमः, राजा, जनकः, ते, पिता, (अस्ति), त्वम्, तेषाम्, पार्थिवानाम्, वधूः, असि, येषाम्, कुलेषु, सविता, च, गुरुः, च, वयम्, (गुरवः, स्मः) ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—हे नन्दिनि=हे बेटी, भगवती=ऐश्वर्य-सम्पन्न, विश्वम्भरा=विश्व का भरण-पोषण करने वाली पृथिवी ने, भवतीम्=आपको, असूत=पैदा किया है; प्रजापतिसमः=प्रजापति (ब्रह्मा) के सदृश, राजा=राजा, जनकः=जनक, ते=तुम्हारे, पिता=पिता, जनक, (अस्ति=हैं); त्वम्=तुम, तेषाम्=उन, पार्थिवानाम्=पृथिवीपति राजाओं की, वधूः=बहू, असि=हो, येषाम्=जिन (राजाओं) के, कुलेषु=कुल में, सविता=सूर्य, च=इसका यहाँ कोई खास अर्थ नहीं है, गुरुः=गुरु, वंशप्रवर्तक, च=और, वयम्=हम लोग, (गुरवः=गुरु, आचार्य, स्मः=हैं) ॥ ९ ॥

पाठा०—१. ०पीती, २. भावुको, ३. वा । ४. गृहेषु ।

सीता—भगवन्, आप को प्रणाम है । दामाद (ऋष्यशृङ्ग) के सहित गुरुजन (अर्थात् पूज्य कौशल्या आदि) तथा आदरणीया शान्ता का कुशल तो है ? (अर्थात् ये लोग सकुशल तो हैं ?)

राम—सोमरस का पान करने वाले हमारे जीजा भगवान् ऋष्यशृङ्ग तथा पूजनीया (बहन) शान्ता विघ्नरहित (सकुशल) तो हैं ?

सीता—(वह शान्ता) हम लोगों को भी याद करती हैं ?

अष्टावक्र—(बैठ कर) और क्या ? देवि, देवि, कुलगुरु भगवान् वसिष्ठ ने तुम्हें यह कहा है—

"हे बेटी ! भगवती, विश्व का भरण-पोषण करने वाली पृथिवी ने आपको पैदा किया है; प्रजापति (ब्रह्मा) के सदृश जनक तुम्हारे पिता (हैं); तुम उन पृथिवी-पति राजाओं की बहू हो जिनके कुल में सूर्य गुरु (वंश-प्रवर्तक) हैं तथा हम लोग आचार्य हैं" ॥ ९ ॥

टीका—वसिष्ठसन्देशं कथयन्नाह–**विश्वम्भरेति** । हे नन्दिनि–हे पुत्रीसदृशानन्दप्रदत्वात् पुत्रि, भगवती=ऐश्वर्यशालिनी, विश्वम्भरा–विश्वम्=जगद् बिभर्तीति=धारयतीति विश्वम्भरा=पृथिवी, भवतीम्=त्वाम्, असूत=प्रसूतवती; एतेनास्याः विनयसहिष्णुतादिगुणयोगित्वं भाविपतिवियोगदुःखसहत्वञ्च ध्वनितम्; प्रजापतिसमः–प्रजापतिना=विधात्रा समः=तुल्यः राजा=विदेहाधिपतिः, जनकः=जनको नाम, ते=तव, पिता=उत्पादकः, अस्तीति क्रियाशेषः; एतेन प्रजादिषु दाक्षिण्यादिकं भाविनोः पुत्रयोः पालनक्षमत्वञ्च ध्वनितम्; त्वं तेषाम्=लोकप्रख्यातानाम्, पार्थिवानाम्=भूपतीनाम्, वधूः=स्नुषा, ('वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः), असि वर्तसे; येषाम्=येषां पार्थिवानाम्, कुलेषु=वंशेषु, सविता=सूर्यश्च, गुरुः=कुलश्रेष्ठः, वंशप्रवर्तक इति यावत्, च=तथा, वयम्=वशिष्ठ इत्यर्थः, वयमिति बहुवचनत्वमेकत्वे 'अस्मदो द्वयोश्च' (१।२।५९ पा०) इत्यनुशासनात्; गुरवः स्म इति वचनविपरिणामेनान्वयः । एतेन रघुवंशस्य प्रतापित्वमौज्ज्वल्यवत्वञ्च सूचितम् । वसिष्ठाचार्यत्वेन लौकिकाचारादिपरिज्ञानं ध्वनितम् । प्रजापतिसम इति कथनादत्र आर्थ्युपमालङ्कारो वसन्ततिलका च वृत्तम् ॥ ९ ॥

टिप्पणी—**विश्वम्भरा**–विश्व + √भृ (धारण पोषणयोः) + खच्, मुम् च, स्त्रियां टाप् ।

नन्दिनी—नन्दयति इति √नन्द् + णिच् + कर्तरि णिनिः स्त्रियां ङीप् ।

प्रसवः—प्र + √सू + अप् कर्मणि ।

विश्वम्भरा···वयञ्च ।

महर्षि वसिष्ठ का यह सन्देश जानकी के भावी निर्वासन को ध्यान में रख कर दिया गया है । वन में एकाकी निवास के समय यह उपदेश वाक्य ट्रेनिङ्ग देने का

तत्किमन्यदाशास्महे । केवलं वीरप्रसवा भूयाः ।

रामः -अनुगृहीताः स्मः ।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवतते ।
ऋषींणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति[१] ॥ १० ॥

अष्टावक्रः--इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च

काम करेगा। 'तुम पृथिवी की पुत्री हो' यह कह कर वसिष्ठ ने पृथिवी जैसी धीरता तथा दुःख सहने की क्षमता का उपदेश दिया है। '**प्रजापतिसमः जनकः**'--इस वाक्य से यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि--'तुम्हें सब के प्रति समता तथा जङ्गल में उत्पन्न होने वाले पुत्रों के समुचित पालन की तत्परता रखनी चाहिए। उस अवस्था में उद्विग्न होने की आवश्यकता भी नहीं है। '**पार्थिवानां कुलेषु**'--इससे कुल के प्रताप तथा निर्मलता की याद दिलाई गई है। **सविता**--इससे कुल के अत्यन्त पावन तथा प्रतिष्ठित स्रोत को सङ्केतित किया गया है। यदि कभी मन सन्मार्ग से भ्रष्ट हो कुमार्ग की ओर प्रवृत्त हो तो यह स्मरण अङ्कुश का कार्य करेगा। **वयञ्च**--इससे यह बतलाया गया है कि मैंने समय-समय पर जो लौकिक ज्ञान का उपदेश तुम्हें दिया है, जरा उस पर भी ध्यान रखना।

इन बातों को ध्यान में रखने से तुम निर्वासन के दुःख-सागर को पार कर लोगी--बस, यही है गुरु वसिष्ठ के उपदेश का सार।

इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण--'ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' ॥ ९ ॥

शब्दार्थः--तत्=तो, इसलिए, किमन्यत्=और क्या। वीरप्रसवा=वीर-माता, भूयाः=होओ। अनुगृहीताः=उपकृत, अनुकम्पित, अनुगृहीत।

टीका--**तत् किमिति**। तत्=यस्मात्त्वं सर्वविधसम्पन्नाऽसि तस्मादित्यर्थः, अन्यत्=वक्ष्यमाणादितरत्, किम्=किं वस्तु। वीरप्रसविनी-वीरः=शूरः प्रसवः=सन्ततिर्यस्यास्तादृशी, वीरमातेत्यर्थः, भूयाः=भवतात्, त्वमिति शेषः।

टिप्पणी--**वीरप्रसवा**--वसिष्ठ के कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे जैसे महर्षि के आशीर्वाद से अन्य जन जिस उत्कृष्टतम बात की कामना करते हैं, वे सभी तुम्हें उपलब्ध हैं। तो फिर मैं तुम्हें किस बात की उपलब्धि के लिए आशीष दूँ? हाँ, अभी तक तुम्हें वीर पुत्ररत्न की उपलब्धि नहीं हुई है, अतः मैं तुम्हें वीरमाता बनने का बेजोड़ आशीष दे रहा हूँ।

अन्वयः--लौकिकानाम्, साधूनाम्, वाक्, हि, अर्थम्, अनुवर्तते, पुनः, आद्यानाम्, ऋषीणाम्, वाचम्, अर्थः, अनुधावति ॥ १० ॥

पाठा० - १. अनुवर्तते,

तो और किस बात की (तुम्हारे लिये) इच्छा करें (अर्थात् आशीर्वाद दें) ? (अतः) केवल (यही आशीष है कि तुम) वीर-माता बनो ।

राम--हम लोग (भगवान् वसिष्ठ के) अनुगृहीत हैं ।

लौकिक (अर्थात् संसारी) महात्माओं की वाणी तो वस्तु का अनुसरण करती है; किन्तु प्राचीन महर्षियों की वाणी का अनुसरण वस्तु करती है ।।१०।।

अष्टावक्र--भगवती अरुन्धती, (कौशल्या आदि) महारानियों तथा शान्ता ने

शब्दार्थः--लौकिकानाम्=लोकिक, संसारी, साधूनाम्=सज्जनों की, महात्माओं की, वाक्=वाणी, वचन, हि=तो, अर्थम्=अर्थ का, वस्तु का, अनुवर्तते=अनुसरण करती है; पुनः=किन्तु, आद्यानाम्=प्राचीन, ऋषीणाम्=महर्षियों की, वाचम्=वाणी का, वचन का, अर्थः=अर्थ, वस्तु, अनुधावति=अनुसरण करती है ।

टीका--'कथमनुगृहीताः स्म' इति तदेवोपपादयति--**लौकिकानामिति**। लौकिकानाम्=लोके विदितानाम्, सामान्यानामित्यर्थः, साधूनाम्=सताम्, वाक्=वाणी, हीति निश्चये, अर्थम्=वस्तु, अनुवर्तते=अनुसरति । लौकिका हि साधवोऽर्थमनुसन्दधतः वस्तुगतिं विभाव्यैव वाचं प्रयुञ्जते, अन्यथा तदसत्यत्वाशङ्का जायते । पुनः=किन्तु, आद्यानाम्=पुरातनानाम्, ऋषीणाम्=कल्पविदां महर्षीणाम्, वाचम्=वचनम्, अर्थः=वस्तु, अनुधावति=अनुगच्छति। अर्थानुसन्धानं विनाऽपि ते यदृच्छयैव यद्वदन्ति तत्तपः--बलात् सिद्ध्यत्येवेति भावः। लौकिकसाधुभ्यः पुरातनसाधूनामुत्कर्षप्रतीतेः व्यतिरेकोऽलङ्कारः, अपि च अप्रस्तुतेभ्यः साधारण-ऋषिभ्यो विशेषस्य वसिष्ठस्य प्रतीतेः अप्रस्तुतप्रशंसा, अनयोरत्र सङ्करः । अनुष्टुप् छन्दः ।।१०।।

टिप्पणी-लौकिकानाम्--लोके विदितानाम्, लोक + ठञ् + षष्ठीबहुवचने रूपम् ।

ऋषीणाम्—सामान्य ढङ्ग के महात्मा जिस किसी बात को कहते हैं, उसे वे पहले खूब सोच-विचार लेते हैं । उसकी सम्भावना तथा असम्भावना आदि के विषय में पर्याप्त तर्क-वितर्क कर लेते हैं। अतः उनका कथन सत्य होता है। यही है भाव श्लोक की पहली लाइन का। किन्तु इसके ठीक विपरीत वशिष्ठ-सदृश पुरातन महर्षि यदि किसी बात को लापरवाही से भी कह दें अथवा स्वप्न में भी बड़-बड़ा दें तो भी उनका वचन अवश्य ही सत्य सिद्ध होता है--यही है भाव श्लोक की दूसरी लाइन का ।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।। १० ।।

शब्दार्थः—भूयो भूयः=बार-बार, संदिष्टम्=सन्देश दिया है। गर्भदोहदः=गर्भावस्था की अभिलाषा, सम्पादयितव्यः=पूरी करनी चाहिए ।

टीका-अष्टावक्रेति । भूयोभूयः=पुनः पुनः, आभीक्ष्ण्येनेत्यर्थः, विप्सायां द्विर्भावः, सन्दिष्टम्=आदिष्टम् । गर्भदोहादः—गर्भस्य दोहादः=अभिलाषः, गर्भिण्याः पान-

भूयो भूयः संदिष्टम्—'यः कश्चिद्गर्भदोहदो[1] भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरात् [2]सम्पादयितव्य' इति ।

रामः—क्रियते यद्येषा[3] कथयति ।

अष्टावक्रः--ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्—'वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि । वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः । 'तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्यामः' इति ।

रामः--(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु । भगवता वसिष्ठेन न किंचिदाष्टिोऽस्मि ? ।

अष्टावक्रः-- श्रूयताम् ।

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् ।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः ।। ११ ।।

भोजनविहाराद्यभिलाष इत्यर्थः, मानयितव्यः=सम्भावयितव्यः, सम्पादयितव्यः = सम्पादनेन सफलीकार्य इत्यर्थः ।

टिप्पणी--सन्दिष्टम्--सम् + √दिश् + कर्मणि क्तः । सम्पादयितव्यः - सम + √पद् + णिच् + तव्यत् + विभक्तिकार्यम् । **गर्भदोहदः**—गर्भिणी स्त्री की खान-पान विषयक अभिलाषा । गर्भधारण की अवस्था में स्त्रियों का मन बहुत सी चीजों को खाने-पीने तथा देखने का होता है । इस प्रकार की इच्छा को ही गर्भदोहद कहते हैं । गर्भिणी स्त्रियाँ कसोरा, पुरवा तथा मिट्टी की तस्तरी आदि फोड़कर खाने की अभिलाषा करती हैं । गर्भदोहद अत्यन्त प्राचीन तथा प्रायः सर्वत्र व्यापक है । यदि गर्भवती की इच्छाएँ पूरी न की जाँय तो गर्भस्थ शिशु पर मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है ।

शब्दार्थः--ननान्दुः=ननद के, पत्या=पति (ऋष्यशृङ्ग) के द्वारा, देव्याः= महारानी (जानकी) के लिए, सन्दिष्टम्=सन्देश दिया गया है, कठोरगर्भा= पूर्णगर्भा । पुत्रपूर्णोत्संगाम्=पुत्र से भरी गोदवाली, आयुष्मतीम्=चिरञ्जीविनी तुमको ।

टीका—अष्टावक्र ऋष्यशृङ्गस्य सन्देशं श्रावयितुमुद्युङ्क्ते—ननान्दुरिति । ननान्दुः=पतिस्वसुः, 'ननान्दा तु स्वसा पत्युः 'इत्यमरः), पत्या=स्वामिना, ऋष्यशृङ्गेणेत्यर्थः, देव्याः=सीताया इत्यर्थः, सन्दिष्टम्=सन्देशो दत्तः, किमिति तदेव कथयति--वत्से=कल्याणि, कठोरगर्भा–कठोरः=पूर्णः गर्भः यस्यास्तादृशी । पुत्रपूर्णोत्सङ्गाम्--पुत्राभ्याम्=सुताभ्यां पूर्णः=भूषितः उत्सङ्गः=क्रोडः यस्यास्तथाविधाम्, आयुष्मतीम्=चिरञ्जीविनीम्, त्वाम्, द्रक्ष्यामः=अवलोकयिष्यामः ।

---

१. स्वगर्भदौहृदोदयः, २. मानयिव्यः, ३. यदेषा ।

बार-बार (कह कर) यह सन्देश दिया है कि 'इस (सीता) की जो कोई भी गर्भावस्था की अभिलाषा हो, वह अवश्य ही अतिशीघ्र पूरी की जाय।'

राम—(इनकी अभिलाषा पूरी-) की जाती है, यदि ये बतलाती हैं तो।

अष्टावक्र—ननद के पति (अर्थात् ननदोई ऋष्यशृङ्ग) के द्वारा भी महारानी (आप जानकी) के लिये सन्देश दिया गया है कि—"बच्ची, (तुम) पूर्ण-गर्भा हो (अर्थात् तुम्हें अब शीघ्र ही बच्चा पैदा होने वाला है), अतः (यहाँ यज्ञ में) नहीं लाई गई हो। वत्स रामभद्र भी तुम्हारे मनोरञ्जन के लिये ही (वहीं) रक्खे गये हैं। अतः पुत्र से भरी हुई गोदवाली, चिरञ्जीविनी तुमको (हम) देखेंगे'। ऐसा (सन्देश दिया है)।

रामः—(हर्ष, लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ) ऐसा ही होवे। भगवान् वसिष्ठ के द्वारा कुछ नहीं आदेश दिया गया हूँ? (अर्थात् भगवान् वसिष्ठ ने मुझे कुछ आदेश नहीं दिया है)?

अष्टावक्र—(दिया है) सुनिये—

हम लोग जामाता (ऋष्यशृङ्ग) के यज्ञ के कारण (यहाँ) रुके हुए (हैं)। तुम (अभी) बालक ही (हो) और राज्य नया (है)। (इसलिये) प्रजा के अनुरञ्जन में तत्पर होओ। उससे यश (होगा), जो आप (रघुवंशी) लोगों का उत्कृष्ट धन (है) ॥ ११ ॥

टिप्पणी—कठोरगर्भा—जिस गर्भवती का प्रसव-समय पास में आ गया हो उसे कठोरगर्भा कहते हैं।

अनीता—आ + √नी + क्त + स्त्रियां टाप्।

अन्वयः—वयम्, जामातृयज्ञेन, निरुद्धाः, (स्मः); त्वम्, बालः, एव, असि; च, राज्यम्, नवम्, (वर्तते); (अतः) प्रजानाम्, अनुरञ्जने, युक्तः, स्याः; तस्मात्, यशः, (भविष्यति), यत्, वः, परमम्, धनम्, (अस्ति) ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—वयम्=हम लोग, जामातृयज्ञेन=जामाता के यज्ञ के कारण, निरुद्धाः=रुके हुए, (स्मः=हैं), त्वम्=तुम, बालः=बालक, एव=ही, (असि=हो), च=और, राज्यम्=राज्य, नवम्=नया, (वर्तते=है), (अतः=इसलिये) प्रजानाम्=प्रजा के, अनुरञ्जने=अनुरञ्जन में, प्रसन्न रखने में, युक्तः=तत्पर, स्याः=होओ, रहो, तस्मात्=उससे, यशः=यश, कीर्ति, (भविष्यति=होगी), यत्=जो, वः=आप लोगों का, परमम्=उत्कृष्ट, धनम्=धन, (अस्ति= है) ॥ ११ ॥

टीका—जामातृयज्ञेनेति। वयम्=वसिष्ठादयः, जामातृयज्ञेन—जामातुः=ऋष्यशृङ्गस्येत्यर्थः यज्ञेन=मखेन, करणेन, ऋष्यशृङ्गेति वक्तव्ये जामात्र्युक्तिः पूज्यतास्फोरणाय, निरुद्धाः=उपरुद्धाः, स्म इति शेषः, यज्ञे ऋत्विक्त्वेन व्रतिनः सन्तः आबद्धाः स्म

रामः--यथा [1]समादिशति भगवान्मैत्रावरुणिः ।

स्नेहं दयां च[2] सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य[3] मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।। १२ ।।

सीता—अत एव राघवधुरन्धर आर्यपुत्रः । [अदो जेव्व राहव[4]धुरन्धरो अज्जउत्तो] ।

इत्यर्थः, त्वम्=रामः, बालः=अपरिणतवयाः, राज्यतन्त्रविचारोपमर्दानिभिज्ञ इति भावः, एव=एवकारेण राज्यभारवहने सन्देहो द्योतितः, असीति शेषः, च=तथा, राज्यम्=साम्राज्यम्, नवम्=नवाधिगतम्, अचिरमेव त्वं राज्येऽभिषिक्तोऽसीति भावः, अतः=अस्मात् कारणात्, प्रजानाम्=प्रकृतीनाम्, अनुरञ्जने=सन्तोषणे, प्रसादने, युक्तः=तत्परः, दत्तावधान इत्यर्थः, स्याः=भवेः, विधिलिङ्, मध्यमपुरुषैकवचनम्, तस्मात्=प्रजानुरञ्जनात्, यशः=कीर्तिः, भविष्यतीति शेषः, यत्=उत्पन्नं यद्यश इत्यर्थः, वः=इक्ष्वाकुवंशप्रसूतानां युष्माकम्, परमम्=श्रेष्ठम्, धनम्=सम्पत्तिरस्तीति शेषः ।।११।।

टिप्पणी--बालः—यहाँ 'बाल' का अर्थ है--राज्यकार्य के सञ्चालन में अनुभवरहित ।

नवं च राज्यम्--राज्य नया है । भाव यह है कि राज्य प्राप्त किये तुम्हें अभी अधिक दिन नहीं बीते हैं ।

तीसरे चरण के प्रति प्रथम और द्वितीय चरण हेतु हैं, अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—इन्द्रवज्रा । छन्द का लक्षण—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥

शब्दार्थः—यथा=जैसी, आदिशति=आज्ञा देते हैं, मैत्रावरुणिः=मित्र तथा वरुण की सन्तान अर्थात् वसिष्ठ ।

टीका—यथेति । यथा=येन प्रकारेण, आदिशति=आज्ञापयति, भगवान्=पूज्यः समर्थश्च, मैत्रावरुणिः—मित्रश्च वरुणश्च तौ मित्रावरुणौ ('देवताद्वन्द्वे च' ६।३।२ पा० सू० इत्यानङ्०) तयोरपत्यं पुमानिति ('बाह्वादिभ्यश्च' ४।१।८९६ पा० सू० इति अञ् प्रत्ययः) मैत्रावरुणिः=वसिष्ठः । उर्वसीं दृष्ट्वा कामपरवशयोः मित्रावरुणयोः स्खलितं तेजः कुम्भे बहिरन्तश्च पतितमासीत् । तत्र तु बहिः वसिष्ठः अन्तश्चागस्त्यः जज्ञे । अयमेव वसिष्ठस्य मैत्रावरुणिसंज्ञायाः अगस्त्यस्य कुम्भयोनिसंज्ञायाश्च हेतुः विष्णुपुराणादौ द्रष्टव्यः ।

टिप्पणी--मैत्रावरुणिः--यहाँ वसिष्ठ को 'मैत्रावरुणि' शब्द से कहा गया है । एक बार सौन्दर्य एवं यौवन से मतवाली उर्वशी को देखकर मित्रावरुण का वीर्यपात

---

१. आह, २. तथा, ३. लोकानां, ४. राहवकुलधुरंधरो ।

राम—पूज्य मैत्रावरुण (वसिष्ठ) जैसा आदेश देते हैं, (वैसा ही करूँगा)। प्रजा-वर्ग के अनुञ्जन के लिये प्रेम, दया, सुख अथवा जनक की पुत्री (सीता) को भी छोड़ते हुए मुझे पीडा न होगी (अर्थात् प्रजा की प्रसन्नता के लिये मैं बड़ा से बड़ा वलिदान कर सकता हूँ) ॥१२॥

सीता—इसीलिये आर्यपुत्र रघुवंशशिरोमणि हैं।

हो गया। घड़े के बाहर पड़े अमोघ वीर्य से वसिष्ठ तथा घड़े के भीतर पड़े वीर्य से अगस्त्य की उत्पत्ति हुई थी। मित्र एवं वरुण ये दोनों साथ-साथ रहा करते थे। अतः दोनों का ही 'मित्रावरुण' यह मिला हुआ नाम पुराण आदि में मिलता है।

अन्वयः—लोकस्य, आराधनाय, स्नेहम्, च, दयाम्, च, सौख्यम्, यदि वा, जानकीम्, अपि, मुञ्चतः, मे, व्यथा, न, अस्ति ॥१२॥

शब्दार्थः—लोकस्य=प्रजावर्ग के, आराधनाय=अनुरञ्जन के लिये, प्रसन्न रखने के लिये, स्नेहम्=प्रेम, च=तथा, दयाम्=दया, च=और, सौख्यम्=सुख, यदि वा=अथवा, जानकीम्=जनक की पुत्री सीता को, अपि=भी, मुञ्चतः=छोड़ते हुए, मे=मुझे, व्यथा=पीडा, न=नहीं, अस्ति=होगी ॥ १२ ॥

टीका—स्नेहमिति। लोकस्य=प्रजाजनस्य, आराधनाय=अनुरञ्जनाय, प्रीणनायेति यावत्, प्रजाजनान् आराधमितुमित्यर्थः, स्नेहम्=भार्यादिविषयकम् अनुरागम्, च=तथा, दयाम्=परदुःखहरणेच्छाम्, भूतेषु दयाम्, गर्भिणीविषयां दयां वेत्यर्थः, च, सौख्यम्=सुखम्, च, स्वार्थे ष्यञ्, पुत्रमुखदर्शनलालनजातं वेत्यर्थः, यदि वा=अथवा, जानकीम्=प्राणेभ्योऽपि प्रियां सीताम्, अपि=च, मुञ्चतः=त्यजतः, मे=मम, प्रजानुरञ्जकस्य रामस्येत्यर्थः, व्यथा=क्लेशः, न अस्ति=न विद्यते। स्नेहादीनां का कथा ? प्राणाधिकप्रियायाः सीतायाः अपि परित्यागेन प्रजानुरञ्जनं मेऽभीप्सितमित्यर्थः ॥१२॥

टिप्पणी—**सौख्यम्**—सुख + स्वार्थे ष्यञ् + विभक्तिः।

मुञ्चतः—√मुच् + शतृ + ष० ए० व० विभक्तिकार्यम्। **नास्ति मे व्यथा**—प्रजानुरञ्जन के लिये भगवान् राम आगे इसी अङ्क में सीता का परित्याग करनेवाले हैं, उसी की ओर यहाँ सङ्केत किया गया है।

इस श्लोक में अर्थापत्ति एवं तुल्ययोगिता अलङ्कार एवं अनुष्टुप् छन्द है ॥१२॥

शब्दार्थः—राघवधुरन्धरः=रघुवंशियों में सर्वश्रेष्ठ, रघुवंशशिरोमणि, आर्यपुत्रः=भवान्, आदरणीय आप।

टीका—सीतेति। अत एव=अस्मात् कारणादेव, लोकाराधनतत्परत्वादेवेत्यर्थः, **राघवधुरन्धरः**—राघवाणाम्=रघुवंशीयनरपतीनाम् धुरन्धरः=अग्रगण्यः, रघुवंशीयनरपतिशिरोमणिरिति भावः, आर्यपुत्रः आर्यस्य=अत्यन्तादरणीयस्य मम श्वशुरस्य पुत्रः=सुतः।

रामः--कोऽत्र भोः। [1]विश्राम्यतामष्टावक्रः।

अष्टावक्रः--(उत्थाय परिक्रम्य च।) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

(इति निष्क्रान्तः।)

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः--जयति जयत्यार्यः। आर्य ! अर्जुनेन[2] [3]चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां [4]वीथ्यामभिलिखितम्। तत्पश्यत्वार्यः।

रामः--जानासि वत्स ! दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्[5]तमवधिं यावत्।

लक्ष्मणः--यावदार्याया हुताशनशुद्धिः[6]।

रामः--शान्तं [7]पापम् (ससान्त्ववचनम्।)

टिप्पणी—अत एव—प्राणप्रिय राम के मुख से प्रजा के लिये अपने भी त्याग की बात सुनकर सीता प्रसन्नता पूर्वक राम की प्रशंसा करती हैं। इससे सीता के चरित्र की उदात्तता सूचित होती है।

आर्यपुत्रः—प्राचीन समय में स्त्रियाँ अपने पति को 'आर्यपुत्र' इस अत्यन्त आदरणीय शब्द से सम्बोधित किया करती थीं।

शब्दार्थः—आर्यः=पूज्य, मान्य, चित्रकरेण=चित्रकार के द्वारा, अस्मदुपदिष्टम्=हमारे द्वारा बतलाया गया, चरितम्=जीवन-वृत्त, वीथ्याम्=चित्र-पट पर, चित्र-भित्ति पर, आलिखितम्=चित्रित किया गया है, बनाया गया है।

टीका—लक्ष्मण इति। चित्रकरेण–चित्रं करोतीति चित्रकरः=चित्रशिल्पी तेन, अस्मदुपदिष्टम्=अस्माभिः वर्णितम्, आर्यस्य=पूज्यस्य भवतः, चरितम्=जीवनवृत्तान्तम्, वीथ्याम्=चित्रफलके, पट्टे पटे वा, निर्मितायां चित्रश्रेण्यामित्यर्थः, अभिलिखितम्=चित्रितम्। पक्षान्तरे अस्य नाटकस्यास्मिन्नंके इत्यपि।

टिप्पणी—चित्रकरेण—चित्रं करोतीति, चित्र + √कृ + ट=अ, + विभक्ति-कार्यम्।

वीथ्याम्—चित्र-पंक्ति। यहा 'वीथी' का अर्थ है। चित्रों की वह श्रेणी जो एक विशेष प्रकार के वस्त्र पर बनी थी। 'वीथी' का अर्थ दीवार पर बनी चित्रों की श्रेणी करना असंगत है, क्योंकि राम के अन्तःपुर में चित्रकार आदि का प्रवेश संभव न था।

शब्दार्थः—दुर्मनायमानाम्=खिन्नमनवाली, उदासीन, देवीम्=महारानी (सीता) को, विनोदयितुम्=बहलाना, मनोविनोद करना, कियन्तम्=किस, अवधिं यावत्=सीमा

---

१. विश्राम्यताद्, २. तेन, ३. चित्रकारेण, ४. वीथिकायाम्,।
५. कियानवधिः, ६. हुताशने विशुद्धिः, ७. शान्तम्,

राम—अरे, कौन, कौन है यहाँ ? अष्टावक्र विश्राम कराये जाँय (अर्थात् अष्टावक्र को विश्राम कराओ) ।

अष्टावक्र—(उठ कर और घूम कर) अरे, कुमार लक्ष्मण आ गये ।

(ऐसा कह कर निकल गये)

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—जय हो आर्य की जय हो । आर्य, अर्जुन (नामक) चित्रकार ने हमारे द्वारा बतलाये गये आपके चरित को इस चित्रपट पर चित्रित किया है, तो आर्य (इसे) देखें ।

राम—लघुबन्धु, (तुम) खिन्नमनवाली महारानी (सीता) को बहलाना जानते हो । अच्छा, (यह चित्र चरित की) किस सीमा तक (बनाया गया है) ?

लक्ष्मण—पूजनीया (सीता) की अग्नि-शुद्धि तक ।

राम—पाप शान्त हो (अर्थात् ऐसा मत कहो) (अत्यन्त मधुर वचनों के साथ)—

तक, हद तक । आर्याया=पूजनीयाः (सीता) की,हुताशनशुद्धिः=अग्नि-शुद्धि, अग्नि-परीक्षा ॥

टीका—राम इति । वत्सेति लालनपूर्वकं सम्बोधनम्, दुर्मनायमानाम्=दुःखितमनस्काम्, खिन्नामित्यर्थः, देवीम्=महाराज्ञीं सीताम्, विनोदयितुम्=प्रीणयितुम्, कियन्तमधिं यावत्=कियत्पर्यन्तम्, केन चरितेन सह समाप्तं तदिति प्रश्नाशयः । आर्यायाः=परमपूज्यायाः सीतायाः, हुताशनशुद्धिः—हुताशने=वह्नौ शुद्धिः=चरितपरीक्षेति यावत् ॥

टिप्पणी—वत्स—अपने पुत्र को तथा स्नेह के पात्र छोटे व्यक्तियों को 'वत्स' कहा जाता है ।

देवीम्—महारानी को 'देवी' कहा जाता है ।

कियन्तमवधिं यावत्—यहाँ 'यावत्' अधिकारार्थक अव्यय है । अतः 'कियन्तमवधिम् अधिकृत्य' यह अर्थ किया जाता है ।

आर्यायाः—पूजनीय स्त्रियों को अवस्था में छोटे व्यक्ति 'आर्या' कहते हैं ।

हुताशनशुद्धिः—लङ्का से वापस लाने के बाद राम ने सबके समक्ष सीता की शुद्धि-परीक्षा अग्नि में की थी । यह कथानक अतिप्रसिद्ध है ॥

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।। १३ ।।

देवि देवयजनसम्भवे[1] ! प्रसीद । एषः ते जीविताविधः प्रवादः ।

[2]क्लिष्टो जनः किल[3] जनैरनुरञ्जनीय-
[4]स्तन्नो यदुक्तमशुभं न हि[5] तत्क्षमं ते ।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न [6]चरणैरवताडनानि[7] ।। १४ ।।

अन्वयः—उत्पत्तिपूरितायाः, अस्याः, पावनान्तरैः, किम् ? तीर्थोदकम्, च, वह्निः, च, अन्यतः, शुद्धिम्, न, अर्हतः ।। १३ ।।

शब्दार्थः—उत्पत्तिपरिपूतायाः=जन्म से ही पवित्र, अस्याः=इस (सीता) का, पावनान्तरैः=पवित्र करने वाले दूसरे पदार्थों से, किम्=क्या प्रयोजन ? तीर्थोदकम्=तीर्थ का जल, च=और, वह्निः=अग्नि, च=इस च का कुछ अर्थ नहीं है, अन्यतः=दूसरे पदार्थ से, शुद्धिम्=शुद्धि के, शुद्ध होने के, न=नहीं, अर्हतः=योग्य हैं ।। १३ ।।

टीका—उत्पत्तिपरिपूताया इति । उत्पत्तिपरिपूतायाः—उत्पत्तेः=जन्मनः प्रभृति इत्यर्थः अथवा उत्पत्त्या=जन्मना परिपूतायाः=शुद्धायाः, अयोनिजत्वादत्र सीतायाः पवित्रत्वं कथितम्, अस्याः=पुरोवर्तमानायाः एतस्याः सीतायाः, शुद्धयर्थं, पवनान्तरैः—अन्यानि पावनानि, पावयन्तीति पावनानि (नन्द्यादित्वाल्ल्युः प्रत्ययः), पावनान्तराणि तैः, अन्यैर्वह्न्यादिपवित्रतासाधनभूतैरिति भावः, किम्=किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः, शुद्धिर्हि दोषविनाशिका, अविद्यमानदोषाया शुद्धया किम् ? निखिलमेतन्निरर्थकमित्यर्थः, यतः तीर्थोदकम्—तीर्थानाम्=गङ्गादीनामुदकम्=जलम्, च=तथा, वह्निः=अग्निः, च=अपि, अन्यतः=पावनान्तरादित्यर्थः, शुद्धिम्=पवित्रताम्, न=नहि, अर्हतः=सम्पादयितुं योग्यौ, स्वयमेव परिपूतत्वादिति शेषः । वस्तुतः सीतायाः साऽग्निपरीक्षा तु मूढानां प्रत्ययार्थमासीदित्यभिप्रायः । अत्र प्रतिवस्तूपमालङ्कारः तुल्ययोगितया सङ्कीर्यते । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। १३ ।।

टिप्पणी—**उत्पत्तिपरिपूतायाः**—सीता का जन्म किसी के पेट से न होकर यज्ञ की वेदी से हुआ था । अतः वह जन्म से ही पावन थीं ।

शुद्धिमर्हतः—तीर्थजल तथा अग्नि स्वतः पवित्र तथा दूसरों को पावन करने वाले हैं, उन्हे दूसरे से पवित्र होने की अपेक्षा नहीं है । ठीक ऐसी ही बात सीता के विषय में भी समझनी चाहिये ।

---

१. सीते इत्यधिकः, २. कष्टं, कष्टः, ३. कुलधनैः, ४. तन्मे, ५. च, ६. मुसलैः, ७. ताडितानि ।

जन्म से ही पावन इस (सीता) का, पवित्र करने वाले दूसरे पदार्थों से क्या प्रयोजन ? (अर्थात् कुछ नहीं)। तीर्थ का जल और अग्नि दूसरे पदार्थ से शुद्धि के योग्य नहीं हैं (अर्थात् शुद्ध होने की अपेक्षा नहीं रखते हैं) ॥ १३ ॥

यज्ञ-भूमि से उत्पन्न होने वाली हे देवि, प्रसन्न होओ। यह तुम्हारा जीवन-पर्यन्त रहने वाला प्रवाद है।

दुःखित व्यक्ति लोगों के द्वारा, अवश्य ही, प्रसन्न करने के योग्य है। अतः तुम्हारे विषय में हम लोगों के द्वारा जो अभद्र कहा गया है, वह नहीं उचित है, क्योंकि सुगन्धित पुष्प की मस्तक पर स्थिति स्वभाव सिद्ध है, पैरों से ठुकराया जाना नहीं (स्वभाव-सिद्ध है) ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—देवयजनसम्भवे=यज्ञ-भूमि से उत्पन्न, जीवितावधिः=जीवन-पर्यन्त रहने वाला, प्रवादः=अपवाद, लाञ्छन।

टीका—देवीति। देवयजनसंभवे—देवाः=सुराः इज्यन्ते=आहुत्यादिभिः तर्प्यन्ते अस्मिन्निति देवयजनम्=यज्ञभूमिः, सैव, सम्भवत्यस्मादिति व्युत्पत्त्या सम्भवः=उत्पत्तिस्थानं यस्याः सा तथोक्ता, तत्सम्बुद्धौ, जीवितावधिः—जीवितम्=जीवनम् अवधिः=परिच्छेदः सीमा यस्य तादृशः, प्रवादः=अलीकलोकापवादः, लाञ्छनमिति यावत्।

अन्वयः—क्लिष्टः, जनः, जनैः, किल, अनुरञ्जनीयः, तत्, ते, नः, यत्, अशुभम्, उक्तम्, तत्, न, क्षमम्, (हि), सुरभिणः, कुसुमस्य, मूर्ध्नि, स्थितिः, नैसर्गिकी, सिद्धा, चरणैः, अवताडनानि, न ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—क्लिष्टः=दुःखित, जनः=व्यक्ति, जनैः=लोगों के द्वारा, किल=अवश्य ही, अनुरञ्जनीयः=प्रसन्न करने के योग्य है, मन बहलाने के योग्य है, तत्=अतः, ते=तुम्हारे विषय में, नः=हम लोगों के द्वारा, यत्=जो, अशुभम्=अभद्र, अनुचित, उक्तम्=कहा गया है, तत्=वह, न=नहीं, क्षमम्=योग्य है, उचित है, (हि=क्योंकि), सुरभिणः=सुगन्धित, कुसुमस्य=पुष्प की, मूर्ध्नि=मस्तक पर, स्थितिः=स्थिति, वर्तमानता, नैसर्गिकी=स्वाभाविक; सिद्धा=सिद्ध है, चरणैः=पैरों से, अवताडनानि=ठुकराया जाना, न=नहीं ॥ १४ ॥

टीका—क्लिष्टइति—क्लिष्टः=दुःखितः, जनः=व्यक्तिः, जनैः=अन्यैर्मनुष्यैः, किलेति निश्चये, अनुरञ्जनीयः=आराधनीयः, क्लेशविस्मारणेन लालनीयः; तत्=तस्मात्, ते=तव विषये, नः=अस्माकम्, आवयोरिति भावः, यत्=यत्किमपि, यावदार्याया हुताशनशुद्धिरितिरूपमित्यर्थः, अशुभम्=अभद्रम्, उक्तम्=कथितम्, तत्=तत्कथनमित्यर्थः, न क्षमम्=न योग्यम्, अनुचितमिति भावः, (हि=यतः), सुरभिणः=

सीता–भवत्वार्यपुत्र, भवतु। एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम् (इत्युत्थाय परिक्रामतः[१])। [होदु[२] अज्जउत्त, होदु। एहि पेक्खह्म दाव दे चरिदम्।]

लक्ष्मणः–इदं [३]तदालेख्यम्।

सीता—(निर्वर्ण्य) क एते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्। [के[४] एदे उवरिणिरन्तरट्ठिदा उवत्थुबन्दि विअ अज्उत्तम्।]

लक्ष्मणः—देवि ! एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतः [५]कृशाश्वात्कौशिकमृषि[६]मुपसंक्रान्तानि। तेन ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

सुगन्धितस्य, कुसुमस्य=पुष्पस्य, मूर्ध्नि=मस्तके, स्थितिः=अवस्थानम्, नैसर्गिकी= स्वाभाविकी, सिद्धा=प्रसिद्धा, चरणैः=पादैः, अवताडनानि=अवमर्दनानि, न=न नैसर्गिकाणीति। अत्र दृष्टान्तालङ्कारस्तथा वसन्ततिलका वृत्तमिति ॥ १४ ॥

टिप्पणी—**कष्टं जनः कुलधनैः**—ऐसा पाठ स्वीकार करने पर इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी—

अन्वयः—कष्टम्, कुलधनैः, जनः, अनुरञ्जनीयः।

शब्दार्थः—कष्टम्=दुःख है, कुलधनैः=कुलकी कीर्ति को ही धन मानने वाले (हम रघुवंशियों के) द्वारा, जनः=प्रजा को, अनुरञ्जनीयः=प्रसन्न रखना है।

दुःख है, कुल की कीर्ति को ही धन मानने वाले (हम रघुवंशियों के) द्वारा प्रजा को प्रसन्न रखना है।

टीका—कष्टम्=अहो दुःखम्, कुलधनैः—कुलम्=कुलकीर्तिरेव धनम्=सम्पत्तिर्येषां तैः, तथोक्तैः (कर्तृभिः), जनः=लोकः, प्रजावर्ग इत्यर्थः, अनुरञ्जनीयः= सन्तोषणीयः, अतो 'वह्निविशुद्धिमन्तरेण नाऽहं त्वां ग्रहीष्यामीति, यदुक्तं तन्नते योग्यमासीदित्यभिप्रायः ॥

अनुरञ्जनीयः—अनु + √रञ्ज + णिच् + अनीय + विभक्तिकार्यम्। **उक्तम्** √वच् + क्त + सम्प्रसारणविभक्तिकार्ये। 'क्लिष्टो जनः' इत्यादि पाठ स्वीकार करने पर "यावदार्याया हुताशनशुद्धिः" रूप लक्ष्मण के वाक्य का अंश समझना चाहिए। किन्तु 'कष्टं जनः कुलधनैः" यह पाठ मानने पर अग्नि-परीक्षा के पूर्व सीता के प्रति कहे गये राम के कठोर वचन को जानना चाहिये।

नो यदुक्तम्—यद्यपि 'यावदार्याया हुताशनशुद्धिः' यह वाक्य लक्ष्मण के द्वारा कहा गया है फिर भी राम लक्ष्मण के साथ अपना अभेद मानकर ऐसा कह रहे हैं।

---

१. परिक्रामति, २. एतन्नास्ति क्वचित्, ३. तावद्, ४. के दाणिं,
५. भृशाश्वात्, ६. ०मृषिं विश्वस्य मित्रं विश्वामित्रम्,

सीता—हो, आर्यपुत्र, (यह अपवाद) हो । आइए, अब आपके चरित को (हम लोग) देखें । (ऐसा कहकर दोनों उठकर घूमते हैं) ।

लक्ष्मण--यह वह चित्र है (जिसके विषय में) मैंने कहा था ।

सीता—(ध्यान से देखकर) ये कौन हैं, जो ऊपर सटकर खड़े हैं तथा आर्य-पुत्र की स्तुति-सी कर रहे हैं ?

लक्ष्मण--हे देवि, ये (प्रयोग एवं उपसंहार के) मन्त्रों के सहित वे जृम्भक अस्त्र हैं, जो पूज्य कृशाश्व से कुशिक के पुत्र ऋषि (विश्वामित्र) को प्राप्त हुए और उनके द्वारा ताडका-वध के समय आर्य (राम) को अनुग्रहपूर्वक दिये गये थे ।

नैसर्गिकी—निसर्गात् आगता, निसर्ग + ठक् + ङीप् + विभक्त्यादिः ।

स्थितिः—√स्था + क्तिन् + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में दृष्टान्त अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण—

"उक्ता वसन्तविलका त–भ–जा–जगौ गः" ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—आर्यपुत्र=आदरणीय श्वसुर के पुत्र, पतिदेव। प्रेक्षामहे=देखें: चरितम्=चरित को ।।

टीका--सीतेति। **आर्यपुत्रस्य**—आर्यस्य=आदरणीयस्य श्वसुरस्य पुत्रः=सुतस्तत्सम्बुद्धौ, प्रेक्षामहे=अवलोकयामः, चरितम्—चित्रे आलिखितं चरितमिति भावः ।।

शब्दार्थः—आलेख्यम्=चित्र; उपरि=ऊपर; निरन्तरस्थिताः=सटकर खड़े हुए, उपस्तुवन्ति=स्तुति कर रहे हैं ।।

टीका–लक्ष्मण इति । इदम्=पुरोवर्ति, तत=पूर्वकथितम्, आलेख्यम्=चित्रम् । निर्वर्ण्य=सध्यानं दृष्ट्वा, उपरि=ऊर्ध्वम्, निरन्तरस्थिताः—निरन्तरम्=अविरलम् स्थिताः=कृतावस्थानाः, अनुपविष्टा इत्याशयः, उपस्तुवन्ति=स्तुतिं कुर्वन्ति ।।

टिप्पणी--**निर्वर्ण्य**--निस् + √वर्ण + ल्यप्। **उपस्तुवति**--उप + √स्तु + लटि प्र० बहुवचनम् ।।

शब्दार्थः--**सरहस्यानि**=प्रयोग तथा उपसंहार के मन्त्रों के सहित, जृम्भकास्त्राणि=जँभाई लानेवाले अस्त्र, उपसंक्रान्तानि=प्राप्त हुए, पास चले गये, प्रसादीकृतानि=अनुग्रहपूर्वक दिये गये थे ।।

टीका—**लक्ष्मण इति** । सरस्यानि–रहसि=एकान्ते भवा रहस्याः=गुह्याः, मन्त्रा इत्यर्थः, ते च मन्त्रा द्वेधा प्रयोगमन्त्राः संहारमन्त्राश्च तैः सहितानि, जृम्भकास्त्राणि—जृम्भन्ते=प्रयोक्तुरिच्छया लक्ष्यं गच्छन्तीति जृम्भकाणि तथा-

रामः—वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि ।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा [1]परस्सहस्राः शरदस्तपांसि ।
एतान्य[2] दर्शन्गुरवः[3] पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ॥ १५ ॥

सीता—नम एतेभ्यः । [णमो एदाणम्] ।

रामः—सर्वथेदानीं[4] [5]त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति ।

सीता—अनुग्रहीतास्मि [अणुगहिदह्मि] ।

लक्ष्मणः—एष: मिथिलावृत्तान्तः ।

सीता—अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरखंडित-

---

विधानि अस्त्राणि=आयुधानि, अथवा—जृम्भयन्ति=सम्मोहकत्वात् स्वलक्ष्यीभूतान् चित्रलिखितानीव निश्चलान् कुर्वन्ति इति जृम्भकाणि तानि च तान्यस्त्राणि, अथवा जृम्भयन्ति=जृम्भां कारयन्ति शत्रूनिति जृम्भकाणि । उपसंक्रान्तानि=उपगतानि, उपसंक्रान्तानीति कर्तृप्रत्ययेन स्वयमेव तानि कौशिकं प्राप्तानीति लभ्यते । प्रसादीकृतानि=अनुकम्पया प्रदत्तानीत्यर्थः, हतायां ताटकायां प्रसन्नेन मुनिना दत्तानीति भावः ॥

टिप्पणी—सरहस्यानि—युद्धस्थल में योद्धा-जन अपने बाण आदि फेंक कर मारने वाले अस्त्रों को अवश्य ही लक्ष्य-वेध के लिये मन्त्र पढ़कर छोड़ते थे और यदि आवश्यक हुआ तो मन्त्र पढ़कर उन्हें शान्त भी करते थे । यही मन्त्र प्रयोग ही रहस्य कहा गया है । रहस्यैः=मन्त्रैः सहितानि सरहस्यानि । रहस्+यत्+विभक्तिकार्यम् ।

जृम्भकास्त्राणि—उन बाणों को जृम्भक अस्त्र कहते हैं, जो रखने वाले व्यक्ति की इच्छा होते ही लक्ष्य का वेध करते हैं, अथवा वे बाण जृम्भकबाण कहे जाते हैं जो लक्ष्य को स्तब्ध या चित्रलिखितसा कर देते हैं; अथवा जृम्भकास्त्र वे बाण हैं जिन्हें छोड़ने पर शत्रु को जभाँई आने लगती है ।

प्रसादीकृतानि—प्रसाद + $\sqrt{}$कृ + क्त + विभक्तिः ।

अन्वयः—ब्रह्मादयः, पुराणाः, गुरवः, ब्रह्महिताय, परःसहस्राः, शरदः, तपांसि, तप्त्वा, स्वानि, एव, तपोमयानि, तेजांसि, एतानि, अपश्यन् ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—ब्रह्मादयः=ब्रह्मा आदि, पुराणाः=प्राचीन, गुरवः=आचार्यों ने, ब्रह्महिताय=वेदों की रक्षा के लिये, परःसहस्राः=हजार वर्षों से भी अधिक,

---

१. परःसहस्रं, २. अपश्यन्, ३. मुनयः, ४. ०थैतानि, ५. प्रसवं ।

राम—हे देवि, (इन) दिव्य अस्त्रों की वन्दना करो।

ब्रह्मा आदि प्राचीन आचार्यों ने वेदों की रक्षा के लिए हजार से भी अधिक वर्षों तक तपस्या करके अपने ही तपोमय तेज इन (अस्त्रों) को देखा (था) ॥१५॥

सीता—इन्हें नमस्कार है।

राम—अब (ये अस्त्र) पूर्णतया तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे।

सीता—(मैं) अनुगृहीत हूँ।

लक्ष्मण—यह मिथिला का वृत्तान्त है।

सीता—अहा ! (यह) खिलते हुए नवीन नीलकमल के समान श्याम, चिकने, सुकोमल, शोभा-सम्पन्न और सुपुष्ट शरीर के सौन्दर्य के कारण आश्चर्य से निश्चल (चकित) पिता (जनक)जी के द्वारा देखी जा रही शान्त तथा मनोहर शोभा से सम्पन्न;

शरदः=वर्षों तक, तपांसि=तपस्या, तप्त्वा=तप कर, करके, स्वानि=अपने, एव=ही, तपोमयानि=तपोमय, तेजांसि=तेज, एतानि=इन (अस्त्रों) को, अपश्यन्=देखा ॥ १५ ॥

टीका—ब्रह्मादय इति। ब्रह्मादयः-ब्रह्मा आदिर्येषां ते ब्रह्मप्रभृतय इत्यर्थः, पुराणाः=प्राचीनाः, आदिभवा इति यावत्, गुरवः=आचार्याः, ब्रह्महिताय-ब्रह्मणः=वेदस्य हिताय=रक्षणाय, परसहस्राः-सहस्राद् परा इति परःसहस्राः-बहुसहस्रा इत्यर्थः, शरदः=वर्षाणि, ('स्यादृतौ वत्सरे शरद्' इत्यमरः), तपांसि=कायशोषकराणि बहुविधानि दुष्कराणि व्रतानि, तप्त्वा=चरित्वा, स्वानि=स्वकीयानि, एव, तपोमयानि=तपःस्वरूपाणि, तेजांसि-तेजः-स्वरूपाणि, एतानि=अमूनि जृम्भकास्त्राणि, अपश्यन्=अवलोकयन्। ब्रह्मादितपोधनानां बहुकालार्जिततपोमयानि तेजांस्येव जृम्भकास्त्ररूपेण परिणतानीति भावः ॥१५॥

टिप्पणी—तप्त्वा-√तप्+क्त्वा। **पुराणाः**-पुरा भवाः पुराणाः, पुरा+ट्यु (अन) निपातनात्।

इस श्लोक में उदात्तालङ्कार एवं रूपक का सङ्कर तथा उपजाति छन्द है। छन्द का लक्षण—"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः" ॥१५॥

शब्दार्थः—सर्वथा=सब प्रकार से, पूर्णतया, त्वत्प्रसूतिम्=तुम्हारी सन्तान को, उपस्थास्यन्ति=प्राप्त होंगे।

टीका—राम इति। सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, 'प्रकारवचने थाल्' इति थाल्; त्वत्प्रसूतिम्=तव सन्ततिम् अस्मद्वंशपरम्परामित्यर्थः, उपस्थास्यन्ति=प्राप्स्यन्ति, त्वत्पुत्राधिकृतानि भविष्यन्तीत्यर्थः।

शब्दार्थः—दलत्-नव-लीलोत्पल-स्निग्ध-मसृण-शोभमान-मांसलेन=खिलते हुए नवीन नीलकमल के समान श्याम, चिकने, सुकोमल, शोभा-सम्पन्न और सुपुष्ट,

शंकरशरासनः शिखण्डमुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखितः। [अम्महे, दलन्तणवणीलुप्पलसामलसिणिद्धमसिणसोहमाणमंसलेन देहसोहग्गेण विह्मअत्थिमिदताददीसन्तसोम्मसुन्दरसिरी [1]अणादरखंडि[2]दसंकरसरासणो सिहण्डमुद्धमुहमुण्डलो अज्जउत्तो आलिहिदो ।]

लक्ष्मणः--आर्ये ! पश्य पश्य ।

सम्बन्धिनो वष्ठिानेष तातस्तवार्चति ।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः ॥ १६ ॥

रामः--[3]द्रष्टव्यमेतत् ।

देह-सौभाग्येन=शरीर के सौन्दर्य के कारण, विस्मय-स्तिमित-तात-दृश्यमान-सौम्य-सुन्दर-श्रीः=आश्चर्य से निश्चल पिता (जनक) जी के द्वारा देखी जा रही शान्त तथा मनोहर शोभा से सम्पन्न, अनादर-खण्डित-शङ्कर-शरासनः = अनायास ही खण्डित किया है शङ्कर के धनुष को जिन्होंने ऐसे (अर्थात् शङ्कर के धनुष को अनायास ही तोड़ने वाले), शिखण्ड-मुग्ध-मुख-मण्डलः = काकपक्ष (शिर के घुंघराले बालों) से मनोहर मुखमण्डलवाले, आर्यपुत्रः=पतिदेव, आलिखितः=चित्रित किये गये हैं ।

टीका—सीतेति । अहो=विस्मयानन्दसंयोगेऽव्ययपदमिदम्, दलदिति–दलत्=विकसत् यत् नवम्=नूतनम् नीलोत्पलम्=नीलकमलम्, उद्भिद्यमानमिन्दीवरमित्यर्थः, तदिव श्यामलम् = श्यामम् स्निग्धम् = चिक्कणम् मसृणम् = कोमलम् शोभमानम् = अङ्गसौष्ठवात् सुन्दरम् मांसलम्=बलवत् ('बलवान् मांसलोंऽसलः' इत्यमरः) तेन, देहसौभाग्येन-देहस्य=शरीरस्य यत् सौभाग्यम्=सौन्दर्यम् तेनोपलक्षितः, हेतुना वा, विस्मयेत्यादिः–विस्मयेन=आश्चर्येण, शोभाधिक्येनेत्यर्थः, स्तिमितः=निश्चलः यः तातः=पिता, जनकः इत्यर्थः, तेन दृश्यमाना=अवलोक्यमाना सौम्या=आह्लादकरी शान्ता वा सुन्दरी=मनोहारिणी रुचिरेत्यर्थः, श्रीः=शोभा यस्य तथोक्तः, अनादरेति–तथा अनादरेण=अवहेलया, आयासं विनैवेत्यर्थः, खण्डितम्=भग्नम् शङ्करस्य=शिवस्य शरासनम्=धनुर्येन तथोक्तः, शिखण्डेत्यादिः—शिखण्डेन=काकपक्षेण ('बालानान्तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः' इति हलायुधः) मुग्धम्=सुन्दरम् मुखलण्डलं यस्य तथोक्तः, आर्यपुत्रः=राम इत्यर्थः, आलिखितः=चित्रितः ।

टिप्पणी--स्निग्धम्–(वि०) √स्निह् + क्त + विभक्तिकार्यम् । सौभाग्यम्–सुभगस्य भावः, सुभग + ष्यञ् + विभक्तिकार्यम् ।

---

१. अनाआस, २. क्खु-थु-ढिद (त्रुटित), ३. सुश्लिष्टम् ।

शङ्कर के धनुष को अनायास ही तोड़ने वाले; शिर के घुँघराले बालों से मनोहर मुखमण्डल वाले आर्यपुत्र (अर्थात् पतिदेव रामचन्द्र) चित्रित किये गये हैं।

लक्ष्मण--आर्ये, देखिये देखिये—

यह आपके पिता (जनक जी) और जनक कुल के पुरोहित (महर्षि) गौतम के पुत्र शतानन्द (वर-पक्ष के) सम्बन्धी वसिष्ठ आदि को सत्कृत कर रहे हैं (अर्थात् वसिष्ठ आदि का सत्कार कर रहे हैं) ॥ १६ ॥

राम—यह (दृश्य) दर्शनीय है।

तात आलिखितः—यहाँ उस समय के दृश्य का वर्णन किया गया है, जब कि धनुष-भङ्ग के प्रसङ्ग से रामचन्द्र मिथिलापुरी में पधारे हैं।

अन्वयः—एषः, तव, तातः, च, जनकानाम्, पुरोहितः, गौतमः, शतानन्दः, सम्बन्धिनः, वसिष्ठादीन्, अर्चति ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—एषः=यह, तव=आपके, तातः=पिता, च=और, जनकानाम्=जनकों के, जनक-कुल के, पुरोहितः=पुरोहित, गौतमः=गोतम के पुत्र, शतानन्द;=शतानन्द, सम्बन्धिनः=सम्बन्धी, वसिष्ठादीन्=वसिष्ठ आदि को, अर्चति पूज रहे हैं, सत्कृत कर रहे हैं ॥ १६ ॥

टीका—**सम्बन्धिन इति**। एषः=अयम्, तव=भवत्याः, तातः=पिता जनकः, च= तथा, जनकानाम्=जनककुलस्य, पुरोहितः=पुरोधाः, गौतमः अहल्यायां जातः गोतमस्य महर्षेः तनुजः, शतानन्दः=शतानन्दनामा मुनिः, सम्बन्धिनः वसिष्ठांदीन्=वरपक्षीयान् जनानित्यर्थः, अर्चति–सत्करोति। अत्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—गौतमः–गोतमस्यापत्यं पुमान्, गोतम अपत्यार्थे अण्+विभक्ति-कार्यम्।

पुरोहितः—पुरो धीयते इति पुरोहितः, पुरस्+√धा+कर्मणि क्त+ विभक्तिकार्यम्।

जनकानां पुरोहितः—यहाँ यह ध्यान रखना है जनक एवं उनके परिवार के सदस्य आदि दशरथ आदि की तथा जनक के पुरोहित सदानन्द वसिष्ठ आदि की पूजा में संलग्न हैं। ऐसा मानने पर ही 'अर्चति' क्रिया में एकवचन की सार्थकता सिद्ध होगी, अन्यथा 'अर्चतः' प्रयोग होता। शाकुन्तल में दुष्यन्त भी अपने पुरोहित को ही कण्व के शिष्यों के सत्कार के लिये प्रयुक्त करते हैं।

इस श्लोक में तुल्ययोगिता अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ १६ ॥

जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः॥ १७॥

सीता—एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो! जानामि तस्मिन्नेव काले वर्ते। [एदे क्खु तक्कालकिदगोदाणमङ्गला चत्तारो भादरो विआहादिक्खिदा तुझे। अह्मो! जाणामि तस्सि जेव्व काले वत्तामि।]

रामः—एवम्!

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत्सुमुखि! गौतमार्पितः।
[1]अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः॥ १८॥

अन्वयः—जनकानाम्, च, रघूणाम्, सम्बन्धः, कस्य, प्रियः, न, (अस्ति); यत्र, स्वयम्, कुशिकनन्दनः, दाता, च, ग्रहीता, (वर्तते)॥ १७॥

शब्दार्थः—जनकानाम्=जनकवंशियों का, च=तथा, रघूणाम्=रघुवंशियों का, सम्बन्धः=सम्बन्ध, कस्य=किसे, प्रियः=प्रिय, न=नहीं, (अस्ति=है); यत्र=जिस वैवाहिक सम्बन्ध में, जहाँ पर, स्वयम्=स्वयं, साक्षात्, कुशिकनन्दनः=कुशिक के पुत्र, विश्वामित्र, दाता=(कन्या–) दान करवे वाले, च=और, ग्रहीता=(कन्या–) दान लेने वाले, (वर्तते=हैं)॥ १७॥

टीका—**जनकानामिति**। जनकानाम्=जनकवंशीयानाम्, च, रघूणाम्=रघोः गोत्रापत्यानीति रघवस्तेषाम् रघुवंश्यानाम्, सम्बन्धः=विवाहनिबन्धनमित्यर्थः, कस्य=कस्य जनस्य' न प्रियः=प्रीतिकरः? सर्वस्य प्रिय इत्यर्थः, यत्र=यस्मिन् वैवाहिके सम्बन्धे, कुशिकनन्दनः=विश्वामित्रः, दाता=दानकर्ता, तथा, ग्रहीता=प्रतिग्रहीता च, वर्तत इति शेषः। उभयोर्वंशयोः पूज्यत्वात् विश्वामित्रे दातृत्व-ग्रहीतृत्वोपचारो ज्ञेयः। अत्रोदात्तालङ्कारोऽनुष्टुब्वृत्तञ्चेति॥ १७॥

टिप्पणी—**यत्र दाता ग्रहीता च**—महर्षि विश्वामित्र जनककुल तथा रघुकुल–दोनों–के माननीय थे। उन्हीं की प्रेरणा से धनुष-यज्ञ का कार्य सम्पन्न हुआ था। इस तरह जनक को प्रेरित करने के कारण विश्वामित्र कन्यादाता थे तथा दशरथ एवं राम को प्रेरित कर सीता को वधू के रूप में स्वीकार करवाने के कारण ग्रहीता थे।

शब्दार्थः—**तत्कालकृतगोदानमङ्गलाः**—तत्काल किया गया है गोदान (केशान्त–संस्कार) नामक माङ्गलिक कर्म जिनका ऐसे, **विवाहदीक्षिताः**—विवाह में दीक्षित हुए, विवाह के समय व्रत का पालन करते हुए॥

---

१. अयमुद्ग्रहीत, स्वयमागृहीत,

जनकवंशियों तथा रघुवंशियों का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं (है), जिस (सम्बन्ध) में स्वयं कौशिक (विश्वामित्र) दान करने वाले (अर्थात् कन्या-दाता) और दान लेने वाले (अर्थात् कन्या-दान लेने वाले) (दोनों ही) हैं ॥ १७ ॥

सीता—तत्काल किया गया है गोदान (केशान्त–संस्कार) नामक माङ्गलिक कर्म जिनका ऐसे, विवाह में दीक्षित हुए ये आप लोग चारों भाई हैं। ओह ! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि (मैं) उसी स्थान और उसी समय में हूँ।

राम—ऐसा ही है (अर्थात्) जैसा आप कह रही हैं, वैसा ही है। हे सुमुखि, मानो यह वही समय है, जब गोतम के पुत्र (सदानन्द) के द्वारा (मेरे हाथ में) अर्पित किया गया, तथा धारण किये गये सुन्दर कङ्कण से युक्त इस तुम्हारे हाथ ने शरीरधारी महोत्सव के समान मुझे आनन्दित किया था ॥ १८ ॥

टीका--सीतेति। तत्कालेत्यादिः—स एव कालः तत्कालः=विवाह प्राक्काल इत्यर्थः, तस्मिन् कृतम्=सम्पादितम् गवाम्=केशानाम् दानम्=छेदनं केशान्ताख्यं क्षौरकर्म इत्यर्थः, तदेव मङ्गलम्=शुभं कर्म येषां ते तथोक्ताः, अथवा गवाम्=धेनूनाम् दानम्=वितरणम् तदेव मङ्गलं येषां ते तादृशाः, विवाहदीक्षिताः—विवाहे=उद्वाहे दीक्षिताः=संस्कृताः, तस्मिन्नेवकाले=हरधनुर्भङ्गादिकाले इत्यर्थः ॥

टिप्पणी—**गोदानम्**--गावः=केशाः दीयन्ते=खण्डयन्ते यत्र तत् गोदानं तदेव मङ्गलम्=माङ्गलिकं कर्म येषान्ते तादृशाः, गो + √दो + ल्युट् + विभक्ति-कार्यम्। विवाह के पूर्व पहले-पहल दाढ़ी आदि बनाने के कृत्य को गोदान या केशान्त संस्कार कहते हैं, देखिये—मनु० (२।६५)।

विवाहदीक्षिताः--विवाह के पूर्व से आरम्भ कर अन्त तक के समस्त कृत्यों को करने का जो नियम लिया जाता है, वही है विवाह में दीक्षित होना ॥

अन्वयः—हे सुमुखि, एषः, सः, समयः, वर्तते, इव, यत्र, गौतमार्पितः, आगृहीतकमनीयकङ्कणः, अयम्, तव, करः, मूर्तिमान्, महोत्सवः, इव, माम्, समनन्दयत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—हे सुमुखि=हे सुन्दर मुखवाली, एषः=यह, सः=वही, समयः=समय, काल, वर्तते=है, इव=सा, मानो, यत्र=जब, जिस समय में, गौतमार्पितः=गोतम के पुत्र (सदानन्द) के द्वारा अर्पित किया गया, आगृहीतकमनीयकङ्कणः=धारण किये गये सुन्दर कङ्कण से युक्त, अयम्=इस, तव=तुम्हारे, करः=हाथ ने, मूर्तिमान्=शरीरधारी, महोत्सव इव=महोत्सव के समान, माम्=मुझे, समनन्दयत्=आनन्दित किया था ॥ १८ ॥

लक्ष्मणः—इयमार्या । इयमप्यार्या माण्डवी । इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः ।

सीता - वत्स, इयमप्यपरा का [वच्छ, इयं वि अवरा का ।]

लक्ष्मणः—([1]सलज्जास्मितम् । [2]अपवार्य) अये, ऊर्मिलां पृच्छत्यार्या । भवतु । अन्यतः सञ्चारयामि । (प्रकाशम्) । आर्ये ! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत् । अयं च भगवान्भार्गवः ।

सीता—(ससंभ्रमम्[3]) कम्पितास्मि । [कम्पिदह्मि ।]

टीका--समय इति । हे सुमुखि--शोभनम् = मनोहरम्, मुखम्=आननम् यस्याः सा सुमुखी तत्सम्बुद्धौ, एषः=चित्रदर्शनकाले सम्प्रत्यनुभूयमानः, सः=पूर्वानुभूतः, कालः=समयः, वर्तत इव=आस्ते इव, यत्र=यस्मिन् काले, गौतमार्पितः—गौतमेन=गोतमतनयेन पुरोधसा शतानन्देन अर्पितः=प्रतिपादितः, मम हस्ते समर्पित इत्यर्थः, आगृहीतेत्यादिः—आगृहीतम्=परिहितम्, कमनीयम्=मनोहारि कङ्कणम्=वलयम् वैवाहिकसूत्रमित्यर्थः, येन तादृशः, अयम्=एषः, मम पुरतो वर्तमानः, तव=भवत्याः, करः=हस्तः, मूर्तिमान्=शरीरी, महोत्सव इव=महामह इव, माम्=तव पतिं राममित्यर्थः, समनन्दयत्=नितरामानन्दितमकरोत् । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारो मञ्जुभाषिणी छन्दः ।। १८ ।।

टिप्पणी--समयः स वर्तते—प्रत्येक युवक तथा युवती को विवाद के समय एक अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति होती है । राम और सीता को भी कुछ ऐसी ही अनुभूति विवाह के समय हुई थी । आज चित्र देखकर राम को उसी का स्मरण हो रहा है । अतः प्रतीत हो रहा है कि मानो विवाह का वही समय फिर से आ गया है ।

…कङ्कणः—'कङ्कणः' शब्द के दो अर्थ होते हैं—१—माङ्गलिक सूत्र तथा २—सुवर्ण का कङ्कण । किन्तु यहाँ 'कङ्कण' का अर्थ 'माङ्गलिक-सूत्र' ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हो रहा है ।

इस श्लोक में 'वर्तत इव' में क्रिया की तथा 'महोत्सव इव' में गुण की उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा मञ्जुभाषिणी छन्द है । छन्द का लक्षण—"सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी" ।। १८ ।।

शब्दार्थः—सलज्जास्मितम्=लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ, अपवार्य=मुख के बगल में हाथ से आड़ करके, एक ओर, आर्या=आदरणीया सीता, अन्यतः=दूसरी ओर, सञ्चारयामि=प्रेरित करता हूँ, आकर्षित करता हूँ, प्रकाशम्=प्रकट रूप में, द्रष्टव्यम्=दर्शनीय, भार्गवः=भृगुपुत्र (परशुराम) ।।

---

१. सलज्ज०, २. आत्मगतम्, ३. ससाध्वसम्,

लक्ष्मण—(सीता से) यह आदरणीया आप हैं। यह भी (भरत की पत्नी) पूजनीया 'माण्डवी' हैं और यह (शत्रुघ्न की पत्नी) वधू 'श्रुतकीर्ति' भी है।

सीता--वत्स, वत्स, और यह दूसरी (स्त्री) कौन है ?

लक्ष्मण—(लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ मुख के बगल में हाथ से आड़ करके) अरे, आदरणीया (सीता) (मेरी-पत्नी) उर्मिला को पूछ रही हैं। अच्छा (इनका ध्यान) दूसरी ओर आकर्षित करता हूँ। (प्रकटरूप में) आर्ये, यह दर्शनीय (दृश्य) देखिये। भृगु के कुल में उत्पन्न यह भगवान् परशुराम हैं।

सीता--(घबराहट के साथ) मैं काँप गई हूँ।

टीका--**लक्ष्मण** इति—सलज्जास्मितम्—लज्जा=व्रीडा च स्मितम्=ईद्धसनञ्चेति लज्जास्मिते, ताभ्यां सहितं यथा तथा सलज्जस्मितमिति पाठे तु लज्जया सह वर्तमानं सलज्जं, तथाविधस्मितमीषद्धसनं यस्मिन् कर्मणि तत्, अपवार्य=करेण मुखमाच्छाद्येत्यर्थः, तथा च साहित्यदर्पणे--"तद्भवेदपवारितं। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते। त्रिपताककरेणान्यमपवार्यान्तरा कथाम्। आर्या=आदरणीया सीता, अन्यतः=अन्यस्मिन् विषये, सञ्चारयामि=प्रेरयामि, उर्मिलावृत्तान्तं विस्मारयितुमिति भावः, प्रकाशम्=प्रकटम् "सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्" इति लक्षणात् स्फुटमभिधत्ते इत्यर्थः, द्रष्टव्यम्=दर्शनीयम्, भार्गवः=परशुरामः॥

टिप्पणी--**उर्मिलां पृच्छति**—लक्ष्मण ने राम की पत्नी सीता तथा भरत की पत्नी 'माण्डवी' के लिये आर्या शब्द का प्रयोग किया है। राम और भरत लक्ष्मण से बड़े हैं, अतः, उनकी पत्नी को आर्या कहा है शत्रुघ्न लक्ष्मण से छोटे हैं, अतः उनकी पत्नी श्रुतकीर्ति' को वधू कहा है। सीता तथा उर्मिला ये दोनों जनक (सीरध्वज) की, और माण्डवी एवं श्रुतकीर्ति उनके छोटे भाई कुशध्वज की कन्याएँ थी। अपरा का यहाँ सीता ने उर्मिला की ओर सङ्केत करके यह प्रश्न पूछा है। लक्ष्मण ने सङ्कोचवश अपनी पत्नी का उल्लेख नहीं किया था। यहाँ भाभी का देवर के प्रति मजाक भी देखा जा सकता है।

अपवार्य—सामने स्थित व्यक्ति की ओर से मुँह फेर कर, मानो वह सुन नहीं रहा है, जो बात की जाती है उसे अपवारित कहते हैं। **प्रकाशम्**—जो बात सबको सुनाकर की जाती है, उसे प्रकाश्य कहते हैं।

भार्गवः—भृगु + अण् + विभक्तिकार्यम्।

शब्दार्थः--ससम्भ्रमम्=घबराहट के साथ। आर्येण=पूज्य राम के द्वारा।

रामः—ऋषे ! नमस्ते ।

लक्ष्मणः—आर्ये ! पश्य । अयमार्येण—(इत्यर्धोक्ते ।)

रामः—(साक्षेपम् ।) अयि वत्स[1], बहुतरं द्रष्टव्यम् । अन्यतो दर्शय ।

सीता—(सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य ।) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र ! एतेन विनयमाहात्म्येन । [सुट्ठु सोहसि अज्जउत्त ! एदिणा विणअमाहप्पेण ।]

लक्ष्मणः—एते वयमयोध्यां प्राप्ताः ।

रामः—(सास्रम् ।) स्मरामि ।

जीवत्सु तातपादेषु नवे[2] दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥ १९ ॥

साक्षेपम्=बातकाटकर, बीच में रोकते हुए । अन्यतः=दूसरी ओर, सस्नेहबहुमानम्=स्नेह तथा अत्यन्त आदर के साथ । विनयमहात्म्येन=विनय के महत्त्व से, विनय की अधिकता से ॥

टीका—सीतेति । ससम्भ्रमम्—सम्भ्रमेण=भयेन, भीत्यादिजनितत्वरया सह यथा । आर्येण=पूज्येन रामेण, वैष्णवं शरासनं समारोप्य निगृहीतः इति वाक्यशेषः, अयञ्च भगवान् भार्गवः इति पूर्वेणान्वयः, साक्षेपम्—आक्षेपेण=स्वप्रशंसासूचकं लक्ष्मणवचः प्रतिषिध्येत्यर्थः, अन्यतः=अन्यस्मिन् स्थले, अन्यत्र । ब्राह्मणस्य तत्रापि मुनेस्तत्रापि परशुरामस्य पराभवश्रवणं तथा स्वोत्कर्षकथनमनुचितमिति निषेधः । अनेन रामस्य धीरोदात्तत्वं सूचितमिति बोध्यम् । सस्नेहबहुमानम्—स्नेहश्च बहुमानश्च स्नेहबहुमानौ ताभ्यां सहितं यथा तथा इति सस्नेहबहुमानम्=सप्रेमादरम्, विनयमाहात्म्येन—विनयस्य=नम्रतायाः प्राक्प्रदर्शितायाः माहात्म्येन=महिम्ना, विनयातिशयेनेत्यर्थः ॥

टिप्पणी—अयमार्येण—लक्ष्मण कहना चाहते थे कि यह भगवान् परशुराम आपके द्वारा पराजित किये गये हैं । किन्तु अत्यन्त विनम्र राम ने इस बात को पूरी न करने देने के लिये ही बीच में टोक कर कहा कि दूसरी चीजें दिखलाओ । इससे राम की उदात्तनायकता सूचित होती है ।

सस्नेहबहुमानम्—अद्वितीय बलशाली तथा अप्रतिम धनुर्धर राम की अत्यन्त शालीनता देखकर सीता का स्नेह और आदर उनके प्रति अधिक बढ़ गया ।

अन्वयः—तातपादेषु, जीवत्सु (सत्सु), दारपरिग्रहे, नवे, (सति), मातृभिः, चिन्त्यमानानाम्, नः, ते, दिवसाः, गताः, हि ॥ १९ ॥

---

१. एतन्नास्ति क्वचित्, २. नूतने दारसंग्रहे ।

राम—ऋषिजी, (आपको) प्रणाम है ।

लक्ष्मण--आर्य देखिये । यह (परशुराम) आर्य (रामचन्द्र) के द्वारा··· (ऐसा आधा कहने पर)

राम—(बात काट कर) अरे (भाई), बहुत कुछ देखने योग्य है, दूसरी ओर दिखलाओ ।

सीता—(स्नेह तथा अत्यन्त आदर के साथ ध्यान से देखकर) आर्यपुत्र, इस विनय की अधिकता से (आप) अत्यधिक शोभित हो रहे हैं (अर्थात् यह विनय ही तो आप का आभूषण है) ।

लक्ष्मण—यह हम लोग अयोध्या में आ गये हैं ।

राम—(आँसू भर कर) याद है, ओह ! मुझे याद है ।

पूज्य पिता के जीवित रहने पर तथा विवाह के नवीन होने पर (अर्थात् विवाह के नया-नया होने पर) माताओं के द्वारा (सुख एवं सुविधा आदि के विषय में) चिन्ता किये जाते हुए हम लोगों के वे दिन बीत गये (फिर उनका अनुभव दुर्लभ है) ॥ १९ ॥

शब्दार्थः--तातपादेषु=पूज्य पिता के, पितृ-चरण के, जीवत्सु (सत्सु)=जीवित रहने पर, दारपरिग्रहे=पत्नी-ग्रहण के, विवाह के, नवे (सति)=नवीन=होने पर, अचिर सम्पन्न होने पर, मातृभिः=माताओं के द्वारा, चिन्त्यमानानाम्=चिन्ता किये जाते हुए, नः=हम लोगों के, ते=वे, दिवसाः=दिन, गताः=बीत गये, हि=इसका यहाँ कोई खास अर्थ नहीं है ॥ १९ ॥

टीका--**जीवत्स्विति** । तातपादेषु=पितरि, 'एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे' इत्यादि वचनात् गौरवात् बहुवचनम्; जीवत्सु=वर्तमानेषु सत्सु, दारपरिग्रहे--दाराणाम्=स्त्रीणाम् परिग्रहे=स्वीकारे, विवाहे, नवे=नूतने, अचिरसम्पन्ने सतीत्यर्थः, मातृभिः=जननीभिः, चिन्त्यमानानाम्=कथमेते सततं सुखं प्राप्नुयुरिति विचिन्त्य पाल्यमानानाम्, नः=अस्माकम्, ते=पूर्वानुभूता इत्यर्थः, दिवसाः=दिनानि, गताः=व्यतीताः, तेषां पुनः प्राप्तिस्तु सुदुर्लभेति भावः, इति पादपूर्तौ । अत्रानुष्टुष् छन्दस्तथा समुच्चयालङ्कारः ॥ १९ ॥

टिप्पणी--**चिन्त्यमानानाम्**--कौसल्या आदि माताएँ अपने नवविवाहित पुत्रों तथा नवागत वधुओं को अधिक से अधिक सुख पहुँचाने की बराबर चिन्ता किया करती थीं ।

इयमपि तदा जानकी ।

[१]प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-[२]

र्दशनमु[३]कुलैर्मुग्धा[४]लोकं शिशुर्दधती मुखम् ।

ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-

रकृत मधुरैरम्बानां[५] मे कुतूहलमङ्गकैः ॥ २० ॥

लक्ष्मणः—एष[६] मन्थरावृत्तान्तः ।

रामः – ([७]सत्वरमन्यतो दर्शयन् ।) देवि वैदेहि !

दिवसा गताः—वे दिन बीत गये जब कि पिता जी जीवित थे, माताएँ हमारे सुख की चिन्ता करती थीं और हम लोग निश्चिन्त थे ।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा समुच्चय अलङ्कार है ॥ १९ ॥

अन्वयः—प्रतनुविरलैः, प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः; च, दशनमुकुलैः, मुग्धालोकम्, मुखम्, दधती, शिशुः, (इयम्, जानकी, अपि), ललितललितैः, ज्योत्स्नाप्रायैः, अकृत्रिमविभ्रमैः, मधुरैः, अङ्गकैः, मे, अम्बानाम्, कुतूहलम्, अकृत ॥ २० ॥

शब्दार्थः—प्रतनुविरलैः=अत्यन्तसूक्ष्म तथा विरल, प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः=(मुख के) प्रान्तभागों (अर्थात् कपोलों) पर लहराते हुए सुन्दर केशों से, (च=और), दशनमुकुलैः=कलियों के सदृश दाँतों से, मुग्धालोकम्–सुन्दर दीखने वाले, भोले-भाले, मुखम्=मुख को, दधती=धारण करती हुई, शिशुः=शैशव अवस्थावाली, बाला, (इयम्=यह, जानकी=सीता, अपि=भी) ललितललितैः=अत्यन्त लुभावने, ज्योत्स्नाप्रायैः=चाँदनी की तरह, अकृत्रिमविभ्रमैः=स्वाभाविक विलासों से युक्त, मधुरैः=कमनीय, अङ्गकैः=छोटे-छोटे अङ्गों से, मे=मेरे, अम्बानाम्=माताओं के, कुतूहलम्=कुतूहल को, उत्सुकता को, अकृत=उत्पन्न किया करती थी ॥ २० ॥

टीका—प्रतनुविरलैरिति । त्वमपि तासां सुखहेतुरासीरिति भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादयति—प्रतन्विति । प्रतनुविरलः—प्रतनूनि = सूक्ष्माणि च तानि विरलानि= अनतिनिविडानि तैः, प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः—प्रान्तयोः=मुखप्रान्तयोः, कपोलयोरित्यर्थः, उन्मीलन्तः=स्फुरन्तः मनोहराः=रुचिराः कुन्तलाः=केशाः तैः, (च=तथा), दशनमुकुलैः—दशनाः=दन्ताः मुकुलानीव=कुड्मलानीव तैः, मुग्धालोकम्—मुग्धः= मनोहरः आलोकः=दर्शनं यस्य तथोक्तम्, मुखम्=आननम्, दधती=धारयन्ती, शिशुः=

---

१. पतन (वी०रा०), २. कुड्मलैः, ३. कुसुमैः, ४. मन्दालोकम्, ५. अङ्गानाम्, ६. एषा मन्थरा, ७. अनुत्तरम् ।

यह सीता भी उस समय—

अत्यन्त सूक्ष्म तथा विरल, (मुख के) प्रान्त भागों (अर्थात् कपोलों) पर लहराते हुए सुन्दर केशों से (और) कलियों के सदृश दाँतों से सुन्दर, भोले-भाले मुख को धारण करती हुई शैशव अवस्थावाली (यह जानकी भी) अत्यन्त लुभावने, चाँदनी की तरह, स्वाभाविक विलासों से युक्त, कमनीय छोटे-छोटे अङ्गों से मेरे तथा माताओं के कुतूहल को उत्पन्न किया करती थी ॥ २० ॥

लक्ष्मण—यह मन्थरा का वृत्तान्त है ।

राम—(शीघ्रता से दूसरी ओर दिखलाते हुए) हे देवि, सीते ।

शैशवयौवनान्तर्वर्तमाना, शिशुप्राया इत्यर्थः, इयं जानकी अपीति गद्यभागाद्योज्यम्, ललितललितैः—ललितेभ्यः = मनोहरेभ्यः ललितैः=मञ्जुलैः, अतिशयेन मनोज्ञैः, ज्योत्स्नाप्रायैः—कौमुदीसदृशैः, लावण्यभरितैरित्यर्थः, अकृत्रिमविभ्रमैः=नास्ति कृत्रिमः= असहजः विभ्रमः=विलासः, भङ्गीविशेष इत्यर्थः, येषु तथाविधैः, मधुरैः=मनोज्ञैः, अङ्गकैः=तनुतरैरङ्गैः अल्पार्थे कन्, मे=मम, अम्बानाम्=मातॄणाम् कुतूहलम्= दर्शनौत्सुक्यम्, कौतुकमित्यर्थः, अकृत=अजनयत् । अत्र लुप्तोपमासमुच्चयश्चालङ्कारौ । हरिणी छन्दः ।: २० ॥

टिप्पणी—उन्मीलत्—उद् + $\sqrt{}$मील् + शतृ + विभक्त्यादिकार्यम् । **दधती**— $\sqrt{}$धा + शतृ + ङीप् + विभक्तिकार्यम् ।

अकृत्रिमविभ्रमैः—उस समय सीताजी किशोरी थीं । अतः युवती की भाँति उनके अङ्गों में बनावटी विलास तथा हाव-भाव न थे । उनकी सारी आङ्गिक-क्रियायें स्वाभाविक अतः मनोहर थीं ।

इस श्लोक में लुप्तोपमा तथा समुच्चय अलङ्कार का सङ्कर है । इसमें प्रयुक्त छन्द है—हरिणी । छन्द का लक्षण—"नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" ॥२०॥

शब्दार्थः—मन्थरावृत्तान्तः = 'मन्थरा' कैकेयी की दासी थी उसका वृत्तान्त, सत्वरम्=वेग से, शीघ्रता से, अन्यतः=दूसरी ओर, दर्शयन्=दिखलाते हुए ॥

टीका—लक्ष्मण इति । मन्थरावृत्तान्तः—मन्थरायाः=कैकेयीदास्याः वृत्तान्तः= चरितम्, सत्वरम्=सवेगम्, अन्यतः=अन्यत्र, कैकेयीचरितसंवलिते मन्थरावृत्तान्ते कामपीहामकृत्वैव अन्यतः दृष्टिमदादित्यर्थः, दर्शयन्=अवलोकयितुं प्रेरयन् ॥

टिप्पणी—अन्यतो दर्शयन्—रामचन्द्र सुजनता और शील के भाण्डार है । वे यह नहीं चाहते कि मन्थरा के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से विमाता कैकेयी की वे बातें पुनः लोगों के समक्ष आवें जिनके परिणामस्वरूप राम को वन में जाना पड़ा था । अतः वे सीता और लक्ष्मण के ध्यान को दूसरी ओर आकृष्ट करते हैं ।

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा ।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागमः ॥२१॥

लक्ष्मणः—(विहस्य, स्वगतम्) अये, मध्यमाम्बावृत्तान्तो[1]ऽन्तरित आर्येण ।

सीता—अहो, एष जटासंयमनवृत्तान्तः । [अह्मो, एषो जडासंजमणवुत्तन्तो ।]

लक्ष्मणः—

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्[2] ।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥२२॥

अन्वयः—शृङ्गवेरपुरे, अयम्, सः, इङ्गुदीपादपः, (अस्ति), यत्र, पुरा, स्निग्धेन, निषादपतिना, समागमः, आसीत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थः-शृङ्गवेरपुरे=शृङ्गवेरपुर में, अयम्=यह, सः=वह, इङ्गुदीपादपः= इङ्गुदी का पेड़, (अस्ति=है), यत्र=जहाँ, पुरा=पहले, स्निग्धेन=स्नेहयुक्त, स्नेही, मित्र, निषादपतिना = निषादराज (गुह) से, समागमः = मिलन, आसीत्= हुआ था ॥ २१ ॥

टीका--इङ्गुदीति । शृङ्गवेरपुरे—शृङ्गवेरनामके गुहस्य नगरे, अयम्=एषः, सः=पूर्वदृष्टः, इङ्गुदीपादपः=तापसतरुः, ('इङ्गुदी तापसतरुः' इत्यमरः), अस्तीति शेषः, यत्र=यस्मिन् वृक्षप्रदेशे, पुरा=पूर्वम्, स्निग्धेन=मित्रेण, ('वयस्यः स्निग्धः सवयाः' इत्यमरः), निषादपतिना=निषादराजेन, गुहेन सहेत्यर्थः, समागमः= सम्मिलनम्, आसीत्=जातः ॥ २१ ॥

टिप्पणी—शृङ्गवेरपुरे—निषादपति का यह नगर वर्तमान मीरजापुर के समीप गङ्गा के तट पर बसा था। कुछ लोग इसे आज का चुनार मानते हैं (देखिये— उत्तररामचरित पर जीवानन्द विद्यासागर की टीका) ।

स्निग्धेन--निषादराज रामचन्द्र का परम भक्त तथा उत्कृष्ट मित्र था। √स्निह् + क्त + विभक्तिकार्यम् । **समागमः**--सम्+आ+√गम्+घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—स्वगतम्=अपने आप, मध्यमाम्बावृत्तान्तः=मझली माँ (कैकेयी) का वृत्तान्त, अन्तरितः=छिपा दिया गया, टाल दिया गया, जटासंयमनवृत्तान्तः= जटा बाँधने का वृत्तान्त, जटा बाँधने की घटना ।

टीका—लक्ष्मण इति । मध्यमाम्बावृत्तान्तः--मध्यमाम्बा=कैकेयीं तस्या

---

१. वृत्तमन्तरितम्, २. कृतम्,

शृङ्गवेरपुरमें यह वह इङ्गुदी का पेड़ (है), जहाँ पहले मित्र निषादराज (गुह) से मिलन हुआ था ॥ २१ ॥

लक्ष्मण—(हँसकर, अपने आप) आप आर्य (अर्थात् पूज्य राम) के द्वारा मझली माँ (कैकेयी) का वृत्तान्त टाल दिया गया।

सीता—ओह ! यह जटा बाँधने का वृत्तान्त है।

लक्ष्मण--पुत्रों को राजलक्ष्मी सौंप देने वाले (अर्थात् पुत्रों को राजलक्ष्मी सौंपने के अन्तर) वृद्ध इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के द्वारा जो (व्रत) धारण किया गया, वह पावन वानप्रस्थ व्रत आर्य के द्वारा बाल्यावस्था में ही धारण किया गया ॥ २२ ॥

वृत्तान्तः=चरितम्, अन्तरितः=अपवारितः, जटासंयमनवृत्तान्तः=जटासंयमनस्य=जटाबन्धनस्य वृत्तान्तः=घटना ॥

टिप्पणी—**लक्ष्मण इति।** स्वगतम्--स्वगत उस उक्ति को कहते हैं, जहाँ कि वक्ता सामने वर्तमान व्यक्तियों से मुँह फेर कर अपने आप बात करता है।

मध्यमाम्बावृत्तान्तः--मझली माँ कैकेयी ने जो राम को वन में भिजवाया था वह वृत्तान्त।

जटासंयमन०--राम और लक्ष्मण ने शृङ्गवेरपुर में ही अपनी जटाएँ बाँधी थीं। संभवतः यह उन लोगों का जटा-संयमन का सर्वप्रथम कार्य था।

अन्वयः--पुत्रसङ्क्रान्तलक्ष्मीकैः, वृद्धेक्ष्वाकुभिः, यत्, धृतम्, तत्, पुण्यम्, आरण्यकव्रतम्, आर्येण, बाल्ये, धृतम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः=पुत्रों को राजलक्ष्मी सौंप कर, वृद्धेक्ष्वाकुभिः-वृद्ध इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के द्वारा, यत्=जो, धृतम्=धारण किया गया, तत्=वह, पुण्यम्=पावन, आरण्यकव्रतम्=वानप्रस्थ व्रत, आर्येण=आर्य के द्वारा, बाल्ये=बाल्यावस्था में (ही), धृतम्=धारण किया गया ॥ २२ ॥

टीका--**लक्ष्मण इति। पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः**--पुत्रेषु=सुतेषु संक्रान्ता=आश्रयशैथिल्यात् स्वयमेवागता, सङ्गतेत्यर्थः, पुत्रानाश्रितेत्यर्थः, लक्ष्मीः=श्रीः येषां तथाभूतैः 'नद्यृतश्चे'ति कप्, वृद्धेक्ष्वाकुभिः-वृद्धाश्च=तुरीयावस्थापन्नाश्च ते इक्ष्वाकवः=इक्ष्वाकुकुलोद्गता राजानस्तैः, यत्=यद्व्रतम्, धृतम्=स्वीकृतम्, तादृशमित्यर्थः, पुण्यम्=पावनम् आरण्यकव्रतम्—अरण्ये भवाः आरण्यकाः=संन्यासिनः तेषां व्रतम्=नियमः, वैखानसव्रतमित्यर्थः, आर्येण=पूज्येन रामेण, बाल्ये=शैशवे, एवेति शेषः, धृतम्=स्वीकृतम्, अनुष्ठितमित्यर्थः, उपभुक्तराज्यैरिक्ष्वाकुकुलोद्गतै राजभिर्गलिते शरीरे यद्वनप्रस्थानरूपं व्रतमागृहीतं तत्तु आर्येण रामेण नवे वयस्येव धृतमिति भावः। अत्र अनुष्टप् छन्दस्तथा निदर्शनाविभावनयो सङ्करालङ्कारः ॥ २२ ॥

सीता--एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी। [एसा पसण्ण-पुण्णसलिला भअवदी भाईरही ।]

रामः—रघुकुलदेवते ! नमस्ते ।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे
कपिलमहसाऽमर्षा[1]त्प्लुष्टान् पुरा[2]प्रपितामहान् ।
अगणिततनूता[3]पस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो
भगवति ! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुददीधरत्[4] ॥२३॥

टिप्पणी--पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः--इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होने वाले राजा वृद्धावस्था में राज्य का भार अपने पुत्र के ऊप रखकर मुनिव्रत धारण कर अरण्य में चले जाया करते थे--"चौथेपन नृप कानन जाहीं ।"

संक्रान्त०--सम + √क्रम + क्त + समासादिकार्यम् । राजलक्ष्मी अपने आप इक्ष्वाकु कुल के वृद्ध राजाओं के पुत्रों के पास चली जाया करती थी (दे० रघु० ३/२६, ५/३८) । अथवा 'संक्रान्त' में अन्तर्भावितण्यर्थ मानकर 'पुत्रे संक्रान्ता=संक्रामिता लक्ष्मीः यैः' ऐसा अर्थ करना होगा ।

श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा निदर्शना एवं विभावना अलङ्कारों का सङ्कर अलङ्कार है ॥ २२ ॥

शब्दार्थः--प्रसन्नपुण्यसलिला=स्वच्छ एवं पवित्र जलवाली, भागीरथी=राजा भगीरथ के द्वारा लाई गई गङ्गा ॥

टीका-सीतेति । प्रसन्नपुण्यसलिला--प्रसन्नम्=निर्मलं पुण्यम्=पावनं सलिलम्=जलम् यस्याः सा, भगवती=सर्वविधैश्वर्यसम्पन्ना; भागीरथी=भगीरथ-नृपेणानीता, स्वान् पूर्वपुरुषान् समुद्धर्तुमित्यर्थः ॥

टिप्पणी--रघुकुलदेवते—रघुवंश के एक पूर्वपुरुष भगीरथ घोर तपस्या करके गङ्गाको भूतल पर लाये थे। अतः उन्हें रघुकुल की देवता कहा गया है ॥

अन्वयः—हे भगवति, पुरा, भगीरथः, अगणिततनूतापः (सन्), तपांसि, तप्त्वा, सगराध्वरे, तुरगविचयव्यग्रान्, उर्वीभिदः, च, अमर्षात्, कपिलमहसा, प्लुष्टान्, प्रपितामहान्, तव, अद्भिः, स्पृष्टान्, चिरात्, उददीधरत ॥ २३ ॥

शब्दार्थः--हे भगवति=हे भगवति गङ्गे, पुरा=पूर्वकाल में, भगीरथः=भगीरथ ने, अगणिततनूतापः (सन्)=शारीरिक कष्टों की परवाह न करते हुए, तपांसि=तपस्या, तप्त्वा=तपकर, करके, सगराध्वरे=सगर के यज्ञ में, तुरगविचयव्यग्रान्=

---

१. रोषात्, २. पितुश्च पितामहान्, ३. पातं, तापम्, ४. उदतीतरत्,

सीता—यह स्वच्छ और पावन जलवाली भगवती भागीरथी (गङ्गा) हैं।

राम—हे रघुकुल की देवता, आपको नमस्कार है।

हे भगवति गङ्गे, पूर्वकाल में भगीरथ ने शारीरिक कष्टों की परवाह न करते हुए तपस्या करके सगर के (अश्वमेध) यज्ञ में (इन्द्र के द्वारा चुराये गये) घोड़े को खोजने में संलग्न, (अतः) पृथिवी को खोदने वाले और क्रोध के कारण कपिल मुनि के तेज से भस्म हुए, (अपने) प्रपितामह (सगर के साठ हजार पुत्रों) का, तुम्हारे जल से स्पर्श कराकर, चिरकाल के पश्चत् उद्धार किया था ॥ २३ ॥

(इन्द्र के द्वारा चुराये गये) घोड़े को खोजने में संलग्न, उर्वीभिदः=पृथिवी को खोदने वाले, च=और, अमर्षात्=क्रोध के कारण, कपिलमहसा=कपिल मुनि के तेज से, प्लुष्टान्=भस्म हुए, प्रपितामहान्=(अपने) प्रपितामह (सगर के साठ हजार पुत्रों) को, तव=तुम्हारे, अद्भिः=जलसे, स्पृष्टान्=स्पर्श कराकर, चिरात्=चिरकाल के पश्चात्, उददीधरत्=उद्धार किया था ॥ २३ ॥

टीका—भागीरथी कथं रघुकुलदेवतेति विवृणोति—**तुरगेत्यादि**। हे भगवति=हे सर्वैश्वर्यसम्पन्ने गङ्गे, पुरा=पूर्वम्, भगीरथः=दिलीपतनयोऽस्मत्पूर्वजः. अगणिततनूतापः (सन्)—अगणितः=उपेक्षितः अचिन्तितो वा तन्वाः=शरीरस्य तापः=दुःखं येन तादृशः सन्, अगणिततनूपातमिति पाठे तु अगणितः तनूपातः=शरीरपतनं, शरीरध्वंस इति यावत्, यस्मिन् तपःकर्मणि तद्यथा तथा, तपांसि तप्त्वा=तपश्चरित्वा; सगराध्वरे—सगरस्य=अस्मत्पूर्वपुरुषस्य सगरस्य अध्वरे=आश्वमेधिके यज्ञे, अश्वमेधयज्ञप्रसङ्गे इत्यर्थः, तुरगविचयव्यग्रान्—तुरगस्य=अश्वमेधीयस्य वाजिनः, इन्द्रेणापहृतस्य पातालं प्रापितस्याश्वस्येत्यर्थः, विचये=अन्वेषणे व्यग्रान्=संलग्नान्, अतः, उर्वीभिदः—यज्ञे दीक्षितस्य सगरस्याज्ञया उर्वीम्=पृथिवीं भिन्दन्ति=विदारयन्ति इति ते तथाविधाः, च=तथा, अमर्षात्=कोपात्, कपिलमहसा—कपिलस्य=महामुनेः कपिलस्य महसा=तेजसा, प्लुष्टान्=भस्मसात् भूतानित्यर्थः, प्रपितामहान्=सगरस्य राज्ञः पत्न्याः सुमत्याः षष्टिसहस्रसंख्याकान् तनयानित्यर्थः, अत्र रामायणस्यादिकाण्डकथाऽनुसन्धेया, तव=भगवत्याः, अद्भिः=जलैः, स्पृष्टान्=सिञ्चितान्, चिरात्=चिराय, सहस्रपरिवत्सरान् व्याप्येति यावत्, उददीधरत्=उद्धारयामास। अत्रोदात्तालङ्कारो वृत्तं च हरिणी ॥ २३ ॥

टिप्पणी—**उर्वीभिदः**—उर्वीं भिन्दन्तीति उर्वीभिदस्तान्, उर्वी + √भिद + क्विप् + समासे विभक्तिकार्यम्।

सा त्वमम्ब ! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना[1] भव ।

लक्ष्मणः—[2]एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः[3] श्यामो नाम ।

(रामः सस्पृहमवलोकयति ।)

सीता—स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः ? [सुमरेदि वा तं पदेसं अज्जउत्तो ?]

रामः—अयि कथं विस्मर्यते ?

अलसलु[4]लितमुग्धान्यध्वस[5]म्पातखेदा-
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥२४॥

सगराध्वरे—राम के पूर्वज अयोध्या के चक्रवर्ती नरेश सगर की दो पत्नियाँ थीं :—सुमति और केशिनी । केशिनी का वंश प्रवर्तक एक पुत्र असमञ्जस था । सुमति साठ हजार पुत्रों की जननी थी । राजा सगर ने सौवाँ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । आश्वमेधिक यज्ञ के पीछे-पीछे सगर के साठ हजार पुत्रों की विशाल वाहिनी चली । इन्द्र को भय हुआ । उन्होंने सोचा—'सगर निर्विघ्न सौ अश्वमेध पूरा कर मेरा इन्द्रासन छीन लेगा । अतः विघ्न करने के लिये उन्होंने अश्वमेध के अश्व को चुराकर पाताल में तपस्यारत कपिलमुनि के पास बाँध दिया । स्वयं शृगाल की भाँति वहाँ से भाग चले । भूतल पर अश्व का कहीं पता न चला । अतः सगर के साठ हजार पुत्रों ने पृथिवी को खोदकर पाताल में प्रवेश किया । महर्षि के पास घोड़ा देखकर उन्हें चोर समझा । उनका अपमान किया । महर्षि को कोप हुआ । उन्होंने शाप देकर सगर-पुत्रों को भस्म कर दिया । अश्व एवं अश्वरक्षिका वाहिनी की खोज करते हुए असमञ्जस का पुत्र अंशुमान् पाताल पहुँचा । भाइयों की दुर्दशा देखी । अश्व लाकर सगर को सौंपा और सारी गाथा कह सुनाई । फिर सगर ने अपना यज्ञ पूरा किया । अंशुमान् का पुत्र दिलीप और उसका पुत्र भगीरथ हुआ । भगीरथ ही अपने प्रपितामहों को तारने के लिये गङ्गा को भूतल पर लाये ।

प्रपितामहान्—कपिल के कोप से भस्म सगर के पुत्र भगीरथ के प्रपितामह थे ।

इस श्लोक में उदात्त अलङ्कार तथा हरिणी छन्द है । छन्द का लक्षण—'नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता' ॥ २३ ॥

---

१. ० ध्यानपरा, २. अयमसौ, ३. तटवटः, ४. ललित, ५. सञ्जात,

वह तू, हे माता, पुत्रवधू (सीता) के विषय में, (गुरुपत्नी) अरुन्धती की तरह, मङ्गल की कामना करनेवाली होओ।

लक्ष्मण –यह भरद्वाज के द्वारा बतलाया गया, (प्रयाग से) चित्रकूट को जानेवाले मार्ग पर 'श्याम' नामक वट—वृक्ष है।

(राम उत्कण्ठापूर्वक देखते हैं)

सीता—क्या आर्यपुत्र को उस स्थान की याद है ?

रामः—अरे, (वह स्थान भला) कैसे भुलाया जा सकता है ?

जहाँ तुम मार्ग में चलने की थकान के कारण अलसाये कुम्हलाये तथापि मनोहर, (अतः) कस कर किये गये आलिङ्गनों से दबाये गये, पूर्णतया मसले गये कमल-दण्ड के समान दुर्बल अङ्गों को मेरे वक्षःस्थल पर रखकर नींद को प्राप्त हुई थी (अर्थात् सो गई थी) ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—स्नुषायाम्=पुत्रवधू (सीता) के विषय में, शिवानुध्याना–मङ्गल की कामना करने वाली। भरद्वाजावेदितः=भरद्वास के द्वारा बतलाया गया, निर्दिष्ट, चित्रकूटयायिनि=चित्रकूट को जाने वाले, वनस्पतिः=वृक्ष, कालिन्दीतटे=यमुना के तट पर ॥

टीका––सा त्वमिति। स्नुषायाम्=बध्वां सीतायाम्, शिवानुध्याना–शिवस्य=मङ्गलस्य अनुध्यानम्=अनुचिन्तनं यया सा तादृशी, मङ्गलकाङ्क्षिणीत्यर्थः, भरद्वाजावेदितः—भरद्वाजेन=मुनिना भरद्वाजेन आवेदितः–विज्ञापितः, चित्रकूटयायिनि–चित्रकूटं यातीति चित्रकूटयायि तस्मिन्=चित्रकूटपर्वताभिमुखगामिनि, वर्त्मनि=मार्गे वनस्पतिः=वृक्षः, कालिन्दीतटे —कालिन्द्याः=यमुनायाः तटे=तीरे ॥

अन्वयः––यत्र, त्वम्, अध्वसंपातखेदात्, अलस–लुलितमुग्धानि, अशिथिलपरिरम्भैः, दत्तसंवाहनानि, परिमृदितमृणालीदुर्बलानि, अङ्गकानि, मम, उरसि, कृत्वा, निद्राम्, अवाप्ता ॥ २४ ॥

शब्दार्थः––यत्र=जहाँ, त्वम्=तुम, अध्वसम्पातखेदात्=मार्ग में चलने की थकान के कारण, अलस–लुलित–मुग्धानि=अलसाय हुए, कुम्हलाये हुए तथापि मनोहर, अशिथिलपरिरम्भैः=कस कर किये गये आलिङ्गनों से, दत्तसंवाहनानि=दिया गया है संवाहन जिनमें ऐसे, दबाये गए, परिमृदितमृणाली–दुर्बलानि=पूर्णतया मसले गये कमल-दण्ड के समान दुर्बल, अङ्गकानि=अङ्गों को, मम=मेरे, उरसि=वक्षःस्थल पर, कृत्वा=रखकर, निद्राम्=निद्रा को, नींद को, अवाप्ता=प्राप्त हुई थी ॥ २४ ॥

लक्ष्मणः—एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः[१]।

सीता—अलं तावदेतेन पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रनिवारितातपमात्मनो दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्। [अलंदाव एदिणा। पेक्खम्मि दाव अज्जउत्त[२]सहत्तधरि[३]दतालबुन्तादवत्त[४]निवारिदादपं दक्खिणारण्णप्पवेशारम्भम्।]

रामः—

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।

टीका—अविस्मरणे हेतुमाह–अलसेति। यत्र=यस्मिन् प्रदेशे, त्वम्=मम पत्नी सीता, अध्वसंपातखेदात्–अध्वनि=मार्गे सम्पातेन=गमनेन यः खेदः=क्लान्तिः तस्मात्, पथिचलनेन सम्भूतात् श्रमादित्यर्थः, अलसलुलितेति–अलसानि=स्तिमितानि आलस्ययुक्तानि लुलितानि=क्लान्तानि शिथिलीभूतानीति यावत् तथापि मुग्धानि=निसर्गत एव मनोहराणि, अशिथिलपरिरम्भैः–अशिथिलैः=गाढैः परिरम्भैः=आलिङ्गनैः दत्तम्=वितीर्णम् संवाहनम्=मर्दनम् येभ्यस्तानि तथोक्तानि, संवाहनेन मार्गचलनोद्भूतक्लान्तिरपगता भवतीति प्रसिद्धिः, परिमृदितेति–परिमृदिता=विदलिता या मृणाली: सा इव दुर्बलानि=कृशानि, अङ्गानि=गात्राणि एव अङ्गकानि, सुकोमलान्यङ्गानीत्यर्थः, मम=स्ववल्लभस्य, रामस्येत्यर्थः; कृत्वा=निधायेत्यर्थः, निद्राम्=स्वापम्, अवाप्ता=प्राप्ता, अस्वपीरित्यर्थः; एतादृशः प्रदेशः कथं हि विस्मर्यते इति वाक्यबीजम्। अत्र लुप्तोपमाकारणमालयोः सङ्करालङ्कारः। मालिनी छन्दः ॥२४॥

टिप्पणी—परिरम्भैः—परि + √रभ् + भावे घञ् + विभक्तिकार्यम्। अत्र 'रभेरशब्लिटोः' (पा० सू० ७।१।६३) अनेन नुम् भवति। संवाहनानि–सम् + √वह् + णिच् + ल्युट् + विभक्तिकार्यम्। अवाप्ता–अव + √आप् + क्तः कर्तरि + विभक्तिकार्यम्।

इस श्लोक में लुप्तोपमा एवं कारणमाला का सङ्कर अलङ्कार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है—मालिनी। छन्द का लक्षण—'न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—विन्ध्याटवीमुखे=विन्ध्य-वन के मुख (अर्थात् प्रवेश-द्वार) पर, विराधसंवादः=विराध (राक्षस) की घटना, आर्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रनिवा-

---

१. ० संरोधः, २. ० उत्तहत्थ, ३. तालवेण्टादवत्तं,
४. ० वत्तं अत्तणो दक्षिणारण्णपहि अत्तणम् (० पत्रमात्मनो दक्षिणारण्यपथिकत्वं),
५. यमिनः।

लक्ष्मण—यह विन्ध्य-वन के मुख (अर्थात् प्रवेश-द्वार) पर विराध (राक्षस) की घटना है।

सीता—इससे बस (अर्थात् इसे रहने दिया जाय)। अब मैं आर्य-पुत्र (श्रीराम) के द्वारा अपने हाथ से धारण किये गये ताड़ के पत्ररूपी छत्र (छाता) के द्वारा निवारित किया गया है घाम जिसमें ऐसे, दक्षिण के जङ्गलों में अपने प्रवेश के प्रयास को देखती हूँ।

राम—पहाड़ी नदियों के किनारे वानप्रस्थों के द्वारा आश्रित वृक्षों वाले ये वे

रितातपम्=आर्यपुत्र (श्रीराम) के द्वारा अपने हाथ से धारण किये गये ताड़ के पत्ररूपी छत्र (छाता) के द्वारा निवारित किया गया है घाम जिसमें ऐसे, आत्मनः=अपने, दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्=दक्षिण के अङ्गलों में प्रवेश के प्रयास को ॥

टीका––लक्ष्मण इति। **विन्ध्याटवीमुखे**––विन्ध्यस्य=विन्ध्यशैलस्य या अटवी=अरण्यानी तस्याः मुखम्=प्रारम्भः तस्मिन्। आर्यपुत्रेत्यादिः–आर्यपुत्रेण=स्वामिना श्रीरामेण स्वहस्तेन=स्वकरेण धृतम्=गृहीतम् तालवृन्तम्=तालपत्रमेव आतपत्रम्=छत्रम् यस्मिन्तथाविधम्; आत्मनः=स्वस्य, दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्––दक्षिणारण्ये=दक्षिणवने प्रवेशस्य=गमनस्य आरम्भः=व्यवसायः तं पश्यामीत्यन्वयः। दक्षिणस्यां दिशि वनेप्रवेशकाल आतपं निवारयितुमतिस्नेहेन रामो मम शिरसि तालपत्रस्य छत्रं विधाय धृतवानिति भावार्थः ॥

टिप्पणी—**विराध-संवादः**––सम्+√वद्+ घञ् + विभक्त्यादिकार्यम्। विराध एक भयङ्कर नरभक्षी राक्षस था। विन्ध्यवन में प्रवेश करते हुए राम तथा लक्ष्मण को इसने पकड़ लिया। फिर रामने इसका वध किया।

तालवृन्तः––राम सीता और लक्ष्मण के साथ दक्षिण दिशा की ओर बढ़ रहे थे। सूर्य की किरणें प्रखर थीं। सीता पसीना-पसीना हो रही थीं। राम ने ताल का एक पत्र तोड़ा। उसीको उन्होंने छत्र की तरह सीता के शिर पर धारण किया था। किसी भी तरुणी के लिए वह समय अधिक सुखद होता है, जबकि उसका प्राणवल्लभ उसकी स्वयमेव सेवा कर रहा हो ॥

अन्वयः––गिरिनिर्झरणीतटेषु, वैखानसाश्रिततरूणि, एतानि, तानि, तपोवनानि, (सन्ति), येषु, आतिथेयपरमाः, नीवारमुष्टिपचनाः, शमिनः, गृहिणः, भजन्ते ॥ २५ ॥

शब्दार्थः––**गिरिनिर्झरिणीतटेषु**—पहाड़ी नदियों के किनारे, वैखानसाश्रिततरूणि=वानप्रस्थों के द्वारा अश्रित वृक्षोंवाले, एतानि=ये, तानि=वे, तपोवनानि=

येष्वातिथेयपरमा शमिनो[४] भजन्ते
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ॥२५॥

लक्ष्मणः— अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुख[१]रकन्दरः सन्ततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्य[२]गो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

रामः—

स्मरसि सुतनु !-तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन
प्रतिविहितसपर्यासुस्थ[३]योस्तान्यहानि।

तपोवन, (सन्ति=हैं), येषु=जिनमें, आतिथेयपरमाः=अतिथियों के सत्कार में तत्पर, नीरवारमुष्टिपचनाः=नीवार (तिन्नी) की एक मुट्ठी पकाने वाले अर्थात् एक मुट्ठी भर नीवार पकाने वाले, यमिनः=शान्त चित्त, गृहिणः=सपत्नीक मुनिजन, गृहाणि=घरों को, भजन्ते=सेवित करते हैं ॥ २५ ॥

टीका--दक्षिणारण्यवैभवं वर्णयति—एतानीति। गिरिनिर्झरिणीतटेषु—गिरिनिर्झरिणीनाम्=पर्वतनदीनाम्, तटेषु=तीरेषु, वैखानसाश्रिततरूणि–वैखानसैः=वानप्रस्थैः आश्रिताः=सेविताः तरवः=वृक्षाः येषु तानि, एतानि=इमानि, चित्रे निर्मितानीत्यर्थः, तानि=पूर्वदृष्टानि, तपोवनानि=तपोऽरण्यानि, सन्तीति क्रियाशेषः, येषु=येषु वनेषु, आतिथेयपरमाः—आतिथेयम्=अतिथिसत्कारः परमम्=प्रधानम् येषां ते तादृशाः, नीवारमुष्टिपचनाः—नीवारमुष्टिम्=मुष्टिपरिमितं मुनिधान्यम् पचन्ति ये तथोक्ताः, स्वल्पनीवारपाकमात्रेण स्वपोषणं कुर्वन्तः इत्यर्थः, शमिनः=शान्तियुक्ताः, शमदमाद्युपेता वीतरागाः इत्यर्थः, गृहिणः=सदारा वनस्थास्तपस्विनः, गृहाणि=स्वसदनानि, भजन्ते=सेवन्ते। अत्रोदात्तालङ्कारो वसन्ततिलका च छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी--वैखानसाश्रित०—विखानसा प्रोक्तेन मार्गेण वर्तत इति विखानस्+अण्+विखक्त्यादिकार्यम्। विखानस मुनि के द्वारा बतलाये गये मार्ग से चलने वाले। यहाँ यह स्मरणीय है कि सर्वप्रथम विखानस मुनि के द्वारा ही वानप्रस्थों के कर्तव्यों का निर्धारण किया गया था। अतः वानप्रस्थको स्वीकार करने वालों को वैखानस भी कहा जाता है। (दे० गौतमधर्मसूत्र ३–२ पर हरदत्त की व्याख्या)।

नीवारमुष्टि०—मुट्ठीभर नीवारको ही खाकर दिन व्यतीत करनेवाले। नीवार को बोलचाल की भाषा में 'तिन्नी' कहा जाता है। यह बिना जोते–बोये ही जङ्गल के उन गड्ढों में पैदा होता है, जिनमें कम से कम आश्विन या कार्तिक तक पानी

---

१. मुखकन्दरः, २. मध्यमः, ३. स्वस्थयोः, ४. सरसतीराम्,

तपोवन (हैं), जिनमें अतिथियों के सत्कार में तत्पर, एक मुट्ठीभर नीवार पकाने वाले, शान्तचित्त, सपत्नीक मुनिजन घरों को सेवित करते हैं (अर्थात् घरों में निवास करते हैं) ।। २५ ।।

लक्ष्मण—सघन वृक्ष-समूह से पूर्णतया हरे-भरे और श्यामल पर्यन्त-भागों वाले वनों से घिरी गोदावरी से झङ्कृत गुफाओं वाला, निरन्तर झरते हुए मेघों के कारण समृद्ध नीलिमावाला, जनस्थान (नामक जंगल) के मध्य में विद्यमान यह प्रस्रवण नामक पर्वत है ।

राम--हे सुन्दरी, उस पर्वत पर लक्ष्मण के द्वारा की गई सेवा से प्रसन्न चित्त (हम दोनों) के उन दिनों को याद करती हो ? अथवा वहाँ (उस प्रस्रवण पर्वत

रहता है। यह अतिपवित्र धान्य है। **गृहिणः**=गृहस्थ। गृह+मत्वर्थे इनिः (इन्) + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में उदात्त अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ।। २५ ।।

शब्दार्थः—अविरलानोकह–निवह–निरन्तर–स्निग्ध-नील-परिसरारण्य-परिणद्ध–गोदावरी–मुखर–कन्दरः=सघन वृक्ष-समूह से पूर्णतया चिकने (हरे-भरे) और श्यामल प्रर्यन्त, (अर्थात् छोर, किनारा) भागोंवाले वनों से घिरी गोदावरी से शब्दायमान (झङ्कृत) गुफाओंवाला, सन्ततम्=निरन्तर, अभिष्यन्दमान-मेघ-मेदुरित-नीलिमा=झरते हुए मेघों के कारण बढ़ी हुई है नीलिमा जिसकी ऐसा अर्थात् समृद्ध नीलिमावाला, जनस्थान-मध्यगः=जनस्थान के मध्य में विद्यमान, गिरिः=पर्वत ।।

टीका—**लक्ष्मण इति**। अयम्=चित्रे पुरतो दृश्यमान इत्यर्थः, अविरलेत्यादिः–अविरलाः=निबिडा ये अनोकहाः—अनसः=शकटस्य अकम्=गतिम् घ्नन्तीति, अथवा न ओकः=स्थानम् जहतीति अनोकहाः=वृक्षाः ('वृक्षो महीरुहः······अनोकहः' इत्यमरः) तेषां निवहाः=समूहाः तैः निरन्तराः=निरवकाशाः, घनीभूता इत्यर्थः, स्निग्धाः=चिक्कणाः नीलाः=श्यामलाश्च परिसराः=प्रान्तभूभागाः यस्य तथोक्तेन, अरण्येन=वनेन परिणद्धा=परिवेष्टिता विशालतामापन्ना वा या गोदावरी—एतन्नाम्ना प्रसिद्धा नदी तया मुखराणि=शब्दायमानानि, गोदावरीकलकलपूरितानि इत्यर्थः, कन्दराणि=गुहाः यस्य तादृशः, सन्ततम्=अनवरतम्, अभिस्यन्दमानेत्यादि—अभिस्यन्दमानैः=स्रवद्भिः, स्वयं वर्षद्भिरित्यर्थः, मेघैः=जलधरैर्मेदुरितः=मेदुरः कृतः, स्निग्धीकृत इत्यर्थः, नीलिमा=श्यामलत्वम् यस्य तथोक्तः, जनस्थानमध्यगः—जनस्थानस्य=एतन्नाम्ना प्रसिद्धस्यारण्यस्य मध्ये=मध्यभागे गच्छतीति=तिष्ठतीति तादृशः प्रस्रवणो नाम गिरिः=प्रस्रवणपर्वतोऽस्तीति क्रियाशेषः ।।

टिप्पणी—अभिस्यन्दमानाः—अभि + $\sqrt{}$स्यन्द + शानच् + विभक्त्यादिकार्यम् ।।

अन्वयः—हे सुतनु, तस्मिन्, पर्वते, लक्ष्मणेन, प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः,

स्मरसि सर[४]सनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ॥२६॥

किं च ।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्ति[१]योगा-
दवि[२]रलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव[३] व्यरंसीत् ॥२७॥

(आवयोः), तानि, अहानि; स्मरसि ? वा, तत्र, सरसनीराम्, गोदावरीम्, स्मरसि ? च, तदुपान्तेषु, आवयोः, वर्तनानि, स्मरसि ? ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हे सुतनु=हे सुन्दरी, तस्मिन्=उस, पर्वते=पर्वत पर, लक्ष्मणेन=लक्ष्मण के द्वारा, प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः=की गई सेवा से प्रसन्नचित्त, (आवयोः=हम दोनों के), तानि=उन, अहानि=दिनों को, स्मरसि=याद करती हो ? वा=अथवा, तत्र=वहाँ (अर्थात् उस प्रस्रवण पर्वत के निकट) सरसनीराम्=मधुर जलवाली, गोदावरीम्=गोदावरी को, स्मरसि=याद करती हो, च=और, तदुपान्तेषु=उस (गोदावरी) के तटों पर, आवयोः=हम दोनों के, वर्तनानि=व्यवहारों (अर्थात् निवास, क्रीडा तथा भ्रमण आदि) को, स्मरसि=याद करती हो ? ॥२६॥

टीका—सुखप्रदाः पूर्वमनुभूता घटना इदानीं स्मारयति–स्मरतीति । हे सुतनु–शोभना=ललिता तनूः=शरीरलता यस्याः सा सुतनूः तत्सम्बुद्धौ, तस्मिन् पर्वते=प्रस्रवणनाम्नि गिरौ, लक्ष्मणेन=सुमित्रापुत्रेण, मम लघुभ्रात्रेत्यर्थः, प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः–प्रतिविहितया=कृतया सपर्यया=सेवया सुस्थयोः=स्वस्थयोः, विगतश्रमयोरित्यर्थः, आवयोरिति योज्यम्, तानि=पूर्वमनुभूतानि, अहानि=दिनानि, स्मरसि=स्मृतिविषयमानयसि किम् ? वा=अथवा, तत्र=तस्य गिरेः समीपे, सरसनीराम्–सरसम्=मधुरं शीतलञ्च नीरम्=जलम् यस्याः तां तथोक्ताम्, स्वादुसलिलामित्यर्थः, गोदावरीम्=गोदावरीनाम्ना प्रसिद्धां सरितम्, स्मरसि=किं ध्यायसि ? च=अपि च, तदुपान्तेषु–तस्याः=गोदावर्याः उपान्तेषु=प्रान्तभागेषु, आवयोः=सीतारामयोरित्यर्थः, वर्तनानि=व्यवहारादीनि, स्मरसि किं चिन्तयसि ? अत्र दीपकमलङ्कारः । छन्दस्तु मालिनी ।। २६ ॥

टिप्पणी—प्रतिविहितः–प्रति + वि + √धा + क्त + विभक्त्यादिकार्यम् ।

वर्तनानि—वर्तन के अर्थ के भीतर वे सारे के सारे कार्य आते हैं, जो प्रातः शय्या छोड़ने से लेकर रात्रि सोने पर्यन्त किये जाते हैं । वर्तनम्–√वृत् + ल्युट् + विभक्त्यादिकार्यम् ।

---

१. आसक्ति, २. अविचलित, ३ एवं ।

के निकट) मधुर जलवाली गोदावरी को याद करती हो ? और उस (गोदावरी) के तटों पर हम दोनों के व्यवहारों (अर्थात् निवास, क्रीडा तथा भ्रमण आदि) को याद करती हो ? ॥ २६ ॥

और भी—

(परस्पर की) समीपता के होने से (अर्थात् क्रमशः अधिक से अधिक सटते जाने से) कपोलों को सटा कर धीरे-धीरे अनिर्वचनीय एवं बिना किसी क्रम के बात चीत करते हुए तथा गाढ़े आलिङ्गन में संलग्न एक-एक बाहुवाले (हम दोनों) की, नहीं मालूम पड़ रहे थे बीतते हुए प्रहर जिसके ऐसी, रात ही बीत गई थी (हम लोगों की बातें नहीं) ॥ २७ ॥

इस श्लोक में दीपक अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है। छन्द का लक्षण— 'न-न-म-य-य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ २६ ॥

अन्वयः—आसत्तियोगात्, अविरलितकपोलम्, मन्दं मन्दम्, किमपि, किमपि, अक्रमेण, जल्पतोः, अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोः, (आवयोः), अविदितगतयामा, रात्रिः, एव, व्यरंसीत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—आसत्तियोगात्=(परस्पर की) समीपता के होने से, अविरलितकपोलम्=व्यवधानरहित कपोल हैं जिस कर्म में, इस प्रकार कपोलों (गालों) को सटा कर, मन्दं मन्दम्=धीरे धीरे, किमपि किमपि=कुछ भी, जो कुछ, अनिर्वचनीय, अक्रमेण=असम्बद्ध, बिना किसी क्रम के, जल्पतोः=बात चीत करते हुए, अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोः=गाढ़े आलिङ्गन में संलग्न एक-एक बाहुवाले, (आवयोः=हम दोनों की), अविदितगतयामा=नहीं मालूम पड़ रहे थे बीतते हुए प्रहर जिसके ऐसी, रात्रिः=रात, एव=ही, व्यरंसीत्=बीत गई थी ॥ २७ ॥

टीका—किमपि किमपीति। आसत्तियोगात्—आसत्तिः=आसन्नभावः, अतिसान्निध्यमित्यर्थः तस्याः योगः=संलग्नता तस्मात्, अविरलितकपोलम्—अविरलितौ=परस्परं संलग्नौ कपोलौ=गण्डौ यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, मन्दं मन्दम्=शनैः शनैः, किमपि किमपि=यत् किञ्चित्, अनिर्वचनीयमिति यावत्, अक्रमेण=पौर्वापर्यराहित्येन, जल्पतोः=कथयतोः, अशिथिलेत्यादि-अशिथिलः=अतिदृढो यः परिरम्भः=आलिङ्गनं तस्मिन् व्यापृतः=निरतः एकः एकः=मम एकः तव च एकः (कर्मव्यतिहारेऽत्र द्विरुक्तिः) दोः=बाहुः ययोः तथोक्तयोः, गाढालिङ्गनव्यस्तहस्तयोः; आवयोरिति शेषः, अविदितगतयामा-अविदिताः=अपरिज्ञाताः गताः=व्यतीताः यामाः=प्रहराः ('द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यमरः) यस्याः सा तथोक्ता, रात्रिः=निशा, एव, व्यरंसीत्=विरता, प्रभाता जाता, न तु आवयोर्ललितं जल्पितं समाप्तम्। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारो मालिनी च छन्दः ॥ २७ ॥

टिप्पणी—किमपि किमपि। जब नवविवाहित पति-पत्नी शयन-शैय्या पर मिलते हैं, तो उस समय जो-जो बातें होती हैं, न तो उनका कोई विषय निर्धारित

लक्ष्मणः—एष[१] पञ्चवटयां शूर्पणखाविवादः।

सीता—हा आर्यपुत्र! एतावत्ते दर्शनम्? [हा अज्जउत्त! एत्तिअं दे[२] दंसणम्!]

रामः—अयि वियोगत्रस्ते! चित्रमेतत्।

सीता—यथा तथा भवतु, दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति। [जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उप्पादेइ।]

रामः—हन्त! वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

लक्ष्मणः—

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलक[३]रणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥२८॥

है और नहीं उनका आनन्द ही वर्णनीय है। इसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये 'किमपि किमपि' शब्द प्रयुक्त हुआ है॥

आसत्तिः—आ + √सद् + क्तिन् + विभक्त्यादिकार्यम्। **व्यापृतैकैक०**—वि + आ + √पृ (व्यापारे) + क्त + विभक्त्यादिकार्यम्। लेटे हुए करवट बदल कर प्रेमी-प्रेमिका जब आलिङ्गन में जकड़ते हैं, उस समय उन दोनों का ऊपरवाला एक-एक ही हाथ व्यस्त होता है।

रात्रिरेव व्यरंसीत्—रात ही बीत गई न कि बात। यदि 'एव' के स्थान पर 'एवं' पाठ माना जाय तब अर्थ होगा—इस प्रकार अर्थात् इन-इन व्यापारों के साथ, रात बीती। किन्तु इस पाठ में वह गहरा भाव नहीं है जो 'एव' के भीतर छिपा है। यौवन की उत्ताल तरङ्गों से तरङ्गायित प्रेमी-प्रेमिका एक सूत्र में बँधने के बाद शृंगार रस में कुछ इस प्रकार सराबोर हो जाते हैं कि उसका वर्णन ही सम्भव नहीं है। उस समय बात की बात में रात, नहीं नहीं, रातें बीतती हुई प्रतीत होती हैं।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है। छन्द का लक्षण—न-न-म-य-ययुतेयं मलिनी भोगिलोकैः' ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—शूर्पणखाविवादः=शूर्पणखा के साथ विवाद। एतावत्=इतना ही, यहीं तक। वियोगत्रस्ते=हे विरह से भयभीत (सीते)। दुर्जनः=दुष्ट व्यक्ति, असुखम्=दुःख। हन्त=खेद है, वर्तमान इव=वर्तमान-सा, तात्कालिक।

टीका—लक्ष्मण इति। शूर्पणखाविवादः—शूर्पणखया=रावणभगिन्या सह विवादः=कलहः। एतावत्=एतावदेव कालपर्यन्तः। वियोगत्रस्ते—वियोगः=मया साकं

---

१. एषा...शूर्पणखा, २. ज्जेव, ३. करुणैः, करुणकरुणैः।

लक्ष्मण--यह पञ्चवटी में शूर्पणखा के साथ विवाद (का दृश्य) है।

सीता--हाय आर्यपुत्र, यहीं तक आपका दर्शन है।

राम--हे (मेरे) विरह से भयभीत (सीते), यह चित्र है, (न कि वास्तविकता)।

सीता--जो कुछ भी हो। दुर्जन दुःख (ही) उत्पन्न करता है।

राम—खेद है, जनस्थान का वृत्तान्त मुझे वर्तमान-सा प्रतीत होता है।

लक्ष्मण—इसके बाद (अर्थात् शूर्पणखा वृत्तान्त के अनन्तर) पापी राक्षसों के द्वारा सुवर्णमृग के छल की विधि से यह (चित्र निर्दिष्ट सीता हरण रूप) वैसा किया गया, जो कि प्रतिकार कर दिये जाने पर भी व्यथित करता है। सुनसान जनस्थान (दण्डकारण्य) में विकल इन्द्रियोंवाले पूज्य आपके (विलाप आदि) चरितों से पत्थर भी रो पड़ा था और वज्र का भी हृदय फट गया था ॥ २८ ॥

विच्छेदः, तस्मात् त्रस्ता=भीता तत्सम्बुद्धौ, दुर्जनः=दुष्टः, असुखम्=दुःखम्, हन्त= खेद-सूचकमव्ययमेतत्, वर्तमान इव=अनुभूयमान इव ॥

टिप्पणी--**शूर्पणखा**—शूर्पवत् नखाः यस्याः सा शूर्पणखा=सूप की तरह (विशाल) नखवाली। यह रावण की बहन थी। उन दिनों खर-दूषण के साथ दण्डकारण्य में रहा करती थी।

एतावत्ते दर्शनम्—शूर्पणखा के नाक-कान कटने के बाद कुछ ही दिनों के भीतर रावण ने सीता का हरण किया था। अतः चित्र को देखकर सीता को भयवश भूतकाल की घटना वर्तमान-सी प्रतीत हो रही है। यही कारण है कि वे कह रही हैं—बस, यहीं तक आपका दर्शन है ॥

अन्वयः--अथ, पापैः, रक्षोभिः, कनकहरिणच्छद्मविधिना, इदम्, तथा, वृत्तम्, यथा, क्षालितम्, अपि, व्यथयति; शून्ये, जनस्थाने, विकलकरणैः, आर्यचरितैः, ग्रावा, अपि, रोदिति, वज्रस्य, अपि, हृदयम्, दलति ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—अथ=तदनन्तर, इसके बाद, सूर्पणखा वृत्तान्त के अनन्तर, पापैः= पापी, रक्षोभिः=राक्षसों के द्वारा, कनकहरिणच्छद्मविधिना=सुवर्ण-मृग के छल की विधि से, इदम्=यह, तथा=वैसा, उस तरह, वृत्तम्=किया गया, यथा=जैसे कि, जो कि, क्षालितम्=प्रतिकार कर दिये जाने पर, धो दिये जाने पर, अपि=भी, व्यथयति=व्यथित करता है, कष्ट देता है। शून्ये=सुनसान, जनस्थाने=जनस्थान (दण्डकारण्य) में, विकलकरणैः=विकल इन्द्रियों वाले, आर्यचरितैः=पूज्य आपके चरितों से, ग्रावा=पत्थर, अपि=भी, रोदिति=रोता है, वज्रस्य=वज्र का, अपि= भी, हृदयम्=हृदय, दलति=फट जाता है ॥ २८ ॥

टीका—सीताहरणादिरूपवृत्तान्तं स्मारयितुमाह—**अथेदमिति**। अथ=सूर्पणखा-वृत्तान्तानन्तरम्, पापैः—पापं विद्यते एषामिति पापाः=पापप्रवणाः दुरात्मानः तैः,

सीता—(सास्रमात्मगतम् ।) **अहो, दिनकरकुलानन्दन एवमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत् ।** [अह्यो, दिणअरकुलाणन्दणो एव्वं वि मह काणणादो किलन्तो[1] आसि ।]

लक्ष्मणः—(रामं निर्वर्ण्य साकूतम्) आर्य ! किमेतत् ?

अयं [2]तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लु[3]ठति धरणीं जर्जरकणः ।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति [4]चिरमाध्मातहृदयः ॥२९॥

रक्षोभिः=राक्षसैः, कनकेत्यादि०—कनकमयो हरिणः कनकहरिणः=सुवर्णमृगः एव छद्म=कपटम् तस्य विधिना=विधानेन, अनुष्ठानेनेत्यर्थः, इदम्=चित्रदिर्दिष्टं सीताहरणमित्यर्थः, तथा=एवं हि, तेन प्रकारेण, वृत्तम्=आचरितम्, यथा=यत्, क्षालितम्=मार्जितम्, कृतप्रतिकारमित्यर्थः, अपि=च, व्यथयति=पीडयति, अस्मानिति शेषः, शून्ये=मानवसञ्चाररहिते, जनस्थाने=तन्नाम्नि दण्डकारण्यभागे, विकलकरणैः—विगता=अपगता कला=सामर्थ्यं येषां तानि तथोक्तानि स्वव्यापारासमर्थानि, करणानि=इन्द्रियाणि येषु तैः, आर्यचरितैः आर्यस्य=पूज्यस्य रामस्य चरितैः=विलापादिचेष्टितैः, ग्रावा=पाषाणः, ('ग्रावाणौ शैलपाषाणौ' इत्यमरः), अपि=च, रोदिति=विलपति, तथा, वज्रस्य=अतिकठिनस्य कुलिशस्य, अपि, हृदयम्=वक्षः, दलति=स्फुटति, तर्हि चेतनानां सचेतसाञ्च प्राणिनां का कथा ? इति भावः । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारस्तथा शिखरिणी छन्दः ॥ २८ ॥

टिप्पणी—वृत्तम्—व्यवहार किया गया । √वृत् + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

व्यथयति यथा क्षालितमपि—बदला ले लिये जाने के अनन्तर आज भी स्मरण करने पर हृदय को पीडित करता है । √क्षल् + णिच् + क्त + विभक्तिकार्ये=क्षालितम् ।

ग्रावा रोदिति—कविवर भवभूति ने करुण रस की अवतारणा में जो अनुपम सफलता अर्जित की है, उसी की ओर यहाँ निर्देश है । वस्तुतः वे करुण को ही प्रधान रस मानते हैं—'एको रसः करुण एव' (३।४७) । उनका अभिप्राय यह है कि मेरा काव्य पत्थर को भी रुला देने वाला और वज्र के हृदय को भी फाड़

---

१. कलिदोसि (क्लिष्टोसि), अयि देव रहुकुललाणन्द एव्वं मम कालणादो किलन्तो आसि [अयि देव, रघुकुलानन्द, एवं मम कारणात् क्लान्तः आसीः]
२. ते वाष्पौघः, ३. गलति, ४. च भराध्मात०

सीता—(आँसू बहाती हुई, अपने आप) ओह, सूर्यवंश को आनन्दित करनेवाले (राम) इस तरह भी, मेरे कारण, दुःखी हुए थे ।

लक्ष्मण—(राम को ध्यान से देखकर, अभिप्रायपूर्वक) आर्य, यह क्या ?

सम्प्रति धाराओं के रूप से (में) बहता हुआ, चूर-चूर बूँदों वाला, यह आँसू, टूटी हुई मोतियों की लड़ी की तरह, भूतल पर लुढ़क रहा है। बहुत दिनों से हृदय में कस कर भरा हुआ शोक का आवेग रोके जाने पर भी, फड़कते हुए ओठ तथा नासापुट (नाक) से, दूसरों का अनुमेय हो जाता है (अर्थात् दूसरे लोगों के द्वारा अन्दाज कर लिया जाता है) ॥ २९ ॥

देने वाला है। इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें अपने इस उद्देश्य में पर्याप्त सफलता भी मिली है।

शब्दार्थः—सास्रम्=आँसुओं के साथ, आँसू बहाती हुई, आँखों में आँसू भर कर, दिनकरकुलानन्दन=सूर्यवंश को आनन्दित करने वाले, क्लान्तः=क्लेशयुक्त, दुःखी। साकूतम्=अभिप्राय के साथ, अभिप्रायपूर्वक।

टीका—सीतेति। सास्रम्—अस्रेण=नेत्रजलेन सहितं यथा तथा, दिनकर-कुलानन्दन—दिनं करोतीति दिनकरः=सूर्यः तस्य कुलम्=वंशस्तमानन्दयतीति तादृशः, क्लान्तः=क्लिष्टः, अतिशयदुःखित इत्यर्थः। साकूतम्—आकूतेन=अभि-प्रायेण सहितं यथा तथा, साभिप्रायमित्यर्थः। स्वयमावेगहेतुं जानन्नपि राममुखाद् तस्य श्रवणमभिप्रायः, अत एव साभिप्रायमित्युक्तम् ॥

अन्वयः—तावत्, धाराभिः, विसर्पन्, जर्जरकणः, अयम्, वाष्पः, त्रुटितः, मुक्तामणिसरः, इव, धरणीम्, लुठति; चिरम्, आध्मातहृदयः, आवेगः, निरुद्धः, अपि, स्फुरदधरनासापुटतया, परेषाम्, उन्नेयः, भवति ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—तावत्=सम्प्रति, अथवा यह अव्यय वाक्य को आरम्भ करने के लिये प्रयुक्त होता है, अतः आरम्भार्थक है, धाराभिः=धाराओं के रूप से, विसर्पन्=बहता हुआ, जर्जरकणः=चूर-चूर बूँदों वाला, अयम्=यह, वाष्पः=आँसू, त्रुटितः=टूटी हुई, मुक्तामणिसरः=मोतियों की लड़ी की, इव=तरह, धरणीम्=भूतल पर, लुठति=लुढ़क रहा है; चिरम्=बहुत दिनों से, आध्मातहृदयः=(अपनी अधिकता से) फुला दिया है=भर दिया है हृदय को जिसने ऐसा, हृदय में कसकर भरा हुआ, आवेगः=शोक का आवेग, निरुद्धः=रोका हुआ, रोके जाने पर, अपि=भी, स्फुरद-धरनासापुटतया=फड़कते हुए ओठ तथा नासापुट (नाक) से, परेषाम्=दूसरों का, उन्नेयः=अनुमेय, अनुमान का विषय, भवति=हो जाता है ॥ २९ ॥

टीका—कथमिदं ज्ञायते, तदेव प्रकाशयितुमात्मनोऽभिप्रायाभिज्ञतां प्रकटयति—**अयमीति**। तावत्=सम्प्रति, नूतनप्रसङ्गारम्भे वा, धाराभिः=प्रवाहैः, विसर्पन्=

रामः--वत्स !

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां करोति[1] ॥३०॥

प्रसरन्, जर्जरकणः—जर्जराः=पतित्वा बहुशः खण्डिताः कणाः=बिन्दवो यस्य तथोक्तः, अयम्=एषः, वाष्पः=अश्रु, त्रुटितः=छिन्नसूत्रः, मुक्तामणिसरः—मुक्ताः एव मणयः तेषां सरः=सूत्रम्, इव=यथा, धरणीम्=भूमिम्, लुठति=निपतति; चिरम्=बहुकालम्, बहोः कालादित्यर्थः, आध्मातहृदयः—आध्मातम्=आपूरितं ताडितं वा हृदयम्=अन्तःकरणं येन स तथोक्तः, आवेगः=शोकावेगः, निरुद्धः=प्रयत्नतोऽन्तःसंयमितोऽपि, स्फुरदधरनासापुटतया—स्फुरत्=कम्पमानम् अधरस्य=निम्नौष्ठस्य नासायाश्च पुटम्=प्रान्तभागः यस्य तस्य भावः तया हेतुना, ओष्ठस्य नासिकायाश्च स्फुरणेनेत्यर्थः, परेषाम्=अन्येषाम्, उन्नेयः=अनुमेयः, भवति=जायते। अत्रानुमानालङ्कारः। छन्दस्तु शिखरिणी ॥ २९ ॥

टिप्पणी—**त्रुटितः**—टूटे हुए, √त्रुट्+क्त+विभक्तिकार्यम्। **विसर्पन्**—फैलता हुआ, वि+√सृप्+शतृ+प्रथमैक-वचने विभक्तिकार्यम्।

लुठति धरणीम्—आँखों से आँसू बहे। बूंदें गालों पर से होती हुई भूतल पर गिरीं। गिर-गिर कर चूर-चूर होती गईं। आँसुओं की सफेद-सफेद बूँदें धवल मुक्ता की माला की लड़ी जैसी लग रही थीं।

स्फुरदधर० भवति--जब व्यक्ति का दुःख दबाये दबता नहीं। व्यक्ति उसे भीतर ही दबा देने का प्रयास करता है। दुःख रुदन आदि के रूप में फूट पड़ना चाहता है। उस समय व्यक्ति का अधरोष्ठ और नाक का बगल वाला भाग फड़फड़ाने लगता है। व्यक्ति की यह अवस्था देखकर देखने वाला उसके हृदय में कोई महान् कष्ट भरा हुआ है यह जान लेता है।

इस श्लोक में अनुमान अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण--

'रसै रुद्रैश्छिन्ना य-म-न-स-भ-ला गः शिखरिणी' ॥ २९ ॥

अन्वयः—प्रियजनविप्रयोगजन्मा, तीव्रः, अपि, दुःखाग्निः, प्रतिकृतिवाञ्छया, तत्कालम्, विसोढः, (किन्तु), पुनः, मनसि, विपच्यमानः, हृन्मर्मव्रणः, इव, वेदनाम्, करोति ॥ ३० ॥

शब्दार्थः--प्रियजनविप्रयोगजन्मा=प्रियजन (सीता) के वियोग से उत्पन्न,

---

१. तनोति,

राम—वत्स,

प्रिय-जन (अर्थात् सीता) वियोग से उत्पन्न तीव्र भी शोकानल, बदला लेने की भावना से, उस समय सह लिया गया, (किन्तु) फिर मन में पकते हुए हृदय के मर्मस्थल के फोड़े के समान, व्यथा कर रहा है ॥ ३० ॥

तीव्रः=तीव्र, अपि=भी, दुःखाग्निः =शोकानल, दुःखरूपी आग, प्रतिकृतिवाञ्छया=बदला लेने की भावना से, तत्कालम्=उस समय, विसोढः=सह लिया गया, (किन्तु=परन्तु), =फिर, चित्र-दर्शन के अनन्तर, मनसि = मन में: विपच्यमानः=पकते हुए, परिपक्व होता हुआ, हृन्मर्मव्रणः=हृदय के मर्मस्थल के फोड़े के, इव = समान, वेदनाम्=व्यथा को, करोति=कर रहा है ।। ३० ॥

टीका--तत्कालमिति -- प्रियजनविप्रयोगजन्मा--प्रियजनेन = प्रेमपात्रेण, सीतया इत्यर्थः, यः विप्रयोगः=विरहः तस्मात् जन्म=उत्पत्तिः यस्य तादृशः, तीव्रः= दुर्विषहः, अपि = च, दुःखाग्निः—दुःखमेवाग्निर्दुःखाग्निः=शोकानलः, प्रतिकृति-वाञ्छया--प्रतिकृतेः = प्रतिकारस्य, वैरनिर्यातनस्येति यावत्, या वाञ्छा = आकांक्षा तया, तत्कालम् = स कालः तत्कालः, कर्मधारयः, तम् तत्कालम्, व्याप्त्यर्थे द्वितीया, विसोढः = कथमप्यनुभूतः, (किन्तु), पुनः=तदनन्तरं चित्रादिदर्शनप्रसङ्गेन, मनसि= चेतसि, विपच्यमानः = स्वयमेव विपाकं प्राप्यमाणः, हृन्मर्मव्रणः--हृदः=अन्तः-करणस्य मर्मणि=मर्मप्रदेशे सञ्जातो व्रण इव=स्फोटक इव, वेदनाम्=व्यथाम्, करोति=उत्पादयति, तनोतीति पाठे तु विस्तारयतीति ज्ञेयः । अत्रोपमालङ्कारः । छन्दस्तु प्रहर्षिणी ॥ ३० ॥

टिप्पणी--**प्रतिकृतिवाञ्छया**–शत्रु रावण के साथ बदला लेने की भावना से । बदला लेने की भावना की अवस्था में व्यक्ति शत्रु के ऊपर क्रुद्ध रहता है । अतः उस समय अपमान या वियोग आदि के कारण होने वाला दुःख सरलता से बर्दास्त कर लिया जाता है ।

विसोढः—वि + √सह + क्त (कर्मणि) + विभक्ति-कार्यम् ।

विपच्यमानः—वि + √पच् + कर्मकर्तरि + यक् + शानच् + विभक्तिकार्यम् । यह 'दुःखाग्निः' तथा 'हृन्मर्मव्रणः' दोनों का विशेषण है । किन्तु यहाँ 'व्रणः' का ही विशेषण मानना अधिक उपयुक्त होगा ।

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा प्रहर्षिणी छन्द है । छन्द का लक्षण—"त्र्याशाभिः मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्" ॥ ३० ॥

सीता--हा धिक् हा धिक्; अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्र-शून्यमिवात्मानं [१]पश्यामि। [हद्धी हद्धी ! अहं वि अदिभूमिं गदेण रणरणएण अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि।]

लक्ष्मणः—(स्वगतम्।) भवतु, अन्यतः क्षिपामि। (चित्रं विलोक्य। प्रकाशम्।) अथैतन्मन्वन्तर[२]पुराणस्य तत्र भवतस्तातजटायुषश्चरित्र-विक्रमोदाहरणम्।

सीता--हा तात! निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः। [हा ताद! णिव्वूढो दे अवच्चसिणेहो।]

रामः-हा तात काश्यप शकुन्तराज! क्व नु खलु पुनस्त्वादृशस्य महत-स्तीर्थभूतस्य साधोः संभवः ?

लक्ष्मणः--अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः कुञ्जवा[३]न्नाम दनुकबन्धा धिष्ठितो दण्डकारण्यभागः[४]। तदिदमृष्य[५] मूकपर्वते [६]मतङ्गाश्रमपदम्। इयं[७] श्रमणा नाम सिद्धा[८] शबरतापसी। तदेतत्पम्पाभिधानं पद्म[९]सरः।

शब्दार्थः--अतिभूमिम् = पराकाष्ठाको, अत्यन्त अधिकताको, गतेन = प्राप्त हुए, रणरणकेन = उद्वेग के कारण, उत्कण्ठा के कारण। अन्यतः=दूसरी ओर, क्षिपामि= प्रेरित करता हूँ, आकृष्ट करता हूँ, मन्वन्तर–पुराणस्य = मन्वन्तर से भी प्राचीन, तत्र भवतः=उन पूजनीय।

टीका--सीतेति। अतिभूमिम्–अतिशयिता या भूमिस्ताम् अतिभूमिम्=परां काष्ठाम्, गतेन=प्राप्तेन, रणरणकेन = उद्वेगेन अन्यतः = अस्मिन् विषये, क्षिपामि= सञ्चारयामि, प्रेरयामीत्यर्थः, मन्वन्तरपुराणस्य–अन्यो मनुर्मन्वन्तरम्, मन्वन्तरेण पुराणः = तस्य, अतिप्राचीनस्येत्यर्थः, तत्र भवतः=पूज्यस्य तस्य, जटायुषो विशेषण-मेतत्।

टिप्पणी—आर्यपुत्रशून्यमिव–सीता चित्र में रावण के द्वारा अपने हरण किये जाने तथा जटायु के साथ उसके युद्ध आदि को देखकर अतीत की अनुभूतियों में इस प्रकार लीन हो गईं कि उन्हे यह प्रतीत होने लगा कि अब भी मैं प्राणप्रिय राम से वियुक्त ही हूँ। वस्तुतः उनकी इस अनुभूति में शीघ्र ही होने वाले राम के वियोग की छाया है। झलक है।

मन्वन्तरपुराणस्य—मनु चौदह हैं। एक-एक मनु के राज्य-काल को मन्वन्तर कहते हैं। इस प्रकार चौदह मन्वन्तर भी हैं। इस समय सातवाँ अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर है। चारों युगों का एक चतुर्युग होता है। ७१ चतुर्युगों का एक मन्वन्तर

१. प्रेक्षे, २. पुराणगृध्रराजस्य, ३ चित्रकुञ्जवान्नाम, ४. भूभागः, ५. अमुष्य परिसरे, ६. मतङ्गस्य ७. तत्र, ८. सिद्धशबरी, ९ सरः।

सीता--हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है, मैं भी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई उत्कण्ठा के कारण अपने आपको आर्यपुत्र से रहित-सी देख रही हूँ।

लक्ष्मण—(अपने आप) अच्छा, (इनका ध्यान) दूसरी ओर आकृष्ट करता हूँ। (चित्र देखकर, प्रकट रूप से) मन्वन्तर से भी प्राचीन, उन पूजनीय पितृतुल्य जटायु के चरित्र और पराक्रम का (यह) उदाहरण है।

सीता—हा तात, आपका सन्तान के प्रति प्यार पूर्णरूप से निबाहा गया (अर्थात् आपने सन्तान हमलोगों के प्रति पूर्णतया स्नेह अन्त तक प्रदर्शित किया)।

राम—हा तात, कश्यप के गोत्र में उत्पन्न पक्षिराज, फिर आपके समान महान् तीर्थस्वरूप साधु का जन्म कहाँ होता है।

लक्ष्मण—यह वही (पूर्वपरिचित) जनस्थान के पश्चिम में, दनुकबन्ध से अधिष्ठित, कुञ्जवान् नामक दण्डक वन का भाग है। यह वही ऋष्यमूक पर्वत पर मतङ्ग ऋषि का आश्रम-स्थान है और यह 'श्रमणा' नाम वाली, सिद्धि प्राप्त की हुई, शबर जाति की तपस्विनी है। यह वही 'पम्पा' नामक पद्म सरोवर है।

होता है। एक मन्वन्तर तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष का होता है।

तत्र भवतः—सामने वर्तमान अत्यन्त पूज्य व्यक्ति के लिए 'अत्र भवान्' तथा परोक्ष व्यक्ति के लिये 'तत्र भवात्' कहा जाता है। यह शब्द अत्यन्त आदर सूचित करने के लिये प्रयुक्त होता है।

चरित्रविक्रमोदाहरणम्—सीता को हर कर ले जाते हुए रावण के साथ जटायु ने सीता को छुड़ाने के लिये युद्ध कर अपनी जान दे दी थी। इसी बात की ओर यहाँ संकेत है।

शब्दार्थः—निर्व्यूढः=निबाहा गया, अत्यन्त सुदृढ, अपत्यस्नेहः=सन्तान के प्रति प्यार, काश्यपः=कश्यप के गोत्र में उत्पन्न, शकुन्तराज=पक्षिराज, तीर्थभूतस्य=तीर्थ-स्वरूप, पावन, सम्भवः= उत्पत्ति, जन्म ॥

टीका—सीतेति। **निर्व्यूढः**—यावज्जीवनं निर्वाहितः, सुदृढ इति भावः, अपत्यस्नेहः—अपत्येषु=सन्ततिषु स्नेहः=प्रेमातिशयः, अपत्यस्नेहस्य पराकाष्ठा प्रदर्शितेति भावः, काश्यपः=कश्यपगोत्रोत्पन्नः, शकुन्तराज=शकुन्तानाम्=पक्षिणां राजा=पतिः तत्सम्बुद्धौ तथोक्तः, तीर्थभूतस्य = तीर्थस्वरूपस्य, पावनस्येत्यर्थः, सम्भवः = उत्पत्तिः ॥

टिप्पणी—**निर्व्यूढः**--निर् + वि + √वह् + क्त कर्मणि + विभक्तिकार्यम्।

तीर्थभूतस्य—तीर्थ अपने पास आये हुए व्यक्तियों को पवित्र कर देता है। साधु व्यक्ति भी अपने सम्पर्क में आये जनों को तार देता है। यही है किसी सज्जन व्यक्ति का तीर्थभूत होना ॥

सीता—यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितमासीत्। [जत्थ किल अज्जउत्तेण विच्छिण्णामरिसधीरत्तणं पमुक्वकण्ठं परुण्णं आसि।]

रामः—देवि ! [1]परं रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले
संदृष्टाः कुवलयिनो भुवो[2] विभागाः ॥३१॥

शब्दार्थः—**दनुकबन्धाधिष्ठितः**—दनुकबन्ध (शिर-विहीन शरीर वाले एक राक्षस) से अधिष्ठित (अर्थात् अपने अधिकार में किया हुआ)। शिद्धा=तपस्या से सिद्धि को प्राप्त की हुई, शबरतापसी=शबर जाति की तपस्विनी। विच्छिन्नामर्ष-धीरत्वम्=क्रोध (अमर्ष) तथा धैर्य नष्ट हो गया है जिस कर्म मेंइस प्रकार से, यह 'प्ररुदितं' का क्रियाविशेषण है। मुक्तकण्ठम्=गला फाड़कर, ऊँचे स्वर से।

टीका—**लक्ष्मण इति। दनुकबन्धाधिष्ठितः**—दनुकबन्धेन = दनुनामकेन शिरोविहीनेन केनचिद्राक्षसेन 'दनुः' नाम यः कबन्धः=निष्कन्धरः राक्षसः तेन, अधिष्ठितः=अध्युषितः, स्वाधिकारे कृत इत्यर्थः, सिद्धा=तपसः पारं गता, शबरतापसी= तपस्विनी शबरी। विच्छिन्नामर्षधीरत्वम्—अमर्षः=क्रोधः धीरत्वञ्च=धैर्यञ्चेत्यमर्ष—धीरत्वे विच्छिन्ने = अपगते अमर्षधीरत्वे यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा, प्रमुक्तकण्ठम्—प्रमुक्तः=उदीरितः कण्ठः=गलस्वरः यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, अत्युच्चैरित्यर्थः ॥

टिप्पणी—**पश्चिमतः**—पश्चिम की ओर। यहाँ सप्तमी के अर्थ में तसिल् प्रत्यय है। **दनुकबन्धा०**—दनुकबन्ध पहले विश्वावसु नामक गन्धर्व था। स्थूलशिरा नामक महर्षि के शाप से वह राक्षस हो गया था। एक बार युद्ध में इन्द्र ने उसके ऊपर वज्र से प्रहार किया। फलतः उसका शिर उसके पेट में धँस गया। तभी से उसे लोग दनुकबन्ध कहने लगे। दनुकबन्ध का अर्थ है—शिर-विहीन राक्षस। राम के दर्शन से इसकी मुक्ति हुई थी। **ऋष्यमूषक**—इसी पर्वत पर सुग्रीव रहा करता था। **मतङ्गाश्रमपदम्**—मतङ्ग ऋषि का यह पावन आश्रम पम्पासर के पश्चिम की ओर था। **श्रमणा**—यह शबरजाति की एक सिद्ध तपस्विनी थी। शबरस्त्री होने के कारण इसे शबरी कहते हैं। यह मतङ्ग ऋषि के शिष्यों की सेवा करती थी। राम के दर्शन से इसकी मुक्ति हुई। **प्ररुदितम्**—प्र + √रुद् + क्त + विभक्तिकार्यम् ॥

---

१. क्वचित् परं नास्ति, २. मया,

सीता--जहाँ पर आर्यपुत्र क्रोध एवं धैर्य को खोकर ऊँचे स्वर से (अर्थात् चिल्ला-चिल्लाकर) रोये थे।

राम--महारानी, यह सरोवर अत्यन्त रमणीय है।

इस (सरोवर) में मस्ती के कारण अव्यक्त एवं मधुर ध्वनि करने वाले मल्लिकाक्षों (एक प्रकार के हंसों के) पंखों से कंपाये गये (अतः), हिलते हुए बड़े नालों वाले, श्वेत कमलों से युक्त भू-भाग, (मेरे द्वारा) अश्रु-जल के गिरने और पुनः निकलने के बीच (वाले समय) में, देखे गये थे ॥ ३१ ॥

अन्वयः--एतस्मिन्, मद-कल-कल्लिकाक्ष-पक्ष-व्याधूतस्फुरदुरुदण्ड-पुण्डरीकाः, कुवलयिनः, भुवः, विभागाः, (मया), वाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले, संदृष्टाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः--एतस्मिन्=इस (सरोवर) में, मद-कल-मल्लिकाक्ष-पक्ष-व्याधूत-स्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः=मस्ती के कारण अव्यक्त एवं मधुर ध्वनि करने वाले मल्लिकाक्षों (एक प्रकार के हंसों) के पंखों से कंपाये गये (अतः) हिलते हुए बड़े नालों वाले श्वेत कमलों से युक्त, कुवलयिनः = कमलों वाले, भुवः = पृथिवी के, विभागाः = प्रदेश, भू-भाग, (मया=मेरे द्वारा), वाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले = अश्रु-जल के गिरने और निकलने के बीच (वाले समय) में, संदृष्टाः = देखे गये थे ॥ ३१ ॥

टीका—**एतस्मिन्निति** । एतस्मिन्=चित्रे निर्दिश्यमाने पम्पासरसि, मदकलेत्यादि–मदेन=हर्षेण, उद्दामयौवनजनितेन, हर्षेणेति भावः, कलाः=मधुरमस्फुटञ्च शब्दं कुर्वन्तः, ये मल्लिकाक्षाः=धवलदेहाः मलिनचञ्चुचरणा राजहंसास्तेषां पक्षैः=पतत्रैः व्याधूताः=विकम्पिताः अत एव स्फुरन्तः=चञ्चलाः उरवः=विशालाः दण्डाः=मृणालाः येषां तानि तथोक्तानि पुण्डरीकाणि=श्वेतोत्पलानि येषु तथोक्ताः, कुवलयिनः=कुमुद्वन्तः, नीलोत्पलबहुलाः वा, भुवः=पृथिव्याः, विभागाः=प्रदेशाः, मयेति शेषः, वाष्पेत्यादि–वाष्पाम्भसाम्=अश्रुजलानाम्, अश्रूणामित्यर्थः, परिपतनम्–निःशेषेण भूप्राप्तिः उद्गमश्च=उत्पत्तिश्च तयोरन्तरालेः=मध्ये, संदृष्टाः=अवलोकिताः । तव विरहे दुःसहं पम्पासरो विलोक्य विह्वलेन मया भृशं प्ररुदितमिति भावः । अत्र प्रहर्षिणी छन्दः ॥ ३१ ॥

टिप्पणी--**मल्लिकाक्षाः**–मल्लिकाक्ष हंसों की वह जाति है, जिनका शरीर श्वेत तथा चोंच एवं पैर मटमैले होते हैं।

विभागाः संदृष्टाः—सीता के विरह में विह्वल राम उद्दीपक पम्पासरको देखकर और अधिक विह्वल हो उठे। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा उमड़ पड़ी। अतः वे सरोवर के सौन्दर्यको पूर्णतया नहीं देख पाते थे। आँसुओं के गिरने

लक्षमणः—अयमा[1]र्यो हनूमान् !

सीता—एष स चिरनिर्विण्णजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूपकारी महानुभावो मारुतिः। [एसो सो चिरणिव्विण्ण[2]जीवलोअपच्चुद्धरणगुरुओवआरी [3]महानुभावो मारुदी।]

रामः—

दिष्टया सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः।
यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च ॥३२॥

सीता—वत्स ! एष स कुसुमितकदम्बताण्डवितबर्हिणः किन्नामधेयो गिरिः ? यत्रानुभावसौभाग्यमात्रपरिशेषधूसरश्रीर्मूर्च्छंस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुलतल आर्यपुत्र आलिखितः। [वच्छ ! एसो सो[4] कुसुमिदकदम्बताण्डविअबंहिणो किणामहेओ गिरी ? जत्थ अणुभावसोहग्गमेत्तपरिसेसधू[5]सरसिरीमुच्छन्दो[6] तुए परुण्णेण ओलम्बिओ तरुअले अज्जउत्तो आलिहिदो।]

और निकलने के बीच में जितना समय मिलता था, उतने ही समय में वे सरोवर का सौन्दर्य देख सकते थे। यही भाव यहाँ अभिव्यक्त किया गया है।

कतिपय टीकाकारों ने शब्दों की खींचा-तानी करके इसके कई अर्थ किये हैं। किन्तु वे बौद्धिक व्यायाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नामा है—प्रहर्षिणी। छन्द का लक्षण—'त्र्याशाभिर्मनजरगाः' प्रहर्षिणीयम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—आर्यः=अत्यन्त आदरणीय। चिर-निर्विण्ण-जीवलोक-प्रत्युद्धरण-गुरूपकारी=बहुत दिनों से, दुःखित प्राणि-समूह के उद्धार करने से महान् उपकारी, महानुभावः=महान् प्रभावशाली।

टीका—**लक्ष्मण इति।** आर्यः=अत्यन्तमादरणीयः, चिरनिर्विण्णेति–चिरम्=बहुकालं व्याप्य निर्विण्णस्य=दुःखितस्य जीवलोकस्य=प्राणि–समूहस्य, सर्वेषां जीवानामित्यर्थः, प्रत्युद्धरणात्=शोकापनयनात् गुरूपकारी=महोपकारी, महानुभावः=महाशयो महाप्रभावो वेति।

टिप्पणी—**आर्यः**–शङ्कर के अंश से उत्पन्न होने के कारण तथा महान् उपकार करने के कारण भी हनूमान् को 'आर्य' कहा गया है। हनुमान्—ठुड्डी अर्थात् हनु की अत्यन्त दृढता एवं विशालता के कारण इनका यह नाम पड़ा था। हनुमान् ह्रस्व उकार भी है।

चिरनिर्विण्णेति—दुःखी एवं विपत्तिग्रस्त व्यक्तियों की भलाई करना ही

---

१. आर्ये, २. णिव्यूढ (निर्व्यूंह), ३. महाभाओ (महाभागः), ४. क्वचिन्नास्ति, ५. सुन्दर, ६. मुहुत्तं,

लक्ष्मणः—यह अत्यन्त आदरणीय हनुमान् हैं।

सीता—यह वह, बहुत दिनों से दुःखित प्राणि-समूह के उद्धार करने से महान् उपकारी तथा महाप्रभावशाली वायु-पुत्र (हनुमान्) हैं।

राम—सौभाग्य से, यह वही विशालबाहु, (अपनी माँ) अञ्जना के आनन्द को बढ़ाने वाले (हनुमान्) हैं, जिनके पराक्रम से सम्पूर्ण लोक और हम लोग भी कृतार्थ हैं ॥ ३२ ॥

सीता—वत्स, पुष्पित कदम्ब वृक्षों पर ताण्डव नृत्य करते हुए मयूरों से युक्त यह किस नाम का पर्वत है (अर्थात् इस पर्वत का क्या नाम है) ? जहाँ पर तेज के सौन्दर्य मात्र से अवशिष्ट मटियाली शोभावाले, मूर्च्छित होते हुए, (तथा) रोते हुए, तुम्हारे द्वारा सँभाले गये आर्यपुत्र वृक्ष के नीचे चित्रित किये गये हैं ?

हनुमान् का बहुत दिनों से कार्य रहा है। उन्होंने बालि एवं रावण के द्वारा सताये गये क्रमशः सुग्रीव और सीता का उद्धार किया था। वस्तुतः इन शब्दों से सीता ने अपने ही उद्धार की ओर सङ्केत किया है।

अन्वयः—दिष्टया, अयम्, सः, महाबाहुः, अञ्जनानन्दवर्धनः, (अस्ति); यस्य, वीर्येण, भुवनानि, च, वयम्, च, कृतिनः, (स्मः) ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—दिष्टया=सौभाग्यसे, अयम्=यह, सः=वही, महाबाहुः=विशालबाहु, अञ्जनानन्दवर्धनः=अञ्जना के आनन्द को बढ़ाने वाले, (अस्ति=हैं); यस्य=जिनके, वीर्येण=पराक्रम से, भुवनानि=सम्पूर्ण लोक, च=और, वयम्=हम लोग, च=भी, कृतिनः=कृतार्थ, (स्म=हैं) ॥ ३२ ॥

टीका—दिष्टयेति। दिष्टया=सौभाग्येन, अयम्=एषः, चित्रे निर्दिश्यमानः, सः=स्वकर्मणा जगति सुविदितः, महाबाहुः=आजानुलम्बितभुजः, अञ्जनानन्दवर्धनः—अञ्जनायाः=स्वमातुः आनन्दस्य=सौख्यस्य वर्धनः=वर्धकः, अस्तीति क्रियाशेषः, यस्य=यस्य हनुमतः इत्यर्थः, वीर्येण=पराक्रमेण, भुवनानि=सर्वे लोका इत्यर्थः, च=तथा, वयम्=वयं रघुकुलान्वयाः इति यावत्, च=अपि, कृतिनः=कृतार्थाः, उपकृता इत्यर्थः, स्म इति शेषः। अत्रोदात्तालङ्कारः। वृत्तं तु पथ्यावक्त्रम् ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—अञ्जनानन्दवर्धनः—हनुमान् की माता का नाम था अञ्जना। सभी सुयोग्य पुत्र माँ के आनन्द को बढ़ाने वाले होते हैं। अतः हनुमान् भी अपनी माँ के आनन्द को बढ़ाने वाले हैं।

इस श्लोक में उदात्त अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है। छन्द का लक्षण—
'युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्' ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—कुसुमित-कदम्ब-ताण्डवित-बर्हिणः=पुष्पित कदम्ब वृक्षों पर ताण्डव नृत्य करते हुए मयूरों वाला, किन्नामधेयः=किस नाम वाला, गिरिः=पर्वत।

लक्ष्मणः—

सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मि-
न्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः ।
आर्येणा[1] स्मिन्..................

रामः—

.........[2]विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि
प्रत्यावृत्तः स [3]पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः ॥३३॥

अनुभाव–सौभाग्यमात्र-परिशेष-धूसर-श्रीः=तेज के सौन्दर्यमात्र से अवशिष्ट मटियाली (मटमैली, धूमिल) शोभावाले, अवलम्बितः=सहारा दिये गये, संभाले गये, आलिखितः=चित्रित किये गये हैं ।

टीका—सीतेति । कुसुमितेत्यादि––कुसुमानि=पुष्पाणि सञ्जातान्येषामिति कुसुमिताः=पुष्पिताः ये कदम्बतरवः=कदम्बवृक्षाः तेषु ताण्डविताः=नर्तनं कुर्वन्तः बर्हिणः=मयूराः ('मयूरो बर्हिणो बर्हीं नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्' इत्यमरः) यत्र स तादृशः, किन्नमधेयः=किमाख्यः, गिरिः=पर्वतः, अनुभावेत्यादि–अनुभावस्य= प्रभावस्य, तेजस इति यावत्, यत् सौभाग्यम्=सौन्दर्यं समृद्धिरित्यर्थः, तन्मात्रेण परिशेषा = अवशिष्टा धूसरा=किञ्चिन्मलिना श्रीः = शोभा, वपुःकान्तिरित्यर्थः, यस्य स तादृशः, अवलम्बितः=धारितः, दत्तसाहाय्यः, आलिखितः=चित्रितः ॥

टिप्पणी—अनुभावसौभाग्य०–किञ्चित् धूमिल, क्षीण कान्तिवाले द्वितीया के चन्द्र की अपनी एक शोभा होती है । ठीक यही बात रामचन्द्र के विषय में भी यहाँ समझनी चाहिये ।

आलिखितः—आ + √लिख + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

अन्वयः=–अयम्, सः, ककुभसुरभिः, माल्यवान् नाम, शैलः, (अस्ति); यस्मिन्, नीलः, स्निग्धः, नूतनः, तोयवाहः, शिखरम्, श्रयति; आर्येण अस्मिन्......। (वत्स), विरम, विरम, अतः, परम्, (श्रोतुम्), क्षमः, न, अस्मि । मे, सः, जानकीविप्रयोगः, पुनः, प्रत्यावृत्तः, इव ॥ ३३ ।

शब्दार्थः—अयम्=यह, सः=वही, ककुभसुरभिः = अर्जुन वृक्ष के फूलों से सुगन्धित, माल्यवान् नाम = माल्यवान् नामक, शैलः=पर्वत, (अस्ति=है); यस्मिन्= जहाँ पर, नीलः = नीला, स्निग्धः=चिकना, नूतनः=नवीन, तोयवाहः = मेघ, शिखरम्=शिखर पर, श्रयति=ठहरता है, उतरता है; आर्येण=आर्य के द्वारा, अस्मिन्= यहाँ पर,......। (वत्स=वत्स, लघुबन्धु), विरम=रुको, विरम=रुको, अतः =

---

१. एतन्नास्ति क्वचित्, २. वत्सैतस्माद्विरम्, ३. पुनरपि ।

लक्ष्मण—यह वही, अर्जुन वृक्ष के फूलों से सुगन्धित माल्यवान् नामक पर्वत (है), जहाँ पर नीला चिकना एवं नवीन मेघ शिखर पर ठहरता है (अर्थात् आश्रय लेता है)। आर्य के द्वारा यहाँ पर………।

राम—(वत्स), रुको रुको; इससे अधिक (सुनने में) समर्थ नहीं हूँ, । मेरा वह सीता का वियोग फिर से लौट-सा आया है ॥ ३३ ॥

इससे, परम् = अधिक, (श्रोतुम्=सुनने में) क्षमः=समर्थ, न = नहीं, अस्मि = हूँ; मे = मेरा, सः=वह, जानकीविप्रयोगः=सीता का वियोग, पुनः=फिर से, प्रत्यावृत्तः इव=लौट-सा आया है ॥ ३३ ॥

टीका--सोऽयमिति । आयम्=एषः, भवत्या पृष्ट इत्यर्थः, सः = पूर्वपरिचितः, ककुभसुरभिः—ककुभानाम् = अर्जुनवृक्षाणां विकाराः ककुभानि = अर्जुनपुष्पाणि ('इन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः' इत्यमरः) तैः सुरभिः=सुगन्धबहुलः, माल्यवान् नाम्= माल्यवान्संज्ञकः, नीलः = पर्वतः, अस्तीति क्रियाशेषः, यस्मिन्=यत्र पर्वते, नीलः= नीलवर्णः, स्निग्धः=शीतलः, विद्युल्लतिकाभिः समाश्लिष्टत्वात् मसृणश्च, नूतनः= नवीनः; ऋतौ प्रथमोदित इत्यर्थः, तोयवाहः=मेघः, शिखरम्=शृङ्गम्, श्रयति = अवलम्बते, अनेन तस्योच्चता सूचिता। आर्येण = पूज्येन रामेणेत्यर्थः, अस्मिन्= एतस्मिन् पर्वते, इत्येतावत्येव प्रोक्ते, रामो वदति– विरम विरमेति। (हे वत्स=हे प्रिय लक्ष्मण), विरम विरम = अग्रे कथनात् निवृत्तो भव, आग्रहातिशये वीप्सायां द्विरुक्तिः, अतः = अस्मात्, परम्=अधिकम्, श्रोतुमिति शेषः, क्षमः=समर्थः, न=न, अस्मि=वर्ते। मे=मम, सः=पूर्वानुभूतः, जानकीविप्रयोगः=सीताविरहः, पुनः = मुहुः, प्रत्यावृत्त इव=प्रत्यागत इव। एतत्सर्वं दृष्ट्वा श्रुत्वा च पुरानुभूतं जानकीविरहजं दुःखं मे हृदि पुनर्वेदनां जनयतीवेति भावः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ३३ ॥

टिप्पणी--**माल्यवान्**--सम्भवतः यह पर्वत किष्किन्धा के समीप ही स्थित था एवं 'प्रस्रवण' पर्वतश्रेणी का एक भाग था। यहाँ पहुँच कर राम का सीता विषयक शोक असह्य हो उठा था। देखिये–रामा० किष्किन्धा० २७।३१, ३२ तथा रघुवंश–१३।२६–२९ ॥

स्निग्धः--√स्निह् + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

आर्येणास्मिन्—आगे लक्ष्मण इस पर्वत पर घटित राम की विरहावस्था की घटनाओं का वर्णन करना चाहते थे; अतः असह्य होने के कारण राम ने उन्हें रोक दिया।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है। छन्द का लक्षण—

"मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्" ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणः—अतः परमार्यस्य तत्रभवतां कपि[1]राक्षसानां चापरि[2]सङ्ख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद्विज्ञापयामि 'विश्राम्यताम्' इति।

सीता—आर्यपुत्र ! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति। [अज्जउत्त। एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहलाए मए विण्णा[1]-वणिज्जं अत्थि।]

रामः—नन्वाज्ञापय।

सीता—जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्य इति। [जाणे पुणोवि पसण्णगम्भीरासु वणराईसु विहरिअ[2] पवित्त[3] णिम्मलसिसिरसलिलं भअवदिं भाईरहिं ओगाहिस्सं ति।]

रामः—वत्स लक्ष्मण !

लक्ष्मणः—एषोऽस्मि।

शब्दार्थः—तत्रभवताम्=अत्यन्त आदरणीय, अपरिसङ्ख्यानि=अगणित, उत्तरोत्तराणि=क्रमशः अधिक उत्कृष्ट, कर्माश्चर्याणि=अद्भुतकर्म। परिश्रान्ता = थक गईं। प्रत्युत्पन्नदोहदायाः=उत्पन्न हुई अभिलाषावाली, उत्पन्न हुई गर्भिणी की अभिलाषावाली, विज्ञापनीयम्=निवेदन।

टीका—लक्ष्मण इति। तत्रभवताम्=पूज्यानाम्, अपरिसङ्ख्यानि=असंख्यानि, उत्तरोत्तराणि—उत्तरेभ्यः=पश्चाद्घटितेभ्य उत्कृष्टेभ्यो वा उत्तराणि=उत्कृष्टानि, परं परं प्रकर्षमापद्यमानानीत्यर्थः, कर्माश्चर्याणि—कर्मणाम्=कृत्यानाम् आश्चर्याणि=अद्भुतानि, अथवा कर्माणि वीरोचितानि एव आश्चर्याणि, अद्भुतकर्माणीत्यर्थः। परिश्रान्ता=क्लान्ता, प्रत्युत्पन्नदोहदायाः—प्रत्युत्पन्नः=सञ्जातः दोहदः = मनोरथो गर्भिण्यभिलाषो वा यस्याः तथाभूतायाः, मे = मम सीतायाः, विज्ञापनीयम्=निवेदनीयम्। चित्रदर्शनेन मे मनस्येकोऽभिलाषः सञ्जातः। अतस्तत्पूरयितुं भवन्तं निवेदयामीत्यभिप्रायः।

टिप्पणी—प्रत्युत्पन्नदोहदायाः=उत्पन्न हो गई है इच्छा या गर्भिणी की इच्छा जिसकी। जब स्त्रियों को गर्भ रह जाता है, उस समय उन्हें विचित्र-विचित्र खाने तथा देखने की इच्छाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं। इस प्रकार की इच्छा को दोहद कहते हैं। केवल इच्छा को भी दोहद कहते हैं।

---

१. राक्षसानां, २. चासंख्यातानि,

लक्ष्मण—इसके बाद आर्य (अर्थात् आप) के तथा अत्यन्त आदरणीय बन्दरों और राक्षसों के क्रमशः अधिक आश्चर्यजनक कर्म हैं। यह पूजनीय सीता थक गई हैं। अतः निवेदन करता हूँ कि (अब) विश्राम किया जाय।

सीता—आर्यपुत्र, इस चित्र-दर्शन से, उत्पन्न हुई गर्भिणी की अभिलाषावाली मेरा कुछ निवेदन है (अर्थात् चित्र-दर्शन से मेरे मन में एक अभिलाषा उत्पन्न हुई है। अतः निवेदन कर रही हूँ)।

रामः—अवश्य आज्ञा कीजिये।

सीता—सोचती हूँ कि फिर शान्त तथा घनी वन-श्रेणियों में विहार करके पावन, निर्मल और शीतल जलवाली भगवती गङ्गा में गोते लगाऊँ।

राम—लघुबन्धु लक्ष्मण !

लक्ष्मण—मैं यह उपस्थित हूँ।

विज्ञापनीयम्–निवेदन। वि + √ज्ञा + णिच् + अनीयर् (अनीय) + विभक्ति-कार्यम्।

आज्ञापय—आज्ञा कीजिये। राम का यह कथन सीता के प्रति उनका आदर भाव सूचित कर रहा है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह भी है कि—ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से गुरुजनों ने सीता के किसी भी दोहद को तुरन्त पूरा करने का आदेश भेजा है। अतः सीता का दोहद सम्बन्धी निवेदन राम के लिए आदेश के समान है।

शब्दार्थः—**प्रसन्नगम्भीरासु**=शान्त अर्थात् भयरहित तथा घनी, वनराजिषु= वन-श्रेणियों में, पवित्र-निर्मल-शिशिर-सलिलाम्=पावन निर्मल और शीतल जलवाली, भागीरथीम्=गङ्गा में।

टीका—**जाने पुनरपीति**। प्रसन्नगम्भीरासु–प्रसन्नाः=शान्ताः, हिंस्रैः विरहितत्वात् चेतःप्रसादकर्यः, गम्भीराः = लतापादपादिभिर्गहनाः तथाभूतासु, वनराजिषु–विपिनवीथीषु, पवित्रेत्यादि–पवित्रम्=पावनम् निर्मलम्=स्वच्छम् शिशिरञ्च=शीतलञ्च सलिलम्=जलम् यस्याः यस्यां वा तां तादृशीम्, भागीरथीम् = गङ्गाम्।

टिप्पणी—विहृत्य=विहार करके। वि + √हृ + ल्यप् + विभक्तिकार्यम्। अवगाहिष्ये–अव + √गाह् + लृट् + उत्तमपुरुषे एकवचनम्।

---

१. विण्णवम् (विज्ञाप्यम्), २. विहरिस्सं (विहरिष्यामि), ३. पवित्तसोम्मसिसिरावगाहां (पवित्रसौम्यशिशिरावगाहां)

टिप्पणी—यह पृष्ठ ८० का पाठ–भेद है। कृपया संख्या सुधार कर पढ़ें।

रामः—वत्स ! अचिरादेव[1] संपादनीयोऽस्या दोहद[2] इति संप्रत्येव गुरुभिः [3]संदिष्टम् । तदस्खलितसुखसंपातं रथमुपस्थापय ।

सीता—आर्यपुत्र ! युष्माभिरप्यागन्तव्यम् । [अज्जउत्त ! तुह्मेहिं वि आअन्दव्वम् ।]

रामः—अति[4]कठिनहृदये ! एतदपि [5]वक्तव्यम् ?

सीता—तेन हि प्रियं मे [तेण हि पिअं मे[6] ।]

लक्ष्मणः—यदा[7]ज्ञापयत्यार्यः ।

(इति निष्क्रान्तः)

रामः—प्रिये ! वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव ।[8]

सीता—एवं भवतु अपहृतास्मि परिश्रमनिद्रया [एव्वं होदु । [9]ओहरिदह्मि परिस्समणिद्दाए ।]

रामः—तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व [10]मामत्र शयनाय ।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः ॥३४॥

शब्दार्थः—अचिरात् = शीघ्र, दोहदः=अभिलाषा, गर्भवती की अभिलाषा, अस्खलिसुखतसम्पातम्=अबाध तथा सुखकर गतिवाले ।

टीका—राम इति ! अचिरात् = शीघ्रम्, दोहदः=गर्भिण्यभिलाषः, अस्खलितसुखसम्पातम्—अस्खलितः = गात्रसञ्चलनभ्रंशादिरहित इत्यर्थः, अप्रतिघात इति यावत् सुखः=सुखजनकः सम्पातः=गमनम् यस्य तथाविधं रथमित्यस्य विशेषणम् ।

टिप्पणी—अस्खलितसुखसम्पातम्—रामचन्द्र एक ऐसे रथ को लाने का आदेश दे रहे हैं जो ऊँची-नीची तथा ऊभड़-खाभड़ जमीन पर भी न उछले, न कूदे । जो रथ न उछले और न कूदे वह तो सुखदायक होता ही है । पूर्णगर्भा सीता के लिये ऐसा ही रथ होना उचित था ।

उपस्थापय—उप + √स्था + णिच् + लोट् + मध्यमपुरुषैकवचनम् । वक्तव्यम्—√वच् + तव्य + विभक्तिकार्यम् ।

शब्दार्थः—वातायनोपकण्ठे=खिड़की के पास । अपहृता=अपहरण की गई हूँ, अभिभूत कर ली गई हूँ, परिश्रमनिद्रया=परिश्रम के कारण आई हुई निद्रा के द्वारा । निरन्तरम्=गाढ़ रूप से, कस कर, अवलम्ब=सहारा ले लो, पकड़ो ।

---

१. अचिरं, २. दौहृदं, ३. आज्ञप्तम्, ४. अयि कठिन०, ५. वक्तव्यमेव, ६. पिअं मे पिअं मे, ७. यथाज्ञापयत्यार्यः, ८. प्रिये अत्र वातायनोपकण्ठे मूहूर्तं संविष्टौ भवावः,, ९. ओहीरिज्जामिक्खु परिस्समजणिदाए णिद्दाय । (अपह्रिये खलु परिश्रमजनितया निद्रया,) १०. मामनुगमनाय··· वातायनावर्तके,··

राम—वत्स, 'शीघ्र ही पूरी करनी चाहिये इनकी अभिलाषा'—ऐसा अभी-अभी गुरुजनों ने (ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से) सन्देश भेजा है। अतः अबाध तथा सुखकर गति से चलने वाले रथ को (यहाँ) उपस्थित करो।

सीता—आर्यपुत्र, आपको भी (वहाँ) आना चाहिए (अर्थात् आप भी वहाँ आइयेगा)।

राम—हे अत्यन्त कठोर हृदयवाली, क्या यह भी कहने की बात है ? (अर्थात् मैं वहाँ अवश्य आऊँगा)।

सीता—तो मेरे लिये अच्छा है (अर्थात् तब तो मेरे लिए प्रसन्नता की बात है)।

लक्ष्मण—जैसी आर्य आज्ञा दे रहे हैं (वैसा ही करता हूँ)।

(ऐसा कहकर निकल गये)

राम—प्रिये, खिड़की के पास लेट जाओ।

सीता—ऐसा ही हो (अर्थात् ठीक है)। मैं परिश्रम के कारण आई हुई निद्रा के द्वारा अभिभूत कर ली गई हूँ।

राम—तो यहाँ सोने के लिए कस कर मेरा सहारा ले लो।

भय और थकावट के कारण (उत्पन्न) पसीने की बूँदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों से स्पृष्ट (छुये गए) अतः पिघलने वाले चन्द्रकान्त मणि के हार की शोभा वाली (अर्थात् हार के तुल्य विलास वाली), (मुझे) जीवित करती हुई-सी (अपनी यह) भुजा (मेरे) गले में डाल दो ॥ ३४ ॥

टीका—राम इति। वातायनोपकण्ठे--वातस्य=वायोः अयनम्=आगमनम् येन यस्मात् वा तथाभूतं यत् वातायनम्=गवाक्षम् तस्य उपकण्ठे=समीपे। अपहृता=अभिभूता, परिश्रमनिद्रया=परिश्रमजनितेन स्वापेन। निरन्तरम्=निर्नास्ति अन्तरम्=अवकाशो यस्मिन् तद्यथा तथा, गाढमित्यर्थः, अवमम्बस्व=समाश्लिष ॥

टिप्पणी—संविष्टा—सम् + √विश् + कर्तरि क्तः + टाप् + विभक्तिकार्यम्।

परिश्रमनिद्रया—सीता जी का गर्भ प्रायः पूरा हो चुका है। वे स्वल्प परिश्रम मात्र से थक जाती हैं। उन्हें सो जाने की अनिवार्य इच्छा होती है। प्रत्येक स्त्री की, पूर्णगर्भा हो जाने पर, यही अवस्था होती है ॥

अन्वयः—ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः, ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः, जीवयन् इव, बाहुः, अधिकण्ठम्, अर्प्यताम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—ससाध्वस-श्रम-स्वेद-बिन्दुः=भय और थकावट के कारण (उत्पन्न) पसीने की बूँदों से युक्त, ऐन्दव-मयूख-चुम्बित-स्यन्दि-चन्द्रमणि-हार-विभ्रमः =

(तथा कारयन् सानन्दम्) प्रिये ! किमेतत् ?

विनिश्चेतुं शक्यो[1] न सुखमिति वा दुःखमिति वा
[2]प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च [3]सम्मीलयति च ।।३५।।

चन्द्रमा की किरणों से स्पष्ट (छुये गए) अतः पिघलने वाले चन्द्रकान्त मणि के हार की शोभा वाली (हार के तुल्य विलास वाली), जीवयन् इव=जीवित करती हुई सी, बाहुः=भुजा, अधिकण्ठम्=(मेरे) गले में, अर्प्यताम्=डाल दो ।। ३४ ।।

टीका--**जीवयन्निवेति ।** समाध्वसेत्यादिः - साधु=अत्यधिकम् अस्यति=विक्षिपति मनः=चेतः इति साध्वसम्=भयम् (—'दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः), श्रमः=खेदश्चेति साध्वसश्रमौ ताभ्यां जनिताः ये स्वेदबिन्दवः=घर्मबिन्दवः तैः सहितः, अत्र आलेख्यगतशूर्पणखादिदर्शनोद्भूतं साध्वसं श्रमश्च चित्रदर्शनजो ज्ञेयः, ऐन्दवेत्यादि-इन्द्रोः=चन्द्रस्य इमे ऐन्दवाः=चन्द्रसम्बन्धिनः ये मयूखाः=किरणाः तैः चुम्बितः=स्पृष्टः अत एव स्यन्दते=स्रवतीति स्यन्दी यश्चन्द्रमणिहारः=चन्द्रकान्त-मणिमाला तस्य विभ्रमः=विलास इव विभ्रमो यस्य सः, मां जीवयतीति=प्राणयतीति तादृश इव, बाहुः=स्वभुजलता, अधिकण्ठम्=मम कण्ठे, अर्प्यताम्=स्थाप्यतामित्यर्थः । अत्र निदर्शनोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः । रथोद्धता वृत्तम् ।। ३४ ।।

टिप्पणी--यह श्लोक 'मालतीमाधव' (८।३) में भी है।

जीवयन्--√जीव् + णिच् + शतृ + विभक्त्यादिकार्यम् ।

ऐन्दवमयूख०--जब चन्द्रमा की किरणें चन्द्रकान्तमणि के ऊपर पड़ती हैं, उस समय उससे (अर्थात् चन्द्रकान्तमणि से) बूँदें टपकने लगती हैं ।

इस श्लोक में निदर्शना अलङ्कार तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार की संसृष्टि है । इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-रथोद्धता । छन्द का लक्षण—'रात् परैर्नरलगै रथोद्धता' ।। ३४ ।।

अन्वयः—सुखम् इति, वा, दुःखम् इति, वा, प्रमोहः, वा, निद्रा, (अस्ति), किमु, विषविसर्पः, किमु, मदः, (वर्तते, इति), विनिश्चेतुम्, न शक्यः । हि, तव, स्पर्शे, स्पर्शे, परिमूढेन्द्रियगणः, विकारः, मम, चैतन्यम्, भ्रमयति, च, संमीलयति, च ।। ३५ ।।

---

१. शक्ये, २. प्रबोधः, प्रबोधे, ३. समुन्मीलयति, सम्मोहयति ।

(वैसा करवाते हुए आनन्द से) प्रिये, यह क्या (बात) है ?

(यह विकार) सुख है अथवा दुःख है, मूर्च्छा है या नींद, अथवा क्या (यह) विष का प्रसार है या उन्माद ?—ऐसा निश्चय करना सम्भव नहीं है। क्योंकि तुम्हारे स्पर्श-स्पर्श पर इन्द्रिय-समूह को निश्चेष्ट बना देनेवाला विकार मेरी चेतना को भ्रान्त बना रहा है और प्रायः उसे नष्ट-सा कर दे रहा है ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः--सुखम् इति = सुख है, वा=अथवा, दुःखम् इति=दुःख है, वा= अथवा, प्रमोहः=मूर्च्छा, वा=अथवा, या, निद्रा=नींद, (अस्ति = है), किमु=क्या, विषविसर्पः = विष का प्रसार, किमु=क्या, मदः=उन्माद या मद, (वर्तते=है, इति= यह), विनिश्चेतुम्=निश्चय करना, न = नहीं, शक्यः=सम्भव है। हि=क्योंकि, तव=तुम्हारे, स्पर्शे=स्पर्श पर, स्पर्शे=स्पर्श पर, परिमूढेन्द्रियगणः=निश्चेष्ट बना दिया है, अर्थात् अपने विषय को ग्रहण करने में असमर्थ बना दिया है इन्द्रिय समूह को जिसने ऐसा (अर्थात् इन्द्रिय-समूह को निश्चेष्ट बना देने वाला), विकारः=विकार, चित्त की एक विशेष अवस्था, मम=मेरी, चैतन्यम्=चेतना को, भ्रमयति=भ्रान्त बना रहा है, च = और, संमीलयति = ढक दे रहा है, प्रायः नष्ट-सा कर दे रहा है, च = भी ॥ ३५ ॥

टीका--**विनिश्चेतुमिति**। सुखमिति=सुखरूपेण, वा = अथवा, दुःखमिति= दुःखरूपेण, वा=अथवा, प्रमोहः = मूर्च्छा, वा, निद्रा=सुप्तावस्था, अस्तीति क्रियाशेषः, किमु=किम्, विषविसर्पः—विषस्य=गरलस्य विसर्पः=प्रसारः, किमु मदः=उन्मादो मदो वा किम्, (वर्तते = आस्ते, इति=इत्थम्), विनिश्चेतुम् = अवधारयितुम्, न शक्यः=न सम्भाव्यते। अवधारणाशक्तौ हेतुमाह—हीति। हि=यतः, तव=भवत्याः, स्पर्शे-स्पर्शे=प्रतिस्पर्शम्, परिमूढेन्द्रियगणः--परिमूढः-परितः, मूढः = विषयग्रहणा-समर्थत्वात् मोहमुपागतः, इन्द्रियाणाम्=चक्षुरादीनां गणः=समूहो यस्मिन् स तादृशः, विकारः=अन्तरावस्थायाः विकृतिरिति शेषः, मम=रामस्येत्यर्थः, चैतन्यम्=चेतनाम्, भ्रमयति=घूर्णयति, भ्रान्तं करोतीत्यर्थः, च=तथा, संमीलयति=तिरोदधाति, च=अपि। तव स्पर्शानन्दं प्राप्य ममान्तःकरणस्यानिर्वचनीयावस्थेत्यभिप्रायः। अत्र सन्देह-दीपकयोः सङ्करालङ्कारः। शिखरिणी छन्दः ॥ ३५ ॥

-टिप्पणी—**विनिश्चेतुम्**--निश्चय करना, निर्णय करना। वि + निस् + √चि + तुमुन् + विभक्तिकार्यम्। **चैतन्यम्**—चेतना एव चैतन्यम्, चेतना + स्वार्थे ष्यञ् + विभक्त्यादिकार्यम्।

परिमूढेन्द्रियगणः--यह 'विकारः' का विशेषण है। सीता का प्रत्येक स्पर्श राम को आनन्द के सागर में डुबो देता है। उस अवस्था में सारी ज्ञानेन्द्रियाँ जड़-सी हो जाती हैं, अपना-अपना कार्य छोड़कर निचेष्ट-सी हो जाती हैं। फिर तो वह विकार कैसा है ? यह निश्चय करना कठिन है।

सीता—स्थिरप्रासादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम् । [त्थिरप्पसादा तुम्हे[1] इदो दाणिं किमवरम् ।]

रामः —

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि ते [2]सुवचनानि सरोरुहाक्षि !
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥३६॥

श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों में सन्देह अलङ्कार तथा 'विकारः' एवं 'चैतन्यं' का दो क्रियाओं से सम्बन्ध होने से दीपक अलङ्कार है। इस प्रकार यहाँ सन्देह एवं दीपक का सङ्कर है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द है—शिखरिणी। छन्द का लक्षण—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी। ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—स्थिरप्रसादाः = अचल अनुग्रहवाले, सर्वदा समान प्रीतिवाले, इतः= इससे, इससे अधिक, अपरम्=और, दूसरा ॥

टीका—सीतेति। स्थिरप्रसादाः--स्थिरः=अचलः प्रसादः=अनुग्रहः येषां तादृशाः यूयम्, इतः=अस्मात्, परम्=अधिकम्, अन्यद्वा। विवाह-कालादारभ्याद्याव-पर्यन्तं मयि भवतामनुरागः समान एव। अतोऽस्मादधिकं सन्तोषप्रदं मम किं भविष्यति ? ॥

टिप्पणी—स्थिरप्रसादाः--प्रायः देखा जाता है कि नवपरिणीत दम्पति में बहुत अकिक प्रेम होता है, परन्तु यह प्रेम कालक्रमके अनुसार शनैः शनैः शिथिल पड़ता जाता है। यहाँ सीता को प्रसन्नता इस की है कि, उनके ऊपर राम का प्रेम अब तक अपरिवर्तित रहा है। स्त्री के लिये इससे अधिक सौभाग्य की बात भला और क्या हो सकती है ? ॥

अन्वयः--हे सरोरुहाक्षि, ते, एतानि, सुवचनानि, म्लानस्य, जीवकुसुमस्य, विकासनानि, सन्तर्पणानि, सकलेन्द्रियमोहनानि, कर्णामृतानि, च, मनसः, रसायनानि, (सन्ति) ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—हे सरोरुहाक्षि=हे कमललोचने, ते=तुम्हारे, एतानि=ये, सुवचनानि= मधुरवचन, म्लानस्य=मुरझाये हुए, जीवकुसुमस्य=जीवनरूपी पुष्प को, विकासनानि= विकसित करनेवाले, सन्तर्पणानि=भली-भाँति तृप्त करनेवाले, सकलेन्द्रियमोहनानि= सकल इन्द्रियों को मुग्ध करनेवाले, कर्णामृतानि=कानों के लिए अमृतरूप, च= और,

---

१. तुम्हे किं एत्थ अच्चरिअं, २. तानि सुवचनानि सरोरुहाक्ष्याः ।

सीता--आप (मेरे प्रति) अचल अनुग्रह वाले हैं (अर्थात् आपका मेरे प्रति जैसा अनुराग विवाह के समय था, वैसा ही अब भी है), अब इससे अधिक (मुझे) और क्या (चाहिए) ?

राम--हे कमललोचने, तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाये हुए जीवन रूपी पुष्प को विकसित करने वाले, भली-भाँति तृप्त करने वाले, सकल इन्द्रियों को मुग्ध करने वाले, कानों के लिए अमृतरूप और मन के लिए रसायन (पुष्टिकर औषध) हैं ॥ ३६ ॥

मनसः=मन के लिये, रसायनानि = रसायन (अर्थात् पुष्टिकारक औषध); (सन्ति=हैं) ॥ ३६ ॥

टीका—म्लानस्येति। हे सरोरुहाक्षि—सरोरुहे=कमले इव अक्षिणी-लोचने यस्याः=सा सरोरुहाक्षी तत्सम्बुद्धौ हे सरोरुहहाक्षि=हे विकसितशतपत्रायतलोचने, ते= तव, एतानि=सद्य एव त्वयोदीरितानि, सुवचनानि=सुभाषितानि, म्लानस्य=संसार-तापसंसर्गात् ग्लानिमापन्नस्य, जीवकुसुमस्य—जीवः=जीवनं तदेव कुसुमम्= पुष्पम् तस्य, विकासनानि=विकासजनकानि, हर्षोत्पादकानीत्यर्थः, सन्तर्पणानि= तृप्तिजनकानि, भोग्यान्तराकाङ्क्षानुत्पादकानीति भावः, अतः सकलेत्यादि–सकलानाम्= सर्वेषाम् इन्द्रियाणाम् मोहनानि=मोहजनकानि, स्वस्वव्यापारनिरोधीनीत्यर्थः, कर्णा-मृतानि=कर्णयोः=श्रोत्रयोः अमृतानि=अमृतवत् सुखप्रदानि, च=तथा, मनसः=चेतसः, रसायनानि रसस्य=वीर्यस्य अयनानि=आधानानि, तुष्टिकराणि औषधानीत्यर्थः, सन्तीति क्रियाशेषः। तव सुवचनं मम प्राणसर्वस्वमस्तीत्यभिप्रायः। अत्र रूपकमल-ङ्कारः। वसन्ततिलका च छन्दः ॥ ३६ ॥

टिप्पणी--म्लानस्य--सांसारिक झंझटोंसे मलिन=दुःखी, √म्लै (हर्षक्षये) + क्त + विभक्त्यादिकार्यम् ।

विकासनानि—विकससित करने वाले, खिलाने वाले, वि + √कस् (गतौ) + णिच् + ल्युट् (कर्तरि) + विभक्तिकार्यम् ।

रसायनानि--वृद्धावस्था तथा व्याधि के विनाशक औषध को रसायन कहते हैं—'यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्' चरकः। 'रस' शब्द का अर्थ होता है– पारद और अयुर्वेद के अनुसार शुद्ध किया गया पारद औषधरूप में आयुर्वर्धक है।

यहाँ सीता के वचनों पर रसायन का तथा जीव पर कुसुम का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है--वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण--

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ ३६ ॥

सीता—प्रियंवद ! एहि । संविशावः । [पिअंवद ! एहि[१] । संविसह्म ।]

(इति शयनाय समन्ततो निरूपयति)

रामः—अयि[२] ! किमन्वेष्टव्यम् ?

आ विवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनु यौवने पुनः ।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया रामबाहुरुपधानमेष ते ॥ ३७ ॥

सीता—(निद्रां नाटयन्ती) अस्त्येतत् । आर्यपुत्र ! अस्त्येतत् । [अत्थि एदम् । अज्जउत्त ! अत्थि एदम् ।] इति स्वपिति ।

रामः—कथं प्रियवचना[३] मे वक्षसि प्रसुप्तैव[४] । (निर्वर्ण्य । सस्नेहम्) ।

शब्दार्थः—प्रियंवद=प्रियवादिन्, मीठे वचन बोलने वाले, संविशावः=हम दोनों लेटें, समन्ततः=चारों ओर, निरूपति=देखती है, अन्वेष्टव्यम्=खोजना है ? खोजने की आवश्यकता है ? ।।

टीका–सीतेति । प्रियंवद—प्रियं वदतीति प्रियंवदस्तत्सम्बुद्धौ, संविशावः=शेवहे, समन्ततः=परितः, निरूपति=अवलोकयति, अन्वेष्टव्यम्=गवेषणीयम्, अन्वेषणस्य नास्त्यावश्यकतेति भावः ॥

टिप्पणी—निरूपयति—सीता शयन करना चाहती थीं । अतः उन्हें एक तकिया (उपधान) की आवश्यकता थी । उसी के लिए उन्होंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई है ।

अन्वेष्टव्यम्—राम के पूछने का अभिप्राय यह है कि क्या तुम्हारे लिए तकिया खोजने की आवश्यकता है ? अर्थात् नहीं । क्योंकि वह तो तुम्हारे निकट ही है । उसी के लिए आगे का श्लोक कह रहे हैं ॥

अन्वयः—आ विवाहसमयात्, शैशवे, गृहे, तदनु, पुनः, यौवने, वने, स्वापहेतुः, अन्यया, अनुपाश्रितः, एषः, रामबाहुः, ते, उपधानम्, (अस्ति) ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—आ विवाहसमयात्=विवाह के समय से लेकर, शैशवे=बाल्यकाल में, गृहे=घर पर, तदनु=और उसके बाद, तत्पश्चात्, पुनः=फिर, यौवने=युवावस्था में, वने=वन में, स्वापहेतुः=शयन का साधन, अन्यया=किसी दूसरी स्त्री के द्वारा, अनुपाश्रितः=उपयुक्त न किया गया, एषः=यह, रामबाहुः=राम का बाहु, ते=तुम्हारी, उपधानम्=तकिया, (अस्ति=है) ॥ ३७ ॥

टीका—आ विवाहेति । आ विवाहसमयात्=विवाहकालमारभ्य, विवाहकालात् परमित्यर्थः, शै.वे=बाल्यकाले, कैशोरावस्थायामित्यर्थः, तदनु=तत्पश्चात्, पुनः=मुहुः, यौवने=युवावस्थायाम्, वने=अरण्ये, स्वापहेतुः=शयनसाधनम्, तथा

---

१. सइस्सं (शयिष्ये), २. अपि संदेष्टव्यम्, ३. प्रियवचनैव, ४. प्रसुप्ता ।

सीता—प्रियवादिन्, हम दोनों लेटें।

(ऐसा कहकर शयन करने के लिये चारों ओर देखती है)

राम—हे प्रिये, क्या ढूढने की आवश्यकता है ? (अर्थात् ढूढने की आवश्यकता नहीं है।)

विवाह के समय से लेकर बाल्यकाल में घर पर और उसके बाद फिर युवावस्था में, वन में, (तुम्हारे) शयन का साधन तथा किसी दूसरी स्त्री के द्वारा उपयुक्त न किया गया यह राम का बाहु तुम्हारी तकिया (है) ॥ ३७ ॥

सीता—(निद्रा का अभिनय करती हुई) ऐसा ही है, आर्यपुत्र, ऐसा ही है। (ऐसा कह कर सो जाती है)।

राम—क्या प्रियभाषिणी (प्रियतमा सीता) मेरे वक्षःस्थल पर सो ही गई ? (ध्यान से देखकर, स्नेहपूर्वक)।

अन्यया कयाचित् स्त्रिया, अनुपाश्रितः=अनालम्बितः, स्वापहेतुतयाऽनुपभुक्त इत्यर्थः, 'न रामः परदारान् वै चक्षुर्भ्यामपि पश्यति' इति प्रसिद्धिः। एषः=अयम्, तव समीपे सुलभ इत्यर्थः, रामबाहुः=रामस्य भुजः, ते=तव, उपधानम्=उपबर्हः, ('उपधानं तूपबर्हः' इत्यमरः) अस्तीति क्रियाशेषः, अधुनाऽपि तदस्तु, किमन्यान्वषणेनेति भावः। अत्र परिणामालङ्कारः। रथोद्धता च वृत्तम् ॥ ३७ ॥

टिप्पणी--आ विवाहसमयात्—'आङ् मर्यादावचने' (पा० १।४।८९) इति कर्मप्रवचकीयसंज्ञा, पञ्चम्यपाङ्परिभिः (पा० २।३।१०) इत्यनेन आङ्योगे पञ्चमी।

शैशवे—शिशोर्भावः, शिशु + ष्यञ् + विभक्त्यादिकार्यम्। **यौवने**—यूनो भावः, युवन् + अण् + विभक्त्यादिकार्यम्।

रामबाहुः—यहाँ 'मद्बाहु' का प्रयोग न करके 'रामबाहु' का प्रयोग राम के एकपत्नीव्रत की प्रसिद्धि की सूचना देता है।

यहाँ राम के बाहु में तादात्म्यरूप से उपधानत्व का आरोप करने के कारण तथा शयनोपयोगिता की प्रतीति होने के कारण भी 'परिणामालङ्कार' है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—रथोद्धता। छन्द का लक्षण—'रात् परैर्नरलगै रथोद्धता' ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—नाटयन्ती=अभिनय करती हुई, प्रियवचना=प्रियवादिनी, प्रियवचन बोलने वाली, वक्षसि=छाती पर, प्रसुप्ता=सो गई, एव=ही। निर्वर्ण्य=ध्यान से देख कर, सस्नेहम्=स्नेहपूर्वक ॥

टीका--सीतेति। नाटयन्ती=अभिनयन्ती, प्रियवचना—प्रियम्=प्रेमसम्पृक्तं

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो—
　　　रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
　　　किमस्या न प्रेयो [1]यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥ ३८ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—देव ! उपस्थितः । [देव ! उवट्ठिदो ।]

रामः—अयि ! कः ?

प्रतीहारी—आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः । [आसण्णपरिआरओ देवस्य दुम्मुहो ।]

रामः—(स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः । स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः[2] प्रहितः । (प्रकाशम्) आगच्छतु ।

(प्रतीहारी निष्क्रान्ता ।)

वचनम् = कथनम् यस्याः सा मधुरभाषिणीत्यर्थः, वक्षसि=उरसि, प्रसुप्ता=निद्रिता, निर्वर्ण्य=ध्यानपूर्वकमवलोक्य, सस्नेहम् = प्रेम्णा सहितम् ॥

टिप्पणी—प्रसुप्तैव—सो ही गई । इतनी जल्दी निद्रा आने पर राम को आश्चर्य हो रहा है ।

निर्वर्ण्य—ध्यान से देख कर । निर् + √वर्ण् + णिच् + ल्यप् विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—इयम्, गेहे, लक्ष्मीः, (अस्ति), इयम्, नयनयोः, अमृतवर्तिः, (वर्तते), असौ, अस्याः, स्पर्शः, वपुषि, बहुलः, चन्दनरसः; (प्रतीयते), अयम्, बाहुः, कण्ठे, शिशिरमसृणः, मौक्तिकसरः, (इव, भाति), अस्याः, किम्, न, प्रेयः, तु, यदि, विरहः, परम्, असह्यः, (भविष्यति) ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—इयम् = यह, गेहे=घर में, लक्ष्मीः = लक्ष्मी, (अस्ति=है); इयम्=यह, नयनयोः=नेत्रों के लिये, अमृतवर्तिः=अमृत की शलाका (सींक), (वर्तते=है); असौ=यह, अस्याः=इसका, स्पर्शः=स्पर्श, वपुषि=शरीर पर, बहुलः=घना, चन्दन-रसः=चन्दन का रस, (प्रतीयते=मालूम पड़ता है); अयम्=यह, बाहुः=बाहु, कण्ठे= (मेरे) गले में, मौक्तिकसरः=मोती की माला, (इव=जैसी, भाति=शोभित होता है); अस्याः=इसका, किम्=क्या, न=नहीं, प्रेयः=प्रियतर है, तु=किन्तु, यदि= यदि, विरहः = वियोग, परम् = अत्यन्त, असह्यः=असह्य, (भविष्यति=होगा) ॥३८॥

टीका—इयमिति । अत्र 'मम' इति सर्वत्राध्याहार्येण पदेनान्वयः । इयम्= एषा सीता, गेहे=गृहे, लक्ष्मीः=श्रीः, गृहसौभाग्यविधायिनी अधिदेवतेत्यर्थः, तथा, इयम्=जानकी, नयनयोः = नेत्रयोः, अमृतवर्तिः = अमृतनिष्यन्दिनी अञ्जनशलाका,

---

१—यदि पुनरसह्यस्तु, किमपरमसह्यस्तु, २—पौरजानपदानपसर्तुं ।

यह घर में लक्ष्मी (है), यह नेत्रों के लिये अमृत की शलाका (है), यह इसका स्पर्श शरीर पर घना चन्दन-रस (मालूम पड़ता है), यह (इसका) बाहु (मेरे) गले में मोती की माला (जैसा शोभित होता है), इसका क्या नहीं प्रियतर है ? (अर्थात् सब कुल प्रियतर है), किन्तु यदि (इसका) वियोग होगा तो वह अत्यन्त असह्य (होगा) (अर्थात् इसके वियोग को छोड़ कर इसकी सारी बातें प्रियतर हैं) ।। ३८ ।।

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—महाराज, (यह) आ गया है ।

राम—अरे, कौन (आ गया है) ?

प्रतिहारी—महाराज का निकटवर्ती सेवक दुर्मुख ।

राम—(अपने आप) दुर्मुख अन्तःपुर (रनिवास) में सेवाकार्य करनेवाला (अर्थात् अत्यन्त विश्वासपात्र) है । वह मेरे द्वारा नागरिक तथा ग्रामीण जनता में गुप्तचर बना कर भेजा गया था । (प्रकट रूप से) आ जाय (अर्थात् आने दो) ।

(प्रतिहारी निकल गई)

अस्तीति क्रियाशेषः, असौ=अयमनुभूयमानः, अस्याः=एतस्याः सीतायाः, स्पर्शः=गात्रामर्शनम्, वपुषि=शरीरे, बहुलः=प्रर्याप्तः, चन्दन–रसः=मलयजद्रवः, प्रतीयते इति शेषः, अयम्=एषः, बाहुः=भुजः, कण्ठे=गलप्रदेशे, शिशिरमसृणः—शिशिरः=शीतलः मसृणश्च=उज्ज्वलश्चिक्कणश्च, मौक्तिकसरः=मुक्तामाला, इव भाति, प्रतीयते वेति शेषः; किमेतावत्पर्यन्तानुधावनेन ? अस्याः=सीतायाः सम्बन्धि, किम्=किं वस्तु, न प्रेयः=न अतिप्रीतिकरम् ? सर्वमतिप्रीतिजनकमिति भावः, तु=किन्तु, यदि=चेत्, विरहः=वियोगो, भविष्यति तर्हि सः, परमम्=अत्यन्तम्, असह्यः=सोढुमशक्यः, भविष्यतीति शेषः । केचन् व्याख्याकाराः—परम्=केवलम्, विरहः=वियोग, तु=एव, तु शब्दोऽत्रावधारणे, असह्यः=सोढुमशक्यः इति व्याख्यां कुर्वन्ति । अत्रोल्लेखो रूपकं चालङ्कारौ । छन्दस्तु शिखरिणी ।। ३८ ।।

टिप्पणी—गेहे, नयनयोः, वपुषि, कण्ठे—इस प्रकार सीता सर्वत्र राम के लिये आनन्द का एक मात्र साधन थीं । **प्रेयः**—प्रिय + ईयसुन्, प्रिय शब्दस्य प्र आदेशे + विभक्तिकार्यम् । राम यहाँ कहना चाहते हैं कि 'किमस्या न प्रेयो यदि तु विरहो न स्यात्', किन्तु विरह का ध्यान होते ही उनकी विचारधारा रुक गई । एक क्षण के लिये उनका वाक्य 'यदि' पर ही रुक गया । फिर उन्होंने वाक्य की पूर्ति की—'परमसह्यस्तु विरहः'=परन्तु यदि विरह हुआ तो वह असह्य ही होगा । यहाँ 'यदि' पक्षान्तर का सूचक है ।

असह्यः—न सह्यः, √ सह् + यत् + विभक्त्यादिकार्यम् ।

यहाँ उल्लेख एवं रूपक अलङ्कार है । इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—शिखरिणी । छन्द का लक्षण—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ।। ३८ ।।

(प्रविश्य ।)

दुर्मुखः—(स्वगतम् ।) हा कथमिदानीं देवीमन्तरेणेदृशमचिन्तनीयं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि ? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्यैषः । [हा ! कहं दाणि देवीमन्तरेण[1] ईरिसं अचिन्तणिज्जं जणाववादं देव्वस्स कहइस्सं ? अहवा णिओओ क्खु मह[2] मन्दभाअहेअस्स एसो ।]

सीता—(उत्स्वप्नायते ।) आर्यपुत्र ! कुत्रासि ? [अज्जउत्त ! कहिं सि ?]

रामः—सेयमेव[3] रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना[4] देव्याः [5]स्वप्नोद्वेगं करोति । (सस्नेहमङ्गमस्याः परामृशन् ।)

शब्दार्थः—प्रतिहारी या प्रतीहारी=राजमहल के भीतर महारानी या महाराजा के अन्तर्गृह की द्वाररक्षिका, उपस्थितः=आ गया है, आसन्नपरिचारकः=निकटवर्ती सेवक, दुर्मुखः=यह उस सेवक का नाम है, दुष्ट मुखवाला, शुद्धान्तचारी=अन्तःपुर (रनिवास) में सेवाकार्य करनेवाला, पौरजानपदेषु=नागरिक तथा ग्रामीण जनता में, अपसर्पः=गुप्तचर, प्रहितः=भेजा गया था ।।

टीका—प्रविश्येति । प्रतिहारी=अन्तःपुररक्षिका काचित् वेत्रवती नारी, तथा हि—'सन्धिविग्रहसम्बद्धं नानाकार्यसमुत्थितम् । निवेदयति या कार्यं प्रतिहारी तु सा स्मृता ।।' इति लक्षणात् । उपस्थितः=आगतः । आसन्नपरिचारकः—आसन्नः=समीपवर्ती चासौ परिचारकः=सेवकः, अनेन तस्मिन् राज्ञो विश्वासातिशयः सूचितः, दुर्मुखः=तन्नामा, अनेन भावी अशुभः समाचारः सूचितः, शुद्धान्तचारी—शुद्धान्तेऽन्तःपुरे चरति=परिचरतीति तादृशः, पौरजानपदेषु—पुरे भवाः पौराः, जनपदे भवा जानपदाः, पौराः=ग्रामवासिनश्च ते जानपदाः=नागरिकास्तेषु, अपसर्पः=गूढचरः, गुप्तचर इति यावत्, प्रहितः=प्रयुक्तः, प्रेषित इति यावत् ॥

टिप्पणी—देव, उपस्थितः—राम के मुख से 'विरहः' निकलते ही प्रतिहारी ने आकर कहा—'उपस्थितः ।' दोनों का अन्वय करने से अर्थ होता है—'विरह आ ही गया है' । इस पर राम ने कुछ घबड़ा कर पूछा—'अयि, कः ? यहाँ राम की घबड़ाहट सूचित करने के लिए कवि ने कुछ सङ्केत नहीं किया है; पर 'अयि' से उसकी कुछ झलक मिल ही जाती है । 'विरहः उपस्थितः' यह पताकास्थानक का उदाहरण है । इससे आगे होने वाले सीता–वियोग की सूचना मिलती है ।

१—सीतादेइए (सीतादेव्याः), २—इदिसो मे मन्दभाअस्स (ईदृशो मे मन्दभाग्यस्य) ३—ममैव, सैवेयं, ४—विभावना, ५—स्वाप्नोद्योगं ।

(प्रवेश करके)

दुर्मुख—(अपने आप) हाय, कैसे इस समय (मैं) महारानी (सीता) के विषय में ऐसे अतर्कित लोकलाञ्छन को महाराज (राम) से कहूँगा ? अथवा मुझ अभागे की नियुक्ति ही ऐसी है।

सीता—(स्वप्न में बड़बड़ाती हैं) आर्यपुत्र, कहा हैं (आप) ?

राम—चित्र-दर्शन से (होनेवाली), उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाली, यह वही विरह–भावना देवी (सीता) के, स्वप्न में; (भी) उद्वेग को उत्पन्न कर रही है (अर्थात् स्वप्न में भी देवी सीता को उद्विग्न कर रही है) । (स्नेहपूर्वक सीता के अङ्गों को सहलाते हुए) ।

दुर्मुखः—यह गुप्तचर का नाम है। कवि ने इसके लिये अच्छा नाम खोज निकाला है। यह हृदय बींधने वाला समाचार लाया है। यह इसके समाचार का ही परिणाम है कि राम ने सीता का सर्वदा के लिये परित्याग कर दिया। ऐसे दूत का नाम दुर्मुख होना ही ठीक है।

शुद्धान्तचारी दुर्मुखः—दुर्मुख को शुद्धान्तचारी कहने में राम का अभिप्राय यह है कि यह सत्यवादी और उच्चचरित्र का व्यक्ति है। इसका लाया हुआ समाचार अवश्य ही सत्य होगा ॥

शब्दार्थः—देवीम्=महारानी के, अन्तरेण=विषय में, अचिन्तनीयम्=अतर्कित, अप्रत्याशित, जनापवादम्=अफवाहको, लोकलाञ्छनको। नियोगः= नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य, मन्दभागधेयस्य=अभागे की। उत्स्वप्नायते=स्वप्न में बड़-बड़ाती है। रणरणकदायिनी—उत्कण्ठा उत्पन्न करनेवाली, प्रिय के लिये उद्विग्न करने वाली, स्वप्नोद्वेगम्=स्वप्न में व्याकुलताको ॥

टीका—दुर्मुख इति। देवीमन्तरेण=देव्याः, विषये, 'अन्तरान्तरेण (पा० २।३।४) इति सूत्रेण द्वितीया, अचिन्तनीयम्=चिन्तयितुमप्यशक्यम्, अतर्कितोपपन्नमित्यर्थः, जनापवादम्=लोकनिन्दाम्, लोकप्रवादमित्यर्थः, नियोगः=अधिकारः, कर्तव्यं कर्म, मन्दभागधेयस्य—मन्दम्=अल्पम् भागधेयम्=भाग्यम् यस्य सः तस्य, उत्स्वप्नायते–उत्कटः=प्रलापादिजनकः स्वप्नो यस्याः सा उत्स्वप्ना, सा इवाचरति इति उत्स्वप्नायते=स्वप्नदर्शने प्रलपतीत्यर्थः, रणरणकदायिनी—रणरणकम्=उत्कण्ठा तां ददातीति तादृशी, विक्षोभकारिणीति यावत्, स्वप्नोद्वेगम्—स्वप्ने=निद्रावस्थायाम् उद्वेगम्=व्याकुलताम् ॥

टिप्पणी—देवीमन्तरेण—'अन्तरान्तरेण' (पा० २।३।४) इति सूत्रेण देवीशब्दे द्वितीया भवति।

नियोगः—नि + √युज् + घञ् + विभक्तिकार्यम्।

उत्स्वप्नायते—सीता का यह स्वप्नोद्वेग भावी विरह-विपत्ति का सूचक है ॥

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं[1] सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते [2] यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं [3]तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते[4] ॥ ३९ ॥

दुर्मुखः—(उपसृत्य) जयतु देवः । [[5]जेतु देव्वो] ।

रामः—ब्रूहि यदुपलब्धम् ।

अन्वयः—यत्, सुखदुःखयोः, अद्वैतम्, (यत्), सर्वासु, अवस्थासु, अनुगतम्; यत्र, हृदयस्य, विश्रामः, यस्मिन्, रसः, जरसा, अहार्यः, यत्, कालेन, आवरणात्ययात्, परिणते, स्नेहसारे, स्थितम्, तस्य, सुमानुषस्य, तत्, एकम्, भद्रम्, कथमपि, हि, प्राप्यते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—यत्=जो, सुखदुःखयोः=सुख और दुःख में, अद्वैतम्=एक समान अपरिवर्ति (रहता) है; (यत्=जो), सर्वासु=सभी, अवस्थासु=अवस्थाओं में, अनुगतम्=अनुसरण करने वाला, व्याप्त (रहता है), यत्र=जिसमें, हृदयस्य=हृदय की, विश्रामः=विश्रान्ति, राहत (है); यस्मिन्=जिसमें, रसः=प्रीति, रति, आह्लाद, जरसा=वृद्धावस्था के द्वारा, अहार्यः=हरण नहीं किया जा सकता; यत्=जो, कालेन=समय से, समयानुसार, आवरणात्ययात्=विवाह से मरण पर्यन्त, परिणते=परिपक्व, सुमधुर, स्नेहसारे=प्रेम के साररूप में, प्रेम के सारभाग में, स्थितम्=स्थित है; तस्य=उस, सुमानुषस्य=दाम्पत्य का, तत्=वह, एकम्=अनिर्वचनीय, अवर्णनीय, भद्रम्=आनन्द, मङ्गल, कथमपि किसी-किसी तरह, बड़ी कठिनता से, हि=यह श्लोक के चरण की पूर्ति के लिये है, प्राप्यते=प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

टीका—**अद्वैतमिति** । यत्=दाम्पत्यम्, सुखदुःखयोः=सुखे दुःखे च, इतरेतरयोगेद्वन्द्वः, अद्वैतम्=एकरूपम्, द्विरूपतावर्जितमित्यर्थः, यथा सुखे तथा दुःखे यस्य एकरूपताऽस्तीति भावः, यत् सर्वासु=निखिलासु, अवस्थासु=दशासु, सम्पद्विपद्रूपास्ववस्थास्वित्यर्थः, अनुगतम्=अनुसारि; यत्र=यस्मिन् दाम्पत्ये, हृदयस्य=चेतसः, विश्रामः=विश्रान्तिः, क्लेशापगम इति भावः, यस्मिन्=यत्र दाम्पत्ये, रसः=प्रीत्यास्वादः प्रीतिर्वा, जरसा=वार्द्धक्येन, अहार्यः=हर्तुमशक्यः, यत्र वार्धक्येऽपि रसन्यूनता न भवतीति भावः; यत्=दाम्पत्यरूपं सुमानुषमित्यर्थः, कालेन=समयेन, आवरणात्ययात्—वरणञ्च=विवाहश्च अत्ययश्च=मरणञ्च तयोः समाहारः वरणात्ययं तदारभ्य आवरणात्ययं तस्मात्, विवाहादारभ्य मृत्युपर्यन्तमित्यर्थः, केचन संकोचरूपावरणापगमादिति

---

१. अनुगुणं, २. प्रेमसारे, ३. प्रेम, ४. प्रार्थ्यते, ५. जअदि, जअदि, जअदि, जेदु जेदु ।

जो (दाम्पत्यभाव) सुख और दुःख में एक समान रहता है, जो सभी (सम्पत्-विपत् रूप) अवस्थाओं में (अथवा जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में) अनुसरण करने वाला है, जिसमें हृदय की विश्रान्ति है (अर्थात् जिसमें हृदय को विश्राम मिलता है), जिसमें रस (प्रीति) वृद्धावस्था के द्वारा हरण नहीं किया जा सकता (अर्थात् कम या समाप्त नहीं किया जा सकता), जो समयानुसार विवाह से मरणपर्यन्त परिपक्व प्रेम के सार रूप में स्थित है, उस दाम्पत्य का वह अनिर्वचनीय आनन्द किसी-किसी तरह ही (अर्थात् बड़े सौभाग्य से ही) प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

दुर्मुख—(पास में जाकर) महाराज विजयी हों (अर्थात् महाराज की जय हो) ।

राम--बतलाओ, जो कुछ ज्ञात हुआ है ।

व्याख्यायन्ते, परिणते=परिपक्वे, स्नेहसारे–प्रेम्ण उत्कृष्टांशे, प्रेमतत्त्वे इति यावत्, स्थितम्=अवस्थितम् अस्ति; तस्य सुमानुषस्य=दाम्पत्यस्य, कतिपये सौजन्यस्येति व्याख्यां कुर्वन्ति, तत्=अनिर्वचनीयम् तादृशं वा, एकम्=अद्वितीयम्, भद्रम्=कल्याणम्, कथमपि=अतिकृच्छ्रेणेत्यर्थः, प्राप्यते=लभ्यते । दुर्लभं खलु तत् जगति, मम तु सिद्धम्, अतोऽहो मे भाग्यमिति भावः , अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—अद्वैतम्—सच्चा दाम्पत्यभाव सुख और दुःख में अपरिर्वतित रहता है । पति एवं पत्नी यावज्जीवन एक दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहते हैं ।

अनुगतम्--अनु + √गम् + क्त + विभक्तिकार्यम् । यतः सच्चा दाम्पत्यभाव अपरिर्वातत होता है, अतः वह सभी अवस्थाओं में, सम्पत्ति तथा विपत्ति में, स्त्री-पुरुष के साथ एकरूप से लगा रहता है ।

अहार्यो रसः--नञ् + √हृ + ण्यत् + विभक्त्यादिकार्यम् । यदि पति-पत्नी का दाम्पत्यभाव वास्तविक है तो वह मरणपर्यन्त आनन्ददायक होता है । बहुत से वृद्ध व्यक्ति अपनी वृद्धा के बिना चैन का अनुभव नहीं कर पाते हैं ।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है । छन्दका लक्षण--'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः--उपसृत्य=पास में जाकर, उपलब्धम्=प्राप्त हुआ है, ज्ञात हुआ है ।

दुर्मुखः—उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदाः, यथा विस्मारिता वयं महाराजदशरथस्य रामदेवेनेति। [उवट्टवन्ति देवं पौरजाणपदा जहा[1] विसुमरिदा अह्मे महाराअदसरहस्स [2]रामदेव्वेणेत्ति।]

रामः—अर्थवाद [3]एवैषः। दोषं तु मे कथंचित्कथय, येन प्रतिविधीयते।

दुर्मुखः—(सास्रम्।) शृणोतु महाराजः। (कर्णे।) एवमिव। [सुणादु महाराओ। एव्वं विअ[4]। इति।]

रामः—अहह, [5]अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः। (इति मूर्च्छति।)

दुर्मुखः—आश्वसितु देवः। [आस्ससदु देव्वो।]

रामः—(आश्वस्य)

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं य—
द्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्[6] ॥ ४० ॥

उपस्तुवन्ति=स्तुति करते हैं, प्रशंसा करते हैं। अर्थवादः=कोरी प्रशंसा, अनाधार प्रशंसा, प्रतिविधीयते=प्रतिकार किया जाय, निराकरण किया जाय, वाग्वज्रः=वचनरूपी वज्र॥

टीका—दुर्मुख इति। उपसृत्य=पार्श्वे गत्वा, उपलब्धम्=प्राप्तम्, ज्ञातमिति यावत्। उपस्तुवन्ति=प्रशंसन्ते, महाराजस्य रामस्य गुणातिशयेन वयं महाराजे दशरथेऽपि मन्दादराः सञ्जाता इति भावः। अर्थवादः=कस्यचिदर्थस्य निन्दायाः स्तुतेर्वा यो वादः सोऽर्थवादः, स्वाल्पाधारं निराधारं वा प्रशंसनमिति भावः। प्रतिविधीयते=प्रतिक्रियते। वाग्वज्रः—वाक्=वचनम् एव वज्रः=दम्भोलिः, वज्रमिवातिहृदयविदारकं वचनमित्यर्थः॥

टिप्पणी—उपसृत्य—उप+√सृ√ल्यप्।

यदुपलब्धम्—दुर्मुख अयोध्या के राजपरिवार का अति विश्वसनीय व्यक्ति था। इसे रामने अपने प्रति प्रजा की भावना जानने के लिए गुप्तचर बना कर भेजा था। अतः पूछ रहे हैं—बतलाओ जो कुछ ज्ञात हुआ हो॥

विस्मारिता वयम्—प्रजा अपनी भलाई करनेवाले राजा को सर्वदा याद करती है। किन्तु यदि किसी राजा का बेटा या अन्य उत्तराधिकारी अपने बाप या पूर्वशासक से अधिक योग्य तथा प्रजा का सच्चा हितकारी निकलता है तो प्रजा पहले के राजा को भी भूल जाती है। प्रजा का कल्याण करने में राम दशरथ से आगे थे। अतः राम को पाकर प्रजा दशरथ को भूल चुकी थी।

---

१. जहा (यथा) क्वचिन्नास्ति, २. रामभद्देणत्ति, ३. ० वाद एषः, ४. 'विअ' क्वचिन्नास्ति, ५. तीव्रसंवेगः, ६. प्रसक्तम्।

दुर्मुख—नगर-निवासी एवं ग्रामवासी जन महाराज की प्रशंसा करते हैं कि—राजा राम के द्वारा हम लोग महाराज दशरथ के विषय में भुलवा दिये गये हैं (अर्थात् राजा राम के अत्युत्तम सुशासन के कारण हम लोग प्रजापालक महाराज दशरथ को भी भूल गये हैं)।

राम—यह तो कोरी प्रशंसा मात्र है। किसी तरह का मेरा दोष तो बतलाओ, जिससे उसका प्रतिकार (निराकरण) किया जाय।

दुर्मुख—(आँसू भर कर) सुनें महाराज। (कान में) इस तरह।

विशेष—यहाँ दुर्मुख राम को यही गुप्त सूचना, कान में कह कर, सूचित कर रहा है कि प्रजा में कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनका कहना है कि—सीता रावण के घर में रहीं। रावण ने उनके साथ अनुचित कार्य किया होगा, फिर भी राम ने रख लिया है।

राम—हाय, यह वचनरूपीवज्र दुःसह वेगवाला है (अर्थात् हृदयविकारक है)। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं।)

दुर्मुख—धैर्यधारण करें महाराज।

राम—(धैर्य धारण कर)।

हाय हाय, धिक्कार है ! विदेह की पुत्री (सीता) का जो पराये के घर में रहने का कलङ्क (अग्नि-परीक्षा आदि) अनोखे उपायों से शान्त कर दिया गया था; दुर्भाग्य से वही यह कलङ्क फिर से, पागल कुत्ते के विष की तरह, सर्वत्र फैल गया है ॥ ४० ॥

अर्थवादः—यह शब्द मीमांसा का पारिभाषिक शब्द है। किसी वैदिक विधि की प्रशंसा या निन्दा में जो कुछ कहा जाता है, उसे 'अर्थवाद' कहते हैं। किन्तु लोक में 'अर्थवाद' कोरी या यथार्थ से अधिक प्रशंसा को कहते हैं॥

अन्वयः—हा हा धिक्, वैदेह्याः, यत्, परगृहवासदूषणम्, अद्भुतैः, उपायैः, प्रशमितम्; दैवदुर्विपाकात्, तत्, एतत्, पुनः, अपि, आलर्कम्, विषम्, इव, सर्वतः, प्रसृप्तम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—हा हा धिक्=हाय हाय, धिक्कार है, वैदेह्याः=विदेहराज की पुत्री (सीता) का, यत्=जो, परगृहवासदूषणम्=पराये के घर में रहने का कलङ्क, अद्भुतैः=अनोखे, अद्भुत, उपायैः=उपायों से, प्रशमितम्=शान्त कर दिया गया था, दैवदुर्विपाकात्=भाग्य के दुष्परिणाम से, दुर्भाग्य से, तत्=वही, एतत्=यह, पुनः=फिर, अपि=भी, से, आलर्कम्=पागल कुत्ते के, विषम्=विष की, इव=तरह, सर्वतः=सर्वत्र, चारों ओर, प्रसृप्तम्=फैल गया है ॥ ४० ॥

तत्किमत्र [1]मन्दभाग्यः करोमि। (विमृश्य सकरुणम्।) अथवा किमन्यत्[2]।

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्[3]।
तत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥४१॥

टीका—हा हेति। हाहा धिगिति खेदेऽव्ययम्, वैदेह्याः=विदेहपुत्र्याः सीतायाः, यत्, परगृहवासदूषणम्—परस्य=अन्यस्य, रावणस्येत्यर्थः, गृहे=भवने, वस्तुतस्तु पुर्याम्, यो वासः=निवासः, दश मासान् व्याप्य अवस्थितिः, तस्माद् यत् दूषणम्=दोषः, कलङ्क इत्यर्थः, अद्भुतैः=आश्चर्यकरैः, उपायैः=अग्निपरीक्षारूपैः कर्मभिः, प्रशमितम्=प्रतिकृतम्, दैवदुर्विपाकात्—दैवस्य=भाग्यस्य, हतविधेः इत्यर्थः, दुर्विपाकात्=दुष्परिणामात्, तत्=तदेव नत्वन्यदित्यर्थः, एतत्=इदम्, सम्प्रति वा, पुनः=मुहुः, अपि=च, आलर्कम्—अलर्कः=उन्मत्तकुक्कुरः ('शुनको भषकः श्वा स्यादलर्कस्तु स रोगितः' इत्यमरः) तस्येदमालर्कम्, उन्मत्तकुक्कुरसम्बन्धि, विषम्=दंशजातगरलम्, इव=यथा, सर्वतः=सर्वत्र, प्रसृप्तम्=परितो व्याप्तम्। यथोन्मत्तकुक्कुरविषं सर्वशरीरे व्याप्तं भवति तथैवैतद्दूषणमपि निखिले राष्ट्रे प्रसृतं सञ्जातमिति। किमत्र करोमि मन्दभाग्योऽहम्? दैवमचिन्त्यं बलवच्चेत्यभिप्रायः। अत्रोपमालङ्कारः प्रहर्षिणी च छन्दः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—प्रशमितम्—प्र + √शम् + णिच् + क्त + विभक्तिकार्यम्।

अद्भुतैः उपायैः—प्राचीन काल में किसी को निर्दोष सिद्ध करने के लिए 'अग्नि-परीक्षा' आदि दिव्य उपायों का सहारा लिया जाता था। सीता रावण के घर में रहीं। कहीं कुछ गड़बड़ी तो नहीं हुई? इसके निराकरण के लिए राम ने उनकी अग्नि-परीक्षा ली थी। इसी बात की ओर यहाँ सङ्केत है।

आलर्कं विषमिव—पागल कुत्ता जब किसी को काट लेता है, तब उसका विष उस व्यक्ति के समग्र शरीर में व्याप्त हो जाता है। किन्तु विशेषता यह है कि यह विष तुरत नहीं चढ़ता। कुछ समय के बाद ही उसका पूरा असर होता है। सीता जी का कलङ्क भी कुछ समय तक दबा रहा। धीरे-धीरे सुलगता रहा। अब शनैः शनैः उग्र रूप धारण कर रहा है। लोग स्पष्ट रूप से कहना आरम्भ कर दिये हैं। यही कारण है कि सीता के कलङ्क की पागल कुत्ते के विष से तुलना की गई है।

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा प्रहर्षिणी छन्द है। छन्दका लक्षण—
"त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्" ॥ ४० ॥

---

१. अद्य, २. किमेतत्, ३. परम्।

तो अभागा मैं इस विषय में क्या करूँ ? (विचार कर, करुणापूर्वक) अथवा और क्या ?

किसी भी कार्य से जनता को प्रसन्न रखना सज्जनों का व्रत है; जो व्रत पिता के द्वारा, मुझे तथा (अपने) प्राणों को छोड़ते हुए, पूरा किया गया है ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—तत्=तो, अत्र=इस विषय में, मन्दभाग्यः=अभागा, विमृश्य=विचार कर ॥

टीका—तत्=तस्मात्, लोकापवादस्य सर्वत्र प्रसृतत्वादित्यर्थः, अत्र=अस्मिन् विषये, मन्दभाग्यः=हतभागधेयः, अहमिति शेषः, विमृश्य=विचारं कृत्वा ॥

टिप्पणी—मन्दभाग्यः—सीता राम की प्राणप्रिया अर्द्धाङ्गिनी हैं। निरपराध हैं। अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण हो चुकी हैं। कुछ ही दिनों के भीतर बच्चों को जन्म देने वाली हैं। ऐसी स्थिति में उन पर लाञ्छन लगा है। राम उन्हें वन निकालने की सोच रहे हैं। यही कारण है कि राम अपने आपको 'मन्दभाग्य' कह रहे हैं।

अन्वयः—केनापि, कार्येण, लोकस्य, आराधनम्, सताम्, व्रतम्; यत्, हि, तातेन, माम्, च, प्राणान्, च, मुञ्चता, पूरितम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—केनापि=किसी भी, कार्येण=कार्य से, उपाय से, लोकस्य=लोक को, प्रजा को, आराधनम्=प्रसन्न रखना, सताम्=सज्जनों का, व्रतम्=व्रत है; यत्=जो, हि=यह पाद-पूर्ति के लिये है, तातेन=पिता के द्वारा, माम्=मुझे च=तथा, प्राणान्=(अपने) प्राणों को, मुञ्चता=छोड़ते हुए, पूरितम्=पूरा किया गया है ॥ ४१ ॥

टीका—सतामिति। केनापि=येन केनापीत्यर्थः, कार्येण=कर्मणा, उपायेनेत्यर्थः, लोकस्य=प्रजावर्गस्य, आराधनम्=अनुरञ्जनम्, सताम्=सज्जनानाम्, व्रतम्=नियमवत् अवश्यमेव पालनीयमित्यर्थः; यत्=यद्व्रतमित्यर्थः, हीति पादपूर्तौ निश्चये वेति; तातेन=मत्पित्रा दशरथेन, माम्=स्वपुत्रं राममित्यर्थः, च=तथा, प्राणान्=असून्, मुञ्चता=त्यजता, पूरितम्=सम्पादितम्। जनानुरञ्जनार्थमेव पित्रा स्वप्राणा अहञ्च विमुक्तोऽतः प्रजानुरञ्जनमेव मदीयमविचारणीयं कर्म। अत्रार्थन्तरन्यासतुल्ययोगितालङ्कारौ। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—आराधनम्—आ + √ राध् + ल्युट् + विभक्तिकार्यम्। पूरितम्-√पूर् + णिच् + कर्मणि क्तः + विभक्तिकार्यम्।

यहाँ उत्तरार्ध विशेष के द्वारा पूर्वार्ध सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास तथा मां और प्राणान् का 'मुञ्चाता' के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप्। छन्द का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ४१ ॥

सम्प्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम् । अपि च ।

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै-
र्लोकश्रेष्ठैः साधु [1]शुद्धं चरित्रम् ।
[2]मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती
स्याच्चेदस्मिन् हन्त ! धिङ्मामधन्यम् ॥४२॥

हा देवि देवयजनसंभवे ! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे ! हा [3]मुनि-जनकनन्दिनि ! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्त[4]शीलशालिनि ! हा राम-[5]मयजीविते ! हा महारण्यवासप्रियसखि ! हा तातप्रिये ! हा [6]स्तोकवादिनि ! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?

अन्वयः— लोकश्रेष्ठैः, सावित्रैः, भूमिपालैः, यत्, साधु, शुद्धम्, चरित्रम्, दीपितम्; चेत्, अस्मिन्, मत्संबन्धात्, कश्मला, किंवदन्ती, स्यात्, (तर्हि), माम्, अधन्यम्, धिक् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—लोकश्रेष्ठैः=संसार में श्रेष्ठ, जगत्प्रधान, सावित्रैः=सूर्यकुलोत्पन्न, सूर्यवंशी, भूमिपालैः=राजाओं के द्वारा, यत्=जो, साधु=उत्तम, शुद्धम्=पवित्र, चरित्रम्=चरित्र, दीपितम्=प्रकाशित किया गया है; चेत्=यदि, अस्मिन्= इस (चरित्र) में, मत्सम्बन्धात्=मेरे सम्बन्ध से, मेरे कारण, कश्मला=दूषित, कुत्सित, किंवदन्ती=जनश्रुति, अफवाह, स्यात्=हो, (तर्हि=तो), माम=मुझ, अधन्यम्=पुण्य हीन को, अभागे को, धिक्=धिक्कार है ॥ ४२ ॥

टीका—**यदिति** । लोकश्रेष्ठैः—लोकेषु=भुवनेषु जनेषु वा श्रेष्ठैः=प्रख्यातैः, सावित्रैः—सविता=सूर्यः ('भानुः···सविता रविः' इत्यमरः) तस्य गोत्रापत्यैः सूर्यवंशीयैरित्यर्थः, भूमिपालैः=भूपतिभिः, यतो ते प्राणाव्ययेनापि प्रजारञ्जनमकुर्वन्नतोऽत्र भूमिपालशब्दः साभिप्रायकः, यत्=यादृशम्, साधु=उत्तमम्, शुद्धम्=निर्मलम्, चरित्रम् वृत्तम्, दीपितम्=प्रकाशितम्, विस्तारितमित्यर्थः, चेत्=यदि, अस्मिन्=अत्र; शुद्धे चरित्र इत्यर्थः, मत्सम्बन्धात्=मम सम्पर्कात्, कश्मला=दूषिता, किंवदन्ती=लोकापवादः, स्यात्=भवेत्, तर्हीति शेषः, माम् अधन्यम्=हतभाग्यं मां राममित्यर्थः, धिक्=धिक्कारोऽस्ति । यदि कुलस्य निर्मले यशसि कलङ्काधायकोऽहं तर्हि दोषाधायकं मां धिगिति भावः । अत्र विषमालङ्कारः शालिनी च छन्दः ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—सावित्रैः—सवितुः अपत्यानि पुमांस इति सावित्राः तैः, सवितृ+अण्+तृतीयाबहुवचने विभक्तिकार्यम् ।

---

१. चित्रं, २. सम्बन्धा, संबद्धा, ३. निमि०, ४. शीले, ५. रामैक०, ६. प्रियस्तोक० ।

R. SK. S. LIBRARY
Call No...... 08865

और अभी-अभी भगवान् वशिष्ठ ने सन्देश भेजा है कि ('युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्याः' १।११)।

और भी—

संसार में श्रेष्ठ, सूर्यकुलोत्पन्न राजाओं के द्वारा जो उत्तम पवित्र चरित्र प्रकाशित किया गया (अर्थात् चतुर्दिक् फैलाया गया है), यदि इस (निर्मल चरित्र) में मेरे कारण दूषित अफवाह हो (तो) मुझ अभागे को धिक्कार है ॥ ४२ ॥

हा यज्ञभूमि से उत्पन्न देवि; हा अपने जन्मरूप अनुग्रह से पवित्र कर दिया है पृथिवी को जिसने ऐसी (अर्थात् अपने जन्म रूप अनुग्रह से पृथिवी को पवित्र करनेवाली) ! हा मुनि जनक को आनन्दित करनेवाली; हा अग्नि, वसिष्ठ तथा अरुन्धती के द्वारा प्रशंसित शीलवाली; हा राममय जीवनवाली, हा घोर जङ्गल (दण्डकारण्य) में निवास के समय की प्रिय सहचरी, हा पिता (दशरथ) को प्रिय लगनेवाली, हा मितभाषिणि (अर्थात् कमबोलनेवाली), क्या कारण है कि इस प्रकार के गुणों से भी युक्त तुम्हारा ऐसा (लोक-लाञ्छन रूप) परिणाम हुआ ॥

शुद्धम्—√ शुध् + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में विषम अलङ्कार तथा शालिनी छन्द है । छन्द का लक्षण—

'मत्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः' ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—देवयजनसम्भवे=यज्ञ भूमि से उत्पन्न, स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे=अपने जन्मरूपी अनुग्रह से पवित्र कर दिया है पृथिवी को जिसने ऐसी, राममयजीविते=राममय जीवनवाली, महारण्यवासप्रियसखि=घोर जङ्गल में निवास के समय की प्रिय सहचरी, तातप्रिये=पिता को प्रिय लगनेवाली, स्तोकवादिनि=मितभाषिणी, एवंविधायाः=इस प्रकारवाली, इस प्रकार के गुणों से युक्त ॥

टीका—हा दवीति । देवयजनसंभवे—देवाः=इन्द्रादयः इज्यन्ते=आहुत्यादि—भिस्तर्प्यन्ते अस्मिन्निति देवयजनम्=यज्ञभूमिः, सा एव सम्भवः=उत्पत्तिस्थानम् यस्यास्तथाभूते, अपवित्रशुक्रशोणितपूरितान्मानवशरीरादुत्पत्तिविनिर्मुक्तत्वाज्जननादिदोषरहितत्वं सूचितम्, स्वजन्मेत्यादि—स्वस्याः=आत्मनः जन्म=उत्पत्तिः, सीतारूपेण शरीरधारणमित्यर्थः; एव अनुग्रहः=दया तेन पवित्रिता=पावनीकृता वसुन्धरा=पृथिवी यया सा तादृशी तत्सम्बुद्धौ, राममयेति—राममयम्=राम एव राममयम्, स्वार्थे मयट्, राममयं जीवितम्=जीवनम् यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, महारण्येत्यादि—महारण्यम्=दण्डकारण्यमित्यर्थः तत्र यो वासः=निवासः तत्र प्रियसखी=प्रियसहचरी तत्सम्बुद्धौ, तातप्रिये—तातस्य=पितुदर्शरथस्य प्रिये=उत्कृष्टगुणत्वादभीप्सिते, स्तोकवादिनि—स्तोकम्=अल्पम् वदतीति तादृशी, तत्सम्बुद्धौ, मितभाषिणि इत्यर्थः, एवं-

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥ ४३ ॥

(दुर्मुखं प्रति ।) दुर्मुख ! ब्रूहि लक्ष्मणम् । एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति (कर्णे) एवमेवम् । इति ।

दुर्मुखः—हा, कथमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थितपवित्रसंतानाया देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन ? [हा कहं अग्निपरिसुद्धाए गब्भट्ठिदपवित्त[१]-संताणाए देवीए दुज्जणवअणादो एदं[२] ववसिदं देव्वेण ?]

रामः—शान्तं[३] पापम् । शान्तं पापम् । दुर्जना नाम[४] पौरजानपदाः ?

विधायाः–एवम् = इत्थम् विधा = प्रकारो यस्याः सा तस्याः, इत्थं प्रकर्षगुणयुक्ताया अपीत्यर्थः, कथम्=कस्मादियं दुरवस्थेति भावः ॥

टिप्पणी—**देवयजनसम्भवे**—मिथिला में भीषण अवर्षण था । वहाँ के राजा जनक ने वर्षा कराने के लिये यज्ञ कर यज्ञ भूमि को सुवर्ण के हल से जोतना आरम्भ किया । उसी समय यज्ञ की वेदी के नीचे से सीता का प्रादुर्भाव हुआ था ।

स्वजन्मानुग्रह—यद्यपि पृथिवी स्वयं पवित्र है । पर अतिपवित्र सीता ने उससे जन्म लेकर उसे भी अति पावन बना दिया है । यही है भूमि पर सीता का जन्मरूप अनुग्रह ।

स्तोकवादिनि—कम बोलना, विशेष कर स्त्रियों के लिये, महान् गुण हैं ।

एवंविधायाः दूषित संस्कारों वाले मानव शरीर से तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है । शील तथा स्वभाव से भी तुम अति पवित्र हो । फिर क्या कारण है, कि तुम्हारी यह दुर्दशा हो रही है ? ॥

अन्वयः—त्वया, जगन्ति, पुण्यानि; (किन्तु) त्वयि, जनोक्तयः, अपुण्याः, त्वया, लोकाः, नाथवन्तः, त्वम् अनाथा, विपत्स्यसे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—त्वया = तुम्हारे द्वारा, जगन्ति (तीनों) लोक, पुण्यानि=पावन हैं; (किन्तु=परन्तु), त्वयि तुम्हारे विषय में, जनोक्तयः=लोगों की उक्तियाँ, अफवाह, अपुण्याः = अपावन हैं । त्वया = तुम से, लोकाः = सारा जगत्, नाथवन्तः =सनाथ है, त्वम् = तुम, अनाथा=अनाथ होकर, विपत्स्यसे=विनष्ट होओगी ॥४३॥

टीका—त्वयेति । त्वया = सतीनामग्रगण्यया, पावनचरितया सीतयेत्यर्थः, जगन्ति=त्रिलोकीत्यर्थः, पुण्यानि=पुण्यवन्ति, पवित्राणीत्यर्थः, स्वजनुषेतिशेषः; (किन्तु= परन्तु), त्वयि=तव विषये, वैषयिकसप्तमी, जनोक्तयः—जनानाम्=बहूनां मान-

---

१. पवित्तरहुउल॰ (पवित्ररघुकुल॰), २. एवं अणज्जं अज्झवसिदं (एवमनार्यमध्यवसितं), ३. शान्तं, ४. क्वचिन्नाम नास्ति,

तुम्हारे द्वारा (तीनों) लोक पावन हैं, (परन्तु) तुम्हारे विषय में लोगों की उक्तियाँ अपावन हैं। तुम से सारे जगत् सनाथ हैं (किन्तु) तुम अनाथ होकर विनष्ट होओगी ॥ ४३ ॥

(दुर्मुख से) दुर्मुख, कहो (जाकर) लक्ष्मण को–यह नया राजा राम आदेश दे रहा है। (कान में) ऐसा, एसा—।

विशेष––राम लक्ष्मण को यहीं आदेश दे रहे हैं कि–'सीता को ले जाकर जङ्गल में छोड़ दो और उन्हें यह वतला दो कि राजा राम ने प्रजा के हित में तुम्हारा परित्याग कर दिया है।'

दुर्मुख—हाय, अग्नि के द्वारा पवित्र (प्रमाणित) की गई तथा गर्भ में स्थित पवित्र सन्तान वाली (अर्थात् जिसके गर्भ में पवित्र सन्तान स्थित है, ऐसी) महारानी (सीता) के विषय में (किसी) दुष्ट व्यक्ति के कथन मात्र से (ही) महाराज के द्वारा यह (परित्यागरूप) निश्चय कैसे कर लिया गया ?

राम—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो (अर्थात् ऐसा कहना पाप लगाने वाला है)। क्या नागरिक एवं ग्रामवासी दुर्जन हैं ? (अर्थात् नहीं)।

वानाम्, उक्तयः=वचनानि, अत्र षष्ठीबहुवचनेन विग्रहे प्रमाणं—'रे रे पौरजानपदाः न खलु भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं ततः' इत्यादिवक्ष्यमाणरामवचनम्, षष्ठी-बहुवचने विग्रहे न कश्चिदेक एव प्रलपति किन्तु बहुजना एवं वदन्तीति व्यज्यते; अपुण्याः=अपवित्राः, लङ्कानिवासकाले नूनं दशाननेन सीता दूषिता इत्येवंरूपाः बहुवादाः अकीर्तिकराः अपुण्यजनकाश्च कथं प्रचलिताः इति भावः; त्वया=त्वया सीतयेत्यर्थः, लोकाः=जगन्ति, नाथवन्तः=सनाथाः, अहं लोकानामधीशः, त्वं तु मम जीवितस्वामिनीत्थं लोकानामपि नायिकेत्याशयः, तु त्वम् अनाथा=अशरणा सती, रक्षकविहीना भूत्वेत्यर्थः, विपत्स्यसे=विपन्ना भविष्यसीति। सर्वथा निन्दनीयोऽयं संसारो विगर्हणीयश्च विधिरित्यभिप्रायः। अत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः। पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ४३ ॥

टिप्पणी––**नाथवन्तः**—राम के कहने का अभिप्राय यह है—'मैं सभी लोकों का स्वामी हूँ। तुम मेरी गृहस्वामिनी तथा प्राणाधिदेवता हो। इस प्रकार तुम्हीं वस्तुतः सारे लोकों की स्वामिनी हो।'

इस श्लोक में विरोधाभास अलङ्कार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है। छन्द का लक्षण—

"युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्" ॥ ४३ ॥

इक्ष्वाकुवंशो[१]ऽभिमतः प्रजानां,
जातं च दैवाद्वचनीयबीजम् ।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्यदि[२] दूरवृत्तम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—नूतनः=नया, अनुभव-विहीन, अग्निपरिशुद्धायाः=अग्नि के द्वारा पवित्र (प्रमाणित) की गई, गर्भस्थितपवित्रसन्तानायाः=गर्भ में स्थित पवित्र सन्तानवाली, व्यवसितम्=निश्चय कर लिया गया है, अथवा—अध्यवसितम्=निश्चय कर लिया गया है ॥

टीका—**दुर्मुखं प्रतीति ।** नूतनः=अनुभवेन सीतापरित्यागरूपनृशंसकर्मणा चापि नवीनः, अग्निपरिशुद्धायाः—अग्नौ अग्निना वा परिशुद्धा=सर्वथा निर्णीत-विमलचरिता तस्याः, गर्भस्थितेति—गर्भे=उदरे स्थितः=वर्तमानः पवित्रः=पूतः सन्तानः=सन्ततिर्यस्याः सा तस्याः, व्यवसितम्=निश्चितम्, 'अध्यवसितम्' इति पाठेऽपि अयमेवार्थः । सर्वथा निर्दोषायाः सम्मान्यायाः सीताया विषये भवता कृतो निर्णयोऽसमीचीन इति काकुध्वनिः ॥

टिप्पणी—**नवीनो राजा** –राम अपने आप को 'नया राजा' कह रहे हैं । इसका भाव है—'अनुभव विहीन राजा राम,' 'पूर्णगर्भवाली, इनको ही जीवन-धन समझनेवाली, सर्वथा निर्दोष, अपनी पत्नी सीता का क्रूरता पूर्वक निर्वासनरूप नवीन कर्म का कर्ता 'राजा राम,' 'राम नया-नया राजा है । अतः अति साधारण प्रजा के कहने मात्र से भी अपनी पत्नी का निर्वासन कर रहा है,' आदि-आदि ॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंशः, प्रजानाम्, अभिमतः; (किन्तु), दैवात्, वचनीयबीजम्, च, जातम्; विशुद्धिकाले, यत्, च, अद्भुतम्, कर्म, (घटितम्), तत्, यदि, दूरवृत्तम्, (तर्हि), कः, प्रत्येतु ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—इक्ष्वाकुवंशः=इक्ष्वाकुवंश, प्रजानाम्=प्रजा-जनों को, अभिमतः=प्रिय है; (किन्तु=परन्तु), दैवात्=दुर्भाग्य से, (तत्=उसमें) वचनीयबीजम्=लाञ्छन का कारण, च=भी, जातम्=उत्पन्न हो गया है; विशुद्धिकाले=(अग्नि-परीक्षा के द्वारा सीता की) विशुद्धि के समय में, यत्=जो, अद्भुतम्=अद्भुत, आश्चर्यजनक, कर्म=कर्म, घटना, (घटितम्=घटी, हुई), तत्=वह, यदि=यदि, तो, दूरवृत्तम्=दूर स्थान में घटी, अधिक दूर पर हुई, (अतः=इसलिये), कः=कौन, प्रत्येतु=पतियाएगा, विश्वास करेगा ? ॥ ४४ ॥

---

१. वंशोद्भवतः, २. तद्वचति० ।

इक्ष्वाकु-वंश प्रजाजनों को प्रिय है, (किन्तु) दुर्भाग्य से (उसमें) लाञ्छन का कारण ऊत्पन्न हो गयाहै । (अग्नि-परीक्षा के द्वारा सीता की) विशुद्धि के समय जो आश्चर्यजनक घटना (हुई), वह तो दूर स्थान में घटी, (अतः उस पर) कौन विश्वास करेगा ? (अर्थात् कोई नहीं) ॥ ४४ ॥

टीका--प्रजाजनस्य दोषाभावं प्रतिपादयति--**इक्ष्वाकुवंश इति**। इक्ष्वाकुवंशः=इक्ष्वाकोः=इक्ष्वाकुनामनृपतेः वंशः=कुलम्, प्रजानाम्=प्रकृतिजनानाम्, ('प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः), अभिमतः=अभीष्टः, प्रेयान् प्रजावर्ग इक्ष्वाकुकुलोद्गतस्य कस्यापि राज्ञोऽशुभं न चिन्तयतीति भावः । तर्हि सीतायां स कथं परीवादपरायणो जातः ? इत्याशङ्क्य परिहरति-**दैवादिति**—(किन्तु=परन्तु), दैवात्=दुर्भाग्यवशात्, अस्माकमिति शेषः, वचनीयबीजम्--वचनीयस्य=लाञ्छनस्य बीजम्=कारणम्, च, तत्रेति शेषः, जातम्=समुद्भूतम्; ननु वैदेही सर्वसमक्षमग्नौ परीक्षिता विशुद्धा च प्रमाणिता तत्कथं तद्वचनीयतापापमाशङ्कते ? इत्याशङ्क्य परिहरति–यच्चेति । विशुद्धिकाले=अग्निपरीक्षासमये, यत्=यादृशम्, अद्भुतम्=लोकातिशायि, अलौकिकमित्यर्थः, कर्म=कार्यम्, घटनेत्यर्थः, घटितमिति शेषः, तत्=कर्म, घटना वा, यदि=चेत्, दूरवृत्तम्–दूरे=सुदूरप्रदेशे, लङ्कासमीप इत्यर्थः, वृत्तम्=घटितम्, जातम्, तर्हीति शेषः, कः=को जनः, प्रत्येतु=विश्वसितु ? न कस्यापि तत्र प्रत्ययः स्वाभाविक इत्यर्थः । अतो न प्रजाजन उपालम्भनयोग्यः । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । इन्द्रवज्राः छन्दः ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—अभिमतः=अभीष्ट, अभि + $\sqrt{}$मन् + क्तः + विभक्तिकार्यम् ।

वचनीयबीजम् = लोकलाञ्छन का कारण । सीता जी रावण की पुरी लङ्का में दस मास तक रहीं । अतः लोग सोचने लगे कि अवश्य सीता का रावण के साथ कुछ अपवित्र संसर्ग हुआ होगा । यदि वे वहाँ न रही होतीं तो लाञ्छन की बात ही न पैदा होती ।

अद्भुतं कर्म=अग्नि-परीक्षा । वस्तुतः 'अद्भुतं कर्म, इन दो पदों से केवल अग्नि-परीक्षा को ही नहीं सङ्केतित किया जा रहा है । जिस समय सीता अग्नि में प्रविष्ट होकर बाहर निकलीं उस समय आभूषणों तथा नवीन वस्त्रों से आच्छादित थीं । अग्नि ने उन्हें अलंकृत तथा सम्मानित किया था । देवताओं के साथ स्वयं दशरथ भी स्वर्ग से आकर राम को समझाये थे कि सीता निर्दोष है । ये सारी की सारी बातें 'अद्भुतं' से सूचित की गई हैं ।

इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है । छन्द का लक्षण —

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥ ४४ ॥

तद्गच्छ ।

दुर्मुखः—हा ! देवि ! (इति निष्क्रान्तः)

रामः—हा कष्टम् । अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः ।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां,[१]
सौहृदादपृथ[२]गाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे,
सौनिके[३] गृहशकुन्तिकामिव ।। ४५ ।।

तत्किमस्पृश्यः[४] पातकी देवीं दूषयामि ? (इति सीतायाः शिरः समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य ।)

शब्दार्थः—अतिबीभत्सकर्मा=अत्यन्त घृणित कार्य करने वाला, नृशंसः=क्रूर, कसाई, संवृत्तः=हो गया हूँ ॥

टीका—राम इति । अतिबीभत्सकर्मा -अतिबीभत्स्यते=अतिशयेन निन्द्यते इदमिति अतिबीभत्सम्=अतिनिन्दनीयम् कर्म=कृत्यम् यस्य तादृशः, नृशंसः—नॄन्=मानवान् शंसति=हिनस्तीति नृशंसः=घातुकः, संवृत्तः=सञ्जातः । अन्यथा कथमेतादृशस्यादेशस्य दाताऽहं भवेयम् ॥

टिप्पणी--नृशंसः--राम ने अबला, निरपराध, निकट भविष्य में ही प्रसव करनेवाली, सीता को घोर जंगल में ले जाकर छोड़ देने का आदेश दिया है । ऐसी दशा में वे 'नृशंस' नहीं तो क्या 'दयासागर' हैं ? ॥

अन्वयः--शैशवात् प्रभृति, पोषिताम्; सौहृदात्, अपृथगाश्रयाम्, इमाम्, प्रियाम्, सौनिके, गृहशकुन्तिकाम्, इव, छद्मना, मृत्यवे, परिददामि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—शैशवात् प्रभृति=बचपन से लेकर, पोषिताम्=प्रयत्नपूर्वक पाली गई; सौहृदात्=प्रीति के कारण, अपृथगाश्रयाम्=अनन्य आश्रयवाली, मेरे आश्रय वाली, मेरे अलावा किसी दूसरे के सहारे न रह सकने वाली, इमाम्=इस, प्रियाम्=प्रिया (सीता) को, सौनिके=कसाई के पास, गृहशकुन्तिकाम्=घर में (पाली) चिड़िया की, इव=तरह, छद्मना=(जङ्गल दिखाने के) छल से, मृत्यवे=मृत्यु को परिददामि=समर्पित कर रहा हूँ ॥ ४५ ॥

टीका--शैशवादिति । शैशवात् प्रभृति=बाल्यकालादारभ्य, प्रोषिताम्=सयत्नं पालिताम्, सौहृदात्--सुहृदो भावः सौहृदं तस्मात्, प्रणयातिरेकादित्यर्थः, अपृथगाश्रयाम्--अपृथक्=अहमेवैक इत्यर्थः आश्रयः=आलम्बनम् यस्याः, सा ताम्, अनन्यशरणामित्यर्थः, मां विहाय मातुः पितुर्वा कस्यामि समीपे स्थातुं न शक्नोतीत्यभिप्रायः,

---

१. प्रियैः, पालितां प्रियैः, ०श्रयां प्रियाम्, २. अपृथगाश्रयाम्, ३. सौनिको, ४. अस्पर्शनीयः ।

तो जाओ।

दुर्मुख—हाय देवि, (ऐसा कह कर निकल गया)

राम––हाय बड़ा दुःख है। (मैं) अत्यन्त घृणित कार्य करने वाला क्रूर (कसाई) हो गया हूँ।

बचपन से लेकर प्रयत्नपूर्वक पाली गई, प्रीति के कारण अनन्य आश्रयवाली (अर्थात् मेरे अलावा किसी दूसरे के सहारे न रह सकने वाली) इस प्रिया (सीता) को कसाई के पास घर में (पाली) चिड़िया की तरह (अर्थात् जैसे घर में पाली चिड़िया कसाई को सौंप दी जातो है, उसी तरह), छल से मृत्यु को समर्पित कर रहा हूँ॥ ४५॥

तो अस्पृश्य पातकी (मैं) महारानी (सीता) को क्यों दूषित करूँ? (ऐसा कह कर सीता के शिर को ऊपर उठा कर अपना हाथ खींच कर)

इमाम्=कठोरगर्भां सुप्तामित्यर्थः, प्रियाम्=प्रेयसीम्, सौनिके—सूना=प्राणिवधस्थानं प्राणिवधश्च सूनं सूना वा जीविका=वृत्तिर्यस्य स सौनिकः=मांसविक्रयी तस्मिन्, ('वैतंसिकः सौनिकः स्यात् कौटिको मांसविक्रयी' इत्यमरः), गृहशकुन्तिकाम्––गृहे पालितां पक्षिणीम्, इव=यथा, छद्मना=कपटेन, दोहदपूरणव्याजेनेत्यर्थः, मृत्यवे=यमाय, परिददामि=अर्पयामि। यथा कश्चिन्निर्दयो गृहे पोषितां पक्षिणीम् अन्नादिना केनापि व्याजेन सौनिकाय समर्पयति तथैवाहमपि सीतामरण्यदर्शनजाह्नवीजलावगाहनादिव्याजेनान्तकायैव समर्पयामीति भावः। अत्र पूर्णोपमालङ्कारः। रथोद्धता छन्दः॥ ४५॥

टिप्पणी—शैशवात् प्रभृति––'कार्तिक्याः प्रभृति' महाभाष्य के इस वचन के अनुसार यहाँ पञ्चमी है। यहाँ शैशव का अर्थ है—किशोरावस्था के आरम्भ से ही।

सौहृदात्––शोभनं हृदयं यस्य सः सुहृदयः, सुहृदयस्य भावः सौहृयं तस्मात्। सुहृदय+अण्, 'हृदयस्य हृदादेशेः उभयपदवृद्धौ विभक्तिकार्ये, 'सौहार्दं' अणि केवलमादिवृद्धौ विभक्तिकार्ये 'सौहृदं' तस्मात्।

यहाँ पूर्णोपमा अलङ्कार तथा रथोद्धता छन्द है। छन्द का लक्षण—

'रात् परैर्नरलगै रथोद्धता'॥ ४५॥

शब्दार्थः––अस्पृश्यः=स्पर्श न किये जाने के योग्य, अछूत, पातकी=पापी, दूषयामि=दूषित करूँ?

टीका—तत्किमिति। अस्पृश्यः=अतिपवित्रां सीतां स्प्रष्टुमप्यक्षमः, पातकी=पापी, अहमिति शेषः, दूषयामि=तच्छरीरस्पर्शनादिभिः प्रकृत्यैव पावनीमेतां पापिनीं करोमि॥

अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे ! विमुञ्च माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥ ४६ ॥

(उत्थाय) हन्त हन्त[1] ! संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः । अद्यावसितं[2] जीवितप्रयोजनं रामस्य । शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत् असारः संसारः । [3]काष्ठप्रायं शरीरम् । अशरणोऽस्मि किं करोमि ? का गतिः ? अथवा--

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम्[4] ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि[5] ॥ ४७ ॥

टिप्पणी--अस्पृश्यः--न (अ) + √ स्पृश् + क्यप् + विभक्तिकार्यम् । राम निर्दोष पवित्र असहाय तथा पूर्णगर्भवाली सीता को जङ्गल में परित्यक्त करने जा रहे हैं, अतः अपने-आपको अस्पृश्य बतला रहे हैं। दूषयामि--अपवित्र व्यक्ति के साथ बात करने से, उसका शरीर छूने से, उसके साथ रहने तथा भोजन करने से एवं उसके साथ एक आसन पर बैठने, शयन करने और एक साथ यात्रा करने से उसका पाप दूसरे व्यक्तियों में भी चला जाता है। (गरुड़पुराण आदि) ॥

अन्वयः--अयि मुग्धे, अपूर्वकर्मचण्डालम, माम्, विमुञ्च; (त्वम्), चन्दन-भ्रान्त्या, दुर्विपाकम्, विषद्रुमम्, श्रिता, असि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः--अयि मुग्धे=अरी भोली, अपूर्वकर्मचण्डालम्=अभूतपूर्व कर्म (करने) के कारण चण्डाल, माम्=मुझे, विमुञ्च=छोड़ो, (त्वम्=तुम), चन्दनभ्रान्त्या=चन्दन वृक्ष के धोखे से, दुर्विपाकम्=दुःखदायी, विषद्रुमम्=विष-वृक्ष का, श्रिता=आश्रय ली, असि=हो ॥ ४६ ॥

टीका--अपूर्वेति । अयि मुग्धे=हे अतिसरलहृदये, अपूर्वेति-अपूर्वेण=अदृष्टचरेण अश्रुतपूर्वेण च कर्मणा=सती सीता-परित्यागरूपकार्येण, चण्डालम्=महापतितम्, माम्=राममित्यर्थः, विमुञ्च=विजहीहि । कस्मात् ? त्वं त्वशरणशरण इति श्रूयते, अत आलम्बनीय एवासि । इत्याशङ्कां निरस्यति-श्रितेति । त्वमिति शेषः, चन्दनभ्रान्त्या-चन्दनस्य=मलयजस्य भ्रान्त्या=भ्रमेण, चन्दनवृक्षमवबुध्येत्यर्थः, दुर्विपाकम्=असुखप्रवणम्, दुःखजनको विपाकः=परिणामो यस्य तं तथोक्तम्, विषद्रुमम्=बृषवृक्षम्, श्रिता=आश्रितवती, असि । त्वं मां सुखदायकं प्राणवल्लभं मन्यसे, किन्तु वञ्चिताऽसि । यथा कश्चिद् भ्रमेण चन्दनवृक्षस्य स्थाने प्राणापहारकं विषद्रुममालिङ्गति तथैव सज्जनभ्रान्त्याऽसज्जनं मां त्वमाश्रिताऽसीति भावः । अत्र निदर्शना काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४६ ॥

---

१. हन्त; २. पर्यवसितमद्य, ३. कष्ट, ४. आहितम्, अर्पितम्, ५. स्थिरैः ।

अरी भोली, अभूतपूर्व कर्म (करने) के कारण मुझ चण्डाल को छोड़ो। तुम चन्दन वृक्ष के धोखे से दुःखदायी बिष-वृक्ष का आश्रय ली हो ॥ ४६ ॥

(उठकर) हाय ! हाय ! इस समय जीव-लोक (अर्थात् संसार) उलट-पलट गया है। आज राम के जीवन का प्रयोजन समाप्त हो गया है। इस समय जगत् उजड़े हुए जङ्गल की तरह सूना हो गया। है (मेरे लिए यह) संसार सार-विहीन (हो गया) है। शरीर काठ की तरह (निर्जीव) हो गया है। (अब) निराधार हूँ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अथवा--

दुःख भोगने के लिये ही राम में चेतना आ गई है (अन्यथा मूर्च्छा की अवस्था में ही मर गये होते)। मर्मस्थलों पर प्रहार करनेवाले प्राणों के द्वारा हृदय में वज्र की कील की तरह कार्य किया गया है ॥ ४७ ॥

टिप्पणी--अपूर्वकर्मचण्डालम्—कठोरगर्भा प्रियतमा को घोर जङ्गल में छोड़ने का कार्य अभी तक राम के पहले किसी ने नहीं किया था। अतः राम का यह कार्य अपूर्व है। ईष्यालु, चुगलखोर, कृतघ्न तथा दीर्घक्रोधी--ये चार कर्म से चाण्डाल कहे गये हैं। जाति चाण्डाल जन्मचाण्डाल कहा जाता है ॥

यहाँ निदर्शना तथा काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः--हन्त हन्त=हाय हाय, विपर्यस्तः=उलट-पलट हो गया है, अवसितम् =समाप्त हो गया है, जीवितप्रयोजनम्=जीवन का प्रयोजन, जीर्णारण्यम्=उजड़ा हुआ जङ्गल, काष्ठप्रायम्=काठ की तरह, अशरणः=निराधार, का गतिः=कहाँ जाऊँ, क्या शरण है ? ॥

टीका—हन्तेति। हन्त हन्तेति दुःखेऽव्ययम्, विपर्यस्तः=अन्यथाभूतः, अवसितम् = समाप्तम्, जीवितप्रयोजनम्--जीवितस्य = जीवनस्य प्रयोजनम् = सार्थक्यम्, जीर्णारण्यम्=शुष्कवनम्, जगत् मम कृते निष्प्रयोजनमनुपभोग्यञ्च जातमिति भावः, काष्ठप्रायम्=काष्ठवन्निर्जीवम्, अशरणः=गृहविहीनः, गृहिणीगृहमुच्यते इति वचनात् रक्षकविहीनो वेति, का गतिः=कुत्र व्रजामीति, कुत्राश्रयं गृह्णामि ? ॥

टिप्पणी--विपर्यस्तः--वि + परि + √अस् + क्त + विभक्तिकार्यम्। अवसितम्—अव + √सो + क्त + विभक्त्यादिकार्यम् ॥

अन्वयः—दुःखसंवेदनाय, एव, रामे, चैतन्यम्, आगतम्, मर्मोपघातिभिः, प्राणैः, हृदि, वज्रकीलायितम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—दुःखसंवेदनाय=दुःख भोगने के लिए, एव=ही, रामे=राम में, चैतन्यम्=चेतना, आगतम्=आ गई है, मर्मोपघातिभिः=मर्मस्थलों पर प्रहार करनेवाले, प्राणैः=प्राणों के द्वारा, हृदि=हृदय में, वज्रकीलायितम् = वज्रकी कील की तरह कार्य किया गया है ॥ ४७ ॥

हा अम्ब अरुन्धति ! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ ! भगवन् पावक ! हा देवि भूतधात्रि ! हा तातजनक ! हा मातः[१] ! हा प्रियसख महाराज सुग्रीव ! सौम्य हनूमन् ! महोपकारिन् लङ्काधिपते विभीषण ! हा सखि त्रिजटे ! [२]परिमुषिताः स्थ रामहतकेन । अथवा को[३] नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने ?

ते हि मन्ये महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना ।
मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥ ४८ ॥

टीका--दुःखेत्यादि-दुःखसंवेदनाय--दुःखानाम्=कष्टानाम् संवेदनाय=अनुभवाय, दुःखभोगायेत्यर्थः, एवेति निश्चये, रामे=रामचन्द्रे मयि, चैतन्यम्=मोहानन्तरं चेतनतेत्यर्थः, आगतम्=आयातम्, अन्यथा मोहावस्थायामेव प्राणैर्वियोजनं सुनिश्चितमासीत्, मर्मोपघातिभिः—म्रियन्ते जनाः अस्मिन्नाहते इति मर्म=जीवनस्थानम्, मर्मणि उपघातः=प्रहारो विद्यते येषां तैस्तथोक्तैः, अथवा मर्माणि उपघ्नन्तीति=विध्यन्तीति ये तैः अरुन्तुदैरित्यर्थः, प्राणैः=असुभिः, हृदि=हृदये, वज्रकीलायितम्--वज्रकीलः=वज्रमयः शङ्कुः तेनेवाचरितम् । अहो ! प्राणानां काठिन्यं यन्मर्माहता अपि न निर्गता इति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । छन्दस्तु अनुष्टुप् ॥ ४७ ॥

टिप्पणी--चैतन्यम्--चेतनस्य भावः, चेतन + ष्यञ् + विभक्तिकार्यम् । आगतम्--वापस आ गया । अभी कुछ ही देर पहले राम मूर्च्छित हुए थे । उनका कहना है कि उसी समय हमें मर जाना चाहिए था । किन्तु ऐसा हुआ नहीं । इसका कारण यह है कि विधाता अभी मुझे और दुःख सहाना चाहता है । आ + √गम् + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

मर्मोपघातिभिः, वज्रकीलायितम्--हमारे प्राण हृदय के मर्म स्थलों पर प्रहार कर रहे हैं । मर्म-स्थलों पर प्रहार होने से प्राण निकल जाते हैं । किन्तु मालूम पड़ता है कि हमारे प्राण वज्र की मानो कील हो गये हैं । वज्र की कील न तो टूटती है, न जीर्ण-शीर्ण ही होती है । उससे जड़ी गई चीजें भी खुलती नहीं है ।

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—पावकः=अग्नि, भूतधात्रि=पृथिवी, परिमुषिताः=ठगे गये, वञ्चित, परिभूताः=तिरस्कृत, रामहतकेन=पातकी राम के द्वारा, आह्वाने=बुलाने में ॥

टीका—हा अम्बेति ! भगवन् पावक=भगवन् अग्ने, तव पावनानि वचनानि अपि दुर्जना न विश्वसन्ति, व्यर्थीभूता च त्वत्प्रवेशपरीक्षेति भावस्तदाह्वाने, भूतधात्रि-भूतानाम्=प्राणिनाम् धात्रि=रक्षयित्रि, धारिकेत्यर्थः, परिमुषिताः=वञ्चिताः,

---

१. मातरः, २. मुषिताः, दूषिताः, ३ कश्च,

हा माता अरुन्धती ! हा भगवन् वशिष्ठ तथा विश्वामित्र ! हा भगवन् अग्नि ! हा देवी पृथिवी ! हा तात (श्वसुर) जनक ! हा माता ! हा प्रिय मित्र महाराज सुग्रीव ! हा अत्यन्त सरल हनुमान् ! हा महापरोपकारी लङ्का के अधिपति विभीषण ! हा सखी त्रिजटा ! (आप सब लोग) पातकी राम के द्वारा वञ्चित तथा तिरस्कृत किये गये हैं । अथवा उन सबको बुलाने में अब मैं कौन हूँ (अर्थात् उन सबको बुलाने में अब मेरा क्या अधिकार है) ?

क्योंकि कृतघ्न तथा दुष्ट मेरे द्वारा नाम लिये गये (अर्थात् नाम लेने पर) वे महात्मा लोग पातक से छू-से जाते हैं--(ऐसा) मैं मानता हूँ ॥ ४८ ॥

परिभूताः=तिरस्कृताः, अवमानिताः=इत्यर्थः रामहतकेन=हत एव हतकः=सीता-विवासनात् विगतश्रीकतया दुर्भगः, रामश्चासौ हतको रामहतकः=पापी राम इत्यर्थः । आह्वाने=आकारणे, कोऽहम्=किमस्म्यहं योग्यः ? आहूता एते सर्वे सीतासम्बन्धिनः सीताचरितसाक्षिणः सन्तीति रामस्तानाकारयति ।

टिप्पणी--**उपकारिन्**--उप+√कृ√णिनि+विभक्त्यादिकार्यम् । परिमुषिताः--परि+√मुष् (स्तेये)+कर्मणि क्तः+विभक्त्यादिकार्यम् ।

को नाम आह्वाने--यहाँ राम जिन्हें-जिन्हें पुकार रहे हैं, वे सभी किसी न किसी तरह सीता से सम्बद्ध तथा उनकी पवित्रता के साक्षी हैं । सबने राम से अनुरोध किया था 'सीता पूर्णतया पवित्र हैं । आप अवश्य इन्हें स्वीकार करें ।' किन्तु आज राम सबकी बात काट रहे हैं । अति साधारण प्रजा के कहने पर अरुन्धती आदि सबकी प्रिय सीता को निकाल बाहर कर दे रहे हैं । यही है राम द्वारा सबका ठगा जाना, तिरस्कृत किया जाना । फिर राम कैसे इन लोगों का नाम लेने के अधिकारी हैं ? ॥

अन्वयः--हि, कृतघ्नेन, दुरात्मना, मया, गृहीतनामानः, ते, महात्मामः, पाप्मना, स्पृश्यन्ते, इव, (इति), मन्ये ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—हि=क्योंकि, कृतघ्नेन=कृतघ्न, उपकार को भुला देने वाला, दुरात्मना=दुष्ट, मया=मेरे द्वारा, गृहीतनामानः=लिया गया है नाम जिनका ऐसे नाम लिये गये, (ते=वे), महात्मानः=महात्मा लोग, पाप्मना=पातक से, स्पृश्यन्त इव=छू से जाते हैं, (इति=ऐसा), मन्ये=मैं मानता हूँ ॥ ४८ ॥

टीका—पापकृतां संसर्गेण पापोत्पत्तिर्जायतेऽतो महात्मनां तेषां नामग्रहणेनापि वाचिकसंसर्गात् दूषितत्वशङ्कायां हेतुं निर्दिशति—**ते हीति** । हि=यतः, कृतघ्नेन—कृतम्=उपकारमित्यर्थः हन्तीति तेन, पूर्वं कृतस्योपकारस्य विस्मरणात् अकृतज्ञेनेत्यर्थः, दुरात्मना=दुष्टेन, मया=रामेण, गृहीतनामानः--गृहीतम्=उच्चारितम् नाम=संज्ञा येषां ते तादृशाः, ते=अरुन्धतीप्रभृतय इत्यर्थः, महात्मानः=पावनचरिताः, पाप्मना=

योऽहम्—

विस्रम्भादुरसि निपत्य जात[1]निद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य [2]लक्ष्मीम् ।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं क्रव्याद्भ्यो
बलिमिव [3]दारुणः क्षिपामि ॥४९॥

(सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा ।) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसा[4] पाद-पङ्कजस्पर्शः (इति रोदिति ।)

(नेपथ्ये ।)

अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम् ।

रामः— ज्ञायतां भो ! किमेतत् ?

(पुनर्नेपथ्ये ।)

पापेन, स्पृश्यन्त इव=संसृज्यन्त इव, इति, मन्ये=विचारयामि । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । छन्दस्तु अनुष्टुप् ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—स्पृश्यन्त इव—जिस तरह किसी पापी के द्वारा छुये जाने पर व्यक्ति दूषित हो जाता है, उसी तरह उसके द्वारा नाम लेने पर भी, वह व्यक्ति जिसका नाम लिया जाता है, दूषित हो जाता है ।

इस श्लोक में 'मन्ये' के द्वारा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—विस्रम्भात्, उरसि, निपत्य, जातनिद्राम्, आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भ-गुर्वीम् । गृहस्य, लक्ष्मीम्, प्रियगृहिणीम्, उन्मुच्य, दारुणः, (अहम्), क्रव्याद्भ्यः, बलिम्, इव, क्षिपामि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थः—विस्रम्भात्=विश्वास के कारण, उरसि=वक्षःस्थलपर, निपत्य=पड़ कर, जातनिद्राम्=उत्पन्न निद्रावाली, आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीम्=उद्वेग के कारण फड़कते हुए पूर्ण गर्भ के भार से बोझिल, गृहस्य=घर की, लक्ष्मीम्=लक्ष्मी, प्रियगृहिणीम्=प्रिय पत्नी को, उन्मुच्य=अपने शरीर से हठात् छुड़ा कर, क्रव्याद्भ्यः=हिंसक जानवरों के लिये, बलिम्=भोजनरूप उपहार के, इव=समान, क्षिपामि=फेंक रहा हूँ ॥ ४९ ॥

---

१. लब्ध०, २. शोभाम्, ३. निर्घृणः ४. शिरसि ।

जो मैं—

विश्वास के कारण वक्षःस्थल पर पड़ कर उत्पन्न निद्रावाली (अर्थात् सोई हुई), (चित्रदर्शन से होने वाले) उद्वेग के कारण फड़कते हुए पूर्ण गर्भ के भार से बोझिल, घर की लक्ष्मी, प्रियपत्नी को, अपने शरीर से हठात् छुड़ा कर, हिंसक जानवरों के लिये भोजनरूप उपहार के समान, फेंक रहा हूँ ।। ४९ ।।

(सीता के चरणों को शिर पर रख कर) राम के शिर के साथ तुम्हारे चरण कमलों का यह अन्तिम स्पर्श है । (ऐसा कह कर रोते हैं)

(पर्दे के पीछे)

ब्राह्मणों के लिये अनर्थ हो रहा है ! ब्राह्मणों के लिये अनर्थ हो रहा है !

राम—अरे, पता लगाओ, यह क्या है ?

(फिर पर्दे के पीछे)

टीका—कस्मात्त्वमसि पापीति जिज्ञासायां विशदीकृत्योपपादयति–विश्रम्भा-दिति । विश्रम्भात्=विश्वासातिशयात्' उरसि=वक्षसि, निपत्य=पतित्वा, शयित्वेत्यर्थः, जातनिद्राम्–जाता=उत्पन्ना निद्रा=स्वापः यस्याः सा तां तादृशीम्, आतङ्केति आतङ्केन=चित्रदर्शनजातेन स्वप्नदर्शनजातेन वोद्वेगेन, स्फुरितः=दीर्घमुच्छ्वसता हृदयेन सह चञ्चलतां प्राप्तः कठोरः=पूर्णो यो गर्भस्तेन गुर्वीम्=गर्भभाराक्रान्ततया मन्थराम्, वने स्वत्राणाय पलायितुमप्यक्षमामिति भावः, गृहस्य=भवनस्य, लक्ष्मीम्=शोभाम्, श्रियं वा, प्रियगृहिणीम्=द्वितीयहृदयभूतां भार्याम्, उन्मुच्य=स्वशरीराद्धठा-दुत्थाय, उत्सार्येत्यर्थः, दारुणः=निर्दयः, अहमिति शेषः, क्रव्याद्भ्यः–क्रव्यम्=आम-मांसम् अदन्तीति=भक्षयन्तीति क्रव्यादयः=श्वापदाः व्याघ्रादयस्तेभ्यः, बलिम्=भोजनोपहारम्, इव=यथा, क्षिपामि=दूरादेव प्रक्षिप्य ददामि । यथा कश्चिज्जनो मांसपिण्डान् हिंस्रपशुभ्यो वने विकिरति तथैवाहमपि सीतां वने विक्षिपामीति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । छन्दस्तु प्रहर्षिणी ।। ४९ ।।

टिप्पणी—उन्मुच्य—उत् + √मुच् + क्त + विभक्तिकार्यम् । यदि कोई प्राणी या पदार्थ शरीर में कसकर लिपटा है । शरीर छोड़ना नहीं चाहता है । ऐसी अवस्था में हम उसे नोच कर फेंकना चाहते हैं । यही है यहाँ उन्मुच्य का भाव ।

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा प्रहर्षिणी छन्द है । छन्द का लक्षण—

'त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्' ।। ४९ ।।

शब्दार्थः—पश्चिमः=अन्तिम, रामशिरसा=राम के शिर से । अब्रह्मण्यम्=ब्राह्मणों या वेदों के लिये अनर्थ हो रहा है ।।

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ।
लवणत्रासितः स्तोमस्त्रा[1]तारं त्वामुपस्थितः ।। ५० ।।

रामः—कथमद्यापि राक्षसत्रासः ? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य[2] कुम्भीनसीकुमा[3]रस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि । (परिक्रम्य[4] पुनर्निवृत्य ।) हा देवि ! कथमेवंविधा[5] गमिष्यसि ? भगवति वसुन्धरे ! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम् ।

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् ।
[6]यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजनः ।। ५१ ।।

(इति रुदन्निष्क्रान्तः ।)

अन्वयः—यमुनातीरवासिनाम्, उग्रतपसाम्, ऋषीणाम्, स्तोमः, लवणत्रासितः (सन्), त्रातारम्, त्वाम्, उपस्थितः ।। ५० ।।

शब्दार्थः—यमुनातीरवासिनाम्=यमुना के तट पर रहने वाले, उग्रतपसाम्=घोर तपस्या करने वाले, ऋषीणाम्=ऋषियों का, स्तोमः=समूह, लवणत्रासितः (सन्)=लवण (नामक राक्षस) से भयभीत होकर, त्रातारम्=रक्षा करने वाले, रक्षक, त्वाम्=तुम्हारे पास, उपस्थितः=आया है ।। ५० ।।

टीका—ऋषीणामिति । यमुनातीरवासिनाम्—यमुनायाः=सूर्यपुत्र्याः तीरे=तटे वसन्ति=निवसन्तीति तेषाम्, उग्रतपसाम्–उग्रम्=घोरम्, दुस्तपमित्यर्थः, तपः=तपस्या येषां ते तादृशानाम्, ऋषीणाम्=मुनीनाम्, स्तोमः=समूहः, लवणत्रासितः–लवणेन=तन्नाम्नाऽसुरेण त्रासितः=भीतः सन्, त्रातारम्=रक्षकम्, त्वाम्=भवन्तम्, उपस्थितः=समायातः । अनुष्टुप् छन्दः ।। ५० ।।

टिप्पणी—स्तोमः—√स्तु + मन् + विभक्तिकार्यम् । इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।। ५० ।।

शब्दार्थः—राक्षसत्रासः=राक्षसों से भय, राक्षसों का भय, उन्मूलनाय=उखाड़ फेंकने के लिये, विनाश करने के लिए, एवंविधा=इस तरह की, इस अवस्थावाली, सुश्लाघ्याम्=प्रशंसनीय, दुहितरम्=बेटी को ।।

टीका—राम इति । राक्षसत्रासः–राक्षसेभ्यः=क्रव्याद्भ्यः त्रासः=भीतिः, उन्मूलनाय=उत्पाटनाय, विनाशायेति यावत्, एवंविधा—एवम्=ईत्थम् विधा=प्रकारो यस्या सा तादृशी, एवंदशामापन्ना गर्भिणी मया चापि वञ्चिता सती एकाकिनी, सुश्लाघ्याम्=प्रशंसनीयाम्, दुहितरम्=पुत्रीम् ।।

---

१. शरण्यम् २. क्वचिन्नास्ति, ३. कुम्भीनसीपुत्रस्य, ४. कतिचित्पदानि गत्वा, ५. कथमेवंगता भविष्यसि, ६, तां ।

यमुना के तट पर रहने वाले, घोर तपस्या करने वाले ऋषियों का समूह लवण (नामक राक्षस) से भयभीत होकर रक्षा करने वाले तुम्हारे पास आया है ॥ ५० ॥

राम—क्या आज भी राक्षसों से भय (बना हुआ) है ? अच्छा, सम्प्रति कुम्भीनसी के पुत्र इस दुरात्मा मधुरा (मथुरा)–पति लवण को उखाड़ फेंकने के लिये शत्रुघ्न को भेजता हूँ। (घूम कर और फिर लौट कर) हाय देवि, इस अवस्थावाली (अर्थात् इस अवस्था में) तुम कैसे जाओगी ? भगवती पृथिवी, (तुम) अपनी प्रशंसनीय बेटी जानकी की देख भाल करना।

जो (सीतारूप वस्तु) जनक कुल तथा रघुकुल में उत्पन्न व्यक्तियों का समस्त गोत्र-मङ्गल (है); पावनस्वभाववाली जिस (सीता) को पवित्र यज्ञ-भूमि में (तुमने) उत्पन्न किया था, (उस जानकी की तुम देख भाल करना) ॥ ५१ ॥

(ऐसा कहकर रोते हुए निकल गये)

टिप्पणी––माधुरस्य—मधुरा के अधिपति का। मधुरा निवासोऽस्येति माधुरः, मधुरा + अण् + विभक्तिकार्यम्। लवण मधुरा का राजा था। प्राचीन काल की मधुरा ही आज की मथुरा है। इसकी माँ का नाम था कुम्भीनसी और पिता का मधु। मधु के नाम पर ही मधुरा तथा मधुवन—ये नाम आधुनिक मथुरा के पड़े थे। कुम्भनसी रावण की बहन थी। शत्रुघ्न ने लवण का वध कर यमुना के सुरम्य तट पर अपना राज्य स्थापित किया था। विशेष जानकारी के लिए रामायण का उत्तर काण्ड देखिये।

सुश्लाघ्याम्—सुश्लाघाम् अर्हति, सुश्लाघा + यत् + टाप् + विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—यत्, जनकानाम्, च, रघूणाम्, कृत्स्नम्, गोत्रमङ्गलम्, (अस्ति); पुण्यशीलाम्, याम्, पुण्ये, देवयजने, (त्वम्), अजीजनः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—यत्=जो, जनकानाम्=जनक कुल में उत्पन्न व्यक्तियों का, च=तथा, रघूणाम्=रघुकुल में उत्पन्न व्यक्तियों का, कृत्स्नम्=समस्त, गोत्रमङ्गलम्=गोत्र (खान-दान) का मङ्गल स्वरूप, (अस्ति=है), पुण्यशीलाम्=पावन स्वभाव वाली, याम्=जिस (सीता) को, पुण्ये=पवित्र, देवयजने=यज्ञ-भूमि में, (त्वम्=तुमने), अजीजनः=उत्पन्न किया था ॥ ५१ ॥

टीका—जनकानामिति। यत्=यत् सीतारूपं वस्तु, जनकानाम्=जनकवंशोत्पन्नानाम्, च=तथा, रघूणाम्=रघुकुलजातानां जनानाम्, कृत्स्नम्=समस्तम्, गोत्रमङ्गलम्–गोत्रस्य=वंशस्य मङ्गलम्=शुभम्, अस्तीति शेषः, पुण्यशीलाम्–पुण्यम्=पवित्रम् शीलम्=स्वभावः यस्याः सा ताम्, याम्=यां सीताम्, पुण्ये=पवित्रे, देवयजने=देवाः इज्यन्ते अस्मिन्निति देवयजनम्=यज्ञभूमिः तस्मिन्, त्वमिति शेषः, अजीजनः=जनितवत्यसि। अत्र रूपकालङ्कारः। अनुष्टुप् च छन्दः ॥ ५१ ॥

सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र ! कुत्राऽसि ? (इति सहसोत्थाय ।) हा धिक् हा धिक् ! दुःस्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि । (विलोक्य) हा धिक् हा धिक् ! एकाकिनीं प्रसुप्तां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथः ? भवतु । अस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि । कोऽत्र परिजनः ? [हा सोह्म अज्जउत्त ! कहिंसि ? हद्धी हद्धी ! दुस्सि[1]विणरणरणअविप्पलद्धा अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि । हद्धी हद्धी ! एआइणिं पसुत्तं मं उज्झिअ कहिं गदो णाहो । होदु । से कुप्पिस्सं, जह तं पेक्खन्ती अत्तणो पहविस्सं । को एत्थ परिअणो ?]

(प्रविश्य)

दुर्मुखः—देवि ! कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति—'सज्जो रथः । तदारोहतु देवी' इति । [देवि कुमारलक्खणो विण्णवेदि—'सज्जो रहो । तं आरुहदु देवी'त्ति ।]

सीता—इयमारूढास्मि । (उत्थाय परिक्रम्य ।) स्फुरति मे गर्भभारः । शनैर्गच्छामः । [इअं[2] आरूढह्मि । फुरइ[3] मे गब्भभारो सणिअं गच्छह्म ।]

दुर्मुखः—इत इतो देवी । [इदो इदो देवी ।]

सीता—नमो रघुकुलदेवताभ्यः । [णमो रहुउलदेवदाणं ।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित[4] उत्तररामचरिते
चित्रदर्शनो[5] नाम प्रथमोऽङ्कः ॥ १ ॥

टिप्पणी—यहाँ सीता पर गोत्रमङ्गल होने का आरोप करने से रूपक अलङ्कार है । श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् । श्लोक का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—सौम्य=सुन्दर, दुःस्वप्नरणरणकविप्रलब्धा=दुःस्वप्न (बुरे स्वप्न) में (विरह-जनित) उत्कण्ठा से प्रताडित (अर्थात् ठगी गई), उज्झित्वा=छोड़ कर ॥

टीका—सीतेति । सौम्य=सुभग, दुःस्वप्नेति=दुःस्वप्ने=विप्रलम्भादिबहुले स्वापकाले इत्यर्थः, यो रणरणकः=वियोगकल्पनाजनितोत्कण्ठा तेन विप्रलब्धा=प्रताडिता, उज्झित्वा=परित्यज्य ॥

---

१. डस्सिविणेंण विप्पलद्धा अहं अज्जउत्तं अक्कंदामि (दुःस्वप्नेन विप्रलब्धाऽहमार्यपुत्रमाक्रन्दामि) २. आरुहामि (आरोहामि), ३. परिप्फुरदि विअ मे गब्भभारो ता सिहिलं गच्छह्म (परिस्फुरतीव मे गर्भभारः । तच्छिथिलं गच्छामः ।) ४. प्रणीते, ५. दर्शने ।

सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, (आप) कहा हैं ? (यह कहती हुई सहसा उठ कर) हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है, दुःस्वप्न में (विरह-जनित) उत्कण्ठा से प्रताडित (मैं) अपने आपको आर्यपुत्र से वियुक्त-सी अनुभव कर रही हूँ। (देखकर) हा धिक्कार है, हा धिक्कार है, मुझ अकेली सोती हुई को छोड़ कर स्वामी कहाँ चले गये ? अच्छा, उनके ऊपर नाराज होऊँगी, यदि उन्हे देख कर अपने आपको वश में रख सकी तो। कौन यहाँ सेवक है ?

(प्रवेश करके)

दुर्मुख—महारानी, कुमार लक्ष्मण निवेदन कर रहे हैं–रथ तैयार है। तो महारानी सवार हों।

सीता—यह चढ़ ही गई (अर्थात्–बस, चल कर चढ़ती ही हूँ)। (उठ कर और घूम कर) मेरा गर्भ का भार (अर्थात् गर्भस्थ शिशु) फड़क रहा है। (अतः) धीरे-धीरे चलें (हम लोग)।

दुर्मुख—इधर से, इधर से महारानी (चलें)।

सीता—रघुकुल के देवताओं को प्रणाम है।

(इस प्रकार सभी निकल गये)

॥ इस प्रकार महाकवि भवभूति के द्वारा रचिता उत्तर रामचरित में चित्रदर्शन नामक प्रथम अङ्क समाप्त हुआ ॥ १ ॥

टिप्पणी—आत्मनः प्रभविष्यामि—सीता सोच रहीं हैं कि मैं राम पर क्रुद्ध होऊँगी। वे मुझे छोड़ कर क्यों चले गये ? किन्तु इसके साथ ही सीता के मन में सन्देह भी है कि—क्या राम पर मैं कोप कर सकूँगी ? क्योंकि राम के सामने आते ही उनके सौन्दर्य आदि से मुग्ध होकर सीता अपने आपको भी भूल जाती हैं। उनका अपने ऊपर भी कण्ट्रोल नहीं रह पाता है ॥

शब्दार्थः—विज्ञापयति = निवेदन कर रहे हैं, आरोहतु = चढ़ें, सवार हों। स्फुरति=फड़क रहा है, हलचल कर रहा है ॥

टीका—दुर्मुख इति। विज्ञापयति=सविनयं सूचयति, आरोहतु=आरूढा भवतु, स्फुरति=चलति, स्वप्नदर्शनजातेनोद्वेगेनेतस्ततश्चलतीति भावः। सीतायाः कठोरगर्भत्वं सूचयितुमयमुपन्यासः ॥

॥ इत्याचार्य रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायामुत्तररामचरित-व्याख्यायां शान्त्याख्यायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

टिप्पणी—सज्जः—√सस्ज (गतौ) + अच् + विभक्तिकार्यम्।

स्फुरति—इस कथन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि—सीता शीघ्र ही प्रसव करने वाली हैं। किन्तु फिर भी राम ने उनके परित्याग में किसी कारण से जरा भी शिथिलता न आने दी। आश्चर्यजनक है राम का न्याय–प्रदर्शन।

चित्रदर्शनो नाम—इस अङ्क की मुख्य घटना है चित्रावली का दर्शन। इसी पर इसका कथानक प्रधानतया अवलम्बित है। अतः इसका नाम 'चित्र-दर्शन' है ॥

॥ प्रथम अंक समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीयोऽङ्कः

[पञ्चवटीप्रवेशः]

(नेपथ्ये ।)

स्वागतं तपोधनायाः[1] ।

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषा तापसी ।)

तापसी—अये, वनदेवता [2]फलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण दूरान्मामुपतिष्ठते ।

(प्रविश्य ।)

वनदेवता—(अर्घ्यं विकीर्य[3] ।)

[4]यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवस

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति ।

तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां[5] योग्यमशनं[6]

फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—नेपथ्ये=पर्दे के पीछे, तपोधनायाः=तपस्या ही है धन जिसका उसका, तपस्विनी का, अध्वगवेषा=पथिक के वेष को धारण की हुई, तापसी=तपस्विनी, वनदेवता=वन की अधिष्ठात्री देवी, फल-कुसुमगर्भेण=फल एवं पुष्प हैं मध्य में जिसके ऐसे, फल एवं पुष्प से युक्त, पल्लवार्घ्येण=कोमल किसलय में रख कर दिये गये अर्घ्य से, उपतिष्ठते=पूजा कर रही है, स्वागत कर रही है । अर्घ्यम्=पूजा की सामग्री को, विकीर्य=बिखेर कर, देकर ॥

टीका नेपथ्य इति । नेपथ्ये=वेशभूषापरिग्रहस्थाने, 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थली नेपथ्यमिष्यते ।' इत्युक्तत्वात् जवनिकापरिच्छन्नं नटवेषभूषापरिग्रहस्थानं नेपथ्यमुच्यते । तपोधनायाः–तपः=तपस्या एव धनम्=सम्पत्तिर्यस्यास्तस्याः, अध्वगवेषा–अध्वनि=मार्गे गच्छन्तीति अध्वगाः=पथिकाः तेषां वेशः=नेपथ्यमिव वेशो यस्याः सा, पथिकवेशधारिणीत्यर्थः, तापसी=तपस्विनी, वनदेवता=वनस्याधिष्ठात्री देवी, फलकुसुमगर्भेण-फलानि पुष्पाणि=प्रसूनानि च गर्भे=आभ्यन्तरे यस्मिन् तेन, फलकुसुमयुक्तेनेत्यर्थः, पल्लवार्घ्येण–पल्लवैः=कोमलकिसलयैः कल्पितेन अर्घ्येण=पूजनद्रव्येण, उपतिष्ठते=पूजयति, स्वागतं विदधातीत्यर्थः, अर्घ्यम्=मधुपर्कादिकं पूजाद्रव्यम्, विकीर्य=विक्षिप्य, तापसीं प्रतीति शेषः ॥

---

१. ०नायै, २. फलकुसुमपल्लवार्घ्येण, ३. वितीर्य, ४. यथेच्छं भोग्यं, ५. तपसो, ६. भोग्यं, भोज्यम् ।

(पर्दे के पीछे)

स्वागत है तपस्विनी का ।

(तदनन्तर पथिक के वेष को धारण की हुई तपस्विनी प्रवेश करती है)

तापसी—अरे, वनदेवता (अर्थात् वन की अधिष्ठात्री देवी) फल एवं फूल से युक्त, कोमल किसलय में रख कर दिये गये अर्घ्य से, दूर से ही, मेरा स्वागत कर रही है ।

(प्रवेश करके)

वनदेवता—(पूजा की सामग्री विखेर कर)

यह वन आपके लिए इच्छानुसार (अर्थात् बेरोक-टोक) उपयोग के योग्य (है) । यह (अर्थात् आज का दिन) मेरे लिए शुभ दिन है, क्योंकि सज्जनों का सज्जनों के साथ मिलन किसी-किसी तरह, पुण्य से, होता है । वृक्ष की छाया, जल, (और) जो भी (कुछ) तपस्या के (अर्थात् तपस्वी या तपस्विनी के) भोजन—फल अथवा मूल (है), वह भी यहाँ आपके लिये पराधीन नहीं है ।। १ ।।

टिप्पणी—इस अङ्क में वर्णित घटमाओं का स्थान है—जनस्थान । जनस्थान दण्डकारण्य का एक भाग है । प्रथम अङ्क तथा द्वितीय अङ्क की घटनाओं के बीच पूरे बारह वर्षों का अन्तराल है । इन बारह वर्ष की घटनाओं की सूचना देने के लिए ही इस (द्वितीय) अङ्क के आरम्भ में 'विष्कम्भक' की कल्पना की गई है ।

नेपथ्ये—पर्दे के पीछे से वनदेवता का तापसी के लिए कथन है । इससे तापसी का प्रवेश सूचित होता है । इसे 'चूलिका' नामक अर्थोपक्षेपक कहते हैं । चूलिका का लक्षण है—'अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका' (सा० द० ६–५८) ।

विकीर्य—विखेर कर, देकर । वि + √कृ + ल्यप् ।

अन्वयः—इदम्, वनम्, वः, यथेच्छाभोग्यम्, (अस्ति), अयम्, मे, सुदिवसः; हि, सताम्, सद्भिः, सङ्गः, कथमपि, पुण्येन, भवति; तरुच्छाया, तोयम्, यत्, अपि, तपसाम्, योग्यम्, अशनम्, फलम्, वा, मूलम्, वा, तत्, अपि, इह, वः, पराधीनम्, न ।। १ ।।

शब्दार्थः—इदम्=यह; वनम्=वन, वः=आपके लिए, यथेच्छाभोग्यम्=इच्छानुसार (अर्थात् बेरोकटोक) उपभोग के योग्य, (अस्ति=है), अयम्=यह, आज का दिन, मे=मेरा या मेरे लिए, सुदिवसः=शुभ दिन है, हि=क्योंकि, सताम्=सज्जनों का, सद्भिः=सज्जनों के साथ, सङ्गः=मिलन, कथमपि=किसी-किसी तरह, अर्थात् पुण्येन=पुण्य से, भवति=होता है, तरुच्छाया=वृक्ष की छाया, तोयम्=जल, यत्=जो, अपि=भी, तपसाम्=तपस्या के, योग्यम्=योग्य, लायक, अशनम्=भोजन, फलम्=फल, वा=अथवा, मूलम्=मूल, कन्द, वा=यह विकल्पार्थक है, तत्=वह, अपि=भी, इह=यहाँ, वः=आपके लिये, पराधीनम्=पराधीन, न=नहीं है ।। १ ।।

तापसी—किमत्रोच्यते ?

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ २ ॥

(उपविशतः)

टीका—यथेच्छाभोग्यमिति । इदम्=एतत्, अध्युषितमित्यर्थः, वनम्=अरण्यम्, वः=युष्माकमिति विनयोक्तिः, यथेच्छाभोग्यम्—यथेच्छम्=यथारुचि इत्यर्थः, भोग्यम्= सेवनीयम्, सङ्कोचं विहाय सेवनीयमित्यर्थः, अस्तीति क्रियाशेषः, अयम्=एषः, प्रवर्तमान इति यावत्, मे=मम, सुदिवसः=भवत्याः समागमात् सुदिवसः ? इति जिज्ञासायामुत्तरयति—हि=यतः, सताम्=सज्जनानाम, सद्भिः=साधुभिः, सङ्गः=सङ्गमः, कथमपि=कथञ्चित्, कदाचिदिति यावत्, पुण्येन=सुकृतेन, भाग्येनेत्यर्थः, भवति= जायते, एतेन सज्जनसङ्गतेः दुष्प्रापत्वं सूचितम् । तरुच्छाया=तरोः=वृक्षस्य छाया= अनातपः, अत्र जातावेकवचनान्तेन समासः । तरूणां छायेति विग्रहे 'छाया बाहुल्ये' (पा० २।४।२२) इति सूत्रेण नपुंसकत्वप्रसक्तिः, तोयम्—जलम्, यदपि=यत्किञ्चिदपीत्यर्थः, तपसाम्=तपस्यानाम्, योग्यम्=उचितम्, अशनम्=भोजनम्, किं तत् ? तदेव विवृणोति—फलं वा=अथवा, मूलम्=कन्दम्, वेति विकल्पे, तदपि=एतत्सर्वमपीत्यर्थः, इह=अत्र, वः=युष्माकम्, पराधीनम्=अन्यायत्तम्, न=न वर्तते । एतत्सर्वं स्वकीयमेव विद्धीति भावः । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ १ ॥

टिप्पणी—भोग्यम्=भोक्तुं योग्यम्, √भुज् + ण्यत् + विभक्तिकार्यम् । अशनम् √अश् + ल्युट् + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में 'सतां सद्भिः' इस सामान्य वाक्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—शिखरिणी । छन्द का लक्षण—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ॥ १ ॥

अन्वयः—प्रियप्रायाः, वृत्तिः, विनयमधुरः, वाचि, नियमः, प्रकृत्या, कल्याणी, मतिः, अनवगीतः, परिचयः, तत्, इदम्, पुरः, वा, पश्चात्, वा, अविपर्यासितरसम्, अनुपधि, विशुद्धम्, साधूनाम्, रहस्यम्, विजयते ॥ २ ॥

शब्दार्थः—प्रियप्राया=अधिक प्रेमपूर्ण, वृत्तिः=व्यवहार, विनयमधुरः=विनय से मधुर, वाचि=वाणी में, नियमः=संयम, प्रकृत्या=स्वभाव से, कल्याणी=(प्राणियों की) मङ्गल-कामना करने वाली, मतिः=बुद्धि, अनवगीतः=अनिन्दित, परिचयः=परिचय, तत्=ऐसा, इदम्=यह, पुरः=पहले, वा=अथवा, पश्चात्=बाद में, वा=यह अवस्थान्तर

तापसी—इसमें क्या कहना ? (अर्थात् तुम्हारा कथन सत्य है) ।

अधिक प्रेमपूर्ण व्यवहार, विनय से मधुर वाणी में संयम, स्वभाव से प्राणियों की मङ्गल-कामना करने वाली बुद्धि, अनिन्दित परिचय,—ऐसा यह पहले अथवा बाद में अपरिवर्तित अनुरागवाला, निश्छल, विशुद्ध, सज्जनों का गूढ रहस्य सबसे उत्कृष्ट है ॥ २ ॥

(दोनों बैठ जाती हैं)

का सूचक है, अविपर्यासितरसम्=अपरिवर्तित अनुराग वाला, अनुपधि=निश्छल, निष्कपट, विशुद्धम्=विशुद्ध. साधूनाम्=सज्जनों का, रहस्यम्=गूढ रहस्य, विजयते= विजय को प्राप्त होता है, सबसे उत्कृष्ट है ॥ २ ॥

टीका—प्रियप्रायेति । प्रियप्राया--प्रायेण=बाहुल्येन प्रिया=अभीप्सिता, सुप्सुपेति समासे 'एकविभक्तिः' (पा० १।२।४४) अनेन प्रायस्य परप्रयोगः, स्निग्धेति यावत्, वृत्तिः=व्यवहारः, विनयमधुरः—विनयेन = नम्रतया मधुरः=मनोज्ञः, वाचि= वचने, नियमः=संयमः, प्रकृत्या=स्वभावेन, कल्याणी=शिवा, परेषां मङ्गलाकाङ्क्षणी-त्यर्थः, मतिः=बुद्धिः, अनवगीतः=अनिन्दितः, कपटादिदोषरहितत्वादनिन्दित इत्यर्थः, तत्=तादृशम्, इदम्=एतत्, वृत्तिवाचिनियमादिपरिचयसमुदायरूपमित्यर्थः, पुरः= अग्रे, वा=अथवा, पश्चात्=अनन्तरम्, सतां प्रणयस्य पूर्वमथवा ततः पश्चादित्यर्थः, वेति विकल्पेऽव्ययपदम्, अविर्यासितरसम्—अविपर्यासितः=विपर्यासमप्राप्तः रसः= अनुरागो यस्मिन् तत् तथोक्तम्, एकरूपमिति यावत्, अनुपधि=निर्व्याजम्, विशुद्धम्= कपटादिदोषरहितमित्यर्थः, साधूनाम्=सज्जनानाम्, रहस्यम्=साधारणजनैरज्ञेयम-निर्वचनीयं चरितमित्यर्थः, विजयते=सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा समुच्चयश्चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ,। २ ॥

टिप्पणी—वृत्तिः—√वृत् + क्तिन् + विभक्तिकार्यम् । **नियमः**—नि + √यम् + अप् वैकल्पिकः, पक्षे घञ् नियामः, + विभक्तिकार्यम् । **परिचयः**—परि + √चि + अच् + विभक्तिकार्यम् । **रहस्यम्**—रहसि भवं रहस्यम्—रहस् + यत् + विभक्तिकार्यम् ।

यहाँ अप्रस्तुत सामान्य सज्जन-चरित के द्वारा प्रस्तुत विशेष वनदेवता के चरित का बोध होने से अप्रस्तुत प्रशंसा तथा सज्जन-चरित के प्रति 'प्रियप्राया वृत्तिः' आदि कतिपय कारणोंके उल्लेख से समुच्चय अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है--शिखरिणी । छन्द का लक्षण—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना. यमनसभला गः शिखरिणी' ॥ २ ॥

वनदेवता—कां पुनरत्रभवतीमवगच्छामि ?

तापसी—आत्रेय्यस्मि ।

वनदेवता—आर्ये आत्रेयि! कुतः पुनरिहागम्यते? किंप्रयोजनो[1] दण्डकारण्योपवनप्रचारः[2] ?

आत्रेयी—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति ।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि ॥ ३ ॥

वनदेवता—यदा तावदन्येऽपि मनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते, तत्कोऽयमार्यायाः प्रवासः ?

आत्रेयी—तत्र[3] महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः ।

शब्दार्थः—अत्रभवतीम्=पूजनीया आपको, अवगच्छामि=समझती हूँ, समझूँ । कुतः=कहाँ से, किंप्रयोजनः=किस प्रयोजनवाला, किसलिये, दण्डकारण्योपवनप्रचारः=दण्डकारण्य के उपवन में भ्रमण ॥

टीका—वनदेवतेति । अत्रभवतीम्=आदरणीयां त्वाम्, अवगच्छामि=जानामि, कोऽसि त्वमिति भावार्थः । कुतः=कस्मात् स्थानात्, किंप्रयोजनः—किं प्रयोजनम्=कारणम् यस्य सः, किंनिमित्तक इत्यर्थः, दण्डकारण्येति—दण्डकारण्यस्य=दण्डकवनस्य उपवने=समीपारण्ये प्रचारः=भ्रमणम् । कस्मादत्र भ्रमसीति प्रश्नाशयः ॥

टिप्पणी—कां पुनरत्र०—संस्कृत में परिचय पूछने का यह एक सभ्य ढङ्ग है ।

प्रचारः—प्र+√चर्+घञ्+विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—अस्मिन्, प्रदेशे, अगस्त्यप्रमुखाः, भूयांसः, उद्गीथविदः, वसन्ति; तेभ्यः, निगमान्तविद्याम्, अधिगन्तुम्, वाल्मीकिपार्श्वात्, इह, पर्यटामि ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—अस्मिन्=इस; प्रदेशे=प्रदेश में, अगस्त्यप्रमुखाः=अगस्त्य आदि, भूयांसः=बहुत से, उद्गीथविदः=प्रणव अथवा सामवेद के एक भाग को जानने वाले, ब्रह्मवेत्ता, वसन्ति=निवास करते हैं, तेभ्यः=उनसे, निगमान्तविद्याम्=वेदान्तविद्या को, अधिगन्तुम्=पढ़ने के लिए, प्राप्त करने के लिए, वाल्मीकिपार्श्वात्=वाल्मीकि के पास से, इह=यहाँ, पर्यटामि=भ्रमण कर रही हूँ, आ रही हूँ ॥ ३ ॥

टीका—आत्रेयीति । स्वागमनप्रयोजनमभिदधाति— अस्मिन्निति । अस्मिन्=एतस्मिन्, प्रदेशे=दण्डकारण्यभागे, अगस्त्यप्रमुखाः—अगस्त्यः=कुम्भजः प्रमुखः=प्रधानः येषु ते, अगस्त्यादय इत्यर्थः, भूयांसः=बहवः, उद्गीथविदः—'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथ-

---

१. प्रयोजनं····रण्यप्रवेशस्य, २. दण्डकारण्यप्रचारः, प्रवेशः । ३. तस्मिन् हि,

वनदेवता—पूजनीया आपको कौन (अर्थात् किस नामवाली) समझूँ ।

तापसी—(मैं) आत्रेयी हूँ ।

वनदेवता—पूज्या आत्रेयी जी, तो कहाँ से (आपका) यहाँ आना हुआ है ? दण्डकारण्य के उपवन में भ्रमण किस प्रयोजन वाला है (अर्थात् किसलिये दण्डकारण्य के उपवनों में आप घूम रही हैं) ?

आत्रेयी—

इस प्रदेश में अगस्त्य आदि बहुत से ब्रह्मवेत्ता निवास करते हैं। उनसे वेदान्त विद्या पढ़ने के लिये वाल्मीकि के पास से यहाँ आ रही हूँ ॥ ३ ॥

वनदेवता--जब कि इस समय (तावत्) दूसरे भी मुनिजन वेदाध्ययन के लिये, निश्चित रूप से, प्राचीन ब्रह्मवेत्ता, प्रचेता के पुत्र (वाल्मीकि) की उपासना करते हैं, तब आपका यह परदेश-निवास क्यों ? (अर्थात् ऐसी अवस्था में फिर आपके परदेश-निवास का क्या कारण है) ?

आत्रेयी—वहाँ अध्ययन में बड़ा विघ्न उहस्थित हो गया था, अतः मैंने यह लम्बा प्रवास स्वीकार किया ।

मुपासीत' । 'ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधानं नेदिष्ठम्' । इति रीत्या परस्मिन् ब्रह्मणि उद्गीथदृष्टिं कुर्वन्तः इति भावः, वसन्ति=निवसन्ति । अतस्तेभ्यः= अगस्त्यप्रमुखेभ्यः, निगमान्तविद्याम्—निगमाः=वेदाः तेषाम् अन्ताः = चरमभागाः उपनिषद इत्यर्थः, तत्प्रतिपादितां विद्याम् = ब्रह्मविद्यामित्यर्थः, अधिगन्तुम् = अध्येतुम्, वाल्मीकिपार्श्वात्=वाल्मीकिसमीपात्, इह=अत्र, पर्यटामि=चरामि । पुरा हि द्विविधाः स्त्रियोऽनुश्रूयन्ते, गृहमेधिन्यो ब्रह्मवादिन्यश्चेति । हारीतो **यमश्च** स्त्रीणामुपनयनादिसंस्काराधिकारं निर्दिशतः । अतो ब्रह्मवादिन्या आत्रेय्याः वेदाध्ययनं न विरुध्यते । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ३ ॥

टिप्पणी उद्गीथविदः–सामवेद का एक भाग उद्गीथ कहा जाता है। यज्ञ में यह भाग उद्गाता के द्वारा गाया जाता है । यद्यपि 'उद्गीथ' शब्द सामवेद के एक भाग के लिए प्रयुक्त होता है, तथापि यहाँ इसका अर्थ सामान्यरूपसे 'सामवेद' भी किया जा सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में 'उद्गीथ' शब्द प्रणव के लिये भी प्रयुक्त किया गया गया है। अतः 'उद्गीथविदः' का अर्थ—प्रणव के प्रतिपाद्य ब्रह्म के ज्ञाता—भी किया जाता है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है- इन्द्रवज्रा । छन्द का लक्षण—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—पुराणब्रह्मवादिनम्—प्राचीन ब्रह्मवेत्ता अथवा सनातन ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मपारायणाय=वेदाध्ययन के लिये, प्रवासः=परदेश में निवास । अध्ययनप्रत्यूहः= अध्ययन में बाधा, दीर्घप्रवासः=बहुत दिनों तक परदेश में निवास, अङ्गीकृतः=

वनदेवता कीदृशः ?

आत्रेयी--तस्य भगवतः केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रकाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रके वयसि वर्तमानं दारकद्वयमुपनीतम् । तत्खलु न केवलं[1] तस्य, अपि तु तिरश्चामप्यन्तःकरणानि तत्त्वान्युपस्नेहयति ।

वनदेवता—अपि तयोर्नाम[2]संज्ञानमस्ति ?

आत्रेयी—तयैव किल देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः ।

वनदेवता--कीदृशः प्रभावः ?

आत्रेयी--तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि [3]जन्मसिद्धानीति ।

वनदेवता—[4]अहो नु भोश्चित्रमेतत् ।

आत्रेयी--तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मतः[5] परिगृह्य पोषितौ रक्षितौ च, निर्वृत्त[6]चौलकर्मणोस्तयोस्त्रयी[7]वर्जमितरास्तिस्रो विद्याः साव-

---

स्वीकार किया गया है। देवताविशेषेण=विशेष देवता के द्वारा, सर्वप्रकाराद्भुतम्=सब तरह से अद्भुत, स्तन्यत्यागमात्रके=माता का दूध छोड़ने मात्र, वयसि=आयु में, दारकद्वयम्=दो शिशु, उपनीतम्=लाये गये, तिरश्चाम्=पक्षियों के ॥

टीका--वनदेवतेति । **पुराणब्रह्मवादिनम्**--पुराणः=अतिप्राचीनः प्राचीनत्वात् प्रथितो विशेषज्ञश्च, यो ब्रह्मणि=वेदान् परमात्मानं वा वदतीति=उपदिशतीति ब्रह्मवादी तं तथोक्तम्, ब्रह्मपारायणाय–ब्रह्मणः=वेदानामित्यर्थः पारणाय=अध्ययनाय, यद्वा ब्रह्मणः=वेदानाम् पारम्=अन्तस्तत्र अयनम्=गमनम् तस्मै, साङ्गान् वेदानध्येतुमित्यर्थः, प्रवासः=सुदूरेप्रदेशे अवस्थानम्, अङ्गीकृतः=स्वीकृतः । देवताविशेषेण=देवताप्रभेदेन, सर्वप्रकाराद्भुतम्—सर्वप्रकारेषु=निखिलविषयेषु अद्भुतम्=आश्चर्यजनकम्, स्तन्यत्यागमात्रके—स्तने=पयोधरे भवम्=जातम् स्तन्यम्=क्षीरम् तस्य त्यागः=परित्यागः, स एव मात्रा=कालपरिमाणम् यस्य तस्मिन्, वयसि=आयुषि, बाल्ये इति यावत्, दारकद्वयम्=बालकद्वयम्, उपनीतम्=आनीय प्रदत्तम्, तिरश्चाम्=पक्षिणाम् । तिरश्चामित्युपलक्षणं सर्वविधप्राणिनामिति ॥

टिप्पणी--**प्राचेतसम्**-वरुण को प्रचेता कहते हैं। वाल्मीकि प्रचेता के बारहवें पुत्र थे। अतः उन्हें प्राचेतसः--कहा जाता है।

प्रवासः--प्र + √वस् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

वर्तमानम्--विद्यमान । √वृत् + शानच् + विभक्तिकार्यम् ॥

शब्दार्थः--अपि=क्या, वाक्य के पहले प्रयुक्त होने पर 'अपि' का अर्थ होता

---

१. न केवलं ऋषीणामपि तु चराचराणां भूतानामन्तराणि, २. संविज्ञानम्, ३. आजन्म०, ४. इति ह भोश्चित्रम्, अति हि भोश्चित्रम् (घनश्यामः), ५. धात्रीकर्म वस्तुतः, धात्रीकर्मवत्सलताम्, ६. वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ, ७. वर्ज्यम् ।

वनदेवता—कैसा (विघ्न) ?

आत्रेयी—उन भगवान् (वाल्मीकि) को किसी विशेष देवता ने सब तरह से अद्भुत, माता का दूध छोड़ने मात्र की आयु में वर्तमान दो बालक ला कर दिया। वे (बालक) केवल उनके ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों के भी हृदयरूपी तत्त्व को स्निग्ध करते हैं।

वनदेवता—क्या उन दोनों के नाम का ज्ञान है ? (अर्थात् क्या उन दोनों के नाम मालूम हैं ?)।

आत्रेयी—ऐसा सुना जाता है कि (किल) उसी देवता के द्वारा इन दोनों का कुश एवं लव यह नाम तथा प्रभाव बतलाया गया है।

वनदेवता—कैसा प्रभाव ?

आत्रेयी—सुना जाता है कि (किल) उन दोनों को प्रयोग एव संहार के मन्त्रों के सहित जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध हैं (अर्थात् जन्म से ही प्राप्त हैं)।

वनदेवता—ओह, यह आश्चर्य है।

आत्रेयी—वे दोनों (बालक) भगवान् वाल्मीकि के द्वारा धात्री (धाई, दाई) का काम करने के लिए स्वीकार करके पाले-पोषे गये तथा संरक्षित किये गये। समाप्त–चूडाकरण–संस्कारवाले उन दोनों को वेदत्रयी को छोड़कर अन्य तीन

है—क्या। नामसंज्ञानम्=नाम का ज्ञान। आख्यातः=बतलाया गया है। सरहस्यानि=प्रयोग एवं संहार के मन्त्रों के सहित या साथ, जृम्भकास्त्राणि=जृम्भक नामक अस्त्र, जन्मसिद्धानि=जन्मसिद्ध हैं, जन्म से ही प्राप्त हैं। चित्रम् = आश्चर्यजनक॥

टीका—वनदेवतेति। अपीति प्रश्ने, नामसंज्ञानम्–नाम्नोः = अभिधानयोः संज्ञानम्=परिचयः। सरहस्यानि–रहस्यैः=प्रयोगसंहारमन्त्रैः सहितानि सरहस्यानि=सोपनिषत्कानि, जृम्भकास्त्राणि–जृम्भयन्ति = जृम्भोपलक्षितनिद्रावेशविवशान् कुर्वन्ति शत्रूनिति तथाभूतानि, जन्मसिद्धानि–जन्मतः = स्वभावतः सिद्धानि = अधिगतानि, आजन्मप्राप्तानीत्यर्थः। चित्रम्=आश्चर्यकरम्।

टिप्पणी—सरहस्यानि—अस्त्रों के प्रयोग (छोड़ने) तथा संहार (वापस बुलानेके) के मन्त्रों को रहस्य कहते हैं।

जृम्भकास्त्राणि—जृम्भक अस्त्रों को छोड़ने पर शत्रु निद्रा के वशीभूत होकर जँभाई लेने लगते हैं॥

शब्दार्थः—धात्रीकर्मतः = धात्री, धाई, दाई (Nurse) का काम करने के लिये, परिगृह्य=स्वीकार करके, निर्वृत्तचौलकर्मणोः=कर दिया गया है चूडाकरण संस्कार जिनका ऐसे, समाप्तचूडाकरण संस्कार वाले, त्रयीवर्जम्=ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा

धानेन परिनिष्ठापिता:। तदनन्तरं [1]भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय[2] त्रयीविद्यामध्यापितौ। न त्वेताभ्यामतिदीप्त[3]प्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति। यतः--

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न[4] तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि[5] पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति, तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्ब[6]ग्राहे मणिर्न [7]मृदादयः ॥ ४ ॥

सामवेद को छोड़कर, परिनिष्ठापिता: = सम्पूर्णरूप से पढ़ा दी गई। क्षात्रेण = क्षत्रियोचित, कल्पेन=विधि से, अतिदीप्तप्रज्ञाभ्याम् = अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले ॥

टीका—आत्रेयीति-इदानीं तयोर्विशदं प्रभावं वक्तुमवतारयति-ताविति। धात्रीकर्मतः-धात्र्याः=उपमातुः कर्मतः = कर्मणे, अत्र चतुर्थ्यर्थे सार्वविभक्तिकस्तसिल्, उपमातृक्रिययेत्यर्थः, परिगृह्य=स्वीकृत्य, अहमनयोरुपमातुः परिचर्याद्यात्मकं कर्म करिष्यामीति स्वीकृत्येत्यर्थः, निवृत्तचौलकर्मणोः-निर्वृत्तम् = समाप्तम् चौलम् = चूडाकरणरूपम् कर्म-संस्कारः ययोस्तयोः, चूडाकरणसंस्कारसंस्कृतयोरित्यर्थः, त्रयीवर्जम्-त्रयीं वर्जयित्वा, त्रयी-ऋग्यजुःसामानि, यद्वा त्रय्याः वर्जः=वर्जनम् यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, परिनिष्ठापिताः=सम्यङ्निस्पादिताः, पाठिता इति यावत्, क्षात्रेण कल्पेन=क्षत्रियाणामुपदिष्टेन विधिना, क्षत्रियोचितविधानेनेत्यर्थः, अतिदीप्तप्रज्ञाभ्याम्-अतिदीप्ता=अतिप्रकाशिता, अतितीक्ष्णेति यावत्, प्रज्ञा=बुद्धिः, सदसद्विवेकिनी बुद्धिः प्रज्ञेत्युच्यते, ययोस्ताभ्याम्, अतिशीघ्रं तत्त्वार्थविबोधकुशलाभ्यामित्यर्थः ॥

टिप्पणी--धात्रीकर्मतः-दाई दूसरे के बच्चों को खिलाती-पिलाती तथा अति सावधानी से पालती-पोषती है। लव-कुश की दाई का काम स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने सँभाला है।

परिगृह्य—परि + √गृह् + ल्यप् + विभक्तिकार्यम्।

निर्वृत्त०—निर् + √वृत् + क्त + समासकार्यादिकम्। चौल को ही चूडाकर्म तथा मुण्डन कहा जाता है। मनु के अनुसार यह संस्कार प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में होना चाहिये। परिनिष्ठापिताः—परि + नि + √स्था + णिच् + क्त + टाप् + प्र० बहु० ॥

अन्वयः--गुरुः, यथा, प्राज्ञे, तथा, एव, जडे, विद्याम्, वितरति, तयोः, ज्ञाने, न तु, शक्तिम्, करोति, वा, (न), अपहन्ति, पुनः, फलम्, प्रति, भूयान्, भेदः,

---

१. गर्भैकादशे, २. 'गुरुणा' इत्यधिकः पाठः, ३. अतिदीप्तिप्रज्ञाभ्याम्, प्रज्ञामेधाभ्याम् ४. च, ५. च, ६ बिम्बोद्ग्राहे, ७. मृदां चयः,

(आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति) विद्याएँ सावधानीपूर्वक (उनके द्वारा) सम्पूर्णरूप से पढ़ा दी गईं। उसके बाद (उन्हें) भगवान् (वाल्मीकि) के द्वारा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियोचित विधि से यज्ञोपनयन संस्कार करके वेद-विद्या पढ़ाई गई। अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धि वाले इन दोनोंके साथ हम लोगों का पढ़ पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि--

आचार्य जिस प्रकार बुद्धिमान् (शिष्य) को, उसी प्रकार मन्द-बुद्धि (शिष्य) को विद्या प्रदान करता है। (वह) उन दोनों के ज्ञान में न तो शक्ति पैदा करता है (अर्थात् न तो शक्ति बढ़ाता है) अथवा न विनष्ट ही करता है। किन्तु (विद्या के) फल में बहुत अधिक अन्तर होता ही है, जैसे निर्मल मणि परछाईं (बिम्ब) ग्रहण करने में समर्थ होता है। (उस तरह) मिट्टी आदि नहीं समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

भवति हि, तत्, यथा, शुचिः, मणिः, बिम्बग्राहे, प्रभवति, (तथा), मृदादयः, न, (प्रभवन्ति) ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—गुरुः=आचार्य, यथा=जिस प्रकार, जैसे, प्राज्ञे=बुद्धिमान् (शिष्य) में (अर्थात् बुद्धिमान् शिष्य को), तथा=उसी प्रकार, एव=ही, जडे=मन्द-बुद्धि (शिष्य) में (अर्थात् मन्द-बुद्धि शिष्य को), विद्याम्=विद्या को, वितरति=प्रदान करता है, देता है; तयोः=उन दोनों के, ज्ञाने=ज्ञान में, न तु=न तो, शक्तिम्=शक्ति को, सामर्थ्य को, करोति=करता है, पैदा करता है, वा=अथवा, (न=न), अपहन्ति=विनष्ट करता है, पुनः=किन्तु, फलं प्रति=फल के प्रति, फल में, भूयान्=बहुत अधिक, भेदः=अन्तर, भवति हि=होता ही है, तत्=वह, यथा=जैसे, शुचिः=निर्मल, मणिः=मणि, बिम्बग्राहे=परछाईं (बिम्ब) को ग्रहण करने में, प्रभवति=समर्थ होता है, (तथा=उस तरह), मृदादयः=मिट्टी आदि, न=नहीं, (प्रभवन्ति=समर्थ होते हैं) ॥ ४ ॥

टीका--बालकाभ्यां सहाध्ययनस्यानुपपत्तिं साधयति—**वितरतीति**। गुरुः=अध्यापकः, यथा=येन प्रकारेण, प्राज्ञे=बुद्धिशालिनि, तथा=तेनैव प्रकारेण, एव=खलु, एवेति दाढर्चे, जडे=मन्दबुद्धौ शिष्ये, विद्याम्=ज्ञानम्, वितरति=ददाति। विद्या-वितरणे गुरुः शिष्येषु न कञ्चिद्भेदमाश्रयत इति भावः। तयोः=प्राज्ञजडयोः ज्ञाने=शास्त्रार्थबोधे, न तु=न च, शक्तिम्=सामर्थ्यम्, अवबोधसामर्थ्यमित्यर्थः, वेति विकल्पे, न अपहन्ति=न विनाशयति, प्राज्ञस्य न तु बुद्धिं वर्धयति न च मन्दबुद्धिं विनाशयति, पुनः=किन्तु, फलं प्रति=परिणामं प्रति, शास्त्रार्थतत्त्वावबोधरूपं फलं प्रतीति, भूयान्=महान्, भेदः=अन्तरम्, विशेष इत्यर्थः, भवति=जायते, हीति दाढर्चे निश्चये

वनदेवता--[१]अयमध्ययनप्रत्यूहः ?

आत्रेयी---अन्यश्च ।

वनदेवता--अथापरः कः ?

आत्रेयी--अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा [२]माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः । तत्र युग्मचारिणोः क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन विध्यमानं[३] ददर्श । आकस्मिकप्रत्ययवभासां देवीं वाचमा[४]नुष्टुभेन छन्दसा परिणता[५]मभ्युदैरयत् ।

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ ५ ॥

वाक्यालङ्कारे वा, तत्=भेदश्रवनम्, यथा=येन प्रकारेण, शुचिः=निर्मलः, मणिः=हीरकादिः, बिम्बग्राहे–बिम्बस्य=प्रतिबिम्बस्य ('बिम्बं तु प्रतिबिम्बे स्यान्मण्डले बिम्बिकाफले' इति हैमः) ग्राहे=ग्रहणे, प्रभवति=समर्थो भवति, (तथा=तेन प्रकारेण), मृदादयः=मृत्तिकाप्रभृतयः, न=न प्रभवन्तीति वाक्यशेषः । अतोऽत्र नायं गुरोः किन्त्वस्माकमेव दोषः । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा, यथासंख्यमुपमा चालङ्काराः । हरिणी छन्दः ॥ ४ ॥

टिप्पणी--इस श्लोक का भाव यह है कि अध्यापक एक ही क्लास में समान भाव से सभी विद्यार्थियों को पढ़ाता है । किन्तु उनमें कुछ तो अति शीघ्र विषय को समझ कर धारण कर लेते हैं और कुछ बार-बार समझाने पर भी ठीक से नहीं समझ पाते हैं । तेज विद्यार्थी को शीघ्र धारण करवा देने में तथा मन्द को न समझने में अध्यापक का कोई पक्षपात नहीं है । इसी भाव के कुछ अन्य श्लोक भी हैं—

क—क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (रघु० ३–२९); ख–चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः । न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ॥ (मुद्रा० १–३) ।

यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा, यथासंख्य तथा उपमा अलङ्कार हैं । श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है–हरिणी । छन्द का लक्षण—

"नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—अध्ययनप्रत्यूहः=अध्ययन में विघ्न । माध्यन्दिनसवनाय=मध्याह्नकालीन स्नान के लिए, अनुप्रपन्नः=पहुँचे, गये, युग्मचारिणोः=जोड़े में विचरण करने वाले, व्याधेन=व्याध के द्वारा, बहेलिया के द्वारा, विध्यमानम्=बींधे जाते हुए । आकस्मिकप्रत्यवभासाम्=अकस्मात् स्फुरित (आविर्भूत), परिणताम्=परिवर्तित हुई ॥

---

१. अयमसौ, २. मध्यंदिनसमये—सवने, अथ श्रूयताम् । एकदा तमसामनुप्रपन्नो भगवान् प्राचेतसस्तत्र युग्म०, ३, वध्यमानम्, ४. 'अव्यतिकीर्णा' इत्यधिकः, ५. परिच्छिन्नाम् ।

वनदेवता—यह अध्ययन में विघ्न है ?

आत्रेयी—दूसरा भी (है)।

वनदेवता—अच्छा, दूसरा क्या (है) ?

आत्रेयी—पत्पश्चात् एक समय वे ब्रह्मर्षि मध्याह्नकालीन स्नान के लिये तमसा नदी पर पहुँचे। वहाँ (उन्होंने) साथ-साथ विचरण करने वाले दो क्रौञ्च (नर और मादा) पक्षियों में एक (नर क्रौञ्च) को बहेलिया के द्वारा बींधे जाते हुए देखा। (तब उन्होने) अकस्मात् स्फुरित (आविर्भूत) तथा अनुष्टुप् छन्द में परिणत दिव्य वाणी का उच्चारण किया।

हे व्याध, तूँ निरन्तर बहुत वर्षों तक शान्ति को मत प्राप्त होओ (अर्थात् शान्ति का अनुभव न करो), क्योंकि (तूने) क्रौंच पक्षियों के जोड़े में काम से मोहित एक (नर) को मारा है ॥ ५ ॥

टीका--वनदेवतेति। अध्ययनप्रत्यूहः–अध्ययने = पठने प्रत्यूहः=विघ्नः, ('विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूह' इत्यमरः)। माध्यन्दिनसवनाय=मध्याह्नस्नानाय, सवनम्=स्नानम्, अनुप्रपन्नः=प्राप्तः, स्नातुं गत इत्यर्थः, युग्मचारिणोः–युग्मं=मिथुनं चारिणौ तयोः, मिथुनभावेन स्थितयोरित्यर्थः, व्याधेन=पुलिन्देन, विध्यमानम्=बाणेन निहन्यमानम्। आकस्मिकप्रत्यवभासाम्–आकस्मिकः – अकस्मात् सम्पद्यमानः प्रत्यवभासः=प्रकाशो यस्यास्तां तथोक्ताम्, परिणताम्=जातपरिणामाम् ॥

टिप्पणी—ब्रह्मर्षिः—जब ब्राह्मण ऋषि बन जाता है, तब उसे ब्रह्मर्षि कहते हैं। इसी तरह ऋषि हुए क्षत्रिय को राजर्षि की संज्ञा दी जाती है।

अनुप्रपन्नः—अनु + प्र + √पद् + क्त + विभक्तिकार्यम्।

विध्यमानम्—√व्यध् + शानच् + विभक्त्यादिकार्यम्।

आनुष्टुभेन··· परिणताम्--रामायण के अनुसार व्याध के द्वारा कामार्त क्रौंच को बाण से बींधा गया देख कर वाल्मीकि का हृदय करुणा से भर गया। अकस्मात् उनके मुख से अग्रिम श्लोक निकल पड़ा ॥

अन्वयः--हे निषाद, त्वम्, शाश्वतीः, समाः, प्रतिष्ठाम्, मा आगमः, यत्, क्रौञ्चमिथुनात्, काममोहितम्, एकम्, अवधीः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः--हे निषाद=हे व्याध, त्वम्=तुम, तू, शाश्वतीः=निरन्तर, बहुत, समाः=वर्ष, वर्षों तक, प्रतिष्ठाम्=स्थिति को, आश्रय को, शान्ति को, मा अगमः=मत प्राप्त होओ, यत्=क्योंकि, जो कि, क्रौञ्चमिथुनात्=क्रौंच (पक्षियों) के जोड़े से, काममोहितम्=काम से मोहित, एकम्=एक को, अवधीः=मारा है ॥ ५ ॥

टीका--मा निषादेति। हे निषाद–निषीदन्ति=स्थीयन्ते अस्मिन् पापानीति निषादस्तत्सम्बुद्धौ हे निषाद=हे व्याध, निषाद इत्ययं शब्दो योगार्थे प्रयुक्तः, त्वं

वनदेवता—चित्रम् ? आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः ।

आत्रेयी—तेन[१] हि पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दप्रकाशमृषिमुपसंगम्य भगवान् भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत्—'ऋषे ! प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि । तद् ब्रूहि रामचरितम् । अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः[२] प्रतिभातु । आद्यः कविरसि' इत्युक्त्वान्तर्हितः । अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय ।

शाश्वतीः=सनातनीः, निरन्तराः बह्वीरिति भावः, समाः=वर्षाणि, चिरकालमिति भावः, 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया प्रतिष्ठाम्=स्थितिमाश्रयमित्यर्थः, शान्तिमिति यावत्, मा अगमः=न प्राप्नुहि, चिरकालपर्यन्तं त्वं सुखं न लभस्वेत्यर्थः, 'माङि लुङ्' इत्यनेन माङि उपपदे लुङ्, न माङ्योगे' इत्यडागमनिषेधाभावस्त्वार्षः; कविवैदुष्यरक्षणार्थं भवभूतिभावतलस्पर्शिन्यां 'त्वगम' इत्यत्र 'तु अम गम, इति पदत्रैविध्यं स्वीकृत्य नास्ति मा लक्ष्मीर्यस्य तत्सम्बोधने हे अम=हे अलक्ष्मीक, निषाद, त्वं प्रतिष्ठां तु मा गम, इति व्याख्यातं, तत्तु क्लिष्टत्वादुपेक्षितम्; यत्=यतो हि, क्रौञ्चमिथुनात्=क्रौञ्चयुगलात्, काममोहितम् कामेन मोहितम्=कामासक्तचेतसम्, एकम्=रममाणमेकं क्रौञ्चमित्यर्थः, अवधीः=हतवानसि । अत्र श्लेषोऽलङ्कार अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५ ॥

श्रीविद्यासागरभट्टाचार्येण श्लोकोऽयमित्थमपि व्याख्यातोऽस्ति—'यद्वा,–श्लोकोऽयं रामायणस्य बीजभूतत्वेन व्याख्यायते । तथा हि,—मा लक्ष्मीः निषीदति अस्मिन्निति घञ् । मानिषाद ! लक्ष्मीपते ! राम ! भगवतः रामस्य विष्णोरंशभूतत्वात् सीतायाश्च लक्ष्मीरूपत्वादिति भावः । यत् यस्मात् त्वं क्रौञ्चमिथुनात् मन्दोदरीरावणरूपात् राक्षसद्वन्द्वात् काममोहितम् एकं रावणम् अवधीः हतवानसि, तस्मात् शाश्वतीः समाः वत्सरान् यावत्संसारमितिभावः, प्रतिष्ठां नित्यसुखाभिव्यक्तिसममखण्डानन्दमित्यर्थः, अगमः=लभस्व । ['भाव्यार्थीभूतवदङ्गीक्रियते' इति न्यायात् प्रार्थनायां लुङ्] । अथवा—हे अनिषाद ! निषादसदृश ! (सादृश्यार्थे नञ्, वनवासित्वात् निषादबन्धुत्वाच्च रामस्य निषादतुल्यता) । क्रौञ्चमिथुनात् इति सङ्केतेन तारावालिनोः सूचना । भ्रातृपत्न्यां रुमायां रममाणत्वात् तस्य काममोहितत्वं वेदितव्यम् । अपरञ्च–नितरां सादयति ध्वंसयति लोकानिति निषादः रावणः तत्सम्बुद्धौ, हे निषाद ! रावण ! यत् यस्मात् त्वं क्रौञ्चमिथुनात् अल्पीभावार्थात् क्रुञ्चतेः पचाद्यचि क्रुञ्चः ततः स्वार्थे अण्-प्रत्ययेन क्रौञ्चः इति सिद्धः, तयोर्मिथुनं तस्मात् राज्यक्षयवनवासादिदुःखेन परं कार्श्यं गतात् स्त्रीपुंसयुगलात् सीतारामरूपादित्यर्थः, एकं काममोहितं पतिरतं स्त्रीजनं सीतामित्यर्थः, अवधीः हरणादिना

---

१. खलु, २. प्रातिभं चक्षुः, प्रतिभाचक्षुः ते चक्षुः, प्रतिभातु ।

वनदेवता—आश्चर्य है, वेद से अन्यत्र छन्दों का नूतन आविर्भाव हो गया।

आत्रेयी—तब उस समय, आविर्भूत हो गया है शब्दरूप ब्रह्म का प्रकाश जिसे ऐसे उस भगवान् (वाल्कीकि) ऋषि के पास आकर प्राणियों को उत्पन्न तथा पालन करने वाले कमल-योनि (ब्रह्मा) बोले—'हे ऋषि, तुम शब्दरूप ब्रह्म के विषय में ज्ञानवान् हो गये हो। अतः राम के चरित को कहो (अर्थात् रामचरित का वर्णन करो)। आर्ष (ऋषि सम्बन्धी) तुम्हारी दृष्टि अप्रतिहत प्रकाशवाली होकर चमके। 'तुम आदि कवि हो, ऐसा कह कर (वे) अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर उन भगवान् प्रचेता-पुत्र (वाल्मीकि) ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्दरूप ब्रह्म के अपूर्व रूपान्तर रामायण (नामक) इतिहास (ग्रन्थ) की रचना की।

बधतुल्यमतिघोरदुःखं प्रापितवानसि, तस्मात् त्वं शाश्वतीः समाः प्रतिष्ठां स्वस्त्रीसाहित्येनेहलोकस्थितिमित्यर्थः, मा अगमः न प्राप्नुहि, अचिरेण स्त्रिया वियुज्य म्रियस्वेति काव्यार्थः सूचितः। यथा रामस्त्वया सीताविरहितः कृतः, सा च सती रामविना कृता, तथा त्वमपि स्वभार्य्यया विरहितो भव, सा च त्वया विरहिता चिरं वियोगशोकार्त्ता भूयादिति तु निर्गलितार्थः ॥ ५ ॥

टिप्पणी--मा अगमः-यहाँ माङ् होने के कारण अट् का आगम नहीं होना चाहिये।

मा निषाद—विद्वान् व्याख्याकारों ने इस श्लोक का तीन अर्थ किया है—१. निषाद के पक्ष में, २. राम के पक्ष में, ३. रावण के पक्ष में। १—राम के पक्ष में इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की जाती है—

हे **मानिषाद**—मा=लक्ष्मी, निषीदत्यस्मिन्निति मानिषादः=लक्ष्मीपती रामस्तत्सम्बुद्धौ, अर्थात् हे सीता रूप लक्ष्मी के निवास राम तुम सदा प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ, क्योंकि तुमने क्रौञ्च (कुटिल, दुःखदायी रावण) के जोड़े में से काम-मुग्ध रावण का वध किया है। २--रावण के पक्ष में इसकी व्याख्या इस प्रकार की जाती है--हे निषाद-नितरां सादयति=पीडयति लोकानिति निषादः=रावणस्तत्सम्बुद्धौ हे निषाद=हे रावण, अर्थात् 'हे दुःखदायी रावण, तुम कभी भी प्रतिष्ठा को प्राप्त मत होओ। क्योंकि तूने क्रौञ्च (दुःख से पीड़ित तथा कृश राम) के जोड़े में से काम-मोहित एक (सीता) को दुःख दिया है। ३--निषाद के पक्ष का अर्थ ही यथार्थ तथा कवि को अभिप्रेत प्रतीत होता है। अन्य दो अर्थ खींच-तान कर निकाले जाते हैं। यही अर्थ ऊपर टीका आदि में किया गया है।

यहाँ **श्लेष अलङ्कार** तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ ५ ॥

शब्दार्थः--चित्रम्=आश्चर्य है, अम्नायात्=वेद से, अवतारः=आविर्भाव। **समयेन**=समय से, आविर्भूतशब्दप्रकाशम्—आविर्भूत हो गया है शब्दरूप **ब्रह्म का**

वनदेवता--हन्त ! पण्डितः[१] संसारः ।

आत्रेयी--[२]तस्मादेव हि ब्रवीमि 'तत्र महानध्ययनप्रत्यूह' इति ।

वनदेवता—युज्यते ।

आत्रेयी--विश्रान्तास्मि भद्रे ! संप्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानं ब्रूहि ।

वनदेवता--इतः पञ्चवटीमनुप्रविश्य गम्यतामनेन गोदावरीतीरेण ।

आत्रेयी--(सास्रम्[३] ।) अप्येतत्तपोवनम् ? अप्येषा पञ्चवटी ? अपि सरिदियं गोदावरी ? अप्ययं गिरिः प्रस्रवणः ? अपि जनस्थान-वनदेवता त्वं वासन्ती ?

वनदेवता--तथैव[४] तत्सर्वम् ।

आत्रेयी--हा वत्से जानकि !

प्रकाश जिसे, ऐसे, भूतभावनः=प्राणियों को उत्पन्न तथा पालन करने वाले, पद्मयोनिः=कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) ने, प्रबुद्धः ज्ञानवान्, वागात्मनि=वाक्स्वरूप, शब्दरूप । अव्याहतज्योतिः = अप्रतिहत प्रकाशवाली, आर्षम् = ऋषिसम्बन्धी, योगजन्य । अन्तर्हितः=अन्तर्धान हो गये । प्राचेतसः=प्रचेता के पुत्र वाल्मीकि ने, विवर्तम्=रूपांन्तर, परिणाम ।।

टीका--**वनदेवतेति** । चित्रम् = आश्चर्यम्, आम्नायात्–आम्नायते=आचार्य-परम्पराक्रमेण अधिगत्य यथाविधि अभ्यस्यते इत्याम्नायो वेदस्तस्मात्, अवतारः=आविर्भावः । समयेन=कालेन, तस्मिन्नेव काले इत्यर्थः, आविर्भूतशब्दप्रकाशम्–आविर्भूतः=प्रकाशितः, जनुष्टुप्छन्दोरूपेण "मा निषाद" इत्यादिरूपाम्नायकल्पस्य उदय इत्यर्थः, शब्दस्य=वाग्ब्रह्मणः प्रकाशः=ज्योतिर्यस्य तम् । भूतभावनः–भूतानि=प्राणिनः भावयति=सृजतीति भूतभावनः=सृष्टिकर्ता, पद्मयोनिः—पद्मम्=विष्णुनाभि-कमलम् योनिः=उत्पत्तिस्थानम् यस्य स तादृशः । प्रबुद्धः=प्रकृष्टज्ञानसम्पन्नः, वागात्मनि=शब्दस्वरूपे । अव्याहतज्योतिः—अव्याहतम्=अप्रतिहतम् ज्योतिः=प्रकाशो यस्य तत्, अकुण्ठितमित्यर्थः, आर्षम् = ऋषीणामिदमार्षम्=ऋषिसम्बन्धि, योगजमिति भावः । अन्तर्हितः=अदृश्यतां गतः । प्राचेतसः=वाल्मीकिः, विवर्तम् = रूपान्तरम्, परिणाममित्यर्थः ।।

टिप्पणी--**आम्नायात्……अवतारः**—वेदों में गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती आदि छन्दों के समान अनुष्टुप् का प्रयोग भी है । किन्तु वैदिक अनुष्टुप् में लघु-गुरु का क्रम नियत नहीं है । यह क्रम सर्वप्रथम वाल्मीकि के रामायण में ही मिलता है । उसके बाद ही लौकिक काव्यों में यह क्रम-बद्ध छन्द मिलता है ।

---

१. तर्हि मण्डितः, २. तस्मादवोचं तत्र हि, तस्मादिवोचं तदनुरोधान्नस्तत्र हि, ३. सवाष्पम्, ४. अस्त्येतत्सर्वं ।

वनदेवता--ओह, (तब तो सारा) संसार पण्डित (हो जायगा)।

आत्रेयी--यही कारण है कि मैं कह रही हूँ--'वहाँ अध्ययन में महान् विघ्न है।'

वनदेवता--ठीक है।

आत्रेयी--भली (महिला), मैं विश्राम कर चुकी। अब अगस्त्य (ऋषि) के आश्रम को (जाने वाले) मार्ग को बतलाओ।

वनदेवता--यहाँ से पञ्चवटी में प्रवेश करके गोदावरी के इस किनारे से चली जाइए।

आत्रेयी--(आँसू भर कर) क्या यह तपोवन है? क्या यह पञ्चवटी है? क्या यह गोदावरी नदी है? क्या आप जनस्थान की देवता वासन्ती हैं?

वनदेवता--वैसा ही यह सब है (जैसा कि आप पूछ रही हैं)।

आत्रेयी--हाय बेटी जानकी!

उपसंगम्य-उप + सम् + √गम् + ल्यप्।

वागात्मनि ब्रह्मणि--वचनरूपी ब्रह्म के विषय में, शब्द-ब्रह्म में। वैयाकरणों के अनुसार शब्द अविनाशी है। वे शब्द को ब्रह्म मानते हैं। 'वाक्यपदीय' में शब्द-ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार है--

"अनादिनिधनं ब्रह्म, शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन, प्रक्रिया जगतो यतः ॥ (१।१)

आर्षम्--ऋषिसम्बन्धी। ऋषेः इदम्, ऋषि + अण् + विभक्तिकार्यम्।

आद्यः कविः--वाल्मीकि को आदि कवि तथा 'रामायण' को आदिकाव्य कहा जाता है॥

विवर्तम्--विवर्त कहते हैं परिणाम को। 'विवर्त' एवं 'विकार' वेदान्त के पारिभाषिक शब्द हैं। किसी वस्तु के अतात्त्विक=अवास्तविक रूपान्तर को विवर्त कहते हैं। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि अँधेरे में रस्सी में प्रतीत होने वाला साँप रस्सी का विवर्त है, क्योंकि रस्सी सचमुच साँप नहीं हो जाती है। किन्तु वास्तविक रूपान्तर को विकार कहते हैं। जैसे दधि दूध का विकार है, क्योंकि दूध सचमुच दही के रूप में परिवर्तित हो जाता है। विशेष जानकारी के लिए देखिये डॉ रमाशङ्कर त्रिपाठी के द्वारा व्याख्यात एवं सम्पादित वेदान्तसार।

शब्दार्थः--हन्त = ओह, यह यहाँ विषाद का सूचक अव्यय है। अध्ययन-प्रत्यूहः=अध्ययन में विघ्न। इतः=इधर से, यहाँ से। तथा=वैसा, एव=ही॥

टीका--वनदेवतेति। अनुप्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा। सास्रम्-अस्रेण = अश्रुणा सहितं यथा तथा। अत्र सर्वत्रैव अपि प्रश्नार्थबोधकमव्ययम्॥

स एष ते वल्लभबन्धु[१]वर्गः प्रासङ्गिकीनां विषयः कथानाम् ।
त्वां नामशेषामपि दृश्यमानः प्रत्यक्षदृष्टा[२]मिव नः करोति ॥ ६ ॥

वासन्ती—(सभयम् । स्वगतम्) कथं नामशेषामित्याह ? (प्रकाशम्) आर्ये किमत्याहितं सीतादेव्याः ?

आत्रेयी—न केवलमत्याहितम्, सापवादमपि । (कर्णे) एवमिति[३] ।

वासन्ती—हा[४] ! दारुणो दैवनिर्घातः । (इति मूर्च्छति) ।

आत्रेयी—भद्रे ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

वासन्ती—हा प्रियसखि ![५] ईदृशस्ते निर्माणभागः । हा रामभद्र ! अथवा अलं त्वया । आर्ये[६] आत्रेयि ! अथ तस्मादरण्यात्परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतायाः[७] किं वृत्तमिति काचिदस्ति[८] प्रवृत्तिः ?

अन्वयः—प्रासङ्गिकीनाम्, कथानाम्, विषयः, दृश्यमानः, सः, एषः, वल्लभबन्धुवर्गः, नामशेषाम्, अपि, त्वाम्, नः, प्रत्यक्षदृष्टाम्, इव, करोति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—प्रासङ्गिकीनाम्=प्रासङ्गिक, कथानाम्=कथाओं का, विषयः=विषय, दृश्यमानः=सामने स्थित, सः=वही, एषः=यह, ते=तुम्हारा, बल्लभबन्धुवर्गः=प्रिय बन्धुवर्ग, नामशेषाम्=केवल नाम भर से अवशिष्ट, अपि=भी, त्वाम्=तुमको, नः=हमारे, प्रत्यक्षदृष्टाम्=प्रत्यक्ष दीखती हुई, इव=सी, जैसी, करोति=कर रहा है ॥ ६ ॥

टीका—स इति । प्रासङ्गिकीनाम्—प्रसङ्गात्=वार्ताक्रमात् आगताः=प्राप्ता इति प्रासङ्गिक्यः=अवसरागताः तासाम्, कथानाम् = वार्तानाम्, विषयः=प्रतिपाद्यः, दृश्यमानः=प्रत्यक्षविषयीभूतः, सः=पूर्वपरिचित इत्यर्थः, एषः=अयम्, ते=तव, वल्लभबन्धुवर्गः—वल्लभः=प्रियः स चासौ वन्धुवर्गः=वासन्तीप्रमुखः सुहृद्वर्गः, नामशेषाम्—नाम=अभिधानमेव शेषः=अवशेषः यस्याः सा ताम्, नाम्नैवावशिष्टां न तु शरीरेणेति यावत्, अपि=च, त्वाम्=सीतामित्यर्थः, नः=अस्माकम्, प्रत्यक्षदृष्टाम्—प्रत्यक्षम्=समक्षम् दृष्टाम्=अवलोकिताम्, इव=यथा, करोति=विदधाति । एकसम्वन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारकमिति न्यायात् पूर्वं जानकीनिवासकृतार्थं जनस्थानं तत्सम्बद्धं गोदावरीप्रभृतिश्च विलोक्य स्नेहातिशयात् जानकीं प्रत्यक्षदृष्टामिवानुभवतीति । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ६ ॥

टिप्पणी—नामशेषाम् । कवि ने यहाँ इस शब्द का साभिप्राय प्रयोग किया है । इससे सीता के निर्वासन की सूचना मिलती है। संभवतः आत्रेयी सीता के परित्याग के बाद उन्हें मृत समझ रही है ।

---

१. शाखिवर्गः, २. दृश्याम्, ३. एवमेवम्, ४. अहह, ५. हा महाभागे, ६. एतन्नास्ति क्वचित्, ७. सीतादेव्याः, ८. आसीत् ।

प्रासङ्गिक कथाओं का विषय, सामने स्थित, वही यह तुम्हारा प्रिय बन्धुवर्ग, केवल नामभर से अवशिष्ट भी तुमको हमारे सामने दीखती हुई-सी कर रहा है। (अर्थात् तुम्हारे प्रिय इन व्यक्तियों तथा स्थानों को देखकर लगता है तुम्हें देख रही हूँ) ॥ ६ ॥

वासन्ती--(भय के साथ अपने आप) क्या (सीता को) 'नाममात्र' से ही शेष बतला रही है ? (प्रकट रूप से), आर्ये, सीता देवी का क्या प्राणसङ्कट हुआ ? (अर्थात् क्या सीता देवी मर गईं ?)

आत्रेयी—केवल प्राण-सङ्कट ही नहीं, बल्कि (वह प्राण-सङ्कट) लाञ्छन के साथ भी (हुआ है)। (कान में) इस प्रकार (अर्थात् बात यह है)।

वासन्ती--हाय ! विधि का भीषण (वज्र) प्रहार हुआ है। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

आत्रेयी—भलीमानस, धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें।

वासन्ती—हाय प्रिय सखी (सीता), तुम्हारी उत्पत्ति का परिणाम ऐसा हुआ ! (अर्थात् तुम्हारे जीवन का अन्त ऐसा हुआ !) हाय रामभद्र, अथवा तुमसे क्या ! (अर्थात् तुम्हें कुछ कहना निरर्थक है)। आर्ये आत्रेयी, अच्छा, सीता को छोड़कर उस वन से लक्ष्मण के लौट आने पर सीता का क्या हाल हुआ, इसका कोई समाचार (ज्ञात हुआ) है ?

इस श्लोक में दर्शन-क्रिया की उत्प्रेक्षा होने से क्रियोत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है--उपजाति। छन्द का लक्षण--

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः,
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ,
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—अत्याहितम्=महाभय, प्राणसङ्कट। सापवादम्=लाञ्छन के साथ। दारुणः=भीषण, कठोर, दैवनिर्घातः=विधिका प्रहार। निर्माणभागः=उत्पत्ति का परिणाम, जीवन का अन्त, वृत्तम्=घटित हुआ, हाल हुआ, प्रवृत्तिः=समाचार, वृत्तान्त ॥

टीका—वासन्तीति—अत्याहितम्=महाभीतिः, प्राणहानिरिति भावार्थः, ('अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवानपेक्षि च' इत्यमरः)। सापवादम्--अपवादेन=लाञ्छनेन सहितं सापवादम्, अत्याहितन्तु जातमेव, परन्तु अपवादसहितं तदुदीयमानमभूतित्यभिप्रायः। दारुणः=भीषणः, दैवनिर्घातः--दैवस्य=भाग्यस्य निर्घातः=प्रहारः, निर्माणभागः--निर्माणस्य=सृष्टेः भागः=अंशः, फलमिति यावत्, वृत्तम्=निष्पन्नम्, घटितम्, प्रवृत्तिः=वार्ता, समाचारः, तद्विषयिणी कापि कथेत्यर्थः ॥

आत्रेयी—नहि नहि ।

वासन्ती—कष्टम् । [१]आर्यारुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु नः[२] कुलेषु जीवन्तीषु च वृद्धासु राज्ञीषु कथमिदं जातम् ?

आत्रेयी—ऋष्यशृङ्गसत्रे[३] गुरुजनस्तदाऽऽसीत् । संप्रति तु परिसमाप्तं तद्द्वादशवार्षिकं[४] सत्रम् । ऋष्यशृङ्गेण च संपूज्य विसर्जिता गुरवः । ततो भगवत्यरुन्धती 'नाहं वधूविरहितामयोध्यां गमीष्या[५]मी'त्याह । तदेव राममातृभिरनुमोदितम् । तदनुरोधाद्भगवतो वसिष्ठस्यापि[६] श्रद्धा वाल्मीकिवनं गत्वा वत्स्याम' इति ।

वासन्ती—अथ स रामभद्रः[७] किमाचारः[८] ?

आत्रेयी—तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः[९] प्रक्रान्तः ।

वासन्ती—अहह[१०] धिक् । परिणीतमपि ?

आत्रेयी—शान्तम्[११] ! नहि नहि ।

वासन्ती—का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी ?

आत्रेयी—हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिर्गृहिणीकृता[१२] ।

टिप्पणी वासन्तीति—कवि ने अभी तक वनदेवता शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु सम्प्रति आत्रेयी तथा वनदेवता की बातचीत से यह ज्ञात हो गया है कि वनदेवता का नाम वासन्ती है । अतः यहाँ से 'वनदेवता' शब्द के स्थान पर 'वासन्ती' शब्द का प्रयोग हुआ है । **एवमिति**—आत्रेयी वासन्ती के कान में धीरे से कह रही है कि राम ने लोक-लाञ्छन के कारण सीता का परित्याग कर दिया है । लोगों में यह कानाफूसी चल रही है कि—यतः सीता एक लम्बे समय तक रावण के पास थी । अतः उसने सीता के साथ अवश्य गड़बड़ की होगी । किन्तु फिर भी राम सीता को रख लिये हैं ।'

निर्घातः—निर् + √हन् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

परित्यज्य –छोड़कर । परि + √त्यज् + ल्यप् ।

वृत्तम्—√वृत् + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

शब्दार्थः—जीवन्तीषु=जीवित रहते हुए । सत्रम्=यज्ञ । विसर्जिताः=विदा कर दिये गये ।। श्रद्धा=अभिलाषा ।।

---

१ एतन्नास्ति क्वचित्, २. रघुकदम्बेषु, रघुकुलक०, रघुकुटुम्बकेषु, अधिष्ठिते, रघुकुले, ३. ऋष्यशृङ्गाश्रमे, ४. क्वचिदेतन्नास्ति, ५. गच्छामीति, ६. वसिष्ठस्य परिशुद्धा वाचो वाल्मीकितपोवनं गत्वा तत्र, ७. राजा, ८. किमारम्भः, ९. क्रतुरश्वमेधः, १०. हा, ११. शान्तं पापम्, १२. एतत् क्वचिन्नास्ति ।

आत्रेयी—नहीं, नहीं।

वासन्ती—बड़ा दुःख है। (परन्तु) पूज्य अरुन्धती तथा वसिष्ठ के द्वारा सञ्चालित हमारे कुल (रघुकुल) में वृद्ध (कौसल्या आदि) महारानियों के जीवित रहते हुए यह (अनर्थ) कैसे हुआ ?

आत्रेयी—उस समय (अरुन्धती, वसिष्ठ आदि) गुरुजन ऋष्यश्रृङ्ग के यज्ञ में थे। बारह वर्ष तक चलनेवाला वह यज्ञ अब समाप्त हो गया है, और ऋष्यश्रृङ्ग के द्वारा सत्कार करके गुरुजन विदा भी कर दिये गये। तब भगवती अरुन्धती ने कहा—'मैं वधू (सीता) से रहित अयोध्या में नहीं जाऊँगी।' राम की माताओं ने भी उसी (बात) का समर्थन किया। उनके अनुरोध से भगवान् वसिष्ठ की भी अभिलाषा हुई कि हम लोग वाल्मीकि के तपोवन में जाकर रहेंगे।

वासन्ती—अब वे रामभद्र क्या कर रहे हैं ?

आत्रेयी—उस राजा (राम) के द्वारा राजकीय यज्ञ अश्वमेध आरम्भ किया गया है।

वासन्ती—आह, धिक्कार है ! (क्या) विवाह भी कर लिया गया ? (अर्थात् क्या राम ने विवाह भी कर लिया ?

आत्रेयी—(पाप) शान्त हो। नहीं नहीं (विवाह नहीं किया गया है)।

वासन्ती—तो यज्ञ के धर्म में (उनके) साथ-साथ कार्य करने वाली (अर्थात् धर्मपत्नी) कौन है ?

आत्रेयी—सुवर्णमयी सीता की प्रतिमा पत्नी बनाई गई है।

टीका—वासन्तीति। जीवन्तीषु=वर्तमानासु। सत्रम्=यज्ञम्। विसर्जिताः=स्वगृहगमनायानुमोदिताः। श्रद्धा=अभिलाषः॥

टिप्पणी—**जीवन्तीषु**—जीव + शतृ + ङीप् + नुम्, भावे सप्तमीविभक्तिः।

अनुमोदितम्—अनु + √मुद् + णिच् + क्त + विभक्तिकार्यम्॥

शब्दार्थः—रामभद्रः=भले राम, किमाचारः=किस आचरणवाले हैं (अर्थात् क्या कर रहे हैं)। प्रक्रान्तः=आरम्भ किया गया है। परिणीतम्=विवाह कर लिया गया। सहधर्मचारिणी=पत्नी। सीताप्रतिकृतिः=सीता की प्रतिमा, गृहिणीकृता=पत्नी बनाई गई है॥

टीका—**वासन्तीति**—रामभद्रः=भद्रपुरुषः राम इत्यर्थः। किमाचारः—किम् आचारः=कर्म अस्येति किमाचारः=कस्मिन् कर्मणि व्यापृत इत्यर्थः। प्रक्रान्तः=आरब्धः। परिणीतम् अपि=विवाहोऽपि कृतः, न केवलं निरपराधा पत्नी निर्वासिताऽपि तु विवाहोऽपि कृत इत्यपिना प्रश्नो द्योतितः। सहधर्मपत्नी=सहधर्मचारिणी निगद्यते। सीताप्रतिकृतिः—सीतायाः=जानक्याः प्रतिकृतिः=प्रतिमूर्तिः, प्रतिमेत्यर्थः, गृहिणीकृता=धर्मपत्नीकृता॥

वासन्ती—हन्त भोः ।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु[१] विज्ञातुमर्हति ? ॥ ७ ॥

आत्रेयी—विसृष्टश्च वामदेवाभिमन्त्रितो मेध्याश्वः । प्रक्लृप्ताश्च[२] तस्य यथाशास्त्रं रक्षितारः । तेषामधिष्ठाता लक्ष्मणात्मजश्चन्द्रकेतुर्दत्त[३]-दिव्यास्त्रसंप्रदायश्चतुरङ्गसाध[४]नान्वितोऽनुप्रहितः ।

वासन्ती—(सहर्ष[५]कौतुकास्रम् ।) कुमारलक्ष्मणस्यापि पुत्र[६] इति मातः ! जीवामि ।

टिप्पणी--रामभद्रः—अत्यन्त लोकप्रिय तथा सबके लिए अभिमत व्यक्ति के नाम के साथ 'भद्र' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

प्रक्रान्तः—आरम्भ किया गया है। प्र + √क्रम् + क्त + विभक्त्यादिकार्यम् ।

परिणीतमपि--परि√नी + क्त + विभक्तिकार्यम् । सपत्नीक को ही यज्ञ करने का अधिकार है । राम ने सीता को घर से निकाल देने के बाद यज्ञ आरम्भ किया है। इससे वासन्ती ने अनुमान किया है कि राम ने अपना दूसरा विवाह भी कर लिया है ॥

अन्वयः—वज्रात्, अपि, कठोराणि, (च), कुसुमात्, अपि, मृदूनि, लोकोत्तराणाम्, चेतांसि, कः, नु, विज्ञातुम्, अर्हति ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—वज्रात्=वज्र से, अपि=भी, कठोराणि=कठोर, (च=और), कुसुमात्=फूल से, अपि=भी, मृदूनि=कोमल, लोकोत्तराणाम्=अलौकिक महापुरुषों के, चेतांसि=हृदयों को, कः=कौन, नु=यह प्रश्न का द्योतक अव्यय है, विज्ञातुम्=जानने में, जानने के लिये, अर्हति=समर्थ हो सकता है ॥ ७ ॥

टीका—वज्रादिति । वज्रात्=कुलिशात्, अपि=च, कठोराणि=कठिनानि, तथा, कुसुमात्=पुष्पात्, अपि=च, मृदूनि=कोमलानि, लोकोत्तराणाम्––लोकेभ्यः=सामान्यजनेभ्यः उत्तराणाम्=विलक्षणानाम्, अलौकिकगुणवतां महतां जनानामित्यर्थः, चेतांसि=हृदयानि, को नु=क इत्यर्थः, विज्ञातुम्=बोद्धुम्, अर्हति=योग्यो भवति ? न कोऽपीति भावः । महतां चित्तवृत्तयो दुरवगाहा इत्याशयः । अत्र विषम–अप्रस्तुत-प्रशंसार्थापत्त्यलङ्काराणां संकरः । श्लोको वृत्तम् ॥ ७ ॥

टिप्पणी--विज्ञातुम्—वि + √ज्ञा + तुमुन् ।

इस श्लोक में कठोर तथा कोमल दो विपरीत गुणों की एक साथ स्थिति होने से विषम अलङ्कार है । 'को नु विज्ञातुमर्हति' में अर्थापत्ति अलङ्कार है ।

---

१. हि, २. उपकल्पिताश्च, प्रयुक्ताः, ३. अवाप्त०, ४. बलान्वितः, ५. सस्नेह०, ६. पुत्रः पुत्र इति मातः ।

वासन्ती—ओह !

वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल, अलौकिक महापुरुषों के हृदयों को कौन जानने में समर्थ हो सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं) ॥ ७ ॥

आत्रेयी—वामदेव (ऋषि) के द्वारा अभिमन्त्रित यज्ञीय अश्व छोड़ा गया है। उस (अश्व) के शास्त्रानुसार रक्षक भी नियुक्त किये गये हैं। लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु, जिन्हें दिव्य अस्त्रों का समूह प्रदान किया गया है और जो चतुरङ्गिणी सेना से युक्त हैं, (उस अश्व के) पीछे-पीछे भेजे गये हैं।

वासन्ती—(हर्ष और कुतूहलता के साथ आँसू भरकर) हे माँ, कुमार जानकर मैं जी गई।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—विसृष्टः=छोड़ा गया है, मेध्याश्वः=यज्ञीय अश्व, प्रक्लृप्ताः=किये गये हैं, नियुक्त किये गये हैं। अधिष्ठाता=नायक, सेनापति, दत्तदिव्यास्त्रसम्प्रदायः= दिया गया है (अर्थात् सिखलाया गया है) दिव्य अस्त्रों का समूह जिनको ऐसे, चतुरङ्गसाधनान्वितः=चतुरङ्गिणी सेना से युक्त, अनुप्रहितः=पीछे-पीछे भेजे गये हैं ॥

टीका—**आत्रेयीति**। विसृष्टः=अव्याहतस्वैरगतये विमुक्तः, मेध्याश्वः- मेधाय=यज्ञाय हितः मेध्यः=यज्ञीय इत्यर्थः, स चासौ अश्वः=तुरगः, यज्ञीयतुरङ्ग इत्यर्थः, प्रक्लृप्ताः=कृताः, नियोजिता इत्यर्थः, अधिष्ठाता=नायकः, सेनापतिरिति यावत्। दत्तदिव्यास्त्रसम्प्रदायः-दत्तः=वितीर्णः, अध्यापित इति यावत्, दिव्यानाम्= अलौकिनाम् अस्त्राणाम्=आयुधानाम् सम्प्रदायः समूहः प्रयोगसंहार-मन्त्रसहितः यस्मै स तथोक्तः, चतुरङ्गसाधनान्वितः-चतुर्णाम् अङ्गानाम्=हस्त्यश्वरथपदातीनां समाहारश्चतुरङ्गं, द्विगुसमासः, चतुरङ्गं च तत्साधनं तेन अन्वितः=युक्तः, अनुप्रहितः=यज्ञियाश्वस्य पृष्ठतः प्रेषितः ॥

टिप्पणी—**विसृष्टः**—वि + √सृज् + क्त + विभक्तिकार्यम्।

वामदेवाभिमन्त्रितः—वामदेव एक ऋषि थे। इनके नाम का उल्लेख प्रायः वसिष्ठ के नाम के साथ ही मिलता है। वसिष्ठ की अनुपस्थिति में रामचन्द्रजी ने इन्हीं की अध्यक्षता में अश्वमेध यज्ञ आरम्भ कर दिया था।

प्रक्लृप्ताः—प्र + √क्लृप् + क्त + विभक्तिकार्यम्।

अधिष्ठाता—नायक। अधि + √स्था + तृच् + विभक्त्यादिकार्यम्।

चतुरङ्गः—चतुरङ्गिणी सेना के सहित। सेना के चार अङ्ग माने जाते हैं— १. हाथी, २. अश्व, ३. रथ और ४. पैदल सेना। साधन का अर्थ सेना भी होता है।

आत्रेयी—अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य[1] राजद्वारे सोरस्ताडम-ब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो 'न राजा[2]पचारमन्तरेण प्रजा[3]नामकालमृत्युः संचरतो'त्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्—

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम! तं हत्वा जीवय द्विजम्॥ ८॥

इत्युपश्रुत्य[4] कृपाणपाणिः पुष्पकमधिरुह्य[5] सर्वा दिशो विदिशश्च शूद्र-तापसान्वेषणाय जगत्पतिः सञ्चारं[6] समारब्धवान्।

वासन्ती—शम्बूको [7]नामाधोमुखो धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति। अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलङ्कुर्यात्?

आत्रेयी—भद्रे! गम्यतेऽधुना।

मातर्जीवामि—मातः, जीवामि—वासन्ती लक्ष्मण के पुत्र को जानकर प्रसन्नता व्यक्त कर रही है। अभी तक उसे लक्ष्मण के सन्तान के बारे में कुछ भी ज्ञात न था।

शब्दार्थः—अत्रान्तरे=इसी बीच में, उत्क्षिप्य=फेंक कर, सोरस्ताडम्—छाती पीटते हुए, अब्रह्मण्यम्='ब्राह्मणों के लिये अनर्थ है' 'ब्राह्मणों के ऊपर आपत्ति आ गई है' इस प्रकार का शब्द, उद्घोषितम्=चिल्ला कर कहा गया। राजापचारम्=राजा के धर्मोल्लङ्घन के, अन्तरेण=विना। निरूपयति=निरीक्षण करने पर, अशरीरिणी वाक्=आकाशवाणी॥

टीका—आत्रेयीति। अत्रान्तरे—अस्मिन्नेवावकाशे, उत्क्षिप्य=आरोप्येत्यर्थः, सोरस्ताडम्—उरसः=वक्षस्थलस्य ताडनेन=प्रहारेण सहितं यथा तथेत्यर्थः, अब्रह्मण्यम्—ब्रह्मणे=ब्राह्मणाय हितं ब्रह्मण्यं न ब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् = ब्राह्मणानाममङ्गलमित्यर्थः। उद्घोषितम्=उच्चैरुच्चारितम्, राजापचारम्=राजदोषम्, राज्ञा धर्मोल्लङ्घनमित्यर्थः, अन्तरेण=विना। निरूपयति=सूक्ष्मबुद्धया विचारयति सति, अशरीरिणी वाक्=आकाशवाणीत्यर्थः॥

टिप्पणी—उत्क्षिप्य—उत्+$\sqrt{}$क्षिप्+ल्यप्। प्राचीन काल में यह धारणा थी कि राजा के कर्मदोष के कारण ही प्रजा की अकाल मृत्यु हुआ करती है। ठीक इसी तरह की घटना का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध में भी है। वहाँ ब्राह्मण अपने मृत पुत्र को श्रीकृष्ण के दरवाजे पर डालकर 'अब्रह्मण्यम्' 'अब्रह्मण्यम्' चिल्लाता है।

---

१. आरोप्य राजद्वारि, २. राजापराधम्, ३. प्रजासु, ४. उपश्रुत्यैवाकृष्ट-कृपाण, ५. पुष्पकं विमानमारुह्य, ६. सञ्चरितुमारब्धवान्, ७. नाम धूमपः।

आत्रेयी--इसी बीच में एक ब्राह्मण के द्वारा (अपना) मरा हुआ पुत्र राज-द्वार पर फेंक कर छाती पीटते हुए चिल्लाकर कहा गया कि—'ब्राह्मणों के लिये अनर्थ है' तब राजा के धर्मोल्लङ्घन के बिना प्रजा की अकाल मृत्यु नही होती है, इस प्रकार दयालु रामभद्र के अपने दोष का निरीक्षण करने पर (विचार करने पर) एकाएक आकाश वाणी हुई—

शम्बूक नामक शूद्र भूतल पर तपस्या कर रहा है। हे राम, वह तुम्हारे द्वारा शिर काटे जाने के योग्य (है)। उसे मार कर ब्राह्मण (बालक) को जीवित करो ॥ ८ ॥

ऐसा सुन कर तलवार हाथ में लिये हुए संसार के स्वामी (राम) पुष्पक (नामक विमान) पर चढ़कर शूद्र तपस्वी को ढूंढने के लिए दिशाओं एवं विदिशाओं में घूमना आरम्भ किये।

वासन्ती—नीचे की ओर मुँह किये हुए धूम-पान करने वाला शम्बूक नामक शूद्र इसी जनस्थान में तपस्या कर रहा है। (तो) क्या ऐसी सम्भावना है कि रामभद्र फिर इस वन को सुशोभित करेंगे ?

आत्रेयी—भलीमानस, मैं अब जा रही हूँ।

अब्रह्मण्यम्--इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण के ऊपर महान् विपत्ति आई है॥

अन्वयः--शम्बूकः नाम, वृषलः, पृथिव्याम्, तपः, तप्यतेः, हे राम, सः, ते, शीर्षच्छेद्यः, (अस्ति); तम्, हत्वा, द्विजम्, जीवय ॥ ८ ॥

शब्दार्थः--शम्बूकः नाम=शम्बूक नामक, वृषलः=शूद्र, पृथिव्याम्=भूतल पर, तपः=तपस्या, तप्यते=कर रहा है; हे राम=हे राम, सः=वह, ते=तुम्हारे द्वारा, शीर्षच्छेद्यः=शिर काटे जाने के योग्य, (अस्ति=है); तम्=उसे, हत्वा=मार कर, द्विजम्=ब्राह्मण को (ब्राह्मण बालक को) जीवय=जीवित करो ॥ ८ ॥

टीका--कीदृशी सा दैवी वाक्? इत्याह—**शम्बूको नामेति**। शम्बूको नाम=शम्बूकाख्यः, वृषलः—वृषम्=धर्मम् लुनाति=छिनत्तीति वृषलः=शूद्रः, पृथिव्याम्=भूम्याम्, तपः=तपस्याम्, तप्यते=चरति। हे राम=हे रामचन्द्र, सः=तपसि रतः शूद्र इत्यर्थः, ते=तव, शीर्षच्छेद्यः—शीर्ष्णा=शिरोऽवच्छेदेन इत्यर्थः, छेद्यः=छेदयितुमर्हः, अथवा—शिरश्छेदमर्हति शीर्षच्छेद्यः, अस्तीति क्रियाशेषः, तम्=तादृशं धर्ममुल्लङ्घन्तं शूद्रमित्यर्थः, हत्वा=विनाश्य, द्विजम्=ब्राह्मणम्, ब्राह्मणबालमित्यर्थः, जीवय=रक्ष, प्रत्युज्जीवयेत्यर्थः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—**वृषलः तप्यते**—मनु आदि स्मृतिकारो के अनुसार विप्र-सेवा ही शूद्र का कर्तव्य माना जाता था। उसे तपस्या करने का अधिकार न था। उसके द्वारा तपस्या का होना धर्म का उल्लङ्घन माना जाता था।

वासन्ती—आर्ये आत्रेयि ! एवमस्तु । कठोरश्च[1] दिवसः । तथाहि—

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकष[2]णोत्कम्पेन संपातिभि-
घर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।
छाया[3]पस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क[4]लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः ॥ ९ ॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते ।)

॥ इति शुद्धविष्कम्भकः ॥

शीर्षच्छेद्यः—शीर्षच्छेद + यत् + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—उपश्रुत्य = सुनकर, कृपाणपाणिः = तलवार हाथ में लिये हुए, पुष्पकम्=पुष्पक (नामक विमान) पर, अधिरुह्य=चढ़कर, जगत्पतिः=संसार के स्वामी, सञ्चारम्=घूमना, भ्रमण । अधोमुखः=नीचे की ओर मुँह किये हुए, धूमपः–धूमपान करने वाला, अपि नाम=क्या ऐसी सम्भावना है ? कठोरः=कड़ा, तेज धूप वाला ॥

टीका—इत्युपश्रुत्येति । उपश्रुत्य=पूर्वोक्तां दैवीं वाचं समाकर्ण्य, कृपाणपाणिः=कृपाणः=खड्गः पाणौ=हस्ते यस्यासौ, पुष्पकम्=पुष्पकनाम्ना प्रसिद्धं विमानम्, अधिरुह्य–आरुह्य, पुरा किल मनोहरं वेगवन्तं विमानं यक्षराजाय कुबेराय ब्रह्मणा दत्तम् । तं विजित्य गृहीतवन्तं रावणं निर्जित्य राघवस्तत् प्राप्तवानिति रामायणी कथात्रानुसन्धेया । जगत्पतिः–जगताम्=संसाराणाम् पतिः=स्वामी सञ्चारम्=भ्रमणम् । अधोमुखः=नीचैर्मुखः; धूमपः–धूमं पिबतीति धूमपः, अपि नामेति सम्भावनागर्भः प्रश्नः, कठोरः=पूणताङ्गतः, तीव्रो घर्म इति यावत् ॥

टिप्पणी—**पुष्पकम्**—भगवान् ब्रह्मा ने यह विमान कुबेर को दिया था । कुबेर को जीत कर इसे रावण ने छीन लिया था । भगवान् राम इसी विमान पर चढ़ कर लंका से अयोध्या लौटे थे । बाद में उन्होंने इसे कुबेर को वापस कर दिया था ।

अधोमुखः--प्राचीन काल में वृक्ष के नीचे आग जलाकर तथा डाल में अपने पैरों को बाँधकर नीचे की ओर मुँह कर धुआँ पीते-पीते तपस्या करना असाधारण कार्य माना जाता था । शूद्र इसी प्रकार की तपस्या में संलग्न था ॥

अन्वयः—कूले, (स्थिताः), छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः,

---

१. कठोरीभूतस्तु दिवसः, २. गण्डमण्डलकषो०, कषणाकम्पेन । ३. अवस्किरमाण, शाखाप०, ४. क्रान्त ।

वासन्ती—पूज्य आत्रेयी, ऐसा ही हो। दिन कठोर (अर्थात् तेज धूपवाला) हो गया है। जैसे कि—

तट पर (स्थित), छाया में कुरेदते हुए पक्षियों की चोंच से निकाले जा रहे हैं कीट जिनकी छालों से ऐसे, कूजते हुए थके कबूतरों तथा (वन-) मुर्गों के समूह से युक्त, (पक्षियों के) घोंसलों वाले, वृक्ष खुजलाहट वाले हाथियों के गण्डस्थल की रगड़ से हिलने के कारण गिरनेवाले, घाम से शिथिल वृन्त वाले फूलों से गोदावरी को पूजित कर रहे हैं (अर्थात् गोदावरी की अर्चना कर रहे हैं) ॥ ९ ॥

(ऐसा कह कर घूमती हुई दोनों बाहर निकल जाती हैं)

॥ शुद्ध विष्कम्भक समाप्त ॥

कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः, कुलायद्रुमाः, कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन, सम्पातिभिः, घर्मस्रंसितबन्धनैः, कुसुमैः, त्त, गोदावरीम्, अर्चन्ति ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—कूले=तट पर, किनारे, (स्थिताः=स्थित), छायापस्किरमाण-विष्किरमुखव्याकृष्ट-कीटत्वचः=छाया में कुरेदते हुए पक्षियों की चोंच से निकाले जा रहे हैं कीट जिनकी छालों से ऐसे, कूजत्क्लान्त-कपोत-कुक्कुट-कुलाः=कूजते हुए तथा थके कबूतरों तथा (वन) मुर्गों के समूह से युक्त, कुलायद्रुमाः=(पक्षियों के) घोंसलों वाले वृक्ष, कण्डूल-द्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन=खुजलाहट वाले हाथियों के गण्डस्थल की रगड़ से हिलने के कारण, सम्पातिभिः=गिरने वाले, घर्मस्रंसित-बन्धनैः=घाम से शिथित वृन्तवाले, कुसुमैः=फूलों से, गोदावरीम्=गोदावरी को, अर्चन्ति=पूजित कर रहे हैं ॥ ९ ॥

टीका—अथेदानीं निदाघातपस्यातीवासहनीयतां वर्णयन्नाह—**कण्डूलेति**। कूले=गोदावरीतीरे, स्थिता इति शेषः, छायेत्यादि—छायायाम्=अनातपे अपस्किरमाणाः=कीटभक्षणार्थं तरुवल्कलेषु चञ्च्वाघातं कुर्वन्तः, नखरैरालिखन्त-श्चेत्यपि बोध्यम्, ये विष्किराः=पक्षिणः ('विकिर-वि-विष्किर-पतत्त्रयः' इत्यमरः) तैर्मुखैः=चञ्चुभिः करणैः व्याकृष्टाः=आकर्षणेन बहिष्कृताः कीटाः=क्षुद्रजीवाः याभ्यस्तथोक्ताः त्वचः=वल्कलानि येषां ते तथोक्ताः, कूजत्क्लान्तेत्यादि—कूजन्ति=मधुरमव्यक्तञ्च शब्दं कुर्वन्ति क्लान्तानि=आतपात् खेदमुपगतानि कपोतानाम्=पारावतानाम् कुक्कुटानाम्=कृकवाकूनाञ्च कुलानि=समूहाः येषु तथोक्ताः, कुलाय-द्रुमाः=कुलायभूताः द्रुमाः कुलायद्रुमाः=विहगावासभूताः तरवः, शाकपार्थिवादिवत् समासः, कण्डूलेत्यादि—कण्डूलानाम्=कण्डूतियुक्तानाम् द्विपगण्डपिण्डानाम्=पिण्डा-कारगजकपोलानाम् कषणेन=घर्षणेन यः उत्कम्पः=अत्यर्थं चलनम् तेन, सम्पातिभिः—सम्पतन्तीति संपातीनि=स्खलन्ति तथाविधैः, घर्मेत्यादि—**घर्मेण**=आतपेन ('घर्मः

(ततः प्रविशति सदयोद्यतखड्गो रामः[1] ।)

रामः—

रे[2] हस्त दक्षिण ! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ।
रामस्य [3]बाहुरसि [4]निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः[5] करुणा कुतस्ते ? ॥ १० ॥

स्यादातपे ग्रीष्मे' इति मेदिनी), स्रंसितानि=शिथिलानि बन्धनानि=वृन्तानि येषां तैस्तथोक्तैः, कुसुमैः=प्रसूनैः, गोदावरीम्=गोदावरीनामधेयां नदीम्, अर्चन्ति=पूजयन्ति । आतपेन शिथिलवन्धनानि तटतरूणां पुष्पाणि नदीजलमध्ये निपतन्ति । अनेन महाकविः तेषां गोदावरीपूजनं सम्भावयति । अत्रोत्प्रेक्षास्वभावोक्त्योः सङ्करः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—**संपातिभिः**—गिरते हुए । संपतन्तीति, सम् + √पत् + णिनि + तृतीयाबहुवचने विभक्तिकार्यम् ।

शुद्धविष्कम्भकः—संस्कृत के नाटकों में कुछ ऐसे भी अंश होते हैं, जो बीती हुई कथा का आनेवाली कथा के साथ सन्दर्भ जोड़ते हैं । ये अंश 'अर्थोपक्षेपक' कहे जाते हैं । ये पाँच प्रकार के होते हैं—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कावतार और अङ्कमुख । 'विष्कम्भक' उस 'अर्थोपक्षेपक' को कहते हैं, जो बीती हुई तथा आगे आनेवाली घटनाओं की सूचना संक्षेप में देता है । यह अङ्क के आदि में जोड़ा जाता है । यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध और सङ्कीर्ण । जिसमें एक अथवा एक से अधिक मध्यम श्रेणी के पात्र होते हैं और संस्कृत में संभाषण करते हैं, उसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं । जिसमें कुछ मध्यम और कुछ अधम श्रेणी के पात्र होते हैं तथा संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं में संभाषण करते हैं, उसे संकीर्ण विष्कम्भक कहते हैं । (देखिये साहित्यदर्पण—६–५५, ५६) ॥ ९ ॥

अन्वयः—रे दक्षिण हस्त, द्विजस्य, मृतस्य, शिशोः, जीवातवे, शूद्रमुनौ, कृपाणम्, विसृज; निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः, रामस्य, बाहुः, असि; (अतः), ते, करुणा, कुतः ? ॥ १० ॥

शब्दार्थः—रे दक्षिण हस्त=रे दाहिने हाथ, द्विजस्य=ब्राह्मण के, मृतस्य=मरे हुए, शिशोः=बालक को, जीवातवे=जीवित करने के लिये, शूद्रमुनौ=शूद्र तपस्वी पर, कृपाणम्=कृपाण, तलवार, विसृज=छोड़, चला; निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः=पूर्ण गर्भ (के भार) से खिन्न सीता के निर्वासन में प्रवीण, रामस्य=राम के, बाहुः=बाहु, असि=हो, (अतः=इसलिये), ते=तुम्हें, तुझमें, करुणा=दया, कुतः=कहाँ से ? ॥ १० ॥

१. रामभद्रः, २. हे, ३. गात्रमसि, ४. दुर्वह०, ५. प्रवासन० ।

(तत्पश्चात् दयापूर्वक कृपाण उठाए हुए राम प्रवेश करते हैं)

राम—रे (मेरे) दाहिने हाथ ? ब्राह्मण के मरे हुए बालक को जीवित करने के लिये शूद्र तपस्वी पर कृपाण चला। (तू) पूर्ण गर्भ (के भार) से खिन्न सीता के निर्वासन में प्रवीण राम के बाहु हो। (अतः) तुझमें करुणा कहाँ से (हो सकती है) ? ॥ १० ॥

टीका—सीतानिर्वासनेन रामस्य करुणाशून्यतां प्रतिपादनायाह—**रे हस्तेति**। रे दक्षिण हस्त=रे अपसव्य हस्त! रे इति नीचकर्मणोऽनुरूपं सम्बोधनपदम्, द्विजस्य=ब्राह्मणस्य, मृतस्य=मृत्युमुपगतस्य, शिशोः=बालस्य, जीवातवे=प्रत्युज्जीवनाय, तादर्थ्ये चतुर्थी, ('जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधे' इति मेदिनी), शूद्रमुनौ=वृषलतापसे, तद्बधायेत्यर्थः, कृपाणम्=खड्गम्, विसृज=मुञ्च, तदुपरि पातयेत्यर्थः; जगति करुणामयेतिख्यातस्य शूद्रमुनौ तद्बधाय कथं ते हस्तः प्रसरतीत्याशङ्कायामाह—निर्भरेति—निर्भरः=पूर्णः, एतेन तस्य दुर्वहत्वं सूचितम्, यो गर्भः=उदरस्थः शिशुरित्यर्थः तेन खिन्ना=क्लिष्टा या सीता=मत्प्रिया जानकी तस्या विवासने=निष्कासने पटोः=प्रवीणस्य, अकरुणस्येत्यर्थः, पटोरित्यनेन 'छद्मना परिददामि' इत्येतद्विवक्षितम्।' इति वीरराघवः। रामस्य=रामचन्द्रस्य, बाहुः=भुजः, असि=वर्तसे; अतस्ते=तव, करुणा=कृपा, कुतः=कस्मात्, सम्भाव्यत इति शेषः। अत्र विध्यलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १० ॥

टिप्पणी—सदयोद्यतखड्गः=दयापूर्वक उठाया है खड्ग को जिसने ऐसे। दयया सहितं सदयम्, सदयम् उद्यतः=उत्थापित इत्यर्थः खड्गः येनासौ तादृशः। राम ने शूद्र मुनि का वध करने के लिये तलवार तो तानी है, परन्तु उनके हृदय में दया की तरङ्गे उठ रही हैं। इसका कारण यह है कि वे एक ऐसे निरपराध व्यक्ति को मारने के लिये तत्पर हैं, जो कि अपनी जाति के धर्म के विरुद्ध आचरणमात्र कर रहा है।

करुणा कुतस्ते=तुझमें दया कहाँ से (हो सकती है) ? इसी राम ने दयापात्र सीता का निर्वासन किया है। तुम उन्हीं के हाथ हो। अतः तुझमें दया का भाव कहाँ से आ सकता है ? अर्थात् कहीं से नहीं।

राम के इस कथन से प्रतीत होता है कि उन्होंने लोकापवाद के भय से सीता को भले ही घर से निकाल दिया था, किन्तु इसके लिये उनका मन खिन्न ही था।

इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ १० ॥

(कथञ्चित्प्रहृत्य ।) कृतं रामसदृशं कर्म । अपि जीवेत्स ब्राह्मणपुत्रः[1] ?

(प्रविश्य)

दिव्यपुरुषः—जयतु जयतु देवः ।

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे
संजीवितः शिशुरसौ[2], मम चेयमृद्धिः ।
शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते
सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—कथञ्चित्=किसी प्रकार, अर्थात् बड़ी हिचक के साथ, प्रहृत्य= प्रहार करके, अपि जीवेत् =क्या यह संभव है कि वह जीवित हो जयेगा ?

टीका—**कथञ्चिदिति ।** कथञ्चित्=महता कष्टेनेत्यर्थः, दयासागरस्य रामस्य निरपराधे शूद्रमुनौ कृपाणप्रहारे सङ्कोचस्तु समीचीन एव, प्रहृत्य=प्रहारं कृत्वा । इदं चिन्त्यम्—'दूराह्वानं वधो युद्धम्'—इत्यारभ्य प्रयोगानुचितत्वादेतेषां साहित्य-दर्पणे (६, १६-१८) निषेधः । कृतम्=सम्पादितम्, रामसदृशम्—रामस्य सदृशम्=योग्यम्, कर्म=कार्यम् । रामस्त्वकरुणोऽतस्तेन मुनिवधो नाश्चर्यजनक इति ध्वनिः । वीरराघवस्त्वित्थं व्याख्याति—'रामसदृशं कर्म न तु दशरथसदृशं कर्म । दशरथो ह्यबुद्धिपूर्वकं शूरतापसवधं कृतवान् । तथा च 'पितुः शतगुणः पुत्रः' इति न्यायेन दोषविषय एव न तु गुणविषय इति स्वोपलम्भ इह व्यज्यते ।' क्लिष्टकल्पनया नेयं व्याख्या समादरमर्हति । अपि जीवेत्=किं जीवनं प्राप्नुयात् स ब्राह्मणबालकः । अपिरत्राशङ्कायाम् । सम्भावनायां विधिलिङ् ॥

टिप्पणी—**कथञ्चित् प्रहृत्य**—किसी प्रकार मारकर । मारने की इच्छा तो न थी, परन्तु मर्यादा की रक्षा के लिये मारना ही पड़ा । यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि भवभूति के द्वारा मञ्च पर ही प्रत्यक्ष रूप से वध दिखलाना प्राचीन नाटचाचार्यों के सिद्धान्त के विपरीत है । (देखिये सा० द० ६, १६-१८) ।

रामसदृशं कर्म—यहाँ इसका भाव है कि राम क्रूर कार्यों को करने में प्रवीण है । ऐसा कार्य उसके लिये कुछ नवीन नहीं है । वस्तुतः यह अपने लिये उलाहना है ।

अन्वयः—यमात्, अपि, दत्ताभये, त्वयि, दण्डधारे, (सति), असौ, शिशुः, सञ्जीवितः, च, मम, इयम्, ऋद्धिः; एषः, शम्बूकः, शिरसा, ते, चरणौ, नतः; सत्सङ्गजानि, निधनानि, अपि, तारयन्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—यमात्=यमराज से, अपि=भी, दत्ताभये=अभयदान देने वाले, त्वयि=आपके, दण्डधारे (सति)=दण्ड धारण करने पर, शासन करने पर, असौ=वह, शिशुः=बालक, सञ्जीवितः=जीवित हो उठा, च=तथा, और, मम=मेरी,

---

१. ० शिशुः, २. शिशुरयम् ।

(किसी प्रकार प्रहार करके) किया (निर्दय) राम के योग्य काम। क्या यह संभव है कि वह ब्राह्मण का पुत्र (इस वध से) जीवित हो जायगा ?

(प्रवेश करके)

दिव्य पुरुष——महाराज विजयी बनें, विजयी बनें।

यमराज से भी अभयदान देनेवाले आपके द्वारा (मेरा) शासन करने पर वह बालक जीवित हो उठा और मेरी यह (दिव्य प्राप्ति रूप) उन्नति हुई। यह शम्बूक शिर झुकाकर आपके चरणों में नमस्कार कर रहा है। सज्जन व्यक्तियों की सङ्गति से होनेवाली मृत्यु भी (मरने वाले का) उद्धार कर देती है॥ ११॥

इयम् = यह, ऋद्धिः=समृद्धि हुई, उन्नति हुई; एषः=यह, शम्बूकः=शम्बूक, शिरसा=शिर से, शिर झुका कर, ते=आपके, चरणौ=चरणों में, नतः=नम्र हो गया है, नमस्कार कर रहा है; सत्सङ्गजानि=सज्जन व्यक्तियों की सङ्गतिसे होने वाली, निधनानि=मृत्यु, अपि=भी, तारयन्ति=तार देती है, उद्धार कर देती है॥ ११॥

टीका——भगवत्कृतनिधनमपि समृद्धिहेतुरिति प्रतिपादयन् रामभद्रं व्याजेन स्तौति——**दत्तभय इति**। यमात्=कृतान्तात्, अपि=च, दत्ताभये——दत्तम्=वितीर्णम् अभयम्=अभीतिः येन तस्मिन् दत्ताभये = यमभयनिवारके इत्यर्थः, यमलोकादानीय-ब्राह्मणशिशोः पुनरुज्जीवनात् यमादभयदातृत्वं सिद्धम्, त्वयि = भवति, दण्डधारे——दण्डम्=शासनम् धारयति=विदधातीति तथोक्ते सति, मम शिरसश्छेदनरूपं शासनं कुर्वति सतीत्यर्थः, यमशासितरीति वीरराघवः, असौ=सः, बुद्धिस्थ इत्यर्थः, शिशुः=बालकः, सञ्जीवितः=प्रत्यागतप्राणः कृतः, च=तथा, मम=मम शूद्रस्येत्यर्थः, इयम्=एषा, दिव्यरूपप्राप्तिरूपेत्यर्थः, ऋद्धिः=समुन्नतिः; एषः=अयम्, त्वयोपकृत इत्यर्थः; शम्बूकः=शम्बूकनाम्ना प्रसिद्धोऽयं शूद्रः, शिरसा=शिरोऽवच्छेदेन, मस्तकेन, ते=उपकारिणस्तवेत्यर्थः, चरणौ=पादौ, नतः=नम्रोऽस्तीति, प्रणमतीति भावः। सत्सङ्गजानि——सताम्=सज्जनानाम् सङ्गात्=संसर्गात् जातानि=उत्पन्नानि, निधनानि=मरणानि, अपि=च, तारयन्ति=उद्धारकारणानि भवन्ति, संसाराब्धेरिति शेषः। अत्र विषमार्थान्तरन्यासालङ्कारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ ११॥

टिप्पणी——**दिव्यपुरुषः**——भगवान् राम के पावन खड्ग का स्पर्श पाकर शम्बूक शूद्र-शरीर को छोड़कर दिव्य शरीर धारण कर लेता है। देवरूप धारण कर लेता है। देवरूप धारण करने के बाद वह राम के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा है।

मम ऋद्धिः——देवरूप धारण करना ही शम्बूक की सम्वृद्धि है।

नतः——√नम् + कर्तरि क्तः + विभक्तिकार्यम्।

निधनानि——नि + √धा + उणादिः क्युः + विभक्तिकार्यम्।

यहाँ पर कारण दण्ड से कार्य समृद्धिरूपी विरुद्ध फल के उत्पन्न होने से विषम

रामः—द्वयमपि प्रियं नः, तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः[१] ।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च[२] संपदः ।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः[३] ॥ १२ ॥

शम्बूकः—स्वामिन्[४] ! युष्मत्प्रसादादेवैष महिमा । किमत्र तपसा[५] ? अथवा महदुपकृतं तपसा ।

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने[६] लोकनाथः[७] शरण्यो
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि ।
क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा तु[८]
क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः ॥ १३ ॥

अलङ्कार है। सामान्य अर्थ सत्संगज मृत्यु से उद्धार के द्वारा विशेष अर्थ शम्बूक की श्रीवृद्धि का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम हैं--वसन्ततिलका। लक्षण--'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—द्वयम्=दोनों (बाते), नः=हमें, हमारे लिये, उग्रस्य=उग्र, तीव्र, तपसः=तपस्या का, परिपाकः=फल, परिणाम ॥

टीका--राम इति--द्वौ अवयवौ यस्येति द्वयम्=एकं ब्राह्मणपुत्रप्रत्युज्जीवनमपरञ्च तव दिव्यदेवप्राप्तिरूपा समृद्धिश्चेति, नः=अस्माकम्, उग्रस्य=तीव्रस्य, तपसः=तपस्यायाः, परिपाकः=फलम् ॥

टिप्पणी--द्वयम्-दोनों ही बातें-अर्थात् ब्राह्मण के बालक का फिर से जीवित होना तथा दिव्य-देव-प्राप्तिरूप तुम्हारी श्रीवृद्धि। द्वि+अयच्+विभक्तिकार्यम्।

परिपाकः--परि+√पच्+घञ् (अ)+विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः--यत्र, आनन्दाः, च, मोदाः, च, यत्र, पुण्याः, सम्पदः, च; (सन्ति), वैराजाः, नाम, तैजसाः, ते, लोकाः, ते, शिवाः, सन्तु ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—यत्र=जहाँ, आनन्दाः=आनन्द, च=तथा, मोदाः=आमोद, च=और, यत्र=जहाँ, पुण्याः=पवित्र, सम्पदः=सम्पत्तियाँ, च=भी, (सन्ति=हैं); वैराजाः=वैराज, नाम=नामक, ते=वे, लोकाः=लोक, ते=तुम्हारे लिये, शिवाः=कल्याणकारी, सन्तु=हों ॥ १२ ॥

टीका—यत्रेति। यत्र=येषु लोकेषु, आनन्दाः=सुखानि, च=तथा, मोदाः=हर्षाः, च=अपि, यत्र=येषु लोकेषु, पुण्याः=पावनाः, सम्पदः=सम्पत्तयः, सन्तीति शेषः, वैराजाः-विराजः=ब्रह्मणः इमे वैराजाः=ब्रह्मसम्बन्धिनः, नाम=नामकाः, वैराज-

---

१. फलम्, २. पुण्या हि; पुण्याभिसंभवा, ३. ध्रुवाः, ४. स्वामिन्, युष्मत्प्रसादोपायः, वः प्रसादापादनः, युष्मत्पादप्रसादनोपायः, ५. तपसः फलम्, ६. भुवन०, ७. लोक०, ८. चेत्।

राम--दोनों (बातें) हमें प्रिय हैं । अतः तीव्र तपस्या का फल भोगो ।

जहाँ आनन्द तथा आमोद (हैं) जहाँ पवित्र सम्पत्तियाँ भी (हैं), वैराज नामक वे लोक तुम्हारे लिये कल्याणकारी हों । (अर्थात् तुम्हें प्राप्त हों) ॥ १२ ॥

शम्बूक--स्वामिन्, आपकी कृपा से ही (मुझे) यह महत्त्व (प्राप्त हुआ) है । इसमें तपस्या के द्वारा क्या (किया गया) ? अथवा तपस्या के द्वारा बड़ा उपकार किया गया है ।

त्रिलोकी में ढूँढ़ने योग्य (अर्थात् त्रिलोकी में जिसका दर्शन करने के लिये लोग ढूँढ़ते हैं), प्राणियों के स्वामी, शरण में आये हुए व्यक्तियों की रक्षा करने वाले (आप) जो मुझ शूद्र को ढूँढ़ते हुए सैकड़ों योजन (मार्ग) लाँघकर यहाँ आये हुए हैं, यह तपस्या का (ही) फल (है) । नहीं तो आपका अयोध्या से यहाँ दण्डक वन में फिर आना कैसे (संभव था) ? ॥ १३ ॥

नामका इत्यर्थः, तैजसाः--तेजसः इमे तैजसाः=तेजोमयाः, ते=तादृशाः, जगद्विदिता वेत्यर्थः, लोकाः=भुवनानि, ते=तव शम्बूकस्येत्यर्थः, शिवाः=कल्याणकारिणः, सन्तु= भवन्तु । तत्र तवाधिवासः स्यादित्याशीः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

टिप्पणी--वैराजा नाम लोकाः--विराट् अर्थात् ब्रह्मा के लोक को वैराज कहते हैं । नाम प्रसिद्धार्थक अव्यय है । पुराणों के अनुसार कुल चौदह लोक हैं । इनमें सात ऊपर तथा सात नीचे हैं । ऊपर के सात लोकों का नाम है--भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् । इनमें से प्रथम तीन अनित्य हैं । महः नित्य भी है और अनित्य भी । अन्तिम तीन नित्य हैं, इनमें अन्तिम ब्रह्मलोक है । इसे ही सत्यलोक भी कहते हैं । यही वैराज लोक भी है ।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है अनुष्टुप् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—एषः=यह, महिमा=महत्त्व । महत् = बहुत बड़ा, उपकृतम्=उपकार किया गया है ॥

टीका--अन्वेष्टव्य इति । एषः=सम्प्रत्येवानुभूयमानः, महिमा=माहात्म्यम्, वैराजलोकप्राप्तिरूपं दिव्यदेहावाप्तिरूपञ्च। महत्=अत्यर्थम्, उपकृतम्=उपकारः कृतः ॥

टिप्पणी—अथवा···तपसा--शम्बूक के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मैंने तपस्या प्रारम्भ न की होती तो आप मेरा वध करने न आते । यदि आपके हाथों मेरा वध न होता तो मुझे दिव्य लोक तथा दिव्य शरीर की प्राप्ति न होती । अतः तपस्या ने मेरा बड़ा उपकार किया है ॥

अन्वयः—भुवने, अन्वेष्टव्यः; भूतनाथः, शरण्यः, (त्वम्), यत्, माम्, वृषलकम्, अन्विष्यन्, योजनानाम्, शतानि, क्रान्त्वा, इह, प्राप्तः, असि; सः, तपसाम्, सम्प्रसादः, (वर्तते); अन्यथा, तु, वः, अयोध्यायाः, इह, दण्डकायाम्, वने, पुनः, उपगमः, क्व ? ॥ १३ ॥

रामः—किं नाम दण्डकेयम् ? (सर्वतोऽवलोक्य) हा[1] ! कथम्—

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः
स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम् ।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्[2]गर्तकान्तारमिश्राः
संदृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—भुवने=संसार में, त्रिलोकी में, अन्वेष्टव्यः=ढूँढ़ने के योग्य; भूतनाथः=प्राणियों के स्वामी; शरण्यः=शरण में आये हुए व्यक्तियों की रक्षा करने वाले; (त्वम्=आप), यत्=जो, माम्=मुझ, वृषलकम्=शूद्र को, अन्विष्यन्=ढूँढ़ते हुए, योजनानाम्=योजनों के, शतानि=सैकड़ों को, क्रान्त्वा=लाँघकर, इह=यहाँ, प्राप्तः=आये हुए, असि=हो; सः=वह (यह), तपसाम्=तपस्या का, सम्प्रसादः=अनुग्रह, फल, (वर्तते=है); अन्यथा=नहीं, तु=तो, वः=आपका, अयोध्यायाः=अयोध्या से, इह=यहाँ, दण्डकायाम्=दण्डक, वने=वन में, पुनः=फिर, उपगमः=आना, क्व=कहाँ से, कैसे (संभव था) ॥ १३ ॥

टीका—कियद्धि तपसा उपकृतमेतदेव विवृणोति—**अन्वेष्टव्य** इति । भुवने=त्रिलोक्याम्, अन्वेष्टव्यः=श्रवणमननादिभिः साक्षात्करणीयः; भूतनाथः—भूतानाम्=प्राणिनाम् नाथः=स्वामी, अत एव शरण्यः—शरणे=रक्षणे साधुः शरण्यः=आश्रयणीयः, त्वमिति शेषः; यत्=यस्मात्, माम्=इतः पूर्वमधन्यमित्यभिप्रायः, वृषलकम्=शूद्राधमम्, अत्र कुत्सायां कन्, अन्विष्यन्=विचिन्वन्, योजनानां शतानि=चतुश्शतक्रोशपरिमितं मार्गमित्यर्थः, 'पृथिव्यां तप्यते तपः' इति वचनं श्रुत्वा इतस्ततः परिभ्रम्य तत्र प्राप्तत्वाद्योजनानां शतानीति सङ्गच्छते, क्रान्त्वा=उल्लङ्घ्य, इह=अत्र, प्राप्तः=आगतः, असि=वर्तसे; सः तपसाम्=तपस्यानाम्, सम्प्रसादः=अनुग्रहः, फलमिति यावत्, वर्तत इति शेषः; अन्यथा=इतरथा, तु=च, वः=भवताम्, अयोध्यायाः=राजधान्याः, इह=अत्र, दण्डकायां वने=दण्डकारण्ये, पुनः=मुहुः, उपगमः=प्राप्तिः, आगमनमिति भावः, क्व=कुतः ? न सम्भवेदेवेत्यर्थः । अतस्तपसा महदुपकृतमिति वक्तुं शक्यते । अत्र विषमः काव्यलिङ्गञ्चालङ्कारौ । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—**अन्वेष्टव्यः**—अनु + √इष् (गतौ) + तव्य + विभक्तिकार्यम् । **शरण्यः**—शरण + यत् + विभक्तिकार्यम् । **अन्विष्यन्**—अनु + √इष् + शतृ + विभक्तिकार्यम् । **क्रान्त्वा**—√क्रम् + क्त्वा । **उपगमः**—उप + √गम् + अप् + विभक्तिकार्यम् ।

---

१. आः, हा कथं—आम, २. सरिद्गर्भ,

राम—क्या यह दण्डक-वन है ? (चारों ओर देखकर) हाय, किस प्रकार—
कहीं मनोहर तथा हरे-भरे, दूसरी ओर भीषण विस्तार के कारण रूखे (अर्थात् उद्वेगजनक), स्थान-स्थान पर झरनों की झर्झर ध्वनियों से झङ्कृत दिशाओं से युक्त, तीर्थ आश्रम पर्वत नदी गड्ढे और दुर्गम मार्गों से मिश्रित, परिचित भूमिवाले ये दण्डकारण्य के प्रदेश दिखलाई पड़ रहे हैं ॥ १४ ॥

योजनानां शतानि—सैकड़ों योजन। एक योजन ४ कोस का होता है। यद्यपि अयोध्या और दण्डकारण्य की दूरी इतनी अधिक न थी। परन्तु आकाशवाणी ने 'शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः' कहा था। अतः राम उसे इधर-उधर खोजते हुए ही वहाँ पहुँचे थे। इसलिये उन्हें सैकड़ों योजन का चक्कर काटना पड़ा था।

इस श्लोक में विषम एवं काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण—

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ १३ ॥

अन्वयः—क्वचित्, स्निग्धस्यामाः, अपरतः, भीषणाभोगरूक्षाः, स्थाने-स्थाने, निर्झराणाम्, झाङ्कृतैः, मुखरककुभः, तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः, परिचितभुवः, एते, दण्डकारण्यभागाः, संदृश्यन्ते ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—क्वचित्=कहीं, स्निग्धश्यामाः=चिकने (अर्थात् मनोहर) तथा हरे-भरे; अपरतः=दूसरी ओर, भीषणाभोगरूक्षाः=भीषण विस्तार के कारण रूखे (अर्थात् उद्वेगजनक); स्थाने-स्थाने=स्थान-स्थान पर, निर्झराणाम्=झरनों की, झाङ्कृतैः=झर्झर ध्वनियों से, मुखरककुभः=झङ्कृत दिशाओं से युक्त, तीर्थाश्रम-गिरि-सरिद्-गर्त-कान्तार-मिश्राः=तीर्थ आश्रम पर्वत नदी गड्ढे और दुर्गम मार्गों से मिश्रित, परिचितभुवः=परिचित भूमिवाले, एते=ये, दण्डकारण्यभागाः=दण्डकारण्य के प्रदेश, संदृश्यन्ते=दिखलाई पड़ रहे हैं ॥ १४ ॥

टीका—अथेदानीं दण्डकारण्यस्य पूर्वपरिचितत्त्वं प्रतिपादयन्नाह—स्निग्धेति। क्वचित्=कुत्रचित्, स्निग्धश्यामाः—स्निग्धाः=मसृणाः, नेत्रप्रीतिकराः, सौम्यदर्शना इति यावत्, तथा श्यामाः=श्यामवर्णाः; अपरतः=अन्यस्यां दिशि प्रदेशे वा, भीषणाभोगरूक्षाः—भीषणः=भीतिजनकः यः आभोगः=परिपूर्णता ('आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः), असीमविस्तार इति यावत्, तेन रूक्षाः=चित्त-विक्षोभकराः; स्थाने स्थाने=यत्र कुत्रचित्, निर्झराणाम्=पर्वतादधः पतितानां वारिप्रवाहाणाम् ('वारिप्रवाहो निर्झरो झरः' इत्यमरः), झाङ्कृतैः=झर्झरध्वनिभिः, मुखरककुभः—मुखराः=ध्वनिताः ककुभः=दिशः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः) यासु तथोक्ताः, तीर्थाश्रमेत्यादिः—तीर्थानि=ऋषिमुनिसेवितजलादिसंयुक्त-

शम्बूकः—दण्डकैवैषा । अत्र किल पूर्वं निवसता देवेन

चतुर्दश सहस्राणि [1]रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे[2] हताः ? ॥ १५ ॥

येन सिद्धक्षेत्रेऽस्मिन्मादृशामपि [3]ज्ञानपदानामकुतोभयः संचारः संवृत्तः[4] ।

स्थानानि, तथा चोद्धृतं जीवानन्दविद्यासागरेण—'प्रभावाददभुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसाम् । परिग्रहान्मुनीनाञ्च देशानां तीर्थता स्मृता ॥' इति । आश्रमाः = मुनीनां निवासाः गिरयः=पर्वताः सरितः=नद्यः गर्त्ताः=कन्दर्य्यः, खातानि अवटाः वा, 'गर्त' इत्यत्र 'गर्भ' इति क्वचित् पाठः, तदर्थस्तु ताः गर्भे=अन्तराले येषां तथाविधाः, तैर्मिश्राः=युक्ताः, परिचितभुवः—परिचिताः पूर्वं=वनवासकाले अनुभूताः भुवः=पृथिव्यः येषां तथोक्ताः, एते=इमे, सम्मुखस्था इति यावत्, दण्डकारण्यभागाः—दण्डकारण्यस्य=दण्डकवनस्य भागाः=प्रदेशाः, संदृश्यन्ते=अवलोक्यन्ते, मयेति शेषः । अत्र स्वभावोक्त्यलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता च छन्दः ॥ १४ ॥

टिप्पणी—किं नाम दण्डकेयम्—रामचन्द्र ने पुष्पक विमान से कहा था—'हमें उस स्थान पर ले चलो, जहाँ शम्बूक तप कर रहा है ।' पुष्पक उन्हें यहाँ ले आया है । घबड़ाहट में उन्हें यह ज्ञात न हो सका कि वे सम्प्रति कहाँ हैं । अतः जब शम्बूक ने दण्डकारण्य का नाम लिया तो वे चौंक पड़े । उन्हें पुरानी बातें याद हो आई ।

स्निग्धः—√स्निह् + क्त + विभक्तिकार्यम् । वहाँ के पत्ते पर्याप्त हरित थे । हरियाली हिलोरे ले रही थी । अतः वहाँ के प्रदेश चिकने अतः मनोहर प्रतीत हो रहे थे ।

आभोगः—आ + √भुज् + घञ् + विभक्तिकार्यम् । किसी स्थान की लम्बाई चौड़ाई को आभोग कहते हैं ।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है । छन्द का लक्षण—

"मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्" ॥ १४ ॥

अन्वयः—भीमकर्मणाम्, रक्षसाम्, चतुर्दश, सहस्राणि, च, त्रयः, दूषण-खर-त्रिमूर्धानः, रणे, हताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—भीमकर्मणाम् = भीषण कार्य करने वाले, रक्षसाम् = राक्षसों का, चतुर्दश=चौदह, सहस्राणि=हजार, च=और, त्रयः=तीन, दूषण-खर-त्रिमूर्द्धानः=दूषण, खर और त्रिशिरा, रणे=युद्ध में, हताः=मारे गये थे ॥ १५ ॥

---

१. चतुर्दश च राक्षसाः, २. निपातिताः, ३. भीरुजान०, भीरुजनानाम्, ४. जातः,

शम्बूक—यह दण्डक-वन ही है। यहीं पहले निवास करने वाले महाराज के द्वारा—

भीषण कार्य करनेवाले चौदह सहस्र राक्षस तथा तीन–दूषण खर और त्रिशिरा–युद्ध में मारे गये थे ॥ १५ ॥

जिससे सिद्धों के इस क्षेत्र में मेरे जैसे (साधारण) नागरिकों का भी निर्भय भ्रमण सम्पन्न हो सका है।

टीका—भगवता पूर्वं कृतमद्भुतं कर्म स्मारयति–**चतुर्दशेति**। भीमकर्मणाम्–भीमम्=हृदयविदारकम् कर्म=प्राणिहिंसनादिरूपं कृत्यम् येषां ते तेषां तथाविधानाम्, रक्षसाम्=राक्षसानाम्, चतुर्दशसहस्राणि, च=तथा, त्रयः=त्रिसंख्यकाः, दूषण–खर–त्रिमूर्धानः=दूषणप्रभृतयः, रणे=युद्धे, हताः=मारिताः। 'दूषण–खर–त्रिमूर्धाः, नः, रणे, हताः' इति पाठे नः=अस्माकं रणे हताः, अथवा रणे न हताः=किं युद्धे न मारिताः ? इति काक्वाऽपितु हता एवेति व्यज्यते। अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ १५ ॥

टिप्पणी—**त्रिमूर्धानो रणे**—त्रयो मूर्धानो यस्य सः। यद्यपि 'द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः' (पा० ५।४।११५) इस सूत्र के अनुसार समासान्त 'ष' होकर 'त्रिमूर्ध' रूप होना चाहिए, तथा समास करने पर 'दूषणखरत्रिमूर्धाः' होना चाहिए। किन्तु समासान्त विधि को अनित्य मान कर 'त्रिमूर्धा' (त्रिमूर्धन्) यह पद बनता है और समास में '०त्रिमूर्धानः' ऐसा बनेगा। अन्य अर्थों के लिये देखिये टीका। **हताः**—मारे गये। √हन् + क्त + विभक्तिकार्यम्।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—सिद्धक्षेत्रे–सिद्धों के क्षेत्र में, मादृशाम्=मेरे जैसे, जानपदानाम्=नागरिकों का, अकुतोभयः=निर्भय, सञ्चारः = भ्रमण, संवृत्तः=सम्पन्न हो सका है ॥

टीका—**येनेति**। येन=खरदूषणादीनां निधनेनेत्यर्थः, सिद्धक्षेत्रे–सिद्धानाम्=अधिगततपोऽधिकाराणाम् क्षेत्रे=प्रदेशे, मादृशाम्=मत्सदृशानां साधारणजनानामित्यर्थः, जानपदानाम्–जनपदे=नगरे जातानाम्=उत्पन्नानाम्, नगरनिवासिनामित्यर्थः, अकुतोभयः–नास्ति कुतोऽपि भयं यस्मिन् तादृशः, निर्भय इति यावत्, सञ्चारः=भ्रमणम्, संवृत्तः=सम्पन्नः ॥

टिप्पणी—सञ्चारः–विचरण, भ्रमण। सम् + √चर् + घञ् + विभक्तिकार्यम्।
संवृत्तः—सम् + √वृत् + क्त + विभक्तिकार्यम् ॥

रामः—न केवलं दण्डकैव[1], जनस्थानमपि ?

शम्बूकः—बाढम् । एतानि खलु सर्वभूतरोमहर्षणान्युन्मत्तचण्डश्वापदकु[2]लाक्रान्तविकटगिरिगह्वराणि जनस्थानपर्य[3]न्तदीर्घारण्यानि दक्षिणां दिशमभिवर्तन्ते । तथाहि –

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोग[4]भुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः ।
सीमानः प्रदरोदरेषु [5]विलसत्स्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—बाढम्=यह स्वीकार सूचक अव्यय है। इसका अर्थ होता है=हाँ, ठीक है। सर्वभूतरोमहर्षणानि=सम्पूर्ण प्राणियों को रोमाञ्च पैदा करने वाले, उन्मत्त-चण्ड-श्वापद-कुलाक्रान्तविकटगिरिगह्वराणि=मतवाले तथा भयङ्कर हिंसक प्राणियों के समूह से व्याप्त पर्वत की विकट कन्दरावाले, जनस्थानपर्यन्त-दीर्घारण्यानि=जनस्थान की सीमा पर विद्यमान विशाल जङ्गल ।

टीका—बाढमिति । बाढम्=स्वीकारसूचकमव्ययपदमेतद्, सर्वभूतेति०—सर्वाणि=निखिलानि च तानि भूतानि=प्राणिनः तेषां रोमहर्षणानि=रोमाञ्चकराणि, उन्मत्तेत्यादि०—उन्मत्ताः=मदविह्वलाः चण्डाः=भीषणाश्च ते श्वापदाः=हिंस्रपशवस्तेषां कुलैः=समूहैः आक्रान्तानि=व्याप्तानि विकटानि=भयजनकानि गिरिगह्वराणि=पर्वत-कन्दराणि येषु तथोक्तानि, जनस्थानेति०—जनस्थानस्य=जनस्थाननाम्नोऽरण्यभागस्य पर्यन्तेषु=सीमसु दीर्घाणि=महान्ति यानि अरण्यानि=जङ्गलानि ।

टिप्पणी—बाढम्—√वह् + आ + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

उन्मत्त०—उद् + √मद् + क्त + विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—(एताः), सीमानः, क्वचित्, निष्कूजस्तिमिताः; क्वचित्, अपि, प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः; स्वेच्छा-सुप्त-गभीर-भोग-भुजग-श्वास-प्रदीप्ताग्नयः; प्रदरोदरेषु, विलसत्स्वल्पाम्भसः, (सन्ति); यासु, तृष्यद्भिः, प्रतिसूर्यकैः, अयम्, अजगरस्वेदद्रवः, पीयते ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—(एताः=ये), सीमानः=सीमा–प्रदेश, क्वचित्=कहीं, निष्कूजस्तिमिताः=निःशब्द (मौन) और निश्चेष्ट, क्वचित्=कहीं, अपि=भी, प्रोच्चण्ड-सत्त्व-स्वनाः=भयङ्कर प्राणियों के शब्दों से शब्दायमान, स्वेच्छा-सुप्त-गभीर-भोग-भुजग-श्वास-प्रदीप्ताग्नयः=अपनी इच्छा के अनुसार सोए हुए विशालकाय साँपों के श्वास से

---

१. दण्डकेयं किं तु, २. ० कुलसंकुल०, ३. पर्यन्तानि, ४. घोर०, ५. विरस, विरलस्वच्छ० ।

राम—(यह) केवल दण्डकारण्य भर ही नहीं, अपि तु जनस्थान भी है ?

शम्बूक—हाँ। सम्पूर्ण प्राणियों को रोमाञ्च पैदा करने वाले, मतवाले तथा भयङ्कर हिंसक प्राणियों के समूह से व्याप्त पर्वत की विकट कन्दरावाले, जनस्थान की सीमा पर विद्यमान विशाल जङ्गल दक्षिण दिशा की ओर फैले हुए हैं। जैसे कि—

(ये) सीमा-प्रदेश कहीं निःशब्द और निश्चेष्ट (हैं), कहीं पर भयङ्कर प्राणियों के शब्दों से शब्दायमान (हैं), (कहीं) अपनी इच्छा के अनुसार सोए हुए विशालकाय साँपों के श्वास से प्रज्वलित अग्निवाले (हैं) और (कहीं-कहीं) गड्ढों के मध्यभागों में विद्यमान थोड़े जलवाले (हैं)। जिन (सीमा-प्रदेशों) में प्यासे गिरगिटों के द्वारा अजगरों के पसीने की बूँदें पान की जा रही हैं ॥ १६ ॥

प्रज्वलित अग्निवाले, प्रदरोदरेषु=गड्ढों के मध्यभागों में, विलसत्स्वल्पाम्भसः=विद्यमान थोड़े जल वाले, (सन्ति=हैं), यासु=जिनमें, तृष्यद्भिः=प्यासे, प्रतिसूर्यकैः=गिरगिटों के द्वारा, अजगरस्वेदद्रवः=अजगरों के पसीने की बूँदें, पीयते=पान की जा रही हैं ॥ १६ ॥

टीका—अथेदानीं जसस्थानस्य विभीषिकामवस्थां प्रतिपादयन्नाह—**निष्कूजेति**। (एताः=इमाः), सीमानः=पर्यन्तप्रदेशाः, क्वचित्=कुत्रचित्, निष्कूजस्तिमिताः–निष्कूजाः=निःशब्दाः स्तिमिताश्च=निश्चलाश्च, सन्तीति सर्वत्र क्रियाशेषः, हिंस्रकाणां सर्वत्र सद्भावात् भयवशात्तिर्यञ्चोऽपि निःशब्दमासते का कथाऽन्येषामिति भावः, क्वचित् अपि=कुत्रचित्, अपीति पादपूर्तौ, प्रोच्चण्डेति–प्रोच्चण्डानाम्=भयावहानाम् सत्त्वानाम्=हिंस्रजन्तूनाम् स्वनाः=शब्दाः यासु ताः, स्वेच्छेति–स्वेच्छया=इच्छानुसारम् सुप्ताः=निद्रिताः गभीराः=विशालाः भोगाः=शरीराणि येषां ते तथोक्ताः, ('भोगः सुखे धने चाहेः शरीरफणयोरपि' इति विश्वः), ये भुजगाः=अजगराः तेषां श्वासैः=प्राणवायुभिः प्रदीप्ताः=प्रज्वलिताः अग्नयः=वह्नयः, दावानला इत्यर्थः यासु तास्तथोक्ताः, प्रदरोदरेषु–प्रदराणाम्=गर्तानाम् उदरेषु=मध्येषु, विलसत्स्वल्पाम्भसः–विलसत्=शोभमानम् स्वल्पम्=अल्पम् अम्भः=जलम् यासु ताः तथोक्ताः, सन्तीति शेषः, यासु=यासु सीमसु, तृष्यद्भिः=पिपासितैः, प्रतिसूर्यकैः=कृकलासैः, ('सरटः कृकलः स्यात् प्रतिसूर्यशयानकौ' इति हलायुधः), अयम्=एषः, पुरत इत्यर्थः, अजगरस्वेदद्रवः–अजगराणाम्=सर्पविशेषाणाम् स्वेदद्रवः=घर्मजलम्, पीयते=आचम्यते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितञ्च छन्दः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—**तृष्यद्भिः**—√तृष+शतृ+विभक्तिकार्यम्।

अजगर०—यह विशालकाय सर्प होता है। यह अज=बकरे को भी निगल जाता है। अतः इसका नाम अजगर पड़ा।

रामः—

पश्यामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम् ।
प्रत्यक्षानिव[1] वृत्तान्तान्पूर्वाननुभवामि च ।। १७ ।।

(सर्वतोऽवलोक्य) प्रियारामा[2] हि वैदेह्यासीत् । एतानि नाम कान्ताराणि । किमतः परं भयानकं[3] स्यात् ? (सास्रम्)

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु ।
[4]इतीवारमतेहासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः ।। १८ ।।

इस श्लोक में भयानक और बीभत्स रस है । कवि ने इस श्लोक में प्रकृति के स्वाभाविक भयावह रूप का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है । अतः इसमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है ।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है–शार्दूलविक्रीडित । छन्द का लक्षण—

"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्" ।। १६ ।।

अन्वयः—भूतपूर्वखरालयम्, जनस्थानम्, पश्यामि, च, पूर्वान्, वृत्तान्तान्, च, प्रत्यक्षान्, इव, अनुभवामि, च ।। १७ ।।

शब्दार्थः—भूतपूर्वखरालयम्=खर (नामक राक्षस) के प्राचीन निवास-स्थान, जनस्थानम्=जनस्थान को, पश्यामि=देख रहा हूँ, च=और, पूर्वान्=पुरानी, वृत्तान्तान्=घटनाओं को, च=भी, प्रत्यक्षान्=प्रत्यक्ष की, इव=भाँति, अनुभवामि=देख रहा हूँ, अनुभव कर रहा हूँ ।। १७ ।।

टीका—पश्यामीति । भूतपूर्वखरालयम्—पूर्वं भूतः भूतपूर्वः=प्राचीनकालेऽङ्गीकृत इत्यर्थः, खरस्य=राक्षसविशेषस्य आलयः=निवासस्थानम् यस्मिन् तथाविधम्, जनस्थानम् दण्डकारण्यस्य प्रदेशविशेषम्, पश्यामि=अवलोकयामि, च=तथा, पूर्वान्=पूर्वकालघटितान्; वृत्तान्तान्=उदन्तान्, च=अपि, प्रत्यक्षान्=साक्षाद्दृश्यमानान्, इव=यथा, अनुभवामि=साक्षात्करोमीति भावः । अत्र भूतविषयानां प्रत्यक्षायमाणत्वेन निर्देशात् भाविकमलङ्कारः । पथ्यावक्त्रं छन्दः ।। १७ ।।

टिप्पणी—इस श्लोक में, पुरानी घटनाओं का प्रत्यक्षरूप में अनुभव करने से, भाविक अलङ्कार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र । छन्द का लक्षण—

"युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्" ।। १७ ।।

---

१. प्रत्यक्षमिव; २. प्रियरामा, ३. भयानकस्य, ४. इति हाऽरमतैवासौ, इति वा रमतीवासौ इति चारमतीवासौ, इति चारमते सीता (वासौ), इतीवारमतेहासौ ।

राम—(मैं) खर (नामक राक्षस) के प्राचीन निवास-स्थान जन-स्थान को देख रहा हूँ और पुरानी घटनाओं को भी प्रत्यक्ष की भाँति अनुभव कर रहा हूँ ॥ १७ ॥

(चारों ओर देख कर) सीता वनों-उपवनों को प्यार करने वाली थी। ये ही (वे) भीषण जङ्गल हैं। इनसे अधिक भयानक क्या होगा ? (आँखों में आँसू भर कर)।

'(मैं) तुम्हारे साथ पुष्प-रसों की महक से युक्त वनों में निवास करूँगी'—ऐसा कह कर वह आनन्दित होती थी। वैसा उसका वह स्नेह (ही था) ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—सर्वतः=चारों ओर, प्रियारामा=वनों-उपवनों को प्यार करने वाली, वैदेही=सीता। कान्ताराणि=जङ्गल, अतः=इनसे, परम्=अधिक ॥

टीका—**सर्वत इति।** प्रियारामा—प्रियः=अभीप्सितः आरामः=उपवनम् यस्याः सा तथोक्ता, वननिरीक्षणोत्कण्ठितेत्यर्थः, वैदेही=जनकपुत्री सीता, कान्ताराणि=महारण्यानि, अतः=एभ्यः, परम्=अधिकम् ॥

टिप्पणी—**अवलोक्य**—अव + √लोक् + णिच् + ल्यप्।

किमतः परं भयानकं स्यात्—वे जङ्गल स्वतः भयानक हैं। अतः राम कह रहे हैं कि संसार में इनसे अधिक भीषण दूसरी चीज क्या हो सकती है ? अर्थात् कोई नहीं। दूसरी बात यह है कि राम जहाँ सीता के साथ रह चुके हैं, वह स्थान अब सीता के विना अत्यन्त भीषण प्रतीत हो रहा है। अतः वे कह रहे हैं कि—इनसे अधिक भयानक और क्या होगा ? अर्थात् कुछ नहीं ॥

अन्वयः—त्वया, सह, मधुगन्धिषु, वनेषु, निवत्स्यामि, इति, इव, असौ, अरमत; तादृशः, तस्याः, सः, स्नेहः, (आसीत्) ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—त्वया=तुम्हारे, सह=साथ, मधुगन्धिषु=पुष्प की महक से युक्त, वनेषु=वनों में, निवत्स्यामि=निवास करूँगी। इति=इस प्रकार, ऐसा कह कर, इव=इसका यहाँ कुछ खास अर्थ नहीं है, असौ=वह, अरमत=आनन्दित होती थी; तादृशः=वैसा, तस्याः=उसका, सः=वह, स्नेहः=प्रेम, (आसीत्=था)।

टीका—**त्वयेति।** अहमिति शेषः, त्वया=भवता, सह=साकम्, मधुगन्धिषु—मधुनः=पुष्परसस्य गन्धः=आमोदः येषु तादृशेषु, वनेषु=अरण्येषु, निवत्स्यामि=अवस्थास्ये। न मे राज्यसुखादिषु प्रीतिरिति भावः। इतीव=इत्युक्त्वैव, असौ=सा सीता, अरमत=सततमानन्दं प्रकाशितवती; तादृशः=तथैव, तस्याः=प्रियायाः सीतायाः, सः=अतीव सुखदः, अनुभूतपूर्व इत्यर्थः, स्नेहः=प्रणयः, मयि आसीदिति शेषः। अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ १८ ॥

न[1] किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥ १९ ॥

शम्बूकः—तदलमेभिर्दुरासदैः[2] । अथैतानि मदकलमयूरकण्ठकोमलच्छविभिरवकीर्णानि [3]पर्यन्तैरविरलनिविष्टनीलबहु[4]लच्छायातरुषण्ड[5]-मण्डितान्यसंभ्रान्तविविधमृगयूथानि पश्यतु महाभागः[6] प्रशान्तगम्भीराणि [7]श्वापदकुलशरण्यानि महारण्यानि ।

टिप्पणी—स्नेहः—√स्निह् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

सीता का राम के ऊपर इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि वे राम के साथ जङ्गल के निवास को राज्य सुख की अपेक्षा अधिक सुखद समझती थीं ।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥ १८ ॥

अन्वयः—हि, यः, जनः, यस्य, प्रियः, (सः), किञ्चित्, न, कुर्वाणः, अपि, सौख्यैः दुःखानि, अपोहति; तत्, तस्य, किमपि, द्रव्यम्, (अस्ति) ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—हि=क्योंकि, यः=जो, जनः=व्यक्ति, यस्य=जिसका, प्रियः=प्रिय है, (सः=वह), किञ्चित्=कुछ, न=नहीं, कुर्वाणः=करता हुआ, अपि=भी, सौख्यैः=(एक साथ रहने के) आनन्द से, दुःखानि=दुःखों को, अपोहति=नष्ट कर देता है; तत्=वह, तस्य=उसका, किमपि=अनिर्वचनीय, द्रव्यम्=धन, (अस्ति=है, होता है) ॥ १९ ॥

टीका-तस्याः सीताया रामे निरतिशयं स्नेहव्यापारमभिदधाति, **अकिञ्चि-दिति** । हि=यतः, यो जनः=यो व्यक्तिः, यस्य=यस्य जनस्य, प्रियः=अभीप्सितः, प्रीतिमान् प्रीतिविषयो वेति, स जन इति शेषः, किञ्चित्=किमपि, न कुर्वाणः=न कुर्वन्, अपि=च, सौख्यैः=स्वसहवासजनितैः स्वीयसुखैः करणैः, दुःखानि=कष्टानि, अपोहति-नाशयति; तत्=प्रेमभाजनं स जनः, 'दुःखनाशहेतुभूतः जनः । विधेयप्राधान्यात् नपुंसकत्वम् ।' इति वीरराघवः । तस्य=अपोहनीयदुःखवतः पुरुषस्येत्यर्थः, किमपि=अनिर्वचनीयम्, द्रव्यम्=धनम्, अस्तीति शेषः । एवं चाहं सीताविषये किञ्चित्कारलेशशून्योऽपि सुखितः सन् तद्दुःखनिवर्तक इति कान्तारगमनं युक्तमेवेति हृदयस्थितोऽर्थः । अत्राप्रस्तुत-प्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—अपोहति=दूर करता है, विनष्ट करता है । अप् + √ऊह् + लटि विभक्तिकार्यम् ।

---

१. अकिं०, २. दुःसहैः ३. पर्वतैः, ४. बहल०, ५. खण्ड०, ६. महानुभावः, ७. ० गम्भीराणि मध्यमारण्यानि,

क्योंकि जो व्यक्ति जिसका प्रिय है (वह) कुछ न करता हुआ भी (एक साथ रहने के) आनन्द से दुःखों को नष्ट कर देता है। वह (व्यक्ति) उसका अनिर्वचनीय धन (है) ॥ १९ ॥

शम्बूक—तो दुर्धर्ष इन (पर्यन्त-वनों) को रहने दें। अब महोदय (आप) मद के कारण मनोहर शब्द करने वाले मोरों के कण्ठ के समान कोमल कान्ति वाले प्रान्त-भागों से (अर्थात् वन के छोरों से) व्याप्त, घने फैले हुए हरे-भरे अत्यधिक छायावाले वृक्ष-समूहों से सुशोभित, भय-रहित अनेक प्रकार के मृग-समूहों से युक्त, हिंसक जानवरों के आश्रय-स्थल, शान्त एवं गम्भीर इन विशाल जङ्गलों को देखें।

तत्—यहाँ विधेय ('द्रव्य') के प्रधान होने के कारण, उसके नपुंसक होने से, 'तत्' में भी नपुंसक लिङ्ग प्रयुक्त हुआ है। 'प्रियजन' यहाँ 'प्रियजन' न मान कर 'किमपि द्रव्यं' माना गया है। अतः विधेय है। विधेय की प्रधानता से यहाँ नपुंसक लिङ्ग हुआ है।

यहाँ अप्रस्तुत प्रियजन के द्वारा सीता का वर्णन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार तथा पूर्वोक्त सीता का सामान्य अर्थ के द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—दुरासदैः=दुर्गम, मद-कल-मयूर-कण्ठ-कोमलच्छविभिः=मद के कारण मनोहर शब्द करने वाले मोरों के कण्ठ के समान कोमल कान्ति वाले, अवकीर्णानि=व्याप्त, युक्त, पर्यन्तैः=प्रान्त भागों से, वन के छोरों से, अविरल-निविष्ट-नील-बहुल-च्छाया-तरु-षण्ड-मण्डितानि=घने फैले हुए हरे-भरे अत्यधिक छायावाले वृक्ष-समूहों से सुशोभित, असंभ्रान्त-विविध-मृग-यूथानि=भय-रहित अनेक प्रकार के मृग-समूहों से युक्त, श्वापदकुलशरण्यानि=हिंसक जानवरों के आश्रय-स्थल ॥

टीका—सम्प्रति शम्बूको जनस्थानस्य स्निग्धत्वं वर्णयति—**तदिति**। दुरासदैः—दुःखमासाद्यते एभिरिति दुरासदैः=दुःखोत्पादकैः, मदकलेत्यादि—मदेन=हर्षातिरेकेण गर्वेण वा कलाः=मनोहराः ये मयूरास्तेषां ये कण्ठाः=गलप्रदेशास्तद्वत् कोमला=स्निग्धा छविः=कान्तिः येषां तैस्तथोक्तैः, पर्यन्तैः=परिसरैः, मध्यमारण्यस्येति शेषः, अवकीर्णानि=व्याप्तानि, अविरलेत्यादि—अविरलम्=निबिडं यथा तथा निविष्टाः=स्थिताः ये नीलाः=हरिद्वर्णाः बहुलाः=अनेके छायातरवः=छायाप्रधानाः वृक्षाः तेषां षण्डैः=समूहैः ('षण्डं पद्मादिसंघाते न स्त्री स्यात् गोपतौ पुमान्' इति मेदिनी) मण्डितानि=भूषितानि, असंभ्रान्तेत्यादि—असंभ्रान्तानि=भयादिरहितानि विविधानाम्=अनेकेषाम्, मृगाणाम्=पशूनाम् यूथानि=समूहाः येषु तानि तथोक्तानि,

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त[१]-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥ २० ॥

अपि च—

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्य[२]न्दगन्धः ॥ २१ ॥

प्रशान्तगम्भीराणि—प्रशान्तानि = हिंसकसमूहप्रचाररहितत्वादनुद्वेगकराणि गम्भीराणि=विस्तृतानि निबिडानि च, श्वापदेति — श्वापदकुलानाम्=हिंसकजन्तूनाम् शरण्यानि = आश्रयस्थलानि, महारण्यानि = महान्ति जनस्थानवनानि, पश्यतु = अवलोकयतु ॥

टिप्पणी—**दुरासदैः**——दुर् + आ + √सद् + खल् (कर्मणि) + विभक्तिकार्यम् ।

अवकीर्णानि——अव + √कृ + (विक्षेपे) + क्त + (कर्मणि) + विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—इह, समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्तप्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोयाः, फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनमुखरभूरिस्रोतसः, निर्झरिण्यः, वहन्ति ॥ २० ॥

शब्दार्थः——इह=यहाँ, महारण्यों में, समद-शकुन्ताक्रान्त-वानीर-मुक्त-प्रसव-सुरभि-शीत-स्वच्छ-तोयाः=मतवाले पक्षियों से आरूढ़ (अर्थात् जिन पर मतवाले पक्षी बैठे हैं ऐसी) वेतस लताओं से गिरे हुए पुष्पों से सुगन्धित, शीतल तथा स्वच्छ जलवाली, फल-भर-परिणाम-श्याम-जम्बू-निकुञ्ज-स्खलन-मुखर-भूरि-स्रोतसः= फल-समूह के पकने से श्यामवर्ण वाले जामुनों के कुञ्जों में टकराकर गिरने से शब्दायमान कतिपय प्रवाह वाली, निर्झरिण्यः = पहाड़ी नदियाँ, वहन्ति = बह रही हैं ॥ २० ॥

टीका—अथ विषादाक्रान्तं राममानसं प्रीणयितुमाह-- **इहेति** । इह=अत्र महारण्यभूप्रदेशे, समदेत्यादि——समदैः=मदमत्तैः शकुन्तैः=पक्षिभिः आक्रान्ताः= अध्युषिताः, उत्पत्य श्रिता इत्यर्थः, ये वानीराः=वेतसाः तेभ्यः मुक्ताः=पतिताः ये

---

१. नीरद्, २. निष्पन्द० ।

यहाँ (महारण्यों में) मतवाले पक्षियों से आरूढ़ (अर्थात् पक्षियों के बैठने से झुकी हुई) वेतसलताओं से गिरे हुए पुष्पों से सुगन्धित, शीतल तथा स्वच्छ जलवाली; फल-समूह के पकने से श्यामवर्ण वाले जामुनों के कुञ्जों में टकराकर गिरने से शब्दायमान कतिपय प्रवाहवाली पहाड़ी नदियाँ बह रही हैं ॥ २० ॥

और भी—

यहाँ (महारण्यों में) गुफाओं में रहनेवाले तरुण भालुओं के, प्रतिध्वनि के कारण बढ़े हुए, थू-थू शब्द वृद्धि को धारण कर रहे हैं (अर्थात् बढ़ रहे हैं)। (तथा) सल्लकी-लताओं की शीतल तीखी तथा कसैली, हाथियों के द्वारा मर्दित तथा बिखेरी हुई गाँठों के रस की महक फैल रही है ॥ २१ ॥

प्रसवाः—कुसुमानि तैः, सपदि शकुन्ताक्रमणात् सद्यो वृन्तपतितैरित्यर्थः, सुरभीणि=सुरभीकृतानि, वासितानीति यावत्, शीतानि=शीतलानि स्वच्छानि=निर्म्मलानि तोयानि=जलानि यासां तथाविधाः; तथा फलभरेत्यादि—फलभराणाम्=फलसमूहानां परिणामात्=परिपाकाद्धेतोः श्यामाः=कृष्णवर्णाः ये जम्बूनिकुञ्जाः=जम्बूपादप-गुल्मानि तेषु स्खलनेन=पतनेन मुखराणि=शब्दायमानानि भूरीणि=बहूनि स्रोतांसि=प्रवाहाः यासां तास्तथोक्ताः, निर्झरिण्यः=गिरिणद्यः, वहन्ति=प्रसरन्ति । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मालिनी छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी—**आक्रान्त०**—आ + √क्रम् + क्त (कर्मणि) + विभक्त्यादि-कार्यम् ।

वहन्ति—इस श्लोक का प्रधान वाक्य है—

'इह निर्झरिण्यः वहन्ति ।'

इस श्लोक में नदियों के स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—मालिनी । छन्द का लक्षण—

'न-न-म-य-ययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ २० ॥

अन्वयः—अत्र, कुहरभाजाम्, भल्लूकयूनाम्, अनुरसितगुरूणि, अम्बूकृतानि, स्त्यानम्, दधति; सल्लकीनाम्, शिशिरकटुकषायः, इभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्द-गन्धः, स्त्यायते ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—अत्र=यहाँ, महारण्यों में, कुहरभाजाम्=गुफाओं में रहनेवाले, भल्लूकयूनाम्=तरुण भालुओं के, अनुरसितगुरूणि=प्रतिध्वनि से बढ़े हुए, अम्बू-कृतानि=थू-थू शब्द, स्त्यानम्=वृद्धि को, दधति=धारण कर रहे हैं; सल्लकीनाम्=सल्लकीलताओं की, शिशिरकटुकषायः=शीतल तीखी तथा कसैली, इभ-दलित-विकीर्ण-ग्रन्थि-निष्यन्द-गन्धः=हाथियों से मर्दित तथा बिखेरी हुई गाँठों के रस की महक, स्त्यायते=फैल रही है ॥ २१ ॥

रामः—(सबाष्पस्तम्भम्) भद्र ! शिवास्ते पन्थानो देवयानाः[1] । प्रली[2]-यस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः ।

शम्बूकः—यावत्पुराण[3]ब्रह्मर्षिमगस्त्यमभिवाद्य शाश्वतं पदमनुप्रविशामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

एतत्तदेव[4] हि वनं पुनरद्य दृष्टं
यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्तः ।
आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे
सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः ॥ २२ ॥

टीका—दधतीति । अत्र=एषु महारण्येषु, कुहरभाजाम्—कुहराणि=गह्वराणि भजन्ति=श्रयन्तीति तेषां कुहरभाजाम्=गुहावर्तिनाम्, भल्लूकयूनाम्—भल्लूकाश्च ते **युवानस्तेषां** भल्लूकयूनाम्=तरुणभल्लूकानाम्, अनुरसितगुरूणि—अनुरसितेन=अनुरणनेन गुरूणि=महान्ति, अम्बूकृतानि=निष्ठीवनशब्दाः, ('अम्बूकृतं सनिष्ठीवम्' इत्यमरः), स्त्यानम्=वृद्धि वैपुल्यं वा, ('स्त्यानं स्निग्धे प्रतिध्वाने' इति विश्वः), दधति=भजन्ति । सल्लकीनाम्=गजभक्ष्यलताविशेषाणाम्, ('गन्धिनी गजभक्ष्या तु …सल्लकी ह्लादिनी च' इत्यमरः), शिशिरकटुकषायः—शिशिरः =शीतलः कटुः= तीव्रः कषायः=कषायरसोद्गारी, इभेत्यादि—इभैः = हस्तिभिः दलिताः = मर्दिताः अत एव विकीर्णाः=प्रक्षिप्ताः ग्रन्थयः=पर्वाणि तेषां निष्यन्दस्य = रसस्य गन्धः=आमोदः; स्त्यायते=प्रसरति । गजमदगन्धैर्मिश्रितः सन् द्विगुणीभूय परितः प्रसरतीति भावः । अत्रापि स्वभावोक्त्यलङ्कारो मालिनी च छन्दः ॥ २१ ॥

टिप्पणी—**स्त्यानम्**—√स्त्यै (स्त्या) + ल्युट् + विभक्त्यादिकार्यम् ।

अम्बूकृतानि—थूकने के साथ जो शब्द होता है, उसे 'अम्बूकृत' कहते हैं । भालू स्वभावतः शब्द करने के साथ-साथ थूकते हैं ।

सल्लकी—यह एक प्रकार की घास है । हाथी बड़े प्रेम से इसे खाते हैं । इसकी गाठों से एक प्रकार का रस निकलता है, जो कड़वा, कषैला तथा ठण्डा होता है ।

इस श्लोक में भी स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है । छन्द का लक्षण—

'न-न-म-य-य-युतेयं मलिनी भोगिलोकैः' ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—सबाष्पस्तम्भम्=आँसुओं के निरोध के साथ, आँसुओं को रोक कर । शिवाः=कल्याणकारी, देवयानाः=देवयान नामक, पुण्य लोकों में जाने वाले ।

---

१. देवयानं, २. प्रतिपद्यस्व, पुण्येषु लोकेषु प्रतिष्ठस्व, ३. ब्रह्मवादिनम्, ४. एतत्पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं ।

राम--(आँसुओं के निरोध के साथ) भले व्यक्ति, पुण्य लोकों में ले जाने वाले मार्ग (अथवा देवयान नामक मार्ग) तुम्हारे लिये मङ्गलमय हों। पावन लोकों को प्राप्त करने के लिये विलीन हो जाओ।

शम्बूक—तो (मैं) प्राचीन ब्रह्मर्षि अगस्त्य को प्रणाम करके अक्षय लोक में प्रवेश करूँगा। (ऐसा कहकर निकल गया)।

राम—वह ही (अर्थात् पूर्वपरिचित) यह वन आज फिर दिखलाई पड़ा है; जहाँ पहले बहुत दिनों तक निवास करते हुए वानप्रस्थ तथा गृहस्थ भी हम लोग अपने धर्म में रत रहते हुए सांसारिक सुखों के रस के जानकार बने थे॥ २२॥

प्रलीयस्व=विलीन हो जाओ। पुराणब्रह्मर्षिम्=प्राचीन ब्रह्मर्षि, शाश्वतम्=अक्षय, पदम्=स्थान, लोक॥

टीका--राम इति। **सबाष्पस्तम्भम्**--बाष्पाणाम्-अश्रूणां स्तम्भेन=अवरोधेन सहितं यथा तथा, शिवाः=सुखजनकाः, देवयानाः=पुण्यलोकप्रयाणोपयोगिनः, 'देवयाननामकाः। ते च 'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्' इत्युक्ताः' इति वीरराघवः। प्रलीयस्व=विलीनो भव, पुण्येभ्यो लोकेभ्यः=पुण्यान् लोकान् अनुभवितुमित्यर्थः। पुराणब्रह्मर्षिम्=प्राचीनम् ऋषिम्, शाश्वतम्=अक्षय्यम्, पदम्=स्थानम्, लोकमिति यावत्॥

देवयानाः--मरने के बाद धार्मिक जनों के लिये दो मार्ग वतलाये गये हैं--देवयान, पितृयान। विना किसी कामना के कर्म करने वाले ब्रह्मज्ञानी लोग देवयान मार्ग से होते हुए ब्रह्मलोक को जाते हैं। इनका पुनर्जन्म नहीं होता है। किसी कामना के साथ कर्म करने वाले व्यक्ति पितृयान से होते हुए चन्द्रलोक को जाते हैं। पुण्य क्षीण होने पर इनका पुनर्जन्म होता है। देखिये गीता (८।२६) तथा छान्दोग्य (५।१०)॥

अन्वयः—तत्, एव, हि, एतत्, वनम्, अद्य, पुनः, दृष्टम्, यस्मिन्, पुरा, चिरम्, एव, वसन्तः, आरण्यकाः, च, गृहिणः, च, वयम्, स्वधर्मे, रताः, सांसारिकेषु, सुखेषु, च, रसज्ञाः, अभूम॥ २२॥

शब्दार्थः--तत्=वह, अर्थात् पूर्वपरिचित, एव=ही, हि=यह यहाँ पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है, एतत्=यह, वनम्=वन, अद्य=आज, पुनः=फिर, दृष्टम्=दिखलाई पड़ा है; यस्मिन्=जिसमें, जहाँ, पुरा=पहले, चिरम्=बहुत दिनों तक, एव=ही, वसन्तः=निवास करते हुए, आरण्यकाः=वानप्रस्थ, च=तथा, गृहिणः=गृहस्थ, च=भी, वयम्=हम लोग, स्वधर्मे=अपने धर्म में, रताः=रत रहते हुए, सांसारिकेषु=सांसारिक, सुखेषु= सुखों के, रसज्ञाः=रस के अनुभव करने वाले, रस के जानकार, अभूम=हुए थे, बने थे॥ २२॥

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुलल[1]तानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीप[2]निचुलानि सरित्तटानि ॥ २३ ॥

मेघमालेव [3]यश्चायमारादिव विभाव्यते।
गिरिः प्रस्रवणः सोऽयमत्र[4] गोदावरी नदी ॥ २४ ॥

टीका—सम्प्रति भगवान् रघुमणिरत्र वने सीतया सह कृतं निवासादिसुखं स्मरति—एतदिति। तद्=प्रियया सह पूर्वमध्युषितमित्यर्थः, एवकारोऽत्रान्ययोगव्यवच्छेदार्थः, हीति पादपूर्तौ, एतत्=इदम्, वनम्=अरण्यम्, अद्य=सम्प्रति, सीतायाः वियोगकाले इति भावः, पुनः=मुहुः, दृष्टम्=अवलोकितम्, यस्मिन्=यत्र वने, पुरा=पूर्वम्, चिरम्=बहुकालम्, एव=च, वसन्तः=निवसन्तः, आरण्यकाः=वानप्रस्थाश्च, गृहिणश्च=गृहस्थाश्च, राज्यं परित्यज्य वने वासात् वानप्रस्थत्वं परिवारेण सह निवासात् गृहस्थत्वञ्च बोध्यम्, वयम्=रामादयः, स्वधर्मे=क्षत्रोचिते स्वकर्तव्ये, रताः=संलग्नाः, सांसारिकेषु=मानवजन्मफलभूतेषु, सुखेषु=आनन्देषु, च=अपि, रसज्ञाः=आस्वादज्ञाः, अभूम=जाताः। वस्तुतस्त्वत्रैव वासकाले विवाहादीनां किं प्रयोजनमिति विषये रसज्ञा वयं जाता इति हृदि स्थितोऽर्थः। अत्र तुल्ययोगिता विशेषश्चालङ्कारौ। वसन्ततिलका छन्दः ॥ २२ ॥

टिप्पणी—**दृष्टम्**—√दृश्+क्त+विभक्तिकार्यम्।

वसन्तः—√वस्+शतृ+प्र॰ बहु॰ विभक्तिकार्यम्।

आरण्यकाश्च गृहिणश्च—राम राज्य का परित्याग कर मुनि-वृत्ति से जीवन-निर्वाह करने के लिये वन में आये थे। अतः वे वानप्रस्थ थे। यतः वे वन में भी सपत्नीक थे अतः गृहस्थ भी थे।

रसज्ञाः—रस+√ज्ञा+क (अ)+विभक्तिकार्यम्।

यहाँ 'आरण्यकाः' और 'गृहिणः' इन दो प्रस्तुतों का 'स्वधर्मे रताः' इस एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार तथा वनवास के साथ गृहस्थ धर्म का भी पालन होने से विशेष अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥ २२ ॥

अन्वयः—विरुवन्मयूराः, एते, ते, एव, गिरयः, (सन्ति); मत्तहरिणानि, तानि, एव, वनस्थलानि, (सन्ति); आमञ्जुवञ्जुलतानि, नीरन्ध्रनीपनिचुलानि, च, अमूनि, तानि, सरित्तटानि, (सन्ति) ॥ २३ ॥

---

१. ॰ रुतानि, आमन्द्रमञ्जुलरुतानि, ॰ ललितानि, २. नील, ३. यः श्याम आरादपि, ४. यत्र।

कूजते हुए मयूरों से युक्त ये वे (पूर्वपरिचित) ही पर्वत (हैं), मत्त हरिणों वाले वे (पूर्वपरिचित) ही वन-प्रदेश (हैं), अत्यन्त मनोहर वेतसलताओं से युक्त अति घने कदम्ब तथा हिज्जल वृक्षों वाले वे (पूर्वपरिचित ही) नदियों के तट हैं ॥ २३ ॥

बादलों की पंक्ति के समान जो यह समीप में ही स्थित-सा प्रतीत हो रहा है, यह वही प्रस्रवण नामक पर्वत है, यहीं गोदावरी नदी (सुशोभित है) ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—विरुवन्मयूराः=कूजते हुए मयूरों से युक्त, एते=ये, ते=वे, (पूर्व-परिचित), एव=ही, गिरयः=पर्वत, (सन्ति = हैं); मत्तहरिणानि=मत्त हरिणों वाले, तानि=वे (पूर्व परिचित), एव=ही, वनस्थलानि=वन-प्रदेश, (सन्ति=हैं); आमञ्जुवञ्जुललतानि=अत्यन्त मनोहर वेतसलताओं से युक्त, नीरन्ध्रनीपनिचुलानि= अति घने (अर्थात् अविरल) कदम्ब तथा हिज्जल वृक्षों वाले, च=भी, अमूनि= ये, तानि=वे (अर्थात् पूर्वपरिचित), सरित्तटानि=नदियों के तट, (सन्ति = हैं) ॥ २३ ॥

टीका--सीतया सहाध्युषितान् स्वलीलालास्यप्रदेशान् तान् तान् भूभागानवलोक्य रघुमणिर्वक्ति—**एत इति**। विरुवन्मयूराः—विरुवन्तः=सुमधुरं केकारवं कुर्वन्तः मयूराः=बर्हिणः येषु तथाविधाः, एते=इमे पुरतो दृश्यमानाः, ते=पूर्वं सीतया सहाध्युषिताः, एव, गिरयः=पर्वताः, सन्ति। मत्तहरिणानि—मत्ताः = मदयुक्ताः, मदातिरेकात् प्रफुल्ला इत्यर्थः, हरिणाः=मृगाः येषु तानि तथाविधानि, तानि = पूर्वं सीतया सह विहारार्थं पर्यटितानि, एव, वनस्थलानि=अरण्यभागाः, सन्तीति क्रियाशेषः, आमञ्जुवञ्जुललतानि—आमञ्जवः = अतिमनोहराः वञ्जुल-लताः=वेतसलताः येषु तानि तथोक्तानि, नीरन्ध्रनीपनिचुलानि—नीरन्ध्राः=घनप्ररूढाः नीपाः=कदम्बाः, 'नीला' इति पाठे श्यामा इत्यर्थः, निचुलाः=हिज्जलाः 'निचुलो हिज्जलोऽम्बुज' इत्यमरः, येषु तानि तथोक्तानि, च=अपि, अमूनि = सम्मुखवर्तीनि, तानि = पुरा विहृतानि, सरित्तटानि—सरिताम्=नदीनाम् तटानि=तीराणि, सन्तीति सर्वत्र क्रिययाऽन्वयः। अत्र गिरिपर्वतादीनामेकेन क्रियारूपधर्मेणान्वयात् तुल्ययोगिताऽलङ्कारः। वसन्ततिलका च छन्दः ॥ २३ ॥

टिप्पणी—यहाँ पर्वत तथा वनस्थलादि का एक क्रिया रूप धर्म के साथ अन्वय होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण—

'उक्ता वसन्ततिलका त-भ-जा ज गौ गः' ॥ २३ ॥

अन्वयः--मेघमाला, इव, यः, च, अयम्, आरात्, इव, विभाव्यते; अयम्, सः, प्रस्रवणः, गिरिः, (अस्ति); अत्र, गोदावरी, नदी, (विलसति) ॥ २४ ॥

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास-
स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु ।
गोदावर्याः पयसि [1]विततानोकहश्यामलश्री-
रन्तःकूजन्मुख[2]रशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—मेघमाला=बादलों की पंक्ति के, इव=समान, यः=जो, च=यह यहाँ पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त है, अयम्–यह, आरात्=समीप में ही स्थित, इव=सा, विभाव्यते=प्रतीत हो रहा है; अयम्=यह, सः=वही, प्रस्रवणः=प्रस्रवण नामक, गिरिः=पर्वत, (अस्ति=है); अत्र=यहीं, गोदावरी=गोदावरी, नदी=नदी, (विलसति=सुशोभित है) ॥ २४ ॥

टीका—गोदावरीजन्मभुवः प्रस्रवणस्य समीपे कृतं विलासादिकं स्मृत्वाऽऽह भगवान् रामः—**मेघमालेव** । मेघमाला—मेघानाम्=पयोदानाम्, माला=पंक्तिः, इव=यथा, योऽयम्=योऽसौ पुरोवर्तिपदार्थः, आरात्=समीस्थः, इव = यथा, विभाव्यते=ज्ञायते; अयम्=एषः, सः = पूर्वं सीतया सह कृतस्य विलासस्याश्रयस्थलम्, प्रस्रवणो गिरिः=प्रस्रवणपर्वतः, अस्तीति क्रियाशेषः, अत्र=अस्मिन् पर्वते, गोदावरी नदी = गोदावरी सरित्, विलसतीति शेषः । अत्रोत्प्रेक्षोपमा चालङ्कारौ । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ २४ ॥

टिप्पणी—यहाँ 'मेघमालेव' में उपमा तथा 'आरादिव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र । छन्द का लक्षण—

'युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्' ॥ २४ ॥

अन्वयः—अस्य, एव, महति, शिखरे, गृध्रराजस्य, वासः, आसीत् । तस्य, अधस्तात्, वयम्, अपि, तेषु, पर्णोटजेषु, रताः । यत्र, गोदावर्याः, पयसि, विततानोकहश्यामलश्रीः, अन्तःकूजन्मुखरशकुनः, रम्यः, वनान्तः, (वर्तते) ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—अस्य=इस (प्रस्रवण पर्वत) के, एव=ही, महति=महान्, शिखरे=शिखर पर, गृध्रराजस्य=गीधराज (जटायु) का, वासः=निवास-स्थान, आसीत्=था । तस्य=उसके, अधस्तात्=नीचे, वयम्=हम लोग, अपि=भी, तेषु=उन, पर्णोटजेषु=पर्णशालाओं में, रताः=आराम से रहते थे । यत्र=जहाँ, गोदावर्याः=गोदावरी के, पयसि=जल में, विततानोकहश्यामलश्रीः=फैली हुई (अर्थात् प्रतिबिम्बित) वृक्षों की श्यामल शोभावाला, अन्तःकूजन्मुखरशकुनः=(वन के) मध्य में कलरव

---

१. विनत, विततश्यामलानोकहश्रीः, २. मधुर ।

इस (प्रस्रवण पर्वत) के ही महान् शिखर पर गीधराज (जटायु) का निवास-स्थान था, उसके नीचे हम लोग भी उन पर्णशालाओं में सुखपूर्वक रहते थे, जहाँ गोदावरी के जल में फैली हुई (अर्थात् प्रतिबिम्बित) वृक्षों की श्यामल शोभावाला, (अपने अर्थात् वन के) भीतर कलरव करते हुए पक्षियों से युक्त मनोहर वन-प्रान्त (है) ॥ २५ ॥

करते हुए पक्षियों से युक्त, रम्यः = मनोहर, वनान्तः = वन-प्रान्त, (वर्तते = है) ॥ २५ ॥

टीका—अस्यैवेति । अस्य=एतस्य, पुरो वर्तमानस्येत्यर्थः, एवेत्यवधारणे, महति=विशाले, उत्तुङ्ग इति यावत्, शिखरे=शृङ्गे, गृध्रराजस्य – गृध्राणाम्=पक्षिविशेषाणाम् राजा=अधिपतिस्तस्य, जटायोरित्यर्थः, वासः=निवासस्थानम्, आसीत्= अभूत् । तस्य=तच्छिखरस्य, अधस्तात्=निम्नप्रदेशे, वयमपि=वयं रामादयोऽपीत्यर्थः, तेषु=पूर्वाध्युषितेषु, तदानीं सुखसाधनोष्वित्यर्थः, पर्णोटजेषु=पर्णशालासु, रताः– सुखेन=स्थिताः इत्यर्थः । यत्र = यस्मिन् प्रदेशे, गोदावर्याः=तन्नामधेयायाः सरितः, पयसि=जले, विततेत्यादि—वितता=प्रसृता, प्रतिबिम्बिता इत्यर्थः, अनोकहानाम्= वृक्षाणाम् श्यामला=हरिद्वर्णा श्रीः=शोभा यस्मिन् स तथोक्तः, अन्तरिति—अन्तः= अभ्यन्तरे वनान्तरे इत्यर्थः, कूजन्तः=शब्दायमानाः अतएव मुखराः=रुवन्तः, गीतपरा इति यावत्, शकुनाः=पक्षिणः यस्मिन् स तादृशः, अथवा 'अन्तःकूजन्मुखरशकुनः' इत्येकपदाभावे—मुखराः=शब्दायमानाः शकुनाः=पक्षिणो यस्मिन् स तथोक्तः, अत एव अन्तर्मध्ये कूजन्=प्रतिध्वनन्, रम्यः=मनोहरः, वनान्तः=वनप्रदेशः वर्तत इति क्रियाशेषः । अत्र मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—अधस्तात्—अधरस्मिन् इति अधस्तात् । अधर+अस्तात् । अत्र 'दिक्शब्देभ्य०' (५-३-२७) इत्यनेन अस्तातिं प्रत्यये, 'अस्ताति च' (५-३-४०) इति सूत्रेण अधरस्याधादेशे रूपसिद्धिः ।

पर्णोटजेषु—उटज का ही अर्थ होता है—घास-फूस की मड़ई । अतः पर्ण शब्द की आवश्यकता नहीं है । किन्तु जिस प्रकार कान के आभूषण कुण्डल के लिये 'कर्णकुण्डल' शब्द प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार यहाँ 'पर्णोटज' शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

अन्तःकूजन्मुखरशकुनः—जीवानन्द विद्यासागर ने यहाँ दो पद 'अन्तःकूजन्', तथा 'मुखरशकुनः' मानकर इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—मुखराः शकुनाः यत्र स मुखरशकुनः, अतएव अन्तःकूजन् अन्तःकूजन्निव ।

इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है । छन्द का लक्षण—'मन्द्राक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्' ॥ २५ ॥

अत्रैव सा पञ्चवटी, यत्र चिरनिवासेन[1] विविधविस्रम्भातिप्रसङ्ग-साक्षिणः प्रदेशाः, प्रियायाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता[2]। [3]किमिदमापतितमद्य रामस्य[4] ? संप्रति हि—

[5]चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल[6] इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
[7]पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन[8] इव ॥ २६ ॥

शब्दार्थः--विविधविस्रम्भातिप्रसङ्गसाक्षिणः--अनेक विश्वस्त कार्यों (गुप्त वार्तालाप आदि विलास-चेष्टाओं) के अति-विस्तार के साक्षी। आपतितम्= आ पड़ा ॥

टीका सम्प्रति भगवान् रामः पञ्चवटीसन्निकृष्टप्रदेशान् विलोक्य तत्र सीतया सह कृतान् तांस्तान् विस्रम्भान् स्मरन् विलपति--अत्रैवेति। यत्र= यस्यां पञ्चवटयाम्, विविधेत्यादि--विविधानाम्=अनेकप्रकाराणाम् विस्रम्भाणाम्= विश्वस्तविलासानाम्, अतिप्रसङ्गस्य = अतिविस्तारस्य, आधिक्यस्येति यावत्, साक्षिणः = साक्षाद्द्रष्टारः, प्रदेशाः सन्ति। आपतितम्=समागतम्। भृशं दुःसहा दशाऽऽपतिता मयीति भावः ॥

टिप्पणी--आपतितम्--राम अपनी प्रियतमा सीता के साथ पञ्चवटी में रहते थे। जङ्गल के बीचो-बीच स्थित यह स्थान पूर्ण निर्जन था। लक्ष्मण कन्द-मूल तथा फल आदि लाने के लिये बाहर चले जाते थे। अब क्या था ? दोनों के ऊपर उमड़ती हुई जवानी का वेग पूर्ण एकान्त पाकर छलक पड़ता था। काम की विविध पूजाएँ प्रारम्भ हो जाती थीं। इस बात को केवल यहाँ के प्रदेश तथा वृक्ष आदि ही जानते थे। आज राम उन-उन स्थानों को देखकर मर्माहत हो रहे हैं। प्रत्येक प्रेमी तथा प्रेमिका की यही दशा होती है ॥

अन्वयः--चिरात्, वेगारम्भी; प्रसृतः, तीव्रः, विषरसः, इव; कुतश्चित्, संवेगात्, प्रचलः, शल्यस्य, शकलः, इव; हृन्मर्मणि, रूढग्रन्थिः, स्फुटितः, व्रणः, इव; पुराभूतः, शोकः, नूतनः, इव, पुनः, माम्, विकलयति ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—चिरात्=बहुत दिनों के बाद, वेगारम्भी=(पीड़ा के) प्रवाह को उत्पन्न करनेवाले; प्रसृतः=चतुर्दिक् फैले हुए, तीव्रः=तीक्ष्ण, विषरसः= विषरस

---

१. निवासेन, २. प्रतिवसति इत्यधिकः पाठः, ३. तत्किमिदम्, ४. रामहतकस्य, ५. चिरोद्वे०, ६. चलित, निहित, ७. घनीभूतः, ८. मूर्छयति च, विकलयति संमूर्च्छ०, विदलयति, विकलयति, शकलयति। (घन०)

यहीं वह पञ्चवटी है, जहाँ चिर काल तक निवास करने के कारण अनेक विश्वस्त कार्यों (गुप्त वार्तालाप आदि विलास-चेष्टाओं) के अति-विस्तार के साक्षी प्रदेश तथा प्रिया (सीता) की प्रिय सखी वासन्ती नामक वन-देवता है। आज राम के ऊपर यह क्या आ पड़ा ? क्योंकि इस समय—

बहुत दिनों के बाद (पीड़ा के) प्रवाह को उत्पन्न करने वाले, चतुर्दिक् फैले हुए तीक्ष्ण विष-रस के समान, कहीं से बड़े वेग के साथ चले हुए बाण के अग्र-भाग (फलक) के टुकड़े के सदृश, हृदय के मर्म-स्थल में गाँठ बाँधे हुए (अर्थात् उपव्रणों से युक्त) फूटे हुए फोड़े के तुल्य पुराना शोक नवीन-सा (होकर) फिर मुझे विकल बना रहा है ॥ २६ ॥

के, इव=समान; कुतश्चित्=कहीं से, संवेगात्=बड़े वेग से, प्रचलः=चले हुए शल्यस्य=बाण के अग्रभाग (फलक) के, शकलः=टुकड़े के, इव=सदृश; हृन्मर्मणि-हृदय के मर्म-स्थल में, रूढग्रन्थिः=गाँठ बाँधे हुए, थाला बाँधे हुए, उपव्रणों से युक्त, स्फुटितः=फूटे हुए, व्रणः=फोड़े के, इव=समान; पुराभूतः=पुराना, शोकः=शोक, नूतनः=नवीन, इव=सा, पुनः=फिर, माम्=मुझे, विकलयति=विकल बना रहा है, विह्वल बना रहा है ॥ २६ ॥

टीका—चिरादिति। चिरात्=बहोः कालादनन्तरम्, वेगारम्भी—वेगम्=वेदना-शीघ्रत्वम् आरभते=उत्पादयति इति वेगारम्भी, विक्षिप्तकुक्कुरादीनां विषस्येव बहोः कालादनन्तरं परिणामीत्यर्थः, प्रसृतः=सर्वावयवेषु व्याप्तः, तीव्रः=तीक्ष्णः, विषरसः=विषद्रवः, इव=यथा; तथा कुतश्चित्=यस्मात् कस्मादपि अज्ञातस्थानादित्यर्थः, संवेगात्=अतिवेगात्, प्रचलः=चलितः, शल्यस्य=बाणाग्रस्य, शकलः=खण्डः, इव=यथा; हृन्मर्मणि=हृदयमर्मस्थले, रूढग्रन्थिः—रूढाः=प्रादुर्भूताः, ग्रन्थयः=उपव्रणाः यस्मात् स तथोक्तः, स्फुटितः=विदीर्णः, वस्तुतस्तु दलितः, व्रण इव=स्फोटक इव; पुराभूतः=प्राचीनः, शोकः=प्रियावियोगसन्तापः, नूतन इव=नवीन इव, पुनः=मुहुः, माम्=व्याकुलं करोति, शून्यं विदधाति। 'क्वचित्कस्पर्शसार्वत्रिकप्रसरणाभ्यां प्रथमः दृष्टान्तः। प्रतिकार्यत्वशङ्काव्युदासाय द्वितीयः। स्वल्पकालत्वव्यावृत्तये तृतीयः।' इति वीरराघवः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः शिखरिणी च छन्दः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—चिरात्—यदि पागल कुत्ता या सियार आदि काट लेते हैं, तो उसका तात्कालिक असर कुछ नहीं होता। चार छः महीने के बाद ही उसका विष शरीर में फैलना शुरू होता है।

हृन्मर्मणि—हृदय के कोमल भाग में।

इस श्लोक में चार 'इव' के द्वारा चार क्रियाओं की उत्प्रेक्षा होने से चार क्रियोत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं।

तथाऽपि[1] तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि । (निरूप्य ।) अहो ! अनवस्थितो [2]भूतसन्निवेशः ! तथा हि—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना[3] तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम् ।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ।। २७ ।।

हन्त[4] हन्त ! परिहरन्तमपि[5] मां[6] पञ्चवटी[7] स्नेहाद्बलादाकर्षतीव । (सकरुणम् ।)

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है--शिखरिणी । छन्द का लक्षण--'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ।। २६ ।।

शब्दार्थः--तथाऽपि=तो भी, शोक का उद्दीपन करने पर भी, पूर्वसुहृदः=पुराने मित्र । निरूप्य=ध्यान से देखकर, अनवस्थितः=अस्थिर, परिवर्तनशील, भूतसन्निवेशः= पदार्थों की स्थिति ।।

टीका--तथापीति । तथाऽपि=एतेषां भूभागानां शोकोद्दीपकत्वेऽपि, पूर्वसुहृदः= पूर्वपरिचितान्, भूमिभागान्=भूप्रदेशान्, पश्यामि=अवलोकयिष्यामि । निरूप्य= इतस्ततो विशेषेणावलोक्य, अनवस्थितः=परिवर्तनशीलः, भूतसन्निवेशः=पदार्थस्थितिः । अनियता पदार्थस्थितिरिति वीरराघवः ।

टिप्पणी—**पूर्वसुहृदः**—जन –स्थान में वास के समय वहाँ के वृक्ष राम को छाया करके घाम तथा वर्षा आदि से बचाते थे, भू-भाग कन्दमूल आदि प्रदान कर उनकी भूख की ज्वाला शान्त करते थे । अतः राम उन्हें सुहृद् बतला रहे हैं ।

सन्निवेशः---सम् + नि + √विश् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।।

अन्वयः--यत्र, पुरा, सरिताम्, स्रोतः, तत्र, अधुना, पुलिनम्, (वर्तते); क्षितिरुहाम्, घन-विरल-भावः, विपर्यासम्, यातः; बहोः, कालात्, दृष्टम्, इदम्, वनम्, अपरम्, इव, मन्ये; शैलानाम्, निवेशः, इदम्, तत्, इति, बुद्धिम्, द्रढयति ।। २७ ।।

शब्दार्थः—यत्र=जहाँ, पुरा=पहले, सरिताम्=नदियों का, स्रोतः=प्रवाह था, तत्र=वहाँ, अधुना=अब, पुलिनम्=रेतीला किनारा, (वर्तते=है); क्षितिरुहाम्= वृक्षों की, घन-विरल-भावः=सघनता तथा विरलता, विपर्यासम्=परिवर्तन को, यातः=प्राप्त हो गई है; बहोः=बहुत, कालात्=समय के अनन्तर, दृष्टम्=देखे गये,

---

१. तथाविधानपि, २. भूमिसन्निवेशः, ३. अभवत्, ४. हन्त, ५. परिहरन्तमिव, ६. मामितः, ७. पञ्चवटीस्नेहो ।

तो भी (अर्थात् शोक का उद्दीपन करने पर भी) सम्प्रति पुराने मित्र (अर्थात् पहले के परिचित) (इन) भूमि-प्रदेशों को देखूँगा (ही)। (ध्यान से देखकर) ओह, पदार्थों की स्थिति परिवर्तनशील है। जैसे कि--

जहाँ पहले नदियों का प्रवाह था, वहीं अब रेतीला किनारा (है)। वृक्षों की सघनता तथा विरलता परिवर्तन को प्राप्त हो गई हैं (अर्थात् वृक्ष पहले जहाँ घने थे वहाँ अब विरल हो गये हैं तथा जहाँ विरल थे वहाँ घने हो गये हैं)। बहुत समय के अनन्तर देखे गये इस वन को दूसरा-सा (ही) समझ रहा हूँ। (किन्तु) पर्वतों की स्थिति यह 'वही (वन) है'--इस विचार को दृढ़ बना रही है ॥ २७ ॥

दुःख है, दुःख है। परित्याग करते हुए मुझे पञ्चवटी प्रेम से मानो बलपूर्वक खींच रही है। (करुणा के साथ)

इदम्=इस, वनम्=वन को, अपरम्=अन्य, दूसरा, इव=सा, मन्ये=समझ रहा हूँ; शैलानाम्=पर्वतों की, निवेशः=स्थिति, इदम्=यह, तत्=वही (वन) है, इति=इस, बुद्धिम्=विचार को, द्रढयति=दृढ़ बना रही है ॥ २७ ॥

टीका--कस्मादनवस्थितो भूतसन्निवेशः ? इत्याह—**पुरेति**। यत्र=यस्मिन् स्थाने, पुरा=प्राक्, अस्मिन्नेव वने सीतया सहावस्थानकाल इत्यर्थः, सरिताम्=नदीनाम्, स्रोतः=प्रवाहः, आसीदिति शेषः, तत्र=तस्मिन् प्रदेशे, अधुना=सम्प्रति, पुलिनम्=सलिलसमुत्थितं सिकतामयं तटम्, वर्तत इति शेषः। क्षितिरुहाम्=वृक्षाणाम्, घन-विरलभावः=घनत्वं विरलत्वञ्च, विपर्यासम्=वैपरीत्यम्, यातः=गतः। पुरा यत्र वृक्षा घनास्तत्राधुना विरलाः यत्र च विरलास्तत्र पुनर्घना इत्यर्थः। एवं सरित्सु वृक्षेषु च अन्यरूपत्वे जाते बहोः कालात्=बहुसमयानन्तरमित्यर्थः, दृष्टम्=अवलोकितम्, इदम्=एतत्, वनम्=अरण्यम्, अपरम्=अन्यम्, इव=यथा, मन्ये=अनुभवामि। यदि वनं परिवर्तितमिव जातं तत् कस्मान्निश्चिनोषि तदेवैतद्वनमिति जिज्ञासायामाह—निवेश इति। शैलानाम्=पर्वतानाम्, निवेशः=अवस्थानम्, इदम्=परिदृश्यमानमित्यर्थः, तत्=तदेव वनं यत्र सीतया सह मया निवसितमित्यभिप्रायः, इति=इत्याकाराम्, बुद्धिम्=धियम्, विचारमिति यावत्, प्रत्यभिज्ञानमिति भावः, द्रढयति=व्यवस्थापयति, स्थिरीकरोतीत्यर्थः। अत्र काव्यलिङ्गमुत्प्रेक्षा चालङ्कारौ। शिखरिणी छन्दः ॥ २७ ॥

टिप्पणी--दृष्टम्=देखा गया। √दृश्+क्त+विभक्तिकार्यम्।

इस श्लोक में काव्यलिङ्ग तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—हन्तः=दुःख है। परिहरन्तम्=बरकाते हुए, परित्याग करते हुए। बलात्=जबर्दस्ती, बलपूर्वक, आकर्षति=खींच रही है।

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा[1] स्वे गृहे
[2]यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत[3] ।
एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तामेव[4] रामः कथं
पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा ॥ २८ ॥

(प्रविश्य ।)

शम्बूकः—जयतु देवः ! देव, भगवानगस्त्यो मत्तः श्रुतसन्निधानस्त्वामाह—"[5]परिकल्पितावरणमङ्गला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे च[6]

टीका—हन्तेति । हन्तेति खेदसूचकमव्ययम् । परिहरन्तम्=परित्यजन्तम् । बलात्=हठात्, आकर्षति=प्रत्यावर्तयति ॥

टिप्पणी—**परिहरन्तम्**—राम के कहने का भाव यह है कि सीता के विना पञ्चवटी को देखकर मुझे मार्मिक व्यथा हो रही है। अतः मैं इसे छोड़कर भागना चाहता हूँ। किन्तु यह मुझे नहीं छोड़ रही है। इसके प्रत्येक भाग को देखने की हार्दिक उत्कण्ठा मुझे यहाँ से जाने नहीं दे रही है। परि+√हृ+शतृ+द्वितीयैकवचने विभक्तिकार्यम् ।

स्नेहात्—√स्निह्+घञ्+विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—यस्याम्, मया, तया, सह, ते, दिवसाः, स्वे, गृहे, यथा, नीताः; दीर्घाभिः, यत्सम्बन्धिकथाभिः, एव, सततम्, आस्थीयत; सम्प्रति, नाशितप्रियतमः, एकः, पापः, रामः, ताम्, एव, पञ्चवटीम्, कथम्, विलोकयतु, वा, असम्भाव्य, गच्छतु ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—यस्याम्=जिस (पञ्चवटी) में, मया=मेरे द्वारा, तया=उस (सीता) के, सह=साथ, ते=वे, दिवसाः=दिन, स्वे=अपने, गृहे=घर के, यथा=समान, नीताः=बिता दिये गये थे; दीर्घाभिः=लम्बी-लम्बी, यत्सम्बन्धिकथाभिः=जिससे सम्बद्ध कथाओं से, एव=ही, सततम्=निरन्तर, आस्थीयत=रहा गया; सम्प्रति=इस समय, नाशितप्रियतमः=प्रियतमा (सीता) को नष्ट करने वाला, एकः=अकेला, पापः=पापी, रामः=राम, ताम्=उस, एव=ही, पञ्चवटीम्=पञ्चवटी को, कथम्=कैसे, विलोकयतु=देखे, वा=अथवा, असम्भाव्य=विना सत्कार किये, गच्छतु=चला जाय ॥ २८ ॥

टीका—**यस्यामिति** । यस्याम्=यत्र पञ्चवट्याम्, मया=मया रामेणेत्यर्थः, तया=तया सीतया, सह=साकम्, ते=अत्र पूर्वमनुभूताः, दिवसाः=दिनानि, स्वे=

---

१. पुनः, २ तत्सम्बन्ध, ३. आस्थीयते, ४. अद्य, ५. परिकल्पितविमानावतर०, परिकलिता-वरण-भरण; ७. चागस्त्यायनाः ।

जिस (पञ्चवटी) में मेरे द्वारा उस (सीता) के साथ वे (वनवास के) दिन, अपने घर के समान, बिता दिये गये थे; (तथा) लम्बी-लम्बी जिससे सम्बद्ध कथाओं से ही (अर्थात् जिसकी लम्बी-लम्बी कथाओं को कहकर) निरन्तर (अयोध्या में) रहा गया; इस समय प्रियतमा (सीता) को नष्ट करने वाला अकेला पापी राम उसी पञ्चवटी को कैसे देखे ? अथवा (उसका) विना सत्कार किये (कैसे) चला जाय ? ॥ २८ ॥

(प्रवेश करके)

शम्बूक--महाराज विजयी बनें। महाराज, मुझसे (आपकी यहाँ) उपस्थिति सुनकर भगवान् अगस्त्य ने आपसे कहा है—'आरती आदि मङ्गलाचार की तैयारी की हुई स्नेहपूर्ण लोपामुद्रा तथा सभी महर्षि (आपकी) प्रतीक्षा कर रहे हैं।

स्वकीये, गृहे=राजभवने, यथा=इव, ('यथा तथैवं साम्ये' इत्यमरः), नीता=अतिवाहिताः; 'न केवलं रात्रयो नीताः किन्तु दिवसा अपि नीता इति दिवसपदेन व्यज्यते' इति वीरराघवः; दीर्घाभिः=अतिविस्तृताभिः, यत्सम्बन्धिकथाभिः—यस्याः= पञ्चवट्याः सम्बन्धिन्यः=विषयिण्यः कथाः=आलापास्ताभिः, कर्त्रीभिः, एव=हि, एवकारेण तु कथान्तरप्रवृत्तिव्युदासः कृतः, सततम्=अहर्निशम्, आस्थीयत=स्थितम्, आवाभ्यामिति शेषः; सम्प्रति=अधुना, नाशितप्रियतमः—नाशिता=नाशं प्रापिता, नाशार्थं वने परित्यक्तेत्यर्थः, प्रियतमा=प्रिया येन तादृशः, एकः=एकाकी, सीताशून्य इति भावः, पापः=पापकर्ता, रामः=अहं रामचन्द्रः, तामेव=तादृशीमेव, पञ्चवटीम्, कथम्=केन प्रकारेण, विलोकयतु=अवलोकयतु, वा=अथवा, असम्भाव्य=दर्शनावस्थानादिना असम्मान्य, गच्छतु=इतो व्रजतु। पञ्चवट्या दर्शनं तां परित्यज्य गमनं वेत्युभयं दुःसहमिति भावः। अत्रोपमा काव्यलिङ्गञ्चालङ्कारौ। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २८ ॥

टिप्पणी—असम्भाव्य—न+सम्+$\sqrt{}$भू+णिच्+ल्यप्। विना सत्कार किये। पञ्चवटी में रहकर उसके सभी पूर्वपरिचित स्थान आदि को निरखना, छूना तथा छाती से लगाना ही उस (पञ्चवटी) का सत्कार करना है।

'स्वे गृहे' में उपमा अलङ्कार, राम के पापी होने में कारण है—'नाशितप्रियतमः' अतः काव्यलिङ्ग भी अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित। छन्द का लक्षण— 'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—मत्तः=मुझसे, श्रुतसन्निधानः=सामीप्य अथवा उपस्थिति सुननेवाले (सुनकर), परिकल्पितावरणमङ्गला=आरती आदि मङ्गलाचार की तैयारी की हुई, वत्सला=स्नेहपूर्ण। सम्भावय=सम्मानित कीजिये। प्रजविना=तीव्रगामी।

महर्षयः। तदेहि। सम्भावयाऽस्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधसज्जो[1] भव' इति।

रामः—यथाज्ञापयति भगवान्।

शम्बूकः—इत इतो देवः[2]।

रामः—(पुष्पकं प्रवर्तयन्।) भगवति पञ्चवटि ! [3]गुरुजनादेशोपरोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।

शम्बूकः—देव ! पश्य—

[4]गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटा[5]घूत्कारवत्कीचक-
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः [6]क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः।

गुरुजनादेशोपरोधात्=पूज्य जनों की आज्ञा के अनुरोध के कारण, अतिक्रमः=उल्लंघन, उपेक्षा करके जाना॥

टीका—शम्बूक इति। मत्तः=मम मुखादित्यर्थः, श्रुतसन्निधानः—श्रुतम्=आकर्णितम्, सन्निधानम्=सामीप्यागमनम् येन स तादृशः, परिकल्पितावरणमङ्गला—परिकल्पितम्=सज्जीकृतम्, आवरणमङ्कलम्=नीराजनादिकं यया सा तादृशी, वत्सला=त्वयि स्नेहपूर्णा। सम्भावय=दर्शनेन सम्मानयेत्यर्थः। प्रजविना=तीव्रगामिना। गुरुजनादेशोपरोधात्—गुरुजनानाम्=पूज्यजनानाम्, आदेशस्य=आज्ञायाः, उपरोधात्=अनुवर्तनात्, अतिक्रमः=उल्लङ्घनम्। उचिताचारं विना अतिक्रम्य गमनमित्यर्थः॥

टिप्पणी—परिकल्पित०—प्राचीन समय में स्त्रियाँ अपने स्नेही व्यक्ति के बाहर से आने पर आरती उतारा करती थीं।

लोपामुद्रा—यह अगस्त्य मुनि की पत्नी का नाम था। वनवास के समय राम आदि अगस्त्य के आश्रम में गये थे।

प्रजविना—प्र + √जव + इनिः + विभक्तिकार्यम्।

उपगत्य=जाकर, पहुँच कर। उप + √गम् + ल्यप्।

प्रवर्तयन्—प्र + √वृत् + णिच् + शतृ + विभक्त्यादिकार्यम्।

अतिक्रमः—अति + √क्रम + घञ् + विभक्तिकार्यम्॥

अन्वयः—गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः, क्रौञ्चाभिधः, अयम्, गिरिः, (अस्ति); एतस्मिन्, प्रचलताम्, प्रचलाकिनाम्, कूजितैः, उद्वेजिताः, कुम्भीनसाः, पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु, उद्वेल्लन्ति॥ २९॥

---

१. अश्वमेधाय सज्जो भविष्यसीति, २. इतस्तर्हि देवः प्रवर्तयतु पुष्पकम्, इत इत एतु देवः, ३. गुरुजनोपरोधात्, गुरुजनानुरोधात्, ४. कूजत्, ५. घुक्कार, ६. क्रौञ्चावतोऽयं।

अतः आइए और हमें (दर्शन देकर) सम्मानित कीजिये। उसके बाद तीव्रगामी पुष्पक विमान से अयोध्या पहुँचकर अश्वमेध (यज्ञ) के लिये तत्पर हो जाइए।'

राम--भगवान् (अगस्त्य) जैसी आज्ञा कर रहे हैं (वैसा ही करूँगा)।

शम्बूक—महाराज, इधर से, इधर से (आइये)।

रामः—(पुष्पक को सञ्चालित करते हुए) देवी पञ्चवटी, पूज्य जनों की आज्ञा के अनुरोध के कारण क्षण भर के लिये राम के इस अतिक्रमण को क्षमा करें।

शम्बूक—महाराज, देखिये--

गूँजते हुए कुञ्जरूपी कुटीरों में उल्लुओं के समूह के घू-घू शब्द से युक्त, छिद्र वाले बाँसों के गुच्छों की तुमुल ध्वनि से चुप पड़ गये कौवों के समूह वाला, क्रौञ्च

शब्दार्थः—गुञ्जत्-कुञ्ज - कुटीर-कौशिक-घटा-घूत्कारवत्-कीचकस्तम्बाडम्बर - मूक-मौकुलि-कुलः=गूँजते हुए कुञ्जरूपी कुटीरों में उल्लुओं के समूह के घू-घू शब्द से युक्त, छिद्रवाले बाँसों के गुच्छों की तुमुल ध्वनि से चुप पड़ गये कौवों के समूह वाला, क्रौञ्चाभिधः=क्रौञ्चनामक, अयम्=यह, गिरिः=पर्वत, (अस्ति=है); एतस्मिन्=इस (पर्वत) पर, प्रचलताम् = इधर-उधर घूमते हुए, प्रचलाकिनाम्=मयूरों के, कूजितैः=कूकने से, उद्वेजिताः=घबड़ाए हुए, कुम्भीनसाः=सर्प, पुराण-रोहिणतरुस्कन्धेषु=पुराने चन्दन-वृक्ष के तनों पर, उद्वेल्लन्ति=इधर-उधर रेंग रहे हैं ॥ २९ ॥

टीका--शम्बूको भगवतो रामस्य चित्तविक्षेपमपाकुर्वन् मार्गे प्राकृतशोभामुपवर्णयन्नाह—**गुञ्जदिति**। गुञ्जत्कुञ्जेत्यादि--गुञ्जन्तः = अव्यक्तशब्दवन्तः ये कुञ्जाः=लताद्याच्छन्नानि स्थानान्येव कुटीराः=अल्पाः कुटयः इति कुञ्जकुटीराः ('अल्पा कुटी कुटीरः स्यात्' इत्यमरः), तेषु कौशिकघटाः=उलूकपङ्क्तयः तासाम्, अथवा गुञ्जन्तीनां=अव्यक्तं शब्दायमानानाम् कुञ्जकुटीरकौशिकघटानाम्=कुञ्जस्थपेचकसमूहानामित्यर्थः, ये घुत्काराः=घुत्घुत् इत्याकाराः रवाः तद्वन्तः=तद्विशिष्टाः ये कीचकस्तम्बाः=सच्छिद्रवेणुविशेषगुच्छाः ('वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इति 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ' इति चामरः) तेषाम् आडम्बरेण=तुमुलध्वनिना मूकानि=निःशब्दानि मौकुलीनाम्=वायसानाम् कुलानि=समूहाः यस्मिन् स तथोक्तः, क्रौञ्चाभिधः=तन्नामधेयः, अयम्=पुरतः परिदृश्यमान इत्यर्थः, गिरिः= पर्वतः, अस्तीति क्रियाशेषः। एतस्मिन्=परिदृश्यमाने क्रौञ्चाभिधे पर्वते, प्रचलताम्= इतस्ततः परिधावताम्, प्रचलाकिनाम्, प्रचलाकः=शिखण्डः एषामस्तीति प्रचलाकिनः= मयूराः तेषाम्, कूजितैः=केकाशब्दैः, उद्वेजिताः=उद्वेगं प्रापिताः, कुम्भीनसाः= भयङ्करसर्पाः, ('कुम्भीनसः क्रूरसर्पे स्त्रियां लवणमातरि' इति मेदिनी), पुराणेत्यादि--पुराणानाम्=प्राचीनानाम्, जीर्णानामिति यावत्, रोहिणतरूणाम्=चन्दन-

एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिण[1]तरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥ २९ ॥

अपि च--

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
[2]मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः[3] ।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥ ३० ॥

([4]इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति [5]महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते
पञ्चवटीप्रवेशो नाम द्वितीयोऽङ्कः ॥ २ ॥

वृक्षाणाम्, स्कन्धेषु=प्रकाण्डेषु, उद्वेल्लन्ति=कम्पमाना इतस्ततश्चलन्ति । 'वेल्ल चलने' । अत्र स्वभावोक्तिः, रूपकं विशेषोक्तिश्चालङ्काराः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २९ ॥

टिप्पणी—गुञ्जत्—कुञ्ज में भ्रमर तथा पक्षी आदि गूंज रहे हैं। अतः कवि कुञ्ज को गुञ्जायमान बतला रहा है।

कौशिकघटा०—उल्लुओं तथा कौओं में स्वाभाविक शत्रुता है। उल्लू कौवों को मार-मार कर परेशान कर देते हैं। अतः उल्लुओं के शब्दों के साथ छेदवाले बाँसों का शब्द सुनकर भय के मारे कौवे चुप हो गये हैं। यहाँ यह ध्यान रखना है कि उल्लुओं का तथा हवा से टकराकर शब्द करने वाले छेदवाले बाँसों का शब्द एक जैसा ही होता है।

घटा—हाथियों के समूह को घटा कहते हैं। किन्तु यहाँ इसका अर्थ केवल 'समूह' है।

कीचक०--जङ्गली बाँसों में, कीड़ों के खा लेने से, छेद हो जाते हैं। इस तरह के बांसों को 'कीचक' कहते हैं। जब हवा इन बाँसों से टकराती है तो उनमें शब्द होता है। यह शब्द उल्लुओं के शब्द से मिलता-जुलता होता है।

उद्वेजिताः—मयूरों तथा साँपों में जन्मजात शत्रुता होती है। मयूर साँपों को मारकर खा जाते हैं। अतः मयूरों के शब्द को सुनकर साँप डरकर इधर-उधर सरक रहे हैं।

---

१. चन्दन, रोहित, रौहिण, २. मेघालंकृत, मेघालंघित, ३. दक्षिणाः ।
४. इति निष्क्रान्तौ, ५. क्वचिदेतन्नास्ति ।

नामक यह पर्वत (है)। इस (पर्वत) पर भ्रमण करते हुए मयूरों के कूकने से घबड़ाए हुए सर्प पुराने चन्दन-वृक्ष के तनों पर इधर-उधर रेंग रहे हैं ॥ २९ ॥

और भी--

गुफाओं में कलकल शब्द करते हुए गोदावरी के जल से युक्त, जल भरे बादलों से आश्रित अग्रभाग होने के कारण नील शिखरवाले वे ही (पूर्वपरिचित) ये दक्षिण दिशा के पर्वत (हैं)। आपस में टकराने के कारण सटकर बहती हुई महा-तरङ्गों के कल-कलों से उमड़ते हुए वे ही ये गहरे जलवाले पावन नदियों के सङ्गम (हैं) ॥ ३० ॥

विशेष--श्लोक का सरलार्थ इस प्रकार है—हमारे पहले के देखे हुए ये वे ही दक्षिण दिशा के पर्वत हैं, जिनकी गुफाओं में कलकल शब्द करता हुआ गोदावरी का जल बहता है तथा जिनकी चोटियाँ नीलवर्ण की दीख पड़ रही हैं, क्योंकि उन (चोटियों) के एकदम ऊपरी हिस्से पर जल भरे बादल बैठे हैं। अत्यन्त गहरे जलवाले ये नदियों के वे ही हमारे पूर्वदृष्ट संगम हैं, जहाँ महातरङ्गों के आपस मे टकराने के कारण कलकल शब्द करता हुआ जल उछल रहा है ॥ ३० ॥

(इस प्रकार सभी निकल गये)

॥ इस प्रकार महाकवि भवभूति के द्वारा रचित उत्तररामचरित में पञ्चवटीप्रवेश नामक द्वितीय अङ्क समाप्त हुआ ॥ २ ॥

पुराणरोहिण०—चन्दन का वृक्ष जितना पुराना होता है, उसमें उतना ही अधिक सुगन्ध होता है। अतः सर्प जल्द उसे छोड़ना नहीं चाहते।

इस श्लोक में क्रौञ्च पर्वत का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति, 'कुञ्ज-कुटीर' में रूपक तथा मयूरों के भयरूपी कारण के वर्तमान होने पर भी साँपों के न भागनेरूपी कार्य के न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित। छन्द का लक्षण—

"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥ २९ ॥

अन्वयः--कुहरेषु, गद्गदनदद्गोदावरीवारयः, मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः, ते, एते, दाक्षिणाः, क्षोणीभृतः। अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलैः, उत्तालाः, ते, इमे, गभीरपयसः, पुण्याः, सरित्सङ्गमाः, (सन्ति) ॥ ३० ॥

शब्दार्थः--कुहरेषु=गुफाओं में, गद्गद–नदद्—गोदावरीवारयः = कल-कल शब्द करते हुए गोदावरी के जल से युक्त, मेघालम्बित-मौलि-नील-शिखराः=जल-भरे बादलों से आश्रित अग्रभाग होने के कारण नीले शिखर वाले, ते=वे ही, एते= ये, दाक्षिणाः = दक्षिण दिशा के, क्षोणीभृतः=पर्वत (हैं)। अन्योन्य-प्रतिघात-सङ्कुल-चलत्-कल्लोल-कोलाहलैः=आपस में टकराने के कारण सटकर बहती हुई महातरङ्गों के कलकलों से, उत्तालाः=उमड़ते हुए, ते=वे ही, इमे=ये, गभीरपयसः= गहरे जलवाले, पुण्याः=पावन, सरित्सङ्गमाः=नदियों के सङ्गम, (सन्ति=हैं) ॥ ३० ॥

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नदीद्वयम् [१])

एका—सखि मुरले ! किमसि सम्भ्रान्तेव ?

मुरला—[२]सखि तमसे ! प्रेषितास्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपामुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुम् । 'जानास्येव यथा वधूपरित्यागात्प्रभृति-

[३]अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढ[४]घनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥ १ ॥

टीका--एत इति । कुहरेषु=गह्वरेषु, गद्गदेत्यादि—गद्गदम्=तादृगस्पष्टं यथा तथा नदन्ति=शब्दायमानानि, गोदावर्याः=तन्नामधेयायाः सरितः वारीणि=जलानि येषु ते तथोक्ताः, गोदावरीतरङ्गजलकल्लोलितकुहरा इति यावत्, मेघेत्यादि—मेघैः=सजलजलदैरित्यर्थः लम्बिताः=आश्रिताः मौलयः=अग्रभागाः येषां तानि अत एव नीलानि=मेघमिश्रिततया श्यामायमानानि शिखराणि=शृङ्गाणि येषां ते तथोक्ताः । अत्र शिखराग्रं मौलिः । पर्वताग्रं शिखरमिति इह भेदः । एतेन गिरीणामत्युन्नतिः सूचिता । ते=भवतां पूर्वपरिचिताः, एते=परिदृश्यमानाः, दाक्षिणाः=भारतस्य दक्षिणभागे स्थिताः, क्षोणीभृतः—क्षोणीम्=पृथिवीम् बिभ्रति=धारयन्ति ये ते क्षोणीभृतः पर्वताः, सन्तीति क्रियाशेषः । अन्योन्यमित्यादि—अन्योन्यम्=परस्परम् प्रतिघातेन=प्रतिरोधेन सङ्कुलाः=निबिडाः चलन्तः=प्रवहन्तः ये कल्लोलाः=महातरङ्गाः तेषां कोलाहलैः=कलकलैः, उत्तालाः=उल्वणाः, ते=भवतां पूर्वपरिचिताः, इमे=एते, गभीरपयसः—गभीरम्=अगाधम्, पयः=जलम् येषां ते तथोक्ताः, पुण्याः=पावनाः, सरित्सङ्गमाः—सरिताम्=नदीनाम्, सङ्गमाः=सन्निपाताः, सन्तीति क्रियाशेषः । अत्र तद्गुणो नामालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ३० ॥

टिप्पणी--मेघालम्बितः--चोटियों पर मेघों के उतरने के कारण पर्वत नील शिखर वाले हो गये हैं । यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि शिखर के सर्वोच्च भाग को मौलि तथा पर्वत के अग्रभाग को शिखर कहते हैं ।

क्षोणीभृतः--क्षोणीं बिभ्रति, क्षोणी + $\sqrt{}$भृ + क्विप्, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इति तुक् + विभक्तिकार्यम् ।

सङ्गमाः--सम् + $\sqrt{}$गम् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

यहाँ शिखरों के अपने रूप को छोड़कर मेघों के नील रूप को धारण करने से तद्गुण अलङ्कार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित । छन्द का लक्षण--

'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ ३० ॥

॥ इत्याचार्यरमाशङ्करत्रिपाठिकृतायामुत्तररामचरितव्याख्यायां शान्त्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ॥ २ ॥ □

---

१. 'तमसा मुरला च' इत्यधिकः क्वचित्पाठः, २. भगवति, ३. अनिर्भिन्न-गभीरत्वात्, ४. गुरुव्यथः ।

(तदनन्तर दो नदियाँ प्रवेश करती हैं)

एक—सखि मुरला, क्यों घबराई हुई-सी हो ?

मुरला—सखि तमसा, भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा के द्वारा मैं नदियों में श्रेष्ठ गोदावरी से (यह) कहने के लिये भेजी गई हूँ—"जानती ही हो कि वधू (सीता) के परित्याग के समय से—

गाम्भीर्य के कारण बाहर न प्रकाशित होनेवाला (इसीलिये) भीतर ही भीतर छिपी हुई घनी पीडा वाला राम का करुण रस पुटपाक (दो पत्तों अथवा पात्रों के मध्य में ठीक ढंग से बन्द कर पकाई जाने वाली औषध) के समान है ॥ १ ॥

विशेष—पुटपाकप्रतीकाशः—आयुर्वेद की प्रक्रिया के अनुसार जिस वस्तु का सत्त्व निकालना होता है उसे मिट्टी आदि के किसी पात्र में रखकर उसका मुख वन्द कर देते हैं और उसके चतुर्दिक् गोहरी आदि की मन्द-मन्द आग जला देते हैं। अन्दर रक्खी गई वस्तु भीतर ही भीतर धीरे-धीरे पकती है। रेड़ के पत्तों में लपेट कर नीम के पत्तों का भौरा तो प्रसिद्ध ही है। इसे ही पुटपाक कहते हैं। इसी प्रकार राम भी भीतर ही भीतर श्रीजानकी के विरह में दग्ध हो रहे हैं ॥ १ ॥

शब्दार्थः—संभ्रान्ता=घबराई हुई। प्रेषिता=भेजी गई। सरिद्वराम्=नदियों में श्रेष्ठ, अभिधातुम्=कहने के लिये। वधूपरित्यागात् प्रभृति=वधू (सीता) के परित्याग के समय से ॥

टीका—एकेति—संभ्रान्ता=संभ्रमयुक्ता, भयादिहेतुना वेगवतीत्यर्थः। ("समौ संवेगसंभ्रमौ" इत्यमरः)। प्रेषिता=प्रेरिता। सरिद्वराम्–सरित्सु=नदीषु वराम्= श्रेष्ठाम्, अभिधातुम्=वक्तुम्। वधूपरित्यागात् प्रभृति=वध्वाः=स्नुषायाः, सीताया इत्यर्थः, परित्यागात्=विवासनात्, प्रभृति=आरभ्य। यस्मात्कालात्सीतायाः परित्यागं कृतवान् तत आरभ्येत्यर्थः ॥

टिप्पणी—नदीद्वयम्–दो नदियों का समूह अर्थात् तमसा और मुरला नामक दो नदियाँ। यहाँ दोनों नदियों की अधिष्ठात्री देवताओं से अभिप्राय है।

संभ्रान्ता—सम्+√भ्रम्+क्त+टाप्, अनुनासिकस्य० (६।४।१५) इत्यनेनोपधादीर्घः।

प्रेषिता—भेजी गई। प्र+√इष्+णिच्+क्त+टाप्+विभक्तिकार्यम्।

अभिधातुम्—अभि+√धा+तुमुन्।

परित्यागात्—परि+√त्यज्+घञ्+विभक्तिकार्यम्। यहाँ "प्रभृति" के योग में पञ्चमी विभक्ति आई है ॥

अन्वयः—गभीरत्वात्, अनिर्भिन्नः, (अतः), अन्तर्गूढघनव्यथः, रामस्य, करुणः, रसः, पुटपाकप्रतीकाशः, (अस्ति) ॥ १ ॥

तेन च तथाविधेष्टजनकष्ट[१]विनिपातजन्मना [२]प्रक्रुष्टगद्गदेन दीर्घशोक[३]सन्तानेन सम्प्रति[४] परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव कुसुम[५]समबन्धनं मे हृदयम्। अधुना च रामभद्रेण प्रतिनिवर्तमानेन नियतमेव पञ्चवटीवने [६]वधूसहनिवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। [७]तत्र च निसर्गधीरस्याप्येवंविधायामवस्थायामतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगात्पदे पदे '[८]महाप्रमादानि शोकस्थानानि शङ्कनीयानि रामभद्रस्य। तद्भगवति गोदावरि! त्वया [९]तत्रभवत्या सावधानया भवितव्यम्।'

शब्दार्थः—गभीरत्वात् = गाम्भीर्य के कारण, अनिर्भिन्नः=बाहर न प्रकाशित होने वाला, (अतः=इसीलिये), अन्तर्गूढघनव्यथः = भीतर ही भीतर छिपी हुई घनी पीडा वाला, रामस्य=राम का, करुणः=करुण, रसः=रस, पुटपाक-प्रतीकाशः= पुटपाक के सदृश, (अस्ति=है) ॥ १ ॥

टीका – अनिर्भिन्न इति। गभीरत्वात्=गाम्भीर्यत्वात्, धैर्यातिशयवशादित्यर्थः, पुटपाकपक्षे–अत्यन्ताभ्यन्तरस्थितत्वात्, अनिर्भिन्नः–बहिरप्रकाशितः, पक्षे–लोहादिमयपात्रान्निर्भेदमप्राप्तः, (अतः = अस्माद्धेतोः), अन्तर्गूढघनव्यथः-अन्तः=मध्ये, हृदय इति यावत्, गूढा=निलीना घना=निबिडा व्यथा = पीडा यस्य स तथोक्तः, पक्षे–अन्तः–पुटस्याभ्यन्तरे गूढा = निलीना घना व्यथा=सन्तापो यस्य तादृशः, रामस्य = रामचन्द्रस्य, करुणो रसः=इष्टजनवियोगजन्यदुःखातिशयात्मकरसः, सीतावियोगजन्यः शोक इत्यर्थः, पुटपाक–प्रतीकाशः–पुटे = बहिर्मृद्विलेपावरुद्धपात्र–विशेषे पाकः = यद्वस्तु पच्यते तत्प्रतीकाशः=तत्सदृशः, तत्तुल्य इति यावत्, लोहादिमयसम्पुटान्तर्वर्तिसंतापनसदृश इत्यर्थः। अस्तीति क्रियाशेषः ॥ १ ॥

टिप्पणी—अनिर्भिन्नः—अ (नञ्) + निर् + √भिद् + क्त + विभक्तिकार्यम्। **गूढा**—√गुह् + क्त + टाप् + विभक्तिकार्यम्।

करुणो रसः - यहाँ पर करुण रस का अर्थ है—शोक अथवा वेदना।

यहाँ पर राम की व्यथा की पुटपाक से उपमा दी गई है। उपमा के चारों अंगों का उपस्थापन होने के कारण इस श्लोक में पूर्णोपमा अलङ्कार है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप्। छन्द का लक्षण—

> लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
> द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १ ॥

---

१. कष्टपरीपाक, २. प्रकर्षतां-प्रकृष्टतां–गतेन, प्रकर्षगतेन, ३. सन्तापेन, ४. अतितरां, नितरां, ५. सबन्धनं, ६. वधूसहवास, ७. तेषु, तेन, ८. महान्ति प्रमादस्थानानि, ९. तत्र त्वया।

और उस प्रकार के प्रिय-जन (सीता) पर विपत्ति पड़ने से उत्पन्न, पराकाष्ठा को प्राप्त लम्बी शोक-परम्परा से सम्प्रति रामभद्र अत्यधिक दुर्बल हो गये हैं। उनको देख कर पुष्प के समान (कोमल) बन्धन वाला मेरा हृदय काँप-सा उठा है। और अब (यहाँ से अयोध्या को) लौटते हुए रामभद्र के द्वारा पञ्चवटी वन में वधू (सीता) के साथ निवास के समय (किये गये) विश्वस्त विलासों के साक्षी प्रदेश अवश्य ही देखे जायँगे। और वहाँ स्वभाव से ही धीर रामभद्र के भी इस प्रकार की अवस्था में अत्यन्त गम्भीर एवं परिपूर्ण शोक के विक्षोभ के कारण पग-पग पर महा प्रमादयुक्त शोक के अवसरों की (अर्थात् मूर्च्छा आदि की) शंकाएँ करनी चाहिये। अतः हे भगवती गोदावरी, आदरणीया आपको सावधान (सतर्क) रहना चाहिये।

विशेष—कुसुमसमबन्धनम्—पुष्प वृन्त से जुटा होता है। वेग से हवा के चलने पर वह वृन्त से टूट कर गिर पड़ता है। वनिताओं का चित्त फूल की भाँति कोमल होता है—"पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं भवति हि।" वह स्वल्प भी अनिष्ट की कल्पना से काँप उठता है। हृदयगति अवरुद्ध होने की संभावना हो जाती है।

वधूनिवासविस्रम्भ०—वियोग की अवस्था में प्रेमी अथवा प्रेमिका से सम्बद्ध, उनकी प्रेम-क्रीडाओं से सम्बद्ध, स्थान देखने की, उनकी वस्तुओं को छाती से लगाने की तीव्र इच्छा होती है। अतः रामभद्र अयोध्या के लिये लौटते हुए पञ्चवटी के उन-उन स्थानों को अवश्य ही देखेंगे जहाँ-जहाँ उन्होंने सीता जी के साथ विश्वास-पूर्वक प्रेम-क्रीडायें की थीं।

शोकस्थानानि—उन स्थानों को देखकर, वहाँ के कार्यों का स्मरण कर रामभद्र मूर्च्छित हो सकते हैं, उनकी हृदयगति बन्द हो सकती है। ऐसी अवस्था में संसार शोकाकुल हो उठेगा।

शब्दार्थः—तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना=उस प्रकार के प्रियजन (सीता) पर विपत्ति पड़ने से उत्पन्न, प्रकृष्टगद्–गदेन=पराकाष्ठा को प्राप्त, दीर्घशोक–सन्तानेन= लम्बी शोक–परम्परा से। कुसुम–समबन्धनम्=पुष्प के समान (कोमल) बन्धन वाला। प्रतिनिवर्तमानेन=लौटते हुए, वधूसहनिवासविस्रम्भसाक्षिणः=वधू (सीता) के साथ निवास के समय विश्वस्त विलासों के साक्षी। निसर्गधीरस्य=स्वभाव से ही धीर, अतिगम्भीराभोगशोक-क्षोभसंवेगात्=अत्यन्त गम्भीर एवं परिपूर्ण शोक के विक्षोभ के वेग के कारण, शोकस्थानानि=शोक के स्थान, शोक के अवसर॥

टीका—तेन चेत्यादि। तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना–तथाविधस्य= तादृशस्य इष्टजनस्य=प्रियजनस्य, सीताया इत्यर्थः, कष्टविनिपातात्=दुःखमय-

वीचीवातैः शीकरक्षोदशीतैराकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान् ।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्त[1]र्पयेति ॥ २ ॥

विक्षेपात् जन्म=उत्पत्तिर्यस्य तथोक्तेन, प्रकृष्टगद्गदेन—प्रकृष्टः=अधिकः गद्गदः=गद्गदशब्दः येन तथोक्तेन, दीर्घशोकसन्तानेन—दीर्घम्=महत् शोकस्य=मानसिक-सन्तापस्य यत् सन्तानम्=परीवाहस्तेन । कुसुमसमबन्धनम्-कुसुमेन=प्रसूनेन समम्=तुल्यं बन्धनं यस्येति कुसुमसमबन्धनम्=पुष्पवत्सुच्छेदमित्यर्थः । प्रतिनिवर्तमानेन—प्रतिगच्छता रामभद्रेणेति यावत्, वधूनिवासविस्रम्भसाक्षिणः—वध्वा=पत्न्या सीतया सह=साकं निवासे=वासे ये विस्रम्भाः=सविश्वासं केलिकलहाः ("विस्रम्भः केलिकलहे विश्वासे प्रणये वधे" इति विश्वः), स्वैरलीला इति यावत्, तत्साक्षिणः=तत्सा-क्षात्कारिः, प्रदेशाः—वनोद्देशाः । निसर्गधीरस्य=निसर्गतः=स्वभावतो धीरस्य=गम्भीरस्य, अतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगात्—अतिगम्भीरः=अतिगहनो य आभोगः=आयामो यस्य तथोक्तो यः शोकस्तेन जातस्य=उत्पन्नस्य क्षोभस्य=प्रकृतिविपर्यासस्तस्य संवेगात्=वेगातिशयात्, शोकस्थानानि-शोकस्य-जगतां शोकस्येत्यर्थस्तन्निमित्तानि=कारणानि । रामात्याहितानीति भावः ॥

टिप्पणी—सन्तानेन—सन्तान कहते हैं परम्पराको । सम् + √तन् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

परिक्षीणः—परि + √क्षि + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

अवलोक्य—अव + √लोक् + णिच् + ल्यप् ।

भवितव्यम्—√भू + तव्यत् (भावे) + विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—शीकरक्षोदशीतैः, पद्मकिञ्जल्कगन्धान्, आकर्षद्भिः, स्वैरं स्वैरम्, प्रेरितैः, वीचीवातैः, रामभद्रस्य, मोहे मोहे, जीवम्, तर्पय ॥ २ ॥

शब्दार्थः—शीकरक्षोदशीतैः=जलकणों के चूर्णों से शीतल, पद्मकिञ्जल्क-गन्धान् = कमलकेसरों को, आकर्षद्भिः =लानेवाले, स्वैरं स्वैरम्=धीरे-धीरे, प्रेरितैः=बहने वाले, वीचीवातैः=तरङ्गों से होकर आने वाले पवनों से, रामभद्रस्य=रामचन्द्र के, मोहे-मोहे=बारम्बार मूर्च्छा के समय, जीवम्=चेतना को, तर्पय=पुनरुज्जीवित करना ॥ २ ॥

टीका—वीचीवातैरिति । शीकरक्षोदशीतैः—शीकराणाम्=जलकणानां क्षोदैः=सूक्ष्मांशैः, शीतैः=शीतलैः, तर्पकैरिति भावः, पद्मकिञ्जल्कगन्धान्—पद्मानाम्=कमलानां ये किञ्जल्काः=केसराः ("किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः) तेषां गन्धान्=सौरभ्याणि, आकर्षद्भिः=हरद्भिः, शीकरक्षोदेत्यनेन शैत्यमुक्तम्, पद्मकिञ्जल्क-गन्धानित्यनेन सौरभ्यमुक्तम्, आकर्षद्भिरनेन मान्द्यं निर्दिष्टम्, वहनाशक्तावेव कर्षण-

---

१. प्रेषितैः, स्तंभयेति ।

जलकणों के चूर्णों से शीतल, कमल-केसरों को लाने वाले, धीरे-धीरे चलने वाले, तरङ्गों से होकर बहने वाले पवनों से रामचन्द्र के बारम्बार मूर्च्छा के समय चेतना को पुनरुज्जीवित करना ॥ २ ॥

विशेष:—भाव यह है कि—उन-उन स्थानों को देखकर, वहाँ की विशेष बातों का स्मरण करके जब-जब रामभद्र मूर्च्छित हों तब-तब शीतल मन्द सुगन्ध वायु के द्वारा उनकी चेतना को पुनरुज्जीवित करना ॥ २ ॥

संभवात्, स्वैरं स्वैरम्=मन्दं मन्दम्, ("मन्दस्वच्छन्दयोः स्वैरम्" इत्यमरः), प्रेरितैः=प्रेषितैः, वीचीवातैः—वीचीनाम्=तरङ्गाणां वातैः=वायुभिः, रामभद्रस्य=रामचन्द्रस्य, मोहे मोहे=प्रतिमोहावस्थायामित्यर्थः, जीवम्=जीवनम्, चेतनामिति यावत्, तर्पय=प्रीणय। सन्देहसमाप्तिसूचक 'इति' शब्दस्य प्रयोगः। मालिनी छन्दः ॥२॥

टिप्पणी—वीचीवातैः—वीची–वीचि+ङीष् (वैकल्पिक) क्तिन् अर्थवाले प्रत्ययान्त शब्दों को छोड़ कर इकारान्त स्त्रीशब्दों में विकल्प से ङीष् (ई) प्रत्यय लगता है।

शीकर०—वीरराघव का अनुकरण करने वाले व्याख्याकारों ने 'सीकर' यह दन्त्यादि पाठ स्वीकार किया है। अमरकोश के टीकाकार रामाश्रय ने लिखा है—"सीकरः दन्त्यादिरयमिति धनपालादयः।" अर्थात् धनपाल आदि ने जलकण के अर्थ में "सीकर" यह दन्त्यादि शब्द स्वीकार किया है। व्यवहार में 'सीकर' शब्द का प्रयोग कहीं-कहीं हुआ है और "शीकर" का बहुलता से। अतः मैंने "शीकर" यह तालव्यादि पाठ ही स्वीकार किया है।

क्षोदः—√क्षुद्+घञ्+विभक्तिकार्यम्। लोक भाषा में क्षोद को फुहारा कहते हैं।

जीवम्—जीवनं जीवः। √जीव्+घञ् भावे+विभक्तिकार्यम्।

प्रेरितैः—प्र+√ईर्+क्त+विभक्तिकार्यम्।

तर्पय—इस श्लोक में कहा गया है कि—शीतल मन्द सुगन्ध वायु के द्वारा रामभद्र की मूर्च्छा दूर करना। यहाँ यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि शीतल मन्द सुगन्ध वायु विरहियों के लिये अनर्थकारी होता है तो फिर राम के लिये यह उज्जीवक कैसे होगा? विरहियों के लिये चैतन्य की अवस्था में जो शीतल आदि गुणों से समृद्ध वायु दुःखदायी होता है, वही मूर्च्छितों के लिये चैतन्याधायक होता है। अतः उक्त शङ्का के लिये यहाँ अवकाश नहीं है।

इस श्लोक में शालिनी छन्द और वायु के तीनों गुणों शीतल, मन्द और सुगन्ध का संग्रह होने से समुच्चय अलङ्कार है। छन्द का लक्षण—

"मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः" ॥ २ ॥

तमसा—उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। सञ्जीवनोपायस्तु मूलत[1] एव रामभद्रस्य सन्निहितः।

मुरला—कथमिव ?

तमसा—[2]तत्सर्वं श्रूयताम्। पुरा[3] किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात्परित्यज्य [4]निवृत्ते सति लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्तप्रसववेद[5]नमतिदुःखसंवेगादात्मानं गङ्गाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं च प्रसूता।[6] भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामभ्युपपन्ना[7] रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात्परेण [8]दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेर्गङ्गादेव्या [9]समर्पितं स्वयम्।

मुरला—(सविस्मयम्।)

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः[10]।
यत्रोपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः॥ ३॥

शब्दार्थः—दाक्षिण्यम्=उदारता। सञ्जीवनोपायः=चेतना में लाने का उपाय, मूलतः=मूलरूप से, सन्निहितः=पास ही उपस्थित है।

टीका—तमसेति—दाक्षिण्यम्—दक्षिणस्य=उदारस्य भावो दाक्षिण्यम्=उदरता ("दक्षिणे सरलोदारौ" इत्यमरः)।

सञ्जीवनोपायः—सञ्जीवनस्य=संज्ञाप्रत्यायनस्य उपायः=साधनम्, मूलतः=मूलादिति मूलतः=सीताङ्कुरात्, मूलं सीता तस्या एवेत्यर्थः। मौलिक इति पाठेऽप्यर्थः प्रागिव। सन्निहितः=निकटस्थः, वर्तत इति शेषः॥

टिप्पणी—दाक्षिण्यम्—दक्षिण + ष्यञ् + विभक्त्यादिकार्यम्। सन्निहितः—सम् + नि + √धा + क्तः + धा इत्यस्य हि + विभक्त्यादिकार्यम्॥

शब्दार्थः—वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात्=वाल्मीकि के तपोवन के समीप से, परित्यज्य=छोड़ कर, प्राप्तप्रसववेदनम्=प्रसव की वेदना से आक्रान्त, आत्मानम्=अपने आपको, निक्षिप्तवती=फेंक दिया, दारकद्वयम्=दो, जुड़वा बच्चों को, अभ्युपपन्ना=अनुगृहीत। स्तन्यत्यागात्=माता के दूध छूटने के, परेण=अनन्तर, प्राचेतसस्य=वाल्मीकि को॥

टीका—तमसेति। वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात्—वाल्मीकिः=प्राचेतसस्तस्य तपोवनम्=तपोऽरण्यं तस्योपकण्ठात्=समीपात्, परित्यज्य=त्यक्त्वा, प्राप्तप्रसववेदनम्—

---

१. मौलिकः, २. क्वचित् तत्सर्वमिति नास्ति, ३. अस्ति खलु, ४. गते, प्रतिनिवृत्ते, ५. ०वेदना, ६. प्रासूत, ७. ०भ्यामप्युभाभ्याम्, ८. सुतद्वयं, ९. स्वयमर्पितम्, स्वयमर्पितवती, १०. पावनाद्भुतः।

तमसा—स्नेह की यह उदारता उचित ही है। चेतना में लाने का उपाय तो मूल रूप से रामभद्र के ही पास उपस्थित है।

मुरला—वह कैसे ?

तमसा—वह सब सुनिये। कहते हैं पूर्वकाल में वाल्मीकि के तपोवन के समीप से. (सीता को) छोड़ कर, लक्ष्मण के लौट जाने पर प्रसव की वेदना से आक्रान्त सीता देवी ने अत्यधिक दुःख के वेग के कारण अपने आपको गङ्गा के प्रवाह में फेंक दिया। उसी समय वहाँ (उसने) दो शिशुओं को जन्म दिया और भगवती पृथ्वी तथा भागीरथी दोनों के द्वारा अनुगृहीत (वह सीता) पाताल को ले जाई गई एवं माता के दूध छूटने के अनन्तर ही (वे) शिशु उस प्राचेतस (वाल्मीकि) महर्षि को स्वयं गङ्गा देवी के द्वारा समर्पित कर दिये गये।

मुरला—(आश्चर्य के साथ)—ऐसे (असाधारण) लोगों का दशा परिवर्तन भी अत्यन्त आश्चर्यकारक होता है, जिसमें इस प्रकार के लोग साधनरूपता को प्राप्त होते हैं (अर्थात् सहायक बनते हैं) ॥ ३ ॥

प्राप्ता=आसादिता प्रसवस्य=सन्तानोत्पादस्य वेदना=पीडा येन तं तादृशम्, आत्मानम्=स्वम्, निक्षिप्तवती=प्रेरितवती दारकद्वयम्=शिशुद्वयम्, अभ्युपपन्ना=अनुगृहीता सङ्गता वा ("अभ्युपपत्तिस्त्वनुग्रहः" इत्यमरः) स्तन्यत्यागात्-स्तने=पयोधरे भवं स्तन्यम्=दुग्धं तस्य त्यागात्=वियोजनात्, परेण=अनन्तरम्। अत्र परेणेत्यस्य योगे पञ्चमी। प्राचेतसस्य=वाल्मीकेः। अत्र "कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव" इति वचनात् सम्प्रदानार्थे षष्ठी ॥

टिप्पणी – **परित्यज्य**—परि + √त्यज् + ल्यप्। **निवृत्ते**—नि + √वृत् + क्त + सप्तम्यैकवचने विभक्तिकार्यम्। **निक्षिप्तवती**–नि + √क्षिप् + क्तवतु + ङीप् + विभक्तिकार्यम्। **प्रसूता**–प्र + √सू + क्त + टाप् + विभक्तिः। **अभ्युपपन्ना**–अभि + उप + √पद् + क्त + टाप् + विभक्तिकार्यम्। **स्तन्य०**–स्तन + यत् + विभक्तिः।

स्तन्यत्यागात् परेण—यहाँ "अन्यारादितरर्ते०" (२।३।२९) से 'परेण' के कारण पञ्चमी समझनी चाहिये। "अपवर्गे तृतीया" (२।३।६) से 'परेण' में तृतीया आई है। यदि परेण को "एनप्" प्रत्ययान्त माना जाय तो "एनपा द्वितीया" (२।३।३१) के अनुसार इसके योग में द्वितीया होनी चाहिये थी, किन्तु है पञ्चमी। अतः इसे कविकृत असावधानी समझनी चाहिये। किन्तु यदि "परेण" (जो कालवाची है) में "अपवर्गे तृतीया" से तृतीया मानते हैं तब तो पञ्चमी का प्रयोग साधु माना जायेगा ॥

अन्वयः—ईदृशानाम्, विपाकः, अपि, परमाद्भुतः, जायते; यत्र, एवं विधः, जनः, उपकरणीभावम्, आयाति ॥ ३ ॥

तमसा—इदानीं तु [1]शम्बूकवृत्तान्तेनानेन सम्भावितजनस्थानं[2] रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी यदेव लोपामुद्रया स्नेहादभिशङ्कितं तदेवाभिशङ्क्य सीतासमेता केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीमुपागता[3] ।

मुरला—सुष्ठु चिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या । [4]'राजधानीस्थितस्यास्य खलु तैश्च तैश्च जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः । अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पञ्चवटीप्रवेशो महाननर्थ' इति[5] । कथं सीतया[6] रामभद्रोऽयमाश्वासनीयः स्यात् । ?

शब्दार्थः—ईदृशानाम्–ऐसे लोगों का, विपाकः=दशाविपरिणाम, दशापरिवर्तन, परिणाम, अपि=भी, परमाद्भुतः=अत्यन्त आश्चर्यकारक, जायते=होता है; यत्र=जिसमें, एवंविधः=इस प्रकार के, जनः=जन, लोग, उपकरणीभावम्–साधनरूपता को, आयाति=प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

टीका—ईदशानामिति । ईदृशानाम्=एतादृशानाम्, सीतासदृशानामित्यर्थः, अप्राकृतजनानामिति यावत्, विपाकः=परिणामः, दशेति यावत्, अपि=च, परमाद्भुतः–परमश्चासौ अद्भुतः परमाद्भुतः=अतीवविस्मयावहः, जायते=भवति; यत्र=यस्मिन् विपाके, एवंविधः=एतादृशः, पृथ्वी–भागीरथी–वाल्मीकिसदृशः, जनः=लोकः, उपकरणीभावम्=उपकरणत्वम्, साधनरूपतामिति यावत्, आयाति=प्राप्नोति । साहाय्यं करोतीत्यर्थः । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । श्लोको वृत्तम् ॥३॥

टिप्पणी—**ईदृशानाम्**—सीता जैसे अपूर्व लोगों का, इदम् + √दृश् + कन् + विभक्तिकार्यम् ।

विपाकः—परिणाम । यहाँ पर इसका यही अर्थ करना समीचीन है । कुछ व्याख्याकार इसका अर्थ दुरवस्था करते हैं, वह ठीक नहीं है । वि + √पच् + घञ् + विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में पूर्वार्ध के प्रति उत्तरार्ध कारण है । अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् । इसे ही श्लोक भी कहते हैं । छन्द का लक्षण –

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ३ ॥

---

१. ०कवध०, २. ०जनस्थानागमनं, ०स्थानगमनं, ३. विलोकयितुमागता, ४. राजनीति, ५. इति शङ्के, ६. सीतादेव्या रामभद्रम् आश्वासनीयः ।

तमसा--इस समय तो शम्बूक के इस वृत्तान्त से जनस्थान को अलङ्कृत करने वाले रामभद्र को सरयू के मुख से सुनकर भगवती भागीरथी (गङ्गा), लोपामुद्रा के द्वारा स्नेह के कारण जिस बात की आशङ्का की गई थी उसी की आशङ्का करके, मानो किसी गृहाचार के बहाने से, सीता के साथ गोदावरी के पास आई हैं।

मुरला--भगवती भागीरथी (गङ्गा) ने ठीक सोचा है। "क्योंकि राजधानी में रहते हुए और संसार की उन्नति के लिये विविध कार्यों में लगे हुए रामभद्र के चित्त के क्षोभ नियन्त्रित थे। परन्तु अब (उन कार्यों से) फुरसत पाये हुए (अतः) केवल शोक ही जिनका साथी है, ऐसे इन (राम) का पञ्चवटी में प्रवेश बहुत अनर्थकारी होगा।" तो अब देवी सीता के द्वारा रामभद्र कैसे आश्वस्त किये जायेंगे ?।

शब्दार्थः—शम्बूकवृत्तान्तेन=शम्बूक के वृत्तान्त से, सम्भावितजनस्थानम्=जनस्थान को अलङ्कृत करने वाले, उपश्रुत्य=सुनकर, अभिशङ्कितम्=आशङ्का की थी, गृहाचारव्यपदेशेन–गृहाचार के बहाने से, उपागता=पास में आई हैं ॥

टीका--**तमसेति**। शम्बूकवृत्तान्तेन–शम्बूकस्य=शम्बूकनाम्नः शूद्रस्येत्यर्थः वृत्तान्तेन=तपश्चरणरूपेण उदन्तेन, ("वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्" इत्यमरः)। **सम्भावितजनस्थानम्**—सम्भावितम्=स्वागमनेन सत्कृतं जनस्थानम्=दण्डकारण्यं येन तं तादृशम्, रामभद्रम्=रामचन्द्रम्, उपश्रुत्य–आकर्ण्य, अभिशङ्कितम्=आशङ्कितम्, गृहाचारव्यपदेशेन-गृहाचारस्य=गृहकार्यस्य, कुलक्रमागतव्यवहारस्य वा, व्यपदेशेन=व्याजेन, उपागता=आगता, प्राप्तेति यावत्। तत्सर्वं श्रूयतामित्यारभ्य ऋषिश्रेयोवितरणरूपबीजस्य अन्वेषणात् गर्भसन्धिरियम्। "गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः" इत्युक्तेः। केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेनेत्यत्र प्रस्तुतोपयोगिच्छद्माचरणरूपम् अभूताहरणं नाम संध्यङ्गमुक्तमिति वीरराघवाचार्याः।

टिप्पणी--**शम्बूकवृत्तान्तेन**—यहाँ इसका भाव यह है कि–आकाशवाणी के द्वारा बतलाये गये शम्बूक (नामक एक शूद्र) की तपस्या का वृत्तान्त। **सम्भावित॰**--सम + √भू + णिच् + क्त + विभक्तिकार्यम्। **उपश्रुत्य**--उप + √श्रु + ल्यप्। आशङ्कितम्–आ + √शङ्क + क्त + विभक्तिकार्यम्। **अभिशङ्क्य**–अभि + √शङ्क + ल्यप्। **व्यपदेशेन**--वि + अप् + √दिश् + घञ् + तृतीयैकवचने विभक्तिकार्यम् ॥

शब्दार्थः--सुष्ठु=बढ़िया, ठीक, चिन्तितम्=सोचा है, विचारा है। राजधानीस्थितस्य=राजधानी में रहने वाले, राजधानी में रहते हुए, जगताम्=संसार की, आभ्युदयिकैः=उन्नति के लिये, व्यापृतस्य=लगे हुए, नियताः=नियन्त्रित थे, चित्त-

तमसा--[1]उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या[2]—'वत्से देवयजनसम्भवे सीते ! अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य[3] जन्मवत्सरस्य सङ्ख्या-मङ्गलग्रन्थिरभिवर्तते[4] । तदात्मनः पुराणश्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षि-वंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहृतपाप्मानं देवं स्वहस्तापचितैः पुष्पैरुप-तिष्ठस्व । न त्वामवनिपृष्ठवर्तिनी[5]मस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किमुत[6] मर्त्याः ?' इति । अहमप्याज्ञापिता 'तमसे ! त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव [7]वधूर्जानकी । अतस्त्वमेवास्याः [8]प्रत्यनन्तरीभव' इति । साऽहमधुना यथा-ऽदिष्टमनुतिष्ठामि ।

विक्षेपाः=चित्त के क्षोभ । अव्यग्रस्य-असंलग्न, फुरसत में रहने वाले, शोकमात्र-द्वितीयस्य=केवल शोक ही जिनका साथी है ऐसे। आश्वासनीयः-आश्वस्त किये जायेंगे ? ।।

टीका--सुरलेति । सुष्ठु=सम्यक्, समीचीनमिति यावत् । चिन्तितम्=विचारि-तम् । राजधानीस्थितस्य-राजधान्याम्= अयोध्यानगर्यामित्यर्थः स्थितस्य=वर्तमानस्य, राजनीतिस्थितस्य=क्षत्रियोचितराज्यपरिपालनात्मकधर्मनिष्ठस्येत्यर्थः, अयमेव पाठो वीरराघवसम्मतः, जगताम्=लोकानाम्, आभ्युदयिकैः-अभ्युदयाय=उन्नत्यै भवन्तीत्या-भ्युदयिकानि तैः आभ्युदयिकैः=उन्नतिजनकैरित्यर्थः, कार्यैः=कृत्यैः, व्यापृतस्य= संलग्नस्य, आसक्तचेतस इति यावत्, रामस्य=रामभद्रस्य, नियताः=नियन्त्रिताः, चित्तविक्षेपाः-चित्तस्य=मनसो विक्षेपाः=विभ्रमाः । अव्यग्रस्य=प्रजापालनकार्येऽव्यापृ-तस्य, असंलग्नस्येति यावत्, व्यापारान्तरशून्यस्येत्यर्थः, शोकमात्रद्वितीयस्य-शोक एव शोकमात्रम्=केवलः शोक इत्यर्थः, तत् द्वितीयम्=सहायो यस्यैवंभूतस्य । अनर्थः= तद्दुःखहेतुः । एष तत्त्वार्थानुकीर्तनरूपो मार्ग उक्त इति वीरराघवाचार्याः ।।

टिप्पणी -चिन्तितम्—√चिन्त + णिच् + क्त + विभक्तिकार्यम् ।

राजधानी०—भगवती भागीरथी के कथन का भाव यह है कि -''रामभद्र जब अयोध्या के राज-कार्य में संलग्न रहते हैं, तब तो उनका मन सीता के वियोग-जन्य दुःखानुभूति से रहित रहता है। किन्तु अब वे जंगल में आये हैं । उनका मन भी अन्य कार्यों में व्यग्र नहीं है। अतः सीता से सम्बद्ध स्थानों को देखकर उनका दुःखी होना स्वाभाविक है।'' आधुनिक मनोविज्ञान भी भागीरथी की आशङ्का का समर्थन करता है ।

---

१. उक्तमेव, उक्तमद्य, २. भागीरथीदेव्या, ३. द्वादशजन्म०, द्वादशसंवत्सरस्य, द्वादशस्य संवत्सरस्य संख्यामंगलग्रन्थिरभिसंबध्यते, ४. अभिबध्यते, वर्धते, ५. ०पृष्ठचारिणीम्, ६. किं पुनः, ७. वधूर्वत्सा, ८. प्रत्यन्तरी० ।

तमसा--इस प्रसङ्ग में भगवती भागीरथी के द्वारा कहा गया है—"बेटी, यज्ञ-भूमि से उत्पन्न सीता, आज चिरञ्जीवी कुश और लव की बारहवीं माङ्गलिक वर्ष गाँठ है। अतः अपने पुरातन श्वसुर, वैवस्वत मनु से सम्बद्ध, इतने महान् राजर्षि-वंश के उत्पादक, पाप हरण करने वाले भगवान् सूर्य की, अपने हाथ से चुने हुए पुष्पों से, पूजा करो। भूतल पर विराजमान तुमको हमारे प्रभाव से वनदेवता भी नहीं देख सकेगीं, तो मनुष्यों का क्या कहना ?" (उन्हीं के द्वारा) मुझे भी आज्ञा दी गई—"तमसा, वधू जानकी तुम में अधिक प्रेम करने वाली है। अतः तुम्हीं इसकी सहचरी बनों (अर्थात् इसके साथ-साथ जाओ)।" इस प्रकार आज्ञा दी गई मैं सम्प्रति जैसा आदेश दिया गया है उसके अनुसार कार्य कर रही हूँ।

वीरराघव ने "राजनीतिस्थितस्य" यह पाठ स्वीकार किया है। किन्तु इसकी अपेक्षा ऊपर का पाठ ही समीचीन और युक्तियुक्त है।

आभ्युदयिकैः—अभ्युदय + ठक् (इक्) + विभक्त्यादिकार्यम्।

व्यापृतस्य - वि + आ + पृ + क्त + विभक्तिकार्यम्। **नियताः**-नि + √यम् + क्त + विभक्तिः। **आश्वासनीयः**-आ + √श्वस् + णिच् + अनीय + विभक्तिः।

शब्दार्थः—तमसेति। देवयजनसम्भवे=यज्ञभूमि से उत्पन्न, आयुष्मतोः=चिरञ्जीवी, संख्यामङ्गलग्रन्थिः=(वर्ष की) संख्या–सूचिका मङ्गल ग्रन्थि, माङ्गलिक वर्ष गाँठ। पुराणश्वसुरम्–पुरातन श्वसुर, मानवस्य=मनु से सम्बद्ध, मनु से प्रचलित, राजर्षिवंशस्य=राजर्षि वंश के, प्रसवितारम्=उत्पादक, पैदा करने वाले, अपहृत–प्राप्मानम्=पाप का हरण करने वाले, सवितारम्=सूर्य की, उपतिष्ठस्व=पूजा करो। अवनिपृष्ठवर्तिनीम्=भूतल पर विराजमान, त्वाम्=तुमको। प्रकृष्टप्रेमा=अधिक प्रेम करने वाली, वधूः=बहू। प्रत्यन्तरीभव=सहवर्तिनी बनो, सहचरी होओ। यथादिष्टम्=आदेशानुसार, अनुतिष्ठामि=कार्य कर रही हूँ॥

टीका—तमसेति। देवयजनसम्भवे—देवयजनात्=यज्ञभूमेः संभवः=उत्पत्तिर्यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, आयुष्मतोः=चिरञ्जीविनोः, संख्यामङ्गलग्रन्थिः–संख्याबोधकः मङ्गलाय=कल्याणाय ग्रन्थिः, मध्यमपदलोपी तत्पुरुषसमासः, लक्षणया तत्कालो ज्ञेयः। पुराणश्वसुरम्–पुराणम्=पुरातनं श्वसुरम्, मानवस्य–मनुसम्बन्धिनः, राजर्षिवंशस्य–राजर्षीणां वंशस्य=कुलस्य, प्रसवितारम्=जनकम्, अपहृतपाप्मानम्–अपहृतः=अपहृतः, विनाशित इति यावत्, पाप्मा=पापं येन तं तादृशम्, ("अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्विषकल्मषम्" इत्यमरः), सवितारम्=सूर्यम्, उपतिष्ठस्व=सेवस्व, पूजयेति यावत्। अवनिपृष्ठवर्तिनीम्–अवनेः=पृथिव्याः पृष्ठे=तले वर्तिनीम्=विद्यमानाम्, विचरन्तीमिति यावत्। त्वाम्=त्वां सीतामित्यर्थः। प्रकृष्टप्रेमा–प्रकृष्टम्=उत्कृष्टं

मुरला--अहमप्येतं[1] वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै दिवेदयामि। राम-भद्रोऽप्यागत एवेवि तर्कयामि।

तमसा--तदियं गोदावरीह्रदान्निर्गत्य[2]—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य [3]मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव[4] वनमेति जानकी ॥ ४ ॥

प्रेम यस्याः सा, वधूः=स्नुषा। प्रत्यन्तरीभव=अनुचरी भवेत्यर्थः। यथादिष्टम्–आदिष्टम्=आदेशम् अनतिक्रम्य=अनुल्लङ्घ्येति यथादिष्टम्=आदेशानुसारम्, अनुतिष्ठामि=करोमि।

टिप्पणी—मङ्गलग्रन्थिः—जन्म दिन के अवसर पर स्त्रियाँ जिसका जन्म-दिवस होता है उस बालक की कलाई में मांगलिक सूत्र बाँधती हैं और वह जितने वर्ष का होता है उतनी गाँठे उस धागे में लगाती हैं। आजकल तो केक आदि काटने की प्रथा प्रचलित है। वर्ष गाँठ की यह प्रथा आज विश्वभर में मनाई जाती है। किन्तु भारतवर्ष की यह प्रथा अपनी है, कहीं से अनुकरण करके यहाँ के लोगों ने इसे नहीं सीखा है।

पुराणश्वसुरम्—जिस इक्ष्वाकुवंश में राम उत्पन्न हुए थे, उसके मूल पुरुष विवस्वान् माने जाते हैं। अतः इस वंश को सूर्य-वंश भी कहते हैं।

मानवस्य—मनु से सम्बद्ध। मनु + अण् + विभक्त्यादिकार्यम्। प्रसवितारम्–प्र + √सू + तृच् + द्वितीयैकवचने विभक्तिकार्यम्। अवचितैः–अव + √चि + क्त + विभक्तिः।

अवनिपृष्ठवर्तिनीम्—अवनिपृष्ठ + √ वृत् + णिनि + ङीप् + द्वितीयैकवचने विभक्तिकार्यम्।

शब्दार्थः—मुरलेति। वृत्तान्तम्=समाचार को, निवेदयामि=सादर कहती हूँ। तर्कयामि=अनुमान करती हूँ, सोचती हूँ॥

टीका—मुरलेति। वृत्तान्तम्=समाचारम्, निवेदयामि=सादरं कथयामि। तर्कयामि=अनुमिनोमि॥

टिप्पणी—निवेदयामि—नि + √विद् + णिच् + लटि उत्तमपुरुषैकवचने विभक्तिकार्यम्।

तर्कयामि—√तर्क + णिच् + लटि उत्तमपुरुषैकवचने विभक्तिकार्यम्॥

---

१. ०प्यमुं, २. निष्क्रम्य, ३. मूर्तिरिव वा, ४. विरव्यथैवः।

मुरला—मैं भी इस समाचार को भगवती लोपा मुद्रा से सादर कहती हूँ। रामभद्र भी आ गये होंगे—ऐसा अनुमान करती हूँ।

तमसा—तो गोदावरी के अगाध सरोवर से निकल कर—अत्यन्त पीले एवं कृश कपोलों के कारण मनोहर, चञ्चल केश-पाश से युक्त मुख को धारण की हुई यह जानकी (साक्षात्) करुण रस की मूर्ति अथवा शरीर धारण की हुई विरहव्यथा की तरह (पंचवटी) वन में आ रही है ॥ ४ ॥

अन्वयः—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरम्, विलोलकबरीकम्, आननम्, दधती, जानकी, करुणस्य, मूर्तिः, अथवा, शरीरिणी, विरहव्यथा, इव, वनम्, एति ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरम् = अत्यन्त पीले एवं कृश कपोलों के कारण मनोहर, विलोलकबरीकम् = चंचल केशपाश से युक्त, आननम् = मुख को, दधती = धारण करती हुई, जानकी = सीता, जनकपुत्री, करुणस्य = करुणरस की, मूर्तिः = मूर्ति, अथवा=या, अथवा, शरीरिणी=शरीरधारिणी, मूर्तिमती, विरहव्यथा= वियोग-व्यथा, इव=तुल्य, तरह, वनम् = वन में, एति=आ रही है ॥ ४ ॥

टीका—**परिपाण्डुदुर्बलेत्यादिः**—परिपाण्डू=परितः पाण्डुवर्णौ दुर्बलौ=क्षामौ, कृशावित्यर्थः, कपोलौ = गण्डौ ताभ्यां सुन्दरम् = मनोहरम्, विलोलकबरीकम्— विलोला=संस्काराभावाच्चञ्चला कबरी=केशवेशो यस्मिन् तत् तादृशम्, "क्रीडां शरीरसंस्कारं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका।" इति नियमात् सीतया केशसंस्करो न कृतः, आननम्=मुखम्, दधती=धारयन्ती, जानकी=सीता. करुणस्य=इष्टवियोगजन्यकरुणातिशयस्य, मूर्तिः=आकारः, अथवा=वा, शरीरिणी=शरीरधारिणी, विरहव्यथा= विरहजन्यसन्तापादिरूपा, इव=यथा, वनम्=पञ्चवटीवनम्, एति=आगच्छति, प्रविशतीति भावः। संसृष्टिरुत्प्रेक्षालङ्कारः, मञ्जुभाषिणी छन्दः ॥ ४ ॥

टिप्पणी—**विलोलकबरीकम्**—धर्मशास्त्र के अनुसार वियोगिनी भारतीय बाला न तो क्रीडा करती है और न प्रसाधन ही। अतः वियोगिनी सीता अपने केशों को न सँवारती थी और न उन्हें गूँथती ही थी। इसलिये उसके केशपाश बिखरे होने के कारण इधर-उधर हिल रहे थे। **दधती**—√धा + शतृ + ङीप् + विभक्त्यादिः।

"करुणस्य मूर्तिः" में इवके अभाव से प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है तथा "विरहव्यथेव" में इवके कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—मञ्जुभाषिणी। छन्द का लक्षण—

"सत्र सा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी।" ॥ ४ ॥

मुरला--अहमप्येतं[1] वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै दिवेदयामि । राम-भद्रोऽप्यागत एवेवि तर्कयामि ।

तमसा--तदियं गोदावरीह्रदान्निर्गत्य[2]—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम् ।
करुणस्य [3]मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव[4] वनमेति जानकी ।। ४ ।।

प्रेम यस्याः सा, वधूः=स्नुषा । प्रत्यन्तरीभव=अनुचरी भवेत्यर्थः । यथादिष्टम्–आदिष्टम्=आदेशम् अनतिक्रम्य=अनुल्लङ्घ्येति यथादिष्टम्=आदेशानुसारम्, अनुतिष्ठामि=करोमि ।

टिप्पणी—मङ्गलग्रन्थिः—जन्म दिन के अवसर पर स्त्रियाँ जिसका जन्म-दिवस होता है उस बालक की कलाई में मांगलिक सूत्र बाँधती हैं और वह जितने वर्ष का होता है उतनी गाँठे उस धागे में लगाती हैं । आजकल तो केक आदि काटने की प्रथा प्रचलित है । वर्ष गाँठ की यह प्रथा आज विश्वभर में मनाई जाती है । किन्तु भारतवर्ष की यह प्रथा अपनी है, कहीं से अनुकरण करके यहाँ के लोगों ने इसे नहीं सीखा है ।

पुराणश्वसुरम्—जिस इक्ष्वाकुवंश में राम उत्पन्न हुए थे, उसके मूल पुरुष विवस्वान् माने जाते हैं । अतः इस वंश को सूर्य-वंश भी कहते हैं ।

मानवस्य—मनु से सम्बद्ध । मनु + अण् + विभक्त्यादिकार्यम् । प्रसवितारम्–प्र + √सू + तृच् + द्वितीयैकवचने विभक्तिकार्यम् । अवचितैः–अव + √चि + क्त + विभक्तिः ।

अवनिपृष्ठवर्तिनीम्—अवनिपृष्ठ + √ वृत् + णिनि + ङीप् + द्वितीयैकवचने विभक्तिकार्यम् ।

शब्दार्थः—मुरलेति । वृत्तान्तम्=समाचार को, निवेदयामि=सादर कहती हूँ । तर्कयामि=अनुमान करती हूँ, सोचती हूँ ।।

टीका—मुरलेति । वृत्तान्तम्=समाचारम्, निवेदयामि=सादरं कथयामि । तर्कयामि=अनुमिनोमि ।।

टिप्पणी—निवेदयामि—नि + √विद् + णिच् + लटि उत्तमपुरुषैकवचने विभक्तिकार्यम् ।

तर्कयामि—√तर्क + णिच् + लटि उत्तमपुरुषैकवचने विभक्तिकार्यम् ।।

---

१. ०प्यमुं, २. निष्क्रम्य, ३. मूर्तिरिव वा, ४. विरव्यथैवः ।

मुरला—मैं भी इस समाचार को भगवती लोपा मुद्रा से सादर कहती हूँ। रामभद्र भी आ गये होंगे—ऐसा अनुमान करती हूँ।

तमसा—तो गोदावरी के अगाध सरोवर से निकल कर—अत्यन्त पीले एवं कृश कपोलों के कारण मनोहर, चञ्चल केश-पाश से युक्त मुख को धारण की हुई यह जानकी (साक्षात्) करुण रस की मूर्ति अथवा शरीर धारण की हुई विरहव्यथा की तरह (पंचवटी) वन में आ रही है ॥ ४ ॥

अन्वयः—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरम्, विलोलकबरीकम्, आननम्, दधती, जानकी, करुणस्य, मूर्तिः, अथवा, शरीरिणी, विरहव्यथा, इव, वनम्, एति ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरम् = अत्यन्त पीले एवं कृश कपोलों के कारण मनोहर, विलोलकबरीकम् = चंचल केशपाश से युक्त, आननम् = मुख को, दधती = धारण करती हुई, जानकी = सीता, जनकपुत्री, करुणस्य = करुणरस की, मूर्तिः = मूर्ति, अथवा=या, अथवा, शरीरिणी=शरीरधारिणी, मूर्तिमती, विरहव्यथा= वियोग-व्यथा, इव=तुल्य, तरह, वनम् = वन में, एति=आ रही है ॥ ४ ॥

टीका--परिपाण्डुदुर्बलेत्यादिः--परिपाण्डू=परितः पाण्डुवर्णौ दुर्बलौ=क्षामौ, कृशावित्यर्थः, कपोलौ = गण्डौ ताभ्यां सुन्दरम् = मनोहरम्, विलोलकबरीकम्—विलोला=संस्काराभावाच्चञ्चला कबरी=केशवेशो यस्मिन् तत् तादृशम्, "क्रीडां शरीरसंस्कारं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका।" इति नियमात् सीतया केशसंस्करो न कृतः, आननम्=मुखम्, दधती=धारयन्ती, जानकी=सीता करुणस्य=इष्टवियोगजन्यकरुणातिशयस्य, मूर्तिः=आकारः, अथवा=वा, शरीरिणी=शरीरधारिणी, विरहव्यथा= विरहजन्यसन्तापादिरूपा, इव=यथा, वनम्=पञ्चवटीवनम्, एति=आगच्छति, प्रविशतीति भावः। संसृष्टिरुत्प्रेक्षालङ्कारः, मञ्जुभाषिणी छन्दः ॥ ४ ॥

टिप्पणी—विलोलकबरीकम्—धर्मशास्त्र के अनुसार वियोगिनी भारतीय बाला न तो क्रीडा करती है और न प्रसाधन ही। अतः वियोगिनी सीता अपने केशों को न सँवारती थी और न उन्हें गूँथती ही थी। इसलिये उसके केशपाश विखरे होने के कारण इधर-उधर हिल रहे थे। **दधती**—√धा + शतृ + ङीप् + विभक्त्यादिः।

"करुणस्य मूर्तिः" में इवके अभाव से प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है तथा "विरहव्यथेव" में इवके कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है–मञ्जुभाषिणी। छन्द का लक्षण—

"सत्र सा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी।" ॥ ४ ॥

मुरला--इयं हि सा--

किसलमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं
हृदय[1]कमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः ।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ॥ ५ ॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

। इति शुद्धविष्कम्भकः ।

अन्वयः—हृदयकमलशोषी, दारुणः, दीर्घशोकः, बन्धनात्, विप्रलूनम्, मुग्धम्, किसलयम्, इव, परिपाण्डु, क्षामम्, अस्याः, शरीरम्, शरदिजः, घर्मः, केतकीगर्भपत्रम्, इव, ग्लपयति ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—हृदयकमलशोषी=हृदयरूपी कमल को सुखा देनेवाला, दारुणः=कठोर, दीर्घशोकः=दीर्घकालव्यापी शोक, बहुत दिनों तक रहने वाला शोक, बन्धनात्=वृन्त (ढेंप) से, विप्रलूनम्=टूटे हुए, मुग्धम्=मनोहर, किसलम्=कोपल की, इव=तरह, परिपाण्डु=पीले, क्षामम्=दुर्बल, अस्याः = इस (जानकी) के, शरीरम्=शरीर को, शरदिजः=शरद् ऋतु में होनेवाला, शरद् ऋतु का, घर्मः=घाम, केतकीपत्रगर्भम्=केतकी पुष्प के भीतरी पत्तों की, इव=तरह, ग्लपयति=मलिन बना रहा है, कुम्हलाया हुआ बना रहा है ॥ ५ ॥

टीका—किसलयमिवेति। हृदयकमलशोषी–हृदयम्=चेतः कमलमिव=सरसिजमिवेत्युपमितिसमासः, अथवा हृदयमेव कमलं रूपकसमासः, हृदयकमलं शोषयतीति तच्छीलो हृदयकमलशोषी, दारुणः=कठोरः, दीर्घशोकः–दीर्घकालव्यापी शोकः=मानसिकी चिन्ता मन्युरिति वा, बन्धनात्=वृन्तात्, विप्रलूनम्=प्रसह्य छिन्नम्, मुग्धम्=मनोहरम्, किसलमिव=नवपल्लवमिव, परिपाण्डु=परितः पाण्डुवर्णम्, परिपाण्डु उक्तरीत्या अतिम्लानत्वेऽपि लावण्याविरोधिपाण्डुतोक्ता । ग्रीष्मविरहतापयोरयमेव विशेषो यत् ग्रीष्मस्य लावण्यनाशकत्वं विरहस्य तु तदभाव इति । तथा च कालिदासः शाकुन्तले–"समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयोर्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ।" इति । क्षामम्=कृशम्, दुर्बलमिति यावत्, अस्याः=एतस्याः सीतायाः, शरीरम्=देहः, शरदिजः–शरदि जातः शहदिजः=शरदृतूत्पन्नः, सप्तम्या अलुक्, घर्मः=आतपः, आश्विनकार्तिकमासयोर्घर्मस्यासहत्वं प्रसिद्धमेव, केतकीगर्भपत्रम्–केतक्याः=

---

१. ०कुसुम० शोषी—दाही ।

मुरला—यह सीता—

हृदयरूपी कमल को सुखा देने वाला, कठोर, बहुत दिनों तक रहने वाला शोक, वृन्त (ढेंप) से टूटे हुए मनोहर किसलय की तरह पीले दुर्बल इस (जानकी) के शरीर को उसी प्रकार मलिन (अर्थात् मुर्झाया हुआ) बना रहा है, जैसे शरद् ऋतु का घाम केतकी पुष्प के भीतरी पत्तों को मुर्झाया हुआ बना देता है ॥ ५ ॥

(इस प्रकार, घूम कर दोनों निकल जाती हैं) ।

॥ शुद्ध विष्कम्भक समाप्त ॥

केतकीपुष्पस्य गर्भपत्रमिव = अभ्यन्तरस्थितं दलमिव, यथा शरत्कालजो घर्मः केतकी-पुष्पाभ्यन्तरस्थमप्यतिकोमलं पत्रं ग्लपयति तथैव शोकः सीताशरीरम्, ग्लपयति= म्लानं करोति । अत्र लिङ्गादभ्यूहनरूपम् अनुमानं नाम सन्ध्यङ्गमुक्तम् । अत्र किसलयेन शरीरस्य, कुसुमेन हृदयस्य, घर्मेण च शोकस्य साधर्म्यकथनादुपमाना-लङ्कारः; सा च इव-शब्दवाच्यतया श्रौती । मालिनीवृत्तम् ॥५॥

टिप्पणी—**मुग्धम्**—√मुह् + क्त + विभक्त्यादिकार्यम् । इसका वैकल्पिकरूप "मूढ" भी होता है ।

विप्रलूनम्—वि + प्र + √लू + क्त + विभक्त्यादिः ।

ग्लपयति—√ग्लै (ग्ला) + णिच् + लटि विभक्तिकार्यम् । अनुपसर्गपूर्वक 'ग्ला' धातु विकल्प से मित् होती है, अतः पक्ष में ह्रस्व न होने के कारण 'ग्लापयति' यह रूप भी बनता है । **क्षामम्**-√क्षै + क्तः + तस्य स्थाने "क्षायो मः" इत्यनेन मः + विभक्तिः ।

शरदिजः—शरदि जायते इति । √जन् + डः + विभक्त्यादिः । अत्र "सप्तम्यां जनेर्डः" इति डः । अतः सप्तम्याः अलुक् ।

केतकीपत्रगर्भम्—अत्यन्त सुकुमारता तथा पाण्डुता को सूचित करने के लिये यहाँ 'गर्भ' शब्द का प्रयोग किया गया है । केतकी के भीतर का पत्र अतिशय कोमल तथा पाण्डुवर्ण का होता है । सीता का परिपाण्डु तथा क्षाम शरीर केतकी गर्भपत्र के समान है । उनके हृदयकमल को सुखा देने वाला दीर्घकालिक शोक आश्विन-कार्तिक के घाम के समान है ।

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है । छन्द का लक्षण—

"न-न-म-य-य-युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ ५ ॥"

शुद्धविष्कम्भकः- इसके लिये द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में दी गई टिप्पणी देखनी चाहिये । यहाँ मुरला तथा तमसा—ये दो नदी देवताएँ मध्यम-पात्र हैं । यही कारण है कि उनका संवाद केवल संस्कृत में ही है । इसलिये इसे शुद्ध विष्कम्भक

(नेपथ्ये ।)

[1]जात ! जात !!--

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा[2] सकरुणौत्सुक्यमाकर्णयन्ती सीता ।)

सीता--अहो, जानामि—प्रियसखी वासन्ती व्याहरतीति । (अम्हहे ! जाणामि-'पिअसही वासन्दी व्याहरदि'त्ति ।)

(पुनर्नेपथ्ये ।)

सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-
रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा [3]वर्धितोऽभूत् ।

सीता—किं तस्य ? (किं तस्स ?)

(पुनर्नेपथ्ये ।)

वध्वा सार्धं पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा-
दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः ॥ ६ ॥

कहते हैं । शुद्धः=संस्कृतसम्वादात्मको विष्कम्भकः । विष्कम्भक से भूत तथा भावी घटनाओं की सूचना दी जाती है ॥

शब्दार्थः--नेपथ्ये=नेपथ्य में, पर्दे के पीछे से । पुष्पावचयव्यग्रा=फूलों के चुनने में व्यस्त, सकरुणौत्सुक्यम्=करुणा और उत्सुकता के साथ, आकर्णयन्ती= सुनती हुई ।

टीका—नेपथ्य इति । नेपथ्ये=रङ्गभूमौ, वस्तुतस्तु प्रसाधनस्थले ("नेपथ्यन्तु प्रसाधने । रङ्गभूमौ वेशभेदे ।" इति हैमः) । पुष्पावचयव्यग्रा–पुष्पाणाम्=प्रसूनानाम् अवचये=संग्रहे व्यग्रा=व्यापृता, सकरुणौत्सुक्यम्–करुणया=दयया औत्सुक्येन= उत्कण्ठया च सहितं यथा स्यात्तथा, क्रियाविशेषणमेतत्, आकर्णयन्ती=शृण्वती ॥

टिप्पणी—नेपथ्ये—नेपथ्य कहते हैं प्रसाधन को और प्रसाधन स्थान को भी नेपथ्य कहते हैं । जब रङ्गमञ्च पर न आकर प्रसाधन-स्थल से ही कोई बात जोर से कही जाती है तब "नेपथ्ये" का प्रयोग किया जाता है ।

अवचयम्०—अव√चि+अच् ('एरच्' पा० सू० ३।३।५६) ।

आकर्णयन्ती –आ√ + कण् + णिच् + शतृ + ङीप् + विभक्तिः ॥

अन्वयः—पुरा, अग्रे, (उपस्थितः), लोलः, यः, करिकलभकः, सीतादेव्या, स्वकरकलितैः, सल्लकीपल्लवाग्रैः, वर्धितः, अभूत्; सः, अयम्, वध्वा, सार्धम्, पयसि, विहरन्, अन्येन, उद्दामेन, द्विरदपतिना, दर्पात्, सन्निपत्य, अभियुक्तः ॥ ६ ॥

---

१. प्रमादः प्रमादः, २. व्यग्रहस्ता, ३. पोषितः ।

(पर्दे के पीछे)

बेटा, बेटा।

(तदनन्तर फूलों के चुनने में व्यस्त, करुणा और उत्सुकता के साथ सुनती हुई सीता प्रवेश करती हैं)।

सीता—अहा, ऐसा लगता है कि प्रिय सखी वासन्ती बोल रही है।

(फिर पर्दे के पीछे)

पहले सामने (उपस्थित) चञ्चल जो हस्ति-शावक सीता देवी के द्वारा अपने हाथों से दिये गये सल्लकी-पत्तों के अग्रभागों से बढ़ाया गया था (अर्थात् सल्लकी के पत्तों के सुकोमल अग्रभागों को खिला कर बढ़ाया गया था)।

सीता—उसका क्या हुआ ?

(फिर पर्दे के पीछे)

वही यह (हस्ति–शावक) पत्नी के साथ जल में विहार करता हुआ दूसरे मतवाले दँतैले हाथी के द्वारा अभिमानपूर्वक वेग से उसके समीप आकर आक्रान्त कर दिया गया है ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—पुरा=पहले, अग्रे=सामने, (उपस्थितः=उपस्थित), लोलः=चञ्चल, यः=जो, करिकलभकः=हाथी का बच्चा, हस्ति-शावक, सीतादेव्या=सीता देवी के द्वारा, स्वकरकलितैः=अपने हाथों से दिये गये, सल्लकीपल्लवाग्रैः=सल्लकी पत्तों के अग्रभागों से, वर्धितः=बढ़ाया गया, अभूत्=था; सः=वही, अयम्=यह, वध्वा=पत्नी के, हथिनी के, सार्धम्=साथ, पयसि=जल में, विहरन्=विहार करता हुआ, अन्येन=अन्य, दूसरे, उद्दामेन=उद्दण्ड, मतवाले, द्विरदपतिना=दँतैले हाथी के द्वारा, दर्पात्=अभिमानपूर्वक, सन्निपत्य=वेग से उसके समीप आकर, अभियुक्तः=आक्रान्त कर दिया गया है, धर दबोचा गया है ॥ ६ ॥

टीका—सीतादेव्येति। पुरा=पूर्वम्, वनवास-समय इत्यर्थः, अग्रे=पुरस्तात्, सीतादेव्याः पुरस्तादित्यर्थः, उपस्थित इति शेषः, लोलः=चपलः, "लोलश्चपलसतृष्णयोः" इत्यमरः), यः करिकलभकः—करिणः=गजस्य कलभकः=शावकः, ("कलभः करिशावकः" इत्यमरः), सीतादेव्या=जानक्या, स्वकरकलितैः—स्वकराभ्याम्=स्वहस्ताभ्यां कलितैः=आहृत्य दत्तैः, सल्लकीपल्लवाग्रैः—सल्लकीनाम्=गजभक्ष्यलताविशेषाणामित्यर्थः, पल्लवाग्रैः=किसलयाग्रैः, वर्धितः=पोषितः, अभूत्=जातः; सः=पूर्वपरिचित इत्यर्थः, अयम्=एषः पुरोवर्ती, वध्वा=निजस्त्रिया, स्वकरेणुकयेत्यर्थः, सार्धम्=साकम्, पयसि=जले, विहरन्=विक्रीडन्, अन्येन=अपरेण, उद्दामेन=मदमत्तेन, द्विरदपतिना=गजयूथस्वामिना, दर्पात्=बलावलेपादित्यर्थः, सन्निपत्य=वेगेन समीपमागत्य, अभियुक्तः=आक्रान्तः। सहोक्तिरलङ्कारः। छन्दस्तु मन्दाक्रान्ता ॥ ६ ॥

सीता—(ससंभ्रमं कितिचित्पदानि गत्वा[१] ।) (आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व मम पुत्रकम् । (विचिन्त्य[२]) हा धिक् हा धिक् ! तान्येव चिरपरिचितान्यक्षराणि पञ्चवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नन्ति । हा आर्यपुत्र । (अज्जउत्त ! परित्ताहि परित्ताहि मह पुत्तअम् । हद्धी हद्धी ! ताइं एव्व चिरपरिइदाइं, अक्खराइं पञ्चवटीदंसणेण[३] मं मंदभाइणिं अनुबन्धन्ति ।[४] हा अज्जउत्त ।)

(इति मूर्च्छति ।)

(प्रविश्य ।)

तमसा—समाश्वसिहि समाश्वसिहि

(नेपथ्ये)

विमानराज ! अत्रैव स्थीयताम् ।

टिप्पणी—स्वकरकलितैः—मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम वनवास के प्रसङ्ग से पञ्चवटी में श्री सीताजी के साथ विराजमान थे । वहीं एक समय एक हस्ति शावक हाथियों के झुण्ड से बहक कर राम की पर्णशाला के पास आ खड़ा हुआ । माँ जानकी को यह पशु-शिशु बहुत प्रिय लगा । उन्होंने पास में ही उगे सल्लकी के कोमल पत्तों को उसे खिलाकर अपना स्नेह व्यक्त किया । फलतः वह गजशिशु वहीं रहने लगा । श्री जानकी जी प्रतिदिन उसे सल्लकी के सुकोमल पल्लवाग्रों को खिलाती थीं । वे उसे अपना पुत्र मानती थीं और वह उन्हें अपनी स्नेहमयी माँ ।

करिकलभकः—"कलभः करिशावकः" अमरकोश के इस वचन के अनुसार कलभ का ही अर्थ हाथी का बच्चा होता है, किन्तु यहाँ भाव की स्पष्टता के लिये 'करि' पद का ग्रहण करके "करिकलभक" कहा गया है । अनुकम्पा अर्थ में कन् (क) प्रत्यय आया है ।

वर्धितः—√वृध + णिच् + क्त + विभक्तिकार्यम् । विहरन्–वि + √हृ + शतृ + प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम् ।

द्विरदपतिना—द्विरदानां पतिः द्विरदपतिस्तेन । समासवाले पद में विराजमान पति शब्द के रूप हरि शब्द की तरह चलते हैं—(पतिः समास एव) १-४-८ ।

सन्निपत्य—सम् + नि + √पत् + ल्यप् । अभियुक्तः—अभि + युज् + क्त + विभक्तिः ।

---

१. दधती २. स्मृतिमभिनीय सवैक्लव्यम्, ३. ०णेण पुणोवि मं (पुनरपि मां); ४. अणुरुन्धन्ति ।

सीता—(घबराहट के साथ कुछ पग आगे चलकर) आर्यपुत्र, बचाइये बचाइये मेरे बेचारे पुत्र को। (सोचकर) हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। पञ्चवटी के दर्शन से वे ही चिरपरिचित अक्षर मुझ अभागिन के मुख से निकल रहे हैं। हा आर्यपुत्र !

(ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती है।)

(प्रवेश करके)

तमसा—धीरज धरो, धीरज धरो।

(पर्दे के पीछे)

विमानराज, यहीं रुको।

यहाँ पर 'वध्वा सार्धम्' के कारण 'विहरन्' का दो के साथ सम्बन्ध होने के कारण सहोक्ति अलङ्कार है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—मदाक्रान्ता। छन्द का लक्षण—

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—ससम्भ्रमम्=घबराहट के साथ। आर्यपुत्र=पतिदेव, पुत्रकम्=बेचारे पुत्र को। मन्दभागिनीम्=अभागिनी को, अनुबध्नन्ति=अनुसरण कर रहे हैं, मेरे मुख से निकल रहे हैं॥

टीका—सीतेति। ससंभ्रमम्–संभ्रमेण = वेगेन सहितं ससंभ्रमम् = सवेगम्, ("संभ्रमो वेगहर्षयोः" इत्यमरः)। आर्यपुत्र–आर्यस्य=आदरणीयस्य श्वसुरस्य पुत्रः= सुतस्तत्संबुद्धौ, पुत्रकम्–अनुकम्पनीयं पुत्रं पुत्रकम्, अत्रानुकम्पायां कन्, अथवा कृत्रिमं पुत्रमित्यर्थः, ("पुत्रकः कृत्रिमे पुत्रके" इति संसारावर्ते)। मन्दभागिनीम्–मन्दः = शिथिलो भागः=भाग्यं यस्याः सा ताम्, अल्पपुण्यफलामित्यर्थः, अनुबध्नन्ति=अनुसरन्ति, मन्मुखान्निःसरन्तीति यावत् ॥

टिप्पणी—आर्यपुत्र—प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपने पति को आदर सूचित करने के लिये आर्यपुत्र कहा करती थीं और पुरुष अपनी पत्नी को आर्या कहता था।

पुत्रकम्—पुत्रक का अर्थ होता है दया का पात्र, बेचारा, पुत्र। पुत्र शब्द से अनुकम्पा अर्थ में कन् प्रत्यय होता है। किन्तु इसका अर्थ "कृत्रिम पुत्र" भी होता है। इस अर्थ में "इवे प्रतिकृतौ" (पा० सू० ५।३।९६) इस सूत्र से कन् प्रत्यय होगा।

अनुबध्नन्ति—अनु + √बन्ध् + लटि प्रथमपुरुषबहुवचने रूपम् ॥

शब्दार्थः—नेपथ्ये = पर्दे के पीछे, अत्रैव = यहीं, स्थीयताम् = ठहरिये।

सीता—(समाश्वस्य, ससाध्वसोल्लासम्[१]) अहो, जलभरभरितमेघमन्थरस्तनितगम्भीरमांसलः कुतो नु भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकापयति ? (अम्हहे ! जल[२]भरभरिअमेहमन्थरत्थणिअगम्भीरमंसलो कुदो णु भारईणिग्घोसो [३]भरन्तकण्णविवरं मं वि मन्दभाइणिं उस्सुआवेइ[४] ?)

तमसा—([५]सस्मितास्रम् ।) अयि वत्से !

अपरिस्फु[६]टनिक्वाणे कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी ।
स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठितं[७] स्थिता ।। ७ ।।

सीता—भगवति ! किं भणस्यपरिस्फुटेति । स्वरसंयोगेन प्रत्यभिजानामि नन्वार्यपुत्रेणैवैतद्व्याहृतम् । (भअवदि ! किं भणासि अपरिप्फुडेत्ति । सरसंजएण पच्चहिजाणामि णं अज्जउत्तेण एव्व एदं वाहरिदम् ।)

जलभरभरित-मेघ-मन्थर-स्तनित-गम्भीर-मांसलः=जल के भार से भरे हुए मेघ के मन्द गर्जन के समान गम्भीर एवं पुष्ट, भारतीनिर्घोषः=वाणी का निर्घोष, शब्द की ध्वनि, भ्रियमाणकर्णविवराम्=भरे जाते हुए कर्ण विवरोंवाली, उत्सुकापयति=उत्कण्ठित बना रहा है । सस्मितास्रम्=मुस्कान तथा आँसुओं के सहित ।।

टीका—नेपथ्य इति । नेपथ्यम्=वेशरचना वेशरचनास्थानञ्च तत्र ("नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्" इत्यमरः, "नेपथ्यन्तु प्रसाधने । रङ्गभूमौ वेशभेदे" इति हैमः) । जलभरभरितेत्यादिः—जलस्य=तोयस्य भरः=भारस्तेन भरितः=पूर्णो यो मेघः=जलदस्तस्य यत् मन्थरम्=मन्दम् स्तनितम्=गर्जितं तद्वत् गम्भीरः=धीरः स चासौ मांसलः=पुष्टः, भारतीनिर्घोषः—भारती=वाक् तस्याः निर्घोषः=ध्वनिः, भ्रियमाणकर्णविवराम्—भ्रियमाणम्=आपूर्यमाणं कर्णयोः=श्रोत्रयोः विवरम्=छिद्रं यस्यास्तां तादृशीम्, मन्दभागिनीम्—मन्दः=शिथिलो भागः=भाग्यं यस्यास्तां तादृशीम्, मामपि, उत्सुकापयति=उत्कण्ठापूर्णां करोति ॥

टिप्पणी—ससाध्वसोल्लासम्—राम के समक्ष आने पर सीता को भय की प्रतीति हो रही थी तथा बहुत दिनों के बाद राम के शब्दों की ध्वनि सुन कर उसके मन में उल्लास भी हो रहा था ।

भ्रियमाण० —√भृ + कर्मवाच्य लट् + शानच् + विभक्त्यादिकार्यम् ।।

अन्वयः—स्तनयित्नोः, अपरिस्फुटनिक्वाणे, मयूरी, इव, त्वम्, कुतस्त्ये, अपि, (अपरिस्फुटनिक्वाणे), ईदृशी, चकितोत्कण्ठितम्, स्थिता ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—स्तनयित्नोः=मेघ की, अपरिस्फुटनिक्वाणे=अस्पष्ट ध्वनि पर, मयूरी=मोरनी की, इव=तरह, त्वम्=तुम, कुतस्त्ये=कहीं से आने वाले, अपि=भी,

---

१. ससाध्वसोत्कंपो०, २. जलभरिदमेहत्थणिद (जलभरितमेघस्तनित), ३. भरन्तो, ४. उस्सावेदि (उच्छ्वासयति), ५. सस्नेहा, ६. किमव्यक्तेपि निनदे, किमव्य···कुतस्ते प्रीतिरीदृशी, ७. उत्कण्ठिता ।

सीता--(आश्वस्त होकर, भय और उल्लास के साथ) अहो, जल के भार से भरे हुए मेघ के मन्द गर्जन के समान गम्भीर एवं पुष्ट यह वाणी की ध्वनि कहाँ से (आकर) भला, भरे जाते हुए कर्ण-विवरों वाली मुझ अभागिनी को भी सहसा उत्कण्ठित बना रही है ?

तमसा--(मुस्कान और आँखों में आँसुओं के सहित) अरी बेटी,

मेघ की अस्पष्ट ध्वनि पर मोरनी की तरह तुम कहीं से आने वाले अस्पष्ट शब्द को सुनकर इस प्रकार आश्चर्यचकित और उत्कण्ठित हो गई हो ।। ७ ।।

सीता--हे भगवती, क्या कह रही हो--"अस्पष्ट शब्द" ? स्वर के संयोग से पहचान रही हूँ कि आर्य-पुत्र के द्वारा ही यह कहा गया है ।

(अपरिस्फुटनिक्वाणे=अस्पष्ट शब्द को सुन कर), ईदृशी=इस प्रकार, चकितोत्कण्ठितम्=आश्चर्य से चकित और उत्कण्ठित होकर, स्थिता=स्थित हो ।। ७ ।।

टीका--अपरिस्फुटेत्यादिः—स्तनयितोः=मेघस्य, अपरिस्फुटम्=अव्यक्तं यत् निक्वाणम्=निर्घोषः, शब्द इति यावत्, तस्मिन्, अव्यक्तशब्द इत्यर्थः, मयूरीव=शिखीनीव, मेघगर्जनं श्रुत्वा यथा मयूरी उत्कण्ठते तथेत्यर्थः, त्वम्=सीतेति यावत्, कुतस्त्ये—कुतो भवः=कुतस्त्यस्तस्मिन्, कस्माच्चित्प्रदेशादागते, अपि=च, (अपरिस्फुटनिक्वाणे=अस्पष्टशब्दे), ईदृशी=एतादृशी, चकितोत्कण्ठितम्=साश्चर्यं सोत्कण्ठं यथा स्यात्तथेत्यर्थः, स्थिता=वर्तमाना असि । अत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ।।७।।

टिप्पणी—**सस्मितास्रम्**—घर से निर्वासित कर देने वाले पति के शब्द को सुनकर सीता इस प्रकार उत्कण्ठित हो उठी है—यह सोच कर तमसा मुस्कराई और पति के वियोग की अवस्था में होने वाले उसके कष्ट को देख कर वह अश्रुपात करने लगी ।

मयूरीव—अति दुःखदायी ग्रीष्म ऋतु के बाद आषाढ़ के दिनों में मेघ के गर्जन को सुनकर मयूरी प्रसन्न हो उठती है । ठीक इसी प्रकार राम के मेघ-गम्भीर शब्द को सुनकर सीता भी चकित एवं उत्कण्ठित हो उठी है ।

कुतस्त्ये—कुतो भवः कुतस्त्यः । कुतः + त्यप् (अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४) + सप्तम्येकवचने विभक्तिकार्यम् ।

स्थिता—√स्था + क्त + टाप् + विभक्त्यादिः ।

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है । छन्द का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।। ७ ।।

शब्दार्थः--किं भणसि=क्या कह रही हो ? स्वरसंयोगेन=स्वर के संयोग से, शब्द को सुनकर, प्रत्यभिजानामि=पहचान रही हूँ, व्याहृतम्=कहा गया है ।

तमसा—श्रूयते–'तपस्यतः किल शूद्रस्य दण्डधारणार्थमैक्ष्वाको राजा [१]दण्डकारण्यमागत' इति ।

सीता—दिष्टचा अपरिहीनधर्मः स राजा । (दिट्ठिआ अपरिहीणधम्मो सो राआ) ।

(नेपथ्ये ।)

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥ ८ ॥

दण्डधारणार्थम्=दण्ड देने के लिये, दण्डित करने के लिये, ऐक्ष्वाकः=इक्ष्वाकुवंशी-राम । दिष्टचा=सौभाग्य से, अपरिहीनधर्मः = धर्म–च्युत नहीं हुए हैं ॥

टीका-सीतेति । किं भणसि=किं कथयसि, स्वरसंयोगेन–स्वरस्य=कण्ठरवस्य संयोगेन=सम्बन्धेन, प्रत्यभिजानामि=परिचिनोमि, तदिदमिति वेद्मि, व्याहृतम्=कथितम् । दण्डधारणार्थम्-दण्डविधानार्थम्, अपराधानुगुणशिक्षणार्थम्, ऐक्ष्वाकः–इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः, 'दाण्डिनायने' त्यादिसूत्रेण टिलोपः । दिष्टचा=सौभाग्येन, अपरिहीनधर्मः–न परिहीनः=न्यूनो धर्मो यस्यासौ तादृशः, अच्युतधर्म इति यावत् ॥

टिप्पणी--प्रत्यभिजानामि–प्रति + अभि + √ज्ञा + लटि उत्तमपुरुषैकवचने-रूपम् । प्रत्यभिज्ञा काश्मीर शैव दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है । इसका अर्थ है—किसी पूर्व अनुभूत पदार्थ का उद्बोधक की सहायता से पुनः स्मरण करना ।

व्याहृतम्--वि + आ + √हृ + क्त + विभक्तिः ।

शूद्रस्य दण्डधारणार्थम्—धर्मशास्त्र के अनुसार कार्य और धर्म बँटा हुआ है । धूम-पान करते हुए, पञ्चाग्नि तापते हुए तपस्या करना ब्राह्मण का धर्म था । यदि इस धर्म को, इस प्रकार की तपस्या को शूद्र करता है, तो वह दण्डनीय है । अतः राजा राम ने शम्बूक नामक उस शूद्र को दण्डित किया था ।

ऐक्ष्वाको राजा—कठोरगर्भा सीताको राजप्रासाद से राम ने निर्वासित किया था । अतः तमसा का हृदय क्षुभित है । यही कारण है कि वह राम को राम अथवा रामभद्र न कहकर ऐक्ष्वाकु राजा इस रूखे शब्द से अभिहित कर रही है ॥

अन्वयः--यत्र, द्रुमाः, अपि, मृगाः, अपि, मे, बन्धवः, प्रियासहचरः, (अहम्), यानि, चिरम्, अध्यवात्सम्; एतानि, तानि, बहुकन्दरनिर्झराणि, गोदावरीपरिसरस्य, गिरेः, तटानि, (सन्ति) ॥ ८ ॥

---

१. जनस्थानम् ।

तमसा—सुना जाता है कि "तपस्या करते हुए शूद्र को दण्ड देने के लिये इक्ष्वाकुवंशी राजा (राम) दण्डकारण्य में आये हुए हैं।"

सीता—सौभाग्य से वे राजा धर्म-च्युत नहीं हुए हैं।

(पर्दे के पीछे)

जहाँ पर वृक्ष और मृग भी मेरे बन्धु थे, प्रिया (सीता) के सहित मैं जिनमें बहुत दिनों तक निवास किया था, वे ही ये अनेक कन्दराओं और झरनों से युक्त गोदावरी के समीपवर्ती पर्वत के तट-प्रदेश हैं ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—यत्र=जहाँ पर, द्रुमाः=वृक्ष, अपि=और, मृगाः=मृग, हिरण, पशु, अपि=भी, मे=मेरे, बन्धवः=बन्धु थे, प्रियासहचरः=प्रिया (सीता) के सहित, (अहम्=मैं), यानि=जिनमें, चिरम्=बहुत दिनों तक, अध्यवात्सम्=रहा, निवास किया, तानि=वे, एतानि=ये, पूर्व परिचित, बहुकन्दरनिर्झराणि=अनेक कन्दराओं और झरनों से युक्त, गोदावरीपरिसरस्य=गोदावरी के समीपवर्ती, गिरेः=पर्वत के, तटानि= तटप्रदेश हैं, तट-स्थान हैं ॥ ८ ॥

टीका—यत्र द्रुमा अपीति। यत्र = येषु, तटेष्वित्यर्थः, द्रुमाः = वृक्षाः, अपि= तथेत्यर्थः, मृगाः = हरिणाः, अरण्यवासिनः पशव इत्यर्थः, अपि = च, मे=मम, बन्धवः = बान्धवाः, बन्धुतुल्या इति यावत्, प्रियासहचरः—प्रियया=प्रेयस्या सीतया सहचरः=संयुक्तः, अहमिति शेषः, यानि=तटानि, चिरम्=बहुकालम्, अध्य-वात्सम्=उषितवानस्मि; एतानि = इमानि, तानि=पूर्वानुभूतानीत्यर्थः, बहुकन्दर-निर्झराणि—बहवः=अदभ्राः कन्दराः=गुहाः निर्झराः=जलप्रपाता येषु तानि, गोदा-वरीपरिसरस्य—गोदावर्याः = तदाख्याया नद्याः परिसरस्य=समीपवर्तिनः, गिरेः= पर्वतस्य, तटानि=प्रदेशाः, सन्तीति क्रियाशेषः। अत्र स्वभावोक्तिरर्थापत्तिश्चालङ्कारौ। वसन्ततिलका छन्दः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—गिरेः—यहाँ गिरि से तात्पर्य 'प्रस्रवण' पर्वत से है। अपने प्रवास के समय भगवान् श्रीराम सीता जी के साथ यहाँ कुछ दिनों तक रहे हैं।

तटानि—तट शब्द का रूप केवल पुंलिंग में ही चलता है, नपुंसक लिंग में नहीं। "तटो भृगुः" इत्यमरः। यही कारण है कि 'तीरे तटोऽस्त्री पुंस्येव भृगौ" इति शब्दमाला।

यहाँ पर पर्वत के स्थानों का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है। पर्वत के वृक्ष और मृग आदि राम के बन्धु थे तो फिर ऋषि-मुनियों का क्या कहना?—यह अर्थ होने से अर्थापत्ति अलङ्कार है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥ ८ ॥

सीता—दिष्टचा कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डरपरिक्षामदुर्बलेनाकारेण निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय एवार्यपुत्रो भवति। भगवति तमसे। धारय माम्। (दिट्ठिआ कहं पहादचन्दमण्डलापण्डरपरिक्खामदुब्बलेन आआरेण[1] णिअसोम्हगम्भीराणुभावमेत्तपच्चहिजाज्जो एव्व अज्जउत्तो होदि। भअवदि तमसे ! धारेहि मम्[2])।

(इति तमसामाश्लिष्य मूर्च्छति ।)

तमसा—[3]वत्से ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

(नेपथ्ये ।)

अनेन पञ्चवटीदर्शनेन—

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥ ९ ॥

हा प्रिये जानकि !

शब्दार्थः—प्रभातचन्द्रमण्लापाण्डरपरिक्षामदुर्वलेन=प्रातः कालीन चन्द्रमण्डल के तुल्य कुछ श्वेत, कृश और दुर्बल, आकारेण=आकार के कारण, निजसौम्य-गम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेयः=अपने शान्त और गंभीर प्रभाव के द्वारा ही पहचानने के योग्य ॥

टीका—सीतेति। प्रभातचन्द्रमण्डलेत्यादिः—हा इति विषादे, कथमिति-संभावनायाम्। प्रभाते=प्रभातकाले, ब्राह्ममुहूर्ते यत् चन्द्रमण्डलम्=निशाकरबिम्बं तद्वत् आ=समन्तात् पाण्डुरः=धूसरवर्णः, अतिम्लान इति यावत्, परिक्षामः=अति-कृशः दुर्बलश्च=बलहीनश्च य आकारः=देहस्तेन, उपलक्षितः, "इत्थंभूतलक्षणे" इति उपलक्षणे तृतीया, निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेयः—निजः = स्वकीयः सौम्यः=शान्तो गम्भीरः =धीरः योऽनुभावः=प्रभावः, तेजोविशेष इत्यर्थः, तन्मात्रेण प्रत्यभिज्ञेयः =प्रत्यभिज्ञातुं शक्यः ॥

टिप्पणी—**परिक्षामः**—परि + √क्षै + क्त, "क्षायो मः" इति तस्य मादेशः। **प्रत्यभिज्ञेयः**—प्रति + अभि + √ज्ञा + यत् + विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—अन्तर्लीनस्य, अद्य, उद्दामम्, ज्वलिष्यतः, दुःखाग्नेः, धूमस्य, उत्पीडः, इव, मोहः, माम्, प्राक्, आवृणोति ॥ ९ ॥

---

१. अअं, अअं सो—इत्यधिकः पाठः, २. ता भ० धारेहि मं, ३. धारयन्ती, इत्यधिकः पाठः ।

सीता—(देखकर) सौभाग्य से, क्या यह आर्य-पुत्र ही हैं, जो प्रातःकालीन चन्द्रमण्डल के तुल्य कुछ श्वेत, कृश और दुर्बल आकार के कारण अपने शान्त तथा गंभीर प्रभाव के द्वारा ही पहचानने के योग्य हैं। हे भगवती तमसा, मुझे सभालो।

(ऐसा कहकर और तमसा से लिपट कर मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा—बेटी, धीरज धरो, धीरज धरो।

(पर्दे के पीछे)

पञ्चवटी के इस दर्शन से—

भीतर छिपे हुए, आज प्रकट रूप से जलनेवाले शोकानल के धूम समूह की भाँति, मूर्च्छा मुझे पहले ही आच्छादित कर रही है ॥ ९ ॥

हाय, प्रिये जानकी !

शब्दार्थः—अन्तर्लीनस्य=भीतर छिपा हुआ, अद्य=आज, उद्दामम्=उत्कट रूप से, ज्वलिष्यतः=जलनेवाले, दुःखाग्नेः=शोकानलके, धूमस्य=धूम के, उत्पीड इव=समूह की भाँति, मोहः=मूर्च्छा, माम्=मुझे, प्राक्=पहले ही, आवृणोति=आच्छादित कर रही है ॥ ९ ॥

टीका—अन्तर्लीनस्येति। अन्तर्लीनस्य—अन्तः=हृदये लीनस्य = प्रच्छन्नंस्थितस्य, अद्य=सम्प्रति, उद्दामम्=उल्वणं यथा स्यात्तथा, ज्वलिष्यतः=देदीप्यतः, दुखाग्नेः—दुःखम्=कष्टम् अग्निः=वह्निरिव तस्य, उपमितिसमासः, धूमस्य=अग्निकेतोः, उत्पीड इव=संघात इव, धूमसंबन्धिसंघात इव, मोहः=मूर्च्छा, माम्=रामचन्द्रमित्यर्थः, प्राक्=प्रथमम्, दुःखाग्नेः प्रज्वलनात् पूर्वमिति भावः, आवृणोति=आच्छादयति। अत्रोपमालङ्कारः। श्लोको वृत्तम् ॥ ९ ॥

टिप्पणी—अन्तर्लीनस्य--अन्तः + √ली + क्त तस्य नः। ज्वलिष्यतः—√ज्वल् + लृट् शतृ + षष्ठैचकवचने रूपम्। उत्पीड इव धूमस्य—जिस प्रकार आगे प्रचण्ड रूप से जलने वाले अग्नि को धूम-समूह पहले चारों ओर से घेर लेता है, उसी प्रकार राम के भीतर छिपे हुए दुःख के विलाप आदि के द्वारा बाहर प्रकट होने के, पहले मूर्च्छा उनकी चेतना का आवरण कर रही है। यह उपमा यहाँ बहुत ही युक्ति-युक्त है।

दुःखाग्नेः में लुप्तोपमा अलङ्कार है, दुःखमग्निरिव। उत्पीड इव में भी उपमा है। इस प्रकार इस श्लोक में दो उपमाएँ हैं—एक है लुप्तोपमा और दूसरी है—साधारण उपमा।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप्। अनुष्टुप् के लक्षण के लिये देखिये—इसी, अङ्क में श्लोक ७ की टिप्पणी ॥ ९ ॥

तमसा—(स्वगतम् ।) इदं [१]तावदाशङ्कितं गुरुजनेन[२] ।

सीता—(समाश्वस्य ।) हा ! कथमेतत् ? (हा ! कहं एदम् ?)

(पुनर्नेपथ्ये ।)

हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि !

(इति मूर्च्छति ।)

सीता—हा धिक् हा धिक् ! मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलितनेत्रनीलोत्पलो मूर्च्छित एव । हा ! कथं धरणीपृष्ठे निरुद्धनिःश्वासनिःसहं विपर्यस्तः । भगवति तमसे ! परित्रायस्व परित्रायस्व । जीवयार्यपुत्रम् । (हद्धी हद्धी ! मं मन्दभाइणिं वाहरिअ [३]आमीलिदणेत्तणीलुप्पलो मुच्छिदो एव्व[४] । हा ! कहं धरणिपिट्ठे [५]णिरुद्धणिस्सासणीसहं विपल्हत्थो । भअवदि तमसे ! परित्ताएहि परित्ताएहि । जीवावेहि अज्जउत्तम् ।

(इति पादयोः पतति ।)

तमसा—

त्वमेव ननु कल्याणि ! सञ्जीवय जगत्पतिम् ।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष[६] निरतो जनः ।। १० ।।

शब्दार्थः—आशङ्कितम्=आशङ्का की गई थी। दण्डकारण्यवासप्रियसखि=दण्डकारण्य में निवासके समय की प्रिय सखी, विदेहराजपुत्रि=जनककी पुत्री। मन्दभागिनीम्=अभागिन को, व्याहृत्य=पुकारकर, आमीलितनेत्रनीलोत्पलः=नीलकमल-सदृशनेत्रों को बन्द किये हुए। धरिणीपृष्ठे=भूतल पर, निरुद्धनिःश्वासनिः—सहम्=अवरुद्धश्वासके कारण अवश होकर, विपर्यस्तः=उलटे मुँह गिरे हुए पड़े हैं ।।

टीका—तमसेति । आशङ्कितम्=सम्भावितम्, गुरुजनेन=लोपामुद्राप्रभृतिनेत्यर्थः । दण्डकारण्यवासप्रियसखि–दण्डकारण्ये=दण्डकवने यो वासः=निवासस्तत्र प्रियसखी=प्रियसहचरी तत्सम्बुद्धौ, विदेहराजपुत्रि=विदेहराजस्य=महाराजस्य जनकस्येत्यर्थः पुत्री=तनया तत्सम्बुद्धौ । मन्दभागिनीम्=अभागिनीम्, व्याहृत्य=उद्देशेनोच्चार्य, नामत उच्चार्येति तात्पर्यम्, आमीलितनेत्रनीलोत्पलः––आमीलिते = ईषन्मुद्रिते नेत्रे = नयने एव नीलोत्पले=नीलकमले येन सः, तादृशः । धरणीपृष्ठे––धरण्याः=पृथिव्याः पृष्ठे = तले, निरूद्धनिःश्वासनिःसहम्––निरुद्धः = प्रवृत्तिहीनः निश्वासः=श्वासः यस्मिन् कर्मणि तत् निरुद्धनिःश्वासं तच्च निःसहम्=अक्षमं यथा स्यात्तथा, विपर्यस्तः =विपरीतः पतितः, अधोमुखत्वेन पतित इति भावः ।।

---

१. तद्, २. नापि, ३. आमीलंत, ४. एव्व आज्जउत्तो, ५. निरुत्साहणीसहं (निरुत्साहनिःसहं), ६. तत्रैव नियतो भवः, नियता भव ।

तमसा—(अपने आप) यही तो आशङ्का की गई थी गुरुजनों के द्वारा।

सीता—(आश्वस्त होकर) हाय, कैसे यह हुआ ?

(फिर पर्दे के पीछे)

हा देवी, दण्डकारण्य में निवास के समय की प्रिय सखी, जनक की पुत्री !

(यह कह कर मूर्च्छित हो जाते हैं)

सीता--हाय, धिक्कार है, धिक्कार है ! मुझ अभागिन को पुकार कर नील-कमल के सदृश नेत्रों को बन्द किये हुए (आर्यपुत्र) मूर्च्छित ही हो गये। हाय, कैसे भूतल पर अवरुद्धश्वास के कारण अवश होकर उलटे मुँह गिरे हुए पड़े हैं ! भगवती तमसा, रक्षा करो, रक्षा करो। आर्यपुत्र को जीवित करो॥

(ऐसा कह कर चरणों पर गिरती है।)

तमसा—हे शुभे, तुम्हीं निश्चय ही जगत्पति को होश में लाओ। क्योंकि तुम्हारा हाथ प्रीतिकर स्पर्शवाला है (अर्थात् तर्पक है) और यह राम रूपी जन उसी में अनुरक्त है॥ १०॥

टिप्पणी—तमसेति। **आशङ्कितम्**--आ + √शङ्क + क्त + विभक्तिः। **समाश्वस्य**=सम् + आ + √श्वस् + ल्यप्। **व्याहृत्य**=वि + आ + √हृ + ल्यप्। **विपर्यस्तः**--वि + परि × √अस् + क्त + विभक्तिः॥

अन्वयः--हे कल्याणि, त्वम्, एव, ननु, जगत्पतिम्, सञ्जीवय, हि, ते, पाणिः, प्रियस्पर्शः, एषः, जनः, तत्र, निरतः॥ १०॥

शब्दार्थः—हे कल्याणि = हे शुभे, त्वम् = तुम, एव=ही, ननु=निश्चय ही, जगत्पतिम्=जगत्पति को, सञ्जीवय=होश में लाओ। हि=क्योंकि, ते=तुम्हारा, पाणिः=हाथ, प्रियस्पर्शः = प्रीतिकर स्पर्शवाला है, (च = और), एषः = यह, जनः=राम रूप व्यक्ति, तत्र=उसी में, निरतः=अनुरक्त है॥ १०॥

टीका---त्वमेवेति। हे कल्याणि=हे शुभे, त्वम्=जानकीत्यर्थः, एवेत्यवधारणेऽव्ययम्, नन्विति निश्चये, **जगत्पतिम्**—जगतः = लोकस्य पतिम् = स्वामिनम्, सञ्जीवय = मूर्च्छापनोदनेन प्रत्युज्जीवय। हि = यतः, ते=तव, जानक्या इत्यर्थः, पाणिः=करः, **प्रियस्पर्शः**--प्रियः=प्रियकरः, तर्पक इति यावत्, स्पर्शः=आमर्शनं यस्य तादृशोऽस्ति; एषः=अयम्, जनः=रामरूपा व्यक्तिः, तत्र=तस्मिन्नेव, निरतः = नितरां रतः, समनुरक्त इति यावत्। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः॥

टिप्पणी--**ननु**—अवश्य, निश्चितरूप से। इसको यहाँ आज्ञा सूचक अव्यय भी माना जा सकता है।

सञ्जीवय—सम् + √जीव् + णिच् + लोट्लकारे मध्यमपुरुषैकवचने विभक्तिकार्यम्।

सीता—यद्भवतु तद्भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति। (जं होदु तं होदु। जह भअवई आणवेई)।

(इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्रया सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छ्वासो रामः)

सीता (किञ्चित्सहर्षम्।[१]) जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य। (जाणे उण पच्चाअदं विअ जीविअं तेल्लोकस्स)।

रामः--हन्त भोः! किमेतत्?

[२]आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवितपुनः[३] परितर्पणोऽयं
सञ्जीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसक्तः[४] ॥ ११ ॥

निरतः—नि + √रम् + क्त + विभक्तिः।

इस श्लोक में उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा पूर्वार्ध विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप्। लक्षण के लिये देखिये पीछे श्लोक ७ की टिप्पणी ॥ १० ॥

शब्दार्थः—ससंभ्रमम्=घबराहट और वेग के साथ। भूम्याम्=पृथिवी पर, निपतितः=पड़े हुए, सास्रया=आँसू बहाती हुई, साह्लादोच्छ्वासः=प्रसन्न तथा श्वाससञ्चार से युक्त। प्रत्यागतम्=वापस आगया है, जीवितम्=जीवन ॥

टीका--सीतेति। ससंभ्रमम्--संभ्रमेण=भयमिश्रेण वेगेनेत्यर्थः, भूम्याम्=पृथिव्याम्, निपतितः=पतितः, सास्रया–अस्रेण=अश्रुणा सहिता=युक्ता तया, साह्लादोच्छ्वासः--आह्लादः=आनन्दः, उच्छ्वासः=श्वाससञ्चारः ताभ्यां सहितं यथा स्यात्तथा। प्रत्यागतम्=पुनरागतम्, जीवितम्=जीवनम्। त्रयाणामपि लोकानां राममयजीवितत्वात् रामजीवने तज्जीवनमिति भावः ॥

टिप्पणी—यद्भवतु तद्भवतु—चाहे जो कुछ भी हो। सीता के कहने का भाव यह है कि--यद्यपि मैं निर्वासिता हूँ। अतः मुझ परित्यक्ता को यह अधिकार नहीं है कि मैं राम को छूऊँ। हो सकता है कि वे छूने पर मेरे उपर क्रुद्ध भी हों। किन्तु चाहे जो भी कुछ हो अब मैं राम के शरीर को सहलाऊँगी ही। निपतितः–नि + √पत् + क्त + विभक्तिकार्यम्।

---

१. सहर्षं स्वगतम्, २. प्रश्चो०, ३. तरोः, जीवित-जीवन-मनः, ४. प्रसिक्तः, प्रसक्तिः।

सीता—जो हो सो हो। जैसी भगवती आज्ञा दे रही हैं, (वैसा ही करूँगी)। (ऐसा कह कर घबराहट और वेग के साथ निकल गई)।

(तदनन्तर भूमि पर पड़े हुए तथा आँसू बहाती हुई सीता के द्वारा स्पर्श किये जाते हुए, प्रसन्न एवं श्वास-सञ्चार से युक्त राम प्रवेश करते हैं)।

सीता—(कुछ प्रसन्नता के साथ) समझती हूँ कि त्रिलोकी का जीवन पुनः वापस आ गया है।

राम—अहा ! अरे, यह क्या ? मेरे हृदय पर हरिचन्दन के सुकोमल पत्तों का रस चुआया गया है क्या ? निचोड़े गये चन्द्र-किरणरूपी नये अंकुरों से किया गया सिञ्चन (छिड़काव) है क्या ? सन्तप्त जीवन को पुनः तृप्त करने वाला यह सञ्जीवनी औषध का रस पोता गया है क्या ? ॥ ११ ॥

स्पृश्यमानः—√स्पृश् + कर्मवाच्य लट् + शानच् + विभक्तिः। **प्रत्यागतम्**-प्रति + आ√गम् + क्त + विभक्तिः ॥

अन्वयः—हृदि, हरिचन्दनपल्लवानाम्, आश्च्योतनम्, नु ?, निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः, सेकः, नुः ?, आतप्तजीवितपुनःपरितर्पणः, अयम्, सञ्जीवनौषधिरसः, प्रसक्तः, नु ?, ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—हृदि=हृदय पर, छाती पर, हरिचन्दन-पल्लवानाम् = हरिचन्दन के सुकोमल पत्तों का, आश्च्योतनम्=रस चुआया गया है, नु=क्या; निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः = निचोड़े गये चन्द्र-किरणरूपी नये अंकुरों से किया गया, सेकः=सिञ्चन है; नु=क्या, आतप्तजीवितपुनःपरितर्पणः=सन्तप्त जीवन को पुनः तृप्त करने वाला, अयम्= यह, सञ्जीवनौषधिरसः = संजीवनी औषध का रस, प्रसक्तः = पोता गया है, नु=क्या ? ॥ ११ ॥

टीका—आश्च्योतनमिति। हृदि=हृदये, वक्षःस्थल इत्यर्थः, हरिचन्दनपल्लवानाम्-हरिचन्दनस्य = कल्पवृक्षस्य पल्लवानाम् = किसलयानाम्, आश्च्योतनम् = रसक्षरणम्, न्विति वितर्केऽव्ययम्; निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः—नि० ीडिताः=निष्पिष्टाः ये इन्दुकरकन्दलाः=चन्द्रकिरण—नवाङ्कुराः, तेभ्यो जातः, सेको नु=सेचनं नु ? आतप्तजीवितपुनःपरितर्पणः—आ=समन्तात् तप्तम्=विरहदग्धं यज्जीवितम्=जीवनं तस्य पुनः=मुहुः परितर्पणः=तृप्तिकारकः, अयम्=एषः, सञ्जीवनौषधिरसः=प्राणप्रदौषधद्रवः, प्रसक्तो नु=योजितो नु, नाहमवधारयामि किमेतदितीति भावः। अत्र सन्देहोतिशयोक्तिश्चालङ्कारौ। वसन्ततिलका छन्दः ॥ ११ ॥

टिप्पणी—आश्च्योतनं नु—सीता ने अपने हाथ से राम के शरीर पर स्पर्श किया। उस स्पर्श की अनुभूति राम को कैसी हुई इसी की उद्भावना इसमें की गई है।

अपि च--

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव
सञ्जीवनश्च मनसः परितोषणश्च[१]।
सन्तापजां सपदि यः [२]परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति ॥ १२ ॥

सीता--(ससा[३]ध्वसकरुणमुपसृत्य ।) एतावदेवेदानीं मम बहुतरम्। (एत्तिअं एव्व दाणिं मह बहुदरम् ।)

रामः—(उपविश्य) न खलु वत्सलया[४] देव्याभ्युपपन्नोस्मि ?

सीता--हा धिक् हा धिक् ! किमित्यार्यपुत्रो मां मार्गिष्यते[५] ? (हद्धी हद्धी ! किंति अज्जउत्तो मं मग्गिस्सदि ?)

आश्च्योतनम्—आ + √श्च्युत् + ल्युट् + विभक्तिः ।

हरिचन्दन०--पाँच देवतरुओं में एक विशेष प्रकार के कल्पवृक्ष को हरिचन्दन कहते हैं । मलयचन्दन को भी हरिचन्दन कहते हैं ।

सेकः—√सिच् + घञ् + विभक्त्यादिः ।

परितर्पणः—परि + √तृप् + ल्यु (अन्) + विभक्तिः । प्रसक्तः—प्र + √सञ्ज + क्त + विभक्तिः ।

इस श्लोक में शुद्ध सन्देहालङ्कार है । चन्द्रकिरणरूपी नवाङ्कुरों का निचोड़ना असम्भव है । अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार भी है ।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका–छन्द का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।। ११ ।।

अन्वयः—पुरा, परिचितः, सञ्जीवनः, च, मनसः परितोषणः, च, नियतम्, सः, एव, स्पर्शः, यः, सन्तापजाम्, मूर्च्छाम्, परिहृत्य, सपदि, आनन्दनेन, पुनः, जडताम्, आतनोति ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—पुरा = पहले से ही, परिचितः = परिचित, सञ्जीवनः=जीवन–शक्ति प्रदान करने वाला, च=तथा, मनसः=मन को, परितोषणः=परितृप्त करने वाला, च=भी, नियतम्=निश्चिय ही, सः=वह, एव = ही, स्पर्शः=स्पर्श है, यः=जो, सन्तापजाम् = वियोगदुःखजन्य, मूर्च्छाम्=मूर्च्छा को, परिहृत्य=हटाकर, सपदि=तुरन्त, आनन्दनेन=आनन्द प्रदान करके, पुनः=फिर, जडताम्=निश्चेष्टता को, आतनोति = फैला रहा है ।। १२ ।।

---

१. परिमोहनश्च, २. प्रतिहत्य, ३. ससाध्वसोत्कम्पमुपसृत्य ।
४. सीतादेव्या०, ५ णिन्दिस्सदि (निन्दिष्यति) ।

और भी—

(यह) पहले से ही परिचित, जीवन-शक्ति प्रदान करने वाला तथा मन को परितृप्त करने वाला भी निश्चय ही वही स्पर्श है, जो वियोग-दुःख-जन्य मूर्च्छा को हटा कर तुरन्त आनन्द प्रदान करके फिर (आनन्द-जन्य) जडता को फैला रहा है ॥१२॥

सीता—(भय और करुणा के साथ तमसा के समीप जाकर) इतना ही इस समय मेरे लिये बहुत है।

राम—(बैठ कर) स्नेहमयी देवी सीता के द्वारा तो मैं कहीं अनुगृहीत नहीं किया गया हूँ?

सीता—हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। क्या आर्यपुत्र अब मुझे ढूंढ़ेंगे?

टीका—स्पर्श इति। पुरा=पूर्वकाले, परिचितः=संस्तुतः, सञ्जीवनः=जीवनशक्तिप्रदः, च=तथा, मनसः=चेतसः, परितोषणः=परितोषकश्च, नियतम्=निश्चितम्, सः=पूर्वानुभूतः, एवेति दाढर्ये, स्पर्शः=आमर्शनम्, यः स्पर्शः, सन्तापजाम्=दुःखोत्पन्नाम्; मूर्च्छाम्=प्रज्ञाशून्यताम्, परिहृत्य=दूरीकृत्य, सपदि=झटिति, आनन्दनेन=सुखोत्पादनेन, पुनः=मुहुः, जडताम्=आनन्दोत्थविह्वलताम्, आतनोति=विस्तारयति। अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ १२ ॥

टिप्पणी—परिचितः—परि+ √चि+क्त+विभक्तिः। नियतम्–नि+√यम्+क्त+विभक्तिः। संजीवनः–सम्+ √जीव्+णिच्+ल्यु (अन)+विभक्तिः। परितोषणः–परि+ √तुष्+णिच्+ल्यु (अन)+विभक्तिः। परिहृत्य–परि+ √हृ+ल्यप्। आनन्दनेन–आ+ √नन्द+णिच्+ल्युट् (अन)+विभक्तिः।

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—ससाध्वसकरुणम्=भय तथा करुणा के साथ। उपसृत्य=पास में जाकर। एतावदेव=इतना ही। बहुतरम्=बहुत है। वत्सलया=स्नेहमयी, देव्या=देवी सीता के द्वारा, अभ्युपपन्नः=अनुगृहीत। मार्गिष्यते=खोजेंगे।

टीका—सीतेति। ससाध्वसोत्कम्पम्—साध्वसम्–भयं तेन, निर्वासिताया मम स्पर्शेन राघवो मयि कोपं करिष्यतीति हेतुनोत्पन्नेन भयेन। उत्कम्पः=उत्कम्पनं तेन च सहितं यथा तथेति क्रियाविशेषणम्। उपसृत्य=तमसायाः समीपं गत्वा। एतावदेव=एतत्पर्यन्तमेव, रामस्य स्पर्शमात्रमेव, बहुतरम्=पर्याप्तम् अस्तीति शेषः। वत्सलया=स्नेहमूर्त्या, देव्या=भगवत्या सीतयेत्यर्थः, अभ्युपपन्नः=अनुगृहीतः। मार्गिष्यति=अन्वेषिष्यति।

रामः--भवतु, पश्यामि ।

सीता--भगवति तमसे ! अपसराव तावत् । मां प्रेक्ष्याऽनभ्यनुज्ञातेन सन्निधानेन राजाऽधिकं कोपिष्यति । (भअवदि तमसे ! ओसरह्म दावं । मं पेक्खिअ अणब्भणुण्णादेण संणिहाणेण राआ अहिअं कुपिस्सदि ।)

तमसा--अयि वत्से ! भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्याऽसि संवृत्ता ।

सीता—अस्ति खल्वेतत् ? (अत्थि क्खु एदम् ?

रामः—हा प्रिये जानकि !

सीता—(सम[1]न्युगद्गदम् ।) आर्यपुत्र ! असदृशं खल्वेतदस्य वृत्तान्तस्य । (सास्रम्) भगवति ! किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरप्यसम्भावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्यैवं वत्सलस्यैवंवादिन आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि । अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममैषः । (अज्जउत्त ! असरिसं क्खु एदं इमस्स वुत्तन्तस्स । भअवदि । किंति वज्जमई जम्मन्तरेसु वि पुणो वि असंभाविअदुल्लहदंसणस्स मं एव्व मन्दभाइणिं उद्दिसिअ एव्वं वच्छलस्स एव्वं वादिणो अज्जउत्तस्स उवरि णिरणुक्कोसा भविस्सम् । अहं एव्व एदस्स हिअअं जाणामि, मह एसो ।)

रामः—(सर्वतोऽवलोक्य[2] सनिर्वेदम् ।) हा ! न[3] किंचिदत्र ।

टिप्पणी—ससाध्वस०—सीता राम की विना अनुमति के ही आई हैं । अतः डर रही हैं कि कहीं रामभद्र उन पर क्रुद्ध न हो जायँ । राम की दयनीय दशा को देखकर उन पर सीता को करुणा भी आ रही है ।

उपसृत्य—उपसृत्य का अर्थ होता है—पास में जाकर । किन्तु यहाँ इसका अर्थ होगा—तमसा के पास जाकर । उप + √सृ + ल्यप् ।

बहुतरम्—सीता के कथन का भाव यह है कि मैंने जो राम के शरीर को सहला दिया वही बहुत है, अब आगे यहाँ ठहरना उचित नहीं है । वहु + तरप् + विभक्तिः ।

वत्सलया—वत्स + लच् + टाप् + विभक्तिः ।

अभ्युपपन्नः--अभि + उप् + √पद् + क्त + विभक्त्यादिः ।।

शब्दार्थः—वत्से=बेटी, भागीरथीप्रसादात्=भागीरथी गंगा की कृपा से, संवृत्ता=हो गई है । समन्युगद्गदम्=प्रणय कोप के कारण अस्पष्ट उच्चारण के साथ ।

---

१. ससाध्वस०, ससाध्वसम्, २. विलोक्य, ३. कथमत्र न कश्चिदपि, न काचिदत्र ।

राम—अच्छा, देखता हूँ ।

सीता—देवी तमसा, अब हम दोनों यहाँ से हट जायँ। मुझे देख कर बिना आज्ञा के समीप आने से राजा (मुझ पर) अधिक कुपित होंगे ।

तमसा—हे बेटी, भागीरथी गंगा की कृपा से तुम वनदेवताओं के लिये भी अदृश्य हो गई हो ।

सीता—अवश्य ही, यह बात है ।

राम—हाय प्रिये सीता ।

सीता—(प्रणय-कोप के कारण अस्पष्ट उच्चारण के साथ) आर्यपुत्र, आपका (हा प्रिये जानकी) यह कथन (परित्यागरूप) इस वृत्तान्त के अनुकूल नहीं है । (आँखों में आँसू भरकर) हे भगवती तमसा, अन्य जन्मों में भी जिनका दर्शन फिर असंभव और दुर्लभ है और जो मुझ अभागिन को ही लक्ष्य करके इस प्रकार कह रहे हैं, उन प्रेममय आर्यपुत्र के ऊपर मैं कैसे वज्र के सदृश कठोर और निर्दय हो जाऊँगी ? मैं ही इनके हृदय को जानती हूँ और यह मेरे हृदय को जानते हैं ।।

राम—(चारों ओर देखकर खेद के साथ) हाय, यहाँ कुछ नहीं है ।

असदृशम्=योग्य नहीं है, अनुकूल नहीं है, एतत्=यह, आपका "हाप्रिये जानकी" यह कथन । निरनुक्रोशा=कृपा-शून्य, निर्दय ।।

टीका—तमसेति । अयि वत्से=हे पुत्रि, भागीरथीप्रसादात्–भागीरथी–श्रीमता भगीरथेनानीता गंगा तस्याः प्रसादात्=कृपातः, अदृश्या=अनवलोकनीया, संवृत्ता=सञ्जाता । समन्युगद्गदम्–मन्युना=प्रणयकोपेन गद्गदम्=अस्फुटवाक् यथा स्यात्तथा क्रियाविशेषणमेतत् । असदृशम्=अयोग्यम्, अननुकूलमिति यावत्, एतत्–रामेण "हा प्रिये जानकी" इति कथनम् । निरनुक्रोशा–निर्गतः=दूरीभूतोऽनुक्रोशः=दया ("कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशः" इत्यमरः) यस्याः सा निरनुक्रोशा=निर्दया ।।

टिप्पणी—असदृशम्—सीता के कहने का भाव यह है कि—आपने मेरा छलपूर्वक गृह से निर्वासन किया था और अब इस प्रकार मेरे लिये विलाप कर रहे हैं । अतः आपका यह विलाप निर्वासन के अनुकूल नहीं है ।

वृत्तान्तस्य—यहाँ इसका अर्थ है–परित्यागरूपी घटना के ।

उद्दिश्य—उत् + √दिश् + ल्यप् ।।

शब्दार्थः—सर्वतः=चारों ओर, सनिर्वेदम्=खेद के साथ । किञ्चित्=कुछ ।

सीता--भगवति ! निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्य दर्शनेनैवंविधेन कीदृशी मे हृदयावस्था ? इति न जानामि, न जानामि । (भअवदि ! णिक्कालणपरिच्चइणा वि एदस्स दंसणेण एव्वंविधेण [1]कीलिसी मे हिअआवत्था ? त्ति ण आणामि, ण आणामि ।)

तमसा--जानामि वत्से ! जानामि ।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव[2] ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ॥ १३ ॥

निष्कारणपरित्यागिनः=अकारण परित्याग करने वाले, कीदृशी=कैसी ॥

टीका-- राम इति । सर्वतः=चतुर्षु दिक्षु, सनिर्वेदम्--निर्वेदेन=खेदेन सहितं यथा स्यात्तथा । किञ्चित्=किमपि । निष्कारणपरित्यागिनः=अकारणं परित्यक्तवतः, कीदृशी=किंरूपा, इति न जानामि ॥

टिप्पणी--सनिर्वेदम्--निर्वेदेन सहितम् । निर्+ √विद्+घञ्+ विभक्त्यादिः ।

कीदृशी--सीता के कहने का भाव यह है कि--यद्यपि राम ने मुझे बिना किसी कारण के ही घर से निर्वासित कर दिया था । फिर भी विलाप करते हुए इन्हें देखकर मेरे हृदय की दशा न जाने कैसी हो रही है ॥

अन्वयः--अस्मिन्, क्षणे, तव, हृदयम्, नैराश्यात्, तटस्थम्, इव, अपि च, विप्रियवशात्, कलुषम्, इव, अस्मिन्, दीर्घे, वियोगे, झटिति, घटनात्, स्तम्भितम्, इव, सौजन्यात्, प्रसन्नम्, इव, दयितकरुणैः, गाढकरुणम्, प्रेम्णा, द्रवीभूतम्, इव, (आस्ते) ॥ १३ ॥

शब्दार्थः--अस्मिन्=इस, क्षणे=क्षण में, समय में, तव=तुम्हारा, हृदयम्=हृदय, नैराश्यात्=निराशा के कारण, तटस्थम्=उदासीन, इव=सा, अपि च=और, विप्रियवशात्=(अकारण परित्यागरूप) अप्रिय के कारण, कलुषम्=खिन्न, इव=सा, अस्मिन्=इस, दीर्घे=चिरकालिक (आमरण), वियोगे=वियोग में, झटिति=अकस्मात्, घटनात्=मिलन के कारण, स्तम्भितम्=निश्चेष्ट, इव=सा, सौजन्यात्=(प्रेम पूर्ण सम्बोधनरूप) सज्जनतावश, प्रसन्नम्=प्रसन्न; इव=सा, दयितकरुणैः=

---

१. कीदृश इव मे हृदयानुबन्ध इति (कीदिसो विअ मे हिअआणुबन्धोत्ति ।)
२. 'घटनोत्तम्भितमिव' इति पाठान्तरम् ।

सीता—हे देवी, अकारण परित्याग करने वाले इनके इस प्रकार के दर्शन से मेरे हृदय की कैसी अवस्था हो रही है ?—यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है, नहीं आ रहा है।

तमसा—बेटी, मैं समझती हूँ, समझती हूँ।

इस समय तुम्हारा हृदय निराशा के कारण उदासीन-सा, और (अकारण परित्यागरूप) अप्रिय के कारण कलुषित-सा, इस चिरकालिक (अर्थात् आमरण) वियोग में अकस्मात् मिलन के कारण निश्चेष्ट-सा, (प्रेमपूर्ण सम्बोधनरूप) सज्जनतावश प्रसन्न-सा, प्रिय की करुणाभरी अवस्था से अत्यधिक शोकातुर और प्रेम से पिघला हुआ सा (है) ॥ १३ ॥

प्रिय की करुणाभरी अवस्था से, गाढकरुणम्=अत्यधिकशोकातुर, इव=सा, प्रेम्णा=प्रेम से, द्रवीभूतम्,=पिघला हुआ, इव = सा, (आस्ते=है) ॥ १३ ॥

टीका—तटस्थमिति। अस्मिन्=एतस्मिन्, वर्तमान इति यावत्, क्षणे=समये, तव=भवत्याः, सीताया इत्यर्थः, हृदयम्=चेतः, नैराश्यात्=पुनः समागमस्य आशाया अभावात्, तटस्थमिव=उदासीनमिव, अपि च=अन्यच्च, विप्रियवशात्–निष्कारणपरित्यागरूपाद् अप्रियाद्धेतोः, कलुषमिव=अप्रसन्नमिव, रोषयुक्तमिवेति यावत्, अस्मिन्=एतस्मिन्, दीर्घे=चिरकालस्थायिनि, वियोगे=विरहे, झटिति=सहसा, घटनात्=समागमात्, स्तम्भितमिव=जडीभूतमिव, सौजन्यात्=प्रकृत्या कल्याणत्वात्, प्रेमपूर्णसम्बोधनरूपात् सौजन्याद्वा, प्रसन्नमिव=निवृत्तकालुष्यम्, इव, दयितकरुणैः=दयितस्य=प्रियस्य रामस्य करुणैः=दुःखात्मकावस्थाविशेषैः, गाढकरुणम्–गाढः=घनीभूतः करुणः=शोको यस्मिन् तत् तादृशम्, प्रेम्णा=प्रणयेन, द्रवीभूतमिव=प्राप्तद्रवावस्थमिव, आस्त इति क्रियाशेषः। अत्रोत्प्रेक्षा विरोधश्चालङ्कारौ। शिखरिणी छन्दः ॥ १३ ॥

टिप्पणी--नैराश्यात्--निर्गता आशा यस्मात् तत् निराशं तस्य भावो नैराश्यम्। निराश + ष्यञ् + विभक्तिः। **तटस्थम्**–तट + √स्था + क (अ) + विभक्तिः।

विप्रियवशात्--राम के द्वारा पूर्णगर्भा सीता का परित्याग विप्रियकर्म था। अतः सीता के हृदय का क्रोध से क्षुभित होना स्वाभाविक था।

सौजन्यात्—सुजनस्य भावः सौजन्यं तस्मात् सुजन + ष्यञ् + विभक्तिः।

इस श्लोक में इव के द्वारा पाँच उत्प्रेक्षाओं के वर्णन के कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। खिन्न प्रसन्न आदि विरुद्ध गुणों के एकत्र वर्णन के कारण विरोधाभास भी है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—शिखरिणी। छन्द का लक्षण—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ १३ ॥

रामः--देवि !

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः ।

अद्याप्यानन्दयति मां, त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि ? ॥ १४ ॥

सीता--एते खल्वगाधमानसदर्शितस्नेहसम्भारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः । जाने, प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यितोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः । (एदे क्खु [1]अगाधमाणसदंसिदसिणेहसंभारा आणन्दणिस्सन्दिणो सुहामआ[2] अज्जउत्तस्स उल्लावा । जाणे पच्चएण णिक्कालणपरिच्चाअसल्लिदोवि बहुमदो मह जम्मलाहो ।)

रामः--अथवा कुतः प्रियतमा ? नूनं सङ्कल्पाभ्यास[3]पाटवोपादान[4] एष भ्रमो रामभद्रस्य[5] ।

(नेपथ्ये !)

अहो ! महान् प्रमादः प्रमादः । ('सीतादेव्याः स्वकरकलितैः' इत्यर्धं पठ्यते ।)

रामः--(सकरुणौत्सुक्यम्) किं तस्य[6] ?

(पुनर्नेपथ्ये 'वध्वा सार्धम्' इत्युत्तरार्धं पठ्यते ।)

सीता--क इदानीमभियुज्यते ? (को दाणिं अभिजुज्जइ[7] ?)

अन्वयः—स्नेहार्द्रशीतलः, ते, स्पर्शः, मूर्तः, प्रसादः, इव, अद्यापि, माम्, आनन्दयति; नन्दिनि, त्वम्, पुनः, क्व, असि ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—स्नेहार्द्रशीतलः=स्नेह से आर्द्र और शीतल, ते=तुम्हारा, स्पर्शः=स्पर्श, मूर्तः=मूर्तिमान्, शरीरधारी, प्रसाद इव=अनुग्रह की भाँति, अद्यापि=इस समय भी, माम्=मुझे, आनन्दयति=आनन्दित कर रहा है । हे नन्दिनि=हे आनन्ददायिनी, त्वम्=तुम, पुनः=भला, क्व=कहाँ, असि=हो ॥ १४ ॥

टीका—हे देवीति । स्नेहार्द्रशीतलः-स्नेहेन=प्रेम्णा आर्द्रः=क्लिन्नः शीतलः=सुखस्पर्शश्च, ते=तव, स्पर्शः=आमर्शनम्, मूर्तः=शरीरी, प्रसादः=अनुग्रहः, इव=यथा, अद्यापि=अस्मिन् क्षणेऽपि, माम्=राममित्यर्थः, आनन्दयति=आनन्दितं करोति; हे नन्दिनि=नन्दयति प्रियमिति नन्दिनी तत्सम्बुद्धौ हे नन्दिनि=हे आनन्दकारिणि, त्वं=सीता, पुनः=भूयः, क्व=कुत्र, असि=वर्तसे । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१४॥

---

१. अगाधदंसिद० (अगाधदर्शित०), २. सुदा मए (श्रुता मया), ३. ०ल्पावभासः एष विभ्रमः, ४. वोत्पादितः, ५. क्वचित् 'रामस्य' इत्येव पाठः, ६. तस्य वत्सस्य, ७. अहि उज्जिस्सदि (अभियोक्ष्यते) ।

राम—हे देवी, हे देवी, स्नेह से आर्द्र और शीतल तुम्हारा स्पर्श, शरीरधारी अनुग्रह की भाँति, इस समय भी मुझे आनन्दित कर रहा है। हे आनन्ददायिनी, तुम भला कहाँ हो ? ॥ १४ ॥

सीता—निश्चय ही आर्यपुत्र के उच्च स्वर से किये गये ये विलाप अगाध मन से अत्यधिक प्रेम को प्रदर्शित करने वाले, आनन्द बरसाने वाले तथा अमृतमय हैं। मैं (राम के प्रति) विश्वास के कारण जानती हूँ कि अकारण परित्यागरूपी शल्य (काँटा) से विद्ध होते हुए भी मेरा संसार में जन्म लेना मेरे लिये श्लाघनीय है।

राम—अथवा प्रियतमा सीता यहाँ कहाँ है ? निश्चय ही सर्वदा चिन्तन की पटुता से उत्पन्न होनेवाला यह राम का भ्रम है।

(पर्दे के पीछे)

अहो, बड़ा अनर्थ है, बड़ा अनर्थ है। ("सीतादेव्या स्वकरकलितैः०" यह श्लोक आधा ही पढ़ा जाता है।)

राम—(करुणा और उत्सुकता के साथ) उसका क्या हुआ ?

(फिर पर्दे के पीछे "वध्वा सार्धं०" यह श्लोकका उत्तरार्ध पढ़ा जाता है)।

सीता—कौन इस समय (उस पर) आक्रमण कर रहा है ?

टिप्पणी—**प्रसादः**—प्र + √सद् + घञ् + विभक्तिः।

नन्दिनी—आचार्य घनश्यामने "नन्दिनि" यह सम्बोधन का रूप न मान कर प्रथमा के एक वचन "नन्दिनी" ऐसा पाठ स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—'नन्दिनीति कवेश्चातुर्यम्। तथापि नन्दयतीति धातुबलादवान्तरभेद उह्यः। नन्दिनी प्रथमैकवचनं, नन्दिनी त्वं पुनः क्वासि इत्यर्थः।'

यहाँ पर "प्रसाद इव" मे उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप्। छन्द का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—अगाधमानसदर्शितस्नेह-सम्भाराः=अगाध मन से अत्यधिक प्रेम को प्रदर्शित करने वाले, आनन्दनिष्यन्दिनः=आनन्द बरसाने वाले, सुधामयाः=अमृतमय, आर्यपुत्रस्य=आर्यपुत्र के, उल्लापाः=उच्चस्वर से किये गये विलाप। प्रत्ययेन= विश्वास के कारण, निष्कारणपरित्यागशल्यितः = अकारण परित्यागरूपी शल्य (कांटा) से विद्ध, बहुमतः=श्लाघनीय। संकल्पाभ्यासपाटवोपादानः=सर्वदा चिन्तन की पटुता से उत्पन्न। प्रमादः = अनर्थ। अभियुज्यते = आक्रमण कर रहा है।

रामः—[1]क्वाऽसौ दुरात्मा ? यः प्रियायाः पुत्रं वधूद्वितीयमभिभवति। (इत्युत्तिष्ठति।)

(प्रविश्य।)

वासन्ती—(सम्भ्रान्ता।) देव ! त्वर्यताम्।

सीता—हा, कथं मे प्रियसखी वासन्ती ? (हा ! कहं मे पिअसही वासन्दी ?)

रामः—कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती ?

वासन्ती—देव ! त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य[2] दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य सम्भावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

सीता—हा तात जटायो ! शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्। (हा तात जडाओ ? [3]सुण्णं तुए विणा इदं जणट्ठाणम्।)

रामः—अहह ! हृदयमर्मच्छिदः[4] खल्वमी कथोद्घाताः।

वधूद्वितीयम्=वधू के साथ स्थित ॥

टीका—सीतेति। अगाधमानसदर्शितस्नेहसंभाराः—अगाधम् = अतिगम्भीरम् यत् मानसम्=चित्तं तेन दर्शितः=प्रदर्शितः स्नेहसम्भारः=प्रेम समूहो यैस्ते, ("संभारः संभृतौ गणे" इति विश्वः), आनन्दनिष्यन्दिनः=हर्षस्राविणः, सुधामयाः=अमृतमयाः, आर्यपुत्रस्य=पत्यू रामस्य, उल्लापाः=उच्चस्वरैः, कृता विलापाः। प्रत्ययेन=विश्वासेन, निष्कारणपरित्यागशल्यितः–निष्कारणम्=अकारणं यत् परित्यागः=गृहान्निर्वासनमेव शल्यम्=शङ्कुः, तत् सञ्जातमस्य सः "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इतीतच् प्रत्ययः। शल्यितोऽपि = शल्यवान् कृतोऽपि। बहुमतः = अत्यभीष्टः। संकल्पाभ्यासपाटवोपादानः–संकल्पाभ्यासस्य=स्मृतिसंतानस्य यत् पाटवम् = स्फूर्तिस्तदोपादानम् = कारणं यस्य तथोक्तः। प्रमादः=अनवधानता, ("प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः)। अभियुज्यते=आक्रम्यते। वधूद्वितीयम्–वध्वा=भार्यया द्वितीयम्=सहितम् ॥

टिप्पणी—०**संभाराः**–सम्+ √भृ+घञ्+विभक्तिः। **उल्लापाः**–उत्+ √लप्+घञ्+विभक्तिः।

बहुमतः—बहु+ √मन्+क्त+विभक्तिः। **उपादानः**–उप+आ+ √दा+ल्युट्+विभक्तिः।

रामभद्रस्य—राम का अपने को ही रामभद्र कहना व्यंग्योक्ति है। राम सौभाग्यशाली नहीं अपितु हतभाग्य है। अतः साधारण व्यक्ति की भाँति उसे भ्रम हो रहा है। ऐसा राम का अभिप्राय समझना चाहिये।

---

१. आः क्वासौ दुरा०क्वासौ क्वासौ, २. शिखरिदक्षिणेन; जटायुगिरिशिखरस्य हस्तं-हस्त-दक्षिणेन, ३. अज्ज (अद्य) सुण्णं, ४. मर्मविधः।

राम—वह दुष्ट कहाँ है, जो प्रियतमा सीता के, वधू के साथ स्थित, पुत्र पर आक्रमण कर रहा है ? (ऐसा कह कर खड़े हो जाते हैं)।

(प्रवेश करके)

वासन्ती--(घबराई हुई) महाराज, शीघ्रता कीजिये।

सीता—हाय, क्या यह मेरी प्रिय सखी वासन्ती है ?

राम--क्या यह देवी सीता की प्रियसखी वासन्ती है ?

वासन्ती--महाराज, शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये। इधर से जटायु-शिखर के दक्षिण की तरफ सीता-तीर्थ (सीता-घाट) के समीप गोदावरी मे उतर कर देवी सीता के पुत्र की रक्षा कीजिये।

सीता--हाय तात जटायु, आपके बिना यह जनस्थान सूना-सा लग रहा है।

राम--अहह, प्राचीन घटनाओं के ये वर्णन मर्मस्थल को छेदने वाले हैं।

शब्दार्थः—सम्भ्रान्ता=घबराई हुई। त्वर्यताम्=शीघ्रता कीजिये। दक्षिणेन=दक्षिण तरफ, सम्भावयतु=रक्षा कीजिये। हृदयमर्मच्छिदः=मर्मस्थलको छेदने वाले; कथोद्घाताः=प्राचीन घटनाओं के वर्णन ॥

टीका--वासन्तीति। सम्भ्रान्ता=त्वरयायुक्ता उद्विग्ना च। त्वर्यताम्=त्वरा क्रियताम्। दक्षिणेन=दक्षिणस्यां दिशीत्यर्थः, सम्भावयतु=परित्राणेन संमानयतु। हृदयमर्मच्छिदः–हृदयमर्माणि छिन्दन्तीति हृदयमर्मच्छिदः=हृन्मर्मभेदकाः। कथोद्घाताः =पुरावृत्तोपन्यासाः ॥

टिप्पणी--**सम्भ्रान्ता**--सम्+ √भ्रम्+क्त+टाप् √विभक्त्यादिकार्यम्।

जटायुशिखरस्य--जटायुशिखर उस पर्वतभाग को कहते हैं, जहाँ जटायु रहता था। जटायु के अर्थ में जटायु और जटायुष्–ये दोनों ही शब्द प्राप्त होते हैं। जटायुना अध्युषितं शिखरम्, मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास यहाँ हुआ है। "एनपा द्वितीया" (२-३-३१) से एनप्+प्रत्ययान्त के साथ द्वितीया और षष्ठी दोनों होती हैं। यहाँ पर एनप्-प्रत्ययान्त दक्षिणेन के कारण शिखरस्य में षष्ठी विभक्ति आई है।

सीतातीर्थेन—यहाँ तीर्थ का अर्थ है—घाट। गोदावरी में जहाँ सीता स्नान करती थीं, उसे सीतातीर्थ कहा जाता है।

अवतीर्य—अव+ √तृ+ल्यप्।

कथोद्घाताः—प्राचीन घटनाओं की ओर इंगित करने से राम को मर्मान्तक पीडा की अनुभूति हो रही है। कभी-कभी पुरानी घटनाओं का स्मरण बहुत ही कष्ट कारक सिद्ध होता है।

वासन्ती—इत इतो देवः ।

सीता—भगवति ! सत्यमेव वनदेवतापि मां न पश्यति । (भअवदि ! सच्चं एव्व वणदेवदावि मं ण पेक्खदि ।)

तमसा—अयि वत्से ! सर्वदेवताभ्यः [1]प्रकृष्टतममैश्वर्यं मन्दाकिन्या । तत्किमिति विशङ्कसे ?

सीता—ततोऽनुसरावः । (तदो अणुसरह्म ।)

(इति परिक्रामति ।)

रामः—(परिक्रम्य) भगवति गोदावरी ! नमस्ते ।

वासन्ती—(निरूप्य ।) देव ! मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेण ।

रामः—विजयतामायुष्मान् ।

सीता—अहो ! ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः । (अह्महे ! ईदिसो मे पुत्तओ संवुत्तो[2] ।)

रामः—हा देवि ! दिष्टचा वर्धसे ।

येनोद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु ! लवलीपल्लवः [3]कर्णमूलात् ।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः ॥१५॥

अन्वयः—हे सुतनु, उद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण, येन, ते, कर्णमूलात्, लवलीपल्लवः, व्याकृष्टः; सः, अयम्, तव, पुत्रः, मदमुचाम्, वारणानाम्, विजेता (सन्), तरुणे, वयसि, यत्, कल्याणम्, तस्य, भाजनम्, जातः ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—हे सुतनु=हे सुन्दरी, उद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण= निकलते हुए मृणाल (भिसाड़-दण्ड) के अग्रभाग के समान चिकने छोटे-छोटे अपने दाँतों से, येन=जिसके द्वारा, ते=तुम्हारे, कर्णमूलात्=कर्ण-मूल (अर्थात् कान के मूल भाग) से, लवलीपल्लवः=लवलीलता का पत्ता, व्याकृष्ट=खींचा जाता था; सः= वही, अयम्=यह, तव=तुम्हारा, पुत्रः=बेटा वारणानाम्=मतवाले हाथियों का, विजेता (सन्)=विजयी (होकर), तरुण=यौवनभरी, वयसि=अवस्था में, यत्=जो, कल्याणम्=कल्याण है, तस्य=उसका, भाजनम्=पात्र, जातः=हो गया है ॥ १५ ॥

१. प्रकृष्टमैश्वर्यं, २. एदिसो एसो संवुत्तो, ३. कर्णपूरात् ।

वासन्ती—इधर से, इधर से (चलें) महाराज।

सीता—भगवती तमसा, सच ही वनदेवता भी मुझे नहीं देख रही है ।

तमसा -अरी बेटी, गंगा का प्रभाव सभी देवताओं से बढ़-चढ़ कर है । तो तुम क्यों शङ्का कर रही हो ?

सीता—तो हम दोनों भी इनके पीछे-पीछे चलें ।

(ऐसा कह कर घूमती हैं)

राम—(घूम कर) हे भगवती गोदावरी, आपको प्रणाम है ।

वासन्ती—(ध्यान से देखकर) महाराज, विजयी और वधू-युक्त, सीता देवी के पुत्र के साथ आप आनन्दित होइये ।

राम—चिरञ्जीवी विजयी बनो ।

सीता—ओह, मेरा पुत्र ऐसा हो गया है ।

राम—हे देवी, सौभाग्य से (तुम) बढ़ रही हो ।

हे सुन्दरी, निकलते हुए मृणाल के अग्रभाग के समान चिकने छोटे-छोटे अपने दाँतों से जिसके द्वारा तुम्हारे कर्णमूल से लवली लता का पत्ता खींचा जाता था वही यह तुम्हारा पुत्र मतवाले हाथियों का विजेता होकर युवावस्था में जो मङ्गल (बल, पराक्रम, शौर्य आदि) है, उसका पात्र हो गया है ।। १५ ।।

टीका—येनेति । हे सुतनु–शोभना तनूः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे सुतनु=हे सुन्दरि, उद्गच्छदित्यादिः—उद्गच्छत्=ऊर्ध्वं गच्छत्, नवोद्भिन्नमित्यर्थः, यत् बिसकिसलयम्=मृणालाङ्कुरं तदिव स्निग्धः=कोमलः सचिक्कणश्च दन्ताङ्कुरः= दशनप्ररोहो यस्य तथाविधेन, येन करिशावकेनेत्यर्थः, ते=तव, कर्णमूलात्=श्रवण-मूलात्, लवलीपल्लवः–लवलीलतायाः=किसलयः, व्याकृष्टः=करेण आकृष्यगृहीतः; सोऽयम्=स एवायं मम पुरोवर्ती, तव=भवत्याः, पुत्रः=पुत्रत्वेन पालितो गजशावकः, मदमुचाम्—मदस्राविणाम्, मत्तानामिति यावत्, वारणानाम्=गजानाम्, विजेता= परिभावकः सन्, तरुणे=नूतने, वयसि=अवस्थायाम्, तारुण्य इति भावः, यत् कल्याणम्=यन्मङ्गलसाधकम्, बलशौर्यादिकमिति भावः, तस्य कल्याणस्येत्यर्थः, भाजनम्=पात्रम्, जातः=सम्पन्नः । अत्रोपमा काव्यलिङ्गश्चालङ्कारौ । मन्दाक्रान्ता छन्दः ।। १५ ।।

टिप्पणी—**कर्णमूलात्** —सीता देवी ने गजशावक को पाल रक्खा था। वह उनसे इतना हिल मिल गया था कि जब सीताजी लवली के पत्तों से अपने कान पर प्रसाधन करतीं तो वह जाकर उसे अपने शुण्ड से खींच लेता था ।

विजेता—वि √जि + तृच् + विभक्त्यादिः ।

सीता—अवियुक्त इदानीं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु।
(अविउत्तो दाणि दीहाऊ इमाए सोह्मदंसणाए होदु ।)

रामः—सखि वासन्ति ! पश्य पश्य । कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन ।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः[1]
[2]पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः ।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥ १६ ॥

कल्याणम्—जवानी का कल्याण है—बल, पराक्रम, शौर्य और सौन्दर्य आदि ।
जातः—√जन् + क्त + विभक्तिः ।

इस श्लोक में "बिसकिसलयस्निग्ध०" में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलङ्कार है। तीसरे चरण में वर्णित मदस्रावी हाथियों का विजेता होना चौथे चरण के कल्याण-प्राप्ति का कारण होने से काव्यलिंग अलङ्कार है ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—अवियुक्तः=वियुक्त न हो, संयुक्त रहे, दीर्घायुः=चिरञ्जीवी, सौम्यदर्शनया=प्रियदर्शना के साथ। कान्तानुवृत्तिचातुर्यम्=प्रियतमा की चाटुकारिता की चतुरता, शिक्षितम्=सीख ली गई है ॥

टीका—सीतेति । अवियुक्तः=अविरहितः, दीर्घायुः=चिरञ्जीवी, सौम्यदर्शनया—सौम्यम्=प्रियं दर्शनम्=अवलोकनं यस्याः सा तया, कान्तानुवृत्तिचातुर्यम्—कान्तायाः=प्रियायाः, करिण्या इत्यर्थः, अनुवृत्तिः=अनुवर्तनम्, चित्तानुरञ्जनमिति यावत्, शिक्षितम्=अभ्यस्तम् ॥

टिप्पणी—अवियुक्तः—न + वि + √युज् + क्त + विभक्तिः । चातुर्यम्—चतुर + ष्यञ् + विभक्त्यादिः ।

कान्तानुवृत्तिचातुर्यम्—काम की वृत्ति मानव और पशुओं में समान रूप से रहती है। जैसे पुरुष अपनी प्रियतमा की चाटुकारिता करता है, वैसे ही पशु भी अपनी सहचारिणी स्त्री को चारा देकर, उसके शरीर को सहला कर और उसके शरीर पर लोट-पोट कर अपनी चाटुकारिता प्रदर्शित करता है। आगे के श्लोक में इसी प्रकार की चाटुकारिताओं का वर्णन किया गया है ॥

अन्वयः—यत्, स्नेहात्, लीलोत्खातमृणाल-काण्डकवलच्छेदेषु, पुष्यत्पुष्करवासितस्य, पयसः, गण्डूषसंक्रान्तयः, संपादिताः; शीकरिणा, करेण, कामम्, सेकः, विहितः; पुनः, विरामे, अनरालनालनलिनीपत्रातपत्रम्, धृतम् ॥ १६ ॥

---

१. संपातिताः, २. पुष्प्यत् ।

सीता—अब यह चिरञ्जीवी इस प्रियदर्शना के साथ कभी भी वियुक्त न हो।

राम—सखी वासन्ती, देखो देखो। इस बच्चे के द्वारा प्रियतमा की चाटुकारिता की चतुरता भी सीख ली गई है। (अर्थात् यह प्रियतमा की चाटुकारिता करने में भी प्रवीण है।)

जो कि (इसके द्वारा) प्रेम के कारण खेल-खेल में उखाड़े गये कमल-दण्ड (भिसाड़) के ग्रासों के अन्त में विकसित कमलों से सुगन्धित जल के कुल्ले के प्रदान सम्पन्न किये गये हैं (अर्थात् कुल्ले प्रियतमा के मुख में छोड़े गये हैं)। जलकण छोड़ने वाले सूँड़ से पर्याप्त सिञ्चन किया गया है और फिर अन्त में सीधी नालवाले कमलपत्र रूपी छाते को ऊपर से लगाया गया है ॥ १६ ॥

विशेषः—करि-शावक ने सबसे पहले कमल-दण्ड उखाड़ कर हथिनी को खिलाया फिर अपने सूँड़ में पानी भरकर उसके मुँह में छोड़ा। खिला-पिला लेने के बाद उसने अपने सूँड़ में जल भरकर फुहारों से अपनी प्रिय हथिनी को नहलाया और अन्त में कमलिनी के पत्ते का छाता उसके मस्त पर लगाया ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—यत्=जो कि, स्नेहात्=प्रेम के कारण, लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु=खेल-खेल में उखाड़े गये कमलदण्ड (भिसाड़) के ग्रासों के अन्त में, पुष्यत्पुष्करवासितस्य=विकसित कमलों से सुगन्धित, पयसः=जल के, गण्डूषसंक्रान्तयः=कुल्ले के प्रदान, संपादिताः=सम्पन्न किये गये हैं; शीकरिणा=जल-कण छोड़ने वाले, करेण=सूँड़ से, कामम्=पर्याप्त, सेकः=सिञ्चन, विहितः=किया गया है; पुनः=फिर, विरामे=अन्त में, अनरालनालनलिनीपत्रातपत्रम्=सीधी नालवाले कमलपत्ररूपी छाते को, धृतम्=धारण किया, ऊपर से लगाया गया ॥ १६ ॥

टीका—**लीलोत्खातेत्यादिः**—यत् = यस्मात्, स्नेहात्=प्रेम्णः, लीलोत्खात-मृणालकाण्ड-कवलच्छेदेषु=लीलया=अनायासेन उत्खाताः=उद्धृताः ये मृणालकाण्डाः= बिसस्तम्बाः ते एव कवलाः=ग्रासाः तेषां छेदेषु=अवसानेषु, पुष्यत्पुष्करवासितस्य-पुष्यन्ति=विकसन्ति यानि पुष्कराणि=कमलानि तैर्वासितम्=सुरभितं तस्य तादृशस्य पयसः = जलस्य, गण्डूषसंक्रान्तयः–गण्डूषस्य = मुखपूरितजलस्य संक्रान्तयः=सञ्चाराः, ("शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इत्यमरः), करेण=शुण्डेन, कामम्=पर्याप्तम्, यथेच्छ-मित्यर्थः, ("कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्" इत्यमरः), सेकः=सेचनम्, विहितः=सम्पादितः, पुनः=मुहुः, विरामे=अवसाने, अनरालनालनलिनी-पत्रातपत्रम्= अनरालम्=अवक्रम्, सरलमित्यर्थः, नालम्=दण्डो यस्य तत् तादृशं यत् नलिनीपत्रम्= कमलपत्रम्, तदेव आतपत्रम् = छत्रम्, धृतम्=करिण्याः उपरि आतपनिवारणार्थं गृहीतम्। अत्र रूपकं स्वभावोक्तिश्चालङ्कारौ। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १६ ॥

सीता--भगवति तमसे ! अयं तावदीदृशो जातः । तौ पुनर्न जानाम्येतावता कालेन कुशलवौ कीदृशौ संवृत्ताविति ?। (भअवदि तमसे ! अयं दाव ईरिसो जादो । दे उण ण आणामि, एत्तिएण कालेण कुसलवा कीरिसा संवुत्तेति[१] !)

तमसा--यादृशोऽयं, तादृशौ तावपि ।

सीता--ईदृश्यस्मि मन्दभागिनी, यस्याः न केवलमार्यपुत्रविरहः, पुत्रविरहोऽपि । ([२]ईरिसंह्मि मन्दभाइणी, जाए ण केवलं अज्जउत्तविरहो पुत्तविरहो वि ।)

तमसा—भवितव्यतेयमीदृशी ।

सीता—किं वा मया प्रसूतया ? येनैतादृशं मम पुत्रकयोरीषद्विरलधवलदशनकुड्मलोज्ज्वलमनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितं नित्योज्ज्वलं मुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण । (किंवा मए पसूदाए ? जे एआरिसं मह पुत्ताआणं ईसिविरलधवलदसणकुह्मलुज्जलं अणुबद्धमुद्धकाअलीविहसिदं णिच्चुज्जलं मुहपुण्डरीअजुअलं ण परिचुम्बिअं अजउत्तेण ।)

तमसा—अस्तु देवताप्रसादात् ।

टिप्पणी--सम्पादिताः—सम् + √पद् + णिच् + क्त + विभक्तिः । शीकरिणा–शीकर + इनि + विभक्तिः । विहितः–वि + √धा + क्त + विभक्तिः । यहाँ धा को हि हो जाता है । धृतम्— √धृ + क्त + विभक्तिः ।

लीलोत्खात०—यह श्लोक मालतीमाधव में भी प्रायः इसी रूप में प्राप्त होता है ।

यहाँ नलिनीपत्र पर आतपत्र का आरोप होने से रूपक अलंकार है । हाथी और हथिनी के प्रेम का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है ।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित । छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—एतावता कालेन=इस समय तक, कीदृशौ=कैसे, संवृत्तौ=हो गये होंगे ?। भवितव्यता=होनी । प्रसूनया=पुत्र उत्पन्न करने से, ईषद्विरलधवलदशनकुड्मलोज्ज्वलम्=थोड़े विरल, धवल और कलियों के तुल्य सुन्दर दँतुलियों से उज्ज्वल, अनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितम्=मनोहर तोतली बोली और हास्य से

---

१. कीदिसा विअ होन्ति (कीदृशाविव भवतः), २. ईरि‌सी हि म० अहं ।

सीता—भगवती तमसा, यह (हाथी का बच्चा) तो ऐसा (अर्थात् इतना बड़ा) हो गया है। पता नहीं इस समय तक वे दोनों कुश और लव कैसे (अर्थात् कितने बड़े) हो गये होंगे ?

तमसा—जैसा यह है, वैसे ही वे दोनों भी होंगे।

सीता—मैं ऐसी भाग्यहीन हूँ कि जिसका केवल पति से ही वियोग नहीं, अपितु पुत्रों से भी विरह है।

तमसा—यह ऐसी होनी ही है।

सीता—मेरे पुत्र उत्पन्न करने से क्या लाभ कि मेरे उन दोनों दया के पात्र बेटों के थोड़े विरल, धवल और कलियों के तुल्य सुन्दर दँतुलियों से उज्ज्वल, मनोहर तोतली बोली और हास्य से निरन्तर युक्त, सर्वदा प्रसन्न मुख-कमल के जोड़े को आर्य-पुत्र ने नहीं चूमा।

तमसा—यह भी हो देवताओं की कृपा से।

निरन्तर युक्त, नित्योज्ज्वलम्=सर्वदा प्रसन्न, मुखपुण्डरीकयुगलम्=मुख–कमल के जोड़े को ॥

टीका—सीतेति। एतावता=इयता, कालेन=समयेन, कीदृशौ=किंरूपौ, संवृत्तौ=जातौ। भवितव्यता=भवितव्यस्य भावो भवितव्यता=भावानामवश्यम्भावित्वम्, नियतिरिति यावत्। प्रसूतया=प्रसवकारिण्या, ईषद्विरलेत्यादिः– ईषद्विरलाः=नातिनिविडाः कोमलाः=सुकुमाराः धवलाः=शुभ्राः ये दशनाः=दन्तास्तैरुज्जलौ=भ्राजमानौ कपोलौ=गण्डौ यस्मिन् तत् तादृशम्; अनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितम्--अनुबद्धे=निरन्तरं प्रसक्ते मुग्धे=मनोहरे ये काकली–विहसिते=अस्फुटध्वनिमुग्धस्मिते यस्मिन् तत् तथोक्तम्; काकली=मधुरास्फुटध्वनिः, विहसितम् = मधुरहास्यं ज्ञेयम्; नित्योज्ज्वलम्–नित्यमेव=सर्वदैव उज्ज्वलम्=प्रसन्नम्, मुखपुण्डरीकयुगलम्--मुखम्=आननं पुण्डरीकम्=कमलमिवेति मुखपुण्डरीकं तस्य युगलम्=द्वयम्, आर्यपुत्रेण=पत्या रामेण, न परिचुम्बितम्=न सम्यक् चुम्बितम् ॥

टिप्पणी—**संवृत्तौ**--सम्+√वृत्+क्त+विभक्तिः। **भवितव्यता**–√भू+तव्य+विभक्तिः। भवितव्यस्य भावो भवितव्यता। **प्रसूतया**–प्र+√सू+क्त+टाप्+विभक्त्यादिः। **उज्ज्वल०**–उत्+√ज्वल्+अच्+विभक्त्यादिः। **विहसितम्**-वि+√हस् क्त+विभक्तिः। **परिचुम्बितम्**–परि+√चुम्ब्+क्त+विभक्तिः ॥

शब्दार्थः—अस्तु=हो, देवताप्रसादात्=देवताओं की कृपा से। देवों के अनुग्रह से।

सीता—भगवति तमसे ! एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः सन्निधानेन क्षणमात्रं संसारिणी संवृत्तास्मि। (भअवदि तमसे ! एदिणा अवच्चसंसुमरणेण उस्ससिदपण्हुदत्थणी [1]दच्चाणिं वाणं पिदुणो संणिहाणेन खणमेत्तं संसारिणी संवुत्तह्मि।)

तमसा—किमत्रोच्यते ? प्रसवः खलु [2]प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते[3] ॥ १७ ॥

वासन्ती—इतोऽपि देवः पश्यतु—

अपत्यसंस्मरणेन=सन्तान के स्मरण से, उच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी-फड़कने वाले एवं दुग्धस्रावी स्तनोवाली। प्रसवः=सन्तान, प्रकृष्टपर्यन्तः=पराकाष्ठा, अन्तिम सीमा, अन्योन्यसंश्लेषणम्=परस्पर बन्धन का कारण ॥

टीका—तमसेति। अस्तु=भवतु, एतदपीति शेषः, देवताप्रसादात्—देवतानाम्=देवानां प्रसादात्=अनुग्रहात्। अपत्यसंस्मरणेन—अपत्यस्य=सन्तानस्य संस्मरणेन=स्मृत्या, उच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी—उच्छ्वसितौ=स्फुरितौ प्रस्नुतौ=दुग्धभरितौ स्तनौ=पयोधरौ यस्याः सा तादृशी, प्रसवः=सन्ततिः, पित्रोः=जननी-जनकयोः, स्नेहस्य=प्रेम्णः, प्रकृष्टपर्यन्तः=पराकाष्ठा वर्तते। अन्योन्यसंश्लेषणम्—अन्योन्यम्=परस्परं संश्लेषणम्=बन्धनकारणम्, अपि=च, अस्तीति शेषः ॥

टिप्पणी—**अपत्यस्मरणेन**—राम को देखकर लव-कुश के स्मरण से सीता के हृदय में स्नेह का सागर उमड़ पड़ता है। फलतः उनके स्तन फड़कने लगते हैं और उनसे दूध की बूंदें टपकने लगती हैं। राम के सन्निधान से सीता को पूर्व स्थिति का स्मरण हो आता है। क्षण भर के लिये वे वास्तविक स्थिति को भूल कर अपने को गृहिणी के रूप में अनुभव करने लगती हैं।

उच्छ्वसित०—उद्+√श्वस्+क्त+विभक्तिः। **प्रस्नुत०**—प्र+√स्नु+क्त+विभक्तिः। **प्रसवः**—प्र+√सू+अप्+विभक्तिः। **संश्लेषणम्**—शम्+√श्लिष्+णिच्+ल्युट्+विभक्तिः ॥

अन्वयः—दम्पत्योः, अन्तःकरणतत्त्वस्य, स्नेहसंश्रयात्, अयम्, एकः, आनन्दग्रन्थिः, अपत्यम्, इति, पठ्यते ॥ १७ ॥

---

१. दाणिं वच्चाणं (इदानीं वत्सयोः), २. प्रकर्षपर्यन्तः, ३. बध्यते।

सीता—भगवती तमसा, सन्तान के इस स्मरण से फड़कने वाले एवं दुग्ध-स्रावी स्तनोंवाली मैं सम्प्रति बच्चों के पिता के सन्निधान के कारण थोड़ी देर के लिये संसारिणी (सामान्य गृहस्थ-स्त्री) हो गई हूँ ।

तमसा—इसमें क्या कहना । निश्चय ही सन्तान प्रेम की पराकाष्ठा हैं और यह माता-पिता के परस्पर बन्धन का कारण भी हैं ।

पति और पत्नी के हृदयरूपी तत्त्व के प्रेम का आश्रय होने के कारण यह एक जो सुख की गाँठ है उसे ही 'सन्तान' कहा जाता है ॥ १७ ॥

वासन्ती - इधर भी महाराज देखें ।

शब्दार्थः—दम्पत्योः=पति और पात्नी के, अन्तःकरणतत्त्वस्य=हृदयरूपी तत्त्व के, स्नेहसंश्रयात्=प्रेम का आश्रय होने के कारण, अयम्=यह, एकः=एक, आनन्द-ग्रन्थिः=सुख की गाँठ, (एव=ही), अपत्यम्='सन्तान', इति=ऐसा, पठ्यते=कहा जाता है ॥ १७ ॥

टीका—**अन्तःकरणतत्त्वस्येति** । दम्पत्योः=जायापत्योः, अन्तःकरणतत्त्वस्य=अन्तःकरणरूपतत्त्वस्य, चित्तपदार्थस्येत्यर्थः, स्नेहसंश्रयात्–स्नेहस्य=जायापत्योर्वात्सल्यस्य संश्रयात्=एकास्पदत्वादित्यर्थः, अत्र हेतौ पञ्चमी, अयम्=एषः, एकः=अद्वितीयः, आनन्दग्रन्थिः–आनन्दः=आनन्दमयः ग्रन्थिः=बन्धनम्, अपत्यम्=सन्ततिः, इति=इत्थम्, पठ्यते=कथ्यते अत्र परिणामोऽलङ्कारः । छन्दस्त्वनुष्टुप् ॥ १७ ॥

टिप्पणी—**अन्तःकरणतत्त्वस्य**—अन्तःकरण का अर्थ है—अन्दर की इन्द्रियाँ । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार – इन चारों को दर्शन में अन्तःकरण कहा जाता है । किन्तु यहाँ पर इसका केवल हृदय अर्थ ही अभिप्रेत है ।

दम्पत्योः—जाया च पतिश्चेति दम्पती । द्वन्द्व समास होकर यह रूप बनता है । जाया शब्द को निपातन से दम् और जम् आदेश विकल्प से हो जाते हैं । अतः दम्पती, जम्पती और जायायती—ये तीनों रूप बनते हैं ।

संश्रयात्०—सम्+ √श्रि+अच्+विभक्तिः ।

अपत्यम्—न पतति वंशो येन जातेन तदपत्यम् । नञ् (अ)+ √पत्+ यत्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् । छन्द का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १७ ॥

[1]अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम् ।
मणिमुकुट इवोच्छिख: कदम्बे नदति स एष वधूसख: शिखण्डी ।।१८।।

सीता—([2]सकौतुकस्नेहास्रम् ।) एष सः । (एसो सो ।)

रामः—मोदस्व वत्स ! वयमद्य वर्धामहे[3] ।

सीता—एवं भवतु । (एव्वं होदु ।)

रामः—

भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्ति[4]चक्षुः
प्रचलित[5]चटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या ।
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि ।। १९ ।।

अन्वयः--अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्, यम्, ते, प्रिया, अनुदिवसम्, अवर्धयत्, सः, एषः, शिखण्डी, वधूसखः, (सन्), कदम्बे, उच्छिखः, मणिमुकुटः, इव, नदति ।। १८ ।।

शब्दार्थः—अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्=नवीन निकले हुये मनोहर और चञ्चल पंख वाले, यम्=जिसको, ते=आप की, प्रिया=पत्नी ने, अनुदिवसम्=प्रतिदिन, अवर्धयत्=बढ़ाया था, पाला-पोसा था, सः=वही, एषः=वह, शिखण्डी=मोर, वधूसखः—अपनी वधू के साथ, (सन्=होकर), कदम्बे=कदम्ब वृक्ष के ऊपर, उच्छिखः=शिखा को ऊपर उठाये हुए, मणिमुकुटः=मणिजटित मुकुट की, इव=तरह, नदति=शब्द कर रहा है, कूक रहा है ।। १८ ।।

टीका--अनुदिवसमिति । अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्—अचिरम्=सद्यो निर्गतम्=उद्गतं मुग्धम्=मनोहरं लोलम्=चञ्चलं यत् बर्हम्=पिच्छं "पिच्छबर्हे नपुंसके" इत्यमरः, यस्य तम्; यं मयूरम्, ते=तव, प्रिया=प्रियतमा सीता, अनुदिवसम्=प्रतिदिनम्, अवर्धयत्=अपोषयत्, स एषः=सोऽयम्, शिखण्डी=मयूरः, वधूसखः–वध्वाः=पत्न्याः सखा=सहचरः सन्, कदम्बे=कदम्बवृक्षे, उच्छिखः–उद्गताः शिखाः=किरणाः यस्य स तादृशः, मणिमुकुटः–मणिखचितः मुकुट इति मणिमुकुटः=रत्नकिरीटः, इव=यथा, नदति=कूजति, केकां करोतीत्यर्थः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । पुष्पिताग्रा छन्दः ।। १८ ।।

टिप्पणी—०निर्गत०—निर्+ √गम्+क्त+विभक्त्यादिः । शिखण्डी–शिखण्डः अस्ति अस्य इति, शिखण्ड+इनि+विभक्तिः ।

---

१. अतरुणमदताण्डवोत्सवान्तेष्वयमचिरोद्गतमुग्धलोलबार्हः ।

२. सकौतुकास्रम्, ३. मोदस्व वत्स मोदस्व, ४. वृत्त०, ५. चतुर० ।

नवीन निकले हुये मनोहर और चञ्चल पंखवाले जिस (मोर) को आपकी प्रिया (सीता) ने प्रतिदिन बढ़ाया था, वही यह मोर अपनी वधू (मोरनी) के साथ होकर कदम्ब वृक्ष के ऊपर शिखा को ऊपर उठाये हुए, मणिजटित मुकुट की तरह, शब्द कर रहा है ॥ १८ ॥

सीता--(उत्सुकता और स्नेह की आँसुओं के साथ) यह वही है।

राम--प्रसन्न रहो बेटा, हम लोग आज बढ़ रहे हैं।

सीता--ऐसा ही हो।

राम--(मोर के नृत्य की वेला में) चक्राकार भ्रमणों के समय नेत्रावरणों के मध्य गोलाई से घूमते हुए नेत्रों (तारों) को अति चञ्चल और सुन्दर भौंहों के ताण्डव नृत्य से सुशोभित करने वाली सुन्दरी (सीता) के द्वारा पल्लव के सदृश हाथों की तालियों से नचाये जाते हुए तुम्हें, बेटे की तरह, स्नेह भरे मन से स्मरण कर रहा हूँ ॥ १९ ॥

विशेष—कृतपुटा०--सीता जी ताली बजा-बजा कर मोर को नचाती थीं। मयूर चक्राकार नाच रहा था। उसके साथ ही जानकी की आँखों की पुतलियाँ घूम रही थीं। पुतलियों के साथ उनकी चञ्चल भौंहें भी थिरक रही थीं। उस समय सीता के मुख-मण्डल की शोभा अपलक नेत्रों से राम निरख रहे थे। उसी का वर्णन यहाँ वे कर रहे हैं ॥१९॥

इस श्लोक में उपमा अलंकार और पुष्पिताग्रा छन्द है। छन्द का लक्षण—

अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—सकौतुकस्नेहास्रम्=उत्सुकता और स्नेह की आँसुओं के साथ। एषः= यह, सः=वही, (अस्ति=है)। वत्स=बेटा, वर्धामहे=बढ़ रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं। एवं भवतु=ऐसा ही हो ॥

टीका—सीतेति। सकौतुकस्नेहास्रम्–कौतुकम्=उत्कण्ठा च स्नेहास्रञ्चेति कौतुकस्नेहास्रे ताभ्यां सहितम्। एष स इति प्रत्यभिज्ञा। वर्धामहे=वृद्धिमनुभवामः। एवं भवतु=यथा भवान् वदति तथा भवतु ॥

अन्वयः--भ्रमिषु, कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः, प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैः, मण्डयन्त्या, मुग्धया, करकिसलयतालैः, नर्त्यमानम्, त्वाम्, सुतम्, इव, वत्सलेन, मनसा, स्मरामि ॥ १९ ॥

शब्दार्थः--भ्रमिषु=चक्राकार भ्रमणों के समय, कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः = नेत्रावरणों के मध्य गोलाई से घूमते हुए नेत्रों (तारों) को, प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैः- अति चञ्चल और सुन्दर भौंहों के ताण्डव नृत्य से, मण्डयन्त्या=सुशोभित करने वाली,

हन्त ! तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते ।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः प्रियतमया परिवर्धितोऽय[1]मासीत् ।

सीता—(सास्रम् ।) सुष्ठु प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण । (सुट्ठु पच्चहिजाणिदं अज्जउत्तेण ।)

रामः—

स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति ।। २० ।।

मुग्धया=सुन्दरी (सीता) के द्वारा, करकिसलयतालैः=पल्लव के सदृश हाथों की तालियों से, नर्त्यमानम्=नचाये जाते हुए, त्वाम्=तुम्हें, सुतमिव=बेटे की तरह, वत्सलेन=स्नेह भरे, मनसा=मन से, स्मरामि=स्मरण कर रहा हूँ ॥ १९ ॥

टीका—भ्रमिष्विति । भ्रमिषु=मयूरस्य चक्राकारभ्रमणेषु, मयूरस्य मण्डलाकारनाट्यचारिष्विति यावत् । कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः—कृता = विहिता, पुटे अन्तः पुटान्तः, पुटान्तः मण्डलावृत्तिः=मण्डलाकारेण आवर्तनं येन तादृशं चक्षुः= नेत्रम्, प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैः–प्रचलिते = अतिचञ्चले चटुले=सुन्दरे ये भ्रुवौ तयोस्ताण्डवैः=नृत्याकारेण चालनैः, मण्डयन्त्या=अलङ्कुर्वन्त्या, मुग्धया=सुन्दर्या सीतया, करकिसलयतालैः–करकिसलययोः–हस्तपल्लवयोस्तालैः = कालक्रियामानशब्दैः नर्त्यमानम्=कार्यमाणनृत्यम्, 'नृतीगात्रविक्षेपे' इत्यस्माद्धातोः णिजन्ताद् कर्मणि शानच्, त्वां मयूरम्, सुतमिव=पुत्रमिव, वत्सलेन=स्नेहपूर्णेन, मनसा=चेतसा, स्मरामि=चिन्तयामि । अत्रोपमाऽलङ्कारः । मालिनी छन्दः ।। १९ ।।

टिप्पणी—मण्डयन्त्या-- √मण्ड+स्वार्थे णिच्+शतृ+ङीप्+तृतीयैकवचने विभक्तिकार्यम् । **मुग्धया**– √मुह्+क्त+टाप्+विभक्तिः । **नर्त्यमनाम्** -- √नृत्+णिच्+कर्मवाच्ये शानच्+द्वितीयैकवचने विभक्तिः । इस श्लोक में 'सुतमिव स्मरामि' में इव के द्वारा उपमा अलंकार तथा मालिनी छन्द है । छन्द का लक्षण—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकैः ।। १९ ।।

अन्वयः—कतिपयकुसुमोद्गमः, अयम्, कदम्बः, प्रियतमया, परिवर्धितः, आसीत्; एषः. गिरिमयूरः, देव्याः, स्मरति; यतः, अत्र, स्वजने, इव, प्रमोदम्, एति ।। २० ।।

शब्दार्थः—कतिपयकुसुमोद्गमः=कुछ विकसित फूलों से युक्त, अयम्=यह, कदम्बः=कदम्ब, प्रियतमया=प्रियतमा सीता के द्वारा, परिवर्धितः=पाल कर बड़ा किया गया, आसीत्=था । एषः=यह, गिरिमयूरः=पर्वतीय मोर, देव्याः=प्रिया सीता

---

१. य आसीत् ।

वाह, पशु-पक्षी भी परिचय को निभाते हैं—

कुछ विकसित फूलों से युक्त यह कदम्ब प्रियतमा सीता के द्वारा पाल कर बड़ा किया गया था।

सीता--(आँखों में आँसू भर कर) ठीक पहचाना आर्यपुत्र ने।

राम—यह पर्वतीय मयूर देवी सीता का स्मरण कर रहा है, क्योंकि इस कदम्ब के वृक्ष पर स्वजन की भाँति आनन्द को प्राप्त कर रहा है ॥ २० ॥

विशेष--सीता ने मयूर को पाला था। वह सीता के पीछे-पीछे चला करता था। सीता मयूर के साथ जाकर कदम्ब को सींचती थीं, सहलाती थीं। यह सब मयूर देखा करता था। मयूर का भी स्नेह उस वृक्ष से हो गया था। पूर्व की भाँति आज भी वह कदम्ब पर बैठकर आनन्द की अनुभूति कर रहा है। इससे प्रतीत होता है कि वह जानकी का स्मरण कर रहा है ॥ २० ॥

का, स्मरति=स्मरण कर रहा है। यतः=क्योंकि, अत्र=इस कदम्ब के वृक्ष पर, स्वजन इव=स्वजन की भाँति, प्रमोदम्=आनन्द को, एति=प्राप्त कर रहा है ॥ २० ॥

टीका—कतिपयेत्यादिः--कतिपयकुसुमोद्गमः– कतिपयानाम् = कियताम्, स्वल्पानामित्यर्थः, कुसुमानाम्=पुष्पाणाम्, उद्गमः=उत्पत्तिर्यस्मिन् सः तादृशः, अयम्=एषः, कदम्बः=नीपः, प्रियतमया=सीतया, वर्धितः=कृतसंवर्धनः, आसीत्= अभूत्। एषः=अयम्, गिरिमयूरः=पर्वतीयो मयूरः, देव्याः=प्रियायाः सीतायाः, सीतामित्यर्थः, "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी, स्मरति=स्मरणं करोति. यतः=यस्मात्, अत्र=अस्मिन् कदम्बवृक्षे, स्वजने=आत्मबान्धवे, इव=यथा, प्रमोदम्= हर्षम्, एति=प्राप्नोति, हर्षानुभूतिं करोतीत्यर्थः। अत'स्तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते' इति समर्थितं जायते। अत्रोपमालङ्कारः। छन्दस्तु पुष्पिताग्रा ॥ २० ॥

टिप्पणी—कतिपय०—इसका विग्रह दो प्रकार से होता है :—(१) कतिपयानां कुसुमानाम् उद्गमो यस्मिन् सः व्यधिकरणबहुव्रीहिः। यद्यपि "पोटायुवति०" (पा० २।१।६५) सूत्र के अनुसार जातिवाचक शब्द (कुसुम) के साथ समास होने से 'कतिपय' शब्द का परनिपात होकर 'कुसुमकतिपय' रूप बनना चाहिये, किन्तु इस सूत्र के नियम को नित्य नहीं माना गया है। तुलना—'कतिपयदिवसस्थायिहंसा दशार्णाः' (मेघदूत)। (२) कतिपयाः कुसुमोद्गमाः यस्य सः।

परिवर्धितः—परि+ √वृध्+णिच्+क्त+विभक्तिः। **प्रत्यभिज्ञातम्**--प्रति+अभि+ √ज्ञा+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में उपमा एवं काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है। छन्द का लक्षण—अयुजि नयुगरेफतो यकारो। युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥२०॥

वासन्ती--अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः । एतत्तु[1] देवस्याश्रमम् ।

(राम उपविशति ।)

वासन्ती—

[2]नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते ।
अत्र स्थिता तृणमदाद्वन[3]गोचरेभ्यः
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म ।। २१ ।।

रामः—इदमशक्यं द्रष्टुम् ।

(इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति ।)

सीता--सखि वासन्ति ! किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्दर्शयन्त्या । हा धिक् हा धिक् ! स एवार्यपुत्रः. तदेव पञ्चवटीवनम्, सैव प्रियसखी वासन्ती, त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोद्देशाः,

---

शब्दार्थः--तावत् = पहले, तो, आसनपरिग्रहम् = आसन-ग्रहण, करोतु= करें, देवः=महाराज । देवस्य=महाराजका, आपका, आश्रमम्=आश्रम है ।

टीका--वासन्तीति । अत्र=अस्मिन् स्थाने, तावत् = प्रथमम्, आसनपरिग्रहम्--आसनस्य परिग्रहः=स्वीकरणम्, करोतु=विदधातु, देवः = महाराजः । देवस्य=महाराजस्य, आश्रमम्=वनवासकालरूपनिवासस्थलम् । अस्तीति शेषः ।।

टिप्पणी—परिग्रहम्--परि + √ग्रह+अच्+विभक्तिः ।

देवस्याश्रमम्--श्रीराम अपने वनवास के काल में यहाँ आश्रम बनाकर कुछ दिनों निवास किये थे ।।

अन्वयः--कान्तासखस्य, ते, (एतत्), नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति, शयनीयशिलातलम्, (अस्ति); अत्र, स्थिता, सीता, वनगोचरेभ्यः, तृणम्, अदात्; ततः, हरिणकैः, न, विमुच्यते, स्म ।। २१ ।।

शब्दार्थः—कान्तासखस्य=प्राण-प्रिया सीता के सहित, ते=आपका, (एतत्= यह), नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति = सघन एवं सुकुमार कदली-वन के बीच में स्थित, शयनीयशिलातलम्=शयन करने का शिलातल, (अस्ति–है); अत्र=यहाँ, इस स्थान पर, स्थिता = बैठकर, बैठी हुई, सीता = जानकी ने, वनगोचरेभ्यः = जंगली पशुओं को, तृणम्=घास, अदात्=दिया करती थीं; ततः=इसीलिये, हरिणकैः= हरिणों के द्वारा, न=नहीं, विमुच्यते स्म = छोड़ा जाता था ।। २१ ।।

---

१. अस्मात् परं—'एतत्तु देवस्य देव्याः–आश्रमपदम्', २. एतत्तदेव कदली०, ३. अदाद्बहुशो ।

वासन्ती--यहाँ पहले आसन ग्रहण करें महाराज। यह तो आपका ही आश्रम **है।**

(राम बैठते हैं)

वासन्ती--(वनवास के समय) प्राण-प्रिया सीता के सहित, आपका, (यह) सघन सुकोमल कदली-वन के बीच में स्थित शयन करने का शिलातल है; यहाँ बैठकर सीता (हरिण आदि) जंगली पशुओं को घास दिया करती थीं; इसीलिये हरिणों के द्वारा (यह स्थान) नहीं छोड़ा जाता था ।। २१ ।।

राम--यह देखना सम्भव नहीं है ।

(ऐसा कह कर रोते हुए दूसरी तरफ बैठ जाते हैं ।)

सीता--हे सखी वासन्ती, मुझे और आर्य पुत्र को यह (स्थान) दिखलाकर तूने क्या किया ? हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है ! वही आर्य-पुत्र हैं, वही पञ्च-वटी है, वही प्रिय सखी वासन्ती हैं, विविध विश्वस्त कार्यों के साक्षी गोदावरी के

टीका--**नीरन्ध्रेत्यादिः**—कान्तासखस्य—कान्तायाः=प्रियायाः सखा सहचर-स्तस्य, प्रियासहितस्येत्यर्थः, ते=तव, भवत इति यावत्, (एतत्=इदम्), नीरन्ध्र-वालकदलीवनमध्यवर्ति--नीरन्ध्राः = अतिघना या बालदल्यः =कोमलरम्भाः, तासां वनस्य=आरण्यस्य मध्ये=अन्तरे वर्तत इति र्वात=स्थितम्, सावरणमिति भावः, शयनीयशिलातलम्—शेते ऽस्मिन्निति शयनीयम्, शयनीयं च तत् शिलातलम्=प्रस्तर-खण्डः, शय्याभूतः शिलाखण्ड इत्यर्थः, अस्तीति क्रियाशेषः; अत्र=अस्मिन् स्थाने, स्थिता=उपविष्टा, सीता=जानकी, वनगोचरेभ्यः=वन्यमृगेभ्यः, तृणम् = घासम्, अदात्=दत्तवती; ततः= तस्माद्धेतोः, हरिणकैः=मृगैः, न विमुच्यते स्म=न त्यज्यते स्म । वसन्तलिका छन्दः ।। २१ ।।

टिप्पणी--**शयनीयम्**--शेते अस्मिन्निति शयनीयम् । √शी+अनीयर्+ विभक्तिः । **स्थिता**-- √स्था+क्त+टाप्+विभक्त्यादिः ।

हरिणकैः--हरिण शब्द से अनुकम्पा अर्थ में कन् प्रत्यय हुआ है ।

वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।।२१।।

शब्दार्थः--अशक्यम्=सम्भव नहीं है । अन्यतः=दूसरी तरफ । विविधविस्रम्भ-साक्षिणः=विविध विश्वस्त कार्यों के साक्षी, गोदावरीकाननोद्देशाः=गोदावरी के वन-प्रदेश, जातनिर्विशेषाः=पुत्र-तुल्य, पादपाः =वृक्ष । संवृत्तः =हो गया है ॥

टीका—**राम इति** । अशक्यम्=असम्भवम् । अन्यतः=अन्यस्यां दिशि । विविध-विस्रम्भसाक्षिणः—विविधानाम् = नानाप्रकाराणां विस्रम्भाणाम्=आवयोर्विश्वस्त-व्यापाराणां साक्षिणः = साक्षाद्द्रष्टारः, गोदावरीकाननोद्देशाः—गोदावर्याः=रेवायाः

त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च । मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवेतन्नास्ति । ईदृशो जीवलोकस्य परिणामः संवृत्तः । (सहि वासन्ति ! किं तुए किदं अज्जउत्तस्स मह अ एदं दसअन्तीए ! हद्धी हद्धी ! सो एव्व अज्जउत्तो । तं एव्व पञ्चवडीवणम् । सा एव्व पिअसही वासन्दी, दे एव्व विविहविस्सम्भसक्खिणो गोदावरीकाणणुद्देसा, दे एव्व जादणिव्विसेसा मिअपक्खिणो पाअवा अ । मह उण मन्दभाइणीए दीसन्तं वि सव्वं एव्व एदं णत्थि । ईरिसो जीवलोअस्स परिणामो संवुत्तो) ।

वासन्ती—सखि ! सीते ! कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम् ।

[1]नवकुवलयस्निग्धैरङ्गैर्ददन्नयनोत्सवं
सततमपि नः[2] स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः ।
विकलकरणः पाण्डु[3]च्छायः शुचा परिदुर्बलः
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः[4] प्रियः ।। २२ ।।

काननोद्देशाः=वनप्रदेशाः, जातनिर्विशेषाः—जातेभ्यः=अपत्येभ्यो निर्विशेषाः = तुल्याः, पादपाः=वृक्षाः । संवृत्तः=सञ्जातः ॥

टिप्पणी—दर्शयन्त्या– √दृश्+णिच्+शतृ+ङीप्+तृतीयैव वचने विभक्तिकार्यम् । **जात०**— √जन्+क्त+विभक्त्यादिः । **निर्विशेषाः**—निर्गतः विशेषः = प्रभेदो येषान्ते, निर्+वि+ √शिष्+घञ्+विभक्तिः ।

ईदृशो जीवलोकस्य परिवर्तः—सीता के कहने का भाव यह है कि—जो पदार्थ उसे कभी संयोग की अवस्था में सुख कारक थे वे ही अब वियोग की अवस्था में दुःख कारक वन गये हैं । यही संसार की अवस्था है, यही उसकी नित-नित परिवर्तनशीलता है । परि+वृत्+घञ् भावे+विभक्तिकार्यम् ।।

अन्वयः—नवकुवलयस्निग्धैः, अङ्गैः, नयनोत्सवम्, ददत्, सततम्, अपि, नः, स्वेच्छादृश्यः, सः, नवः, नवः, एव, (आसीत्, सम्प्रति, तु), शुचा, विकलकरणः, पाण्डुच्छायः, परिदुर्बलः, सः, इति, कथमपि, उन्नेतव्यः, तथापि, दृशोः, प्रियः ।।२२।।

शब्दार्थः—नवकुवलयस्निग्धैः=नवीन नीलकमल के समान मनोहर, अङ्गैः= अङ्गों से, नयनोत्सवम्=नेत्रों के आनन्द को, ददत्=देते हुए, सततम्=निरन्तर, सदा, अपि=भी, ही, नः=हमारे लिये, स्वेच्छादृश्यः=सुलभ-दर्शन, सः=वे, नवः=नवीन, नवः=नवीन, एव=ही, (आसीत्=थे, तु = किन्तु), सम्प्रति = इस समय, शुचा= शोक के कारण, विकलकरणः=विकल इन्द्रियों वाले, पाण्डुच्छायः=पीली कान्ति

---

१. कुवलयदलस्निग्धैः, ददत्-ददौ, २. ते···नवं नवमेव, ३. पाण्डुः सोऽयम्, ४. दृशाम् ।

वही वन-प्रदेश हैं, वे ही पुत्र-तुल्य पशु, पक्षी और वृक्ष हैं। परन्तु मुझ अभागिन के लिये, दिखलाई पड़ती हुई भी ये सब वस्तुएँ नहीं (के सदृश) हैं। (मेरे लिये) संसार का ऐसा ही परिणाम हुआ है।

वासन्ती—हे सखी सीता, क्यों नहीं देख रही हो रामभद्र की अवस्था को ?

नवीन नील कमल के समान मनोहर अङ्गों से (हम लोगों के) नेत्रों के आनन्द को देते हुए सदा ही हमारे लिये सुलभ-दर्शन वे (राम) नवीन-नवीन ही प्रतीत होते थे, किन्तु सम्प्रति शोक के कारण विकल इन्द्रियोंवाले, पीले पड़े हुए, अत्यन्त दुर्बल 'यह वही राम हैं' इस प्रकार कठिनाई से पहचाने जाते हैं, फिर भी नेत्रों को प्रिय लग रहे हैं॥ २२॥

विशेष—राम अति सुन्दर थे। साथ रहने के कारण जो सर्वदा ही उन्हें देखते रहते थे, उन्हें भी वे नित नवीन प्रतीत होते थे। अब राम वियोग की अवस्था में दुर्बल हैं, पीले पड़ गये हैं फिर भी देखने में सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं॥ २२॥

वाले, परिदुर्बलः=अत्यन्त दुर्बल, सः=वही राम हैं, इति=इस प्रकार, कथमपि=किसी-किसी प्रकार, उन्नेतव्यः=पहचाने जाने योग्य हैं, पहचाने जाते हैं, तथापि=फिर भी, दृशोः=नेत्रों को, प्रियः=प्रिय प्रतीत हो रहे हैं॥ २२॥

टीका—**नवकुवलयेत्यादिः**—नवानि=नवीनानि यानि कुवलयानि = नील-कमलानि तानि इव स्निग्धानि=चिक्कणानि, सुन्दराणीति यावत्, तैः तादृशैः, अङ्गैः =अवयवैः, नयनोत्सवम्=नयनयोः=नेत्रयोः उत्सवम्=आनन्दम्, ददत्=प्रयच्छन्, सततम्=निरन्तरम्, अपि=च, नः=अस्माकम्, स्वेच्छादृश्यः=स्वेच्छया=इच्छानुसारं दृश्यः=दर्शनीयः, सुलभदर्शनोऽपि, सः=रामः, नवो नवो एव=सर्वथा नूतन एव, आसीत्=अभूत्, तु=किन्तु, सम्प्रति=अधुना, शुचा=शोकेन, विकलकरणः-विकलानि=क्षीणानि करणानि=इन्द्रियाणि यस्य तादृशः, पाण्डुच्छायः=धूसरकान्तिः, परिदुर्बलः=अतिकृशः, स इति=स एव रामोऽयमिति, कथमपि=केनापि प्रकारेण, उन्नेतव्यः=अनुमेयः, तथाऽपि=तदवस्थोऽपि, दृशोः=नेत्रयोः, प्रियः=मनोहरः, अस्तीति शेषः। अत्र विभावना लुप्तोपमा चालङ्कारौ। हरिणी छन्दः॥ २२॥

टिप्पणी—**सखि सीते**—सीता के प्रति वासन्ती की यह उक्ति सीता को लक्ष्य करके ही कही गई है, देखकर नहीं, क्योंकि गङ्गा के वरदान से सीता वासन्ती के लिये उस समय अदृश्य थीं।

०स्निग्धैः—√स्निह्+क्त+विभक्तिकार्यम्।

ददत्—√दा+शतृ+प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम्। "नाभ्यस्ताच्छतुः" (पा० ७।१।७८) से नुम् का अभाव होता है।

सीता--सखि ! पश्यामि । (सहि ! पेक्खामि ।)

तमसा--[1]पश्य प्रियं भूयः ।

सीता--हा दैव ! एष मया विना अहमप्येतेन विनेति केन सम्भावितमासीत् ? तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादपि दुर्लभलब्धदर्शनं बाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद्वत्सलमार्यपुत्रम् । (हा ! देव्व एसो मए विणा अहंवि एदेण विणेत्ति केण संभाविदं आसि ? ता मुहु[2]त्तमेत्तं जन्मन्तरादोवि दुल्लहलद्धदंसणं वाहसलिलन्तरेषु पेक्खामि दाव वच्चलं अज्जउत्तम् ।)

(इति पश्यन्ती स्थिता ।)

तमसा--(परिष्वज्य[3] सास्रम् ।)

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती [4]पक्ष्मलोत्तानदीर्घा ।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
[5]धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ।। २३ ।।

स्वेच्छादृश्यः--मनोविज्ञान का यह सिद्धान्त है कि जिस व्यक्ति अथवा वस्तु को हम बराबर देखते हैं, वह हमें सर्वदा सुन्दर नहीं प्रतीत होता । किन्तु राम का सौन्दर्य ऐसा है कि निरन्तर देखने वाला भी उससे तृप्त नहीं होता है, उसे वह नित नवीन प्रतीत होता है ।

उन्नेतव्यः—उत्+ √नी+तव्य+विभक्तिकार्यम् ।

इस श्लोक में पीत वर्ण आदि सौन्दर्य के अकारणों के रहने पर भी राम की सुन्दरता का वर्णन होने से विभावना अलङ्कार है । नव कुवलय० में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है ।

इस में प्रयुक्त छन्द का नाम है हरिणी । छन्द का लक्षण—नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥ २२ ॥

शब्दार्थः-संभावितम्=संभावना की गई थी, आशा की गई थी । जन्मान्तरात्=दूसरे जन्म में, दुर्लभलब्धदर्शनम्=कठिनाई से प्राप्य दर्शन वाले, बाष्पसलिलान्तरेषु=आँसुओं के मध्य में, वत्सलम्=कृपालु, स्नेहिल ॥

टीका—सीतेति—संभावितम् = चिन्तितम् । जन्मान्तरात्—अन्यत् जन्म जन्मान्तरं तस्मात्, अन्येषु जन्मस्वित्यर्थः, दुर्लभलब्धदर्शनम्—दुर्लभम् = दुष्प्रापं यथा स्यात्तथा लब्धम् = प्राप्तं दर्शनम्=साक्षात्कारो यस्य तं तादृशम्, बाष्पसलिला-

---

१. पश्यन्ती प्रियं भूयाः, पुत्रि पश्य०, पश्य प्रियं भूयः, २. मुहूत्ताअं (मुहूर्तकम्), ३. सस्नेहास्रं परिष्वज्य, ४. तृष्णयोत्तानदीर्घा, ५. धवलबहलमुग्धा ।

सीता—हे सखी, देख रही हूँ।

तमसा—देखो प्रियतम को बार-बार।

सीता—हाय दैव, 'यह मेरे विना और मैं इनके विना रह सकूँगी'--ऐसी सम्भावना किसने की थी ? (अर्थात् किसी ने नहीं)। तो क्षणभर दूसरे जन्म में भी दुर्लभ दर्शन वाले स्नेहिल आर्य-पुत्र को, आँसुओं के मध्य में, जरा देखती हूँ।

(यह कहकर देखती हुई खड़ी रहती है)

तमसा—(आलिंगन करके आँखों में आँसू भरे हुई)

अत्यधिक प्रवाह के कारण बिखरे हुए अश्रु-जल को बहाती हुई, सुन्दर घनी बरौनियोंवाली, ऊपर उभरी हुई तथा बड़ी-बड़ी, स्नेह की वर्षा करने वाली, श्वेत मधुर एवं भोली-भाली, दूध भरी नैया की तरह, तुम्हारी आँखें प्राण-नाथ को नहला रही हैं ।। २३ ।।

न्तरेषु—बाष्पसलिलानाम् = अश्रुजलानाम् अन्तरेषु = अवकाशेषु, वत्सलम्=स्नेह-सागरभरितम् ।।

टिप्पणी – एष मया विना—सीता-राम का परस्पर प्रेम अद्भुत था। दोनों एक प्राण दो शरीर थे। इनको देखने वाले यही कहते थे कि—इनमें कोई भी एक दूसरे के विना जीवित नहीं रह सकता है।

संभावितम्--सम्+ √भू+णिच्+क्त+विभक्तिकार्यम्।

बाष्पसलिलान्तरेषु--राम को देखकर सीता की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई थी। वे बड़ी कठिनाई से राम को उस समय देखपाती थीं जब पहले वाले आँसू ढरक जाते थे और अभी नये आँसू नहीं निकले रहते थे।

वत्सलम्--वत्स+लच् ("वत्सांसाभ्यां कामबले" पा०)+विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः--अतिपूरैः, विलुलितम्, आनन्दशोकप्रभवम्, बाष्पम्, अवसृजन्ती, पक्ष्मलोत्तानदीर्घा, स्नेहनिष्यन्दिनी, धवलमधुरमुग्धा, दुग्धकुल्या, इव, ते, दृष्टिः, हृदयेशम्, स्नपयति ।। २३ ।।

शब्दार्थः—अतिपूरैः=अत्यधिक प्रवाह के कारण, विलुलितम्=विखरे हुए, आनन्दशोकप्रभवम्=आनन्द और शोक से उत्पन्न, बाष्पम्=अश्रु जल को, अवसृजन्ती=बहाती हुई, पक्ष्मलोत्तानदीर्घा=सुन्दर घनी बरौनियों वाली ऊपर उभरी हुई तथा बड़ी-बड़ी, स्नेहनिष्यन्दिनी=स्नेह की वर्षा करने वाली, धवलमधुरमुग्धा--श्वेत मधुर एवं भोली-भाली, दुग्धकुल्या इव=दूध भरी नैया की तरह, दूध की नहर की तरह, ते=तुम्हारी, दृष्टिः=दृष्टि, आँखें, हृदयेशम्=हृदयेश्वर को, प्राण-नाथ को, स्नपयति=स्नान करा रही हैं ।। २३ ।।

वासन्ती—

दददु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
[1]कलमविरलं [2]रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः॥ २४॥

टीका—विलुलितेत्यादिः—अतिपूरैः=अतिशयप्रवाहैः, विलुलितम्=विकीर्णम्, आनन्दशोकप्रभवम्—आनन्दश्च=हर्षश्च शोकश्च = मन्युश्चेति आनन्दशोकौ=हर्षमन्यू प्रभवौ=हेतू यस्य तं तादृशम्, अत्र पत्युरवलोकनेन हर्षस्तथा तस्य दयनीयाया दशाया अवलोकनेन शोको बोध्यः, बाष्पम्=अश्रु, अवसृजन्ती=पातयन्ती, उत्पादयन्ती, पक्ष्मलोत्तानदीर्घा—पक्ष्मला = प्रशस्ताऽक्षिलोमयुक्ता च सा उत्ताना च=विस्फारिता च सा दीर्घा च=आयता च, विशेषणसमासः, स्नेहनिष्यन्दिनी—स्नेहस्य=अनुरागस्य निष्यन्दः=प्रवाहो यस्यामस्तीति स्नेहनिष्यन्दिनी = प्रेमपूरवर्षिणी, धवलमधुरमुग्धा—धवला=प्रोषितभर्तृकाणां शरीरस्य संस्कारस्य निषेधेन कज्जलाभावात् शुक्ला मधुरा=सौन्दर्योपेता मुग्धा=मनोहरा, दुग्धकुल्या—दुग्धस्य=पयसः कुल्या=द्रोणी, इव=यथा, दुग्धभरिता द्रोणीव, "कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरित्" इत्यमरमनुसृत्य "पयसः कृत्रिमनदीव" इति व्याख्यानं तु साम्याभावादुपेक्ष्यम्, ते=तव, सीताया इत्यर्थः, दृष्टिः=नेत्रम्, हृदयेशम्=प्राणवल्लभं राममिति यावत्, स्नपयति=सिञ्चति। अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ। मालिनी छन्दः॥ २३॥

टिप्पणी—परिष्वज्य—परि+√ स्वञ्ज्+ल्यप्। **विलुलितम्**—वि+√लुल्+क्त+विभक्तिकार्यम्।

आनन्दशोकप्रभवम्—विरह में जलती हुई सीता प्राण-वल्लभ राम के दर्शन से आनन्दित तथा विरह-व्यथा के कारण शोक-सन्तप्त थीं। अतः उनके आँसू हर्ष और शोक के कारण निकल रहे थे।

प्रभवम्—प्रभवति अस्मात्, +प्र+√भू ऋदोरप् (३।३।५७) अप्+विभक्तिः।

अवसृजन्ती—अव+√सृज्+शतृ+ङीप्+विभक्तिः। **निष्यन्दिनी**—नि+√स्यन्द+णिच्+णिनिः। अथवा स्नेहनिष्यन्दः अस्याः अस्तीति स्नेह-निष्यन्द+इनि+ङीप्+विभक्तिः।

दुग्धकुल्या—पुरुषों की आँखें रक्ताभ तथा स्त्रियों की धवल प्रशस्त मानी गई हैं। पति-संयुक्ता स्त्रियाँ सर्वदा आँखों में कज्जल लगाती हैं। अतः उनकी आँखें

---

१. कलमविकलम्, २. रत्युत्कण्ठाः।

वासन्ती—मकरन्द बरसाने वाले वृक्ष फूलों और फलों से अर्घ्य (पूजोपहार) प्रदान करें, विकसित कमलों की सुगन्ध से भरपूर वन की हवाएँ बहें, सुरीले कण्ठ वाले पक्षी निरन्तर मधुर ध्वनि से कूजें, (क्योंकि) यह भगवान् राम स्वयं पुनः इस वन में आये हैं ॥ २४ ॥

काली-कजरारी वर्णित होती हैं। किन्तु धर्मशास्त्र के आदेशानुसार विरहिणी सीता ने आँखों में काजल लगाना छोड़ दिया है। अतः उनकी आँखे धवल हैं। यहां कुल्या का अर्थ नहर (कृत्रिम सरित्) न होकर नैया है। सीता की धवल आँखे दूध से भरी नैया की भाँति प्रतीत हो रही हैं। आँख और नैया की बनावट एक जैसी होती है-दोनों किनारे पर पतली तथा बीच में चौड़ी होती हैं। यही आँखों का सौन्दर्य भी है।

इस श्लोक में इव के द्वारा उपमा अलङ्कार है। स्नपयति में उत्प्रेक्षासूचक इव के लुप्त होने से प्रतीयमान उत्प्रेक्षा है।

श्लोक में प्रयुक्त हरिणी छन्द का लक्षण—

"नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" ॥ २३ ॥

अन्वयः—मधुश्च्युतः, तरवः, पुष्पैः, च, फलैः, अर्घ्यम्, ददतु; स्फुटितकमलामोदप्रायाः, वनानिलाः, प्रवान्तु; रज्यत्कण्ठाः, शकुन्तयः, अविरलम्, कलम्, क्वणन्तु; (यतः), अयम्, देवः, रामः, स्वयम्, पुनः, इदम्, वनम्, आगतः ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—मधुश्च्युतः=मकरन्द बरसाने वाले, तरवः=वृक्ष, पुष्पैः=फूलों से, च=और, फलैः=फलों से, अर्घ्यम्=अर्घ्य, ददतु=दें; स्फुटितकमलामोदप्रायाः= विकसित कमलों की सुगन्ध से भरपूर, वनानिलाः=वन की हवाएँ, प्रवान्तु=बहें; रज्यत्कण्ठाः=सुरीले कण्ठ वाले, शकुन्तयः=पक्षी, अविरलम्=निरन्तर, कलम्=मधुर ध्वनि से, क्वणन्तु=कूजें; (यतः=क्योंकि), अयम्=यह, देवः=देव, रामः=राम, स्वयम्=स्वयम्, खुद, विना किसी की प्रेरणा के, पुनः=फिर, इदम्=इस, वनम्= वन में, आगतः=आये हैं ॥ २४ ॥

टीका—ददतु तरव इति। मधुश्च्युतः-मधूनि=मकरन्दान्, पुष्परसानित्यर्थः, श्च्योतन्ति=क्षरन्तीति मधुश्च्युतः=पुष्परसवर्षिणः, तरवः=वृक्षाः, पुष्पैः=प्रसूनैः, च= तथा, फलैश्च, अर्घ्यम्=पूजोपहारम्, ददतु=प्रयच्छन्तु; स्फुटितकमलामोदप्रायाः- स्फुटितानि=विकसितानि यानि कमलानि=पद्मानि तेषामामोदः=सौरभं प्रायः=बहुलो येषु ते तादृशाः, वनानिलाः=वनवाताः, प्रवान्तु=प्रवहन्तु; रज्यत्कण्ठाः-रज्यन्तः= रागयुक्ताः कण्ठाः=गलाः येषान्ते तादृशाः, शकुन्तयः=पक्षिणः, अविरलम्=निरन्तरम्, कलम्=मधुरं यथा स्यात्तथा, क्वणन्तु=कूजन्तु; यत इति शेषः, अयम्=एषः, अङ्गुल्या निर्दिष्टोऽयमिति भावः, देवः=भगवान्, रामः=रामचन्द्रः, स्वयम्=आत्मनैव, पुनः= भूयः, इदम्=एतत्, वनम्=अरण्यम्, आगतः=आयातः, अस्तीति क्रियाशेषः।

रामः—एहि सखि वासन्ति ! नन्वितः स्थीयताम् ।

वासन्ती—(उपविश्य सास्रम् ।) महाराज ! अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य ?

रामः—([1]अनाकर्णनमभिनीय ।)

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मैथिली यानपुष्यत् ।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रव इव हृदयस्य [2]प्रस्रवोद्भेदयोग्यः ॥ २५ ॥

वनाधिदेवतात्वात् वासन्त्या एतत्कथनं युक्तियुक्तमेव । यथा कश्चिज्जनो गृहागतायाऽतिथये पूजोपकरणानि व्यजनवातं कलमधुरशब्दांश्चार्पयति तथैव वनाधिदेवी वासन्त्यपि वर्तितुं प्रेरयति । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । हरिणी छन्दः ॥ २४ ॥

टिप्पणी—**अर्घ्यम्**–अर्घाय हितमर्घ्यम् । अर्घ+यत्+विभक्तिः । **मधुश्च्युतः**–मधु+√श्च्युत्+क्विप्+प्रथमाबहुवचने विभक्तिकार्यम् । यह धातु यकाररहित भी है । अतः 'मधुश्चुतः' यह रूप भी बनता है ।

रज्यत्कण्ठाः—'रत्युत्कण्ठाः' यह पाठ भी मिलता है । इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी—रत्या=रामविषयकप्रेम्णा उत्कण्ठाः=उन्नतग्रीवाः । किन्तु क्लिष्ट कल्पना के कारण यह पाठ लोकप्रियता न अर्जित कर सका ।

क्वणन्तु—"क्वणन्तु–गीदवाद्यभेदेन शब्दं कुर्वन्तु, अत एव कूजन्त्विति नोक्तम्" इति वीरराघवः । **स्वयम्**–पहली बार पिता की प्रेरणा से रामवन आये थे, किन्तु इस बार अपनी इच्छा से वन में आये हैं—यह भाव है ।

इस श्लोक के भाव के लिये रघुवंश २।८।१३ से तुलना करें ।

चतुर्थ चरण में वर्णित राम का आगमन प्रथम तीन चरणों के कार्यों के प्रति कारण है, अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—हरिणी । इसके लक्षण के लिये पीछे के श्लोक २३ की टिप्पणी देखें ॥ २४ ॥

अन्वयः—मैथिली, करकमलवितीर्णैः, अम्बुनीवारशष्पैः, यान्, तरुशकुनिकुरङ्गान्, अपुष्यत्; तेषु, दृष्टेषु, प्रस्रवोद्भेदयोग्यः, मम, हृदयस्य, द्रवः, इव, कोऽपि, विकारः, भवति ॥ २५ ॥

---

१. अश्रुतिम्, २. प्रस्तरोद्भेदयोग्यः ।

राम—आओ सखी वासन्ती, इधर बैठो ।

वासन्ती—(बैठकर, आँखों में आँसू भर कर) महाराज, कुमार लक्ष्मण सकुशल तो हैं ?

राम—(न सुनने का अभिनय करके) जानकी ने अपने करकमलों से बाँटे गये जल, तिन्नी धान और कोमल घासों से जिन वृक्ष, पक्षी और मृगों को पाला-पोसा था, उनके दिखलाई पड़ने पर प्रवाह की उत्पत्ति में समर्थ मेरे हृदय का, द्रव की भाँति, कोई अनिर्वचनीय विकार उत्पन्न हो रहा है ॥ २५ ॥

विशेष —अपनी प्रियतमा की प्रिय वस्तुओं को, उसके द्वारा पाले गये पक्षियों एवं पशुओं को देख कर चिर वियोग में पल रहे व्यक्ति के हृदय की जो दशा होती है, उसका वर्णन सम्भव नहीं है । उस अवस्था में व्यक्ति के हृदय में जो अनिर्वचनीय विकार उत्पन्न होता है, वह आँसू के झरने के रूप में फूट पड़ने के लिये आतुर हो उठता है । ऐसी ही कुछ दशा भगवान् राम के हृदय की हो रही है ॥ २५ ॥

शब्दार्थः--मैथिली=जानकी ने, करकमल-वितीर्णैः-अपने करकमलों से बाँटे गये, अम्बुनीवारशष्पैः=जल, तिन्नी धान तथा कोमल घासों से, यान्=जिन, तरु-शकुनि-कुरङ्गान्=वृक्ष, पक्षी और मृगों को, अपुष्यत्=पाला-पोसा था; तेषु=उनके, दृष्टेषु=दिखलाई पड़ने पर, प्रस्रवोद्भेदयोग्यः = स्रोत या झरने की उत्पत्ति में समर्थ, मम=मेरे, हृदयस्य=हृदय का, द्रवः=द्रव की, तरलता की, इव=भाँति, कोऽपि=कोई, अनिर्वचनीय, अवर्णनीय, विकारः = विकार, विकृति, भवति = उत्पन्न हो रही है ।। २५ ॥

टीका--करकमलेत्यादिः । मैथिली = जानकी, करकमलवितीर्णैः—करौ= हस्तौ कमले=पङ्कजे इवेति करकमले ताभ्यां वितीर्णानि = दत्तानि तैः, अम्बुनीवार-शष्पैः--अम्बु=जलं नीवारः=मुनिधान्यविशेषः शष्पम्=बालतृणं तैः, यान् तरुशकुनि-कुरङ्गान्=वृक्षपक्षिहरिणान्, अपुष्यत्=अवर्धयत्; अत्राम्बुना तरून्, अम्बुनीवाराभ्यां शकुनीन्, अम्बुनीवारशष्पैः कुरङ्गानिति विवेकः । तेषु=पूर्वोक्तेषु वृक्षादिषु, दृष्टेषु= अवलोकितेषु सत्सु, प्रस्रवोद्भेदयोग्यः—प्रस्रवस्य=स्रोतसः=उद्भेदे=उद्गमे योग्यः= समर्थः, प्रस्तरोद्भेदयोग्य इति पाठे तु प्रस्तरस्य=पाषाणस्य उद्भेदे = विदारणे योग्यः=समर्थः, मम=मे रामस्येत्यर्थः, हृदयस्य=चेतसः, द्रव इव=आर्द्रतेव, कोऽपि = अनिर्वचनीय इत्यर्थः, विकारः=विकृतिः, भवति=उत्पद्यते । अत्र यथासंख्यमुपमा चालङ्कारौ। मालिनी छन्दः ॥ २५ ॥

वासन्ती--महाराज ! ननु पृच्छामि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति ?

रामः--(आत्मगतम्) अये ! महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदम् । सौमित्रिमात्रके बाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः[1] । तथा मन्ये विदितसीता-वृत्तान्तेयमिति । (प्रकाशम् ।) आः ? कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य[2] ।

वासन्ती--(रोदिति ।) अयि देव ! किं परं दारुणः[3] खल्वसि ।

सीता--सखि वासन्ति ! किं त्वमेवंवादिनी भवसि ? पूजार्हः सर्वस्यार्य-पुत्रः विशेषतो मम प्रियसख्याः । (सहि वासन्ति ! किं तुमं एव्वंवादिणी होसि ? पूआरुह्हो सव्वस्स अज्जउत्तो, विसेसदो मह पिअसहीए ।)

टिप्पणी—०वितीर्णैः—वि + √तृ + क्त + तृतीयाबहुवचने विभक्तिकार्यम् ।

अम्बु-नीवार-शष्पैः —जल से वृक्षों को, जल और नीवार से पक्षियों को तथा जल नीवार एवं कोमल घासों से मृगों को पालती-पोसती थीं सीता ।

मैथिली--मिथिलाया राजा मैथिलस्तस्यापत्यं स्त्री मैथिली--मैथिल √इण + ङीष् + विभक्तिः । विकारः--वि √ + कृ + घञ् + विभक्तिः । प्रस्रवोद्भेदयोग्यः-मैंने मूल में यह पाठ प्रसिद्ध व्याख्याकार वीरराघव का अनुसरण करते हुए दिया है । किन्तु इस पाठ की अपेक्षा "प्रस्तरोद्भेदयोग्यः" यह पाठ अधिक समीचीन तथा तर्क-सङ्गत प्रतीत होता है । सीता के कर कमलों से बढ़ाई गई वस्तुओं तथा पाले गये पशुओं को देखकर चिरविरही राम के हृदय में जो अनिर्वचनीय विकार उद्भिन्न होकर कसमसा रहा है, उसे देखकर पत्थर भी पसीज जायगा, विदीर्ण होकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा । उस विकार का वेग इतना तीखा है कि उसके सामने आनेवाला पत्थर भी फट जायेगा । वस्तुतः यही है भवभूति के करुण-रस की विशेषता, अलौकिकता । इसी बात का समर्थन प्रथम अङ्क के अट्ठाइसवें श्लोक से भी होता है—"अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्" ।। १ । २८ । इसकी अपेक्षा "प्रस्रवोद्भेदयोग्यः" यह पाठ क्लिष्टकल्पनीय भी है ।। २५ ।।

शब्दार्थः—निष्प्रणयम्=स्नेह से शून्य, प्रेम से रहित, आमन्त्रणपदम्=सम्बोधन का पद । सौमित्रिमात्रके = केवल लक्ष्मण के विषय में, बाष्पस्खलिताक्षरः—आँसू के कारण अस्पष्ट अक्षरोंवाला । विदितसीतावृत्तान्ता=सीता का समाचार इसे विदित है । दारुणः=अति कठोर । एवंवादिनी=इस प्रकार कहने वाली । पूजार्हः=आदरणीय, पूजनीय ।।

---

१. कुशलानुप्रश्नः, २. कुमारस्य, ३. किमिति दारुणः—दारुणो दारुणः ।

वासन्ती—महाराज, मैं पूछ रही हूँ कि कुमार लक्ष्मण का कुशल तो है ?

राम—(अपने आप) अरे, "महाराज" यह सम्बोधन का पद स्नेह से शून्य है। केवल लक्ष्मण के विषय में आँसू के कारण अस्पष्ट अक्षरों वाला कुशल-प्रश्न है। इससे मैं समझता हूँ कि सीता का समाचार इसे विदित है। (प्रकट रूप से) हाँ, कुमार लक्ष्मण का कुशल है।

वासन्ती—(रोती है) हे महाराज, आप केवल अति कठोर क्यों हो गये हैं ?

सीता—सखी वासन्ती, तुम इस प्रकार क्यों कह रही हो ? आर्यपुत्र सभी के पूजनीय हैं, विशेष रूप से मेरी सखी (वासन्ती) के।

टीका—वासन्तीति। निष्प्रणयम्—निर्गतः=दूरीभूतः प्रणयः=स्नेहो यस्मात् तत्, स्नेहविरहितमित्यर्थः, आमन्त्रणपदम्—आमन्त्रणस्य = सम्बोधनस्य पदम्= शब्दः, सम्बोधनशब्द इत्यर्थः। सौमित्रिमात्रके—सुमित्राया अपत्यं सौमित्रिः, सौमित्रिरेव सौमित्रिमात्रकं तस्मिन्, केवले लक्ष्मण इत्यर्थः। बाष्पस्खलिताक्षरः— वाष्पेण=अश्रुणा स्खलितानि=अस्पष्टानि अक्षराणि=वर्णाः यस्मिन् सः। विदितसीता-वृत्तान्ता—विदितः=ज्ञातः सीतायाः=जानक्याः वृत्तान्तः=निर्वासनरूपः समाचारो यया सा तादृशी। दारुणः=अतिकठोरः। एवंवादिनी=आर्यपुत्रं प्रति कठोरभाषिणी। पूर्जाहः—पूजायाः=आराधनाया अर्हः=योग्यः॥

टिप्पणी—महाराजेति निष्प्रणयम्—प्रथम बार जब श्रीराम सीता के साथ वन में आये थे, उस समय वासन्ती, सीता की प्रिय सखी होने के कारण, राम को "सखा" कहती थी, 'रामभद्र' कहती थी। ये सभी शब्द स्नेह से भरपूर थे। किन्तु राम ने निरपराध गर्भिणी सीता को, व्याध की भाँति निष्ठुर होकर, घोर जंगल में निर्वासित कर दिया था। यह बात वासन्ती को विदित थी। अतः वह स्नेहशून्य "महाराज" इस सम्बोधन पद से उन्हे अभिहित कर रही है। हृदय के भाव शब्दों से प्रकट होते हैं। अतः वासन्ती की स्नेहशून्यता राम को विदित हो जाती है। इसीलिये वे कहते हैं—"निष्प्रणयमामन्त्रणपदम्।"

विदितसीतावृत्तान्ता—राम वासन्ती के स्नेह-शून्य शब्दों से यह अनुमान कर रहे हैं कि सीता के वन-निर्वासन की बात वासन्ती को विदित हो गई है।

एवंवादिनी-एवं वदितुं शीलमस्याः— √वद्+णिनि+ङीप्+विभक्त्यादिः॥

वासन्ती—

त्वं जीवितं, त्वमसि मे हृदयं, द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण[1] ? ॥ २६ ॥

(इति मुह्यति[2])

[3]तमसा—स्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च ।

रामः—सखि ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

वासन्ती—(समाश्वस्य ।) तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन ?

अन्वयः—त्वम्, मे, जीवितम्, असि; त्वम्, मे, द्वितीयम्, हृदयम्, (असि); त्वम्, (मे), नयनयोः, कौमुदी, (असि); त्वम्, (मे); अङ्गे, अमृतम्, (असि); इत्यादिभिः, प्रियशतैः, मुग्धाम्, अनुरुध्य, ताम्, एव,……अथवा, शान्तम्, अतः, परेण, (कथनेन), किम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—त्वम्=तुम, मे=मेरा, जीवितम्=जीवन, असि=हो; त्वम्=तुम, मे=मेरी, नयनयोः=आँखों की, कौमुदी=चाँदनी, (असि=हो); त्वम्=तुम, (मे=मेरे), अङ्गे=अङ्गों के लिए, अमृतम्=अमृत, (असि=हो); इत्यादिभिः=इत्यादि, प्रियशतैः, सैकड़ों प्रियवचनों से, मुग्धाम्=भोली-भाली (सीता) को, अनुरुध्य=बहला कर, ताम्=उसको, एव=ही,……अथवा=अथवा, शान्तम्=बस, अतः=इसके, परेण=बाद के (कथनेन=कहने से), किम्=क्या लाभ ? ॥ २६ ॥

टीका—त्वं जीवितमिति । त्वम्=सीता, मे=मम, जीवितम्=जीवनम्, असि=भवसि; असीति सर्वत्र वाक्यसमाप्तौ योजनीयम्; त्वं मे=मम रामस्य, द्वितीयम्=अपरम्, हृदयम्=चेतः, असि; त्वं मे नयनयोः=नेत्रयोः, कौमुदी=चन्द्रिका, असि; 'कौ=पृथिव्यां मोदन्ते जना यस्मात्तेनेयं कौमुदी मता ।' इति कौमुदीपदनिरुक्तिः; त्वं मे अङ्गे=कण्ठाद्यवयवे, अमृतम्=पीयूषम् असि; इत्यादिभिः=एवं प्रकारैः, प्रियशतैः–प्रियाणाम्=प्रियवचनानां शतैः=अनन्तसंख्याभिः, "शतं सहस्रमयुतं सर्वमानन्त्यवाचकम्" इत्युक्तेरसंख्यचाटूक्तिभिरिति भावः, मुग्धाम्="उद्यौवना मुग्धा" इति लक्षणलक्षितां सुन्दरीम्, अतिसरलां वा, अनुरुध्य=अनुनीय, तामेव=पूर्वोक्तानुनयविषयभूतामेव, "कथं त्यक्तवानसि नासितवानसीति वा, अत्र त्वयि करुणा नोद्गता किम् ? इति शेषः, अथवा=अहोस्वित्, शान्तम्=अलम्, त्वामुपालभ्येति

---

१. किमिहोत्तरेण, २. मूर्च्छति, ३. रामः ।

वासन्ती--तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय (हो), तुम (मेरी) आँखों की चाँदनी (हो), तुम (मेरे) अङ्गों के लिये अमृत (हो), इत्यादि प्रिय वचनों से भोली-भाली सीता को बहला कर उसको ही······अथवा बस, इसके आगे कहने से क्या लाभ ? ।। २६ ।।

विशेष—वासन्ती का पूरा वक्तव्य इस प्रकार है--जिस सीता को सैकड़ों चाटु-वचनों से आप बहलाते थे, बहकाते थे, उसी को, दारुण बहेलिये की भाँति निर्दय होकर मरने के लिये घोर जंगल में छोड़ दिया, उस समय सीता कठोर गर्भा भी थी । इस पर क्या आपको दया नहीं आई ? ।। २६ ।।

(यह कह कर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा--उचित अवसर पर वाक्य की समाप्ति और मूर्च्छा का आना हुआ है ।

राम—सखी, आश्वस्त होओ, आश्वस्त होओ ।

वासन्ती--(आश्वस्त होकर) तो क्यों यह अनुचित कार्य किया गया महाराज के द्वारा ?

शेषः; अतः=अस्मात्, परेण=अनन्तरेण कथनेन, किम्=को लाभः ? न किमपीति भावः । अत्र रूपकमतिशयोक्तिराक्षेपश्चालंकाराः । वसन्ततिलका छन्दः ।। २६ ।।

टिप्पणी—**जीवितम्**--√जीव्+नपुंसके भावे क्तः+विभक्तिकार्यम् । **अनुरुध्य**-अनु+√रुध्+ल्यप् । **मुग्धाम्**-√मुह्+क्त+टाप्+विभक्तिः ।

शान्तम्—वासन्ती राम के द्वारा सीता के निर्वासन की बात को कहने में असमर्थ है । सीता का निर्वासन उसे असह्य है । अतः वह वाक्य को पूरा किये विना मध्य में ही रुक जाती है ।

अतः परेण—राम को यह उपालम्भ सीता के द्वारा न दिलाकर वासन्ती के द्वारा कवि ने दिलवाया है । यह उसके नाटक-रचना-कौशल का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, चरित्र-चित्रण का एक अद्भुत उपस्थापन है । यह श्लोक तथा इसके आगे के कुछ श्लोक वैदर्भी रीति में लिखे गये हैं । वैदर्भी लम्बे-लम्बे समासों से शून्य हुआ करती है । कोमल भावों की व्यञ्जना के लिये भवभूति ने इसी वैदर्भी रीति का अवलम्बन किया है ।। २६ ।।

शब्दार्थः—स्थाने=उचित अवसर पर, वाक्य-निवृत्तिः=वाक्य की समाप्ति, मोहः=मूर्च्छा । अकार्यम्=अनुचित कार्य, अनुष्ठितम्=किया गया ।।

टीका--तमसेति । स्थाने = उचितेऽवसरे, वाक्यनिवृत्तिः-वाक्यस्य=वचनस्य निवृत्तिः=निरोधः मोहः=मूर्च्छा च । अकार्यम् =अनुचितं कर्म, सीतानिर्वासनरूप-

सीता--सखि वासन्ति ! विरम विरम (सहि वासन्दि ! विरम विरम ।)

रामः--लोको न मृष्यतीति ।

वासन्ती--[1]कस्य हेतोः ?

रामः--स एव जानाति किमपि ।

तमसा--चिरादुपालम्भः[2] ।

वासन्ती--

अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम् ?
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः ? कथय नाथ ! कथं बत ? मन्यसे ? ।।२७।।

सीता--सखि वासन्ति ! त्वमेव दारुणा कठोरा च । यैवं प्रलपन्तं[3] प्रलापयसि । (सहि वासन्दि ! तुमं एव्व दारुणा कठोरा अ । जा एव्वं पलवन्तं पलावेसि ।)

तमसा—प्रणय एवं [4]व्याहरति शोकश्च ।

मनुचितं कर्मेति भावः, अनुष्ठितम्=आचरितं भवता ? ।।

टिप्पणी—स्थाने—वासन्ती सीता की अतिप्रिय सखी थी । सीता उसे प्राणाधिक-प्रिया थीं । सीता के निर्वासन के प्रसङ्ग के उपस्थित होने पर ही वह मूर्च्छित हो जाती है । यदि सीता के निर्वासन की पूरी-पूरी बात वह कह डालती तो निश्चय ही उसका हृदय फट जाता और वह मर जाती । अतः उसका मूर्च्छित होना और फलस्वरूप वाक्य का बन्द होना उचित अवसर पर ही हुआ है—यही 'स्थाने' शब्द का भाव है ।

निवृत्तिः—नि+ √वृत्+क्तिन्+विभक्तिः । मोहः— √मुह्+घञ्+विभक्तिः । अनुष्ठितम्–अनु+ √स्था+क्त+विभक्तिः । कस्य हेतोः–"षष्ठी हेतु प्रयोगे" (पा० २।३।२६) 'हेतु' शब्द के प्रयोग में 'कस्य' में षष्ठी विभक्ति आई है । उपालम्भः–उप+आ+ √लभ्+घञ्, नुम+विभक्तिकार्यम् ।।

अन्वयः—अयि कठोर, ते, किल, यशः, प्रियम्; (अस्ति), ननु, अतः, परम्, घोरम्, अयशः, किम्; हरिणीदृशः, विपिने, किम्, अभवत्; नाथ, कथय, बत, (अत्र), कथम्, मन्यसे ? ।। २७ ।।

शब्दार्थः—अयि=हे, कठोर=निष्ठुर, ते=तुम्हें, किल=निश्चय ही, यशः=यश, प्रियम्=प्रिय, (अस्ति=है); ननु=निश्चय ही, अतः=इससे, परम्=अधिक, घोरम्=घोर, भयंकर, अयशः=अपयश, किम्=क्या होगा ?; हरिणीदृशः=मृगनयनी (सीता) का, विपिने=जंगल में, किम्=क्या, अभवत् = हुआ; नाथ=स्वामी, मालिक, कथय=बतलाइये, बत=यह खेद का सूचक अव्यय पद है, (अत्र=इस विषय में), कथम्=

---

१. तत्कस्य, २. उचितस्तदुपालम्भः ३. प्रदीप्तं प्रदीपयसि, ४. व्याहारयति ।

सीता—सखी वासन्ती, बस करो, बस करो।

राम—लोग (सीता का घर में रहना) सहन नहीं करते हैं।

वासन्ती—किस लिये ?

राम—वे ही जानते हैं कुछ भी (कारण)।

तमसा—बहुत समय के बाद (संसार को यह) उलाहना दिया गया है ॥

वासन्ती—हे निष्ठुर, तुम्हें निश्चय ही यश प्रिय (है), किन्तु इससे अधिक घोर अपयश क्या होगा ? (कि आपने कठोरगर्भा सीता का निर्वासन कर दिया)। मृगनयनी सीता का जंगल में क्या हुआ ? हे नाथ, बतलाइये, इस विषय में आप क्या मानते हैं (अर्थात् आप क्या सोचते हैं ?) ॥ २७ ॥

सीता—सखी वासन्ती, तुम्हीं निष्ठुर और कठोर हो। जो इस प्रकार विलाप करते हुए (आर्यपुत्र) को और रुला रही हो।

तमसा—प्रेम और शोक ऐसा कर रहा है। (अर्थात् कहने के लिये प्रेरित कर रहा है)।

क्या, मन्यसे=आप सोचते हैं, क्या आप मानते हैं ॥ २७ ॥

टीका—अयि कठोरेति। अयि कठोर=हे निष्ठुर, ते=तव, रामस्येत्यर्थः, किलेति प्रसिद्धौ, यशः=कीर्तिः, प्रियम्=अभीष्टम्, अस्तीति क्रियाशेषः; नन्वित्याक्षेपेऽव्ययम्, अतः=अस्मात्, अकारणसीतापरित्यागजनितं यदयशः तस्मादित्यर्थः, परम्=अधिकम्, घोरम्=भयङ्करम्, अयशः=अकीर्तिकरम्, किम्=किमस्ति ?, न किमपीति भावः; तदेव प्रतिपादयति-हरिणीदृशः-हरिण्याः=मृग्याः दृशाविव दृशौ= नेत्रे यस्याः सा हरिणीदृक् तस्याः, विपिने=अरण्ये, किमभवत्=किं वृत्तम् ? हे नाथ= हे प्रभो, कथय=ब्रूहि, बतेति खेदे, (अत्र=अस्मिन् विषये), कथम्=किं प्रकारम्, मन्यसे=उत्प्रेक्षसे। अत्र विषम उपमा चालंकारौ। द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ २७ ॥

टिप्पणी—कठोर—वासन्ती राम को कठोर कह रही है, क्योंकि राम ने सीता का निर्वासन उस समय किया था, जब उनके प्रसव होने में कुछ ही दिन शेष थे।

यह श्लोक की वैदर्भी रीति का सुन्दरतम निदर्शन है।

इस श्लोक में विषम और उपमा अलङ्कार तथा द्रुतविलम्बित छन्द है। छन्द का लक्षण—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—दारुणा=निष्ठुर, कठोरा=कठोर। प्रलपन्तम्=विलाप करते हुए को, प्रलापयसि=रुला रही हो। प्रणयः-प्रेम, एवम्=इस प्रकार, व्याहरति=कह रहा है।

रामः—सखि ! किमत्र मन्तव्यम् ?

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-
स्तस्याःपरिस्फुरितगर्भभरालसायाः ।
ज्योत्स्नामयीव[1] मृदुबाल[2]मृणालकल्पा
क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता[3] ॥ २८ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! ध्रिये एषा ध्रिये । (अज्जउत्त ! धरामि एसा धरामि ।)

रामः—हा प्रिये जानकि ! क्वासि ?

सीता—हा धिक् हा धिक् ! अन्य इवार्यपुत्रः प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितो[4] भवति । (हद्धी हद्धी ! अण्णो विअ अज्जउत्तो पमुक्क कण्ठं परुण्णो होदि ।)

अत्र=इस विषय में, सीता मर गई या जीवित है ? इस विषय में, मन्तव्यम्= मानना है, विचार करना है ॥

टीका—सीतेति । दारुणा=शुष्ककाष्ठवन्नीरसा, कठोरा=प्रस्तर इव कठिना । प्रलपन्तम्=विलपन्तम्, प्रलापयसि=विलपितुं प्रेरयसि । प्रणयः=सीताविषयिणी प्रीतिः, शोकः=दुःखावेगश्च । अत्र=अस्मिन् विषये, सीताविषये इत्यर्थः, सीता मृता जीवति वेत्यत्र विषये, मन्तव्यम्=विचारणीयम्, सम्भावनीयं वा ॥

टिप्पणी—अत्र मन्तव्यम्—वासन्ती ने राम से पूछा था—

"किमभवद् विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे ?" ॥ श्लो० २७ ॥

इसके उत्तर में राम का कहना है कि—"इसमें मानना क्या है ? निश्चय ही सीता को जंगली जानवर नोंच-नोंच कर खा गये होंगे । इसी भाव को आगे के श्लोक में व्यक्त कर रहे हैं ।

अन्वयः—त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः, परिस्फुरितगर्भभरालसायाः, तस्याः, मृदुबालमृणालकल्पा, ज्योत्स्नामयी, इव, अङ्गलतिका, क्रव्याद्भिः, नियतम्, विलुप्ता ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः=भयभीत एक वर्ष के मृग की भाँति चञ्चल आँखों वाली, परिस्फुरितगर्भभरालसायाः=इधर-उधर हिलते-डुलते हुए गर्भ के भार से अलसाई हुई, तस्याः=उस (सीता) की, मृदुबालमृणालकल्पा=कोमल एवं नवीन मृणा के तुल्य, ज्योत्स्नामयीव=चन्द्रमा की किरणों से बनी हुई-सी, अङ्गलतिका=अङ्ग- लतिका, लता की तरह देह, क्रव्याद्भिः=हिंसक जन्तुओं के द्वारा, नियतम्=अवश्य ही, विलुप्ता=नोंच-नोंचकर समाप्त कर दी गई होगी ॥२८॥

---

१. च, २. मुग्ध, ३. प्रलुप्ता, ४. रोदिति (रोइदि) ।

राम—सखी, इसमें विचार क्या करना है ?

भय-भीत एक वर्ष के मृग की भाँति चञ्चल आँखों वाली, इधर-उधर हिलते-डुलते हुए गर्भ के भार से अलसाई हुई, उस (सीता) की कोमल एवं नवीन मृणाल के तुल्य, चन्द्रमा की किरणों से बनी हुई-सी अङ्ग-लतिका हिंसक जन्तुओं के द्वारा निश्चय ही नोंच-नोंच कर समाप्त कर दी गई होगी ॥ २८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, यह मैं प्राणों को धारण कर रही हूँ, प्राणों को धारण कर रही हूँ ।

राम—हाय प्रिय सीता, तुम कहाँ हो ?

सीता—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है । आर्यपुत्र साधारण आदमी की तरह गला फाड़कर विलाप कर रहे हैं ।

टीका—त्रस्तैकहायनेत्यादिः—त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः—त्रस्तः = भीतः एकं हायनम्=वर्षः यस्य स एकहायनः=एकवर्षवयस्कः यः कुरङ्गः=हरिणः तस्य इव विलोला=अतिचञ्चला दृष्टिः=नेत्रं यस्याः सा तथाभूतायाः, परिस्फुरित-गर्भभरालसायाः—परितः=उदरे सर्वतः स्फुरितः=स्पन्दमान यो गर्भः=गर्भस्थः शिशुः तस्य भरेण=भारेण हेतुना अलसायाः=मन्थरायाः, तस्याः=सीताया इत्यर्थः, मृदुबाल-मृणालकल्पा–मृदु=सुकोमलं यद् बालमृणालम्=नवोद्गतो बिसदण्डस्तस्मादीषदूना (ईषदसमाप्तौ कल्पप् प्रत्ययः) नूतनमृणालसममृदुलेत्यर्थः, ज्योत्स्नमयीव=कौमुदी-घटितेव, ज्योत्स्नावद् लावण्यमयीत्यर्थः, अङ्गलतिका-अङ्गं लतिकेवाङ्गलतिका= देहलता, क्रव्याद्भिः = हिंस्रजीवैः, नियतम् = निश्चितम्, विलुप्ता=लोपं प्रापिता, भक्षितेत्यर्थः । अत्र लुप्तोपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २८ ॥

टिप्पणी—**क्रव्याद्भिः**—हिंसक जन्तुओं के द्वारा । क्रव्य=कच्चा मांस, अद्= खाने वाले । क्रव्यम् अदन्ति इति क्रव्यादास्तैः । क्रव्याद्—क्रव्य + √अद् + विट् (०) । 'क्रव्ये च' (३।२।६९) से विट् प्रत्यय + विभक्तिः । **विलुप्ता**—वि + √लुप् + क्त + टाप् + विभक्तिः ।

इस श्लोक में तीन लुप्तोपमाएँ हैं—"कुरङ्गविलोल०" में इव अर्थ है, "मृणाल-कल्पा" में इव अर्थ है तथा "अङ्गलतिका" में इव अर्थ है । "ज्योत्स्नामयीव" में इव उत्प्रेक्षासूचक है ।

यहाँ वसन्ततिलका छन्द है । छन्द का लक्षण—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥ २८ ॥

तमसा--[1]वत्से ! साम्प्रतिकमेवैतत् । कर्त्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्धारणानि ।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रला[2]पैरेव धार्यते ।। २९ ।।

विशेषतो रामभद्रस्य बहुप्रकारकष्टो जीवलोकः ।

शब्दार्थः--ध्रिये=प्राण धारण कर रही हूँ, जीवित हूँ। क्वासि=कहाँ हो। अन्य इव=दूसरे व्यक्ति की भाँति, साधारण आदमी की तरह, प्रमुक्तकण्ठम्=पुक्का फाड़कर। साम्प्रतिकम्=उचित, वर्तमानकाल के योग्य, दुःखनिर्वापणानि=दुःख की आग को बुझाना, दुःख शान्त करना ।।

टीका—सीतेति । ध्रिये=प्राणान् धारयामि । क्व=कुत्र, असि=वर्तसे । अन्य इव=अपरः साधारणो जन इव, प्रमुक्तकण्ठम्—प्रमुक्तः=कण्ठः, लक्षणया कण्ठस्वरो यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा, अत्युच्चैः स्वरमित्यर्थः, क्रियाविशेषणमेतत् । साम्प्रतिकम्=युक्तम्, समीचीनम्, दुःखनिर्वापणानि—दुःखस्य=कष्टस्य निर्वापणानि=प्रशमानि, कर्तव्यानि=विधातव्यानि ।।

टिप्पणी—दुःखितैः-दुःख + इतच् + विभक्तिः, **निर्वापणानि**-निर् + √वा + णिच् ("पुक्" आगमः) + ल्युट् + विभक्तिः ।

व्यक्ति जब दुःख के भार से दब जाता है, उस समय यथेच्छ रोने से, किसी से दुःख की चर्चा करने से उस व्यक्ति का दुःख कम हो जाता है । उसे कुछ राहत मिल जाती है । यही कारण है कि तमसा राम के रुदन को औचित्यपूर्ण ठहरा रही है । (एव) ।

अन्वयः—तटाकस्य, पूरोत्पीडे, परीवाहः, प्रतिक्रिया, (अस्ति); शोक-क्षोभे, च, हृदयम्, प्रलापैः, एव, धार्यते ।। २९ ।।

शब्दार्थः—तटाकस्य=तालाब में, पूरोत्पीडे=जल-प्रवाह का आधिक्य होने पर, परीवाहः=जल को बाहर निकालना, (एव=ही), प्रतिक्रिया=प्रतीकार, (अस्ति=है); शोक-क्षोभे = शोक के कारण क्षोभ होने पर, च = भी, हृदयम्=हृदय, प्रलापैः=प्रलापों के द्वारा, एव=ही, धार्यते=धारण किया जाता है ।। २९ ।।

टीका—पूरोत्पीड इति । तटाकस्य = सरोवरस्य, पूरोत्पीडे—पूरस्य=जलप्रवाहस्य उत्पीडे=आधिक्ये, स्रोतोभूयस्त्व इत्यर्थः, परीवाहः = जलनिःसारणमेव,

---

१. सांप्रतं युक्तान्येवैतानि कर्तव्यानि यतो रोदनान्येव दुःखितस्य दुःखनिर्वापणानि भवन्ति, २. प्रलापैरव० ।

तमसा—बेटी उचित ही है यह। दुःखी व्यक्तियों को अपने दुःख की आग बुझानी ही चाहिये।

तालाब में जल-प्रवाह का आधिक्य होने पर जल को बाहर निकालना (ही) उसका प्रतीकार है। शोक के कारण क्षोभ होने पर भी हृदय प्रलापों द्वारा ही धारण किया जाता है ॥ २९ ॥

विशेषकर रामभद्र के लिए संसार अनेक प्रकार के कष्टों से युक्त है।

प्रतिक्रिया=प्रतीकारः, चिकित्सा, अस्तीति क्रियाशेषः। शोकक्षोभेः--शोकेन=मन्युना यः क्षोभः=चाञ्चल्यं, तस्मिन्, शोकाधिक्यप्रयुक्तप्रकृतिविपर्यासे, हृदयम्=चेतः, प्रलापैः=परिदेवनैः, एव=च, धार्यते=रक्ष्यते। अत्र दृष्टान्तोऽलङ्कारः। श्लोको वृत्तम् ॥

टिप्पणी--०उत्पीडे--उद्+ √पीड+घञ् भावे।

परीवाहः—परि+ √वह्+घञ्+विभक्तिः। अत्र 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' (पा० ६।३।१२२) इत्यनेन वैकल्पिको दीर्घः। पक्षे—परिवाहः।

तटाकस्य—तडाग, तडाक तथा तटाक—ये तीनों शब्द तालाब के लिये प्रचलित है—(क्षी० स्वा०)।

प्रतिक्रिया—प्रति+ √कृ+श (भाव)+टाप्+विभक्तिः।

तालाब अथवा बाँध (Dam) जब जल से लबालब भर जाते हैं, प्रवाह का वेग सँभालना कठिन हो जाता है, तब पीछे की तरफ उसके बगल से एक नाली निकाल दी जाती है। उस नाली द्वारा बढ़ा हुआ Excess जल बाँध से बाहर निकाल देते हैं। इससे बाँध टूटने से बच जाता है। इसी प्रकार जब व्यक्ति का हृदय शोक से क्षुभित हो उठता है, उस समय जोरों से रोना ही एकमात्र हृदय को बचाने का साधन होता है। जो व्यक्ति संकोच अथवा शिष्टाचार के दबाव में रोते नहीं हैं, चुप रह जाते हैं, उनके हृदय की गति के रुक जाने का खतरा उपस्थित हो जाता है।

इस श्लोक में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव के होने से दृष्टान्त अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् या श्लोक ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—विशेषतः=विशेषकर, बहुप्रकारकष्टः=अनेक प्रकार के कष्टों से युक्त, जीवलोकः=संसार ॥

टीका—विशेषत इति। विशेषतः=विशेषरूपेण, बहुप्रकारकष्टः—बहवः=अनेके प्रकाराः=भेदाः यस्मिंस्तत् बहुप्रकारं तादृशं कष्टम्=दुःखं यस्मिन् सः, जीवलोकः=मनुष्यलोकः ॥

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
　　प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो [१]ग्लपयति।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ-
　　स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम् ॥३०॥

रामः—कष्टं भोः ! कष्टम् ।

दलति हृदयं [२]शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते
　　वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
　　प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—अभियुक्तेन, मनसा, इदम्, विश्वम्, विधिवत् पाल्यम्, घर्मः, कुसुमम्, इव, प्रियाशोकः, जीवम्, ग्लपयति, स्वयम्, त्यागम्, कृत्वा, विलपनविनोदः, अपि, असुलभः, तत्, अद्यापि, उच्छ्वासः, भवति, ननु, रुदितम्, लाभः, हि ॥३०॥

शब्दार्थः—अभियुक्तेन=सावधान, मनसा=मन से, इदम्=यह, विश्वम्=विश्व, पाल्यम्=पालनीय है, पालन करने के योग्य है, घर्मः=घाम, कुसुमम्=फूल को, इव=जैसे, प्रियाशोकः=प्रिया सीता विषयक शोक, जीवम्=जीव को, ग्लपयति=सुखा रहा है, स्वयम्=खुद, अपने आप, त्यागम्=त्याग, कृत्वा=करके, विलपनविनोदः=विलाप के द्वारा मन को हल्का करना, अपि=भी, असुलभः=सुलभ नहीं है, तत्=तथापि, अद्यापि=आज भी, उच्छ्वासः=जीवन-धारण, भवति=हो रहा है, ननु=अतः, निश्चय ही, रुदितम्=रोना, विलाप, लाभः=लाभकारी, (अस्ति=है), हि=यहं पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है ॥ ३० ॥

टीका—इदं विश्वमिति । अभियुक्तेन=अवहितेन सावधानेन वा, मनसा=हृदयेन, इदम्=एतद्, विश्वम्=जगत्, विधिवत्=यथाशास्त्रम्, पाल्यम्=पालनीयम्; घर्मः=आतपः, कुसुममिव=प्रसूनमिव, प्रियाशोकः=सीताविरहदुःखम्, जीवम्=जीवनम्, प्राणानित्यर्थः, ग्लपयति=शोषयति । स्वयम्=स्वेच्छया, त्यागम्=सीतानिर्वासनम्, कृत्वा=विधाय, विलपनविनोदः-विलपनेन=उच्चैः रोदनादिना विनोदः=शोकापनोदनम्, अपि=च, असुलभः=दुर्लभः । तत्=तथापि, अद्यापि=सम्प्रत्यपि, उच्छ्वासः=प्राणधारणम्, भवति=जायते; ननु=निश्चितम्, रुदितम्=रोदनम्, रामस्य लाभः=लाभाय; वर्तते । हीति पादपूर्तौ । अत्रोपमा परिणामश्चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ॥ ३० ॥

---

१. क्लमयति, २ गाढोद्वेगं, गाढोद्वेगात् ।

सावधान मन से यह संसार विधिपूर्वक पालनीय है अर्थात् सावधान मन से इस संसार का पालन करना है। जिस प्रकार धूप फूल को कुम्हला देती है, उसी प्रकार प्रिया-विषयक शोक (राम के) जीवन को सुखा रहा है। स्वयं परित्याग करने के विलाप के द्वारा मन को हल्का करना भी सुलभ नहीं है, फिर भी आज तक (राम) प्राण-धारण किये हुए हैं। अतः विलाप करना भी लाभकारी है ॥ ३० ॥

विशेष:—राम सबके समक्ष, सर्वत्र प्रकट रूप से विलाप भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें विलाप करते हुए देखकर लोग कहेंगे कि—देखो, दिखावे के लिये इन्होंने सीता को निकाल तो दिया, किन्तु अब पश्चात्ताप कर रहे हैं, रो रहे हैं ॥ ३० ॥

राम - दुःख है, बड़ा दुःख है।

हृदय शोक के उद्वेग के कारण फट रहा है, किन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं हो रहा है (शोक से) विह्वल शरीर मूर्च्छित हो रहा है, किन्तु चेतना को नहीं छोड़ रहा है। आन्तरिक सन्ताप शरीर को जला रहा है, किन्तु जला कर राख नहीं कर रहा है। मर्म-स्थल को बींधने वाला भाग्य प्रहार कर रहा है, परन्तु जीवन को सर्वथा नष्ट नहीं कर रहा है ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—**पाल्यम्**— √पाल्+ण्यत्+विभक्तिः। **विधिवत्**-विधिमर्हति, 'तदर्हम्' (पा० ५।१।११७) इति 'वति' प्रत्ययः। **अभियुक्तेन**–अभि+ √युज्+ क्त+विभक्तिः। **विनोदः**–वि+ √नुद्+घञ्+विभक्तिः। **असुलभः**-न सुलभः, सु+ √लभ्+खल् ("ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्" (पा० ३।३।१८६)। **उच्छ्वासः**- उद्+ √श्वस्+घञ्+विभक्तिः।

इस श्लोक में उपमा और परिणाम अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ३० ॥

अन्वयः—हृदयम्, शोकोद्वेगात्, दलति, तु, द्विधा, न, भिद्यते; विकलः, कायः, मोहम्, वहति, (किन्तु), चेतनाम्, न, मुञ्चति; अन्तर्दाहः, तनूम्, ज्वलयति, (तु), भस्मसात्, न, करोति; मर्मच्छेदी, विधिः, प्रहरति, (किन्तु), जीवितम्, न, कृन्तति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—हृदयम्=हृदय, शोकोद्वेगात्=शोक के उद्वेग के कारण, दलति= फट रहा है, तु=किन्तु, द्विधा=दो टुकड़ों में, न=नहीं, भिद्यते=विभक्त हो रहा है; विकलः=विह्वल, कायः=शरीर, मोहम्=मूर्च्छा को, वहति=धारण कर रहा है अर्थात् मूर्च्छित हो रहा है, (किन्तु=परन्तु), चेतनाम्=चेतना को, न=नहीं, मुञ्चति= छोड़ रहा है; अन्तर्दाहः=आन्तरिक सन्ताप, तनूम्=शरीर को, ज्वलयति=जला रहा है, (तु=किन्तु), भस्मसात्=जला कर राख, न=नहीं, करोति=कर रहा है;

हे भगवन्तः[१] पौरजानपदाः !

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चा[२]प्यनुशोचिता ।
चिरपरिचितास्ते[३] ते भावास्तथा[४] द्रवयन्ति मा-
मिदमशरणैरद्या[५]स्माभिः प्रसीदत रुद्यते ॥ ३२ ॥

मर्मच्छेदी=मर्मस्थलको वींधने वाला, विधिः=भाग्य, विधाता, प्रहरति=प्रहार कर रहा है, (किन्तु=परन्तु), जीवितम्=जीवन को, न=नहीं, कृन्तति=सर्वथा नष्ट कर रहा है ॥ ३१ ॥

टीका—दलतीति । हृदयम् = चित्तम्, शोकोद्वेगात्-शोकस्य = इष्टजनवियोगजनितमन्योः उद्वेगात् = उद्रेकात्, दलति = स्फुटति, तु = किन्तु, द्विधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्, न भिद्यते = न भिन्नं भवति, पृथक्कारेण शकलद्वयं न भवतीत्यर्थः; विकलः = विह्वलः, शोकेनेति शेषः, कायः = शरीरम्, मोहम् = मूर्च्छाम्, वहति = धारयति, किन्तु, चेतनाम्=संज्ञाम्, न मुञ्चति=न त्यजति; अन्तर्दाहः=अन्तःकरणतापः, तनूम्=शरीरम्, ज्वलयति=सन्तापयति, किन्तु भस्मसात् = भस्मीभूताम्, न करोति= न विदधाति; "विभाषा सति कार्त्स्न्ये" इति सातिप्रत्ययः, यदि मनस्तापः शरीरं भस्मसादकरिष्यत्तर्हि एतादृशो विरहसन्तापो नाऽभविष्यदिति भावः । मर्मच्छेदी— मर्माणि=जीवितस्थानानि छिनत्तीति=कृन्ततीति मर्मच्छेदी, विधिः=दैवम्, प्रहरति= प्रहारं करोति, किन्तु जीवितम्=जीवनम्, न कृन्तति=न छिनत्ति । अत्र विशेषोक्तिरलङ्कारः । हरिणीछन्दः ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—०उद्वेगात्—उद्+√विज्+घञ्+पञ्चमीविभक्तिः । भस्मसात्— भस्मन्+सात् । मर्मच्छेदी-मर्मन्+√छिद्+णिनिः+विभक्तिः ।

दलति हृदयमिति—यह श्लोक मालतीमाधव में भी इसी प्रकार से आया है ।

इस श्लोक के चारों चरणों में चार विशेषोक्ति अलङ्कार हैं । कारण के होने पर भी जहाँ कार्य नहीं होता है वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार माना जाता है ।

श्लोक में प्रयुक्त हरिणी छन्द का लक्षण—

नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥ ३१ ॥

अन्वयः—देव्याः, गृहे, स्थानम्, भवताम्, न, अभिमतम्, किल; ततः, शून्ये, वने, तृणम्, इव, त्यक्ता; च, न, अनुशोचिता, अपि; चिरपरिचिताः, ते ते, भावाः, माम्, तथा, द्रवयन्ति; अद्य, अशरणैः, अस्माभिः, इदम्, रुद्यते, प्रसीदत ॥ ३२ ॥

---

१. 'भवन्तः' इति पाठान्तरम्, २. वाप्य, ३. स्त्वेते, ४. परि; परिभ्रमयन्ति, ५. ०द्याप्येवं, किमिह शरणं नाद्याप्येवम् ।

हे महानुभाव पुरवासियों तथा जनपदवासियों,

देवी (सीता) का घर में रहना आप लोगों को पसन्द नहीं था, अतः वह निर्जन वन में, तिनके की तरह, छोड़ दी गई और उसका शोक भी मैंने नहीं किया। चिर-परिचित वे-वे पदार्थ मुझे अत्यधिक द्रवित कर रहे हैं। आज असहाय होकर हमारे द्वारा रोया जा रहा है (अर्थात् असहाय होकर मैं रो रहा हूँ), आप लोग प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥

विशेष—राम के कहने का भाव यह है कि—सीता को घर से निकलवा कर आप लोगों की इच्छा पूरी हुई। अतः आप लोग प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—देव्याः=देवी (सीता) का, गृहे=घर में, स्थानम्=रहना, भवताम्=आप=लोगों को, न=नहीं, अभिमतम्=पसन्द था, किल=यह निश्चय-सूचक अव्यय है; ततः=उसी कारण से, शून्ये=निर्जन, वने=वन में, तृणम्=तिनके की, इव=तरह, त्यक्ता=छोड़ दी गई, च=और, न=नहीं, अनुशोचिता=शोची गई, चिन्ता की गई, अपि=भी; चिरपरिचिताः=चिरपरिचित, ते ते=वे–वे, भावाः=पदार्थ, माम्=मुझे, तथा=अत्यधिक, द्रवयन्ति=द्रवित कर रहे हैं; अद्य=आज, अशरणैः=असहाय, अस्माभिः=हमारे द्वारा, इदम्=यह, रुद्यते=रोया जा रहा है, प्रसीदत=आप लोग प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥

टीका—न किलेति। देव्याः=आर्यायाः सीतायाः, गृहे=भवने; स्थानम्=स्थितिः, भवताम्=युष्माकम्, न अभिमतम्=नाभीष्टम्, किलेति दार्ढ्ये प्रसिद्धौ वा; ततः=तस्मात्कारणात्, शून्ये=निर्जने, वने=अरण्ये, तृणमिव=घासमिव, त्यक्ता=निःसारिता; च=किन्तु, नानुशोचिता=नानुतापेनापि सम्भाविता, अपि=च; तदर्थमनुतापोऽपि न कृत इति भावः, चिरपरिचिताः–चिरात्=बहोः कालात् परिचिताः=संस्तुताः, ते ते=पूर्वानुभूता इत्यर्थः, भावाः=पदार्थाः, माम्=रामम्, तथा=तेन प्रकारेण, द्रवयन्ति=सन्तापयन्ति; अद्य=सम्प्रति, अशरणैः = असहायैः अस्माभिः=मया रामेणेत्यर्थः, इदम्=एतत् रुद्यते=विलापः=क्रियते, प्रसीदत=यूयं प्रसन्नाः भवत। अत्रोपमा विशेषोक्तिश्चालङ्कारौ। हरिणी छन्दः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—पौर-जानपदाः—पुरवासी कहते हैं नगर में निवास करने वाले को और जानपद कहते हैं जनपदवासी को अथवा गाँव के निवासी को। **पौराः**–पुर+अण्+आदिवृद्धिर्विभक्तिश्च। **जानपदाः**–जनपद+अण्+आदिवृद्धिस्तथा विभक्तिकार्यम्।

अभिमतम्—अभि+ √मन्+क्त+विभक्तिः। **अनुशोचिता**–अनु+√शुच्+णिच्+क्त+टाप्+विभक्तिकार्यम्। **भावाः**– √भू+घञ्+विभक्तिः।

वासन्ती—(स्वगतम् ।) अतिगभीरमापूर[1]णं मन्युभारस्य । (प्रकाशम् ।) देव ! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम् ।

रामः--किमुच्यते धैर्यमिति ?

देव्याः शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
[2]प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥ ३३ ॥

सीता--अपहरामि च मोहितेव एतैरार्यपुत्रस्य प्रियवचनैः । (ओहरामि अ मोहिआ विअ एदेहिं अज्जउत्तास्स पिअवअणेहिं ।)

तमसा—एवमेव वत्से !

नैताः प्रियतमा वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः ।
एतास्ता मधुनो धाराः श्च्योतन्ति सविषास्त्वयि ।। ३४ ।।

इस श्लोक में तृणमिव में उपमालङ्कार है । परित्यागरूपी कारण के होने पर भी शोक न करना—इस कार्याभाव के कारण विशेषोक्ति है ।

छन्द के लक्षण के लिये पीछे के श्लोक की टिप्पणी देखिये ।। ३२ ।।

शब्दार्थः—अतिगभीरम्=अत्यन्त गंभीर है, आपूरणम्=पूर्णता, मन्युभारस्य = शोकके भार की । अतिक्रान्ते = बीती बातों के सम्बन्ध में, धैर्यम्=धीरज, अवलम्ब्यताम्=धारण करें ।

टीका—वासन्तीति । अतिगभीरम् = अतिगूढम्, आपूरणम् = परिपूर्णता, मन्युभारस्य=शोकराशेः । अतिक्रान्ते=अतीते विषये, धैर्यम् = चित्तस्थैर्यम्, अवलम्ब्यताम्=आश्रीयताम् ॥

टिप्पणी—अतिक्रान्ते–अति+ √क्रम+क्त+सप्तम्यैकवचने विभक्तिकार्यम् ।।

अन्वयः—देव्याः, शून्यस्य, जगतः, द्वादशः, परिवत्सरः । नाम, अपि, प्रणष्टम्, इव, च, रामः, न, जीवति, इति, न ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—देव्याः=देवी सीता से, शून्यस्य = रहित, शून्य, जगतः=संसार का, द्वादशः = बारहवाँ, परिवत्सरः=वर्ष है । नाम = नाम, अपि=भी, प्रणष्टम्=समाप्त हो गया, इव=सा, तरह, च = और, रामः=राम, न=नहीं, जीवति = जीवित है, इति=ऐसी बात, न=नहीं है ॥ ३३ ।।

टीका--देव्या शून्यस्येति । देव्याः=सीतायाः, शून्यस्य = रहितस्य, जगतः= संसारस्य, द्वादशः—द्वादशानां पूरणो द्वादशः=द्वादशसंख्याकः, परिवत्सरः=संवत्सरः, वर्ष इति यावत्; अस्तीति क्रियाशेषः । नामापि=सीताया नामधेयमपि, प्रणष्टमिव= विलुप्तमिव, च=तथा, रामः=दाशरथिः, न जीवति=न प्राणिति, इति = एतद्, न = नास्ति, अपि तु प्राणित्येव । अत्रोत्प्रेक्षा अलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३३ ॥

---

१. अवगूरणं शोकसागरस्य, २. लुप्तं ।

वासन्ती—(अपने आप) शोक के भार की पूर्णता अत्यन्त गंभीर है। (अर्थात् राम के हृदय में अगाध शोक-सागर लहरा रहा है)। (प्रकट रूप में) महाराज, बीती बातों के सम्बन्ध में धीरज धारण करें।

राम—क्या कहा, धैर्य रखिये ?

देवी सीता से रहित इस जगत् का बारहवाँ वर्ष है। (सीता का) नाम भी समाप्त-सा हो गया है और राम नहीं जीवित है, ऐसी बात नहीं है ॥ ३३ ॥

सीता—आर्य-पुत्र के इन प्रिय वचनों से मोहित-सी होकर समय काट रही हूँ।

तमसा—ऐसा ही है, बेटी,

ये स्नेह से सिक्त और शोक के कारण कठोर (राम के) अत्यधिक प्रिय वचन नहीं हैं, अपितु ये विषमिश्रित मधु की धाराएँ हैं जो तुम्हारे ऊपर टपक रही हैं ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—द्वादशः—द्वादशन् + डट् + डित्वादनो लोपः + विभक्तिश्च।
प्रणष्टम्—प्र + √नश् + क्त + विभक्तिः। प्रनष्टमपि।

न जीवति न—जब दो निषेधार्थक न का प्रयोग होता है तो उसका स्वीकृति-सूचक अर्थ होता है। "नञौ द्वौ प्रकृतार्थं गमयतः।"

प्रणष्टमिव—में इव क्रिया की उत्प्रेक्षा का सूचक है। अतः क्रियोत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—एताः, स्नेहार्द्राः, शोकदारुणाः, प्रियतमाः, वाचः, न। ताः, एताः, सविषाः, मधुनः, धाराः, (याः), त्वयि, श्च्योतन्ति ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—एताः=ये, स्नेहार्द्राः = स्नेह से सिक्त, शोकदारुणाः=शोक के कारण कठोर, प्रियतमाः=अत्यधिक प्रिय, वाचः=वचन, न = नहीं हैं, ताः=वे, एताः = ये, सविषाः=विषमिश्रित, मधुनः=मधुकी, धाराः=धाराएँ हैं, (याः = जो), त्वयि = तुम्हारे ऊपर, श्च्योतन्ति = टपक रही हैं ॥ ३४ ॥

टीका—नैता इति। एताः=इमाः, स्नेहार्द्राः=स्नेहेन = प्रेम्णा आर्द्राः=सिक्ताः, शोकदारुणाः=शोकेन=मन्युना दारुणाः = कठोराः, प्रियतमाः = भृशं प्रीतिकारकाः, वाचः=वचनानि, न=न सन्ति ; अपि तु ताः=त्वया श्रुताः, एताः=इमाः, सविषाः-विषेण = गरलेन सहिताः सविषाः=विषसम्पृक्ताः मधुनः=क्षौद्रस्य, धाराः = प्रवाहाः, सन्ति या इति शेषः, त्वयि=सीताया उपरि, श्च्योतन्ति=क्षरन्ति। अत्र विरोधाभासोऽपह्नुतिश्चालङ्कारौ। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३४ ॥

रामः--अयि वासन्ति ! मया खलु--

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च [1]दन्तः ।

तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ? ॥३५॥

सीता--एवमपि मन्दभागिन्यहं या पुनरायासकारिणी आर्यपुत्रस्य ।

(एव्वं वि मन्दभाइणी अहं जा पुणो आआसआरिणी अज्जउत्तस्स ।)

रामः--एवमतिगू[2]ढस्तम्भितान्तःकरणस्यापि मम संस्तुतवस्तुदर्शनाद-[3]द्यायमावेगः । तथा हि--

---

टिप्पणी--मोहिता--मोह+इतच्+टाप्+विभक्तिः ।

प्रियतमाः--तमसा के कहने का भाव यह है कि ये वचन प्रियतम नहीं हैं, क्योंकि ये प्रसन्नता के साथ ही विष के समान मूर्च्छा को भी दे रहे हैं । प्रिय+तमप्+टाप्+विभक्तिः ।

यहाँ विरोधाभास और अपह्नुति अलङ्कार हैं तथा प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप् ॥ ३४ ॥

अन्वयः--यथा, अन्तः, प्रत्युप्तम्, तिरश्चीनम्, अलातशल्यम्, च, सविषः, दन्तः, तथा, एव, तीव्रः, शोकशङ्कुः, मर्माणि, कृन्तन्, अपि, किम्, न, सोढः ॥३५॥

शब्दार्थः--यथा=जैसे, अन्तः=हृदय में, प्रत्युप्तम्=धँसी हुई, तिरश्चीनम्=तिरछी, अलातशल्यम्=आग से धधकती हुई लोहे की कील, च=और, सविषः=विषदिग्ध, दन्तः=दाँत, तथा एव=उसी प्रकार, हृदि=हृदय में, तीव्रः=तीक्ष्ण, शोकशङ्कुः=शोक रूपी कील, मर्माणि=मर्म-स्थलों को, कृन्तन्=काटती हुई, अपि=भी, किम्=क्या, न सोढः=नहीं सही गई ॥ ३५ ॥

टीका--यथा तिरश्चीनमिति । यथा=येन प्रकारेण, अन्तः=मध्ये, वक्षस्थल इत्यर्थः, प्रत्युप्तम्=निखातम्, तिरश्चीनम्=तिर्यग्भूतम्, अलातशल्यम्=उल्मुककीलकम्, च=तथा, अपि च, सविषः=विषेण=गरलेन सहितः सविषः=विषदिग्धः, दन्तः=दशनः, सर्पादेरिति शेषः, तथैव=तेनैव प्रकारेण, हृदि=हृदये, तीव्रः=तीक्ष्णः, शोकशङ्कुः=शोक एव शङ्कुः शोकशङ्कुः=मन्युकीलकम्, मर्माणि=हृदयादीनि मर्मस्थलानि, कृन्तन्नपि=छिन्दन्नपि, किं न सोढः=किं न व्यसह्यत, अपि तु सोढ एवेत्यर्थः । अत्रोपमा-रूपकम्-अर्थापत्तिश्चालङ्काराः । उपजातिश्छन्दः ॥ ३५ ॥

टिप्पणी--तिरश्चीनम्--तिर्यञ्च्+ख (ईन)+विभक्तिः ।

---

१. दंशः, २. निष्कम्भ, विष्कम्भ, ३. उद्दामो ।

राम——हे वासन्ती, मेरे द्वारा वस्तुतः—

जैसे हृदय में धँसी हुई, तिरछी अड़ी हुई, आग से धधकती हुई लोहे की कील और विष-दिग्ध दाँत, वैसे ही हृदय में तीक्ष्ण शोक रूपी कील मर्म-स्थलों को काटती हुई भी, क्या नहीं सही गई ? ।। ३५ ।।

विशेष—राम के कहने का भाव यह है कि——हृदय में धँसा हुआ और तिरछे होकर फँसा हुआ लोहे का गरम काँटा और विषैले सर्प का दाँत जैसे मर्म-स्थलों को काटता और असह्य पीडा देता है वैसी ही पीडा सीता के वियोग से उत्पन्न शोक रूपी शङ्कु मेरे हृदय को पहुँचा रहा है और मैंने उसे न सहा हो ऐसी बात नहीं है; अर्थात् सहा ही है ।। ३५ ।।

सीता—ऐसी भी अभागिन मैं हूँ जो फिर आर्यपुत्र के कष्ट का कारण हो गई हूँ ।

राम—इस प्रकार अत्यन्त गुप्त रूप से अन्तःकरण को रोकने वाले भी मुझे आज परिचित वस्तुओं के दिखलाई पड़ने से यह चित्त-विकार हो रहा है । जैसे कि—

अलातशल्यम्—धधकती हुई लोहे की कील । अलात लुआठी अर्थात् जलती हुई लकड़ी को कहते हैं । जलती हुई लौह-कील तिरछी पड़ जाने के कारण जल्दी नहीं निकल पाती है और भीषण कष्ट देती है । इसी प्रकार राम के हृदय में शोक-रूपी कील धँसी हुई है और कष्ट दे रही है ।

प्रत्युप्तम्—प्रति + √वप् + क्त + विभक्तिः + सम्प्रसारणञ्च । कृन्तन्— √कृत् + शतृ + विभक्तिः ।

सोढः— √सह् + क्त + विभक्त्यादिः ।।

इस श्लोक में "यथा तिरश्चीनम्" में 'यथा' शब्द से उपमा है । "शोकशङ्कुः" में रूपक और "किं न सोढः" में अर्थापत्ति अलङ्कार है ।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है——उपजाति । छन्द का लक्षण—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ।। ३५ ।।

शब्दार्थः—एवमपि=ऐसी भी, मन्दभागिनी–अभागिन, आयासकारिणी=कष्ट देनेवाली, अतिगूढस्तम्भितान्तःकरणस्य=अत्यन्त गुप्तरूप से अन्तःकरण को रोकनेवाले, मम=मुझे, संस्तुतवस्तुदर्शनात्=परिचित वस्तुओं के दिखलाई पड़ने से, आवेगः=चित्त-विकार ।।

[1]वेलोल्लोलक्षुभित[2]करुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि [3]समाधीयते तं तमन्तः ।
भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ॥ ३६ ॥

सीता--आर्यपुत्रस्यैतेन दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसंयोगेन परिमुषित-निजदुःखं प्रमुक्तजीवितं मे हृदयं स्फुटति । (अज्जउत्तस्स एदिणा दुव्वारदारुणारम्भेण दुःखसंजोएण परिमुसिअणिअदुःखं पमुक्कजीविअं मे हिअअं फुडइ ।)

टीका—सीतेति । एवमपि=इत्थमपि, मन्दभागिनी=अल्पभाग्या, आयासकारिणी–आयासम्=कष्टं करोतीति=विदधातीति तादृशी, कष्टदायिनीति यावत् । अतिगूढस्तम्भितान्तःकरणस्य--अतिगूढम्=अतिगुप्तं यथा तथा स्तम्भितम्=रुद्धम् अन्तःकरणम्=चित्तं येन तादृशस्य, मम=रामचन्द्रस्य, संस्तुतवस्तुदर्शनात्--संस्तुतानि=परिचितानि, सीतया सह पूर्वं साक्षात्कृतानीति यावत्, च तानि वस्तूनि=पदार्थाः तेषां दर्शनात् अवलोकनात् । आवेगः=चित्तविकारः ॥

अतिगूढस्तम्भित०—राम अति गंभीर हृदय के व्यक्ति हैं । उनका हृदय अत्यन्त गूढ और स्तम्भित अर्थात् उनके ही वश में रहने वाला है । उनका हृदय जल्दी दुःखाक्रान्त नहीं होता है । किन्तु आज पूर्व परिचित स्थानों को देखकर सीता की याद हो आई है । अतः वे विलाप कर रहे हैं ।

आयासकारिणी—आयास + √कृ + णिनि + ङीप् +विभक्त्यादिः । **संस्तुत०—**सम् + √स्तु + क्त+ विभक्तिः । **आवेगः**- आ + √विज् + घञ् + विभक्तिः ॥

अन्वयः--वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थम्, यः, यः, यत्नः, कथम्, अपि, समाधीयते, तम्, तम्, कोऽपि, चेतोविकारः, अप्रतिहतरयः, तोयस्य, ओघः, सैकतम्, सेतुम्, इव, बलात्, अन्तः, भित्त्वा, भित्त्वा, प्रसरति ॥३६॥

शब्दार्थः--वेलोल्लोल-क्षुभित-करुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थम्=मर्यादा को लाँघने वाले अत एव क्षुब्ध शोक की वृद्धि को रोकने के लिये, यः=जो, यः=जो, यत्नः=यत्न, उपाय, कथमपि=किसी प्रकार, समाधीयते–किया जाता है, तं तम्=उस उस (प्रयत्न) को, कोऽपि=कोई, अनिर्वचनीय, चेतोविकारः=चित्त-विकार, अप्रतिहतरयः=अमोघ वेग वाला, तोयस्य=जल का, ओघः=प्रवाह, सैकतम्=बालू के, सेतुम्=बन्ध की, इव=तरह, बलात्=बलपूर्वक, अन्तः=भीतर ही भीतर, भित्त्वा भित्त्वा=बारम्बार तोड़कर, प्रसरति=फैल रहा है ॥३६॥

---

१. लोलो०, हेलो०, २. करणो०, ३. मयाऽऽधीयते, ४. प्रस्फुरितनिजदुःखमिवाकम्पितं (पप्फुरिदणिअदुक्खं विअ आकंपिदं) ।

मर्यादा को लाँघनेवाले अतः एव क्षुब्ध शोक की वृद्धि को रोकने के लिये जो-जो प्रयत्न किसी प्रकार किया जाता है, उस-उस (प्रयत्न) को कोई अनिर्वचनीय चित्त-विकार उसी प्रकार हठात् भीतर ही भीतर बारम्बार तोड़कर फैल रहा है, जैसे अमोघ, वेगवाला जल-प्रवाह बालू को तोड़कर फैल जाता है ।।३६।।

सीता—आर्यपुत्र के इस दुर्निवार्य एवं कठोर आरम्भवाले दुःख के संयोग से अपने दुःख को भुला देने वाला, निर्जीव-सा बना हुआ मेरा हृदय फट रहा है ।

टीका—वेलोल्लोलेत्यादिः । वेलायाः=मर्यादायाः उल्लोलः=बहिर्भूतः, अतिवेल इत्यर्थः, क्षुभितः=क्षोभयुक्तः करुणः=शोकस्तस्य उज्जृम्भणस्य=अभिवृद्धेः स्तम्भनार्थम्=निरोधार्थम्, प्रवाहभूयस्तया नदीवत् क्षोभवांश्च यः करुणः प्रियजनविश्लेषजन्यदुःखातिशयस्तस्य उज्जृम्भणम्=अभिवृद्धिस्तस्य स्तम्भनम्=प्रतिहतिस्तदर्थमित्यर्थः, यो यः=योऽपि, यत्नः=प्रयासः, कथमपि=केनापि प्रकारेण, समाधीयते=उत्पाद्यते, तं तम्=सर्वं प्रयत्नमित्यर्थः, कोऽपि-अवर्णनीय इति यावत्, चेतोविकारः-चेतसः=मनसो विकारः=विकृतिः संभ्रभातिशय इति यावत्, अप्रतिहतरयः—अप्रतिहतः=अप्रतिरुद्धो रयः=वेगो यस्य स तादृशः, तोयस्य=जलस्य ओघः=दीर्घः प्रवाहः, सैकतम्=सिकतानिर्मितम्, सेतुमिव=आलिमिव, बलात्=हठात्, अन्तः=मध्ये, भित्त्वा भित्त्वा=पुनः पुनः छित्वा, प्रसरति=प्रसारं करोति । अत्रोपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ।।३६।।

टिप्पणी—भित्त्वा भित्त्वा—श्रावण के महीने में गंगा के अप्रतिहत प्रवाह को रोकने के लिये बालू का विशाल बन्ध बना दीजिये । किन्तु इतना निश्चित है कि जल का महान् वेग उसे रुकने ही न देगा, बहा कर दूर कर देगा । बार-बार बाँधिये बार-बार जलौघ बहा देगा । इसी प्रकार सीता के वियोग से उत्पन्न दुःख, आज पूर्व परिचित दृश्यों को देख कर, धीरजरूपी बन्ध को तोड़-तोड़ कर बाहर प्रकट हो रहा है, राम को रुलाकर, झकझोर कर रख दे रहा है ।

उज्जृम्भण०—उत् + √जृम्भ् + ल्युट् + विभक्तिः । स्तम्भन०— √स्तम्भ + ल्युट् + विभक्त्यादिः । भित्त्वा— √भिद् + क्त्वा, वीप्सायां द्विरुक्तिः । सैकतम्—सिकता + अण् + विभक्त्यादिः ।

इस श्लोक में "तोयस्येव" में उपमा अलङ्कार है । श्लोक में प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण—

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।। ३६ ।।

शब्दार्थः—दुर्वारदारुणारम्भेण=दुर्निवार्य एवं कठोर आरम्भवाले, दुःखसंयोगेन=दुःख के संयोग से, परिमुषितनिजदुःखम्=अपने दुःख को भुला देने वाला, अपने दुःख को भुला कर, प्रमुक्तजीवितम्=निर्जीव-सा बना हुआ, स्फुटति=फट रहा है ।

वासन्ती--(स्वगतम्) कष्टमत्यासक्तो[१] देवः । तदाक्षिपामि तावत् । (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभागानवलोकनेन मानयतु देवः ।

रामः--एवमस्तु (इत्युत्थाय परिक्रामति ।)

सीता—[२]संदीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि । (संदीवण एव्व दुःखस्स पिअसहीए विणोदणोवाओत्ति तक्केमि ।)

वासन्ती--देव देव !

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैः [३]कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते ।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः ॥३७॥

अत्यासक्तः = अति शोकाकुल, चिरपरिचितान् = चिरपरिचित ॥ सन्दीपनः=(दुःख को) प्रदीप्त करने वाला ॥

टीका—सीतेति । **दुर्वारदारुणारम्भेण**—दुर्वारः=दुर्निवर्त्यश्चासौ दारुणः= कठोरः आरम्भः = उपक्रमो यस्य तेन तादृशेन, दुःखसंयोगेन-दुःखसंक्षोभेण, परिमुषितनिजदुःखम्–परिमुषितम्=अपहृतम् निजम्=स्वकीयं दुःखम्=कष्टं यस्य तत् तादृशम्, प्रमुक्तजीवितम्–प्रमुक्तम्=त्यक्तं जीवितम्=जीवनं येन तत् तादृशम्, स्फुटति=द्विधा भवति । अत्यासक्तः=अतिशयासक्तिसम्पन्नः, सीतायामिति शेषः, चिरपरिचितान्=पूर्वसंस्तुतान् । संदीपनः=उद्दीपनः ॥

टिप्पणी--**परिमुषित०**—सीता के कहने का भाव यह है कि पतिदेव रामचन्द्र के दुःख को देख कर मेरा हृदय अपने कष्ट को भुला कर, निर्जीव-सा होकर फट-सा रहा है । परि+ √मुष्+क्त+विभक्तिः । **प्रमुक्त०**–प्र+ √मुच्+क्त+विभक्तिः । **अत्यासक्तः**–अति+आ+ √सञ्ज्+क्त+विभक्त्यादिः ।

सन्दीपनः—सम्+ √दीप्+णिच्+ल्यु (अन)+विभक्तिः ।

सन्दीपनः--वासन्ती राम को पूर्व परिचित स्थानों को दिखला कर बहलाना चाहती है । किन्तु सीता का कहना है कि प्रियसखी वासन्ती के इस मनोविनोद के उपाय से राम का दुःख बढ़ेगा ही, क्योंकि वह उन्हें पहले के विहार-स्थलों को दिखला रही है जहाँ पर राम सीता के साथ रह चुके हैं, विहार कर चुके हैं ॥

अन्वयः—अस्मिन्, एव, लतागृहे, त्वम्, तन्मार्गदत्तेक्षणः, अभवः; सा, हंसैः, कृतकौतुका, गोदावरीसैकते, चिरम्, अभूत्, आयान्त्या, तया, त्वाम्, परिदुर्मना-

---

१. अभ्यापन्नः, २. संदीपनानि···प्रियसखी विनोदनोपाय इति मन्यते (संदीवणाइं पियसही पिणोदणोवाओ त्ति मण्णदि), ३. स्थिर० ।

वासन्ती--(अपने आप) दुःख की बात है कि महाराज अतिशोकाकुल हो गये हैं। अतः इनका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करती हूँ। (प्रकट रूप से) महाराज, अब जनस्थान (दण्डकारण्य) के इन चिरपरिचित स्थानों को देखकर कृतार्थ करें आप।

राम—ऐसा ही हो। (ऐसा कहकर घूमते हैं)।

सीता—मेरा अनुमान है कि प्रिय सखी (वासन्ती) के द्वारा किया गया (आर्यपुत्र के) मनोविनोद का उपाय दुःखको उद्दीप्त करने वाला ही है।

वासन्ती--महाराज, महाराज, इसी लता-गृह में तुम उसके मार्ग की ओर दृष्टि लगाये हुए बैठे थे; वह (सीता) हंसों के साथ क्रीडा करती हुई गोदावरी के किनारे बहुत देर तक रुकी रही; आती हुई उसके द्वारा आपको खिन्नचित्त-सा देखकर दीनतावश, कमल की कली की तरह सुन्दर प्रणामाञ्जलि बाँधी गई थी॥ ३७॥

विशेषः—सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ चुका था। सीता गोदावरी नदी में जल लेने गई हुई थीं। वहाँ हंसों की क्रीडा उन्हें बहुत पसन्द आई। उन्होंने कुछ क्षण उसे देखने में व्यतीत कर दिया। विलम्ब होने पर राम उत्सुकतावश सीता के आने के मार्ग को देख रहे थे। सीता ने देखा उनके पतिदेव की मुखाकृति पर चिन्ता की रेखायें उभर आई हैं, राम किञ्चित् खिन्न से हैं। अतः उन्होंने हाथ जोड़ कर, गलती के लिये, प्रणाम कर लिया॥३७॥

यितम्, इव, वीक्ष्य, कातर्यात्, अरविन्दकुड्मलनिभः, मुग्धः, प्रणामाञ्जलिः, बद्धः॥ ३७॥

शब्दार्थः—अस्मिन्=इस, एव=ही, लता-गृहे=लता-गृह में, त्वम्=तुम, तन्मार्गदत्तेक्षणः=उसके मार्ग की ओर दृष्टि लगाये हुए, अभवः=बैठे थे; सा=वह सीता, हंसैः=हंसों के साथ, कृतकौतुका=कौतुक (क्रीडा) करती हुई, गोदावरीसैकते=गोदावरी के किनारे, चिरम्=बहुत देर तक, अभूत्=रुकी रही; आयान्त्या=आती हुई, तया=उसके द्वारा, त्वाम्=आपको, परिदुर्मनायितम्=खिन्न-चित्त, उदास, इव=सा, तरह, वीक्ष्य=देखकर, कातर्यात्=दीनतावश, अरविन्दकुड्मलनिभः=कमल की कली की तरह, मुग्धः=सुन्दर, भोली-भाली, प्रणामाञ्जलिः=प्रणामाञ्जलि, बद्धः=बाँधी गई थी॥ ३७॥

टीका—अस्मिन्नेवेति। अस्मिन्=एतस्मिन्नित्यङ्गुल्या निर्देशः, एव=हि, लतागृहे=लतानिर्मिते मण्डपे, त्वम्=भवान् रामचन्द्र इत्यर्थः, तन्मार्गदत्तेक्षणः-तस्याः=सीतायाः इत्यर्थः मार्गे=आगमनवर्त्मनि दत्ते=वितीर्णे ईक्षणे=नेत्रे येन सः तादृशः, अभवः=अतिष्ठः; सा=सीतेत्यर्थः, हंसैः=चक्राङ्गैः, मरालैरिति यावत्, "हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्राङ्गा मानसौकस" इत्यमरः, कृतकौतुका-कृतम्=सम्पादितं कौतुकम्=

सीता—दारुणासि वासन्ति ! दारुणासि । या एतैर्हृदयमर्मोद्घाटितशल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनोमार्यपुत्रं च स्मरयसि । (दालुणासि [1]वासन्ति ! दालुणासि । जा एदेहिं हिअअमम्मु[2]ग्घाडिअसल्लसंघट्टनेहिं पुणोपुणोवि मं मन्दभाइणिं अज्जउत्तं अ सुमरावेसि ।[3])

रामः--अयि चण्डि जानकि ! इतस्ततो दृश्यसे, नानुकम्पसे ।

हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं, ध्वंसते[4] देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदवि[5]रलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ? ॥३८॥
(इति मूर्च्छति)

कुतूहलं यस्याः सा तादृशी सती, गोदावरीसैकते–गोदावर्याः=रेवायाः सैकते=बालुकामयतटे, चिरम्=बहुकालम्, अभूत्=आसीत् । आयान्त्या=लताभवनमागच्छन्त्या, तया=सीतयेत्यर्थः, त्वाम्=भवन्तम्, परिदुर्मनायितमिव=चिन्ताग्रस्तमानसमिव, वीक्ष्य=अवलोक्य, कातर्यात्=त्रासात्, अरविन्दकुड्मलनिभः–अरविन्दस्य=रक्तकमलस्य कुड्मलेन=मुकुलेन निभः=तुल्यः, मुग्धः=सुन्दरः, प्रणामाञ्जलिः–प्रणामाय=क्षमायाचकाय नमस्काराय अञ्जलिः=करपुटः, बद्धः=विहितः । अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—आयान्त्या—आती हुई । आ+ √या+शतृ (अत्)+ङीप् (ई)= आयान्ती । वैकल्पिको नुम् । तस्याभावे आयाती इत्यपि भवति । **कातर्यात्**—कातरस्य भावः कातर्यं तस्मात्, कातर+ष्यञ्+वृद्धयादिः । **वीक्ष्य**—वि + √ईक्ष्+ल्यप् । **मुग्धः**— √मुह+क्त+विभक्तिः ।

इस श्लोक में अरविन्द० में 'निभ' शब्द समानता का सूचक है, अतः उपमा अलङ्कार है । "परिदुर्मनायितमिव" में 'इव' शब्द उत्प्रेक्षा का सूचक है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

यह श्लोक दशरूपक में प्रणयमान के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है । (दश० ४।५८) ।

श्लोक में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षणः—"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्" ॥३७॥

शब्दार्थः—दारुणा=कठिन हृदय, हृदयमर्मोद्घाटितशल्यसङ्घट्टनैः=हृदय के मर्मस्थल से निकाले हुए लौह-कीलों को पुनः वहीं चुभाने से । चण्डि=कोपने, कोप करनेवाली सीते, अनुकम्पसे=अनुकम्पा करती हो ॥

---

१. सहि वासन्ति; २. ०मम्मगूढसल्ल० (मर्मगूढशल्य०), ३. संदावेसि (संतापयसि ।), ४. स्रंसते; ५. अविरत० ।

सीता—कठिन हृदय हो, वासन्ती तुम कठिन-हृदय हो, जो हृदय के मर्मस्थलसे निकाले हुए बाणों को पुनः वहीं चुभाने से बार-बार मुझ अभागिन को और आर्य-पुत्र को परस्पर एक दूसरे की याद दिला रही हो।

राम—हे कोप करनेवाली सीता, इधर-उधर दिखलाई पड़-सी रही हो, किन्तु मुझ पर दया नहीं कर रही हो।

हाय, हाय, देवी सीता, कलेजा फट रहा है; शरीर का जोड़ टूट रहा है; संसार शूना दिखलाई पड़ रहा है; भीतर ही भीतर अनवरत ज्वाला से जल रहा हूँ; खिन्न, व्याकुल अन्तरात्मा घोर अन्धकार में डूब-सा रहा है; मूर्च्छा चारों ओर से घेर रही है। भाग्य-हीन मैं क्या करूँ? ॥ ३८ ॥

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)।

टीका—सीतेति। दारुणा=दारुवच्छुष्कहृदया, हृदयमर्मोद्घाटितशल्यसङ्घट्टनैः—हृदयम्=वक्षःस्थलम् एव मर्म=सन्धिस्थानं तस्मात् उद्घाटितम्=बहिर्निष्कासितं यत् शल्यम्=लौहकीलकं तस्य सङ्घट्टनैः=पुनः संयोजनैः, मुहुर्मुहुः प्राक्तनशोकवृत्तस्मारणैरिति भावः। चण्डि=कोपने, अनुकम्पसे=दयसे ॥

टिप्पणी—**दारुणा**–सीता के कहने का भाव यह है कि—वासन्ती, तुम बड़ी कठोर हो जो प्राचीन परिचित स्थानों तथा वृत्तान्तों का स्मरण कराकर आर्य-पुत्र को और मुझे भी दुःखी बना रही हो। तुम्हारा यह कार्य वैसे ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी के कलेजें में धँसे हुए कील को निकाल कर बाहर कर दे और फिर उसे वहीं गाड़ें।

अन्वयः—हा हा देवि, हृदयम्, स्फुटति; देहबन्धः, ध्वंसते; जगत्, शून्यम्, मन्ये; अन्तः, अविरलज्वालम्, ज्वलामि; सीदन्, विधुरः, अन्तरात्मा, अन्धे, तमसि, मज्जति, इव; मोहः, विष्वक्, स्थगयति; मन्दभाग्यः, कथम्, करोमि ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—हा हा देवि=हाय, हाय, देवी सीता, हृदयम्=कलेजा, स्फुटति=फट रहा है; देहबन्धः=शरीर का जोड़, ध्वंसते=टूट रहा है; जगत्=संसार को, शून्यम्=सूना, मन्ये=मान रहा हूँ, देख रहा हूँ; अन्तः=भीतर ही भीतर, अविरल-ज्वालम्=अनवरत ज्वाला से, ज्वलामि=जल रहा हूँ; सीदन्=खिन्न, विधुरः=व्याकुल, अन्तरात्मा=अन्तःकरण; अन्धे=घोर, तमसि=अन्धकार में, मज्जति इव=डूब-सा रहा है; मोहः=मूर्च्छा, विष्वक्=चारों ओर, स्थगयति=घेर रही है। मन्दभाग्यः=भाग्यहीन, कथम्=किस प्रकार, क्या, करोमि=करूँ ॥ ३८ ॥

सीता—हा धिक् हा धिक् ! पुनरपि मूढ आर्यपुत्रः । (हद्धी हद्धी ! पुणोवि मुद्धो अज्जउत्तो ।)

वासन्ती—देव ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

सीता—आर्यपुत्र ! मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमाङ्गलिकजन्मलाभस्य ते वारंवारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति हा ! हतास्मि । (इति मूर्च्छति ।) अज्जउत्त ! मं मन्दभाइणिं उद्दिसिअ सअलजीवलोअ[1]मङ्गलिअजम्मलाहस्स दे वारंवारं संसइदजीविअदालुणो दशापरिणामो त्ति हा हदह्मि !)

तमसा—वत्से ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । पुनस्ते[2] पाणिस्पर्शो रामभद्रस्य जीवनोपायः ।

वासन्ती—कथमद्यापि नोच्छ्वसिति ? हा प्रियसखि सीते ! क्वासि ? सम्भावयात्मनो जीवितेश्वरम् ।

टीका—हा हा देवीति । हा हा शब्दो दुःखातिशयद्योतकः, देवि=सीते, हृदयम्=वक्षःस्थलम्, स्फुटति=दलति, विदीर्यते इति यावत् । देहबन्धः=देहस्य=शरीरस्य बन्धः=शरीरावयवानां सन्धिः, जातावेकत्वम्, ध्वंसते=विशीर्णो भवति । जगत्=लोकम्, शून्यम्=असत्कल्पमित्यर्थः, मन्ये=जानामि । अन्तः=हृदये, अविरलज्वालम्–अविरलाः=अविच्छिन्ना ज्वाला यस्मिन् कर्मणि तत्तथोक्तम्, ज्वलामि=दह्ये, काष्ठवज्ज्वलामीति यावत् । सीदन्=खिन्नः सन्, विशीर्णीभवन्नित्यर्थः, विधुरः = विकलः, ज्ञानादिशून्य इत्यर्थः, अन्तरात्मा = अन्तःकरणम्, अन्धे = गाढे, तमसि=अन्धकारे, मज्जति=अवगाढं भवति इव । मोहः=मूर्च्छा, विष्वक्=सर्वतः, स्थगयति=संछादयति । मन्दभाग्यः=भाग्यविरहितः, अहमिति शेषः, कथं करोमि=किं करोमि ? मया किं विधेयमिति नावगच्छामि । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—सीदन्— √सद् + शतृ, सदः स्थाने सीदादेशः + विभक्तिः । अन्धे— √अन्ध् + अच् + विभक्तिः । विष्वक्—वि + सु + √अञ्च् + क्विन् + विभक्तिः ॥

यह श्लोक इस नाटक के श्रेष्ठ श्लोकों में से एक है। इसमें करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। यह श्लोक कुछ पाठ-भेद के साथ मालतीमाधव में भी आया है ।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार और मन्दाक्रान्ता छन्द है । छन्द का लक्षण—

"मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।। ३८ ॥

---

१. लोअमङ्गलिअजम्मलाहस्स (मङ्गल्य–माङ्गलिक-जन्मलाभस्य ।)

२. त्वत्पाणिस्पर्श एव संजीवनोपायो ।

सीता—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है। आर्य-पुत्र फिर मूर्च्छित हो गये हैं।

वासन्ती--महाराज, आश्वस्त हों, आश्वस्त हों।

सीता—आर्यपुत्र, मुझ अभागिन को उद्देश्य करके, सम्पूर्ण जीवलोक के लिये माङ्गलिक जन्मवाले आपके बारम्बार जीवन के संशय-ग्रस्त होने के कारण भयङ्कर दशा का परिणाम है। अतः मैं तो मर गई।

(ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती है)।

तमसा—बेटी, धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो। फिर तुम्हारी हथेली का स्पर्श रामभद्र को जीवित करने का उपाय है।

वासन्ती—क्या अभी अब भी होश में नहीं आ रहे हैं? हा प्रिय सखी सीता, कहाँ हो? अपने प्राण-वल्लभ को संमानित करो (अर्थात् होश में लाओ)।

शब्दार्थः—मूढः=बेहोश, मूर्च्छित। सकलजीवलोकमाङ्गलिकजन्मलाभस्य=सम्पूर्ण जीवलोक के लिए माङ्गलिक जन्म वाले, ते=आपका, संशयितजीवितदारुणः=जीवन के संशयग्रस्त होने के कारण भयङ्कर, दशापरिणामः=अवस्था का परिणाम, दशा की परिणति॥

टीका—सीतेति। मूढः=मोहमुपगतः। सकलजीवलोकमाङ्गलिकजन्मलाभस्य—मङ्गलेन निर्वृत्तो माङ्गलिकः, सकलानाम्=समस्तानां जीवलोकानाम्=प्राणिसमूहानां माङ्गलिकः=मङ्गलाय हितः जन्मलाभः=जन्मग्रहणं यस्य तस्य तादृस्य, ते=तव, रामस्येत्यर्थः, संशयितजीवितदारुणः—संशयितम्=संशयविषयभूतम् जीवितम्=जीवनम् यस्मिन् सः, अत एव दारुणः=भयङ्करः, दशापरिणामः=अवस्थापरिपाकः॥

टिप्पणी—मूढः—√मुह् + क्त + विभक्तिः। उद्दिश्य—उत् + √दिश् + ल्यप्॥

शब्दार्थः—पाणिस्पर्शः=हथेली का स्पर्श, जीवनोपायः=जीवित करने का उपाय। अद्यापि=अभी अब भी, नोच्छ्वसिति=होश में नहीं आ रहे हैं। सम्भावय=संमानित करो, आत्मनः=अपने, जीवितेश्वरम्=प्राण-नाथ को।

टीका—तमसेति। पाणि-स्पर्शः—पाणिना=हस्तेन स्पर्शः=आमर्शनम्, जीवनोपायः—जीवनस्य=चैतन्याधानस्य उपायः=हेतुः। अद्यापि=अधुनापि, व्यतीते बहुक्षणेऽपीत्यर्थः, नोच्छ्वसिति=न प्राणिति। संभावय=जीवय, कृतार्थं कुर्वित्यर्थः, आत्मनः=स्वस्य, जीवितेश्वरम्=प्राणवल्लभम्।

वासन्ती—दिष्टचा प्रत्यापन्न-चेतनो रामभद्रः ।

(सीता ससम्भ्रममुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति ।)

रामः—

आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून् ।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपर[1]मिवादधाति मोहम् ॥३९॥

([2]सानन्दं निमीलिताक्ष एव ।) सखि वासन्ति ! दिष्टचा वर्धसे ।

वासन्ती—कथमिव ?

रामः—सखि ! किमन्यत् । पुनर[3]पि प्राप्ता जानकी ।

वासन्ती—अयि देव रामभद्र ! क्व सा ?

रामः—(स्पर्शसुखमभिनीय ।) पश्य, नन्वियं पुरत एव ।

टिप्पणी—प्रत्यापन्न०—प्रति + आ + √पद् + क्त + विभक्त्यादिः । उपसृत्य—उप + √सृ + ल्यप् ॥

शब्दार्थः—दिष्टचा=सौभाग्य से, प्रत्यापन्नचेतनः=पुनः होश में आ गये हैं ।

टीका—दिष्टचा=सौभाग्येन, प्रत्यापन्नचेतनः—प्रत्यापन्ना=पुनरागता चेतना=संज्ञा यस्य सः ॥

अन्वयः—अमृतमयैः, प्रलेपैः, अन्तः, वा, बहिः, अपि, वा, शरीरधातून्, आलिम्पन्, इव, संस्पर्शः, पुनरपि, जीवयन्, अकस्मात्, आनन्दात्, अपरम्, मोहम्, आदधाति, इव ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—अमृतमयैः=अमृतमय, पीयूषस्वरूप, प्रलेपैः=लेपों से, अन्तः=भीतर, वा=और, बहिः=बाहर, अपि=भी, वा=यह पादपूर्ति के लिये आया है, शरीरधातून्=शरीर के धातुओं (मांस, त्वचा, अस्थि आदि) को, आलिम्पन्=आलिप्त करता हुआ, इव=सा, संस्पर्शः=मधुर स्पर्श, पुनरपि=फिर से, जीवयन्=जीवन देता हुआ, अकस्मात् = सहसा, आनन्दात्=आनन्द के कारण, अपरम्=दूसरे प्रकार की, मोहम्=मूर्च्छा को, आदधाति इव=उत्पन्न-सा कर रहा है ॥ ३९ ॥

टीका—आलिम्पन्निति । अमृतमयैः=अमृतस्वरूपैः = सुधापरिपूर्णैः, प्रलेपैः—प्रकृष्टो लेपो यैस्ते, लेपसाधनद्रव्यैरित्यर्थः, अन्तः=अन्तःस्थितान्, वा=अपि च, बहिः=बहिर्विद्यमानान्, अपि=च, वेति पादपूर्तौ, शरीरधातून्—शरीर=स्वदेहश्च धातवश्च=मांसादिधातवश्च तान्, शरीरं धातूंश्चेत्यर्थः, आलिम्पन्निव=सर्वतो लिप्तान् कुर्वन्निव, संस्पर्शः=आमर्शनम्, पुनरपि=मुहुरपि, जीवयन्=प्राणप्रतिष्ठामापादयन्, अकस्मात्=सहसा, निर्हेतुक इत्यर्थः, आनन्दात्=आनन्दमुत्पाद्य, 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इति पञ्चमी, अपरम्=अन्यम्, मोहम्=मूर्च्छामिति भावः, आदधाति इव=उत्पादयति इव । अन्ये तु परो न भवतीत्यपरः=अनन्य इत्यर्थः ।

---

१. अपरविधं तनोति, २. आनन्दनिमीलिताक्ष एव, ३. पुनः प्राप्ता,

वासन्ती—सौभाग्य से रामभद्र पुनः होश में आ गये हैं।

(सीता घबराहट के साथ राम के पास जाकर छाती और मस्तक पर स्पर्श करती हैं।)

राम—अमृतमय लेपों से भीतर और बाहर भी शरीर के धातुओं (मांस, त्वचा, अस्थि आदि) को आलिप्त-सा करता हुआ मधुर स्पर्श फिर से जीवन देता हुआ सहसा आनन्द के कारण दूसरे प्रकार की (सुखद) मूर्च्छा को उत्पन्न-सा कर रहा है ॥ ३९ ॥

(आनन्दपूर्वक आँखें बन्द किये हुए ही) सखी वासन्ती, तुम भाग्य से बढ़ रही हो।

विशेष--सीता ने अपनी सुकुमार हथेलियों से राम के वक्षःस्थल तथा मस्तकपर सहलाया। सीता के अमृतमय पाणिपल्लव के स्पर्श को पाते ही रामकी मूर्च्छा जाती रही। किन्तु अब आनन्दातिशय के कारण राम में एक दूसरे प्रकार की जडता का, मूर्च्छा का, आविर्भाव हो रहा है॥

वासन्ती—महाराज, कैसे?

राम–सखी, और क्या? जानकी पुनः प्राप्त हो गई।

वासन्ती—हे महाराज रामभद्र, वह कहाँ है?

राम--(स्पर्श के सुख का अभिनय करके) देखो यह सामने ही है।

आनन्दादपरं मोहमानन्दात्मकमूर्च्छामित्याहुः। अत्र क्रियोत्प्रेक्षा। प्रहर्षिणी छन्दः ॥ ३९ ॥

टिप्पणी--**अमृतमयैः**–अमृत+मयट्+विभक्तिः। **जीवयन्**—√जीव+णिच्+शतृ+विभक्तिः। **मोहम्**--√मुह्+घञ्+विभक्तिः।

अपरम्--व्यक्ति जब दुःख के सागर में डूबने लगता है, तब उसकी चेतना समाप्त हो जाती है और वह मूर्च्छित हो जाता है। इसी प्रकार आनन्दातिरेक के समय भी व्यक्ति मूर्च्छित होता है। राम की यह मूर्च्छा सीता के स्पर्श से होनेवाले अद्भुत सुख के कारण हो रही है।

दिष्ट्या--"दिष्टचा वर्धसे"–यह एक मुहावरा है। इसका अर्थ है—तुम्हें बधाई है। राम का अभिप्राय यह है कि—सीता जीवित हैं। अतः वासन्ती, तुम्हें बधाई है।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा तथा विरोधाभास अलङ्कार एवं प्रहर्षिणी छन्द है। छन्द का लक्षण—त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—कथमिव–कैसे। किमन्यत्=और क्या। पुरतः=सामने, आगे॥

वासन्ती--अयि देव रामभद्र[1] ! किमिति मर्मच्छेददारुणैरतिप्रलापैः प्रियसखीविपत्तिदुःखदग्धामपि मां पुनर्मन्दभाग्यां दहसि ?

सीता--अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिरप्रणयसम्भारसौम्यशीतलेन आर्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपि झटिति सन्तापमुल्लाघयता वज्रलेपोपनद्ध इव पर्यस्तव्यापार आसञ्जित इव मेऽग्रहस्तः। (ओसरिदुं इच्छम्मि। एसो उण चिर[2]प्पणअसंभारसोम्मसीअलेण अज्जउत्तप्परिसेण दीहदारुणं वि झत्ति संदावं उल्लाहअन्तेण वज्जलेहावणद्धो विअ परिअद्धवावारो आसंजिओ विअ मे अग्गहत्थो।)

रामः--सखि ! कुतः प्रलापः ?

गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरः
[3]सुधासूतेः पादैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः। 39

सीता--आर्यपुत्र ! स एवेदानीमसि त्वम्। (अज्जउत्त ! सो एव्व दाणिं सि तुमम् ?)

मर्मच्छेददारुणैः=मर्मस्थलको बींधने के कारण कठोर, अतिप्रलापैः=अनर्थक वचनों से, प्रियसखीविपत्तिदुःखदग्धाम्=प्रिय सखी (सीता) की विपत्ति के दुःख से जली हुई।

टीका--वासन्तीति। कथमिव=केन प्रकारेण ?। किमन्यत्=किमपरम् ? पुरतः=समक्षम्। मर्मच्छेददारुणैः--मर्मणः=हृदयाद्यवयवस्य छेदेन= कर्तनेन दारुणैः= कठोरैः, अतिप्रलापैः=अतिशयानर्थकवचोभिः, प्रियसखीविपत्तिदुःखदग्धाम्-प्रियसख्याः सीताया विपत्तिः=विपद् तया यद् दुःखम्=कष्टं तेन दग्धाम्=सन्तप्ताम्, माम्=वासन्तीम्॥

टिप्पणी--कथमिव--वासन्ती के कहने का भाव यह है कि--ऐसी कौन-सी खुशी की बात है ? जिसके कारण आप वधाई दे रहे हैं। किमन्यत्--राम कहते हैं कि दूसरी बात को सोचने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी सखी सीता मिल गई। अतः तुम्हें वधाई दे रहा हूँ। स्पर्शसुखम्--वासन्ती के यह पूछने पर कि यदि सीता मिल गई तो वह कहाँ है ? इस पर रामभद्र कहते हैं कि--देखो यह सामने सीता खड़ी है। राम के ऐसा कहने का आधार सीता के पाणि-पल्लव के स्पर्श से होनेवाले उनके सुख की अनुभूति ही है।

शब्दार्थः--अपसर्तुम्=हटने के लिए, इच्छामि=इच्छा कर रही हूँ, चाह रही हूँ। चिर-प्रणय-संभार-सौम्य-शीतलेन=दीर्घ चिरकालव्यापी प्रेम-समूह के कारण सुखद

---

१. क्वचित् रामभद्र इति नास्ति, २. चिरसब्भावसोम्मसीअलेण (चिरसद्भावसौम्यशीतलेन), ३. चिरं स्वेच्छास्पर्शैः।

वासन्ती—हे महाराज रामभद्र, मर्मस्थल को बींधने के कारण कठोर इन निरर्थक वचनों से प्रिय सखी (सीता) की विपत्ति के दुःख से जली हुई मुझ भाग्य-हीन को आप फिर क्यों जला रहे हैं ?

सीता—मैं यहाँ से हटना चाहती हूँ। किन्तु चिरकालव्यापी प्रेम-समूह के कारण सुखद और शीतल, दीर्घकालीन तथा कठोर सन्ताप को तुरत कम करनेवाले आर्य-पुत्र के स्पर्श से मेरे हाथ की अँगुलियाँ वज्रलेप से जुड़ी हुई-सी, चेष्टाशून्य होकर चिपक-सी गई हैं।

राम—सखी, यह प्रलाप कैसे है ?

पहले विवाह के अवसर पर कङ्कण को धारण करने वाला जो हाथ (मेरे द्वारा) पकड़ा गया था, चन्द्रमा की अमृत-तुल्य शीतल किरणों से जो परिचित है (अर्थात् चन्द्रमा की किरणों के समान जो अह्लादक है)।

सीता—आर्यपुत्र, आप अब भी वही है।

और शीतल, आर्यपुत्रस्पर्शेन=आर्यपुत्र के स्पर्श से, दीर्घदारुणम्=दीर्घकालीन तथा कठोर, सन्तापम्=सन्ताप को, उल्लङ्घयता=कम करने वाले, वज्रलेपोपनद्धः=वज्रलेप से सटाये गये, सेमेण्ट से जोड़े गये, पर्यस्तव्यापारः=व्यापारशून्य, निष्क्रिय, आसञ्जितः=सटा हुआ, जड़ा हुआ, अग्रहस्तः=हाथ का अगला भाग, अँगुलियाँ ॥

टीका—सीतेति। अपसर्तुम्=इतो दूरीभवितुम्, इच्छामि=वाञ्छामि। चिर-प्रणय-संभार-सौम्यशीतलेन—चिरप्रणयस्य=बहुकालव्यापिनः प्रेम्णः संभारेण=समूहेन सौम्यः=आह्लादकरः शीतलश्च=सन्तापापहारकश्च तेन, आर्यपुत्रस्पर्शेन—आर्यपुत्रस्य= प्राणवल्लभस्य रामभद्रस्येत्यर्थः, स्पर्शेन=आमर्शनेन, दीर्घदारुणम्—दीर्घः=आयतः, निरवधिरिति यावत्, अतएव दारुणः=भयङ्करस्तम्, सन्तापम्=विरहजदुःखम्, उल्लङ्घयता=लघूकुर्वता, वज्रलेपोपनद्धः—वज्रलेपेन=दृढलेपविशेषेण उपनद्धः=बद्धः, पर्यस्तव्यापारः—पर्यस्तः=अपगतः व्यापारः=क्रिया यस्य सः, आसञ्जितः=लग्नः, अग्रहस्तः=हस्तस्याग्रभागः, अङ्गुलिभाग इत्यर्थः ॥

टिप्पणी—अप + √सृ + तुमुन्। **उल्लङ्घयता**—उद् + √ लघु + णिच् + शतृ + विभक्तिः। **उपनद्धः**-उप + √नह् + क्त + विभक्त्यादिः। **पर्यस्त०** परि + √अस् + क्त + विभक्त्यादिः। **आसञ्जितः**—आ + √ सञ्ज् + णिच् + क्त + विभक्तिः ॥

अन्वयः—पूर्वम्, परिणयविधौ, कङ्कणधरः, यः, (मया), गृहीतः, सुधासूतेः, अमृतशिशिरैः, पादैः, यः, परिचितः—

राम:—

स एवायं तस्यास्तदि[१]तरकरौपम्यसुभगो
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः ॥ ४० ॥
(इति गृह्णाति ।)

सीता–हा धिक् हा धिक् ! आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः प्रमादो मे संवृत्तः । (हद्धी हद्धी ! अज्जउत्तप्परिसमोहिदाए पमादो मे संवुत्तो ।)

रामः सखि वासन्ति ! [२]आनन्दमीलितः प्रियास्पर्शसाध्वसेन परवानस्मि । तत्त्व[३]मपि धारय माम् ।

वासन्ती—कष्टमुन्माद एव ।

(सीता ससंभ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति ।)

ललितलवलीकन्दलनिभः, तदितरकरौपम्यसुभगः, सः, एव, अयम्, तस्याः, पाणिः, मया, लब्धः ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—पूर्वम्=पहले, परिणयविधौ=विवाह के अवसर पर, कङ्कणधरः=कङ्कण को धारण करने वाला, यः=जो, (मया=मेरे द्वारा), गृहीतः=पकड़ा गया था, सुधासूतेः=चन्द्रमा की, अमृतशिशिरैः=अमृत तुल्य शीतल, पादैः=किरणों से, यः=जो, परिचितः=परिचित है, ललितलवलीकन्दलनिभः=सुकोमललवलीलताके अङ्कुर के सदृश, तदितरकरौपम्यसुभगः=उस (सीता) के दूसरे हाथ की उपमा से सुशोभित, स=वह, वह पूर्वपरिचित, एव=ही, अयम्=यह, तस्याः=उसका, पाणिः=हाथ, मया=मेरे द्वारा, लब्धः=पकड़ा गया है ॥ ४० ॥

टीका—गृहीतो य इति । पूर्वम् =पुरा, परिणयविधौ=विवाहानुष्ठाने, कङ्कणधरः=कङ्कणम्=माङ्गलिकसूत्रं धरतीति=स्वीकरोतीति तादृशः, यः=यः करः, मयेति शेषः, गृहीतः =धृतः, सुधासूतेः=सुधायाः=अमृतस्य सूतिः=उत्पत्तिर्यस्मात्तस्य, चन्द्रमस इत्यर्थः, अमृतशिशिरैः–अमृतमिव=सुधामिव शिशिरैः=शीतलैः, पादैः=किरणैः "पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः" यः=करः, परिचितः=परिज्ञातः, आसीदिति शेषः, ललितलवलीकन्दलनिभः–ललितम्=सुकुमारं यत् लवलीकन्दलम्=लवलीलताङ्कुरः तेन सदृशः=तुल्यः, "निभसंकाशनीकाश-प्रतीकाशोपमादयः" इत्यमरः, अस्वपदविग्रहो नित्यनिमासः, तदितरकरौपम्यसुभगः–तस्मात्=परिणयविधौ गृहीतादित्यर्थः, इतरः=अन्यः, अथवा तस्याः सीताया इतरः=अपरः, करः=हस्तः तेन औपम्यम्=तुलना तेन शुभगः=शोभनः, वामकरसादृश्यं दक्षिणकरस्य तथा दक्षिणकरसादृश्यं सव्यकरस्य, इत्थं सीताकरद्वयसादृश्यं जनान्तरकरैः सह नास्तीति व्यतिरेको व्यज्यते, स एवायम् =प्राग्गृहीत एवाऽयम्, तस्याः=सीतास्याः, पाणिः=करः, मया=रामेण, लब्धः=आसादितः, न तु अन्यदीय इति भावः । अत्र श्लेष उपमा चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ॥ ४० ॥

---

१. तुहिननिकरौपम्य, २. आनन्दनिमिलितेन्द्रियः, ३. तत्त्वं तावदेनां धारय ।

राम—सुकोमल लवलीलताके अङ्कुर के सदृश, उस (सीता) के ही दूसरे हाथ की उपमा से सुशोभित वह पूर्वपरिचित ही यह उसका हाथ मेरे द्वारा पकड़ा गया है ॥ ४० ॥

(ऐसा कहकर सीता का हाथ पकड़ते हैं) ।

विशेषः—गृहीतो यः परिणयविधौ–हिन्दू विवाह-पद्धति के अनुसार विवाह के समय कन्या का पिता वर को कन्या का हाथ पकड़ाता है । इसीलिये विवाह को पाणि-ग्रहण-संस्कार भी कहते हैं । पाणि-ग्रहण के बाद कन्या के भरण-पोषण एवं रक्षा का सारा भार वर के कन्धे पर आ जाता है ।

तदितरकरौपम्य०—कविवर भवभूति सीता के दक्षिण कर की उपमा ढूढने निकले । किन्तु त्रिलोकी में उसकी तुलना की कोई वस्तु मिली नहीं । अतः हार मान कर उन्होंने कह दिया कि सीता का दाहिना हाथ उसके बाँये हाथ की तरह सुकुमार, शीतल और सुन्दर है । कहने का भाव यह है कि सीता के अंगों की तुलना सीता के ही अंगों से हो सकती है ।।४०।।

सीता—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है ! आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित हो जाने के कारण मुझ से असावधानी हो गई ।

राम—सखी वासन्ती, आनन्द के कारण बन्द आँखों वाला मैं प्रिया (सीता) के स्पर्श से उत्पन्न विक्षोभ के कारण परवश हो गया हूँ । अतः तुम भी मुझे सभालो (गिरने से बचाओ) ।

वासन्ती—खेद है, यह उन्माद (उन्मत्तता) ही है ।

(सीता जल्दी से हाथ खींच कर वहाँ से दूर हो जाती है) ।

टिप्पणी—गृहीतः—√ग्रह + क्त + विभक्तिः । **परिणय०**—परि + √नी + अच् + विभक्त्यादिः । **परिचितः**–यहाँ परिचित का अर्थ है—चन्द्रमा की किरणों के तुल्य गुणों वाला अर्थात् आह्लादक ।

औपम्य०—उपमा + भावे ष्यञ् + विभक्त्यादिः । **कन्दलनिभः**–यहाँ सदृश के अर्थ में निभ के साथ समास हुआ है ।

इस श्लोक में उपमा तथा श्लेष अलङ्कार एवं शिखरिणी छन्द है । छन्द का लक्षण—"रसै रुद्रै श्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी" ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः–आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित, प्रमादः = असावधानी, त्रुटि, गलती । आनन्दमीलितः=आनन्द के कारण बन्द, प्रियास्पर्शसाध्वसेन=प्रिया (सीता) के स्पर्श से उत्पन्न विक्षोभ से, परवान्=परवश । उन्मादः= उन्माद, उन्मत्तता, पागलपन, ससम्भ्रमम्=वेग से, घबराहट से, आक्षिप्य=खींच कर, अपसर्पति=हट जाती है, दूर हो जाती है ॥

टीका—सीतेति । आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः–आर्यपुत्रस्य = पत्युःश्रीरामचन्द्रस्य स्पर्शेन=आमर्शनेन मोहितायाः=विवेकशून्यायाः, प्रमादः=अनवधानता, आनन्दमीलितः–

रामः—[1]धिक् ! प्रमादः ।

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो[2] जडात्परिभ्रष्टः ।
परिकम्पिनः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन् ॥ ४१ ॥

सीता—हा धिक् हा धिक् ! अद्याप्यनुबद्धबहुघूर्णमानवेदनं न संस्थापयाम्यात्मानम् । (हद्धी हद्धी ! अज्जवि अणुबद्धबहुघुम्मन्तवेअणं ण संठावेमि अत्ताणम् ।)

तमसा—([3]सस्नेहकौतुकस्मितं निर्वर्ण्य ।)

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता प्रियस्पर्श[4]सुखेन वत्सा ।
मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ॥ ४२ ॥

आनन्देन=सुखेन मीलितः=मुद्रितलोचनः, प्रियास्पर्शसाध्वसेन–प्रियायाः=सीतायाः स्पर्शेन=आमर्शनेन यत् साध्वसम्=शृङ्गारजन्यं भयं तेन, ("भीतिर्भीः साध्वसं भयम्") इत्यमरः, ससंभ्रम्=सवेगम्, (संभ्रमो वेगहर्षयोः इत्यमर), हस्तम्=करम्, आक्षिप्य=आकृष्य, अपसर्पति=किञ्चिद्दूरं गच्छति ।

टिप्पणी—मोहिता—√मुह् + णिच् + क्त + टाप् + विभक्तिः । प्रमादः–प्र + √मद् + घञ् + विभक्त्यादिः । संवृत्तः–सम् + √वृत् + क्त + विभक्तिः ।

साध्वसेन—साधु = अत्यन्तम् अस्यते = निक्षिप्यते मनोऽनेनेति, साधु + √अस् + अच् । विभक्तिः ।

अन्वयः—जडः, प्रकम्पी, स्विद्यन्, तस्याः, सः, करपल्लवः, जडात्, परिकम्पिनः, स्विद्यतः, मम, करात्, सहसा, एव, परिभ्रष्टः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—जडः=निश्चल, प्रकम्पी=काँपता हुआ, स्विद्यन्=स्वेदयुक्त, तस्याः=उस (सीता) का, सः=वह, करपल्लवः=पल्लव की तरह हाथ, जडात्=निश्चल, परिकम्पिनः=काँपते हुए, स्विद्यतः=पसीना से युक्त, मम=मेरे, करात्=हाथ से, सहसा=अचानक, एव=ही, परिभ्रष्टः=छूट गया ॥ ४१ ॥

टीका—करपल्लव इति । जडः=स्तब्धः, प्रकम्पी=कम्पयुक्तः, स्विद्यन्=स्वेदयुक्तः, तस्याः=सीतायाः, सः=पूर्वानुभूतः, करपल्लवः=पाणि-किसलयम्, जडात्=स्तब्धात्, परिकम्पिनः=कम्पयुक्तात्, स्विद्यतः=प्रस्वेदयुक्तात्, मम=रामस्येत्यर्थः, करात्=हस्तात्, सहसा=झटिति, एव=हि, परिभ्रष्टः=परिच्युतः, अभूदिति शेषः । अत्र काव्य-लिङ्गमुपमा चालङ्कारौ । आर्या छन्दः ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—जडः–स्तब्ध, निश्चेष्ट, संज्ञाहीन । राम के स्पर्श के कारण सीता का हाथ स्तब्ध, पसीनायुक्त हो गया था । जो स्थिति सीता के हाथ की थी वही स्थिति सीता के हाथ का स्पर्श पाने के बाद राम के हाथ की भी थी । दोनों के तीन विशेषण समान हैं ।

---

१. हा धिक्, २. जडात्मनः, ३. सस्नेहहासकौतुकं; सस्नेहं, ४. स्पर्शवशेन बाला।

राम– हाय धिक्कार है, असावधानी हो गई—

निश्चल, काँपता हुआ, स्वेदयुक्त, उस (सीता) का वह कोपल की तरह हाथ निश्चल, काँपते हुए और पसीना से युक्त मेरे हाथ से अचानक ही छूट गया ॥४१॥

सीता—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है! निरन्तर विद्यमान, अत्यधिक तथा क्षोभ-जनक पीडा से युक्त अपने आपको मैं अभी तक नहीं सभाल पा रही हूँ।

तमसा—(स्नेह, कौतूहल तथा मुस्कराहट के साथ ध्यान से देखकर)—

बेटी सीता प्रियतम के स्पर्श से होनेवाले सुख के कारण वायु से कम्पित, वर्षाके नवीन जल से सिक्त एवं खिली हुई कलियों से युक्त कदम्ब की डाल की तरह स्वेद, रोमाञ्च और कम्पन युक्त अङ्गोंवाली हो गई है ॥ ४२ ॥

परिभ्रष्टः—परि + √भ्रंश + क्त + विभक्तिः। **परिकम्पिनः**—परि + √कम्प् + णिनि + पञ्चमीविभक्तिः। **स्विद्यतः**— √स्विद् + शतृ + पञ्चमीविभक्तिः।

इस श्लोक में हाथ छूटने के प्रति जड़ता, कम्पनशीलता और स्वेदयुक्तता हेतु हैं। अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। करपल्लव में लुप्तोपमा है। यहाँ विप्रलम्भ श्रृङ्गार रस है। सीता और राम दोनों में पारस्परिक स्पर्श के कारण जडता, प्रकम्प तथा स्वेद इन सात्त्विक भावों का वर्णन है। यहाँ श्रृङ्गार प्रधान रस करुण का पोषक है।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है आर्या—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि, अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—अद्यापि = अभी तक, अनुबद्धबहुघूर्णमानवेदनम्=निरन्तर विद्यमान, अत्यधिक तथा क्षोभजनक पीडा से युक्त, संस्थापयामि=सभाल पा रही हूँ, आत्मानम्=अपने आपको।

टीका—सीतेति। अद्यापि=अधुनापि, अनुबद्धबहुघूर्णमानवेदनम्—अनुबद्धा = उत्पन्ना बह्वी = अधिका घूर्णमाना=उद्गच्छन्ती वेदना=दुखं यस्य तम्, संस्थापयामि= न स्थिरं कर्तुं पारयामि, आत्मानम्=स्वम् ॥

टिप्पणी—**अनुबद्ध०**–अनु + √बन्ध् + क्त + विभक्त्यादिः। **घूर्णमान०**— √घूर्ण + लट् शानच् + विभक्तिः। **संस्थापयामि**—सम् + √स्था + णिच् + लट्० ॥

अन्वयः—वत्सा, प्रियस्पर्शसुखेन, मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता, स्फुटकोरका, कदम्बयष्टिः, इव, सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी, जाता ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—वत्सा=बेटी, पुत्री सीता, प्रियस्पर्शसुखेन=प्रियतम से स्पर्श से होने वाले सुख के कारण, मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता=वायु से कम्पित और नवीन वर्षा-जल से सिक्त, स्फुटकोरका=खिली हुई कलियों से युक्त, कदम्बयष्टिः=कदम्ब की डाल, इव=जैसी, तरह, सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी=स्वेद, रोमाञ्च और कम्पन युक्त अङ्गों वाली, जाता=हो गई है ॥ ४२ ॥

सीता—(स्वगतम्) [1]अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषा मंस्यत 'एष परित्याग एषोऽभिषङ्ग' इति। (अवसेन एदेण अत्ताणएण लज्जाविदह्मि भअवदीए तमसाए। किंति किल एसा मण्णिस्सदि-'एसो परिच्चाओ, एसो अहिसङ्गे'त्ति।)

रामः—(सर्वतोऽवलोक्य।) हा! कथं नास्त्येव। नन्वकरुणे वैदेहि!

सीता—अकरुणास्मि, यैवंविधं त्वां पश्यन्त्येव जीवामि। (अकरुणह्मि, जा एव्वंविहं तुमं पेक्खन्दी एव्व जीवेमि।)

रामः—[2]क्वासि प्रिये! देवि! प्रसीद प्रसीद। न मामेवंविधं परित्यक्तुमर्हसि।

सीता—अयि आर्यपुत्र! विप्रतीपमिव। (अयि अज्जउत्त! [3]विप्पदीवं विअ।)

वासन्ती—देव! प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयाति[4]भूमिं गतमात्मानम्। कुत्र मे प्रियसखी?

टीका--सस्वेदेत्यादिः। वत्सा=पुत्री, प्रियस्पर्शसुखेन--प्रियस्य=वल्लभस्य रामस्येत्यर्थः, स्पर्शसुखेन=आमर्शनानन्देन, मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता—मरुता=वायुना नवाम्भसा=नूतनजलेन, आषाढजलेनेत्यर्थः, यथाक्रमं परिधूता=परिकम्पिता सिक्ता=कृतसेका च, स्फुटकोरका--स्फुटाः=किसिताः कोरकाः-कालिकाः ("कलिका कोरकः पुमान्" इत्यमरः), यस्याः सा, कदम्बयष्टिः--कदम्बस्य यष्टिः=शाखा, इव=यथा, सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी--सस्वेदानि=घर्मजलयुक्तानि रोमाञ्चितानि=पुलकितानि कम्पितानि=कम्पयुक्तानि अङ्गानि=शरीरावयवाः यस्याः सा तादृशी, जाता=सम्पन्ना। अत्रोपमा यथासंख्यं चालङ्कारौ॥ ४२॥

टिप्पणी-निर्वण्य-निर्+ √वर्ण्+णिच्+ल्यप्। रोमाञ्चित०-रोमाञ्चाः सञ्जाता अस्य इदि रोमाञ्चितम्,। रोमाञ्च+इतच्+विभक्तिः। परिधूत०-परि+ √धू+क्त+विभक्तिः। सिक्त०-- √सिच्+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में इव के द्वारा उपमा अलङ्कार है। मरुत् का परिधूत और नवाम्भः का सिक्त के साथ सम्बन्ध होने से यथासंख्य अलङ्कार है। यहाँ सीता के तीन सात्त्विक भावों—स्वेद, रोमाञ्च और कम्प का वर्णन किया गया है। सीता के शरीर की तुलना कदम्ब की डाली से की गई है। सीता के स्वेद की नवाम्भः से, रोमाञ्च की कली से और कम्प की मरुत्-परिधूत से तुलना समझनी चाहिये।

---

१. अवसं गएण (अवशं गतेन), २. क्वासि देवि प्रसीद, ३. विवरीदं विअ एदम् (विपरीतमिवेतत्), ४. अतिभूमिगतविप्रलम्भमात्मानम्।

सीता—(अपने आप) परवश अपनी इस आत्मा ने मुझे भगवती तमसा के द्वारा लज्जित करवाया है। यह (भगवती तमसा) क्या सोचेंगी—"यह परित्याग और यह आसक्ति ?"

राम—(चारों ओर देखकर) हाय, क्या (सीता) है ही नहीं। हे परम निष्ठुर सीता,

सीता—अवश्य ही मैं निष्ठुर हूँ, जो इस प्रकार की अवस्था में पड़े हुए आपको देखती हुई भी जीवित हूँ।

राम—प्रिये सीता, कहाँ हो ? हे देवी प्रसन्न हो ओ, प्रसन्न हो ओ। इस प्रकार की अवस्था में पड़े हुए मुझे छोड़ना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।

सीता—हे आर्यपुत्र, यह बात विपरीत-सी है।

वासन्ती—महाराज, प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। अपने ही लोकातिशायी धैर्य के द्वारा (शोक की) पराकाष्ठा को प्राप्त हुए अपने आपको संभालिये। मेरी प्रिय सखी (सीता) यहाँ कहाँ है ?

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द है—उपजाति। उपजाति के लक्षण के लिये देखिये—इसी अंक के श्लोक ३५ की टिप्पणी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—अवशेन = परवश, एतेन=इस, आत्मना = अपनी आत्मा ने, लज्जापिता=लज्जित करवाया है। अभिषङ्गः=आसक्ति। अकरुणे=निष्ठुर ॥

टीका—सीतेति। अवशेन=परवशेन, एतेन = अमुना, आत्मना = शरीरेण, ("आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च।" इत्यमरः), लज्जापिता= लज्जाम्=व्रीडाम् आपिता=प्रापिता, अस्मि, स्वेदाद्युत्पत्तेरिति वाक्यशेषः। अभिष्वङ्गः= आसक्तिः, अनुरागः। अकरुणे–नास्ति करुणा=दया यस्यां सा अकरुणा तत्सम्बुद्धौ हे अकरुणे=हे निष्ठुरे ॥

टिप्पणी—**अवशेन**—सीता के कहने का भाव यह है कि मैं प्रियतम राम को देखकर परवश हो गई हूँ। यही कारण है कि अपने भावों को रोक न सकी। अतः भगवती तमसा ने मुझे लज्जित कर दिया है।

लज्जापिता—लज्जा+णिच्+क्त+टाप्+विभक्तिः।

किमिति०—सीता सोच रही हैं कि तमसा क्या सोचेंगी। राम ने सीता का परित्याग किया, सीता परित्यक्ता हुईं। किन्तु फिर भी एक-दूसरे के लिये इस प्रकार मर रहे हैं। त्याग और फिर इस प्रकार की छटपटाहट—ये दोनों बेमेल बातें हैं।

शब्दार्थः—एवंविधम्=इस प्रकार की अवस्था में पड़े हुए। विप्रतीपमिव= विपरीत-सी, उल्टी-सी। लोकोत्तरेण=लोकातिशायी, असाधारण; संस्तम्भय=संभालिये,

रामः—व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि न पश्येत् ? अपि खलु स्वप्न एष स्यात् ? न चास्मि सुप्तः। [1]कुतो रामस्य निद्रा ? सर्वथापि स एवैष भगवाननेकवारपरि[2]कल्पितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

सीता—मयैव दारुणया विप्रलब्ध आर्यपुत्रः। (मए एव्व दारुणाए विप्पलद्धो अज्जउत्तो।)

वासन्ती—देव ! पश्य पश्य।

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-
स्ते चैते पुरतः पिशाचवदनाः कङ्कालशेषाः खराः।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां [3]चलन्तीं वह-
न्नन्तर्व्यापृ[4]तविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः॥ ४३॥

अतिभूमिम्=पराकाष्ठा को, गतम्=प्रप्त हुए। व्यक्तम्=स्पष्ट ही॥

टीका—राम इति। एवंविधम्=एवंप्रकारम्, त्वद्वियोगे विलपन्तमित्यर्थः। विप्रतीपमिव–वि=विशेषेण प्रतीपमिव=प्रतिकूलमिव। लोकोत्तरेण–लोकेषु उत्तरम्=श्रेष्ठं तेन, लोकोत्तरेण=लोकातिशायिना, संस्तम्भय=अवष्टब्धं कुरु, अतिभूमिम्=पराकाष्ठाम्, गतम्=प्राप्तम्। व्यक्तम्=स्पष्टम्।

टिप्पणी—विप्रलम्भः–वि+प्र+√लभ्+घञ्+विभक्तिः। **अनुबध्नाति**=पीछा कर रहा है। अनु+√बन्ध्+लट् प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्। **विप्रलब्धः**–वि+प्र+√लभ्+क्त+विभक्तिः॥

अन्वयः—जटायुषा, विघटितः, अयम्, पौलस्त्यस्य, कार्ष्णायसः, रथः; एते, च, ते, पुरतः, पिशाचवदनाः, कङ्कालशेषाः, खराः; खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिः, अरिः, चलन्तीम्, सीताम्, वहन्, अन्तर्व्यापृतविद्युत्, अम्बुदः, इव, इतः, द्याम्, अभ्युदस्थात्॥ ४३॥

शब्दार्थः—जटायुषा=जटायु के द्वारा, विघटितः=तोड़ा गया, अयम्=यह, पौलस्त्यस्य=रावण का, कार्ष्णायसः=उत्तम काले लोहे का बना हुआ, रथः=रथ, (अस्ति=है)। च=यह पादपूर्ति के लिये आया हुआ है, ते=तुम्हारे, पुरतः=सामने, पिशाचवदनाः=पिशाचों की तरह मुँहवाले, कङ्कालशेषाः=अस्थि-पञ्जर मात्र से अवशिष्ट, (एते=ये,) खराः=गधे, (सन्ति=हैं); खड्गच्छिन्न-जटायुपक्षतिः=तलवार से जटायु के पंख को काटने वाला, काट कर, अरिः=शत्रु, चलन्तीम्=

---

१. निद्रा स्यात्; अथ वा कुतोरामस्य स्वप्नः, २. परिकल्पनानिर्मितो, ३. ज्वलन्तीम्, ४. व्याकुल।

राम—स्पष्ट है कि (सीता यहाँ) नहीं है। अन्यथा वासन्ती भी उसे क्यों नहीं देख पाती ? तो क्या यह स्वप्न ही है ? किन्तु मैं सोया हुआ भी नहीं हूँ। राम को भला निद्रा कहाँ ? अवश्य ही शक्तिशाली तथा कई बार विचार में आया हुआ वही यह भ्रम बारम्बार मेरा पीछा कर रहा है।

सीता—मुझ निष्ठुर के द्वारा ही आर्यपुत्र को धोखा दिया गया है।

वासन्ती—महाराज, देखिये देखिये—

जटायु के द्वारा तोड़ा गया यह रावण का उत्तम काले लोहे का बना हुआ रथ (है)। तुम्हारे सामने पिशाचों की तरह मुँहवाले, अस्थि-पञ्जरमात्र से अवशिष्ट ये गधे हैं। तलवार से जटायु के पंख को काट कर शत्रु (रावण) छटपटाती हुई सीता को लेकर, भीतर चमकती हुई बिजली से युक्त मेघ की भाँति, यहाँ से आकाश में उड़ गया था ॥ ४३ ॥

छटपटाती हुई, सीताम्=सीता को, वहन्=लेकर, अन्तर्व्यापृतविद्युत्=भीतर चमकती हुई बिजली से युक्त, अम्बुद इव=मेघ की भाँति, इतः=यहाँ से, द्याम्=आकाश में, अभ्युदस्थात्=उड़ गया था ॥ ४३ ॥

टीका—पौलस्त्यस्येति। जटायुषा=तन्नामकेन गृध्रराजेन, विघटितः=प्रध्वंसितः, पौलस्त्यस्य–पुलस्त्यगोत्रापत्यस्य रावणस्य, पुलस्त्यो हि ब्रह्मणः पुत्रेषु चतुर्थ आसीत्, तस्य विश्रवा नाम एकः पुत्र आसीत्, रावणस्तु तस्यैव पुत्र इति पुलस्त्यस्य नप्ता रावण इति पौराणिकी वार्ता, कार्ष्णायसः–कृष्णं च तदयः कृष्णायः=कृष्णवर्णलौहं तेन निर्वृत्तः कार्ष्णायसः=कृष्णलोहमय इत्यर्थः, "तेन निर्वृत्तम्" इत्यण्, रथः= स्यन्दनः, अस्तीति क्रियाशेषः; एते=इमे, च, ते=तव, पुरतः, समक्षम्, पिशाच-वदनाः–पिशाचस्येव वदनम्=मुखं येषां ते, कङ्कालशेषाः–कङ्कालाः=अस्थिपञ्जराणि शेषाः=अवशिष्टा येषान्ते, मांसानां क्रव्याद्भिः पूर्वं भक्षितत्वादिति भावः; खराः= गर्दभाः, रावणरथवाहका इति यावत्, सन्तीति क्रियाशेषः; खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिः– खड्गेन=कृपाणेन छिन्ने=कृत्ते, जटाः=पक्षमूलम् एव आयुर्यस्य सः, जटया सह यातीति जटायुर्वा, "विद्यादायुं तथायुष" इति द्विरूप-कोशादुकारान्तः सकारान्तश्च जटायु-शब्दः, जटायोः=जटायुषः पक्षती=पक्षमूले जटायुपक्षती ("स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्" इत्यमरः) खड्गच्छिन्ने जटायुपक्षती येन स तादृशः, अरिः=शत्रुः, रावण इति यावत्, चलन्तीम्=मोक्षार्थं प्रयतमानाम्, सीताम्=जानकीम्, वहन्=नयन्, अन्तर्व्यापृतविद्युत्– अन्तः=मध्ये व्यापृता=चलन्ती विद्युत्=तडित् यस्य सः, अम्बुद इव=घन इव, इतः= अस्मात् स्थानात्, द्याम्=आकाशम्, अभ्युदस्थात्=उत्पतितः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४३ ॥

टिप्पणी—पौलस्त्यस्य—रावण पुलस्त्य का पौत्र था। पुलस्त्य सप्तर्षियों में

सीता—(सभयम्) आर्यपुत्र ! तातो व्यापाद्यते। तस्मात् परित्रायस्व परित्रायस्व। अहमप्यपह्रिये। (अज्जउत्त ! तादो वावादीअदि। ता परित्ताहि परित्ताहि। अहं वि अवहरिज्जामि।)

रामः—(सवेगमुत्थाय।) आः पाप ! तातप्राणसीतापहारिन्[1] ! लङ्कापते ! क्व [2]यास्यसि ?

वासन्ती—अयि देव ! राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो ! [3]किमद्यापि ते मन्युविषयः ?

सीता—अहो ! उद्भ्रान्तास्मि। (अह्महे ! उब्भत्तह्मि।)

रामः—[4]अन्य एवायमधुना विपर्ययो वर्तते।

एक थे। सप्तर्षि ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं। पुलस्त्य का पुत्र विश्रवस् (विश्रवाः) था। रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण इसी विश्रवस् के पुत्र थे।

जटायुषा—उकारान्त जटायु तथा सान्त जटायुस् ये दोनों शब्द जटायु के लिये प्रयुक्त होते हैं। प्रथम पंक्ति में जटायुस् शब्द का और तृतीय पंक्ति में जटायु शब्द का प्रयोग किया गया है।

विघटितः—वि + √घट् + क्त + विभक्तिकार्यम्। **काष्र्णायसः**—कृष्णायस + अण् + विभक्तिः। **पिशाच०**—पिशितम् अश्नाति इति पिशाचः, पिशित + √अश् + अण् + विभक्तिः। पृषोदरादि गण में होने से पिशित को पिश और अश् को अच् हो जाता है। पिशित = कच्चा मांस, अश् = खाने वाला।

चलन्तीम्—√चल् + शतृ + ङीप् + द्वितीयैकवचने विभक्तिकार्यम्। **वहन्**—√वह् + शतृ + विभक्तिः।

विद्युत्०—विशालकाय कृष्णवर्ण का रावण काले मेघ की भाँति था। उसकी गोद में छटपटाती हुई गौरवर्णा सीता कौंधती हुई बिजली की तरह मालूम पड़ रही थीं।

अभ्युदस्थात्—'अभ्युदस्थात्' में 'अभि' यह अलग पद है। यह 'उदस्थात्' इस क्रियापद का विशेषण है। नास्ति भीः = भीतिः यत्र तत् अभि=भयरहितं यथा स्यात्तथेत्यर्थः, उदस्थात् = उत्पपात।

"अम्बुद इव" में इव के द्वारा उपमा अलङ्कार है। यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित। छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४३ ॥

---

१. ०हारिन् लङ्कापते, २. यासि, यासि तिष्ठ तिष्ठ, ३. अद्यापि, ४. अन्वर्थ एवायमधुना प्रलापो वर्तते।

सीता—(भय पूर्वक) आर्यपुत्र, तात (जटायु) मारे जा रहे हैं। अतः बचाइये। मैं भी हरण की जा रही हूँ।

राम—(जल्दी से उठ कर) अरे पापी, तात (जटायु) के प्राणों और सीता का अपहरण करने वाले, लङ्कापति (रावण), कहाँ (बचकर) जाओगे ?

वासन्ती—हे महाराज, राक्षस कुल के विनाश के लिये धूमकेतु, क्या आज भी आपके क्रोध का विषयभूत (रावण जीवित) है ?

सीता—ओह, मैं बहुत घबरा गई हूँ।

राम—दूसरा ही इस समय परिवर्तन उपस्थित हो गया है।

शब्दार्थः--तात=पिता जी, व्यापाद्यते=मारे जा रहे हैं। अपह्रिये=हरण की जा रही हूँ। तातप्राणसीतापहारिन्=तात (जटायु) के प्राणों और सीता का अपहरण करने वाले। राक्षस-कुलप्रलयधूमकेतो=राक्षस कुल के विनाश के लिये धूम-केतु, अद्यादि=अभी, अब भी, मन्युविषयः=क्रोध का विषयभूत (रावण)। विपर्ययः= परिवर्तन ॥

टीका--सीतेति। तातः=पितृतुल्यः, जटायुरित्यर्थः, श्वशुरस्य दशरतस्य मित्र-त्वाज्जटायुषि सीताया इत्यमुक्तिः। व्यापाद्यते=हन्यते। अपह्रिये=अपहृता भवामि। तातप्राण-सीतापहारिन्–तातस्य=जनकतुल्यस्य जटायुषः प्राणान्=असून् सीतां च= जानकीं च अपहरतीति तच्छीलस्तत्सम्बुद्धौ। राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो–राक्षसकुलस्य= रावणादिरक्षोवंशस्य प्रलयः=विनाशः तस्मिन् धूमकेतो=धूमकेतुनामकग्रहसदृश, यद्वा धूमकेतो=अग्ने, अद्यापि=अधुनापि, ते=तव, मन्युविषयः—मन्योः=क्रोधस्य विषयः= आलम्बनम्, विपर्ययः=सीतावियोगरूपविपर्यासः ॥

टिप्पणी--**तातो व्यापाद्यते**—जटायु और रावण का प्रसङ्ग उपस्थित होते ही सीता की मनोदशा ऐसी हो जाती है मानो इसी समय जटायु का वध किया जा रहा है और उनका हरण हो रहा है।

धूमकेतुः--धूमकेतु को लोकभाषा में पुच्छलतारा कहते हैं। इसके उदित होने पर, जहाँ यह दिखलाई पड़ता है वहाँ, विनाश की आशंका की जाती है। राम राक्षस-कुल के लिये धूमकेतु हैं अर्थात् विनाशक हैं।

मन्युविषयः--राम के क्रोध का विषय पापी रावण था। उसका वंश के सहित विनाश हो गया। फिर आप क्रोध किसके ऊपर कर रहे हैं—यह अभिप्राय है वासन्ती का।

उपायानां भावादविर[1]लविनोदव्यतिकरै-
विमर्दैर्वीराणां [2]जनितजगदत्यद्भुतरसः ।
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्
[3]कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु [4]प्रविलयः ।। ४४ ।।

सीता—[5]बहुमानितास्मि पूर्वविरहे । निरवधिरिति हा ! हतास्मि ।
(बहुमाणिदह्मि पुव्वविरहे । णिरवधित्ति हा ! हदह्मि ।)

अन्वयः--उपायानाम्, भावात्, अविरलविनोदव्यतिकरैः, वीराणाम्, विमर्दैः, जनितजगदत्यद्भुतरसः, मुग्धाक्ष्याः, सः, वियोगः, खलु, रिपुघातावधिः, अभूत्; कटुः, तूष्णीम्, सह्यः, अयम्, प्रविलयः, तु, निरवधिः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—उपायानाम्=उपायों के, भावात्=होने से, अविरलविनोदव्यतिकरैः=निरन्तर विनोद के साधन स्वरूप, (सुग्रीव आदि) वीराणाम्=वीरों के, विमर्दैः=संग्रामों से, जनितजगदत्यद्भुतरसः=संसार में अत्यधिक अद्भुत रस को उत्पन्न करने वाला, मुग्धाक्ष्याः=मनोहर आँखों वाली (सीता) का, सः=वह, वियोगः=वियोग, खलु=निश्चय ही, रिपुघातावधिः=शत्रुओं के वध तक ही रहने वाला, अभूत्=था, कटुः=तीक्ष्ण, तूष्णीम्=चुपचाप, सह्यः=सहने योग्य, अयम्=यह, प्रविलयः=वियोग, तु=तो, निरवधिः=निःसीम है ॥ ४४ ॥

टीका—उपायानामिति । उपायानाम्=सैन्यसंनाह-सेतुबन्धादिसाधनानाम्, भावात्=सत्त्वात्, अविरलविनोदव्यतिकरैः—अविरलाः=संतताः विनोदानाम्=दुःख-विस्मरणहेतूनां व्यतिकराः=सम्बन्धा येषु तथोक्ताः तथाविधैः, वीराणाम्=सुग्रीव-प्रभृतीनां विमर्दैः=परस्परसम्प्रहारैर्जनितः=उत्पादितः जगताम्=लोकानाम् अत्यद्भुत-रसः=वीरसमयरसो येनेति तथोक्तः, मुग्धाक्ष्याः—मुग्धे=मनोहरे अक्षिणी=नेत्रे यस्याः सा तस्याः, सः=पूर्वकालिकः, वियोगः=विरहः, खल्विति निश्चये, रिपुघातावधिः—रिपोः=शत्रोः घातः=वधः अवधिः=सीमा यस्य तादृशः रावणसंघातपर्यन्तोऽभूदित्यर्थः, कटुः=क्रूरस्तीक्ष्णो वा, तूष्णीम्=मौनम्, जोषंभावेनेत्यर्थः, सह्यः=सहनीयः, अयम्=एषः, प्रचलित इति यावत्, इदनीन्तन इति भावः, प्रविलयः=वियोगः, तु, निर-वधिः—निर्गतोऽवधिर्यस्य स निरवधिः=यावज्जीवनभावीत्यर्थः । अत्र काव्यलिङ्ग-व्यतिरेकश्चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ।। ४४ ।।

टिप्पणी—अविरल०—कई पुस्तकों में 'अविरल' के स्थान पर 'अविरत' पाठ मिलता है । दोनों का अर्थ समान ही है । निर्णयसागर के अनुसार यहाँ "अविरल" यह पाठ स्वीकार किया गया है ।

---

१. अविरत०, २. जगति जनितात्यद्भुतरसः ३. कथं, ४. त्वप्रतिविधः, प्रविरहः, •रिदानीं तु विरहः, ५. निरवधिरिति हा हतास्मि मन्दभागिनी ।

उपायों के होने के कारण, निरन्तर विनोद के साधनस्वरूप (सुग्रीव आदि) वीरों के संग्रामों से संसार में अद्‌भुत रस को उत्पन्न करने वाला, मनोहर आँखों वाली सीता का वह पूर्व वियोग निश्चय ही शत्रुओं के वध तक ही रहने वाला था; किन्तु तीक्ष्ण चुपचाप सहने योग्य (वर्तमान कालिक) यह वियोग तो निःसीम है ।। ४४ ।।

विशेष—श्रीराम जब वनवास की अवधि बिता रहे थे उस समय रावण ने सीता का हरण किया था। राम के लिये सीता का वह वियोग भी असह्य था। किन्तु उस समय सीता को वापस पाने के सेना आदि बहुत से उपाय थे। मनोविनोद के साधन सुग्रीव आदि मित्र थे। उस वियोग की सीमा थी रावण का वध। परन्तु यह वियोग चुपचाप अकेले सहन करने के योग्य है। इसके विषय में किसी से बात भी नहीं की जा सकती। यह निःसीम भी है। अतः पूर्व वियोग की अपेक्षा इसकी असह्यता शतगुणा अधिक है ॥ ४४ ॥

सीता—पहले के विरह में मैं बहुत सम्मानित हुई हूँ। (यह वियोग) असीम है—इस वचन को सुन कर मैं मारी गई।

व्यतिकरैः—व्यतिकर का अर्थ घटना और सम्बन्ध–दोनों ही यहाँ लग सकते हैं। **जनित०**—√जन् + णिच् + क्त + विभक्तिः। **मुग्धाक्ष्याः**—मुग्ध + अक्षि + षच् (अ) + ङीष् + विभक्तिः। **सह्यः**—√सह् + यत् + विभक्तिः।

निरवधिः—राम के कहने का भाव यह है कि पूर्व वियोग में सीता जीवित थीं। शत्रु रावण का वध होने पर वह प्राप्त हो गई थीं। किन्तु इस बार असहाय सीता अवश्य ही जंगल में मर गई होगी। अतः यह वियोग निरवधिक है।

प्रथम तीन चरणों में पूर्ववियोग की सह्यता तथा अवधि के कारणों का उल्लेख होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। पूर्व की अपेक्षा वर्तमान दुःख अधिक कष्टप्रद बतलाया गया है। अतः व्यतिरेक अलङ्कार भी है।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—शिखरिणी। छन्द का लक्षण—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—बहुमानिता=बहुत सम्मानित हुई, अस्मि=हूँ, पूर्वविरहे=पहले के विरह में, निरवधिः=असीम, इति=इस वचन को सुनकर, हता=मारी गई ॥

टीका—सीतेति। बहुमानिता=अतिसम्मानिता, अस्मि=आसमित्यर्थः, पूर्वविरहे=प्राक्तनवियोगे, निरवधिः=अवधिशून्यः, इति=इति कथनेन, हताऽस्मि=मारिताऽस्मि ।।

रामः—कष्टं भोः !

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वथा,
प्रज्ञा जाम्बवतो[४] न यत्र, न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः,
सौमित्रेरपि पत्त्रिणाम[१]विषये तत्र प्रिये ! क्वासि मे[२] ! ॥४५॥

टिप्पणी—निरवधिः—राम के निरवधि कहने का भाव यह है कि—सीता मर चुकी है। अतः मेरे चाहने पर भी अब वह मुझे नहीं मिलेगी। उधर सीता ने इस निरवधि शब्द का यह अर्थ लगाया कि—राम ने निश्चय कर लिया है कि वह मुझे अब कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। अतः यह वियोग अनन्त है। यही कारण है कि वह अत्यन्त दुःखी हैं।

अन्वयः—यत्र, मे, कपीन्द्रसख्यम्, अपि, व्यर्थम्; हरीणाम्, वीर्यम्, वृथा; यत्र, जाम्बवतः, प्रज्ञा, न; वायोः, पुत्रस्य, अपि, गतिः, न; यत्र, विश्वकर्मतनयः, नलः, अपि, मार्गम्, कर्तुम्, न, क्षमः; सौमित्रेः, अपि, पत्रिणाम्, अविषये, तत्र, क्व, मे, प्रिये, असि ? ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—यत्र=जहाँ, मे=मेरी, कपीन्द्रसख्यम्=वानरराज सुग्रीव के साथ मित्रता, अपि=भी, व्यर्थम्=निरर्थक है; हरीणाम्=वानरों का, वीर्यम्=पराक्रम, वृथा=व्यर्थ है; यत्र=जहाँ, जाम्बवतः=जाम्बवान् की, प्रज्ञा=बुद्धि, न=नहीं काम कर सकती; वायोः=वायु के, पुत्रस्य=पुत्र की, अपि=भी, गतिः=गति, गमन, न=नहीं है; यत्र=जहाँ, विश्वकर्मतनयः=विश्वकर्मा का बेटा, नलः=नल, अपि=भी, मार्गम्= मार्ग, कर्तुम्=बनाने में, न=नहीं, क्षमः=समर्थ है; सौमित्रेः=सुमित्रापुत्र लक्ष्मण के, अपि=भी, पत्रिणाम्=बाणों के, अविषये=लक्ष्य से परे, तत्र=वहाँ, क्व=कहाँ, मे= मेरी, प्रिये=प्रिया सीता, असि=हो ॥ ४५ ॥

टीका—व्यर्थं यत्रेति। यत्र=यस्मिन् स्थाने, मे=मम, कपीन्द्रसख्यम्—कपीनाम्=वानराणाम् इन्द्रः=स्वामी, सुग्रीव इत्यर्थः, तेन सख्यम्=मित्रता, अपि=च, व्यर्थम्—निष्प्रयोजनम्; हरीणाम्=वानराणाम्, ("शुकाऽहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु" इत्यमरः), वीर्यम्=पराक्रमः, वृथा=व्यर्थम्; यत्र=यस्मिन् स्थाने; जाम्बवतः= ऋक्षराजस्य, प्रज्ञा=बुद्धिः, औचित्यानौचित्यनिर्णायिका बुद्धिः प्रज्ञा, न=न समर्थेति भावः; वायोः=पवनस्य, पुत्रस्य=सुतस्य, अपि=च, गतिः=गमनम्, प्रवेश इति यावत्, न=नास्ति; यत्र=यस्मिन स्थाने, विश्वकर्मतनयः—विश्वकर्मणः=देवशिल्पिनः तनयः=

---

१. जाम्बवतोऽपि, २. अविषयः, ३. भोः।

राम—ओह, बड़ा कष्ट है।

जहाँ मेरी वानरराज सुग्रीव के साथ मित्रता भी निरर्थक है, जहाँ वानरों का पराक्रम व्यर्थ है, जहाँ जाम्बवान् की बुद्धि नहीं काम कर सकती, वायु-पुत्र हनुमान् की भी गति जहाँ नहीं है, जहाँ विश्वकर्मा का बेटा नल भी मार्ग बनाने में समर्थ नहीं है, सुमित्रा-पुत्र (लक्ष्मण) के बाणों के लक्ष्य से परे ऐसे किस स्थान पर, हे मेरी प्रिया सीता, तुम स्थित हो ॥ ४५ ॥

सुतः, नलोऽपि=नलनामकः कपिवरोऽपि, मार्गम्=पन्थानम्, सेतुबन्धरूपं पन्थानमित्यर्थः, कर्तुम्=निर्मातुम्, न क्षमः=न समर्थोऽस्ति; सौमित्रेः–सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिस्तस्य लक्ष्मणस्येत्यर्थः, पत्रिणाम्=बाणानाम्। "पत्री रोप इषुर्द्वयोः" इत्यमरः), अविषये=अगोचरे, अलक्ष्ये, तत्र=तस्मिन् स्थाने, क्व=कुत्र, मे=मम, प्रिये=वल्लभे सीते, असि=वर्तसे ?। अत्र समुच्चयोऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—व्यर्थम्—राम के कहने का भाव यह है कि प्रथम वियोग के समय जब रावण सीता का हरण कर ले गया था तब संसार के कई साधन उसे प्राप्त करने के लिये सुलभ थे। सब की सार्थकता थी। किन्तु इस वियोग काल में जब सीता काल-कवलित हो गई है, ऐसी परिस्थिति में पहले के भौतिक सारे सफल साधन निरर्थक हैं।

सख्यम्—सखि + य ("सख्युर्यः" ५।१।१२६ इत्यनेन भावे य प्रत्ययः) + विभक्तिकार्यम्। **जाम्बवतः प्रज्ञा**—जाम्बवान् राम का भक्त मित्र था। यह बड़ा बुद्धिमान् था। संकट की घड़ी में राम इसी से सलाह लेते थे, मार्ग-दर्शन पाते थे। जाम्बवान् ने ही हनुमान् को सागर पार करने के लिये प्रोत्साहित किया था— "का चुप साधि रहा बलवाना।" मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर इसने ही लंका से सुषेण को लाने की प्रेरणा दी थी, हनुमान् को सञ्जीवनी लाने के लिये भेजा था हिमालय की गुफाओं में।

सौमित्रेः—सुमित्रायाः अपत्यं पुमान्, सुमित्रा + इञ् (बह्वादिभ्यश्च ४।१।९६) + विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में सीता की प्राप्ति के लिये पूर्व-प्रयुक्त पाँच साधनों का उल्लेख है। अतः समुच्चय अलंकार है।

श्लोक में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४५ ॥

सीता--बहुमानितास्मि पूर्वविरहे। (बहुमाणिदह्मि पुव्वविरहे।)

रामः--सखि वासन्ति ! दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामदर्शनम्। [१]कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि। तदनुजानीहि मां गमनाय।

सीता—(सोद्वेगमोहं तमसामाश्लिष्य[२]।) हा ! भगवति तमसे ! गच्छतीदानीमार्यपुत्रः। किं करोमि ? (हा ! भअवदि तमसे ! गच्छदि दाणि अज्जउत्तो किं करिस्सम् ?)

(इति मूर्च्छति।)

तमसा--वत्से जानकि ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।[३] विधिस्तवानुकूलो भविष्यति। तदायुष्मतोः कुशलवयोर्वर्षवृद्धिमङ्गलानि संपादयितुं भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।

सीता--भगवति ! प्रसीद। क्षणमात्रमपि दुर्लभदर्शनं पश्यामि। (भअवदि ! पसीद। खणमेत्तं वि दुल्लहदंसणं पेक्खामि।)

रामः--अस्ति चेदानीमश्व[४]मेधसहधर्मचारिणी मे।

सीता--([५]साक्षेपम्) आर्यपुत्र ? का ? (अज्जउत्त ! का ?)

वासन्ती--परिणीतमपि किम्[६] ?

रामः--नहि नहि। हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

सीता--([७]सोच्छ्वासास्रम्।) आर्यपुत्र ! इदानीमसि त्वम्। अहो ! उत्खातितमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण। (अज्जउत्त ! दाणिं सि तुमम्। अह्महे ! उक्खाइदं दाणिं मे परिच्चाअसल्लं अज्जउत्तेण।)

शब्दार्थः--बहुमानिता=बहुत सम्मानित हो चुकी हूँ, पूर्वविरहे=पहले के विरह में। सुहृदाम्=मित्रों के लिये। कियच्चिरम्=कितनी देर। अनुजानीहि=आज्ञा दो। वर्षवृद्धिमङ्गलानि=वर्ष-गाँठ के मङ्गलाचारों को, भागीरथीपदान्तिकम्=भागीरथी के चरणों के पास॥

टीका—सीतेति। बहुमानिता=अतिसम्मानिता, पूर्वविरहे=प्राग्विरहे। सुहृदाम्=मित्राणाम्। कियच्चिरम्=कियन्तं कालम्। अनुजानीहि=अनुज्ञां देहि। वर्षवृद्धिमङ्गलानि=वर्षस्य ऋद्धिर्वर्षवृद्धिस्तस्य मङ्गलानि, वत्सरवृद्धिकल्याणकर्माणि, जन्मोत्सवपूजनादीनीति भावः। भागीरथीपदान्तिकम्—भागीरथ्याः=गङ्गायाः पादयोः=चरणयोः=अन्तिकम्=पार्श्वम्॥

टिप्पणी—बहुमानिता--बहुमान+इतच् (इत)+टाप्+विभक्तिकार्यम्॥

शब्दार्थः--दुर्लभदर्शनम्=दुर्लभ-दर्शन, जिनका दर्शन पुनः दुर्लभ है ऐसे,।

---

१. तत्कियच्चिरं, २. अवलम्ब्य, ३. क्वचिन्नास्त्ययं पाठः, ४. अश्वमेधाय, ५. सोत्कम्पम्, स्वगतं साक्षेपम्, ६. क्वचिन्नायं पाठः, ७. सोल्लासं सोच्छ्वासं।

सीता—बहुत सम्मानित हो चुकी हूँ पहले के विरह में ।

राम—सखी वासन्ती, इस समय राम का मिलना मित्रों के लिये दुःख का कारण बन गया है। कितनी देर तुम्हें रुलाऊँगा ? इसलिये आज्ञा दो मुझे जाने के लिये ।

सीता—(घबराहट और मोह के साथ तमसा से लिपट कर) हाय देवी तमसा, जा रहे हैं इस समय आर्य-पुत्र । क्या करूँ ?

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है) ।

तमसा—बेटी जानकी, आश्वस्त हो ओ, आश्वस्त हो ओ। भाग्य तुम्हारे अनुकूल होगा। तो चिरञ्जीवी कुश और लव की वर्ष-गाँठ के मङ्गलाचारों को पूरा करने के लिये भगवती भागीरथी के चरणों के पास ही हम दोनों चलें ।

सीता—भगवती तमसा, दया करो। दुर्लभ-दर्शन आर्यपुत्र को क्षण भर देख तो लूँ ।

राम—अब अश्वमेध यज्ञ के लिये मेरी सहधर्मिणी (धर्मपत्नी) है ।

सीता—(आक्षेप के साथ) आर्यपुत्र, वह कौन है ?

वासन्ती—विवाह भी कर लिया क्या ?

राम—नहीं नहीं, सोने की बनी हुई सीता की प्रतिमा है ।

सीता—(लम्बी साँस लेती हुई आँखों में आँसू भर कर) आर्यपुत्र, अब आप सच्चे अर्थ में आर्यपुत्र हो। ओह, आर्यपुत्र के द्वारा आज मेरा परित्यागरूपी काँटा निकाल दिया गया ।

अश्वमेधसहधर्मचारिणी=अश्वमेध यज्ञ के लिये मेरी सहधर्मिणी। साक्षेपम्=आक्षेप के साथ, तिरस्कारपूर्वक। परिणीतम्=विवाह भी कर लिया। हिरण्मयी=सोने की बनी हुई, सीताप्रतिकृतिः=सीता की प्रतिमा। उत्खातितम्=उखाड़ दिया गया, परित्यागशल्यम्=परित्यागरूपी काँटा ।

टीका—सीतेति। दुर्लभदर्शनम्—दुर्लभम्=दुष्प्रापं दर्शनम्=अवलोकनं यस्यासौ तम्। अश्वमेधसहधर्मचारिणी—अश्वमेधस्य=तदाख्यराजकर्तृकयज्ञविशेषस्य सहधर्मचारिणी=सहधर्माचरणशीला, श्रौते स्मार्ते च कर्मणि सहैवाधिकाराद्दम्पत्योरिति भावः। साक्षेपम्—आक्षेपेण=तिरस्कारेण सह यथा तथा। परिणीतमपि किम्=परिणयः कृतः किम् ? भावे क्तः। हिरण्मयी=हिरण्यस्य विकारः, सुवर्णमयीति यावत्, सीताप्रतिकृतिः—सीतायाः=जानक्याः प्रतिकृतिः=प्रतिमा, उत्खातितम्=निःसारितम्, परित्यागशल्यम्-परित्याग एव शल्यम्=शङ्कुः ॥

रामः—तत्रापि तावद् बाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि ।

सीता—धन्या खलु सा, यैवमार्यपुत्रेण बहु मन्यते । यैवमार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशाबन्धनं खलु जाता जीवलोकस्य । (धण्णा खु सा, जा एव्वं अज्जउत्तेण बहुमण्णीअदि । जा एव्वं अज्जउत्तं विणोदयन्दी आसाबन्धणं खु जादा जीअलोअस्स ।)

तमसा—([1]सस्मितस्नेहार्द्रं परिष्वज्य ।) अयि वत्से ! एवमात्मा स्तूयते ।

सीता—(सलज्जम्) परिहसितास्मि भगवत्या (परिहसिदह्मि भअवदीए ।)

वासन्ती—महानयं व्यतिकरोऽस्माकं [2]प्रसादः । गमनं [3]प्रति यथा कार्यहानिर्न भवति तथा [4]कार्यम् ।

रामः—तथाऽस्तु ।

सीता—प्रतिकूलेदानीं मे वासन्ती संवृत्ता । (पडिऊला दाणिं मे वासन्दी संवुत्ता ।)

तमसा—वत्से ! एहि गच्छावः ।

सीता—एवं करिष्यावः । (एव्वं करम्ह ।)

अश्वमेध०—अश्वमेध एक महान् यज्ञ था । राजा और महाराजा दिग्विजय के उपलक्ष्य में इसे करते थे । उस अवसर पर एक अश्व देश के कोने-कोने में घुमाया जाता था । सेना इसके पीछे-पीछे चलती थी । जो इस अश्व को पकड़ता था उसके साथ युद्ध होता था और जो राजा नहीं पकड़ते थे वे आधीनता स्वीकार कर लेते थे । अश्व के चतुर्दिक् सकुशल घूम आने पर यज्ञ की प्रक्रिया पूरी की जाती थी ।

टिप्पणी—सीताप्रतिकृतिः—राजा राम अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे । सनातन-धर्म के अनुसार पुरुष को धर्म-पत्नी के साथ ही धार्मिक कृत्य का सम्पादन करना चाहिये । अतः राम ने सीता की अनुपस्थिति में सीता की सुवर्णमयी प्रतिमा अपने बगल में रखकर ही धार्मिक आयोजन को पूर्ण किया था । लोगों के चाहने और कहने पर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था । इसीलिये राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है ।

परित्यागशल्यम्—रावण की लंका से वापस लाने के बाद राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा की थी । उसमें लाखों लोगों के सामने, सीता निर्दोष सिद्ध हुई थीं । फिर भी राम ने सीता का सर्वदा के लिये परित्याग कर दिया था । दुःख का यह

---

१. सस्मितस्नेहास्रं, २. प्रमादः, ३. पुनः, ४. तथाऽस्तु,

राम—उस (सीता की सुवर्णमयी प्रतिमा) में ही अपने अश्रुपूरित नेत्रों को बहलाता हूँ।

सीता—वस्तुतः वह (सुवर्णमयी प्रतिमा) धन्य है, जो आर्यपुत्र के द्वारा इस प्रकार बहुत अधिक सम्मानित की जाती है और जो आर्य-पुत्र का मनोविनोद करती हुई संसार के लिये आशा का अवलम्बन हो गई है।

तमसा—(मुस्कराहट एवं स्नेह-सिक्त भाव से आलिङ्गन करके) अरी बेटा, इस प्रकार अपनी ही प्रशंसा हो जाती है।

विशेष—सीता ने अपनी सुवर्णमयी प्रतिमा की प्रशंसा की। इस पर तमसा का कहना है कि उस प्रतिमा की प्रशंसा तो तुम्हारी ही प्रशंसा है। अतः तुम्हें उसकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अपने मुख से अपनी प्रशंसा शोभा नहीं देती।

सीता—(लज्जा के साथ) हँसी गई हूँ, भगवती तमसा के द्वारा।

वासन्ती—यह मिलन हम लोगों के ऊपर बहुत बड़ा अनुग्रह है। सम्प्रति जिस प्रकार आपके कार्य की हानि न हो, उस प्रकार अपने जाने के विषय में कीजिये।

राम—वैसा ही होगा।

सीता—सम्प्रति वासन्ती हमारे प्रतिकूल हो गई है (क्योंकि राम को और नहीं रोक रही है)।

तमसा—बेटी, आओ, चला जाय।

सीता—ऐसा ही करते हैं।

काँटा सीता के हृदय में गड़ा हुआ था। किन्तु आज उन्होंने जब सीता की सुवर्णमयी प्रतिमा की बात राम के मुख से सुनी तो उनके कलेजे से दुःख का वह काँटा सर्वदा के लिए निकल गया।

शब्दार्थः—बाष्पदिग्धम्=अश्रुपूरित, चक्षुः=नेत्रोंको, विनोदयामि=बहलाता हूँ। विनोदयन्ती=बहलाती हुई, आशाबन्धनम्=आशा का बन्धन, आशा का कारण। व्यतिकरः=मिलन, प्रसादः=अनुग्रह, कृपा।

टीका—**राम** इति। बाष्पदिग्धम्—बाष्पैः=अश्रुभिः दिग्धम्=पूरितम्, चक्षुः=नेत्रम्, विनोदयामि=विनोदयुक्तं करोमि विस्मृतदुःखं करोमि वा। विनोदयन्ती=विनोदयुक्तं कुर्वती, आशाबन्धनम्—आशायाः बन्धनम्=कारणम्। व्यतिकरः=सम्बन्धः, सम्मिलनमिति यावत्, प्रसादः=अनुग्रहः॥

तमसा—कथं वा गम्यते । यस्यास्तव—

प्रत्युप्तस्येव दयिते तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः ।
[1]मर्मच्छेदोपमैर्यत्नैः सन्निकर्षो निरुध्यते ॥ ४६ ॥

सीता—नमः सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम् ।
(णमो सुकिदपुण्णअणदंसणिज्जाणं अज्जउत्ताचलणकमलाणम् ।)

(इति मूर्च्छति ।)

तमसा—समाश्वसिहि ।

सीता—(आश्वस्य ।) कियच्चिरं वा मेघान्तरेण [2]पूर्णचन्द्रदर्शनम् ?
(केच्चिरं वा मेहान्तरेण पुण्णचन्ददंसणम् ?)

टिप्पणी—विनोदयन्ती—वि + √ नुद् + णिच् + शतृ + ङीप् + विभक्तिः । परिष्वज्य—परि + √ष्वञ्ज् + क्त + टाप् + विभक्तिः । संवृताः—सम् + √वृत् + क्त + टाप् + विभक्तिः ॥

अन्वयः—दयिते, प्रत्युप्तस्य, इव, तृष्णादीर्घस्य' (तव), चक्षुषः, सन्निकर्षः, मर्मच्छेदोपमैः यत्नैः, निरुध्यते ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—दीयते=प्रियतम (राम) में, प्रत्युप्तस्य=गड़े हुए की, इव=तरह, तृष्णादीर्घस्य=(दर्शन की) लालच के कारण विशाल बने हुए, (तव=तुम्हारे), चक्षुषः=नेत्रों का, सन्निकर्षः=सम्बन्ध, मर्मच्छेदोपमैः=मर्मस्थल में बेधने के समान, यत्नैः=(गमन आदि) उपायों के द्वारा, निरुध्यते=रोका जा रहा है ॥ ४६ ॥

टीका—प्रत्युप्तस्येवेति । दयिते = प्रिये रामे, प्रत्युप्तस्य=निखातस्य, इव=यथा तृष्णादीर्घस्य—तृष्णया=अवलोकनस्पृहया दीर्घस्य=आयतस्य, तव सीतायाः, चक्षुषः= नेत्रस्य, जातावेकवचनम्, सन्निकर्षः=दयिते सम्बन्धः, मर्मच्छेदोपमैः=हृदयादिप्रदेश-कृन्तनसदृशैः, यत्नैः=इतो गमनादिप्रयासैः, निरुध्यते=निवर्त्यते । तथाविधया त्वया कथं गम्यत इति पूर्वेणान्वयः । अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ । श्लोको वृत्तम् ॥४६॥

टिप्पणी—अथवा—तमसा का अभिप्राय यह है कि सीता की मनःस्थिति ऐसी नहीं है कि वह राम के पास से हट सके ।

प्रत्युप्तस्येव—सीता राम को निर्निमेष देख रही थी । मालूम पड़ रहा था कि सीता की आँखें राम पर गड़ गई हैं । प्रति + √वप् + क्त + विभक्तिः ।

---

१. मर्मच्छेदपरैर्यत्नैराकर्षो न समाप्यते, २. पूर्णिमाचन्द्रस्य,

तमसा--अथवा कैसे चला जाय ? क्योंकि प्रियतम (राम) में गड़े हुए की तरह, (दर्शन की) लालच के कारण विशाल बने हुए (तुम्हारे) नेत्रों का सम्बन्ध, मर्मस्थल में वेधने के समान, (गमन आदि) उपायों के द्वारा रोका जा रहा है ॥ ४६ ॥

सीता--जिन्होंने अच्छे ढंग से पुण्य किया है ऐसे लोगों के द्वारा दर्शनीय आर्यपुत्र के चरणकमलों को प्रणाम है।

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा—बेटी, आश्वस्त होओ।

सीता—(आश्वत होकर) बादलों के अन्तराल से कितनी देर तक पूर्णचन्द्र का दर्शन हो सकता है ? (अर्थात् अधिक देर तक नहीं हो सकता)।

विशेष--सीता के कहने का भाव यह है कि जैसे बादलों के अन्तराल से पूर्णचन्द्र का दर्शन देर तक नहीं हो सकता है वैसे ही वन-पंक्तियों के अन्तराल से राम का भी दर्शन देर तक सम्भव नहीं है।

तृष्णादीर्घस्य—राम बहुत दिनों के बाद सीता के सामने आये हैं। अतः लालच के मारे सीता आँखें फाड़-फाड़ कर उन्हें देख रही हैं।

मर्मच्छेद०--सीता का राम के ऊपर से अपनी आँखों को हटाने के लिये वहाँ से हटना मर्मान्तिक पीडादायक है।

सन्निकर्षः—सम् + नि + √कृष् + घञ् + विभक्तिः।

'प्रत्युप्तस्येव' में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है। 'मर्मच्छेदोपमैः' में उपमा के द्वारा उपमा अलङ्कार है।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्याम्=जिन्होंने अच्छे ढंग से पुण्य किया है ऐसे लोगों के द्वारा दर्शनीय, पुण्यात्मा जनों के द्वारा दर्शनीय। मेघान्तरेण=बादलों के अन्तराल से ॥

टीका--सीतेति। सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्याम्--सुकृतम् = सुष्ठु सम्पादितं पुण्यम्=सद्धर्मो यैस्ते तादृशाः जनाः=लोकास्तैः दर्शनीयाभ्याम्=अवलोकनीयाभ्याम्। मेघान्तरेण=मेघानाम्=जलदानाम् अन्तरेण=व्यवधानेन ॥

तमसा—अहो ! संविधानकम् ।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक्पृथगिव[1] श्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा, सलिलमेव हि[2] तत्समस्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः--यथा, अम्भः, आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्, विकारान्, (श्रयते), हि, तत्, समस्तम्, सलिलम्, एव, (तथैव), एकः, करुणः, रसः, एव, निमित्तभेदात्, भिन्नः, (सन्), पृथक्-पृथक्, विवर्तान्, श्रयते, इव ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः--यथा=जैसे, अम्भः=जल, आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्=भँवर, बुलबुला तथा तरङ्ग आदि, विकारान्=विकारों को, (श्रयते=प्राप्त होता है), हि=निश्चय ही, तत्=वह, समस्तम्=सारा का सारा, सलिलम्=जल, एव=ही, (भवति=होता है, तथैव=उसी प्रकार), एकः=एक, करुणः=करुण, रसः=रस, एव=ही, निमित्तभेदात्=कारणों के भेद से, भिन्नः=भिन्न, (सन्=होकर), पृथक्-पृथक्=अलग-अलग, विवर्तान्=रूपान्तर को, श्रयत इव=प्राप्त करता हुआ सा प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥

टीका—**एको रसः** । यथा=येन प्रकारेण, अम्भः=सलिलम्, आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्-आवर्तः=जलस्य भ्रमः, बुद्बुदः=कुड्मलाकारजल-संस्थानविशेषः, तरङ्गः=भङ्गः एतद्रूपान्, अवस्थान्तराणीत्यर्थः, श्रयते=प्राप्नोति, हीति दार्ढ्यं, तत् समस्ततम्=आवर्तादिकं सकलम्, सलिलम्=जलम्, एवेत्यन्ययोगव्यवच्छेदार्थम्, तथैवेति शेषः, एकः=केवलः, अद्वितीय इति भावः, करुणः=इष्टजनवियोगजन्य-दुःखातिशयः, रसः–रस्यते=स्वाद्यत इति रसः, एवेत्यन्ययोगव्यवच्छेदः, निमित्तभेदात्–व्यञ्जकविभावादिविशेषात्, कारणभेदादित्यर्थः, भिन्नः सन्=विलक्षणः सन्, पृथक् पृथक्=भिन्नानित्यर्थः, विवर्तान्=शृङ्गाराद्यात्मना परिणामान्, श्रयत इव=प्राप्नोतीव । अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ४७ ॥

टिप्पणी—**अहो संविधानकम्**—सुन्दर रचना, विचित्र सृष्टि । संविधीयते इति–सम्+वि+√धा+ल्युट् (अन)+स्वार्थे कन्+विभक्तिः । यहाँ कवि ने 'अहो संविधानकम्' इस कथन के द्वारा ब्रह्मा की सृष्टि और अपनी प्रस्तुत रचना की विचित्रता और उत्कृष्टता प्रदर्शित की है ।

---

१. पृथक्पृथगिवाश्रयते, २. तु ।

तमसा—वाह, विचित्र रचना है—जैसे जल भँवर, बुलबुला तथा तरङ्ग आदि विकारों को (प्राप्त होता है), निश्चय ही वह सारा जल ही हुआ करता है; उसी प्रकार एक करुण रस ही कारणों के भेद से भिन्न होकर अलग-अलग रूपान्तर को प्राप्त करता हुआ-सा प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥

एको रसः करुण एव—कविवर भवभूति ने इस कथन के द्वारा यह भाव व्यक्त किया है कि करुण ही एक रस है। शृङ्गारादि अन्य रस इसके ही रूपान्तर हैं। विभाव आदि हेतुओं की भिन्नता के कारण करुण रस ही दूसरे रसों का रूप ग्रहण करता है।

वस्तुतः कवि के कथन का रहस्य यह है—

यद्यपि शृङ्गारप्रकाशकार आदि का मत यह है कि शृङ्गार ही एक रस है। किन्तु प्रभूत मात्रा में और शीघ्र, विरक्त और अनुरक्त सभी व्यक्तियों पर समान रूप से, प्रभावी होने के कारण करुण ही एक मात्र रस है। दूसरे रस इसी करुण के ही विकार हैं।

निमित्तभेदात्—आलम्बन आदि कारणों के भेद से, **विवर्तान्**—'विवर्त' यह वेदान्त दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। इसका भाव है—अवास्तविक रूपान्तर अथवा मिथ्या ज्ञान। जैसे अँधेरी रात में मार्ग में पड़ी टूटी रस्सी में किसी को सर्प की प्रतीति हो जाती है। सर्प रस्सी का विवर्त है। किन्तु जब प्रकाश आदि के द्वारा व्यक्ति को सही ज्ञान हो जाता है, उस समय सर्प की प्रतीति समाप्त हो जाती है। वहाँ एक मात्र रस्सी भर ही रह जाती है। इसी प्रकार रस तो वस्तुतः एक ही है करुण। बाकी रस इसी के विवर्त हैं। कवि भवभूति विवर्तवादी आचार्य हैं।

तत्समस्तम्—जैसे भँवर, बुलबुले आदि सभी जल के ही विकार हैं, जल से भिन्न नहीं। इसी प्रकार शृङ्गार, वीर आदि रस भी करुण मूलक ही हैं, करुण से भिन्न नहीं।

इस श्लोक में इव के द्वारा क्रियोत्प्रेक्षा तथा यथा के द्वारा उपमा अलङ्कार है। श्लोक में प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ४७ ॥

रामः—विमानराज ! इत इतः ।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

तमसावासन्त्यौ—(सीतारामौ प्रति ।)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः
स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता ।
स च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ-
स्तव[1] वितरतु भद्रं [2]भूयसे मङ्गलाय ॥ ४८ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥इति [3]महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते छाया नाम तृतीयोऽङ्कः ॥ ३॥

अन्वयः—अस्मद्विधाभिः, सार्धम्, अवनिः, अमरसिन्धुः, च, सः, कुलपतिः, यः, छन्दसाम्, आद्यः, प्रयोक्ता, च, अनुयातारुन्धतीकः, सः, वसिष्ठः, मुनिः, तव, भूयसे, मङ्गलाय, भद्रम्, वितरतु ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—अस्मद्विधाभिः=हम जैसे लोगों के (अर्थात् तमसा जैसी नदियों और वासन्ती जैसी वन-देवताओं के), सार्धम्=साथ, अवनिः=पृथिवी, अमरसिन्धुः=गंगा, च=और, सः=वे, कुलपतिः=कुलपति, यः=जो, छन्दसाम्=छन्दों के, आद्यः=प्रथम, प्रयोक्ता=प्रयोग करने वाले, च=तथा, अनुयातारुन्धतीकः=अरुन्धती से अनुगत, सः=वे, वसिष्ठः=वसिष्ठ, मुनिः=मुनि, तव=आपके, भूयसे=प्रभूत, मङ्गलाय=कल्याण के लिये, भद्रम्=मङ्गल, वितरतु=प्रदान करें ॥ ४८ ॥

टीका—अवनिरिति । अस्मद्विधाभिः=अस्मत्सदृशीभिः, तमसापक्षे मुरला-गोदावरीप्रभृतिभिरित्यर्थः, वासन्तीपक्षे-अन्याभिर्देवताभिः सहेत्यर्थः, सार्धम्=साकम्, अवनिः=भूमिः, अमरसिन्धुः–अमराणाम्=देवानां सिन्धुः=सरिता, गङ्गेत्यर्थः, च=तथा, सः=विश्वविदितः, कुलपतिः=सहस्रमुनीनामध्यापयिता वाल्मीकिः, यः छन्द-साम्=अनुष्टुप्प्रभृतीनां वृत्तानाम्, आद्यः=प्रथमः, प्रयोक्ता=प्रयोगकर्ता, च=अपि च, अनुयातारुन्धतीकः–अनुयाता=अनुगता अरुन्धती यमिति विग्रहे द्वितीयाबहुव्रीहिः । "शेषाद्विभाषा" इति कप्, "न कपि" इति ह्रस्वप्रतिषेधः, मुनिः=रघुकुलगुरुर्वसिष्ठः, मुनिः=मननशीलो वसिष्ठः, तव=सीताया रामस्य च, भूयसे=प्रचुराय, मङ्गलाय=कल्याणाय, भद्रम्=कल्याणम्, वितरतु=ददातु । अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः । मालिनी छन्दः ॥ ४८ ॥

॥ इत्याचार्यरमाशङ्करत्रिपाठिकृतायामुत्तररामचरितव्याख्यायां
शान्त्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ॥ ३ ॥

टिप्पणी– तमसा-वासन्त्यौ—यह आशीर्वादात्मक श्लोक तमसा और वासन्ती के द्वारा राम और सीता के लिये कहा गया है । तमसा यह श्लोक सीता से कहती

---

१. त्वयि, २. श्रेयसे, ३. महाकविश्रीभवभूतिप्रणीते ।

राम—हे विमानराज (पुष्पक), इधर से इधर से (आओ) ।

(सभी उठ खड़े होते हैं)

तमसा और वासन्ती—(सीता एवं राम के प्रति) – हम जैसे लोगों के (अर्थात् तमसा जैसी नदियों और वासन्ती जैसी वनदेवताओं के) साथ पृथिवी, गंगा और वे कुलपति जो छन्दों के प्रथम प्रयोक्ता हैं, तथा अरुन्धती से अनुगत लोक प्रसिद्ध(सः) वसिष्ठ मुनि आपके प्रभूत कल्याण के लिये मङ्गल प्रदान करें ॥ ४८ ॥

(इस प्रकार सभी निकल जाते हैं ।)

॥ महाकवि भवभूति-विरचित उत्तररामचरित का छायानामक
तृतीय अंक समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

है और वासन्ती राम से । यहाँ यह स्मरणीय है कि राम और वासन्ती सीता और तमसा को नहीं देख रहे हैं ।

कुलपतिः—जो ब्राह्मण दस हजार विद्यार्थियों को अन्न, वस्त्र और आश्रय देकर पढ़ाता था उसे कुलपति कहते थे—"मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात् । अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥" कुछ व्याख्याकारों ने कुलपति का अर्थ–कुलस्य = वंशस्य पतिः=प्रवर्तकः सूर्यः—अर्थात् कुल के प्रवर्तक सूर्य – यह अर्थ किया है, वह समीचीन नहीं है; क्योंकि कुलपति का विशेषण है – यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता । इसे सूर्य के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता । **छन्दसाम्**—अनुष्टुप् आदि लौकिक छन्दों का प्रयोग सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने ही किया था । **प्रयोक्ता**—प्र + √युज् + तृच् + विभक्तिः ।

अनुयातारुन्धतीकः—अरुन्धती वसिष्ठ की पत्नी का नाम है । अरुन्धती कर्दम और देवहूति की बेटी तथा कपिल मुनि की बहन थीं । वे सर्वदा अपने पतिदेव के पीछे-पीछे चला करती थीं । और है भी यही आर्य ललनाओं का पावन कर्तव्य । **भूयसे**—बहु + ईयस् + विभक्तिः । यहाँ बहु को भू आदेश तथा ईयस् की ई का लोप हो जाता है ।

इस श्लोक में दो व्यक्तियों—सीता और राम—का एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है । प्रयुक्त छन्द मालिनी का लक्षण–न न म य य–युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

छायाङ्कः—इस अंक में सीता राम की छाया की तरह आदि से अन्त तक विद्यमान रहती हैं । अतः इसे छाया अङ्क कहा गया है ।

॥ यह अंक इस नाटक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंक है । यह सप्तम अंक में भावी राम-सीता के मिलन का मार्ग प्रशस्त करता है ॥ ४८ ॥

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥ ३ ॥

□

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतस्तापसौ)

एकः—सौधातके ! दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य [1]समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य । तथा हि—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यःप्रसूतप्रिया-
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति ।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो [2]भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ॥ १ ॥

शब्दार्थः—भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य = बहुत अधिक आहूत किये गये हैं अतिथि-जन जिसमें ऐसे, समधिकारम्भरमणीयता—अत्यधिक आयोजनों के कारण मनोहरता ॥

टीका—एक इति । तापसौ=तपःशीलौ । एकः = तयोरन्यतरः । सुधातुरपत्यं पुमान् सौधातकिः । "सुधातुरकङ् च" इत्यकङ्ङादेश इञ् प्रत्ययश्च । तस्य सम्बुद्धिः, सौधातके इति । अद्य=सम्प्रति मध्यान्हे, भूयिष्ठम्=अत्यधिकं यथा स्यात्तथा सन्निधापिताः = आहूय उपस्थापिता अतिथिजनाः = आगन्तुलोकाः यस्मिन् तस्य तादृशस्य, समधिकारम्भरमणीयता—समाधिकारम्भैः=प्रचुरतरकर्मभिः, प्रचुरतरमारभ्यमाणातिथिजनसत्कारादिनेत्यर्थः, रमणीयता=हृद्यता, मनोहरतेति यावत्, दृश्यताम्=चक्षुर्विषयीक्रियताम् । त्वयेति शेषः ॥

टिप्पणी—सौधातकि एक तपस्वी बालक का नाम है । दूसरे का नाम दाण्डायन है । यहाँ दोनों के वार्तालाप के द्वारा नाटक का क्रम आगे बढ़ता है । सुधातृ + अक + इञ् + विभक्त्यादिः । भूयिष्ठम्—बहु + इष्ठन् + विभक्तिः । यहाँ बहु को भू आदेश और इ को यि होता है । सन्निापित—सम् + नि + √धा + णिच् + क्त (कर्मणि) + विभक्तिः ॥

अन्वयः—तपोवनमृगः, सद्यः, प्रसूतप्रियापीतात्, अभ्यधिकम्, उष्णमधुरम्, नीवारौदनमण्डम्, पर्याप्तम्, आचामति । सर्पिष्मतः, भक्तस्य, स्फुरता, गन्धेन, मनाक्, अनुसृतः, कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः, परिस्तीर्यते ॥ १ ॥

शब्दार्थः—तपोवनमृगः = तपोवन का (यह) मृग, सद्यःप्रसूतप्रियापीतात् = तत्काल ब्याई हुई (बच्चा पैदा की हुई) प्रिया के पीने से, अभ्यधिकम्=अधिक,

---

१. समधिकतररम०, २. हव्यस्य ।

(तदनन्तर दो तपस्वी प्रवेश करते हैं) ।

एक—हे सौधातकि, आज बहुत अधिक आहूत किये गये हैं अतिथि-जन जिसमें ऐसे, भगवान् वाल्मीकि के आश्रम की, अत्यधिक आयोजनों के कारण बढ़ी हुई, मनोहरता को तो देखो । जैसे कि—

तपोवन का (यह) मृग तत्काल ब्याई हुई प्रिया के पीने से बचे हुए गरम और मधुर, नीवार के भात के मांड़ को जी भर कर पी रहा है । घृत-मिश्रित भात की फैलने वाली मँहक से कुछ अनुगत, बेर के फलों से मिश्रित शाक के पकाने की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है ॥ १ ॥

बचे हुए, उष्णमधुरम्=गरम और मधुर, नीवारौदनमण्डम्=नीवार के भात के मांड़ को, पर्याप्तम्=जी भर कर, आचामति=पी रहा है । सर्पिष्मतः=घृत-मिश्रित, भक्तस्य=भात की, स्फुरता=फैलने वाले, गन्धेन=मँहक से, मनाक्=कुछ-कुछ, अनुसृतः = अनुगत, कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः=बेर के फलों से मिश्रित शाक के पकाने की सुगन्ध, परिस्तीर्यते=चारों ओर फैल रही है ॥ १ ॥

टीका—नीवारौदनेत्यादिः । तपोवनमृगः=तपोवनस्य=आश्रमस्य मृगः= हरिणः, तपोवनाश्रयो मुनिसंवर्धितहरिणः इत्यर्थः, सद्यःप्रसूत-प्रियापीताद्-सद्यः = समानेऽह्नि, तस्मिन्दिने इत्यर्थः प्रसूता=प्रसववती या प्रिया=वल्लभा हरिणी तया पीतात्=पानात्, अभ्यधिकम्=अवशिष्टम्, उष्णमधुरम्=उष्णं च तद् मधुरं च= माधुर्ययुक्तं चेति विशेषण समासः । नीवारौदनमण्डम्—नीवारस्य=तृणधान्यस्य य ओदनः=भक्तः तस्य मण्डम्=घनीभूतद्रवविशेषः तद्, पर्याप्तम्=यावदिच्छानिवृत्ति यथा तथा, प्रचुरं यथा तथा वेति, आचामति=पिबति । सर्पिष्मतः=घृतवतः, भक्तस्य= पक्वान्नस्य, स्फुरता=प्रसरता, गन्धेन=सौरभ्येण, मनाक्=ईषद्, अनुसृतः=अनुगतः, कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः=कर्कन्धूफलैः=बदरीफलैः मिश्राः=संयुक्ता ये शाकाः= पालङ्क्यादयस्तेषां पचनम्=पाकस्तस्य सौरभ्यम्=आमोदः, परिस्तीर्यते=विस्तीर्यते, वायुनेति शेषः । अत्र पर्यायोक्तम् अलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १ ॥

टिप्पणी—सौधातके—सौधातकि महर्षि सुधाता का पुत्र था । सुधातृ + अक् + इञ् + विभक्त्यादिः । **नीवार०**—लोक भाषा में इसे तिन्नी अथवा फँसरी कहते हैं । यह एक प्रकार का जंगली धान है जो बिना जोते-बोये पैदा होता है । इसे मुनि-धान्य भी कहते थे । यह बड़ा पवित्र माना जाता है । ऋषि-मुनि इसी को खाकर रहते थे । **उष्ण०**—आश्रम की मृगी ने बच्चा पैदा किया । वहाँ के लोगों ने तिन्नी चावल के गरम-गरम मांड़ को उसे पीने के लिये दिया । इससे उसकी प्रसव-पीड़ा कम हो जाती है । आज भी सद्यः प्रसूता स्त्री को पीने के लिये गरम पदार्थ ही देते हैं ।

सौधातकिः—स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानां तपोधनानाम् । (साअदं अणीअपिआराणां जिण्णकुच्छाणं अणज्झाअकालणाणं तपोधणाणम् ।)

प्रथमः—(विहस्य ।) अपूर्वः खलु[1] बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके !

सौधातकिः—भो दण्डायन[2] ! किंनामधेय इदानीमेष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरन्धरोऽद्यातिथिरागतः ? (भो दण्डाअण ! किणामहेओ दाणिं एसो महत्तस्स दत्थिआसत्थस्स धुरंधरो अज्ज अदिही आअदो ?)

दण्डायनः—धिक्प्रहसनम् ! नन्वयमृष्यश्रृङ्गाश्रमादरुन्धतीं[3] पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः । तत्किमेवं प्रलपसि ?

सौधातकिः—हुं वसिष्ठः ? (हुं वसिष्ठः ।)

दण्डायनः—अथ किम् ?

सौधातकिः—मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इव एष इति । (मए उण जाणिदं कोवि वग्घो विअ एसोत्ति ।)

स्फुरता—√स्फुर+शतृ+तृतीयैकवचने विभक्तिकार्यम् । अनुसृत०—अनु+√सृ+क्त+विभक्तिः ।

आश्रम में चतुर्दिक् प्रसन्नता और आनन्द ही आनन्द है । इसका ही प्रकारान्तर से कथन होने के कारण पर्यायोक्त अलङ्कार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द शर्दूलविक्रीडित का लक्षण यह है—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—जीर्णकूर्चानाम्=पकी अतः सफेद दाढ़ी वाले, अनध्यायकारणानाम्=अनध्याय के कारण, तपोधनानाम्=तपस्वियों का । अपूर्वः=अद्भुत है, बहुमानहेतुः=अत्यन्त सम्मान का कारण । स्त्रीसार्थस्य=स्त्री-समूह के, धुरंधरः=अगुआ, नेता ॥

टीका—**सौधातकिरिति** । अनेकप्रकाराणाम्=बहुविधानाम्, अनध्यायकारणानाम्–अनध्यायस्य=अनध्ययनस्य कारणानाम्=हेतूनाम्, जीर्णकूर्चानाम्–जीर्णम्=पलितं कूर्चम्=श्मश्रु येषान्ते तेषाम्, पलितश्मश्रूणामित्यर्थः, तपोधनानाम्=तपस्विनाम् । गुरुषु=आदरणीयेषु, अपूर्वः=अद्भुतः, बहुमानहेतुः–बहुमानस्य=अतिसम्मानस्य हेतुः=कारणम्, जीर्णकूर्चानामिति प्रयोग इति भावः । महतः=विशालस्य, स्त्री-सार्थस्य=वनितासमवायस्य, धुरन्धरः=धुर्यः, अग्रेसर इति भावः ॥

टिप्पणी—**अनध्यायकारणानाम्**—प्राचीन काल में अध्ययन-अध्यापन आश्रमों में हुआ करता था । उस समय आश्रम में जब बाहर के ऋषि-मुनि आ

---

१. कोऽपि, खलु तेऽपि बहु०, २. भाण्डायन, ३. अरुन्धतीपुरस्कृतान् ।

सौधातकि--पकी अत: सफेद दाढ़ी-वाले, अनध्याय के कारण, अनेक प्रकार के इन तपस्वियों का स्वागत है।

पहला--(जोर से हँसकर) हे सौधातकि, गुरुओं के विषय में अत्यन्त सम्मान का कारण तुम्हारा यह कथन अद्भुत है।

सौधातकि—हे दण्डायन, आज इस विशाल स्त्री-समूह के अगुआ होकर जो यह अतिथि आये हैं, इनका नाम क्या है?

दण्डायन—धिक्कार है इस मजाक को। अरे यह शृष्यशृङ्ग के आश्रम से अरुन्धती को आगे करके महाराज दशरथ की पत्नियों (कौसल्या आदि) को साथ लेकर भगवान् वसिष्ठ आये हुए हैं। तो क्यों तुम इस प्रकार बकवास कर रहे हो?

सौधातकि—ऐं वसिष्ठ?

दण्डायन—और क्या?

सौधातकि--मैंने तो फिर समझा कि यह कोई व्याघ्र की तरह हैं।

जाते थे तब गुरु-शिष्य सभी उनके स्वागत-सम्मान में लग जाते थे। यह उनका कर्तव्य था। अत: अनध्याय हो जाया करता था।

विहस्य—वि + √हस् + ल्यप्। दण्डायन आयु में सौधातकि की अपेक्षा बड़ा और गंभीर प्रतीत होता है। वह सौधातकि के कथन पर हँसता है। सौधातकि को छुट्टी हो जाने की प्रसन्नता है।

धुरन्धरः—धुरं धरतीति। धुर + √धृ + खच् निपातनात् + विभक्तिः॥

शब्दार्थः—प्रहसनम्=मजाक को। दारान्=स्त्रियों को। प्रलपसि=बकवास कर रहे हो। व्याघ्र इव=व्याघ्र की तरह, बघेरा-सा॥

टीका--दण्डायन इति। प्रहसनम् = उपहासम्। धिग्योगे "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इति द्वितीया। परिहासहेतुभूतं तव वचनं निन्दनीयमिति भावः। दारान्=पत्नीः, "भार्याजायाथ पुंभूम्नि दाराः" इत्यमरः। अधिष्ठाय=गृहीत्वा, तन्नियामको भूत्वेति यावत्। प्रलपसि=उपहासरूपमनर्थकं वचो ब्रवीसीत्यर्थः। व्याघ्र इव=शार्दूल इव॥

टिप्पणी—**प्रहसनम्**—धिक् के कारण प्रहसन में द्वितीया विभक्ति आई है। महर्षि वसिष्ठ को एक सफेद दाढ़ी वाला तथा औरतों का नेता कहना, अनध्याय का कारण बतलाना उनका उपहास करना है।

शृष्यशृङ्ग--ऋष्यशृङ्ग एक महर्षि थे। इन्होंने ही महाराज दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया था जिसके फलस्वरूप चार पुत्र पैदा हुए थे। दशदथ की एक पुत्री थी–शान्ता। शान्ता का विवाह शृष्यशृङ्ग से हुआ था। **पुरस्कृत्य**–आगे करके पुरस् + √कृ + ल्यप्।

दण्डायनः--आः, किमुक्तं भवति ?

सौघातकिः—येन[1] परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता। (जेण पराबडिदेण एव्व सा वराई कविला कल्लाणी बलामोडिअ मडमडाइआ ।)

दण्डायनः—समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहु मन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा[2]पचन्ति गृहमेधिनः। तं हि[3] धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति ।

सौघातकिः—भोः ! निगृहीतोऽसि (भो ! णिगिहीदोसि)

दण्डायनः--कथमिव ?

सौधातकिः—येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव [3]प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता। (जेण आअदेसु वसिट्ठमिस्सेसु वच्छदरी विससिदा । अज्ज एव्व पच्चाअदस्स राएसिणो जणअस्स भअवदा वम्मीइणा दहिमहूहिं एव्व णिव्वत्तिदो महुपक्को । वच्छतरी उण विसज्जिदा ।)

दारान्—स्त्रियों को। दार शब्द का अर्थ पत्नी है। यह पुंलिङ्ग है और सर्वदा बहुवचन में ही आता है। यहाँ अधिष्ठाय के कारण "अधिशीङ्०" (१।४।४६) से द्वितीया आती है।

अधिष्ठाय—अधि + √स्था + ल्यप्।

व्याघ्र इव—सौघातकि का कहना है कि मैंने इन्हें बाघ समझा था, क्योंकि इनके आने पर एक बछिया मारी गई और इन्होंने उसे खाया॥

शब्दार्थः—परापतितेनैव-आते ही, पहुँचते ही, वराकी=बेचारी, कपिला= पीले रंग की, कल्याणी=बछिया, मडमडायिता=मड-मड शब्द करा कर मार डाली गई। समांसः=मांस-युक्त, मांस-सहित, आम्नायम्=वैदिक वचन को, बहुमन्यमानाः= विशेष महत्त्व देने वाले, श्रोत्रियाय=वैदिक, अभ्यागताय=अतिथि के लिये, वत्सतरीम्= बछिया, महोक्षम् = बड़े बैल को, गृहमेधिनः = गृहस्थ। समामनन्ति = कहते हैं, मानते हैं॥

टीका—दण्डायन इति। परापतितेनैव = समागतेनैव, वराकी=निःसहाया, कपिला=कपिशा, कल्याणी=वत्सतरी, द्विहायनीत्यर्थः। मडमडायिता=मड-मड-शब्द युक्ता कृता, आलब्धेति यावत्। तेन तं व्याघ्रं वदामि। समांसः=मांसेन सहितः, मांसमिश्रित इत्यर्थः, आम्नायम्=वेदम्, बहुमन्यमानाः=बहु आद्रियन्तः, श्रोत्रियाय=

---

१. तेन, २. महाजं वा निर्वपन्ति, ३. इति हि धर्म०, ३. पर्यागतस्य ।

दण्डायन—अरे, क्या कह रहे हो ?

सौधातकि—जिनके आते ही वह बेचारी पीले रंग की दो वर्ष की बछिया दबोच कर मड-मड शब्द करा कर मार डाली गई। (अतः उन्हें बाघ कह रहा हूँ)।

दण्डायन—'मधुपर्क मांस के सहित होता है'—इस वैदिक वाक्य को विशेष महत्त्व देनेवाले गृहस्थ लोग वेदज्ञ अतिथि के लिये दो वर्ष की बछिया को, बड़े बैल को अथवा बड़े बकरे को पकाते हैं। धर्मसूत्रकारों ने इसे धर्म–कृत्य बतलाया है।

सौधातकि—अरे, तुम पकड़ में आ गये।

दण्डायन—कैसे ?

सौधातकि—क्योंकि आदरणीय महर्षि वसिष्ठ के आने पर बछिया मारी गई थी। किन्तु आज ही आये हुए राजर्षि जनक के लिमे भगवान् वाल्मीकि ने दधि और मधु से ही मधुपर्क की क्रिया पूरी की और बछिया को छोड़ दिया था।

वैदिकाय, अभ्यागताय=अतिथये, वत्सतरीम्=द्विहायनीम्, महोक्षम्=महावृषभम्, पचन्ति=श्रपयन्ति, गृहमेधिनः=गृहस्थाः। समामनन्ति=उपदिशन्ति ॥

टिप्पणी—**परापतितेन**—परा + √पत् + क्त + तृतीयैकवचने विभक्तिकार्यम्।

कल्याणी—इसका अर्थ शुभ अथवा मङ्गल कारिणी बतलाया गया है। वीरराघव ने इसका अर्थ दो वर्ष की बछिया किया है।

बलात्कृत्य—बलात् + √कृ + ल्यप्।

पधुपर्कः—अतिथि, वर तथा आदरणीय अतिथियों को पधुपर्क दिया जाता था। सामान्य रूप से मधुपर्क में तीन वस्तुएँ मिलाई जाती हैं—दधि, घृत और मधु। घृत की मात्रा बहुत स्वल्प रहती है। मधुपर्क में पाँच वस्तुओं के मिलाने का भी विधान है–दधि, घृत, जल, मधु तथा शर्करा (चीनी) "दधिः सर्पिः जलं क्षौद्रं सितैताभिस्तु पञ्चभिः। प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये॥" कालिकापुराण॥

मधुपर्क में मिलाई जाने वाली वस्तुओं की चर्चा तन्त्रसार (प्रथम परिच्छेद), याज्ञवल्क्य–संहिता (अष्टम अध्याय), आश्वलायन गृह्यसूत्र १.२४, ५-६, पारस्करगृह्यसूत्र १.३,५, वाराहगृह्यसूत्र १२,४, आपस्तम्बीय धर्मसूत्र २,४,८,८,९, बौधायनगृह्यसूत्र १,२, ९-१० आदि अनेक ग्रन्थों में की गई है। किन्तु कहीं भी मांस मिलाने की चर्चा नहीं मिलती। मधुना पच्यते इति। **मधुपर्कः**—मधु + √पच् + घञ् + विभक्तिः। **बहुमन्यमानाः**—बहु + √मन् + शानच् + विभक्तिः। **वत्सतरीम्**—वत्स + तर + ङीष् + विभक्तिः॥

शब्दार्थः—निगृहीतः=पकड़ में आ गये, असि=हो। वत्सतरी=बछिया, विशसिता=मारी गई। विसर्जिता=छोड़ दी गई॥

टीका—**सौधातकिरिति**। निगृहीतः=पराजितः, असि=वर्तसे। वत्सतरी=वत्सा गौः, विशसिता=आलम्भिता। विसर्जिता=परित्यक्ता, न घातितेत्यर्थः॥

दण्डायनः—अनिवृत्तमांसानामेवं [1]कल्पं व्याहरन्ति केचित्। निवृत्त-मांसस्तु तत्रभवान् जनकः।

सौधातकिः--किन्निमित्तम् (किंणिमित्तम् ?)

दण्डायनः--यद्देव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः, तस्य कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

सौधातकिः—ततः किमित्यागतः ? (तदो किंति आअदो ?)

दण्डायनः—[2]संप्रति च प्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम्।

सौधातकिः--[3]अप्यद्य सम्बन्धिनीभिः समं निवृत्तं दर्शनमस्य न वेति ? (अवि अज्ज संबन्धिणीहिं समं णिउत्तं दंसणं से ण वेत्ति ?)

दण्डायनः--संप्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्याः कौसल्यायाः सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता। यथा 'स्वयमुपेत्य स्नेहादयं द्रष्टव्य' इति[4]।

टिप्पणी—निगृहीतोऽसि—निग्रह स्थान में आ गये हो अर्थात् पकड़ में आ गये हो। नि+√ग्रह+क्त+प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम्। विशसिता—मारी गई। वि+√शस्+क्त+टाप्+विभक्तिः। प्रत्यागतस्य-प्रति+आ+√गम्+क्त+षष्ठ्येकवचने विभक्तिकार्यम्। निर्वर्तितः-निर्+√वृत्+णिच्+क्त+विभक्तिकार्यम्। विसर्जिता-वि+√सृज्+णिच्+क्त+टाप्+विभक्तिः।

भवभूति ने इस नाटक में महर्षि वसिष्ठ को समांस मधुपर्क दिला कर केवल रसदोष और रसभंग ही भर नहीं किया है अपितु वसिष्ठ को गो–मांस-भक्षण–कर्ता बतला कर अक्षम्य अपराध किया है। करुण रस के प्रसंग में गोहत्या के प्रसङ्ग को बलात् उपस्थित करना घृणित मानसिकता का द्योतक है। यदि इस प्रसङ्ग की चर्चा भवभूति न करते तो भी कथा के प्रवाह में किसी भी प्रकार का व्याघात न उपस्थित होता। भवभूति भले ही स्वयं भयङ्कर मांसाहारी ब्राह्मण रहे हों किन्तु अपनी कमजोरी के समर्थन के लिये नाटक का यह प्रकरण उचित स्थान नहीं था। इस नाटक में यह अत्यन्त दुःखद वर्णित प्रसंग है। इस प्रसंग के द्वारा महर्षि वसिष्ठ को मांसाहारी बतला कर उन्हें लाञ्छित किया गया है। यहाँ केवल प्रसंस इतना ही भर है कि "सीता के शोक में महाराज जनक ने मांस का परित्याग कर दिया है।" इस बात को प्रदर्शित करने के लिये भवभूति कोई दूसरा प्रसंग उठा सकते थे। सनातनधर्म का एक भी धर्मशास्त्र महर्षि वसिष्ठ जैसे व्यक्ति के गो-मांस-भक्षण का स्वप्न में भी समर्थन नहीं करता है॥

---

१. कल्पमृषयो मन्यन्ते, २. चिरन्तनप्रियसुहृदं, ३. अयि, ४. इति वक्तुम्।

दण्डायन—कुछ धर्मशास्त्रकारों ने उन्हीं लोगों के लिये ही समांस मधुपर्क का विधान किया है, जिन्होंने मांस खाना नहीं छोड़ा है। आदरणीय जनक ने तो मांस खाना छोड़ दिया है।

सौधातकि—किस लिये ?

दण्डायन—देवी सीता के वैसे भाग्य के दुष्परिणाम को सुन कर (राजा जनक) वानप्रस्थाश्रमी हो गये हैं। चन्द्रद्वीप नामक तपोवन में उन्हें तपस्या करते हुए कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

सौधातकि—तब यहाँ किस लिये आये हुए हैं।

दण्डायन—इस समय वे अपने प्रिय मित्र वाल्मीकि से मिलने आए हुए हैं।

सौधातकि—तो क्या आज उनका अपनी सम्बन्धिनियों (कौसल्या आदि समधनों) के साथ मिलन सम्पन्न हुआ कि नहीं ?

दण्डायन—अभी-अभी भगवान् वसिष्ठ ने महारानी कौसल्या के पास भगवती अरुन्धती को (यह कह कर) भेजा है कि—"आप स्वयं जाकर स्नेहपूर्वक महाराज जनक से मिलें।"

शब्दार्थः—अनिवृत्तमांसानाम्=जिन्होंने मांस खाना नहीं छोड़ा है ऐसे लोगों के लिये, कल्पः=विधि, विधान। निवृत्तमांसः=मांस का परित्याग किया हुआ व्यक्ति। दैवदुर्विपाकम्=दुर्भाग्य, भाग्य के दुष्परिणाम को, वैखानसः=वानप्रस्थ, संवृत्तः=हो गये हैं। तपः=तपस्या, तप्यमानस्य=तपते हुए, करते हुए॥

टीका—दण्डायन इति। अनिवृत्तमांसानाम्–मांसात्=लक्षणया मांसभोजनात् अनिवृत्तानाम्=अविरतानाम्, परित्यक्तमांसभोजानामित्यर्थः, "राजदन्तादिषु परम्" (२, २, ३१) इति पूर्वप्रयोक्तव्यस्य पर-निपातः, एवं कल्पम्=एतादृशं 'समांसो मधुपर्कः' इति विधिम्। निवृत्तमांसः–मांसात्=मांसभोजनात् निवृत्तः=पराङ्मुखः, त्यक्तमांस-भोजन इत्यर्थः। दैवदुर्विपाकम्–दैवस्य=भाग्यस्य दुर्विपाकम्=दुष्परिणामम्, वैखानसः=वानप्रस्थः, संवृत्तः=सञ्जातः। तपः=तपस्याम्, तप्यमानस्य=आचरतः, कुर्वतः, कतिपयवत्सरः=कतिपयहायनः, व्यतीत इति शेषः॥

टिप्पणी—उपश्रुत्य—उप + √श्रु + ल्यप्। संवृत्तः सम् + √वृत् + क्त + विभक्तिः। तप्यमानस्य—√तप् + यक् + शानच् + षष्ठ्यैकवचने विभक्तिकार्यम्॥

शब्दार्थः—किम्=किस लिये, आगतः=आए हुए हैं। प्रियसुहृदम्=प्रियमित्र, प्राचेतसम्=वाल्मीकि को। निर्वृत्तम्=सम्पन्न हुआ, हुआ। स्नेहात्=स्नेह के कारण अथवा स्नेह पूर्वक, द्रष्टव्यः=देखने के योग्य हैं, मिलने के पात्र हैं।

सौधातकिः—यथैते स्थविराः परस्परमेव मिलिताः, तथावामपि वटुभिः सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सवं खेलन्तो मानयावः। अथ कुत्र स जनकः?
(जह एदे [१]ट्ठविरा परस्परं एव्व मिलिदा, तह अह्मे वि वडुहिस्सह मिलअ अणज्झाअसूस्सवं खेलन्तो मणेम्ह। अह कुत्थ सो जणओ?)

दण्डायनः—तथायं प्राचेतसवसिष्ठायुपास्य संप्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्ष-मूलमधितिष्ठति। य एषः—

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।
अन्तःप्रसृ[२]प्तदहनो [३]जरन्निव वनस्पतिः॥ २॥

(इति निष्क्रान्तौ।)

। इति मिश्रविष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति जनकः।)

जनकः—

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।

मानयावः = मनावें॥

टीका—सौधातकिरिति। किम् = किमर्थमिति प्रश्नः, आगतः=आयातः। प्रियसुहृदम्=प्रियमित्रम्, प्राचेतसम्=वाल्मीकिम्। निर्वृत्तम्=सम्पन्नम्। स्नेहात्= प्रेम्णः, सस्नेहमिति यावत्, द्रष्टव्यः=साक्षात्कर्तव्यः, अवलोकनीयः इति यावत्॥

टिप्पणी—प्राचेतसम्—प्रचेता का पुत्र होने के कारण वाल्मीकि को प्राचेतस् कहते हैं। प्रचेतस् शब्द से प्रथमा के एक वचन में प्रचेता बनता है। **निर्वृत्तम्**—हो गया, पूरा हो गया। निर् + √वृत् + क्त + विभक्तिः। **प्रहिता**–प्र + √हि + क्तः + टाप् + विभक्तिः। **उपेत्य**–उप + √इ + ल्यप् + तुक् + विभक्तिः। **द्रष्टव्यः**–√दृश् + तव्य + विभक्तिः। **खेलन्तः**–√खेल + शतृ + विभक्तिः।

अन्वयः—हृदि, नित्यानुषक्तेन, सीताशोकेन, अन्तः प्रसृप्तदहनः, जरन्, वनस्पतिः, इव, तप्यते॥ २॥

शब्दार्थः—हृदि=हृदय में, नित्यानुषक्तेन=सर्वदा विद्यमान, सीताशोकेन=सीता के शोक से, अन्तःप्रसृप्तदहनः=भीतर ही भीतर फैली हुई आगवाले, जरन्=जीर्ण, वनस्पतिः=वृक्ष की, इव=तरह, तप्यते=जल रहे हैं॥ २॥

टीका—हृदीति। हृदि=चेतसि, नित्यानुषक्तेन=नित्यलग्नेन, सीताशोकेन= सीतानिमित्तदुःखेन, अन्तःप्रसृप्तदहनः–अन्तः=अभ्यन्तरे प्रसृप्तः=प्रसृतः, व्याप्त इति

---

१. सव्वे ट्ठविरा (सर्वे स्थविराः), २. प्रसुप्त, प्रदीप्त, ३. ज्वलन्।

सौधातकि--जिस प्रकार ये बूढ़े आपस में मिल गये हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी दूसरे विद्यार्थियों के साथ मिल कर छुट्टी (अनध्याय) के महोत्सव को खेलते हुए मनावें।

दण्डायन--और वे (महाराज जनक) अभी-अभी महर्षि वाल्मीकि और वसिष्ठ को प्रणाम करके आश्रम के बाहर पेड़ के नीचे आकर बैठे हुए हैं। जो यह (जनक)—

हृदय में सर्वदा विद्यमान सीता के शोक से, भीतर ही भीतर फैली हुई आग वाले जीर्ण वृक्ष की तरह, जल रहे हैं ॥ २ ॥

(यह कहकर दोनों निकल जाते हैं।)

(इस प्रकार यह मिश्र विष्कम्भक समाप्त हुआ।)

(तदनन्तर जनक प्रवेश करते हैं।)

जनक--मेरी सन्तान (सीता) के विषय में जो उस प्रकार का (निर्वासन रूप) अनर्थ हुआ, महान्, तीक्ष्ण, हृदय में घाव करने वाले तथा व्यथादायक उस

यावत्, दहनः=अग्निर्यस्य सः, एतदुभयत्र जनके वनस्पतौ च समानरूपेण विशेषणम्, जरन्=जीर्णतां गच्छन्, वनस्पतिरिव=वृक्ष इव, तप्यते=सन्तापमनुभवति। अत्रोपमाऽलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

टिप्पणी--अनुषक्त--अनु + √सञ्ज् + क्त + विभक्तिः। **प्रसृप्तः**-प्र + √सृप् + क्त + विभक्त्यादिः।

जरन्—जब वृक्ष अति पुराना हो जाता है, तब उसमें कोटरें बन जाती हैं। फिर आगे कभी किसी के द्वारा उसमें अग्नि का कण डाल देने से वह धीरे-धीरे सुलग कर जलता रहता है। ठीक यही स्थिति सीता के वियोग में महाराज जनक की है। √जृ + शतृ + प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम्।

इस श्लोक में 'जरन् इव' में 'इव' के द्वारा उपमा अलङ्कार है। छन्द का नाम है—अनुष्टुप्।

मिश्रविष्कम्भकः--इस विष्कम्भक में दण्डायन मध्यम पात्र है। अतः वह संस्कृत में बोलता है। दूसरा शिष्य निम्न श्रेणी का पात्र है। वह प्राकृत में बोलता है। अतः यह मिश्र विष्कम्भक है। विष्कम्भकका लक्षण—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

(साहित्यदर्पण ६। ५५,५६) ॥

अन्वयः--अपत्ये, यत्, तादृक्, दुरितम्, अभवत्, महता, तीव्रेण, व्रणितहृदयेन,

पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति ॥ ३ ॥

कष्टम् ! एवं नाम जरया दुःखेन च दुरासदेन भूयः पराकसान्तपनप्रभृतिभिस्तपोभिः [1]शोषितान्तःशरीरधातोरवष्टम्भ एव। अद्यापि मम दग्धदेहो न पतति। 'अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते [2]लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते, य आत्मघातिन' इत्येवमृषयो मन्यन्ते। अनेकसंवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभा[3]वनास्पष्टनिर्भासः प्रत्यग्र इव न मे दारुणो

व्यथयता, तेन, विषक्तः, पटुः, धारावाही, चिरेण, अपि, हि, नवः, इव, मे, मन्युः, क्रकचः, इव, मर्माणि, निकृन्तन्, न, विरमति ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—अपत्ये=सन्तान के विषय में, यत्=जो, तादृक्=उस प्रकार का, दुरितम्=पाप, अनर्थ, अभवत्=हुआ, महता=महान्, तीव्रेण=तीक्ष्ण, व्रणितहृदयेन=हृदय में घाव करने वाले, व्यथयता=व्यथा को उत्पन्न करने वाले, तेन=उससे, विषक्तः=संबद्ध, संसक्त, पटुः=समर्थ, धारावाही=निरन्तर रहने वाला, चिरेण=बहुत दिनों के बीत जाने पर, अपि=भी, हि=निश्चय ही, नवः=नवीन, नया, इव=सा, मे=मेरा, मन्युः=शोक, क्रकचः=आरे की, इव=भाँति, मर्माणि=मर्मस्थलों को निकृन्तन्=काटता हुआ, न=नहीं, विरमति=शान्त हो रहा है ॥ ३ ॥

टीका—अपत्य इति। अपत्ये=सन्ततौ, सीतायामित्यर्थः, यत्=यस्मात्, तादृक्=तादृशम्, अचिन्त्यमिति भावः, दुरितम्=कौलीनरूपपापं व्यसनं वा, अभवत्=जातम्, महता=विपुलेन, तीव्रेण=अतिप्रचुरेण, दारुणेन वा, व्रणितहृदयेन—व्रणितम्=व्रणं सञ्जातमस्येति व्रणितम्=सञ्जातव्रणम्, हृदयम्=चेतो येन तादृशेन, व्यथयता=दुःखं प्रापितेन, पीडयता वा, तेन=सीतापरित्यागरूपदुरितेनेत्यर्थः, विषक्तः=प्रसक्तः, संसक्तो वा, पटुः=तीक्ष्णः, धारावाही—धारया वहतीति धारावाही=अत्यन्तनैरन्तर्येण प्रवाहीत्यर्थः, चिरेण=चिरकालेन, अपि=च, हीति दार्ढ्ये, नवः=अचिरजातः, इव=यथा, मे=मम, मन्युः=शोकः कोपो वा, क्रकच इव=करपत्रमिव, मर्माणि=हृदयादीनि, निकृन्तन्=छिन्दन्, न विरमति=न शाम्यति। अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालङ्कारौ। शिखरिणी छन्दः ॥ ३ ॥

टिप्पणी—दुरितम्—दुरित का अर्थ होता है—अनर्थ, पाप। किन्तु यहाँ लोकापवाद के कारण सीता के परित्यागरूपी अनर्थ से अभिप्राय है। √दुर्+इ+क्त+विभक्तिः।

---

१. आत्तरसधातुरनवष्टम्भो नाद्यापि, २. लोकास्तेभ्यः, ३. भावनया।

(परित्याग) से सम्बद्ध, (हृदय को चीरने में) समर्थ, निरन्तर रहने वाला, बहुत दिनों के बीत जाने पर भी नवीन-सा मेरा यह शोक, आरे की भाँति, मर्म-स्थलों को काटता हुआ नहीं शान्त हो रहा है ॥ ३ ॥

विशेष—सीता पर कलङ्क लगाया गया। फलतः राम ने सीता का परित्याग कर दिया। इस परित्याग के कारण महाराज जनक को महान् शोक हुआ। यह शोक निरन्तर उनके हृदय को चीरता रहता है ॥ ३ ॥

दुःख की बात है कि इस प्रकार वृद्धावस्था तथा दुःसह दुःख और फिर पराक सान्तपन आदि तपस्याओं (व्रतों) से शरीर के भीतरी धातुओं रक्त (मांस मज्जा आदि) को सुखा देने वाले (मेरा) शरीर केवल खड़ा भर है (अर्थात् जीवित भर है)। अब भी मेरा यह अभागा शरीर नहीं गिर रहा है। ऋषियों का मत है कि जो लोग आत्म-हत्या करते हैं, वे मर कर उन लोकों को जाते हैं, जहाँ भयंकर अन्धकार रहता है और कभी भी सूर्य का प्रकाश नहीं होता है। कई वर्षों के बीत जाने पर भी प्रतिक्षण (सीता विषयक) चिन्तन से स्पष्ट प्रकाशयुक्त और नवीन-

---

विषक्तः—संबद्ध। वि + √सञ्ज् + क्त + विभक्तिः। **व्रणितम्**-व्रण कहते हैं घाव को और जो घाव से युक्त हो उसे व्रणित कहते हैं। व्रण + इतच् + विभक्त्यादिः। **व्यथयता**—√व्यथ् + णिच् + शतृ + विभक्तिः। "मितां ह्रस्वः" (६।४।९२) से उपघा के आ को ह्रस्व।

निकृन्तन्—नि + √कृत् (छेदने) + शतृ + प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम्।

क्रकच इव—जनक के कहने का भाव यह है कि आरा जैसे लकड़ी को काटता है, वैसे ही सीता के निर्वासन का शोक मेरे मर्मस्थलों को छिन्न-भिन्न कर रहा है।

इस श्लोक में 'नव इव' में इव उत्प्रेक्षा सूचक है और "क्रकच इव" में इव उपमा का बोध कराता है। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा और उपमा अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—जरया = वृद्धावस्था के द्वारा, दुरासदेन = दुःसह, पराकसान्तपनप्रभृतिभिः=पराक तथा सान्तपत आदि, शोषितान्त=शरीरधातोः=शरीर के भीतरी धातुओं (मांस, मज्जा तथा वीर्य आदि) को सुखा देनेवाले, अवष्टम्भः=रुका हुआ है। दग्धदेहः=अभागा शरीर, न पतति=नहीं गिर रहा है। प्रतिविधीयन्ते = प्रतिविधान किया जाता है। अनेकसंवत्सरातिक्रमे=कई वर्षों के बीत जाने पर, प्रतिक्षण-परिभावनास्पष्टनिर्भासः=प्रतिक्षण (सीता विषयक) चिन्तन से स्पष्ट प्रकाशयुक्त,

दुःखसंवेगः प्रशाम्यति । अयि मातर्देवयजन[1]संभवे ![2] ईदृशस्ते निर्माण-भागः परिणतः ! येन लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितुं न शक्यते । हा[3] पुत्रि !

प्रत्यग्रः=नवीन, दुःखसंवेगः=दुःख का आवेग । देवजनसंभवे=यज्ञभूमि से उत्पन्न, ईदृशः=ऐसा, निर्माणभागः=जन्म के भाग्य का, परिणतः=परिणाम हुआ, स्वच्छन्दम्=खुल कर, यथेच्छ, आक्रन्दितुम्=रोने के लिये भी ॥

टीका—कष्टमिति । जरया=वृद्धावस्थया, दुरासदेन=दुरभिभवेन, पराकश्च सान्तपनं च पराकसान्तपने ते प्रभृतिनी=आद्ये येषां तैः, पराकसान्तपनप्रभृतिभिः= पराकसान्तपनेत्यादिभिः, शोषितान्तःशरीरधातोः–शोषिताः=नीरसीकृताः अन्तःशरीर-धातवः=अन्तर्देहधातवो यस्यासौ तस्य, ममेति शेषः, अवष्टम्भः=शरीरधारणम् । दग्धदेहः=निन्दितं शरीरम्, अत्र निन्दायां दग्धशब्दः, न पतति=न विनश्यति । प्रतिविधीयन्ते=आत्मघातफलभोगार्थं नियुज्यन्त इति भावः । अनेकसंवत्सरातिक्रमे= बहुकालयापने, अपि=च, प्रतिक्षण–भावनास्पष्टनिर्भासः–प्रतिक्षणम्=सन्ततं परि-भावनया=सीताविषयिण्या चिन्तया, स्पष्टः=स्फुटः निर्भासः=प्रकाशो यस्य सः प्रत्यग्रः=नवीनः, ("प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः" इत्यमरः), दुःख-संवेगः–दुःखस्य=कष्टस्य संवेगः=आवेगः । देवयजनसंभवे–देवा इज्यन्ते अस्मिन्निति देवयजनम्=यज्ञस्थलम्, तस्मात् संभवः=उत्पत्तिर्यस्याः=सा तत्सम्बुद्धौ, ईदृशः=एता-दृशः, निर्माणभागः–निर्माणस्य=देहधारणस्य, रचनाया इति यावत्, भागः=भाग्यम्, परिणतः=फलितः, स्वच्छन्दम्=यथेच्छम्, आक्रन्दितुम्=रोदितुम् अपि न शक्यते ॥

टिप्पणी—पराक-सान्तपन०—जनक एक तो वृद्ध हो चले हैं । दूसरे सीता के निर्वासनविषयक दुःख ने तो उन्हें जर्जर बना दिया है और तीसरे व्रतों एवम् उपवासों ने उन्हें एकमात्र अस्थिपञ्जरमात्र करके रख दिया है । फिर भी उनका शरीर खड़ा है, गिर नहीं जाता । यही दुःख है जनक के मन में ।

पराक—पराक व्रत शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है । यह एक कठिन व्रत है । इस व्रत में इन्द्रियों और मन को वश में रखते हुए १२ दिन उपवास किया जाता है । मनु एवं याज्ञवल्क्य ने पराक का लक्षण इस प्रकार किया है—

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
परोको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥

(मनु० ११।२१५)

१. यजनवेदिसं०, २. सीते, ३. हा हा ।

सा, मेरे दुःख का आवेग नहीं शान्त हो रहा है। यज्ञभूमि से उत्पन्न होने वाली हे माता सीता, तुम्हारे जन्म के भाग्य का ऐसा परिणाम हुआ। जिससे लज्जा के कारण खुलकर रोया भी नहीं जा सकता। हाय बेटी,

---

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥

(याज्ञ० ३।३२१)

सन्तापन—इस व्रत में प्रथम दिन पंचगव्य और कुशोदक का पान किया जाता है और दूसरे दिन उपवास किया जाता है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रसान्तपनं स्मृतम् ॥

(मनु० ११।२१२)

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत् कृच्छ्रसान्तपनं परम् ॥

(याज्ञ० ३।३१५)।

अवष्टम्भः—खड़ा है, रुका है। जनक के कहने का भाव यह है कि इतना तप करने पर भी मेरा शरीर नष्ट नहीं हो जा रहा है। अव+√स्तम्भ+घञ्+विभक्तिः।

दग्ध०—√दह्+क्त+विभक्तिः।

अन्धतामिस्राः—भीषण अन्धकार से भरे हुए। अन्धं तामिस्रं तेषु ते बहु०। तमिस्रमेव तामिस्रं स्वार्थ में अण्।

असूर्याः—अविद्यमानः सूर्यो येषु ते। सूर्य से रहित। जहाँ कभी भी सूर्य की किरणें नहीं दीख पड़ती उन्हें असूर्य लोक कहते हैं।

प्रेत्य—प्र+√इ+ल्यप्+मध्ये तकारागमः। आत्मघातिनः–आत्मन्+√हन्+णिनि (इन्)+विभक्तिः।

अयि मातः—हे माता, हे आदरणीया। यहाँ मातृ शब्द का प्रयोग पूजनीय अर्थ में किया गया है।

परिणतः -परि+√नम्+क्त+विभक्तिः ॥

अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि स्खलदसमञ्जस[1]मञ्जुजल्पितं ते ।।४।।

भगवति वसुन्धरे ! सत्यमति दृढासि ।

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी, गङ्गा च[2] यस्या विदु-
 र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः ।
विद्यां वागिव यामसूत भवती,[3] शुद्धिं गतायाः पुन-
 स्तस्यास्त्वद्[4]दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणे मृष्यथाः ? ।।५।।

अन्वयः—अनियतरुदितस्मितम्, विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्, स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितम्, शिशोः, ते, वदनकमलकम्, स्मरामि ।। ४ ।।

शब्दार्थः—अनियतरुदितस्मितम्=अनियमित रुदन तथा मुस्कान से युक्त, विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्=कलियों के अग्रभाग की तरह कुछ कोमल दाँतों से सुशोभित, स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितम्=लड़खड़ाती हुई, असंगत और मनोहर तोतली बोली (जल्पित) से युक्त, शिशोः=बाल्यकालवाले, ते=तुम्हारे, वदनकमलकम्=मुखकमल को, स्मरामि=याद कर रहा हूँ ।। ४ ।।

टीका—अनियतेत्यादिः अनियते=नियमरहिते, अनिर्हेतुकत्वादिति भावः, रुदितं च स्मितञ्चेति रुदितस्मिते=रोदनहासौ यस्मिन् तत् तादृशम्, विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्—विराजन्ति=शोभमानानि कतिपयानि=कियन्ति कोमलानि=मृदूनि दन्तकुड्मलाग्राणि—दन्ता एव कुड्मलाग्राणि=दशनमुकुलाग्राणि यस्मिन् तत् तादृशम्, अत्र कुड्मलाग्रशब्दस्य न पूर्वनिपातः । न वा दन्तशब्दस्य दतादेशः । स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितम्—स्खलत् = अपूर्णम् असमञ्जसम्=पूर्वापरसंगतिरहितं मञ्जु=सुन्दरं जल्पितम्=वचनं यस्य तत्तथोक्तम्, शिशोः=बालिकायाः, ते=तव, सीताया इत्यर्थः, वदनकमलम्—वदनम्=आननं कमलमिव=जलजमिव, "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे, इति उपमितकर्मधारयः अनुकम्पितं वदनकमलमिति वदनकमलकम्=मुखपद्मकमित्यर्थः, अनुकम्पायां कन्, स्मरामि=चिन्तयामि । अत्रोपमा स्वभावोक्तिश्चालङ्कारौ । पुष्पिताग्रा छन्दः ।। ४ ।।

टिप्पणी – अनियतरुदित०—बच्चे कभी अकारण रोते हैं और कभी हँसते हैं । उनके रोने और हँसने का कोई कारण एवं समय नहीं हुआ करता । स्खलत्—√स्खल्+शतृ+विभक्त्यादिः ।

---

१. मुग्ध०, २. हि, ३. तद्वत्तु या दैवतं, ४. त्वम् ।

अनियमित रुदन तथा मुस्कान से युक्त, कलियों के अग्रभाग की तरह कुछ कोमल दाँतों से सुशोभित, लड़खड़ाती हुई, असंगत और मनोहर तोतली बोली (जल्पित) से मंडित, बाल्यकाल वाले तुम्हारे मुखकमल को मैं याद कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

भगवती पृथिवी, सचमुच तुम अति-कठोर हो ।

हे कठोर हृदय वाली (पृथिवी), जिस (सीता) की महिमा को तुम, अग्नि, मुनिजन, वसिष्ठ की पत्नी (अरुन्धती), गंगा तथा रघुवंश के आदि पुरुष भगवान् सूर्य स्वयं जानते हैं । सरस्वती ने जैसे विद्या को (जन्म दिया है, उसी प्रकार) आपने जिस (सीता) को पैदा किया है और जो (अग्नि-परीक्षा के द्वारा) शुद्धि को प्राप्त हुई थी उस तुम्हारी बेटी की फिर उसी प्रकार की (परित्यागरूपी) हिंसा को तुमने कैसे सहन किया ? ॥ ५ ॥

'दन्तकुड्मलाग्रम्' और 'वदनकमलकम्' में इव लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है। मालतीमाधव (१०।२) में भी यह श्लोक इसी रूप में है। कालिदास के श्लोक ७।१६ से इसकी तुलना की जा सकती है ।

श्लोक में प्रयुक्त पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण—

अयुजि नयुगरेफतो यकारो ।
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे दारुणे, यस्याः, माहात्म्यम्, त्वम्, वह्निः, मुनयः, वसिष्ठगृहिणी, गङ्गा, च, यदि वा, रघोः, कुलगुरुः, देवः, भास्करः, स्वयम्, विदुः, वाक्, विद्याम्, इव, भवती, याम्, असूत, शुद्धिम्, गतायाः, तस्याः, त्वद्दुहितुः, पुनः, तथा, विशसनम्, किम्, अमृष्यथाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—हे दारुणे–हे कठोर हृदयवाली, यस्याः=जिस (सीता) की, माहात्म्यम्=महिमा को, त्वम्=तुम, वह्निः=अग्नि, मुनयः=मुनि लोग, वसिष्ठगृहिणी=वसिष्ठ की पत्नी (अरुन्धती), गङ्गा=गंगा, च=भी, यदि वा=तथा, रघोः=रघुवंश के, कुलगुरुः=आदि पुरुष, देवः=भगवान्, भास्करः=सूर्य, स्वयम्=खुद, विदुः=जानते हैं । वाक्=सरस्वती ने, विद्यामिव=जैसे विद्या को (जन्म दिया है, उसी प्रकार), भवती=आपने, याम्=जिसको, असूत=पैदा किया है, उत्पन्न किया है; शुद्धिम्=शुद्धि को, गतायाः=प्राप्त हुई, तस्याः=उस, त्वद्दुहितुः=तुम्हारी बेटी की, पुनः=फिर, तथा=उस प्रकार की, विशसनम्=हिंसा को, किम्=कैसे, अमृष्यथाः=सहन किया है ? ॥ ५ ॥

(नेपथ्ये)

इत इतो भगवतीमहादेव्यौ ।

जनकः—अये ? गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती (उत्थाय ।) [1]कां पुनर्महादेवीत्याह ? (निरूप्य) हा हा ! कथमियं महाराजस्य दशरथस्य [2]धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या ? क [3]एतां प्रत्येति सैवेयमिति नाम[4] ? ।

टीका—त्वं वह्निरिति । हे दारुणे=हे कठोर-हृदये, यस्याः=यस्याः सीतायाः, माहात्म्यम्=महिमानम्, पातिव्रत्यमित्यर्थः, त्वम्=पृथिवी, वेत्सीति शेषः, एवं च वह्निः=अग्निः, मुनयः=वाल्मीक्यादय ऋषयः, वशिष्ठगृहिणी—वसिष्ठस्य=कुलगुरोः गृहिणी=पत्नी, अरुन्धतीत्यर्थः; गङ्गा-भागीरथी, रघोः=दिलीपपुत्रस्य राज्ञः, कुलगुरुः=वंशाचार्यः, वसिष्ठ इत्यर्थः, यदि वा=अथवा, देवो भास्करः=सूर्यः, स्वयम्=आत्मना, न तु परोपदेशद्वारेति भावः, यस्या माहात्म्यं विदुरिति सम्बन्धो योज्यः, विदुरित्यस्य विभक्तिवचनयोर्विपरिणामेन योजना । वाक्=सरस्वती, ("ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती ।" इत्यमरः ।) विद्यामिव=शास्त्रमिव, भवती=त्वम्, याम्=सीताम्, असूत्=सूतवती, शुद्धिम्=वह्निशुद्धिम् पवित्रतामिति यावत्, गतायाः=प्राप्तायाः, त्वद्दुहितुः—तव=भवत्याः दुहितुः=पुत्र्याः, सीताया इत्यर्थः, पुनः=भूयः, रावणहननान्तरमिति भावः, तथा=तेन रूपेण, अतिक्रूरभावेनेत्यर्थः, विशसनम्=हिंसनम्, सीतापरित्यागरूपं विशसनमिति भावः, किं मृष्यथाः=कथं सोढवत्यसि । अत्र तुल्ययोगितोपमा चालंकारौ । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ५ ॥

टिप्पणी—विदुः—कवि ने श्लोक में केवल "विदुः" का प्रयोग किया है । किन्तु "विद्" धातु का प्रत्येक के साथ यथायोग्य रूप बना कर प्रयोग करना होगा । जैसे - त्वं वेत्थ, वह्निः वेद, मुनयः विदुः, वसिष्ठगृहिणी वेद, गङ्गा वेद, देवो भास्करः वेद । एक शेष के आधार पर यहाँ 'विदुः' रूप मानने में गड़बड़ी यह है कि प्र० पु० और म० पु० के समाहार में मध्यम पुरुष शेष रहता है । श्लोक में त्वं पद का प्रयोग हुआ है । अतः मध्यम पुरुष बहुवचन आना चाहिये । इसलिये विदुः का यथायोग्य रूप बनाकर यहाँ अर्थ करना उचित होगा । अथवा 'त्वं' के लिये 'वेत्थ' का अध्याहार करके अन्यों के लिये विदुः प्रयोग उचित माना जा सकता है ।

रघोः कुलगुरुः—इसके दो अर्थ किये जा सकते हैं—(१) रघुवंश के कुल-गुरु

---

१. का···देवीत्युक्ता, २. पत्नी, ३. एतत्, एवम्, ४. क्वचिन्नामेति नास्ति ।

(पर्दे के पीछे)

भगवती (अरुन्धती) और महादेवी (कौसल्या) इधर से, इधर से आइये ।

जनक--(देखकर) अरे, गृष्टि नामक कञ्चुकी के द्वारा जिसके लिये मार्ग बतलाया जा रहा है, ऐसी यह भगवती अरुन्धती हैं । (उठ कर) अच्छा तो महादेवी किसको कहा है ? (ध्यान से देख कर) हाय, हाय, क्या यह महाराज दशरथ की धर्म-पत्नी और मेरी प्रिय सखी कौसल्या हैं ? कौन इन पर विश्वास करेगा कि यह वही (कौसल्या) हैं ?

वसिष्ठ तथा (२) रघुवंश के प्रवर्तक भगवान् सूर्य । 'मुनयः' पद से वसिष्ठ का ग्रहण हो जाता है । यही कारण है कि 'मुनयः' के बाद ही 'वसिष्ठगृहिणी' पद का प्रयोग किया गया है । अतः 'कुलगुरुः' पद से भगवान् भास्कर का ग्रहण करना अधिक उचित प्रतीत होता है ।

विशसनम्--लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग रूपी वध । वि+√शस्+ल्युट्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में प्रस्तुत त्वं वह्निः आदि का एक क्रिया विदुः के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है । 'वागिव' में उपमा अलंकार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द शार्दूलविक्रीडित का लक्षण इस प्रकार है—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।। ६ ।।

शब्दार्थः—गृष्टिना=गृष्टि नामक कंचुकी के द्वारा, उपदिश्यमानमार्गा=जिसके लिये मार्ग बतलाया जा रहा है, ऐसी, महादेवी=महारानी । निरूप्य=ध्यान से देख कर, धर्मदाराः=धर्मपत्नी, प्रत्येति=विश्वास करेगा ॥

टीका--**जनक इति** । गृष्टिना=गृष्टिनामकेन कञ्चुकिना, उपदिश्यमानमार्गा–उपदिश्यमानः=निर्दिश्यमानः मार्गः=पन्थाः यस्याः सा । निरूप्य=हेतुभिर्विचार्य, सम्यग्दृष्ट्वेत्यर्थः । महादेवी=महाराज्ञी, धर्मदाराः=सहधर्मचारिणी, अश्वघासादिवत्समासः । प्रत्येति=विश्वसिति ॥

टिप्पणी--**उपदिश्यमान०**—उप+ √दिश्+शानच् + विभक्त्यादिः । **प्रत्येति**–प्र+√इ+लटि विभक्तिः ।

धर्मदाराः--दार शब्द का प्रयोग पुंलिंग बहुवचन में ही हुआ करता है । दार शब्द का अर्थ स्त्री है ॥

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा ।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः[1] ॥ ६ ॥
य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः ।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—इयम्, दशरथस्य, गृहे, श्रीः, यथा, आसीत्, वा, श्रीः, एव, उपमान-पदेन, किम् ? कष्टम्, बत, दैववशेन, अन्यत्, किमपि, दुःखात्मकम्, भूतम्, इव, जाता, अहो, विकारः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—इयम्=यह, दशरथस्य=दशरथ के, गृहे=घर में, श्रीः=लक्ष्मी, यथा=जैसी, आसीत्=थीं, वा=अथवा, श्रीः=लक्ष्मी, एव=ही थीं, उपमानपदेन=उपमा वाचक शब्द (यथा) से, किम्=क्या प्रयोजन; कष्टं बत=हाय कष्ट है, दैववशेन=दुर्भाग्यवश, अन्यत्=अन्य, किमपि=किसी, दुःखात्मकम्=अति दुःखित, भूतम्=प्राणी की, इव=तरह, जाता=हो गई है, अहो=ओह, आश्चर्यजनक, विकारः=विकृति हो गई है, परिवर्तन हो गया है ॥ ६ ॥

टीका—**आसीदिति** । इयम्=एषा, कौसल्येत्यर्थः, दशरथस्य=रामस्य पितुः, गृहे=भवने, श्रीः=लक्ष्मीः, यथा=इव, आसीत्=अभूत्; वा=अथवा, श्रीः=साक्षात् लक्ष्मीः, एवेति दार्ढ्यसूचनार्थम्, उपमानपदेन=उपमाबोधकयथाशब्देन, किम्=किं प्रयोजनम् ? न किमपीत्यर्थः । कष्टं बत=महद्दुःखं वर्तते, दुःखातिशयद्योतनार्थं कष्टं बत इति पदद्वयप्रयोगः, दैववशेन=दुर्भाग्यवशादित्यर्थः, अन्यत्=अपरम्, किमपि=अनिर्वचनीयम्, दुःखात्मकम्=दुःखस्वरूपम्, भूतम्=प्राणिविशेषः, साक्षादलक्ष्मीरिति भावः, जाता=संवृत्ता । अहो=आश्चर्यम्, विकारः=विकृतिः, दुष्परिणाम इत्यर्थः । अत्रोपमोत्प्रेक्षाऽतिशयोक्तिश्चालङ्काराः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—**श्रीरेव**—कौसल्या केवल लक्ष्मी के ही तुल्य नहीं, अपितु साक्षात् लक्ष्मी ही है ।

उपमान॰—उप + √मा + भावे ल्युट् + विभक्त्यादिः । **विपाकः**—वि + √पच् + घञ् + कुत्वम् + विभक्तिः ।

"यथा श्रीः" में यथा से उपमा है, 'श्रीरेव' में कौसल्या को श्री कहने से अतिशयोक्ति अलङ्कार है । "अन्यदिव" में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है ।

श्लोक में प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ६ ॥

---

१. विपाकः ।

यह दशरथ के घर में लक्ष्मी जैसी थीं, अथवा लक्ष्मी ही थीं, उपमा-वाचक (यथा) शब्द से क्या प्रयोजन ? हाय बड़ा कष्ट है कि दुर्भाग्यवश (आज वही) अन्य किसी अति दुःखित प्राणी की तरह हो गई हैं। आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है ॥ ६ ॥

जो व्यक्ति पहले मेरे लिये मूर्तिमान् महोत्सव थी (आज) उसका ही दर्शन, मेरे लिये, घाव पर नमक की तरह असह्य हो गया है ॥ ७ ॥

अन्वयः—यः, एव, जनः, पूर्वम्, मे, मूर्तः, महोत्सवः, आसीत्; (अद्य); तस्य, एव, दर्शनम्, क्षते, क्षारम्, इव, असह्यम्, जातम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—यः=जो, एव=ही, जनः=व्यक्ति, पूर्वम्=पहले, मे=मेरे लिये, मूर्तः=मूर्तिधारी, मूतिमान्, साक्षात्, महोत्सवः=महोत्सव, आनन्द, आसीत्=थीं, (अद्य= आज), तस्य=उसका, एव=ही, दर्शनम्=दर्शन, क्षते=घाव पर, क्षारम्=नमक की, इव=तरह, असह्यम्=असह्य, जातम्=हो गया है ॥ ७ ॥

टीका—य एवेति । यः कौसल्यारूपः, एवेत्यन्ययोगव्यवच्छेदार्थम्, जनः= व्यक्तिः, पूर्वम्=सीताविवासनात् प्राक्, मे=मम जनकस्य, मूर्तः=मूर्तिमान्, साक्षादिति यावत्, महोत्सवः=निर्भरानन्दसन्दोहः, आसीत्=अभूत्; अद्येति शेषः, तस्यैव कौसल्यारूपस्य जनस्येत्यर्थः, दर्शनम्=साक्षात्कारः, क्षते=व्रणे, शस्त्रादिभिर्निर्भिन्ने अङ्गे, क्षारमिव= लवणमिव, असह्यम्=सोढुमशक्यम्, जातम्=संवृत्तम् ॥ अत्र रूपकमुपमा चालंकारौ । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

टिप्पणी—मूर्तः— √मूर्च्छ्+क्त+विभक्तिः ।

क्षते क्षारमिव—यह मुहावरा है । इसका हिन्दी में रूपान्तर है—जले पर नमक डालना या घाव पर नमक छिड़कना ।

असह्यम्—न (अ)+ √सह्+यत्+विभक्तिः । **जातम्**– √जन्+क्त+ विभक्तिः ।

तस्यैव दर्शनम्—जब तक जानकी महाराज दशरथ के घर में थीं सभी व्यक्ति आनन्द के सागर में विहार कर रहे थे । किन्तु जब से सीता का निर्वासन हो गया तब से मानो उस राज-प्रासाद में कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा है। सभी उदासीन दुःखी तथा दुर्बल हैं । उन्हें देखते ही सीता का स्मरण हो आता है एवं महान् कष्ट की अनुभूति होती है ।

"जनः मूर्तो महोत्सवः" में रूपक अलङ्कार है । यहाँ कौसल्या पर महोत्सव का आरोप किया गया है । "क्षारमिव" में इव के द्वारा उपमा कही गई है ।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती कौसल्या कञ्चुकी च ।)

अरुन्धती--ननु ब्रवीमि 'द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह' इत्येवं[1] वः कुलगुरोरादेशः । अत एव चाहं प्रेषिता । तत्कोऽयं पदे पदे महान[2]ध्यवसायः ?

कञ्चुकी—देवि ! [3]संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशमिति विज्ञापयामि ।

कौसल्या--ईदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वदुःखान्यवतरन्ति । तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम् । (ईरिसे काले मिहिलाहिवो मए दिट्ठव्वो त्ति समं एव्व सव्वदुःखाइं ओदरन्ति । ता ण सक्कणोमि उव्वट्टमाणमूलबन्धणं हिअअं पज्जवत्थावेदुम् ।)

अरुन्धती--अत्र कः सन्देहः ?

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि [4]सम्बन्धिवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥ ८ ॥

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् । छन्द का लक्षण—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ७ ॥

शब्दार्थः--द्रष्टव्यः=देखने योग्य हैं, मिलने योग्य हैं, स्वयमुपेत्य=स्वयं पास जाकर। अनध्यवसायः–अनुत्साह, अनुद्योग, सुस्ती। संस्तभ्य=अपने आपको संभालकर, आत्मानम्=अपने आपको, अनुरुध्यस्व=मानिये, पालन कीजिये, विज्ञापयामि=निवेदन कर रहा हूँ। ईदृशे काले=ऐसे समय में अर्थात् सीता के परित्याग के बाद, मिथिलाधिपः=मिथिला के राजा, अवतरन्ति=उतरते हैं, आते हैं । उद्वर्तमानमूलबन्धनम्=उखड़ रहा है मूल बन्धन जिसका ऐसे, पर्यवस्थापयितुम्=सभालने में, स्थिर करने में ॥

टीका—अरुन्धतीति । द्रष्टव्यः=अवलोकनीयः, स्वयमुपेत्य=स्वयमेव तत्समीपं गत्वा, अनध्यवसायः=संशयः, अनुद्योगो वा । संस्तभ्य=स्थिरीकृत्य, आत्मानम्=स्वम्, अनुरुध्यस्व=अनुसर, विज्ञापयामि=निवेदयामि । ईदृशे=एतादृशे, काले=समये, सीतापरित्यागकाल इत्यर्थः, मिथिलाधिपः=महाराजो जनक इत्यर्थः, अवतरन्ति=हृदये प्रादुर्भवन्ति । उद्वर्तमानमूलबन्धनम्-उद्वर्तमानम्=उद्गच्छत् मूलबन्धनम्=मूलनियन्त्रणं यस्य तत् तादृशम्, पर्यवस्थापयितुम्=प्रकृतिस्थं विधातुम् ॥

टिप्पणी—उपेत्य—उप + √इ + ल्यप्, तुगागमः । **अनध्यवसायः**–नञ् + अधि + अव + √सो (सा) + घञ् + विभक्त्यादिः । **संस्तभ्य**–सम् + √स्तम्भ + ल्यप् । **पर्यवस्थापयितुम्**–परि + अव + √स्था + णिच् + तुमुन् ॥

---

१. एषः, २. महानध्य०, ३. संस्तम्भय, ४. सद्बन्धु० ।

(तदनन्तर अरुन्धती, कौसल्या और कञ्चुकी प्रवेश करते हैं ।)

अरुन्धती—मैं कह रही हूँ न कि-आपके कुलगुरु (वसिष्ठ) का आदेश है कि-आप को स्वयं महाराज जनक के पास जाकर उनसे मिलना चाहिये । इसीलिये उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है । तो फिर पग-पग पर (आपका) यह कैसा अनुत्साह है ?

कञ्चुकी—महारानी, मैं आप से निवेदन करता हूँ कि आप अपने आप को सँभाल कर भगवान् वसिष्ठ की आज्ञा का पालन कीजिये ।

कौसल्या—ऐसे समय में (अर्थात् सीता के परित्याग के बाद) मिथिला के राजा (जनक) से मुझे मिलना है, इस कारण से एक साथ ही सारे के सारे दुःख प्रकट हो रहे हैं । अतः मैं उखड़ रहा है मूल बन्धन जिसका ऐसे अपने हृदय को सँभालने में असमर्थ हो रही हूँ ।

सतत प्रवहमान, सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न, मनुष्यों के दुःख प्रिय जन के दिखलाई पड़ने पर दुःसह होकर हजारों प्रवाहों से बहने-से लगते हैं ॥ ८ ॥

विशेष—अरुन्धती के कहने का भाव यह है कि सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न दुःख उस समय हजार गुना होकर उमड़ पड़ता है जब कोई अपना प्रिय व्यक्ति सामने आ जाता है । उस समय दुःख को रोकना बड़ा कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥

अन्वयः—मानुषाणाम्, सन्तानवाहीनि, अपि, संबन्धिवियोगजानि, दुःखानि, प्रेयसि, जने, दृष्टे, दुःसहानि, (भूत्वा), स्रोतःसहस्रैः, संप्लवन्ते, इव ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—मानुषाणाम्=मनुष्यों के, सन्तानवाहीनि=अविच्छिन्नगति से बहने वाले, सतत बहने वाले, अपि=भी, संबन्धिवियोगजानि=सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न, दुःखानि=दुःख, प्रेयसि=प्रिय, जने=जन के, दृष्टे=दिखलाई पड़ने पर दुःसहानि=दुःसह, (भूत्वा=होकर), स्रोतःसहस्रैः=हजारों प्रवाहों से, संप्लवन्ते इव=बहने से लगते हैं ॥ ८ ॥

टीका—सन्तानवाहीन्यपीति । मानुषाणाम्=नराणाम्, सन्तानेन वहन्तीति सन्तानवाहीनि=अविच्छिन्नप्रवाहवन्ति, अपि=च, सम्बन्धिवियोगजानि–संबन्धिनाम्= बन्धुजनानां वियोगेन=विरहेण जायन्ते=प्रादुर्भवन्ति इति, दुःखानि=कष्टानि, प्रेयसि= प्रिये, जने=व्यक्तौ, दृष्टे=अवलोकिते सति, दुःसहानि=असह्यानि, भूत्वेति शेषः, स्रोतःसहस्रैः–स्रोतसाम्=प्रवाहानां सहस्रैः=अनन्तैः, अनन्तप्रवाहैरित्यर्थः, संप्लवन्ते= उद्गच्छन्ति, इवेत्युत्प्रेक्षा । अत्र क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—०वाहीनि— √वह् + णिनि + विभक्तिः । **मानुषाणाम्**–मनोः अपत्यानि (जातिः), मनु + अञ् + षुकच् + विभक्तिः, पक्षे–मनु + यत् = मनुष्य, ('मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च' पा० ४।१।१६१) **प्रेयसि**-प्रिय + ईयसुन् + विभक्तिः, "प्रियस्थिर०" पा० ६।४।१५७ इति प्र आदेशः । **दुःसहानि**–दुस् + √सह + खल् + विभक्तिः ॥

कौसल्या—कथं नु खलु वत्साया मे वध्वा वनगतायास्तस्याः पितू राजर्षेर्मुखं दर्शयामः ? (कहं णु खु बच्चाए मे बहूए वनगदाए तस्सा पिदुणो राएसिणो मुहं दंसम्ह ?)

अरुन्धती—

एष वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः ।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ ॥ ९ ॥

कौसल्या—एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे वध्वाः पिता विदेहराजः सीरध्वजः । स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान्दिवसान् । हा देव ! सर्वं तन्नास्ति । (एसो सो महाराअस्स हिअअणिव्विसेसो वच्चाए मे वहूए पिदा विदेहराओ सीरद्धओ । सुमरिदह्मि अणिव्वेदरमणीए दिवहे । हा देव्व ! सव्वं तं णत्थि ।)

संप्लवन्ते इव—में इव क्रिया-संबन्धी उत्प्रेक्षा का सूचक है । अतः इस श्लोक में क्रियोत्प्रेक्षाऽलंकार है ।

श्लोक में प्रयुक्त इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—वत्सायाः = बेटी, वध्वाः=वधू, वनवासगतायाः=वन में निर्वासित, तस्याः=उस सीता के, पितुः=पिता जनक को ॥

टीका—कौसल्येति । वनवासगतायाः–वनवासे=अरण्यनिर्वासने गतायाः= प्रेषितायाः, वत्सायाः=वात्सल्यभाजः, वध्वाः=स्नुषायाः, सीताया इत्यर्थः, पितुः= जनकस्य ॥

टिप्पणी—**वत्सायाः**—प्रिय बेटी के । यहाँ सीता के लिये प्रयुक्त वत्सा शब्द अतिशय स्नेह का सूचक है ॥

अन्वयः—एषः, वः, श्लाघ्यसम्बन्धी, जनकानाम्, कुलोद्वहः, (अस्ति); यस्मै, याज्ञवल्क्यः, मुनिः, ब्रह्मपारायणम्, जगौ ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—एषः=यह, वः=आप के, श्लाघ्यसंबन्धी=प्रशंसनीय संबन्धी (समधी), जनकानाम्=जनकवंशीय राजाओं के, कुलोद्वहः=कुल-श्रेष्ठ, (अस्ति=हैं); यस्मै= जिन्हें, याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य, मुनिः=मुनि ने, ब्रह्मपारायणम्=ब्रह्म-विद्या का उपदेश, जगौ=दिया है ॥ ९ ॥

टीका—एष व इति । एषः=पुरःस्थितः, वः=युष्माकम्, श्लाघ्यसम्बन्धी– श्लाघ्यः=प्रशंसनीयश्चासौ सम्बन्धी=पुत्रश्वसुरः, जनकानाम्=जनकवंशजानां राज्ञाम्,– कुलोद्वहः–कुलस्य=वंशस्य उद्वहः=श्रेष्ठः, अस्तीति क्रियाशेषः; यस्मै=जनकायेत्यर्थः,

कौसल्या—वन में निर्वासित, बेटी, प्रिय वधू सीता के पिता राजर्षि जनक को मैं अपना मुख कैसे दिखलाऊँगी ?

अरुन्धती—यह आपके प्रशंसनीय सम्बन्धी (समधी), जनकवंशी राजाओं के कुल-श्रेष्ठ (हैं), जिन्हें याज्ञवल्क्य मुनि ने ब्रह्म-विद्या का उपदेश दिया है ॥ ९ ॥

कौसल्या—यह वह महाराज (दशरथ) के हृदय-स्वरूप तथा मेरी प्रिय-वधू (सीता) के पिता विदेहराज सीरध्वज (जनक) हैं। (इन्हे देख कर) मुझे सुखद एवं मनोहर उन दिनों की स्मृति हो आई है। हाय भाग्य, (सम्प्रति) वह सब कुछ नहीं है।

याज्ञवल्क्यः=एतन्नामधेयः, मुनिः=ऋषिः, ब्रह्मपारायणम्–ब्रह्मणः=ब्रह्मविद्यायाः पारायणम् = पारगमनम्, शिक्षामिति यावत्, जगौ = गीतवान्, उपदिदेशेत्यर्थः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—०**सम्बन्धी**—यहाँ पर सम्बन्धी शब्द समधी के लिये आया है। सम्बन्धी का ही अपभ्रंश रूप समधी है।

जनकानाम्—यहाँ जनक शब्द जनकवंशीय राजाओं के लिये प्रयुक्त हुआ है।

याज्ञवल्क्यः—महर्षि याज्ञवल्क्य अपने समय में ब्रह्म-विद्या के बेजोड़ उपदेष्टा थे। इन्हीं से महाराज जनक ने ब्रह्म-विद्या का अध्ययन किया था। इन्हें जनक का गुरु बतलाया गया है।

ब्रह्मपारायणम्—पारायण शब्द का अर्थ है–पारजाना। अर्थात् समग्र ग्रन्थ का आदि से अन्त तक अध्ययन अथवा अध्यापन। यहाँ ब्रह्म शब्द का अर्थ है–वेद। वेद के ही भीतर उपनिषदों का भी अन्तर्भाव होता है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है–अनुष्टुप् ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—महाराजस्य=महाराज (दशरथ) के हृदयनिर्विशेषः=हृदय-स्वरूप, अभिन्न-हृदय। स्मारिताऽस्मि=स्मरण कराई गई हूँ, याद दिलाई गई हूँ, अनिर्वेद-रमणीयान्=सुखद एवं मनोहर। हा दैव=हाय भाग्य ॥

टीका—कौसल्येति। महाराजस्य=दशरथस्य, हृदय-निर्विशेषः–हृदयात्=चेतसो निर्विशेषः=निर्भेदः, सदृश इति भावः, सीरध्वजः–सीरः=सूर्यो हलं वा ("सीरोऽर्क हलयोः" इति मेदिनी) ध्वजे=पताकायां चिह्नरूपेणेत्यर्थः यस्य सः। स्मारिता=स्मरणं कारिता, अस्मि, अनिर्वेदरमणीयान्–अविद्यमानः=अवर्तमानो निर्वेदः=चित्त-ग्लानिर्येषु ते तादृशाः, अनिर्वेदाश्च ते रमणीयाः–मनोहराः, तान् तादृशान्। हा दैव=हा भाग्य, हा हतभाग्येत्यर्थः, सर्वम् = सकलम्, तत् = पूर्वानुभूतम्, नास्ति = न वर्ततेऽधुना ॥

जनकः—(उपसृत्य ।) भगवत्यरुन्धति ! वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते ।

यया पूतंमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः ।
त्रिलोकी[1]मङ्गल्यामवनितलीनेन[2] शिरसा
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ।। १० ।।

अरुन्धती—[3]अक्षरं ते ज्योतिः प्रकाशताम् । स[4] त्वां पुनातु देवः परो रजसां य एष तपति ।

जनकः—आर्य गृष्टे ! अप्यनामयमस्याः[5] प्रजापालकस्य मातुः ?

टिप्पणी--महाराजस्य—महत्+राजन्+टच्+विभक्त्यादिः ।

सीरध्वजः--जनकवंशी राजाओं की ध्वजा में सीर का चिह्न रहता था। अतः वे सीरध्वज कहे जाते थे । सीर कहते हैं सूर्य अथवा हल को । स्मारिता–√ स्मृ+णिच्+कर्मणि क्तः+टाप्+विभक्त्यादिः ।।

अन्वयः—पवित्रस्य, महसः, निधिः, अपि, पूर्वेषाम्, गुरूणाम्, गुरुतमः, अपि, ते, पतिः, यया, पूतंमन्यः, खलु, त्रिलोकीमङ्गल्याम्, जगद्वन्द्याम्, देवीम्, उषसम्, इव, भगवतीम्, अवनितललीनेन, शिरसा, वन्दे ।। १० ।।

शब्दार्थः--पवित्रस्य=पवित्र, पुनीत, महसः=तेज के, निधिः=निधि, खजाना, अपि=भी, पूर्वेषाम्=प्राचीन, गुरूणाम्=गुरुओं के, गुरुतमः=सर्वश्रेष्ठ गुरु, अपि=भी, ते=आपके, पतिः=पति, यया=जिस (आप) से, खलु=निश्चय ही, पूतंमन्यः=अपने को पवित्र मानते हैं, त्रिलोकी-मङ्गल्याम्=तीनों लोकों के लिये मङ्गलदायिनी, जगद्वन्द्याम्=जगद्वन्दनीय, देवीम्=देवी, प्रकाशशील, उषसमिव=उषा की तरह, भगवतीम्=आदरणीया आपको, अवनितललीनेन=भूतल पर रक्खे हुए, शिरसा=शिर से, वन्दे=प्रणाम कर रहा हूँ ।। १० ।।

टीका—यया पूतंमन्य इति । पवित्रस्य=पूतस्य ("पवित्रः प्रयतः पूत" इत्यमरः), महसः=तेजसः, निधिः=आकरः, अपि=च, पूर्वेषाम्=प्राचीनानाम्, गुरूणाम्=आचार्याणाम्, गुरुतमः=श्रेष्ठ आचार्यः, अपि=च, ते=तव, अरुन्धत्या इत्यर्थः, पतिः=भर्ता, यया=त्वया, पूतमन्यः-आत्मानं पूतं मन्यत इति "आत्ममाने खश्च" इति खश् प्रत्ययः "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इति मुमागमश्च, खल्विति निश्चये, त्रिलोकीमङ्गल्याम्–त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी, मङ्गलाय हिता मङ्गल्या, त्रिलोक्याः मङ्गल्या ताम्, त्रिलोकीमङ्गलहेतुभूतामित्यर्थः, जगद्वन्द्याम्–जगतः=संसारस्य वन्द्या=

---

१. माङ्गल्याम्, २. लोलेन, ३–परं, ४. अयं, ५. 'अपि कुशलमस्याः' इति पाठान्तरम् ।

जनक—(पास में जाकर) आदरणीया देवी अरुन्धती, विदेहराज सीरध्वज, आपको प्रणाम कर रहा है।

पवित्र तेज के निधि तथा प्राचीन गुरुओं के सर्वश्रेष्ठ गुरु होते हुए भी आपके पति जिस आप से अपने आपको निश्चय ही पवित्र मानते हैं, तीनों लोकों के लिये मङ्गलदायिनी एवं जनद्वन्दनीय, उषा देवी की भाँति, आपको भूतल पर माथा टेक कर मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥ १० ॥

अरुन्धती—आप में अविनाशी ज्योति प्रकाशित हो (अर्थात् आपको पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो)। रजो गुण से परे प्रकाशशील यह सूर्य देव आपको पवित्र करें।

विशेष—अक्षरं ज्योतिः—अक्षर ज्योति कहते हैं ब्रह्म को। जनक ब्रह्मज्ञानी माने गये हैं। अतः अरुन्धती आशीष दे रही हैं कि–आपके भीतर ब्रह्म-ज्ञान प्रकाशित हो। **य एष तपति**—जो यह तपते हैं अर्थात् सूर्यनारायण।

जनक—हे आर्य गृष्टि, प्रजापालक (राजा राम) की माता (कौसल्या) नीरोग तो हैं ?

विशेष—'गृष्टि' कौसल्या के साथ रहने वाला दशरथ का कञ्चुकी है।

पूज्या ताम्, देवीम् = द्योतनशीलाम्, उषसमिव=प्रातःकालदेवतामिव, भगवतीम् = माहात्म्यसम्पन्नां भवतीमित्यर्थः, अवनितललीनेन–अवनिः=पृथिवी तस्याः तले = पृष्ठे लीनेन=सम्बद्धेन, शिरसा=मूर्ध्ना, वन्दे=प्रणमामि। अत्र पूर्णोपमाऽलंकारः। शिखरिणी छन्दः ॥ १० ॥

टिप्पणी—पूतंमन्यः—पूत + √मन् + खश् + मुमागमः + विभक्त्यादिः।

०मङ्गल्या—मङ्गल + यत् + टाप् + विभक्तादिः।

उषसमिव—उषस् शब्द उषःकाल के अर्थ में नपुंसक लिंग है और उषःकाल की अधिष्ठात्री देवता उषा देवी के अर्थ में स्त्रीलिंग है।

भगवतीम्—त्रिलोकीमङ्गल्याम्, जगद्वन्द्याम् तथा भगवतीम्—ये तीनों विशेषण उषसम् और अरुन्धती–दोनों के ही हैं।

यहाँ उषसमिव में इव के द्वारा पूर्णोपमा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ १० ॥

शब्दार्थ:—अक्षरम्=अविनाशी, अनश्वर, ज्योतिः=प्रकाश, प्रकाशताम्=प्रकाशित हो। परोरजसाम्=रजोगुण से परे। अनामयम्=नीरोगता, स्वस्थता, आरोग्य।

कञ्चुकी--(स्वगतम्।) [1]निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धाः स्मः। (प्रकाशम्) राजर्षे ! अनेनैव मन्युना [2]चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनां नार्हसि दुःखयितुमतिदुःखितां देवीम्। रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि। यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौराः। न चाग्निशुद्धिमनल्पकाः[3] प्रतियन्तीति[4] दारुणमनुष्ठितं देवेन।

निरवशेषम्=बिना कोर कसर के, कहने में कोई कसर न रखते हुए, अतिनिष्ठुरम्=बड़ी निष्ठुरता के साथ, उपालब्धाः=उलाहना दिये गये हैं। मन्युना=क्रोध से,. चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनाम्=बहुत दिनों से छोड़ दिया है रामभद्रका दर्शन जिसने ऐसी, अतिदुःखिताम्=अत्यन्त दुःखी, देवीम्=महारानी कौसल्याको। दैवदुर्योगः=दुर्भाग्य। समन्ततः=चारों ओर, प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः=फैल रही है घृणित किंवदन्ती जिनमें ऐसे, पौराः=नागरिक। अनल्पकाः=बहुत से लोग, न प्रतियन्ति=विश्वास नहीं करते हैं, दारुणम्=घोर, अनुष्ठितम्=किया॥

टीका—अरुन्धतीति। अक्षरम्=अविनाशि, ज्योतिः=प्रकाशः, ब्रह्मेत्यर्थः, प्रकाशताम्=आविर्भवतु। रजसाम्=रजआदिसमस्तदोषाणाम्, सम्बन्धसामान्येऽत्र षष्ठी, परः=दूरवर्ती। अनामयम्=आरोग्यम्। निरवशेषम्=निःशेषम्, अतिनिष्ठुरम्=अतिशयकठोरम्, उपालब्धाः=कृतोपालम्भाः, "प्रजापालकस्य मातुः" इति कथनेनेति भावः। मन्युना=क्रोधेन, चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनम्–चिरम्=बहोःकालात् परित्यक्तम्=परिमुक्तं रामभद्रस्य=श्रीरामचन्द्रस्य दर्शनम्=विलोकनं यया सा ताम्, अतिदुःखिताम्=अतिकष्टक्लिष्टाम्, देवीम्=महाराज्ञीं कौसल्याम्। दैवदुर्योगः=भाग्यदुःसम्बन्धः। समन्ततः=सर्वतः, प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः-प्रवृत्ता=प्रसृता बीभत्सा=जुगुप्सिता किंवदन्ती=जनश्रुतिः येषु ते। अनल्पकाः–अल्पा एव अल्पकाः, न अल्पका अनल्पकाः=बहवः, अथवा अविद्यमानोऽल्पो येभ्यस्ते अत्यल्पाः क्षुद्रचित्ता इति भावः, पौराः=नागरिकाः, न प्रतियन्ति=न विश्वसन्ति, इति=अस्मात्कारणात्, दारुणम्=सीतानिर्वासनरूपं भयानकं कर्म, अनुष्ठितम्=आचरितम्, देवेन=राज्ञा रामचन्द्रेणेत्यर्थः॥

टिप्पणी--अक्षरम्—न क्षरम् अक्षरम्। भारतीय दर्शन में ब्रह्म को अक्षर अविनाशी कहा गया है।

परो रजसाम्--सूर्यनारायण रजोगुण से परे हैं। वे सत्त्वगुणप्रधान हैं। साँख्य के अनुसार तीन गुण कहे गये हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। इनके लक्षण के लिये देखिये सांख्यकारिका--१३।

१. निर्विशेषम्, २. अचिर, ३. अल्पकाः, ४. प्रतिपद्यन्ते इत्यतः।

कञ्चुकी—(अपने आप) बिना कोर-कसर के बड़ी निष्ठुरता के साथ हम लोग उलाहना दिये गये है । (प्रकट रूप से) हे राजर्षि, इसी क्रोध के कारण बहुत दिनों से रामभद्र से न मिलने वाली, अत्यन्त दुःखी महारानी (कौसल्या) को और अधिक दुःखी करना आप के लिये उचित नहीं है । रामभद्र का यह कोई दैव-दुर्योग ही है कि नागरिकों में चारों ओर घृणित किंवदन्ती फैल रही थी और बहुत से व्यक्ति अग्नि-शुद्धि की बात पर विश्वास नहीं कर रहे थे। यही कारण है कि महाराज (राम) ने ऐसा कार्य किया ।

विशेष –**अनेनैव मन्युना**--राम ने निरपराध सीता का निर्वासन कर दिया। कौसल्या इस पर अप्रसन्न हो गई थीं। फलतः उन्होंने राम से मिलना छोड़ दिया था ।

अनामयम्--आमय कहते हैं रोग को। अनामय माने होता है आरोग्य । न आमयम् अनामयम् । प्राचीन परम्परा थी कि ब्राह्मण से कुशल पूछा जाता था और क्षत्रिय से आरोग्यम्—"ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् । (मनु० २।१९७)।

प्रजापालकस्य--राम ने साधारण प्रजा के कहने पर सीता का निर्वासन कर दिया था। अतः जनक उन पर क्रुद्ध थे। यही कारण है कि वे व्यंग्य करते हुए राम को प्रजापालक कह रहे हैं ।

उपालब्धाः – उप + आ + √लभ् + क्त + विभक्तिः ।

मन्युना--क्रोध के कारण। मन्यु का अर्थ दैन्य और क्रोध दोनों ही होता है । ("मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधिः" इत्यमरः) ।

चिरपरित्यक्त०--राम ने सीता का परित्याग कर दिया जंगल में। कौसल्या माता इस पर अप्रसन्न होकर अपने जामाता ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ में चली गई थीं। वहाँ वह १२ वर्ष तक रहीं। वहाँ से लौट कर मुनि वसिष्ठ के साथ वह महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में आई हैं। अतः १२ वर्ष से उन्होंने राम को देखा ही नहीं है ।

०बीभत्स०--- √ बध् + सन् (निन्दायाम्) + अ (अप्रत्ययात्) + विभक्त्यादिः ।

अनल्पकाः---कुछ लोगों ने "अनल्पकाः" का अर्थ तुच्छ, अतिनीच किया है। ऐसा अर्थ करने के लिये अविद्यमानः अल्पकः येभ्यस्ते–ऐसा बहुव्रीहि समास किया जायेगा ।

परिभूताः--परि + √भू + क्त (कर्मणि) + विभक्तिः ।

जनकः--(सरोषम् ।) आः ! कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने ? कष्टम् ! एवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे ।

अरुन्धती--(निःश्वस्य ।)एवमेतत् । [1]अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि । सीतेत्येव पर्याप्तम् । हा वत्से !

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति[2] ।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, ननु वन्द्यासि जगतां[3]
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिङ्गं, न च वयः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः--अस्मत्प्रसूतिपरिशोधने-हमारी सन्तान को शुद्ध करने के लिये । एवंवादिना=ऐसा कहने वाले, जनेन=व्यक्ति के द्वारा, इस कञ्चुकी के द्वारा, रामभद्रपरिभूताः=रामभद्र के द्वारा तिरस्कृत, परिभूयामहे=तिरस्कृत किये जा रहे हैं । वत्सां प्रति=बेटी सीता के प्रति, लघूनि=छोटे, हल्के, अक्षराणि=अक्षर हैं ।।

टीका—जनक इति । आः=कोपसूचकमव्ययपदमिदम् । अस्मत्प्रसूतिपरिशोधने–अस्माकम्=विदेहवंशोत्पन्नानां राज्ञामित्यर्थः सन्ततेः=सन्तानस्य, सीताया इति यावत्, परिशोधने=पवित्रीकरणे, मम दुहितुः सीताया परिशोधने नाग्निः समर्थस्तस्याःअग्नेरपि परिशुद्धत्वादिति भावः । एवंवादिना=इत्थं कथयता, सीताया अग्निशुद्धिरितिवादिना, जनेन=लोकेन, अथवा अनेन कञ्चुकिना, रामभद्रपरिभूताः–रामभद्रेण=रामचन्द्रेण परिभूताः=तिरस्कृताः, अपि=च, पुनः=मुहुः, परिभूयामहे=अवमन्यामहे, अपमानिताः=स्मः इति भावः । वत्साम्=सीतां प्रति, लघूनि=लाघवयुक्तानि, अक्षराणि=वर्णाः, पदमिति भावः । अग्नेरपि सा अधिकं परिशुद्धा । अग्निः तस्याः शुद्धिं कथं विधास्यति ? पर्याप्तम्=प्रभूतम् । सीतेत्यक्षरद्वयमेव पर्याप्तां शुद्धिं सूचयितुमलमिति भावः । "कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्" इत्यमरः ।।

टिप्पणी –निःश्वस्य--निर्+श्वस्+ल्यप् ।

लघूनि—सीता पवित्रता की परिसीमा है । वह अग्नि से सौ गुना अधिक पवित्र है । पवित्रता के विषय में सीता के सामने 'अग्नि' यह नाम अत्यन्त तुच्छ है । अतः अग्नि के द्वारा सीता की शुद्धता की परीक्षा की बात एक दम उपहासास्पद है । अरुन्धती के कहने का भाव यह है कि सीता अपने पतिव्रता धर्म के कारण अग्नि से अधिक पावन है । अरुन्धती का यह कथन अपने आप में बेजोड़ है । उन्होंने ऐसा कहकर जनक का क्रोध शान्त कर दिया ।।

अन्वयः—(त्वम्), मम, शिशुः, वा, शिष्या, वा, यत्, असि, तत्, तथा, तिष्ठतु; तु, विशुद्धेः, उत्कर्षः, त्वयि, मम, भक्तिम्, द्रढयति; शिशुत्वम्, वा, स्त्रैणम्,

---

१. अग्निरग्निः, २. जनयति, ३. जगतः ।

जनक—(क्रोध के साथ) ओह, हमारी सन्तान को शुद्ध करने के लिये यह अग्नि कौन होता है ? दुःख की बात है कि इस व्यक्ति के द्वारा रामभद्र से पहले से ही तिरस्कृत हम फिर से तिरस्कृत किये जा रहे हैं।

अरुन्धती—(लम्बी श्वास लेकर) बात ऐसी ही है। बेटी सीता के प्रति "अग्नि" यह हल्के अक्षर हैं (अर्थात् सीता ही अग्नि से अधिक पवित्र हैं)। 'सीता' इतना कहना ही (अतिशय पवित्रता के लिये) पर्याप्त है। हाय, बेटी,—

तुम मेरी पुत्री अथवा शिष्या हो, जो कुछ भी हो वह सम्बन्ध वैसा ही बना रहे। किन्तु पवित्रता की पराकाष्ठा तुम्हारे विषय में मेरी भक्ति को दृढ बना रही है। तुममें शिशुत्व हो अथवा स्त्रीत्व, तुम निश्चय ही संसार की पूज्य हो; क्योंकि गुणवानों में गुण ही पूजा के स्थान (कारण) होते हैं, न तो लिङ्ग (चिह्न) और न आयु ही ॥ ११ ॥

भवतु; ननु, जगताम्, वन्द्या, असि; (यतः), गुणिषु, गुणाः, (एव), पूजास्थानम्, न, च, लिङ्गम्, न, च, वयः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—(त्वम्=तुम), मम=मेरी, शिशुः=पुत्री, वा=अथवा, शिष्या=शिष्या, वा=यह पादपूर्ति के लिये आया है, यत्=जो कुछ भी, असि=हो, तत्=वह सम्बन्ध, तथा=वैसा ही, तिष्ठतु=रहे, बना रहे। तु=किन्तु, विशुद्धेः=पवित्रताकी, उत्कर्षः=पराकाष्ठा, त्वयि=तुम्हारे प्रति, तुम्हारे विषय में, मम=मेरी, भक्तिम्=भक्ति को, द्रढयति=दृढ बना रही है। (त्वयि=तुम में), शिशुत्वम्=शिशुत्व हो, बचपन हो, वा=अथवा, स्त्रैणम्=स्त्रीत्व, स्त्रीभाव, भवतु=हो, ननु = निश्चय ही, जगताम्= संसार की, वन्द्या=पूज्य, असि=हो; (यतः=क्योंकि), गुणिषु=गुणवानों में, गुणाः=गुण, (एव=ही), पूजास्थानम्=पूजा के स्थान होते हैं, पूजा के कारण होते हैं, न च=न तो, लिङ्गम्=लिङ्ग, चिह्न, न च=और न, वयः=आयु ॥ ११ ॥

टीका—शिशुर्वेति। त्वमिति शेषः, मम=मे, अरुन्धत्या इत्यर्थः, शिशुः= बालिका, वा = अथवा, शिष्या = अन्तेवासिनी, शासनीया, वा, यत् असि = भवसि, तत् तथा तिष्ठतु=स सम्बन्धस्तादृश एवास्तु। तु=किन्तु, विशुद्धेः=पवित्रतायाः, उत्कर्षः=अतिशयः, त्वयि=सीतायाम्, मम=मे, अरुन्धत्याः, भक्तिम्=श्रद्धाम्, आदरबुद्धिं वा, द्रढयति=दृढां करोति। शिशुत्वम्=बाल्यभावः, स्त्रैणं वा=स्त्रीत्वभावो वा, भवतु= त्वयि स्यात्; नन्विति निश्चये, जगताम् = लोकानाम्, वन्द्याः = पूज्या, असि=वर्तसे; त्वन्निष्ठेन शिशुत्वेन स्त्रीत्वेन वा न वन्द्यात्वहानिः; यतः = हि, गुणिषु = गुणवत्सु, गुणाः=सद्गुणाः, एवेति शेषः, पूजास्थानम्-पूजायाः=सत्कारस्य स्थानम्=कारणमिति- यावत्, वर्तत इति शेषः; न च लिङ्गम्=न च पुंस्त्वादिचिह्नम्, न च वयः=न च वार्धक्यादिरवस्था, पूजास्थानमिति सम्बन्धः। लोकोत्तरपातिव्रत्यादिगुणैस्त्वं सर्वेषा- मपि पूजनीयाऽसीति भावः। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। शिखरिणी च छन्दः ॥११॥

कौसल्या—अहो ! [1]समुन्मूलयन्तीव वेदनाः। (अहो ! समुम्मूलअन्ति विअ वेअणाओ।)

(इति मूर्च्छति)

जनकः—हन्त ! किमेतत् ?

अरुन्धती—राजर्षे ! किमन्यत् ?

स राजा, तत्सौख्यं, स च शिशुजनस्ते च दिवसाः
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।
विपाके घोरेऽस्मिन्न[2] खलु न विमूढा तव सखी
पुरन्ध्रीणां [3]चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ॥ १२ ॥

टिप्पणी—विशुद्धेः-वि + √शुध् + क्तिन् + विभक्तिः। उत्कर्षः-उत् + √कृष् + घञ् + विभक्तिः। स्त्रैणम्-स्त्रीत्व, स्त्रीपन। स्त्रियाः भावः स्त्रैणम्। स्त्री + नञ् (न) + वृद्ध्यादिः।

पूजास्थानम्—पूजा के स्थान, पूजा के योग्य। पूजायाः स्थानम्; तत्पुरुष समासः। स्थान, पद, आस्पद, भाजन, पात्र आदि शब्द नपुं० और एकवचन में आते हैं। यही कारण है कि गुणाः का विशेषण होने पर भी स्थानम् में नपुं० एकवचन आया है।

लिङ्गम्—चिह्न। स्त्रीत्व, पुरुषत्व अथवा जटाधारणं आदि लिंग हैं।

इस श्लोक में विशेष सीता की वन्दनीयता के द्वारा सामान्य अर्थ "गुणाः पूजा-स्थानम्" का समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है शिखरिणी। छन्द का लक्षण—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—समुन्मूलयन्ति=जड़ से उखाड़ रही हैं, वेदनाः=वेदनाएँ। हन्त= दुःख है, एतत्=यह, किम्=क्या ? ॥

टीका—कौसल्येति। वेदनाः=दुःखानि, समुन्मूलयन्ति इव=समूलमुत्पाटयन्ति इव। हन्तेति खेदे, एतत्=इदम्, किम्=किंविधम् ? ॥

टिप्पणी—समुन्मूलयन्ति—वेदनाएँ मानों जड़ से उखाड़ रही हैं अर्थात् वेदनाएँ मेरी चेतना को जड़ से समाप्त कर रही हैं। सम् + उत् + √मूल + णिच् + लटि प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—सः, राजा; तत्, सौख्यम्; सः, च, शिशुजनः; ते, च, दिवसाः; तत्, अखिलम्, सुहृदि, त्वयि, दृष्टे, स्मृतौ, आविर्भूतम्। अस्मिन्, घोरे, विपाके, तव, सखी, न, विमूढा, (इति), न, खलु। हि, पुरन्ध्रीणाम्, चित्तम्, कुसुमसुकुमारम्, भवति ॥ १२ ॥

---

१. उम्मीलन्ति (उन्मीलन्ति), २. अथ खलु, ३. चेतः।

कौसल्या—ओह, वेदनायें मुझे जड़ से उखाड़ रही हैं।

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं)।

जनक—दुःख है, यह क्या ?

अरुन्धती—हे राजर्षि, और क्या ? वह राजा (दशरथ), वह सुख, वे राम (आदि बालक) तथा वे (आनन्द मौज के) दिन—वह सब कुछ, सम्बन्धी और मित्र आप के दिखलाई पड़ने पर, स्मृति-पटल पर आविर्भूत हो गया। इस भयङ्कर परिणाम के उपस्थित होने पर आपकी सखी (कौसल्या) निश्चय ही मूर्च्छित हो गई हैं, क्योंकि कुलीन स्त्रियों का चित्त फूल की तरह सुकुमार होता है ।। १२ ।।

शब्दार्थः—सः=वह, राजा=भूपति (दशरथ); तत्=वह, सौख्यम्=सुख; सः=वह, शिशुजनः=बालक, च=और, ते=वे, दिवसाः=दिन; तत्=वह, अखिलम्=सब कुछ, सुहृदि=सम्बन्धी और मित्र, त्वयि=आप के, दृष्टे=दिखलाई पड़ने पर, स्मृतौ=स्मृति-पटल पर, आविर्भूतम्=आविर्भूत हो गया, आरूढ हो गया; अस्मिन्=इस, घोरे=भयङ्कर, विपाके=परिणाम के उपस्थित होने पर, तव=आप की, सखी=सखी, समधिन, (कौसल्या), न=नहीं, विमूढा=मूर्च्छित हो गई है, (इति=ऐसी बात), न=नहीं है; खलु=यह निश्चय सूचक अव्यय है; हि=क्योंकि, पुरन्ध्रीणाम्=कुलीन स्त्रियों का, चित्तम्=चित्त, हृदय, कुसुमसुकुमारम्=फूल की तरह सुकोमल, भवति=होता है ।। १२ ।।

टीका—**स राजेति**—सः=सुविदितः इत्यर्थः, राजा=भूपतिर्दशरथः; तत्=तादृशम्, सौख्यम्=आनन्दः; स च शिशुजनः=सीता-रामादिः; ते च दिवसाः=उत्सवोत्तराणि तानि दिनानीति भावः; तत्=पूर्वानुभूतम्, अखिलम्=सर्वम्, स्मृतौ=बुद्धिपटले, आविर्भूतम्=प्रकटितम्। अस्मिन्=एतस्मिम्, घोरे=भयङ्करे, विपाके=परिणामे, तव=भवतः, सखी=सम्बन्धिनी, कौसल्येत्यर्थः, न विमूढा=न मूर्च्छिता, इति=एतत्, न=नास्ति, अपि तु मूर्च्छितैव, खल्विति निश्चये; हि=यतः, पुरन्ध्रीणाम्=कुलस्त्रीणाम्, चित्तम्=चेतः, कुसुमसुकुमारम्–कुसुममिव=पुष्पमिव सुकुमारम्=सुकोमलम्, भवति=जायते। अतः पूर्वाऽवस्थायाः स्मृतिमात्रेण मूर्च्छिता जातेति भावः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः, कुसुमसुकुमारमित्यत्र लुप्तोपमा चेत्यलङ्कारौ। शिखरिणी चात्र छन्दः ।। १२ ।।

टिप्पणी—**सौख्यम्**—सुखमेव सौख्यम्। सुख+स्वार्थे ष्यञ् (य)+विभक्तिः। **आविर्भूतम्**—आविर्+√भू+क्त+विभक्तिः।

सुहृदि—महाराज दशरथ और राजा जनक दोनों समधी थे। दोनों में इतना प्रगाढ प्रेम था कि यह सम्बन्ध अतिशय मित्रता में परिवर्तित हो गया था। इसी लिये जनक को कौसल्या का सुहृद् तथा कौसल्या को जनक की सखी बतलाया गया है।

जनकः—हन्त[1] ! सर्वथा नृशंसोऽस्मि । यच्चिरस्य दृष्टान्प्रियसुहृदः प्रियदारानस्निग्ध[2] इव पश्यामि ।

स सम्बन्धी श्लाघ्यः, प्रियसुहृदसौ, तच्च हृदयं,
स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्[3] ।
शरीरं जीवो वा यदधिकम[4]तोऽन्यत्प्रियतरं
महाराजः श्रीमान् किमिव[5] मम नासीद्दशरथः ? ।।१३।।

न खलु न—अर्थात् निश्चय ही । दो नञ् इकट्ठा होने पर स्वीकृतिसूचक अर्थ का बोधन करते हैं—द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयतः । कौसल्या मूर्च्छित नहीं हुई ऐसी बात नहीं है, अर्थात् अवश्य ही मूर्च्छित हो गई हैं ।

पुरन्ध्रीणाम्—पुरन्धि और पुरन्ध्री—ये दोनों ही शब्द हैं । पुरं गेहं धारयति इति पुरन्धिः । पुरन्ध्री का अर्थ है—पति और पुत्रादि से युक्त स्त्री ("स्यात् कुटुम्बिनी पुरन्ध्री" इत्यमरः) ।

इस श्लोक में विशेष कौसल्या के मूर्च्छित होने से सामान्यरूप से स्त्री की सुकुमारता के समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है । "कुसुमसुकुमारम्" में इव के लुप्त होने से लुप्तोपमा है ।

श्लोक में प्रयुक्त शिखरिणी छन्द के लक्षण के लिये देखिये पीछे के श्लोक की टिप्पणी ।। १२ ।।

शब्दार्थः—सर्वथा=बड़ा, पूर्णरूप से, नृशंसः=क्रूर । चिरस्य=बहुत दिनों के बाद, प्रियदारान्=प्रिय पत्नी को, अस्निग्धः=प्रेमहीन, प्रेमशून्य, इव=सा ।।

टीका—जनक इति । हन्तेति खेदे, नृशंसः=क्रूरः ("नृशंसो घातुकः क्रूरः" इत्यमरः) । चिरस्य=बहोः कालादनन्तरम्, प्रियसुहृदः = सम्बन्धिनो दशरथस्येत्यर्थः प्रियदारान् = प्रियां पत्नीं कौसल्यामित्यर्थः, अस्निग्धः इव=स्नेहशून्य इव, शत्रुरिवेत्यर्थः, पश्यामिः=अवलोकयामि ।

टिप्पणी—**नृशंसः**—नॄन् शंसति इति नृशंसः । नृ + √शंस् + अच् (अ) + विभक्तिः ।

प्रियदारान्—दार शब्द का अर्थ पत्नी होता है । इसका प्रयोग पुलिंग बहुवचन में ही होता है ।।

अन्वयः—सः, श्लाघ्यः, सम्बन्धी; असौ, प्रियसुहृत्; च, तत्, हृदयम्; च, सः, साक्षात्, आनन्दः; अपि च, निखिलम्, जीवितफलम्; शरीरम्, वा, जीवः, अतः अधिकम्, अन्यत्, प्रियतरम्, श्रीमान्, महाराजः, दशरथः, मम, किमिव, न, आसीत् ।। १३ ।।

---

१. कष्टं कष्टं, हन्त हन्त, २. न स्निग्धं पश्यामि, ३. पदम्, ४. ०तो वा प्रियतमः, प्रियतरः, ५. किमपि ।

जनक—हाय, वड़ा क्रूर हूँ, जो वहुत दिनों के बाद मिलने पर भी अपने प्रिय मित्र (दशरथ) की प्रियपत्नी को प्रेमशून्य-सा होकर देख रहा हूँ।

वह (महाराज दशरथ) प्रशंसनीय सम्वन्धी, प्रियमित्र, हृदयस्वरूप, साक्षात् आनन्द तथा जीवन के सम्पूर्ण फल थे। वे मेरे शरीर और आत्मस्वरूप थे। (केवल इतना ही नहीं, अपितु) वे इस आत्मा से भी अधिक प्रियवस्तु (ब्रह्मस्वरूप) थे। (सचमुच) श्रीमान् महाराज मेरे लिये क्या-क्या नहीं थे (अर्थात् सब कुछ थे)॥ १३॥

शब्दार्थः—सः=वह (महाराज दशरथ), श्लाघ्यः=प्रशंसनीय, सम्बन्धी=रिश्तेदार, समधी, असौ=वह, प्रियसुहृत्=प्रियमित्र, तत्=वह, हृदयम्=हृदय, चित्त; च=तथा, सः=वह, साक्षात्=मूर्तिमान्, आनन्दः=आनन्द. अपि च=और भी, निखिलम्=सम्पूर्ण, जीवितफलम्=जीवन के फल थे। शरीरम्=शरीर, वा=अथवा, जीवः=प्राण थे; अतः=इससे, अधिकम्=अधिक, प्रियतरम्=प्रियवस्तु थे; श्रीमान्=श्रीमान्, महाराजः=महाराज, दशरथः=दशरथ, मम=मेरे, किमिव=क्या, कौन-सी वस्तु, न=नहीं, आसीत्=थे, अर्थात् सब कुछ थे ?॥ १३॥

टीका—स सम्बन्धी। सः=दशरथः, श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः, सम्बन्धी=वैवाहिको जामातृजनक इत्यर्थः, जामातुः पितेति यावत्, असौ=स दशरथः, प्रियसुहृत्—प्रियश्चासौ सुहृत् प्रियसुहृत्=प्रेमपात्रं मित्रम्, तत्=स दशरथश्च, हृदयम्=मम हृदयस्वरूपम् आसीत्; सः=स दशरथश्च, साक्षात्=प्रत्यक्षः, मूर्तिमानिति यावत्, आनन्दः=प्रमोदः, अपि च=अपरञ्च, निखिलम्=सम्पूर्णम्, जीवितफलम्—जीवितस्य=जीवनस्य फलम्=फलम्, प्रयोजनम् इति यावत्। चकारः पूर्वसमुच्चायकः। शरीरम्=मम देहः, वा=अथवा, जीवः=आत्मा चाऽभूव। अतः=अस्मात्, अधिकम्=महत्त्वपूर्णम्, अन्यत्=अपरम्, प्रियतरम्=अभीष्टतरम्, ब्रह्म इत्यर्थः, तथाविधं यत् परं ब्रह्म तदभूत्। श्रीमान्=लक्ष्मीवान्, महाराजः=सार्वभौमः, स दशरथः मम जामातुर्जनकः, मम=सीरध्वजस्य जनकस्य, किमिव=किं वस्तु नाभवत् ? अपितु दशरथो मम सर्वस्वं चासीदिति भावः। अत्रातिशयोक्तिरर्थापत्ती रूपकं चालंकाराः। शिखरिणी चात्र छन्दः॥ १३॥

टिप्पणी—सुहृत्—शोभनं हृदयं यस्य सः, 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः" (पा० ५।४।१५०) इति हृदयस्य हृदादेशः। **जीवितम्**—√जीव्+नपुंसके भावे क्तः+विभक्तिः।

इस श्लोक में महाराज दशरथ को आत्मा और ब्रह्म बतलाया गया है, अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है। **'किमिव न'** में अर्थापत्ति अलङ्कार है। महाराज

कष्टमियमेव सा कौसल्या—

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परम[१]न्त्रायितमभू-
दभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः ।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभू-
दलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम् ॥ १४ ॥

दशरथ पर हृदय, शरीर आदि का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलङ्कार है। यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द के लक्षण के लिये देखिये पीछे के श्लोक की टिप्पणी ॥ १३ ॥

अन्वयः—अस्याः, वा, पत्युः, रहसि, यत्, परमन्त्रायितम्, अभूत्, अहम्, दम्पत्योः, पृथक्, उपालम्भविषयः, अभूवम्, तदनु, कोपे, वा, प्रसादे, मदधीनः, विधिः, अभूत्, वा, तत्, स्मृत्वा, अलम्, हृदयम्, अवस्कन्द्य, दहति ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—अस्याः=इनका, वा=और, पत्युः=इनके पतिका, रहसि=एकान्त में, यत्=जो कुछ, परमन्त्रायितम्=परम गोपनीय बातचीत, अभूत्=होती थी, अहम्=मैं, दम्पत्योः=पति-पत्नी की, पृथक्=अलग-अलग, उपालम्भविषयः=उलाहना का पात्र, उलाहना के विषय, अभूवम्=हुआ करता था, तदनु=उसके बाद, कोपे=कोप के विषय में, वा=अथवा, प्रसादे=प्रसन्नता के विषय में, मदधीनः=मेरे अधीन, विधिः=उपाय, अभूत्=हुआ करता था. वा=अथवा, तत्=उस बात को, स्मृत्वा=स्मरण करने से, अलम्=कोई लाभ नहीं है, यत्=क्योंकि, हृदयम्=हृदय को, अवस्कन्द्य=आक्रमण करके, बलात्, दबाकर, दहति=जला है ॥ १४ ॥

टीका—यदस्या इति । अस्याः=एतस्याः कौसल्यायाः, वा=अथवा, पत्युः=अस्याः भर्तुर्दशरथस्य, रहसि=एकान्ते, यत्किमपि, परमन्त्रायितम्—परेण मन्त्रायितम्=गुप्तभाषणम्, अभूत्=जातम्, तत्राहं=जनक इत्यर्थः, दम्पत्योः—जाया=पत्नी च पतिः=स्वामी चेति दम्पती तयोः दशरथकौसल्ययोरित्यर्थः, पृथक्=भिन्नं यथा स्यात्तथा, उपालम्भविषयः—उपालम्भस्य=निन्दाया विषयः=पात्रम्, अभूवम्=अभवम् । अयमेवमुक्तवानयमेवं कृतवानियमेवं कृतवती इयमेवमुक्तवतीत्यादिपरस्परापराधकथनपात्रमासम् । तदनु=तदनन्तरम्, प्रसादे=उभयोः प्रसन्नतासम्पादने, वेति विकल्पे, कोपे=क्रोधोत्पादने, मदधीनः=ममायत्तः, विधिः=विधानम्, उपाय इति यावत्, अभूत्=आसीत् । वा=अथवा, तत्=पूर्ववृत्तम्, स्मृत्वा=स्मरणेन, अलम्=पर्याप्तम्, निरर्थकमिति भावः । अधुना पूर्ववृत्तस्य स्मरणेन न कोऽपि लाभ इत्यर्थः ।

---

१. परमं दूषितम् ।

बड़ा दुःख है, क्या यह वही कौसल्या हैं ?

इनकी और इनके पति की एकान्त में जो कुछ परम गोपनीय बात-चीत (या कहा-सुनी) होती थी, उस विषय में मैं पति तथा पत्नी की अलग-अलग उलाहना का पात्र होता था। उसके बाद दोनों को प्रसन्न करने या क्रुद्ध करने का उपाय मेरे अधीन हुआ करता था। अथवा उस बात का स्मरण करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि यह हृदय को आक्रान्त कर जला रहा है ।। १४ ।।

विशेष:—दशरथ और कौसला में परस्पर जो प्रेम-कहल होता था अथवा एकान्त की घड़ी में जो कुछ अनबन या कहा-सुनी हो जाती थी, उसके लिये पति-पत्नी महाराज जनक को ही उलाहना देते थे। कौसल्या जनक से कहती थीं कि—देखिये आपके मित्र ने मेरा यह अपमान किया, मुझे यह कहा, वह कहा आदि-आदि। इसी प्रकार दशरथ भी जनक को ही उलाहना दिया करते थे। यह स्थिति दशरथ और जनक की मित्रता की पराकाष्ठा सूचित करती थी।

प्रसादे कोपे वा—जनक से पति-पत्नी एक दूसरे की शिकायत करते थे। जनक समझा बुझाकर दोनों की अनबन को समाप्त करा देते थे। यदि कभी जनक को कुछ आनन्द लेना होता था तो वे इस प्रेम-कलह को थोड़ा उभाड़ देते थे। इस प्रकार कौसल्या और दशरथ को परस्पर प्रेमपूर्वक मिला देना अथवा अधिक क्रुद्ध कर देना जनक के ही हाथ में हुआ करता था ।।१४।।

यत्=पूर्ववृत्तं स्मृतं सत्, हृदयम्=चेतः, अवस्कन्द्य=आक्रम्य, दहति=भस्मसात् करोति। अत्रासङ्गतिरलङ्कारः। शिखरिणी छन्दः ॥ १४ ॥

टिप्पणी—**दम्पत्योः**—जाया च पतिश्च दम्पती जम्पती वा, जायायाः 'दम्' भावः 'जम्' भावो वा निपात्यते अर्थात् जाया के स्थान में जम् अथवा दम् आदेश हो जाता है।

अलं स्मृत्वा—"अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" (पा० ३।४।१८) इसके अनुसार प्रतिषेध अर्थ को बतलाने वाले 'अलम्' के योग में 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है।

अवस्कन्द्य—अव+√स्कन्द+ल्यप् ॥

यहाँ कार्य और कारण के पृथक् पृथक् स्थित होने से असंगति अलङ्कार है। विवाद दशरथ और कौसल्या में है, उलाहना जनक को दिया जाता है। निर्दोष जनक को उलाहना देने से असंगति अलंकार है। शिखरिणी छन्द के लक्षण के लिये देखिये पीछे के श्लोक की टिप्पणी ।। १४ ।।

अरुन्धती—हा ! कष्टम् ! [१]क्षतिचिरनिरुद्धनिःश्वासनिष्प[२]न्दं हृदयमस्याः ।

जनकः—हा प्रियसखि ! (इति कमण्डलू[३]दकेन सिञ्चति ।)

कञ्चुकी—

सुहृदिव प्रकटय्य [४]सुखप्रदां प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः परिशिनष्टि विधिर्मनसो[५] रुजम् ॥ १५ ॥

कौसल्या—(आश्वस्य ।) हा वत्से जानकि! कुत्रासि ? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलं संफुल्लमुग्धमुखपुण्डरीकमारोहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम् । एहि मे पुनरपि जाते ! उद्द्योतयोत्सङ्गम् । सर्वदा महाराज एवं भणति--'एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूरस्माकं तु जनकसुता दुहितैव' !

शब्दार्थः—हा=हाय, कष्टम्=बड़ा दुःख है । अतिचिरनिरुद्धनिश्वासनिष्पन्दम्=बहुत देर तक श्वास रुकने के कारण निश्चेष्ट, गतिविहीन, निष्पन्द, हृदयम्=हृदय, अस्याः=इसका । कमण्डलूदकेन=कमण्डलु के जल से ॥

टीका--अरुन्धतीति । हा इति खेदे, कष्टम्=अतिदुःखम् । अतिचिरनिरुद्धनिःश्वासनिष्पन्दम्–अतिचिरम् = बहुकालं निरुद्धाः=अवरुद्धाः निश्वासाः यस्मिन् तत् तादृशम्, अस्याः=एतस्याः कौसल्यायाः, हृदयम्=अन्तःकरणम् । कमण्डलूदकेन–कमण्डलोः उदकेन=जलेन ॥

टिप्पणी—निरुद्ध०—नि + √रुध् + क्त + विभक्त्यादिः । सिञ्चति—√सिच् + लटि प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—विधिः, प्रथमम्, सुहृत्, इव, सुखप्रदाम्, एकरसाम्, अनुकूलताम्, प्रकटय्य, पुनः, अकाण्डविवर्तनदारुणः (सन्), मनसः, रुजम्, परिशिनष्टि ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—विधिः = भाग्य, प्रथमम् = पहले, सुहृत् = मित्र की, इव=तरह, सुखप्रदाम्=सुखदायक, एकरसाम्=एकरस, एक जैसी, समान, अनुकूलताम्–अनुकूलता को, प्रकटय्य=प्रकट करके, पुनः=फिर, बाद में, अकाण्डविवर्तनदारुणः (सन्)= असमय में परिवर्तन के कारण भीषण होकर, मनसः=मन की, रुजम्=व्याधि को, परिशिनष्टि=बढ़ाता है ॥ १५ ॥

टीका--सुहृदिवेति । विधिः = भाग्यम्, प्रथमम्=पूर्वम्, सुहृदिव=मित्रमिव, सुखप्रदाम्=आनन्ददायिनीम्, एकरसाम्–एकः=एककः, रसान्तरेण अमिश्र इति यावत्, रसः=प्रेम इति भावः, यस्यां सा ताम्, अनुकुलताम्=आनुकूल्यम्, प्रकटय्य=प्रकाश्य, पुनः = अनन्तरम्, अकाण्डविवर्तनदारुणः–अकाण्डे = अनवसरे यत्, विवर्तनम् =

१. चिर, २. निष्पन्दहृदयम्, निष्ठुरं, ३. ०लुजलेन, ४. सुखप्रदः, ५. विधिरहो विशिनष्टि मनोरुजम् ।

अरुन्धती—हाय बड़ा दुःख है। बहुत देर तक श्वास रुकने के कारण इनका हृदय निष्पन्द हो गया है।

जनक—हाय, प्रियसखि, (यह कह कर कमण्डलु का जल छिड़कते हैं)।

कञ्चुकी—भाग्य पहले मित्र की तरह सुखदायक एक रस अनुकूलता को प्रकट कर फिर असमय में परिवर्तन के कारण भीषण होकर मन की व्याधि को बढ़ाता है (अर्थात् मन के कष्ट को बढ़ाता है) ॥ १५ ॥

कौसल्या—(आश्वस्त होकर) हाय बेटी जानकी, कहाँ हो? तत्काल सम्पन्न विवाह की शोभा को धारण करने से अनुपम मङ्गलमय, उदित होते हुए कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सुन्दर, भली-भाँति विकसित तुम्हारे मनोहर मुख-कमल को मैं याद कर रही हूँ। हे बेटी, आओ मेरी गोदी को फिर से प्रकाशित करो। महाराज (दशरथ) कहा करते थे कि—"यह सीता तो रघुकुल के पूर्वजों की पुत्रवधू है, किन्तु मेरी तो बेटी ही है।

परिवर्तनं तेन दारुणः=क्रूरः सन्, मनसः=चेतसः, रुजम्=व्याधिम्, पीडामिति यावत्, परिशिनष्टि=परिशिष्टां करोति, सर्वतोभावेन विस्तारयतीत्यर्थः। अत्र विषममुपमा चालंकारौ। द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ १५ ॥

टिप्पणी—प्रकटय्य—प्र + √कट् + णिच् + ल्यप्। सुखप्रदः—सुखं प्रददातीति। प्र + √दा + क + विभक्त्यादिः। विवर्तन०-वि + √वृत् + ल्युट् + विभक्त्यादिः।

भाग्य के दो विरुद्ध गुणवाले कार्यों के वर्णन से यहाँ विषम अलंकार है। एक बार भाग्य जनक आदि के लिये सुखद रहा और फिर बाद में सर्वथा प्रतिकूल बन गया। सुहृदिव में इव उपमा का वाचक है, अतः उपमा अलंकार है।

यह श्लोक मालतीमाधव (४।७) में भी आया है।

श्लोक में प्रयुक्त द्रुतविलम्बित छन्द का लक्षण—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलम्=तत्काल हुए विवाह की शोभा को धारण करने से अनुपम मङ्गलमय, संफुल्लमुग्ध-मुखपुण्डरीकम्—भली-भाँति विकसित मनोहर मुखकमल को, आरोहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम्=उदित होते हुए कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सुन्दर। उद्योतय=प्रकाशित करो, उत्सङ्गम्=गोदी को। रघुकुलमहत्तराणाम्=रघुकुल के पूर्वजों की, दुहिता=बेटी।

टीका—कौसल्येति। नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलम्—नवः=नूतनो यो विवाहः=उद्वाहस्तस्य लक्ष्मीस्तस्याः परिग्रहेण एकं मङ्गलम्=शुभं यस्य तत्

(हा वच्छे जाणइ ! कहिं सि ? सुमरामि दे णवविवाहलच्छीवरिग्गहेक्कमङ्गलं संफुल्लमुद्धमुहपुण्डरीअं आरुहन्तकौमुदीचन्दसुन्दरम् । एहि मे पुणो वि जादे ! उज्जो- एहि उच्छङ्गम् । सव्वहा महाराज एव्वं भणदि–'एसा रहुउलमहत्तराणं बहु, अह्माणं दु जणअसुदा दुहिदेव्व' ।)

कञ्चुकी--यथाह देवी ।[1]

पञ्चप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रुः ।
वधू[2]चतुष्केऽपि तथैव नान्या प्रिया तनूजाऽस्य यथैव सीता ।। १६ ।।

जनकः--हा प्रियसखं महाराज, दशरथ ! एवमसि सर्वप्रकारहृदयङ्गमः । कथं विस्मर्यते ?

तादृशम्, संफुल्लमुग्धमुखपुण्डरीकम्—संफुल्लम् = विकसितं हास्येनेति भावः मुग्धम् = सुन्दरं मुखमुण्डरीकम् = आननकमलम्, आरोहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम्— आरोहंश्चासौ कौमुदीचन्द्रः=कार्तिकपूर्णिमायां पूर्णप्रभामण्डितश्चन्द्रः इव सुन्दरम्= मनोहारि; मुखपुण्डरीकमित्यस्य विशेषणमेतत् । उद्योतय=उपवेशनेन प्रकाशयेत्यर्थः, उत्सङ्गम्=क्रोडम् । रघुकुलमहत्तराणाम्—रघोः कुले=वंशे ये महत्तराः=महीयांसः, माननीयमनुप्रभृतय इत्यर्थः, तेषां वधूः=स्नुषा । दुहिता=पुत्री, स्वसखस्य जनकस्य दुहितृत्वादिति भावः ।

टिप्पणी—०परिग्रह०—परि + √ग्रह + अप् + विभक्त्यादिः । प्रस्फुरत्– प्र + √स्फुर् + शतृ + विभक्त्यादिः । उद्योतय–उद् + √द्युत् + आ०णिच्, लोट् । संफुल्ल०–सम् + √फुल्ल् + घञ् + विभक्तिः ।।

अन्वयः—पञ्चप्रसूतेः, अपि, तस्य, राज्ञः, सुबाहुशत्रुः, विशेषेण, प्रियः; तथैव, अस्य, वधूचतुष्के, अपि, सीता, एव, तनूजा, यथा, प्रिया, अन्या, न ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—पञ्चप्रसूतेः=पाँच सन्तानों के रहने पर, अपि=भी, तस्य=उस, राज्ञः=राजा दशरथ के, सुबाहुशत्रुः–सुबाहु को मारने वाले श्रीराम, विशेषेण=विशेष रूप से, प्रियः=प्रिय थे; तथैव=उसी प्रकार, अस्य=इन्हें, वधूचतुष्के=चार बहुओं के रहने पर, अपि=भी, सीता=जानकी, एव=ही, तनूजा=बेटी की, यथा=तरह, प्रिया= प्रिय थीं, अन्या=दूसरी, न=नहीं ।। १६ ।।

टीका—पञ्चप्रसूतेरिति । पञ्च=पञ्चसंख्याकाः प्रसूतयः=सन्ततयो यस्य तस्य तादृशस्य, अपि=च; शान्ताख्या कन्या रामादयश्चत्वारः पुत्राश्चेत्यपत्यपञ्चकयुक्तस्येति भावः, तस्य=राज्ञो दशरथस्य, सुबाहुशत्रुः–सुबाहोः=मारीचसहचर-राक्षसस्य शत्रुः=

---

१. राज्ञ आसीत्, २. चतुष्ट्येऽपि, यथैव शान्ता ।

कञ्चुकी—महारानी ने ठीक ही कहा—

पाँच सन्तानों के रहने पर भी उस राजा दशरथ के सुबाहु राक्षस को मारने वाले श्रीराम विशेष रूप से प्रिय थे। उसी प्रकार इन्हें चार बहुओं के रहने पर भी जानकी ही, बेटी की तरह, प्रिय थीं दूसरी (उतनी) नहीं प्रिय थीं ॥ १६ ॥

जनक—हाय, प्रिय मित्र महाराज दशरथ, इस प्रकार आप पूर्णतया मेरे हृदय में रमे हुए हो। कैसे भुलाया जाय ? ॥

अरिः, रामचन्द्र इत्यर्थः, विशेषेण=अधिकरूपेण, प्रियः=अभीष्टः, आसीदिति शेषः; तथैव=तेनैव प्रकारेण, अस्य=एतस्य, राज्ञो दशरथस्य इत्यर्थः, वधूचतुष्केऽपि—चत्वारि परिमाणानि अस्येति चतुष्कः "संख्याया अतिशदन्तायाः कन्" इति कन्, वधूनाम्=स्नुषाणां चतुष्के=सीतादिस्नुषाचतुष्टयेऽपि, सीता एव=जानक्येव, तनूजा=पुत्री, यथा=इव, शान्तेवेत्यर्थः, प्रिया=अभीष्टा, अन्या=अपरा, माण्डव्यादिरित्यर्थः, न=नाभीष्टा, आसीदिति शेषः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। उपजातिश्छन्दः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—जीवानन्द ने यहाँ "वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता।" इस पाठ के स्थान पर "वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजाऽस्य तथैव सीता।" यह पाठ स्वीकार किया है। दोनों पाठों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है।

पञ्चप्रसूतेः—पाँच सन्तति वाले। **०प्रसूतेः**—प्र + √सू + क्तिन् + विभक्त्यादिः। महाराज दशरथ की पाँच सन्तानें थीं—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और शान्ता नामक बेटी।

सुबाहुशत्रुः—राम सुबाहु नामक राक्षस के शत्रु थे। सुबाहु और मारीच विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालते थे। विश्वामित्र दशरथ के पास आये और राम-लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिये ले गये। राम ने मुनि के यज्ञ की रक्षा करते हुए सुबाहु का वध किया था।

तनूजा—तन्वाः जायत इति तनूजा=पुत्री। तनू + √जन् + ड (अ) + टाप् + विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में "यथैव सीता" में यथा के द्वारा उपमा अलंकार है। उपजाति छन्द का लक्षण—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—प्रियसख=प्रियमित्र, सर्वप्रकार-हृदयङ्गमः=सब प्रकार से हृदय में रमे हुए। विस्मर्यते=भुलाया जाय ॥

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं
संबन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।
त्वं कालेन तथाविधोऽप्य[1]पहृतः संबन्धबीजं च[2] तद्
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग् जीवितम् ॥१७॥

कौसल्या--जाते जानकि ! किं करोमि ? दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति। (जादे जाणइ ! किं करोमि ? दिढवज्जलेवपडिबद्धणिच्चलं हदजीविदं मं मन्दभाइणीं ण पडिच्चअदि।)

टीका—जनक इति। प्रियसख–प्रियश्चासौ सखा चेति प्रियसखस्तत्सम्बुद्धौ, सर्वप्रकार हृदयङ्गमः–सर्वैः=सकलैः प्रकारैः=धर्मैः हृदयं गच्छतीति हृदयङ्गमः= चित्तस्थापितः। कथम्=केन प्रकारेण, विस्मर्यते=विस्मर्तुं शक्यते ? ॥

टिप्पणी—प्रियसख—प्रियसखि + समासान्तष्टच् (अ) + इलोप + विभक्तिः।

हृदयङ्गमः—हृदय + √गम् + खच् (अ) + विभक्तिः। यहाँ "गमेः सुपि वाच्यः (वा०)" से खच् प्रत्यय और "अरुद्विपदजन्तस्य खच् (६।३।६७) से हृदय के बाद मुम् (म) होता है ॥

अन्वयः—कन्यायाः, पितरः, जामातुः, आप्तम्, जनम्, पूजयन्ति, किल; सम्बन्धे (जाते), मयि, ते, तत्, आराधनम्, विपरीतम्, एव, अभूत्; तथाविधः, अपि, त्वम्, कालेन, अपहृतः; तत्, सम्बन्धबीजम्, च, (अपहृतम्); अस्मिन्, घोरे, जीवलोकनरके, पापस्य, मम, जीवितम्, धिक् ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—कन्यायाः=कन्या के, पितरः = माता-पिता, जामातुः = दामाद के, आप्तम्=मान्य, जनम्=जनों की, पूजयन्ति=पूजा करते हैं, सम्मान करते हैं, किल= ऐसी प्रथा है, सम्बन्धे (जाते)=सम्बन्ध हो जाने पर, मयि=मेरे विषय में, ते= आपकी, तत्=वह, समाराधनम् = पूजा, विपरीतम्=विपरीत, एव=ही, अभूत्=थी; तथाविधः=वैसे भले व्यक्ति, त्वम्=आप, अपि=भी, कालेन=काल के द्वारा, अपहृतः= छीन लिये गये, तत्=वह, सम्बन्धबीजम्=सम्बन्ध के मूल कारण (सीता) को, च= भी, (अपहृतम्=छीन लिया गया); अस्मिन्=इस, घोरे = भीषण, जीवलोकनरके= संसाररूपी नरक में, पापस्य=घोर पापी, मम = मेरे जीवितम् = जीवन को, धिक्= धिक्कार है ॥ १७ ॥

टीका---कन्याया इति। कन्यायाः=दुहितुः, पितरः = मातापितृपक्षीया जनाः जामातुः=वरस्य, आप्तम्=मान्यम्, जनम् = लोकम्, पूजयन्ति=सत्कुर्वन्ति, किलेति प्रसिद्धौ, सम्बन्धे सति=अस्मदपत्ययोर्वैवाहिके सम्बन्धे जाते सति; मयि=जनके, ते=

---

१. तथाविधोऽस्यपहृतः, २. तु।

कन्या के माता-पिता दामाद के मान्य जनों की पूजा करते हैं—ऐसी प्रथा है। किन्तु सम्बन्ध हो जाने पर मेरे विषय में आपकी वह पूजा विपरीत ही थी (अर्थात् लोक-व्वहार के विपरीत आप मेरी पूजा करते थे)। वैंसे भले व्यक्ति आप भी काल के द्वारा छीन लिये गये और हम दोनों के उस सम्बन्ध के मूल कारण (सीता) को भी छीन लिया गया। इस भीषण संसाररूपी नरक में घोर पापी मेरे जीवन को धिक्कार है ॥ १७ ॥

कौसल्या--बेटी सीता, मैं क्या करूँ? मानो कठोर वज्रलेप के द्वारा बाँधे जाने के कारण निश्चल घृणित मेरा यह जीवन मुझ अभागिन को नहीं छोड़ रहा है।

तव=दशरथस्य, जामातुर्जनकस्येति तात्पर्यम्, आराधनम्=पूजनम्, विपरीतमेव=लोकपरम्पराविरुद्धमेव, अभूत्=आसीत्। तथाविधः=तादृशोऽतिसौम्योऽपि, त्वम्=भवान्, कालेन=मृत्युना, अपहृतः=आच्छिद्य गृहीतः; तत्=प्रसिद्धं तादृशम्, सम्बन्धबीजम्=सम्बन्धस्य बीजम्=हेतुश्चापि, अपहृतमिति लिङ्गविपरिणामेनान्वयः। अस्मिन्=एतस्मिन्, घोरे=भीषणे, जीवलोकनरके=जीवलोकः=संसार एव नरकः=निरयः ("स्यान्नरको निरयेऽपि च" इत्यमरः) तस्मिन्, पापस्य=पापात्मकस्य, मम=जनकस्येत्यर्थः, जीवितम्=जीवनम्, धिक्=गर्हणीयमेवास्तीति। अत्र रूपकमलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १७ ॥

टिप्पणी—आप्तं जनम्—लोक-व्यवहार में देखा जाता है कि कन्या के माता-पिता आदि वर के पक्ष के श्रेष्ठ जनों की पूजा करते हैं। किन्तु दशरथ और जनक के विषय में यह बात विपरीत थी। महाराज दशरथ राम के पिता थे, फिर भी वे सीता के पिता जनक का आदर-सत्कार किया करते थे। यह अतिशय मैत्री का द्योतक है।

अपहृतः--अप + √हृ + क्त + विभक्तिः।

सम्बन्धबीजम्--सम्बन्ध का बीज अर्थात् दोनों के सम्बन्ध का कारण सीता थी। उसे भी मृत्यु ने उठा लिया है। जनक समझते हैं कि सीता अब जीवित नहीं है।

जीवितं धिक्----यहाँ धिक् के कारण जीवितं में द्वितीया विभक्ति आई हुई है।

'जीवलोकनरके' में रूपक अलङ्कार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थः--जाते=बेटी, दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलम्=कठोर वज्रलेप के द्वारा बन्धन के कारण मानो निश्चल, हतजीवितम्=घृणित जीवन, मन्दभागिनीम्=अभा-

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं
संबन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि ।
त्वं कालेन तथाविधोऽप्य[1]पहृतः संबन्धबीजं च[2] तद्
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग् जीवितम् ॥१७॥

कौसल्या--जाते जानकि ! किं करोमि ? दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति । (जादे जाणइ ! किं करोमि ? दिढवज्जलेवपडिबद्धणिच्चलं हदजीविदं मं मन्दभाइणीं ण पडिच्चअदि ।)

टीका—जनक इति । प्रियसख-प्रियश्चासौ सखा चेति प्रियसखस्तत्सम्बुद्धौ, सर्वप्रकारहृदयङ्गमः-सर्वैः=सकलैः प्रकारैः=धर्मैः हृदयं गच्छतीति हृदयङ्गमः= चित्तस्थापितः । कथम्=केन प्रकारेण, विस्मर्यते=विस्मर्तुं शक्यते ? ॥

टिप्पणी—प्रियसख—प्रियसखि+समासान्तष्टच् (अ)+इलोप+विभक्तिः । हृदयङ्गमः—हृदय+√गम्+खच् (अ)+विभक्तिः । यहाँ "गमेः सुपि वाच्यः (वा०)" से खच् प्रत्यय और "अरुद्विषदजन्तस्य खच् (६।३।६७) से हृदय के बाद मुम् (म) होता है ॥

अन्वयः—कन्यायाः, पितरः, जामातुः, आप्तम्, जनम्, पूजयन्ति, किल; सम्बन्धे (जाते), मयि, ते, तद्, आराधनम्, विपरीतम्, एव, अभूत्; तथाविधः, अपि, त्वम्, कालेन, अपहृतः; तद्, सम्बन्धबीजम्, च, (अपहृतम्); अस्मिन्, घोरे, जीवलोकनरके, पापस्य, मम, जीवितम्, धिक् ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—कन्यायाः=कन्या के, पितरः=माता-पिता, जामातुः=दामाद के, आप्तम्=मान्य, जनम्=जनों की, पूजयन्ति=पूजा करते हैं, सम्मान करते हैं, किल= ऐसी प्रथा है, सम्बन्धे (जाते)=सम्बन्ध हो जाने पर, मयि=मेरे विषय में, ते= आपकी, तद्=वह, समाराधनम्=पूजा, विपरीतम्=विपरीत, एव=ही, अभूत्=थी; तथाविधः=वैसे भले व्यक्ति, त्वम्=आप, अपि=भी, कालेन=काल के द्वारा, अपहृतः= छीन लिये गये, तद्=वह, सम्बन्धबीजम्=सम्बन्ध के मूल कारण (सीता) को, च= भी, (अपहृतम्=छीन लिया गया); अस्मिन्=इस, घोरे=भीषण, जीवलोकनरके= संसाररूपी नरक में, पापस्य=घोर पापी, मम=मेरे जीवितम्=जीवन को, धिक्= धिक्कार है ॥ १७ ॥

टीका--कन्याया इति । कन्यायाः=दुहितुः, पितरः=मातापितृपक्षीया जनाः जामातुः=वरस्य, आप्तम्=मान्यम्, जनम्=लोकम्, पूजयन्ति=सत्कुर्वन्ति, किलेति प्रसिद्धौ, सम्बन्धे सति=अस्मदपत्ययोर्वैवाहिके सम्बन्धे जाते सति; मयि=जनके, ते=

---

१. तथाविधोऽस्यपहृतः, २. तु ।

कन्या के माता-पिता दामाद के मान्य जनों की पूजा करते हैं—ऐसी प्रथा है। किन्तु सम्बन्ध हो जाने पर मेरे विषय में आपकी वह पूजा विपरीत ही थी (अर्थात् लोक-व्वहार के विपरीत आप मेरी पूजा करते थे)। वैसे भले व्यक्ति आप भी काल के द्वारा छीन लिये गये और हम दोनों के उस सम्बन्ध के मूल कारण (सीता) को भी छीन लिया गया। इस भीषण संसाररूपी नरक में घोर पापी मेरे जीवन को धिक्कार है ॥ १७ ॥

कौसल्या--बेटी सीता, मैं क्या करूँ? मानो कठोर वज्रलेप के द्वारा बाँधे जाने के कारण निश्चल घृणित मेरा यह जीवन मुझ अभागिन को नहीं छोड़ रहा है।

तव=दशरथस्य, जामातुर्जनकस्येति तात्पर्यम्, आराधनम्=पूजनम्, विपरीतमेव=लोक-परम्पराविरुद्धमेव, अभूत्=आसीत्। तथाविधः=तादृशोऽतिसौम्योऽपि, त्वम्=भवान्, कालेन=मृत्युना, अपहृतः=आच्छिद्य गृहीतः; तत्=प्रसिद्धं तादृशम्, सम्बन्धबीजम्=सम्बन्धस्य बीजम्=हेतुश्चापि, अपहृतमिति लिङ्गविपरिणामेनान्वयः। अस्मिन्=एतस्मिन्, घोरे=भीषणे, जीवलोकनरके=जीवलोकः=संसार एव नरकः=निरयः ("स्यान्नरको निरयेऽपि च" इत्यमरः) तस्मिन्, पापस्य=पापात्मकस्य, मम=जनकस्येत्यर्थः, जीवितम्=जीवनम्, धिक्=गर्हणीयमेवास्तीति। अत्र रूपकमलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १७ ॥

टिप्पणी--आप्तं जनम्--लोक-व्यवहार में देखा जाता है कि कन्या के माता-पिता आदि वर के पक्ष के श्रेष्ठ जनों की पूजा करते हैं। किन्तु दशरथ और जनक के विषय में यह बात विपरीत थी। महाराज दशरथ राम के पिता थे, फिर भी वे सीता के पिता जनक का आदर-सत्कार किया करते थे। यह अतिशय मैत्री का द्योतक है।

अपहृतः--अप+√हृ+क्त+विभक्तिः।

सम्बन्धबीजम्--सम्बन्ध का बीज अर्थात् दोनों के सम्बन्ध का कारण सीता थी। उसे भी मृत्यु ने उठा लिया है। जनक समझते हैं कि सीता अब जीवित नहीं है।

जीवितं धिक्---यहाँ धिक् के कारण जीवितं में द्वितीया विभक्ति आई हुई है।

'जीवलोकनरके' में रूपक अलङ्कार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थः--जाते=बेटी, दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलम्=कठोर वज्रलेप के द्वारा बन्धन के कारण मानो निश्चल, हतजीवितम्=घृणित जीवन, मन्दभागिनीम्=अभा-

अरुन्धती--आश्वसिहि राज्ञि ! बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु[1] कर्तव्य एव । अन्यच्च किं न स्मरसि ? यदवोचदृष्यशृङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुः[2]—'भवितव्यं तथेत्युपजातमेव । किंतु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति ।

कौसल्या--कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत् ? (कुदो अदिक्कन्दमणोरहाये मह एदम् ?)

अरुन्धती--तत्किं मन्यसे राजपत्नि ! मृषोद्यं तदिति । न हीदं [3]क्षत्रिये ! मन्तव्यम् ।[4]

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां,
ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत् ।
[6]भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्नि[5]षक्ता,
नैते वाचं विप्लु[7]तार्थां वदन्ति ॥ १८ ॥

गिन । अतिक्रान्तमनोरथायाः = मनोरथों का अतिक्रमण करने वाली । मृषोद्यम् = असत्य कथन ॥

टीका—कौसल्येति । जाते=पुत्रि, जानकि=सीते, दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलम्--दृढेन=दुरपनयेन वज्रलेपेन=बन्धकद्रव्यलेपेन यः प्रतिबन्धः=विश्लेषानुत्पादस्तेन निश्चलम्=स्थिरम्, तादृशं हतजीवितम्=निन्द्यजीवितम् । मन्दभागिनीम्=मन्दः=कुण्ठितः भागः=भाग्यं यस्याः सा तां तादृशीम्, अभागिनीमिति यावत्, अतिक्रान्तमनोरथायाः--अतिक्रान्तः=अतीतो मनोरथः=अभिलाषो यस्याः सा तस्याः, असंभाव्याभिलाषविषयायाः इत्यर्थः । मृषोद्यम्=मिथ्यावचनमिति ॥

टिप्पणी—वज्रलेप०--कौसल्या के कहने का भाव यह है कि इतना कष्ट सहने पर भी मेरे प्राण नहीं निकल रहे हैं । अतः मालूम पड़ता है कि उन्हें विधाता ने हमारे भीतर वज्रलेप से जोड़ दिया है । वज्रलेप एक प्रकार का लेप था जो हड्डियों को जोड़ने के काम आता था आज कल के प्लास्टर की भाँति । इसका वर्णन बृहत्संहिता के ५७ वें अध्याय में है । वज्रलेप सेमेण्ट को भी कहते हैं ।

अतिक्रान्तमनोरथायाः--जो सभी मनोरथों को लाँघ चुकी है । कौसला को अब किसी भी मनोरथ के पूर्ण होने की आशा नहीं है । वे सीता के दर्शन की भी आशा छोड़ चुकी हैं ।

मृषोद्यम्—असत्य वचन । मृषा=असत्यम् उद्यते इति मृषोद्यम् । मृषा+ √वद्+क्यप् (य)+विभक्त्यादिः ॥

---

१. अन्तरे, २. गुरुस्तदुपजातमेव, ३. सुक्षत्रियेऽन्यथा मन्तव्यम्, ४. 'भवितव्यमेव तेन' इत्यधिकः पाठः, ५ भग्ना, ६. नियुक्ता, ७. विप्लुतां व्याहरन्ति ।

अरुन्धती—आश्वस्त हो ओ रानी जी, बीच-बीच में आँसुओं को रोकना भी चाहिये। दूसरी बात यह है कि—क्या आपको स्मरण नहीं है, ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में जो आपके कुलगुरु (वसिष्ठ) ने कहा था कि—"जो होनी थी, वह हुई। किन्तु परिणाम मङ्गलमय होगा।

कौसल्या—सारे मनोरथों का अतिक्रमण करके स्थित मेरे जैसी अभागिन के लिये यह कैसे होगा ?

अरुन्धती—महारानी, तो आप क्या समझती हैं कि—उनका वह कथन असत्य था ? हे क्षत्राणी, आपको ऐसा नहीं समझना चाहिये।

जिनके भीतर ब्रह्म-ज्योति प्रकाशित हो चुकी है ऐसे ब्राह्मणों के जो वचन हैं उनके विषय में सन्देह नहीं होना चाहिये, क्योंकि इनकी जिह्वा पर मङ्गलमयी सिद्धि निवास करती है। ये कभी भी मिथ्या वचन नहीं बोलते हैं॥ १८॥

अन्वयः—आविर्भूतज्योतिषाम्, ब्राह्मणानाम्, ये, व्याहाराः, तेषु, संशयः, मा भूत्। हि, एषाम्, वाचि, भद्रा, लक्ष्मीः, निषक्ता; एते, कदाचिदपि, विप्लुतार्थाम्, वाचम्, न, वदन्ति॥ १८॥

शब्दार्थः—आविर्भूतज्योतिषाम्=जिनके भीतर ब्रह्म-ज्योति प्रकाशित हो चुकी है ऐसे, ब्रह्म-साक्षात्कार करने वाले, ब्राह्मणानाम्=ब्राह्मणों के, ये=जो, व्याहाराः= वचन हैं, तेषु=उनके विषय में, संशयः=सन्देह, मा भूत्=नहीं होना चाहिये। हि= क्योंकि, एषाम्=इनकी, वाचि=जिह्वा पर, भद्रा=मङ्गलमयी, लक्ष्मीः=सिद्धि, निषक्ता=निवास करती है; एते=ये, (कदाचिदपि=कभी भी), विप्लुतार्थाम्=असत्य, अर्थविहीन, वाचम्=वचन, न=नहीं, वदन्ति=बोलते हैं॥ १८॥

टीका—आविर्भूतज्योतिषामिति। आविर्भूतज्योतिषाम्–आविर्भूतम्=प्रकाशितं ज्योतिः=प्रकाशः, ब्रह्मज्योतिरित्यर्थः, येषां तेषाम्, ब्राह्मणानाम्=विप्राणाम्, ये=व्याहाराः=यानि वचनानि, तेषु=तादृशेषु वचनेषु, संशयः=सन्देहः, मा भूत्=न स्यात्; हि=यतः, एषाम्=एतेषाम्, कृतब्रह्मसाक्षात्काराणामित्यर्थः, वाचि=वाण्याम्, भद्रा=कल्याणकारिणी, लक्ष्मीः=श्रीः सिद्धिर्वा, निषक्ता=नित्यसङ्गिनी, भवतीति शेषः। एते=इमे, कृतब्रह्मसाक्षात्कारा ब्राह्मणा इत्यर्थः, विप्लुतार्थाम्–विप्लुतः=दूरीभूत इत्यर्थः, अर्थः=अभिधेयो यस्यास्तां तादृशीम्, मिथ्यार्थामिति यावत्, वाचम्=वचनम्, न वदन्ति=न भाषन्ते। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। शालिनी छन्दः॥ १८॥

टिप्पणी—व्याहाराः—वि+आ+ √हृ + घञ् (अ) +प्रथमैकवचने विभक्तिकार्यम्। मा भूत्–न हो। भूत्–√भू+लुङ्+प्रथमैकवचने विभक्तिः। यहाँ माङ् के कारण धातु से पहले "न माङ्योगे" (६।४।७४) से अट् का अभाव

(नेपथ्ये कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति ।)

जनकः—अये, [१]शिष्टानध्याय इत्यस्खलितं खेलतां वटूनां कोलाहलः ।

कौसल्या—सुलभसौख्यमिदानीं बालत्वं भवति । (निरूप्य) अहो ! एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैरङ्गैर्दारकोऽस्माकं लोचने शीतलयति ? (सुलहसोक्खं दाणि बाकत्तणं होदि । अह्मे ! एजाणं मज्झे को एसो रामभद्दस्स कोमारलच्छीसावट्ठम्भेहिं मुद्धललिदेहिं अङ्गेहिं दारओ अह्माणं लोअणे शीअलावेदि ?) ।

अरुन्धती—([२]स्वगतम् । सहर्षोत्कण्ठम् ।) इदं नाम भागीरथीनिवेदितं रहस्यकर्णामृतम् । न त्वेवं विद्मः कतमोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति । (प्रकाशम्)

होता है । किन्तु "मा अभूत्=माभूत्" यह प्रयोग भी 'मा' के योग में शुद्ध है । 'मा' के योग में अट् का निषेध नहीं हो पाता । दोनों प्रकार के पाठों में किसी प्रकार का भेद नहीं है ।

निषक्ता—नि + √सज्ज + क्त + टाप् + विभक्तिः । विप्लुत—वि + √प्लु + क्त + विभक्त्यादिः ।

महाकवि भवभूति के इस श्लोक का उत्स है ऋग्वेद का वह मन्त्र जो इसी प्रकार के भाव को अभिव्यक्त करता है—"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत । अत्रा सखायः सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥"

इस श्लोक के उत्तरार्ध में कारण का वर्णन है । कारण के द्वारा पूर्वार्द्ध में वर्णित कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

श्लोक में प्रयुक्त शालिनी छन्द का लक्षण—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—शिष्टानध्यायः = शिष्ट जनों के आगमन के कारण होने वाला अनध्याय, अस्खलितम्=निर्बाध, खेलताम्=खेलने वाले, वटूनाम्=वटुओं (बालकों) का, कोलाहलः=कोलाहल, हल्ला–गुल्ला । सुलभसौख्यम्=सुलभ होता है सुख जिसमें ऐसा, सुलभसुख, बालत्वम्=लड़कपन । कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैः = बाल्यकाल की

---

१ अद्य खलु शिष्टानध्याय इत्युद्धतं खेलतां वटूनां कलकलः ।

२. अपवार्य सहर्षबाष्पम् ।

(पर्दे के पीछे कोलाहल होता है। सभी सुनने लगते हैं)।

जनक—अरे आज शिष्ट जनों के आगमन के कारण होने वाला अनध्याय है। अतः निर्बाध खेलनेवाले बटुओं (बालकों) का यह कोलाहल हो रहा है।

कौसल्या—सुलभ है सुख जिसमें ऐसा लड़कपन होता है। (ध्यान से देखकर) अरे, इन बालकों के मध्य यह कौन बालक है, जो रामभद्र की बाल्यकाल की शोभा से उद्दीप्त, सुकुमार एवं मनोहर अङ्गों से हम लोगों के नेत्रों को शीतल कर रहा है।

अरुन्धती--(अपने आप। हर्ष और उत्कण्ठा के साथ) गङ्गा के द्वारा कहा गया यह गोपनीय और कानों के लिये अमृत-सदृश वचन है। किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं है कि चिरञ्जीवी कुश और लव में से यह कौन-सा (बालक) है। (प्रकट रूप से)।

विशेष--भगवती गंगा ने अरुन्धती को यह बतला दिया था कि सीता ने जिन दो पुत्रों को जन्म दिया है वे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में हैं।

शोभा से उद्दीप्त, मुग्धललितैः=सुकुमार एवं मनोहर, अङ्गैः=अङ्गों से, दारकः= बालक। भागीरथीनिवेदितम्=गङ्गा के द्वारा कहा गया, रहस्यकर्णामृतम्=गोपनीय और कानों के लिये अमृतसदृश॥

टीका--जनक इति। शिष्टानध्यायः-शिष्टागमनेन अनध्यायः शिष्टानध्यायः = शिष्टागमनप्रयुक्ताध्ययनाभावः, मध्यमपदलोपी समासः, अस्खलितम्=न स्खलितम्=प्रतिबन्धो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, निर्बाधमिति यावत्, खेलताम्= क्रीडताम्, वटूनाम्=कुमाराणाम्, कोलाहलः=कलकलः। सुलभसौख्यम्--सुलभम् = सुप्राप्यं सौख्यम्=सुखं यस्मिन् तत् तादृशम्, बालत्वम्=बालभावः। कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैः-कौमारलक्ष्म्याः=बाल्यशोभायाः सावष्टम्भैः=अवलम्बनसहितैः, उद्दीपनयुक्तैरिति भावः, मुग्धललितैः-मुग्धानि=सुकुमाराणि च तानि ललितानि=सुन्दराणि तैः, अङ्गैः=अवयवैः, दारकः=बालकः। भागीरथीनिवेदितम्–भागीरथ्या=गङ्गया निवेदितम्=कथितम्, रहस्यकर्णामृतम्–रहस्यम् = गोपनीयञ्च तत् कर्णामृतम् = श्रोत्रसुखदम्॥

टिप्पणी--खेलताम्— √खेल + शतृ + षष्ठीबहुवचने विभक्तिः। **सुलभ०**-- सु + √लभ् + खल् (अ) + विभक्तिः। **अवष्टम्भः**--अव + √स्तम्भ + घञ् + विभक्तिः। अवष्टम्भ सहारा अथवा अवलम्बनको कहते हैं॥

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो[१]
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियैव[२] सभाजयन् ।
पुनरपि शिशुर्भूतो[३] वत्सः स मे रघुनन्दनो
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम् ? ॥१९॥

कञ्चुकी—नूनं क्षत्त्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये ।

जनकः—एवमेतत् । अस्य[४] हि—

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोक[५]पवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम् ।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ॥२०॥

अन्वयः—कुवलयदलस्निग्धश्यामः, शिखण्डकमण्डनः, पुण्यश्रीकः, श्रिया, वटुपरिषदम्, सभाजयन्, सः, मे, वत्सः, रघुनन्दनः, एव, पुनरपि, शिशुः, भूतः; अयम्, कः, (यः), दृष्टः (सन्), झटिति, दृशोः, अमृताञ्जनम्, कुरुते ॥१९॥

शब्दार्थः—कुवलयदलस्निग्धश्यामः=नीलकमलके पत्र की तरह चिकना एवं श्याम, शिखण्डकमण्डनः=काक पक्ष से मण्डित, पुण्यश्रीकः=पवित्र शोभावाला, श्रिया=शोभा से, वटुपरिषदम्=वटु-समूहको, सभाजयन्=सुशोभित करता हुआ, सः=वह, मे=मेरा, वत्सः=वेटा, रघुनन्दनः=रामचन्द्र, एव=ही पुनरपि=मानो फिर से, शिशुः=बालक, भूतः=हो गया है; अयम्=यह, कः=कौन बालक है, (यः=जो), दृष्टः (सन्)=दिखलाई पड़ने पर, झटिति=सहसा, दृशोः=आँखों में, अमृताञ्जनम्=अमृतरूपी अञ्जन, कुरुते=लगा रहा है ॥ १९ ॥

टीका—कुवलयदलेत्यादिः—कुवलयदलस्निग्धश्यामः — कुवलयस्य = नीलकमलस्य दलमिव=पत्रमिव स्निग्धः=चिक्कणः कोमलश्च श्यामः=नीलः, शिखण्डकमण्डनः—शिखण्डकः=काकपक्षः मण्डनम्=भूषणं यस्य सः तादृशः, पुण्यश्रीकः—पुण्या=पवित्रा श्रीः=शोभा यस्य सः, ("संपत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च" इत्यमरः), श्रिया=शरीरशोभया, वटुपरिषदम्=कुमार-समूहम्, सभाजयन्=अलङ्कुर्वाणः, पुनः=मुहुः, शिशुः=बालः, भूतः=सञ्जातः, सः=जगद्विदितः; मे=मम, वत्सः=वात्सल्यभाजनम्, रघुनन्दनः=रामः, एवेति निश्चयदार्ढ्ये, पुनरपि=मुहुरपि, शिशुः=बालः, भूतः=सञ्जातः; पुनरपि विमृशति—झटितीति । अयम्=एषः, कोऽस्ति, यो दृष्टः=अवलोकितः सन्, झटिति=सत्वरम्, दृशोः=नेत्रयोः अमृताञ्जनम्—अमृतस्य=सुधाया अञ्जनम्=नेत्राञ्जनम्, कज्जलमिति यावत्, कुरुते=रचयति । अत्रोत्प्रेक्षोपमाचालङ्कारौ । हरिणी च छन्दः ॥

---

१. मण्डलः, २. श्रियेव, ३. भूत्वा ४. तथा, ५. स्तोम ।

नीलकमल के पत्र की तरह चिकना एवं श्यामवर्ण, काकपक्ष से मण्डित, पवित्र शोभावाला, शोभा से वटु-समूह को सुशोभित करता हुआ वह मेरा बेटा रामचन्द्र ही मानो फिर से बालक हो गया है, इस प्रकार यह कौन बालक है जो दिखलाई पड़ने पर सहसा आँखों में अमृतरूपी अञ्जन लगा रहा है ॥ १९ ॥

विशेष--पुनरपि शिशुर्भूतः—वटु-समूह में सीता-पुत्र लव भी थे। वे हूबहू श्रीराम के आकार-प्रकार के थे। कौसल्या को यह ज्ञात नहीं था कि यह बालक श्रीराम का ही बेटा है। अतिशय साम्य के कारण वे सोचती हैं मानो मेरा राम ही फिर शिशु बन गया है।

अमृताञ्जनम्—बेटों, नाती-पोतों को देख कर माता-पिता, दादा-दादी की आँखें शीतल हो उठती हैं। मालूम पड़ता है आँखो में अमृताञ्जन लग रहा हो। यही स्थिति कौसल्या की हो रही है, यद्यपि उन्हें यह ज्ञात नहीं कि यह बालक है कौन ? ॥१९॥

कञ्चुकी—निश्चय ही यह बालक क्षत्रिय जाति का ब्रह्मचारी है—ऐसा मेरा अनुमान है।

जनक--यह ऐसा ही है। क्योंकि इसके–पीठ के पीछे दोनों तरफ चोटी से स्पृष्ट कङ्कपत्रों से युक्त दो तरकश हैं, भस्म के ह्रस्व एवं पवित्र चिह्नों से युक्त वक्षः-स्थल है। रुरु-मृग की खाल को वह धारण कर रहा है। उसने नीचे भी मूर्वा घास से निर्मित मेखला द्वारा बँधी हुई धोती पहन रक्खी है। उसके हाथ में धनुष, रुद्राक्ष की माला और पीपल का दण्ड है ॥ २० ॥

टिप्पणी--सभाजयन्—√सभाज् + णिच् + शतृ + प्रथमैकवचने विभक्तिः।

इस श्लोक में 'सभाजयन् इव' में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है, अतः क्रियोत्प्रेक्षा है। 'कुवलयदल०' में इव का अर्थ लुप्त है, अतः लुप्तोपमा अलंकार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त हरिणी छन्द का लक्षण—नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—नूनम्=निश्चय ही, क्षत्रियब्रह्मचारी=क्षत्रिय जाति का ब्रह्मचारी, दारकः=बालक, मन्ये=अनुमान करता हूँ ॥

टीका--कञ्चुकीति। नूनमिति निश्चये, क्षत्रियब्रह्मचारी–क्षत्रियश्चासौ ब्रह्मचारी, दारकः=बालकः, इति=इत्थम्, मन्ये=अनुमिनोमि ॥

अन्वयः—पृष्ठतः, अभितः, चूडाचुम्बितकङ्कपत्रम्, तूणीद्वयम्, भस्मस्तोकपवित्र-लाञ्छनम्, उरः; रौरवीम्, त्वचम्, धत्ते; अधः, च, मौर्व्या, मेखलया, नियन्त्रितम्, माञ्जिष्ठम्, वासः; पाणौ, कार्मुकम्; अक्षसूत्रवलयम्; अपरः, पैप्पलः, दण्डः, (अस्ति) ॥ २० ॥

शब्दार्थः—पृष्ठतः=पीठ के, पीठ से, अभितः=दोनों तरफ, चूडाचुम्बितकङ्कपत्रम्=चोटी से स्पृष्ट कङ्कपत्रों से युक्त, तूणीद्वयम्=दो तरकश, भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनम्=

भगवत्यरुन्धति ! [1]किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयम् ? इति ।

अरुन्धती—अद्यैव [2]वयमागताः ।

जनकः—आर्य गृष्टे ! अतिकौतुकं वर्तते । तद्भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ । इमं च दारकं ब्रूहि 'वत्स ! केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव' इति ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः !

(इति निष्क्रान्तः ।)

कौसल्या—किं मन्यध्वे ! एवं भणित आगमिष्यति वा न वेति ? (किं मण्णेध । एव्वं भणिदो आअमिस्सदि वा ण वेत्ति ।)

जनकः—[3]भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य ?

कौसल्या—(निरूप्य) कथं सविनयनिशमितगृष्टिवचनो विसर्जिताशेषसदृशदारक इतोमुखमपसरित एव स वत्सः । (कहं सविणअणिसमिदगिट्ठिवअणो विसज्जिदासेसरिसदारओ एत्तोमुहं अवसरिदो एव्व स वच्छो ।)

भस्म के ह्रस्व एवं पवित्र चिह्नों से युक्त, उरः=वक्षःस्थल, रौरवीम्=रुरु-मृग की, त्वचम्=खाल को, धत्ते=धारण कर रहा है; अधः=नीचे, च=भी, मौर्व्या=मूर्वा घास से निर्मित, मेखलया=मेखला से, नियन्त्रितम्=बँधी हुई, माञ्जिष्ठम्=मजीठ के रंग में रंगी हुई, वासः=धोती, वस्त्र; पाणौ=हाथ में, कार्मुकम्=धनुष; अक्षसूत्रवलयम्=रुद्राक्ष की माला, अपरः=और, पैप्पलः=पीपल का, दण्डः=दण्ड, (अस्ति=है) ॥२०॥

टीका—चूडाचुम्बितेत्यादिः । पृष्ठतः=पृष्ठभागे, अभितः=उभयतः, चूडाचुम्बितकङ्कपत्रम्—चूडाभिः=शिखाभिः चुम्बितानि=स्पृष्टानि कङ्कपत्राणि=बाणपुङ्खवर्तिनः कङ्कपक्षिपक्षाः, यस्य तथाविधम्, तूणीद्वयम्=इषुधियुगलम्, अस्तीति शेषः; भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनम्–भस्मनाम्=विभूतीनां स्तोकेन=स्वल्पपरिमाणेन पवित्रम्=पूतम् लाञ्छनम्=चिह्नं यस्य तथाविधम्, उरः=वक्षःस्थलमास्ते, रौरवीम्–रुरोः इयं रौरवी तां रौरवीम्=रुरुमृगसम्बन्धिनीम्, त्वचम्=चर्म, धत्ते=धारयति । अधः=अधोभागे, च=अपि, मौर्व्या–मूर्वायाः इयं मौर्वी तया मौर्व्या=मूर्वाख्यलता–गुणनिर्मितया, मेखलया=कटिसूत्रेण, नियन्त्रितम्=बद्धम्, माञ्जिष्ठम्–मञ्जिष्ठया रक्तम्, वासः=वस्त्रम्, अधोवस्त्रमिति यावत्, पाणौ=हस्ते, कार्मुकम्=धनुः, अक्षसूत्रवलयम्=रुद्राक्षमाला, अपरः=अन्यः, धनुर्दण्डादतिरिक्त इत्यर्थः, पैप्पलः–पिप्पलस्य विकारः पैप्पलः=अश्वत्थस्येति यावत्, दण्डः=लगुडश्च, वर्तत इति शेषः । अत्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी—कङ्कपत्रम्—बाण को तीव्र गति से चलने के लिये उसके पिछले किनारे पर कङ्कनामक पक्षी का पंख लगाया जाता था । तूणीद्वयम्—तूणी कहते हैं तरकश को । वीर लोग अपनी पीठ पर बाण से भरे दो तरकश बाँधते थे ।

---

१. किमुत्प्रेक्षसे, २. वयमप्यागताः, ३. भिद्येत वा ।

भगवती अरुन्धती, यह बालक कहाँ से आया है ? इस विषय में आप का क्या अनुमान है।

अरुन्धती—आज ही हम लोग आये हैं (अतः नहीं ज्ञात है)।

जनक—आदरणीय गृष्टि जी, मुझे अत्यन्त उत्कण्ठा है। तो जाकर भगवान् वाल्मीकि से ही पूछिये और इस बालक से कहिये कि—"बेटा, ये कुछ वृद्ध व्यक्ति तुम्हें देखना चाहते हैं।"

कञ्चुकी—जैसी आज्ञा महाराज की। (ऐसा कह कर निकल गया)।

कौसल्या—आप लोगों का क्या विचार है ? इस प्रकार कहने पर वह आयेगा अथवा नहीं ?

जनक—क्या ऐसी (लोकोत्तर) आकृति का आचरण भिन्न होता है ?

कौसल्या—(ध्यान से देखकर) किस प्रकार विनय पूर्वक कञ्चुकी गृष्टि के वचन को सुनकर तथा अपने समस्त साथी बालकों को छोड़ कर वह बालक इस ओर ही चल पड़ा है ?

रौरवीम्—रुरु+अण्+ङीप्+विभक्तिः। **मौर्व्या**–मूर्वा+अण्+ङीप्+विभक्तिः। **कार्मुकम्**–कर्मन्+उकञ् (उक)+आदिवृद्धिर्विभक्तिश्च। **पैप्पलः**–पिप्पल+अण्+विभक्तिः।

इस श्लोक में पहली दो पंक्तियों में तूणीद्वयं उरः और त्वचम् इन तीन प्रस्तुतों का एक क्रिया धत्ते के साथ सम्बन्ध है। इसी तरह चतुर्थ पंक्ति में कार्मुकम्, अक्षसूत्र० और दण्डः का पाणौ से सम्बन्ध है। अतः तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

यह श्लोक महावीर चरित में भी आया है। श्लोक में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अद्यैव=आज ही। अतिकौतुकम्=अत्यन्त उत्कण्ठा। दारकम्= बालक को। प्रवयसः=बड़े-बूढ़े, वृद्ध व्यक्ति, दिदृक्षवः=देखना चाहते हैं। भिद्यते= भिन्न होता है, सद्वृत्तम्=सदाचार, ईदृशस्य=ऐसे, निर्माणस्य=आकृति का, सविनय-निशमितगृष्टिवचनः=विनयपूर्वक कञ्चुकी गृष्टि के वचन को सुनकर, विसर्जिताशेष-सदृशदारकः=अपने समस्त साथी बालकों को छोड़ कर ॥

टीका—अरुन्धतीति। अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने। अतिकौतुकम्=महती उत्कण्ठा। दारकम्=बालकम्। प्रवयसः=वृद्धाः, दिदृक्षवः=द्रष्टुमिच्छवः। भिद्यते=विपरीतं भवति, सद्वृत्तम्=सदाचरणम्, ईदृशस्य=एतादृशस्य, निर्माणस्य=आकृतिविशेषस्य। सविनयनिशमितगृष्टिवचनः–सविनयम्=सप्रश्रयं निशमितम्=श्रुतं गृष्टिवचनम्=

जनकः—(चिरं निर्वर्ण्य ।) भोः ! किमप्येतत् ।

महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशिरो[1] मौग्ध्यमसृणो

विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः ।

मनो मे संमोह[2]स्थिरमपि हरत्येष[3] बलवा-

नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः ॥ २१ ॥

कञ्चुकिकथनं येन तादृशः, विसर्जिताशेषसदृशदारकः–विसर्जिताः=अन्यत्र प्रेषिताः अशेषाः=समग्राः सदृशाः=समानाः दारकाः=बालकाः येन तादृशः ॥

टिप्पणी—भणितः—√ भण्+क्त + विभक्तिः । निर्माणस्य—निर्+ √मा+ल्युट् (अन)+विभक्तिः ।

भिद्यते वा सद्वृत्तम्—इस कथन का भाव यह है कि सुन्दर आकृति में सुन्दर गुण ही निवास करते हैं। यह बालक अति सुन्दर है। अतः सदाचार का उल्लंघन तो नहीं ही करेगा । इसी प्रकार की कुछ और उक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

१. न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् । (मृच्छकटिक ९।१६) ।

२. न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति । (अभिज्ञान शाकु० ४ अंक) ।

३. यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति । (किरातार्जुनीय ६।१ पर मल्लिनाथ द्वारा प्रदत्त उद्धरण) ।

४. सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् । (दशकुमार० ६) ।

५. भिद्यते न सद्वृत्तमिक्ष्वाकुगृहेषु । (महावीर० ६) ।

निरूप्य--नि + √रूप्+णिच्+ल्यप् ।

अपसृतः--अप+ √सृ+क्त+ विभक्तिः ॥

अन्वयः---एतस्मिन्, विनयशिशिरः, मौग्ध्यमसृणः, महिम्नाम्, अतिशयः, (अस्ति, यः), विदग्धैः, निर्ग्राह्यः, न पुनः, अविदग्धैः; बलवान्, एषः, संमोह-स्थिरम्, अपि, मे, मनः, हरति, यद्वत्, परिलघुः, अयस्कान्तशकलः, अयोधातुम्, (हरति) ॥ २१ ॥

शब्दार्थः---एतस्मिन्=इस (बालक) में, विनयशिशिरः=विनय के कारण शीतल, मौग्ध्यमसृणः=भोलेपन के कारण सुकोमल, महिम्नाम्=महिमाका, अतिशयः= उत्कर्ष, (अस्ति=है, यः=जो), विदग्धैः=सूक्ष्मदर्शी लोगों के द्वारा, निर्ग्राह्यः=

---

१. शिशुता, संमोहः, संमोदः, ३. ०त्येव ।

जनक—(बड़ी देर तक ध्यान से देखकर) अरे, यह कुछ विचित्र-सी बात है—

इस (बालक) में विनय के कारण शीतल, भोलेपन के कारण सुकोमल, महिमा का उत्कर्ष है, जो सूक्ष्मदर्शी लोगों के द्वारा भली-भाँति समझने योग्य है, सामान्य स्थूलदर्शी लोगों के द्वारा नहीं। शक्ति-सम्पन्न यह (बालक) हर्ष आदि के आवेग में स्थिर रहने वाले भी मेरे मन को आकृष्ट कर रहा है, जैसे छोटा-सा चुम्बक लौह का टुकड़ा लौह को अपनी ओर (आकृष्ट करता है) ।। २१ ।।

भली-भाँति समझने के योग्य है, न पुनः=न कि, अविदग्धैः=स्थूलदर्शी लोगों के द्वारा। बलवान्=शक्तिसंपन्न, एषः=यह, संमोहस्थिरम्=हर्ष आदि के आवेश में भी स्थिर रहने वाले, अपि=भी, मे=मेरे, मनः=मन को, हरति=आकृष्ट कर रहा है, यद्वत्=जैसे, परिलघुः=छोटा-सा, अयस्कान्तशकलः=चुम्बक लौह का टुकड़ा, अयोधातुम्=लौह को, (हरति=आकृष्ट करता है) ।। २१ ।।

टीका—महिम्नामिति। एतस्मिन्=अस्मिन्, पुरतो दृश्यमान इत्यर्थः, विनयशिशिरः—विनयेन=प्रश्रयेण, शिशिरः=शीतलः, मौग्ध्यमसृणः—मौग्ध्येन=बाल्येन मसृणः=कोमलः, महिम्नाम्=माहात्म्यानाम्, अतिशयः=उत्कर्षः, अस्ति यः, विदग्धैः=निपुणैः, निर्ग्राह्यः=सुतरां ग्रहीतुं शक्यः, निर्णेय इति यावत्, न पुनः=न तु, अविदग्धैः=अनिपुणैर्निर्ग्राह्य इति भावः। बलवान्=शक्तिसन्नः, एषः=अयम्, बालक इत्यर्थः, संमोहस्थिरम्—संमोहे=हर्षादिविमोहकाले, हर्षोद्वेगदशायामपीत्यर्थः, स्थिरम्=अचञ्चलम्, सर्वदैकरसमिति यावत्, अपिनैकरसत्वे दाढर्यं सूचितम्, मे=मम, मनः=चेतः, हरति=आकर्षति, यद्वत्=यथा, परिलघुः=अतिस्वल्पः, अयस्कान्तशकलः—अयस्कान्तस्य=चुम्बकलौहस्य शकलः=खण्डः, ("भित्तं शकलखण्डे वा पुंसि" इत्यमरः), अयोधातुम्=लौहधातुम्, (हरति=आकर्षतीति योज्यम्)। अत्र परिसंख्योपमा चालंकारौ। शिखरिणी च छन्दः ।। २१ ।।

टिप्पणी—**निर्वर्ण्य**—निर्+ √वर्ण+णिच् + ल्यप्। **मौग्ध्यम्**—मुग्धस्य भावः, मुग्ध+ष्यञ्+विभक्त्यादिः। **निर्ग्राह्यः**—निर्+ √ग्रह्+ण्यत्+विभक्तिः। **अतिशयः**—अति+ √शी+अच्+विभक्तिः।

इस श्लोक में "विदग्धैः निर्ग्राह्यः" के द्वारा अन्य की व्यावृत्ति होने से परिसंख्या अलंकार तथा "यद्वत्" के द्वारा उपमा अलंकार है।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।। २१ ।।

लवः—(प्रविश्य स्वगतम् ।) [1]अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात्पूज्यानपि सतः कथमभिवादयिष्ये ? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धप्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते । (सविनयमुसृत्य ।) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः ।

अरुन्धतीजनकौ—कल्याणिन् ! आयुष्मान्भूयाः ।

कौसल्या—जात ! चिरं जीव । (जाद ! जिरं जीव ।)

अरुन्धती—एहि वत्स ! (लवमुत्सङ्गे गृहीत्वा[2] आत्मगतम् ।) दिष्टचा न केवलमुत्सङ्गश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरितः ।

कौसल्या—जात ! इतोऽपि तावदेहि । 'अहो ! न केवलं दरविस्पष्ट-कुवलयमांसलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन, कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकल-हंसघोषघर्घरानुनादिना स्वरेण च रामभद्रमनुसरति । ननु कठोरकमल-गर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव । जात ! पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम् । (चिबुकमुन्नमय्य निरूप्य सवाष्पाकूतम् ।) राजर्षे ! किं न पश्यसि ? निपुणं निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि संवदत्येव । (जाद ! इदो वि दाव एहि । अह्महे ! ण केवलं दरविप्फट्टमंसलुज्जलेण देहबन्धणेण, कवलिदारविन्द-केसरकसाअकण्ठकलहंसघोसघग्घराणुणादिणा सरेण अ रामभद्दं अणुसरेदि । णं कठोरकमलगब्भप्पम्भलसरीरप्पस्सो वि तारिसो एव्व । जाद ! पेक्खामि दे मुहपुण्डरीअम् । राएसि ! किं ण पेक्खसि ? णिउणं णिरूवज्जन्तोवच्छाए मे वहूएमुहचन्देण वि संवददि एव्व ।)

जनकः—पश्यामि सखि ! पश्यामि ।

कौसल्या—अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं कुतोमुखं विलपति । (अह्महे ! उम्मत्तीभूदं विअ मे हिअअं कुदोमुहं[3] बिलवदि[4] ।)

शब्दार्थः—अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात्=आयु तथा क्रम के औचित्य का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण, सतः=सज्जनों को, कथम्=किस प्रकार, अविरुद्धः=विरोध रहित, समीचीन, प्रकारः=तरीका, पद्धति । प्रणामपर्यायः=प्रणाम-परम्परा । उत्सङ्गः=गोदी ।।

टीका—लव इति । अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात्—वयः=आयुश्च क्रमश्च=पर्याय-श्चेति वयःक्रमौ तयोः औचित्यम्=समीचीनत्वम्, न विज्ञातम्=न विदितं वयःक्रमौचित्यं तस्मात्, सतः=सज्जनान्, कथम्=केन प्रकारेण । अविरुद्धः=अविपरीतः, प्रकारः=पद्धतिः, परम्परेति यावत् । प्रणामपर्यायः—प्रणामस्य=नमस्कारस्य पर्यायः=परम्परा । उत्सङ्गः=अङ्कः, क्रोड इति यावत् ॥

---

१. अज्ञातनामक्रमाभिजनान्, २. कृत्वा स्वगतं—अपवार्य, ३. एदोमुहं (इतोमुखं), ४. विप्पलवदि (विप्रलपति) ।

लव—(प्रवेश करके, अपने आप) आयु तथा क्रम के औचित्य का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण आदरणीय होते हुए भी इन सज्जनों को किस प्रकार प्रणाम करूँ ? (विचार कर) यह विरोधरहित (प्रणाम का) तरीका है, ऐसा बड़े-बूढ़े लोगों के द्वारा सुना जाता है। (विनयपूर्वक पास में जाकर) आप लोगों को शिर झुका कर लव की यह प्रणाम-परम्परा है।

अरुन्धती और जनक—हे कल्याणवाले, चिरञ्जीवी बनो।

कौसल्या—बेटा, चिरञ्जीवी बनो।

अरुन्धती—आओ बेटा, (लव को गोदी में लेकर। अपने आप) सौभाग्य से न केवल मेरी गोदी ही बल्कि बहुत दिनों के बाद मेरा मनोरथ भी पूरा हुआ।

कौसल्या—बेटा, जरा इधर भी तो आओ। (गोद में लेकर) ओह, यह बालक स्वल्प विकसित नील कमल की भाँति पुष्ट एवं तेजस्वी शरीर संरचना के द्वारा ही नहीं, बल्कि रक्त कमल के केसर के खाने से कषैले कण्ठ वाले कलहंस की आवाज के सदृश घर्घर ध्वनि-युक्त स्वर के द्वारा भी रामभद्र का अनुसरण करता है। वस्तुत: पूर्ण विकसित कमल के भीतरी भाग की तरह कोमल शरीर-स्पर्श भी वैसा ही (अर्थात् राम के शरीर-स्पर्श की भाँति ही) है। (ठोढ़ी उठाकर, सावधानी से देखकर, आँखों में आँसू भरकर विशेष अभिप्राय के साथ) राजर्षि जनक जी, क्या आप नहीं देख रहे हैं कि सावधानी से देखने पर इसका मुख मेरी बेटी बहू सीता के मुखचन्द्र से भी मिल रहा है।

जनक—देख रहा हूँ सखी देख रहा हूँ।

कौसल्या—ओह, मेरा हृदय पागल-सा होकर किसी का (अर्थात् सीता का) चिन्तन करते हुए विलाप कर रहा है।

टिप्पणी—अविरुद्धः—गौतमस्मृति का वचन है कि—"सभा में प्रत्येक व्यक्ति को नमस्कार न करके सामूहिक रूप से ही प्रणाम कर लेना चाहिये"—"सभायां प्रत्येकं न नमस्कुर्यात्।" नञ् (अ)+वि+ √रुध्+क्त+विभक्तिः। उपसृत्य-उप+√सृ+ल्यप्।

कल्याणिन्—कल्याण+इनिः+विभक्तिः ॥

शब्दार्थः—जात=बेटा, दरविस्पष्टकुवलय-मांसलोज्ज्वलेन=स्वल्प विकसित नील-कमल की भाँति पुष्ट एवं तेजस्वी, देहबन्धेन=शरीरसंरचना के द्वारा, कवलितारविन्द-केसरकषायकण्ठकलहंसघोषघर्घरानुनादिना=रक्त कमल के केसर के खाने से कषैले कण्ठवाले कलहंस की आवाज के सदृश घर्घर ध्वनि-युक्त, स्वरेण=स्वर के द्वारा, कठोरकमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शः=पूर्ण विकसित कमल के भीतरी भाग की तरह

जनकः—

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते
[1]संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव[2] निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः ।
सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ
हा हा देवि[3] किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं [4]धावति ।। २२ ।।

कोमल शरीर स्पर्श । चिबुकम्=ठुड्डी को, उन्नमय्य=उठा कर, सबाष्पाकूतम्=आँखों में आँसू तथा विशेष अभिप्राय के साथ अर्थात् इसका मुँह सीता के मुख की तरह है इस अभिप्राय के साथ । निपुणम्=सावधानी से । उन्मत्तीभूतमिव=पागल-सा होकर, कुतोमुखम्=किसी का चिन्तन करते हुए ।।

टीका—कौसल्येति । दरविस्पष्ट-कुलयमांसलोज्ज्वलेन—दरम् = ईषत् विस्पष्टम्=विकसितं यत् कुलवयम्=नीलकमलं तदिव मांसलम्=पुष्टम् उज्ज्वलम्=कान्तिमत् तेन तादृशेन, देहबन्धेन=शरीर-संरचनया, कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठ-कलहंसघोषघर्घरानुनादिना–कवलिताः=भक्षिताः ये अरविन्दस्य=रक्तकमलस्य केसराः=किञ्जल्काः तैः कषायः=रक्तः, सुमधुर इत्यर्थः, कण्ठः=गलः, लक्षणया स्वर इत्यर्थः, यस्य सः तादृशो यः कलहंसः=अव्यक्तमधुरस्वरो राजहंसः, तस्य घोषः=शब्दः स इव घर्घरः=घर्घरेत्यनुकृतिशब्दः तम् अनुनदतीति तेन, स्वरेण=शब्देन, च=अपि, रामभद्रम्=रामचन्द्रम्, अनुसरति=अनुकरोति । कठोरकमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शः—कठोरस्य=पूर्णविकसितस्य कमलस्य=पद्मस्य यो गर्भः=मध्यभागः तस्येव पक्ष्मलः=सुकुमारः शरीरस्य=देहस्य स्पर्शः=आमर्शनम्, तादृश एव=यादृशो रामभद्रस्य तादृश एवेति भावः । चिबुकम्=अधराधरभागम्, उन्नमय्य=उन्नतं विधाय, सबाष्पाकूतम्–बाष्पेण=अश्रुणा आकूतेन=अभिप्रायेण च सहितं यथा स्यात्तथा । निपुणम्=पटुतरम् । उन्मत्तीभूतमिव=विक्षिप्तीभूतमिव, कुतोमुखम्—कुतो मुखम्=आननं यस्य तत्, यत्र क्वाप्यसंभाव्यविषये संलग्नमिति भावः ।

टिप्पणी--तादृश एव—लोक में प्रायः देखा जाता है कि बेटा आकार, चालढाल एवं स्वर में पिता के एकदम समान होता है । लव अपने पिता रामचन्द्र के समान थे । उनकी मुखाकृति माता सीता की मुखाकृति से मिलती-जुलती थी । यही कारण है कि कौसल्या और जनक का ध्यान राम-सीता की ओर जा रहा है ।

उन्नमय्य--उत् + √नम् + णिच् + ल्यप् ।

सबाष्पाकूतम्—नयनों में अश्रु और विशेष अभिप्राय के साथ । अर्थात् इसकी मुखाकृति सीता से मिलती जुलती है—इस अभिप्राय के साथ ।

---

१. संपूर्णप्रतिबिम्बितेव, २. म्बिकेव, ३. दैव, ४. वर्तते ।

जनक—इस बालक में बेटी (सीता) का और रघुकुल श्रेष्ठ (राम) का सम्बन्ध प्रतिबिम्बित-सा दिखलाई पड़ रहा है। वही (राम और सीता जैसी ही इसकी) सारी की सारी आकृति है, वही कान्ति है, वही बोली है, वही स्वाभाविक विनय है और वही पवित्र प्रभाव भी है। हाय, हाय देवी (सीता), मेरा मन चञ्चल होकर जिधर नहीं जाना चाहिये उन मार्गों से क्यों दौड़ रहा है ? ॥२२॥

विशेष—उत्पथैः धावति—जनक के कहने का भाव यह है कि मेरा मन सीता की मृत्यु हो जाने पर भी इस बालक में सीता-पुत्र होने की संभावना करता है। यही उनके मन का उत्पथ पर जाना है।

देवी—यह सम्बोधन पद सीता के लिये है न कि कौसल्या के लिये। वीरराघव का भी ऐसा ही कथन है—"देवीत्यनेन देवरूपं गतायास्तव कथमिदं सङ्गच्छत इति व्यज्यते।" ॥२२॥

कुतोमुखम्—जनक के कहने का अभिप्राय यह है कि—इस बालक को देखकर मेरा मन सीता की ओर जा रहा है। सीता मर चुकी हैं। अतः यह उनका बेटा कैसे हो सकता है ? ॥

अन्वयः—अस्मिन्, शिशौ, वत्सायाः, च, रघूद्वहस्य, च, संवृत्तिः, प्रतिबिम्बिता, इव, अभिव्यज्यते; सा, एव, निखिला, आकृतिः; सा, द्युतिः; सा, वाणी; सः, एव, सहजः, विनयः; असौ, पुण्यानुभावः, अपि, (अस्ति); हा हा देवि, मम, मनः, पारिप्लवम्, (सत्), किम्, उत्पथैः, धावति ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—अस्मिन्=इस, शिशौ=बालक में, वत्सायाः=बेटी (सीता) का, च=और, रघूद्वहस्य=रघुकुलश्रेष्ठ (राम) का, च=भी, संवृत्तिः=सम्बन्ध, प्रतिबिम्बिता=प्रतिबिम्बित, इव=सा, अभिव्यज्यते=अभिव्यक्त हो रहा है, दिखलाई पड़ रहा है; सा=वह, एव=ही, निखिला=सारी की सारी, आकृतिः=आकृति है; सा=वही, द्युतिः=कान्ति है; सा=वही, वाणी=बोली है; सः=वह, एव=ही, सहजः= स्वाभाविक, विनयः=विनय है; असौ=वही, पुण्यानुभावः=प्रवित्र प्रभाव, अपि=भी, (अस्ति=है); हा हा=हाय, हाय, देवि=देवी, मम=मेरा, मनः=मन, पारिप्लवम् सत्=मर्यादा का उल्लंघन कर, उमड़ कर, चञ्चल होकर, किम्=क्यों, उत्पथैः=जिधर नहीं जाना चाहिये उन मार्गों से, धावति=दौड़ रहा है ? ॥ २२ ॥

टीका—वत्सायाश्चेति। अस्मिन्=एतस्मिन्, पुरतो वर्तमान इत्यर्थः, शिशौ= बालके, वत्सायाः=पुत्र्याः, सीताया इत्यर्थः, च=तथा, रघूद्वहस्य=रघुकुलशिरोमणेः, रामचन्द्रस्येति यावत्, च=अपि, संवृत्तिः=संपर्कः, सम्बन्ध इत्यर्थः, प्रतिबिम्बितेव= सङ्क्रान्तेव, अभिव्यज्यते=अभिव्यक्ता भवति। दर्पणादौ प्रतिबिम्बवद्दृश्यत इत्यर्थः।

कौसल्या--जात ! अस्ति ते माता ? स्मरसि वा तातम् ? (जाद ! अत्थि दे मादा ? सुमरसि वा तादम् ?)

लवः--नहि !

कौसल्या--ततः कस्य त्वम् ? (तदो कस्य तुमम् ?)

लव--[1]भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः ।

कौसल्या—अयि जात ! कथयितव्यं कथय । (अयि जाद ! कहिदव्वँ कहेहि ।)

लवः--[2]एतावदेव जानामि !

(नेपथ्ये)

भो भोः सैनिका ! एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति-'न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय[3] आक्रमितव्या' इति ।

अरुन्धतीजनकौ– अये ! मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गादुपागतो वत्सश्चन्द्रकेतुर्द्रष्टव्य इत्यसौ सुदिवसः ।

कौसल्या—वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते । (वक्खलच्छणस्य पुत्तओ आणवेदिति अमिदबिन्दुसुन्दराइं अक्खराइं सुणीअन्दि ।)

सैव=सीतारघूद्वहसम्बन्धिन्येव, निखिला=कृत्स्ना, आकृतिः=अवयवस्थानविशेषः, आकार इति यावत्; सा=तयोरेव सम्बन्धिनी, द्युतिः=लावण्यम्; सा=तयोरेव सम्बन्धिनी, वाणी=लवस्य वाक्; स एव=तयोः सम्बन्ध्येव, सहजः=स्वाभाविकः, विनयः=प्रश्रयः; असौ=एषः, पुण्यानुभावः–पुण्यः=पावनश्चासौ अनुभावः=प्रभावः, ('अनुभावः प्रभावे च सतां च मतिनिश्चये' इत्यमरः), अपि=च, अस्तीति शेषः, हाहा देवि सीते, मम=मे, जनकस्येत्यर्थः, मनः=चेतः, पारिप्लवं सत्=चञ्चलं सत्, ('चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे' इत्यमरः) उत्पथैः—उद्गताः पन्थानः इति उत्पथास्तैः, अमार्गैः, धावति=अवस्थितं भवति । सीतारण्येश्वापदैर्नूनं भक्षितैव तर्हि कथमेषः तस्या सूनुः संभवितुमर्हतीति जनकस्याभिप्रायः । अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २२ ॥

टिप्पणी—संवृत्तिः—संपर्क, सम्बन्ध । सम् √वृत् + क्तिन् (ति) + विभक्तिः । प्रतिबिम्बिता–प्रतिबिम्बः सञ्जात अस्याः सा, प्रतिबिम्ब + इतच् + टाप् + विभक्तिः । सहजः–सह जायते इति सहजः । सह + √जन् + ड (अ) जन् के अन् का लोप + विभक्तिः ।

---

१. भगवतः वाल्मीकेः, २. एतदेव, ३. भूमिराक्रमितव्येति ।

कौसल्या--बेटा, तुम्हारी माता है ? पिता का स्मरण करते हो ? (अर्थात् अपने पिता का नाम जानते हो) ?

लव--नहीं।

कौसल्या--तो किस के हो तुम (पुत्र) ?

लव--प्रातःस्मरणीय भगवान् वाल्मीकि का (पुत्र हूँ)।

कौसल्या—अरे बेटा, बतलाने योग्य बात बतलाओ।

लव--इतना ही जानता हूँ।

(पर्दे के पीछे)

हे हे सैनिकों, यह कुमार चन्द्रकेतु की आज्ञा है कि—'कोई भी सैनिक आश्रम के पास की भूमि पर आक्रमण न करे'' (अर्थात् आश्रम के पास की भूमि पर न जाय)।

अरुन्धती और जनक—अरे, अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा के प्रसङ्ग से आये हुए कुमारचन्द्रकेतु से भेंट होगी, अतः आज का दिन शुभ दिन है।

कौसल्या--'पुत्र लक्ष्मण का बेटा आज्ञा दे रहा है'—ये अमृत की बूँदों की तरह सुन्दर अक्षर सुनाई पड़ रहे हैं।

उत्पथैः—उत् + पथिन् + अ + विभक्तिः। यहाँ "ऋक्पूरब्धू" (५।४।७४) से समासान्त अप्रत्यय होने पर "नस्तद्धिते" (६।४।१४४) से पथिन् के इन् का लोप होता है। उत्पथ कहते हैं उबड़-खाबड़ मार्ग को।

पारिप्लवम्--परि + √प्लु + अच् विभक्तिः = परिप्लवम्, परिप्लवम् एव पारिप्लवम्–परिप्लव + अण् + विभक्तिः, आदिवृद्धिश्च।

इस श्लोक में अप्रस्तुत सीता तथा राम का संवृत्तिः आदि से संबन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

श्लोक में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण--

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्॥ २२॥

शब्दार्थः—सुगृहीतनामधेयस्य = पवित्र नाम वाले, प्रातःस्मरणीय। कथयितव्यम् = बतलाने योग्य बात। एतावदेव = इतना ही।

टीका--कौसल्येति। सुगृहीतनामधेयस्य–सुगृहीतम् = प्रातःस्मरणीयं नाम = अभिधानं यस्यासौ तस्य तादृशस्य। कथयितव्यम्–कथनीयम्। एतावदेव = एतत्परिमाणमेव, इयन्मात्रमेव॥

शब्दार्थः—आश्रमाभ्यर्णभूमयः=आश्रम के पास की भूमियाँ, न आक्रमयितव्याः= आक्रमण करने के योग्य नहीं हैं। मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गात्-अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा के प्रसङ्ग से, द्रष्टव्यः = देखने योग्य हैं, देखे जायेंगे, सुदिवसः=शुभ दिन है।

लवः--आर्य ! क एष चन्द्रकेतुर्नाम ?

जनकः—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?

लवः--[1]एतावेव रामायणकथापुरुषौ ?

जनकः--[2]अथ किम् ?

लवः—तत्कथं न जानामि ?

जनकः—तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः ।

लवः--ऊर्मिलायाः[3] पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः ।

अरुन्धती—आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन[4] ।

जनकः--(विचिन्त्य)। यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद् ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां [5]दशरथस्य पुत्राणां किय[6]न्ति किंनामधेयान्यपत्यानि [7]केषु दारेषु प्रसूतानि ?

लवः--नाऽयं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः ।

जनकः—किं न प्रणीतः कविना ?

आविष्कृतम् = प्रकट की है, कथाप्राविण्यम्=रामायण की कथा में प्रवीणता को ।।

टीका—नेपथ्य इति । आश्रमाभ्यर्णभूमयः-आश्रमस्य=तपःप्रदेशस्य अभ्यर्ण-भूमयः=समीपदेशाः, ("उपकण्ठाऽन्तिकाऽभ्यर्णाऽभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्" इत्यमरः), आक्रमितव्याः = न आक्रमणीयाः । न केनापि स्प्रष्टव्याः इत्यभिप्रायः । मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गात्–मेध्याश्वस्य = अश्वमेधस्य योऽश्वः=घोटकस्तस्य रक्षायाः=रक्षणस्य प्रसङ्गात्=सन्दर्भात्, उपागतः=प्राप्तः, द्रष्टव्यः=विलोकनीयः, इति=अस्मात् हेतोः, सुदिवसः-शोभनं दिनमेतदस्ति । अमृतबिन्दुसुन्दराणि–अमृतस्य=पीयूषस्य बिन्दव इव=विप्रुष इव सुन्दराणि=लक्षणया मधुराणीति भावः, दाशरथी–दशरथस्याऽपत्ये पुमांसौ "अत इञ्" इति इञ् प्रत्ययः । रामायणकथापुरुषौ–रामायणकथायाः = रामायणाख्यमहाकाव्यकथायाः पुरुषौ=प्रामुख्येन प्रतिपाद्यौ । आविष्कृतम्=प्रकटितम्, कथाप्रावीण्यम्–कथायां प्रावीण्यम्=नैपुण्यम् ।।

टिप्पणी—चन्द्रकेतुः—चन्द्रकेतु लक्ष्मण के पुत्र थे । अश्वमेध के अश्व की रक्षा में पीछे-पीछे चलने वाली सेना के वे सेनापति थे ।

आक्रमितव्याः—आ + √क्रम् + तव्य + टाप् + विभक्तिकार्यम् । उपागतः—उप + आ + √गम् + क्त + विभक्तिः । प्राविण्यम्–प्रवीण + ष्यञ् + विभक्त्यादिः ।।

---

१. तावेव, २. तत्कथं न जानासि तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः ।
३. उर्मिलापुत्रः, ४. कुमारेण, ५. दशरथात्मजानां, ६. एतन्नास्ति क्वचित्, ७. केषु केषु दारेषु,

लव—आर्य, यह चन्द्रकेतु कौन है ?

जनक—दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण को जानते हो ?

लव—क्या यही दोनों रामायण की कथा के प्रमुख पात्र हैं ?

जनक—और क्या ?

लव—तब तो क्यों नहीं जानूंगा ?

जनक—उसी लक्ष्मण के यह पुत्र हैं चन्द्रकेतु ।

लव—तो उर्मिला का पुत्र है और मिथिलाधिपति राजर्षि जनक का दौहित्र (नाती) है ?

अरुन्धती—इस बच्चे ने रामायण की कथा में प्रवीणता प्रकट की है ।

जनक—(सोचकर) यदि तुम इस प्रकार कथा में निपुण हो तो बतलाओ तो हम देखें, दशरथ के उन पुत्रों की किस-किस पत्नी से किस-किस नाम वाले कितने पुत्र उत्पन्न हुए हैं ?

लव—कथा का यह अंश हमारे द्वारा अथवा किसी दूसरे के द्वारा पहले नहीं सुना गया है ।

जनक—क्या कवि के द्वारा (यह अंश) नहीं लिखा गया है ?

शब्दार्थः--अभिज्ञः=निपुण, चतुर । अपत्यानि=सन्तानें; दारेषु=स्त्रियों से, प्रसूतानि=उत्पन्न हुई हैं । कथाविभागः=कथा का अंश, श्रुतपूर्वः=पहले नहीं सुना है । प्रणीतः=बनाया गया है ॥

टीका--जनक इति । अभिज्ञः=विज्ञः, निपुण इति यावत् । अपत्यानि=सन्ततयः, दारेषु=पत्नीषु, प्रसूतानि=उत्पन्नानि । कथाविभागः—कथायाः विभागः=अंशः, श्रुतपूर्वः—पूर्वम्=प्राक् श्रुतः=आकर्णित इति श्रुतपूर्वः, "सुप्सुपा" इति समासः । प्रणीतः=रचितः ॥

टिप्पणी—**अभिज्ञः**--अभि + √ज्ञा + क (अ) + विभक्तिः । **प्रसूतानि**—प्र + √सू + क्त + विभक्तिः ।

केषु दारेषु प्रसूतानि—जनक ने बड़ी ही चतुरता के साथ यह प्रश्न बालक लव के समक्ष रक्खा है । यदि लव इसका ठीक-ठीक उत्तर दे देते तो जनक की सारी शंकाओं का समाधान अपने आप हो जाता ॥

लवः--प्रणीतः, न[१] तु प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः [२]प्रबन्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान् व्यस् भगवतो [३]भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य।

जनकः--किमर्थम् ?

लवः--स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।

जनकः--सर्वमिदमाकूततरमस्माकम्।

लवः--महती पुनस्तस्मिन् भगवतो वाल्मीकेरास्था। [४]ततः केषाञ्चिदन्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणिः [५]प्रमादच्छेदनार्थमस्मद्भ्राता प्रेषितः।

कौसल्या--भ्रातापि तेऽस्ति ? (भादावि दे अत्थि ?)

लवः--अस्त्यार्यः कुशो नाम।

कौसल्या--ज्येष्ठ इति भणितं भवति। (जेट्ठेत्ति भणिदं होदि।)

लवः--एवमेतत्। [६]प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

जनकः--किं यमावायुष्मन्तौ ?

लवः--अथ किम् ?

जनकः--वत्स ! कथय, [७]कथाप्रपञ्चस्य [८]कियान्पर्यन्तः ?

शब्दार्थः--प्रकाशितः=प्रकाशित किया है, प्रकट किया है। एकदेशः=एक अं प्रबन्धान्तरेण=अन्य प्रबन्ध के द्वारा, अर्थात् दृश्य रूपक के द्वारा, रसवान्=सरस, रसपूर्ण, अभिनेयार्थः=अभिनय के योग्य, कृतः=बनाया गया है। तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य=नृत्य गीत और वाद्य के प्रयोक्ता। प्रयोजयिष्यति=प्रयोग कराएँगे। आकूततरम्=अत्यन्तगूढ अभिप्राय वाला॥

टीका--लव इति। प्रणीतः=रचितः, न प्रकाशितः=न प्रकटीकृतः, न श्रावितो नाध्यापितश्चेत्यर्थः, एकदेशः=एकांशः, प्रबन्धान्तरेण=श्रव्यप्रबन्धातिरिक्तदृश्यप्रबन्धरूपकरूपेण, रसवान्=रसभरितः, अभिनेयार्थः=अभिनेयः=आङ्गिकादिचतुर्विधाभिनयप्रकाश्योऽर्थः=अभिधेयः यस्य तथोक्तः, कृतः=विहितः। तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य=नृत्यगीतवादित्रशास्त्राचार्यस्य भरतस्य। अप्सरोभिः=स्वर्वेश्याभिः, प्रयोजयिष्यति=प्रयोगं कारयिष्यति। आकूततरम्=अतिशयगूढाभिप्रायम्॥

टिप्पणी--प्रणीतः--प्र + √नी + क्त + विभक्तिः। प्रकाशितः--प्र + काश् + क्त + विभक्तिः।

---

१. न प्रकाशितः; २. सन्दर्भान्तरेण, ३. सूत्रधारस्य, ४. यतो येषाम्, ५. प्रमादापनोदार्थम्; ६. प्रसवक्रमेण, ७. कथाप्रबन्धस्य, ८, कीदृशः पर्यन्तः।

लव--लिखा तो गया है किन्तु प्रकाशित नहीं किया गया है। उसी का कोई एक अंश अन्य प्रबन्ध के द्वारा (अर्थात् दृश्य रूपक के द्वारा) रसपूर्ण करके अभिनय के योग्य बनाया गया है और उसे अपने हाथ से लिखकर भगवान् मुनि (वाल्मीकि) ने नाट्य के प्रयोक्ता भगवान् भरत मुनि के पास भेजा है।

जनक--किस लिये ?

लव—वे भगवान् भरत मुनि अप्सराओं के द्वारा उस (रूपक) का प्रयोग करायेंगे।

जनक—यह सब हमारे लिये अत्यन्त गूढ़ अभिप्राय वाला है।

लव--पूज्य वाल्मीकि की उस ग्रन्थ में बहुत अधिक श्रद्धा है। यही कारण है कि उन्होंने कुछ विद्यार्थियों के हाथ वह पुस्तक भरत मुनि के आश्रम प्रेषित की है और (मार्ग में) असावधानी के निवारणार्थ हाथ में धनुष लिए हुए हमारा भाई अनुयायी के रूप में भेजा गया है।

कौसल्या—बेटा, तुम्हारा भाई भी है ?

लव—हैं, आदरणीय कुश नाम वाले।

कौसल्या—तुम्हारे कथन से यह ज्ञात होता हैं कि वे ज्येष्ठ भाई हैं।

लव—हाँ, यह ऐसी ही बात है। जन्म के क्रम से वह मुझसे बड़े हैं।

जनक—क्या तुम दोनों चिरञ्जीवी जुड़वा हो ?

लव--और क्या ?

जनक--बेटा, बतलाओ कथा का विस्तार कहाँ तक है ?

तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य--तौर्यत्रिक कहते हैं--नृत्य गीत और वाद्य को तथा सूत्रधार कहते हैं प्रयोग कराने वाले को। अतः तौर्यत्रिकसूत्रधार का अर्थ हुआ नृत्य गीत और वाद्य के प्रयोक्ता या प्रयोग कराने वाले। तूर्ये भवम्–तौर्यम्, तूर्य+अण्। त्रयः अंशा अस्येति त्रिकम्–त्रि+कन्, यहाँ अवयव अर्थ में कन् प्रत्यय हुआ है। तौर्याणां त्रिकं तौर्यत्रिकं तस्य सूत्रधारस्तस्य। तूर्य का अर्थ है--नगाड़ा अतः तौर्य का अर्थ है–नगाड़ा से सम्बन्ध रखने वाला। इस प्रकार तौर्यत्रिक का अर्थ है—नृत्य गीत और वाद्य।

आकूततरम्—जनक के कथन का भाव है कि इसमें कुछ रहस्य छिपा हुआ है॥

शब्दार्थः—महती=बहुत अधिक, महान्, आस्था=श्रद्धा, रुचि, प्रेम। अन्तेवासिनाम्=विद्यार्थियों के, अनुयात्रिकः=अनुयायी, चापपाणिः=हाथ में धनुष लिये हुए, प्रमादच्छेदनार्थम्=असावधानी के निवारणार्थ। प्रसवानुक्रमेण=जन्म के क्रम से, यमौ=जुड़वा। कथाप्रपञ्चस्य=कथा का विस्तार, कियात्पर्यन्तः=कहाँ तक हैं ?॥

लवः—अलीकपौरापवा[१]दोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजन सम्भवां सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रति-निवृत्त इति ।

कौसल्या—हा वत्से मुग्धमुखि ! क इदानी ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः ? (हा वच्छे मुद्धमुहि ! को दाणि दे सरीरकुसुमस्स झत्ति देव्वदुव्विलासपरिणामो एक्काइणीए निवडिदो ?)

टीक—लव इति । महती=प्रबला, तस्मिन्=तस्मिन् ग्रन्थे, भगवतः=पूजस्य, आस्था=श्रद्धा, वर्तत इति शेषः । श्रद्धाद्योतनार्थमेव कथयति यत इति–यतः = यस्मा-त्कारणात्, अन्तेवासिनाम्=अध्येतॄणाम्; छात्राणामिति यावत्, प्रेषितम्=विसर्जितम् । अनुयात्रिकः=अनुयायी, रक्षक इवि यावत्, चापपाणिः—चापः=धनुः पाणौ=करे यस्यासौ, धृतधनुरित्यर्थः, प्रमादच्छेदनाथम्–प्रमादस्य=असावधानताया ("प्रमादो-ऽसावधानता" इत्यमरः) छेदनार्थम्=विघातार्थम्, विघ्नान् निवारयितुमिति भावः, प्रेषितः=भगवता वाल्मीकिना विसर्जितः । आर्यः=आदरणीयः । भणितम्=कथितम् । यमौ=युग्मौ, सहजातावित्यर्थः । कथा-प्रपञ्चस्य–कथायाः प्रपञ्चस्य=विस्तारस्य, कियान् = किम्परिमाणः, पर्यन्तः=अवसानमवधिर्वेति ।।

टिप्पणी—**अनुयात्रिकः**—अनु-पश्चात् यात्रा=गमनम् अनुयात्रा, सा अस्ति अस्येति । **अनुयात्रिकः**—अनुयात्रा+ठक् (इक्)+विभक्तिः ।

प्रमादच्छेदनार्थम्—कुश धनुर्विद्या में पूर्ण पारङ्गत थे । अतः महर्षि ने उन्हें उस ग्रन्थ-रत्न की रक्षा में भेज दिया था ताकि मार्ग में कोई गड़बड़ी न होने पावे ।

आर्यः कुशः—प्राचीन काल की यह परम्परा था कि कोई भी व्यक्ति अपने से बड़े पुरुष को आर्य और स्त्री को आर्या कहता था । लव ने कुश के लिए आर्य कहा है । अतः ज्ञात होता है कि कुश लव से बड़े हैं ।

ज्येष्ठः—आर्य कहने मात्र से कौसल्या को यह अर्थ-बोध हो जाता है कि कुश लव से बड़े हैं, ज्येष्ठ हैं । अयम् एषां वृद्ध इति ज्येष्ठः, वृद्ध+इष्ठन् (इष्ठ)+विभक्तिः । यहाँ "वृद्धस्य च" (५।३।६२) से वृद्ध को ज्य आदेश होता है और फिर गुण होने पर रूप की सिद्धि होती है ।

ज्यायान्—दोनों में बड़ा । अयम् अनयोः अतिशयेन वृद्ध इति ज्यायान् । वृद्ध+(ईयस्) । वृद्धस्य च (५।३।६२) से वृद्ध को ज्या और ज्यादादीयसः (६।४।१६०) से ईयस् के ई को आ आदेश होता है ।

कियान् पर्यन्तः—जनक के पूछने का भाव यह है कि कथा की परिसमाप्ति कहाँ पहुँच कर होती है ? ।।

---

१. प्रवाद ।

लव—नागरिकों की झूठी अफवाह से उद्विग्न राजा (राम) के द्वारा घर से निकाली गई, यज्ञ-भूमि से उत्पन्न, शीघ्र ही भावी प्रसव-पीड़ा से युक्त सीता को घोर जंगल में अकेली छोड़कर लक्ष्मण (अयोध्या) लौट गये (यहीं पर कथा की परिसमाप्ति है)।

कौसल्या—हाय भोले-भाले मुखवाली बेटी सीता, पुष्प की भाँति सुकोमल शरीर वाली तुझ असहाय पर सहसा भाग्य की कुचेष्टा का यह परिणाम आ पड़ा है ॥

शब्दार्थः—अलीकपौरापवादोद्विग्नेन = नागरिकों की झूठी अफवाह से उद्विग्न (अर्थात् घबड़ाए हुए), राज्ञा=राजा (राम) के द्वारा, निर्वासिताम्=घर से निकाली गई, देवी=पूज्य, देवयजनसम्भवाम्=यज्ञभूमि से उत्पन्न, आसन्नप्रसववेदनाम्=शीघ्र ही भावी प्रसव-पीड़ा से युक्त, सीताम्=सीता को, एकाकिनीम्=अकेली, अरण्ये=घोर जंगल में, परित्यज्य=छोड़ कर, प्रतिनिवृत्तः = लौट गये। मुग्धमुखि = भोले-भाले मुखवाली, दैवदुर्विलासपरिणामः=भाग्य की कुचेष्टा का परिणाम। निपतितः = गिरा, आ पड़ा ॥

टीका—लव इति। अलीकपौरापवादोद्विग्नेन—अलीकः=मिथ्याभूतो यः पौराणाम् = पुरवासिजनानाम् अपवाद;=लाञ्छनं तेन उद्विग्नः=विह्वलस्तेन तादृशेन, राज्ञा = भूपालेन रामचन्द्रेण, निर्वासिताम् = गृहान्निःसारिताम्, देवयजनसभवाम्= देवा इज्यन्त इति देवयजनम्=यज्ञस्थलं तस्मात् संभवः = उत्पत्तिर्यस्याः सा ताम्, यागभूमिजातामित्यर्थः, आसन्नप्रसववेदनाम्—आसन्ना—समीपतरवर्तिनी प्रसवस्य= प्रसूतेः वेदना = पीडा यस्याः सा तां तादृशीम्, सीताम्=जनकनन्दिनीम्, एकाकिनीम् = असहायाम्, अरण्ये=घोरे विपिने, परित्यज्य=त्यक्त्वा, लक्ष्मणः प्रतिनिवृत्तः=अयोध्यां प्रतिगतः। मुग्धमुखि—मुग्धम्=सुन्दरं मुखम्=आननं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, शरीरकुसुमस्य=कुसुमसदृशशरीरस्य, झटिति=शीघ्रम्, दैवदुर्विलासपरिणामः—दैवस्य= भाग्यस्य दुर्विलासस्य=कुचेष्टायाः परिणामः=परिणतिः, फलमिति यावत्, एकाकिन्याः =असहायायाः, निपतितः=आपतितः ॥

टिप्पणी—उद्विग्नेन—उद्+√विज+क्त+विभक्तिः। यहाँ त को न आदेश हो जाता है। निर्वासिताम्—निर्+√वस्+णिच्+क्त+टाप्+विभक्तिः। एकाकिनीम्—एक+आकिन्+ङीप्+विभक्तिः। परित्यज्य—परि+√त्यज्+ ल्यप्। निपतितः—नि+√पत्+क्त+विभक्तिः ॥

जनकः—हा वत्से !

नूनं त्वया परिभवं[1] च [2]वनं च घोरं
तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम्[3] ॥ २३ ॥

लवः—आर्ये ! कावेतौ ?

अरुन्धती—इयं कौसल्या ! अयं जनकः।

(लवः सबहुमानखेदकौतुकं पश्यति।)

जनकः—अहो [4]निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम् ! अहो रामभद्रस्य[5] क्षिप्रकारिता !

अन्वयः—परिभवम्, च, घोरम्, वनम्, च, प्रसवकालकृताम्, ताम्, व्यथाम्, च, अवाप्य, क्रव्याद्गणेषु, परितः, परिवारयत्सु, संत्रस्तया, त्वया, नूनम्, शरणम्, इति, असकृत्, अहम्, स्मृतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—परिभवम्=तिरस्कार को, च=और, घोरम्=भयङ्कर, वनम्-वन को, च=तथा, प्रसवकालकृताम्=प्रसव काल में होनेवाली, ताम्=उस (जानलेवा), व्यथाम्=पीडा को, च=भी; अवाप्य=प्राप्त करके, परितः=चारों ओर से, परिवारयत्सु=घेरते हुए, क्रव्याद्गणेषु=मांसभक्षी (व्याघ्र आदि) हिंसक प्राणियों के मध्य में, सन्त्रस्तया=अत्यन्त भयभीत, त्वया=तुम्हारे द्वारा, नूनम्=निश्चय ही, शरणम्=(अपना) रक्षक, इति=यह समझ कर, असकृत्=बारम्बार, अहम्=मैं, स्मृतः= याद किया गया होऊँगा ॥ २३ ॥

टीका—नूनं त्वयेति। परिभवम्=तिरस्कारम्, पतिकर्तृकपरित्यागरूपं तिरस्कारमित्यर्थः, च=तथा, घोरम्=भयङ्करम्, वनम्=अरण्यम्, च=तथा, प्रसवकालकृताम्—प्रसवकाले=प्रसूतिसमये कृताम्=जाताम्, ताम्=तादृशीम्, प्राणहारिणीमित्यर्थः, व्यथाम्=पीडाम्, च, अवाप्य=प्राप्य, क्रव्याद्गणेषु=मांसभक्षकेषु, व्याघ्रादिहिंसकप्राणिष्वित्यर्थः, परिवारयत्सु-परितः=सर्वतः वारयत्सु=मण्डलीकृत्याप्नुवत्सु, सत्सु, वन्यप्रणिनां मध्ये इति भावः, संत्रस्तया=अतिभीतया, त्वया=सीतया, मत्पुत्र्येत्यर्थः, नूनम्=अवश्यम्, शरणम्-रक्षकः ("शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः), इति=इति मत्वा, (पितः रक्षमामिति), असकृत्=वारम्बारम्, अहम्=जनकः, तव पितेत्यर्थः, स्मृतः=चिन्तितः, स्मृतिपथमानीतः। अत्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ २३ ॥

---

१. वचनं, २. च नवं, ३. स्मृतोऽस्मि, ४. निर्मर्यादता, ५. रामस्य।

जनक—हाय बेटी, (पति के द्वारा परित्यागरूपी) तिरस्कार, भयङ्कर वन और प्रसव काल में होनेवाली उस (जानलेवा) पीडा को प्राप्त करके, चारों ओर से घेरते हुए मांसभक्षी (व्याघ्र आदि) हिंसक प्राणियों के मध्य में अत्यन्त भयभीत तुम्हारे द्वारा निश्चय ही, अपना रक्षक समझ कर, बारम्बार मैं याद किया गया होऊँगा (अर्थात् तुमने उस सङ्कट की घड़ी में अवश्य ही बार-बार मेरी याद की होगी) ॥ २३ ॥

लव—आर्या, ये दोनों कौन हैं ?

अरुन्धती—यह कौसल्या हैं और यह जनक हैं ।

(लव विशेष आदर खेद और कुतूहल के साथ देखते हैं)

जनक—दुष्ट हृदय वाले पुरवासियों की निर्दयता और रामभद्र की जल्दबाजी आश्चर्यजनक है ।

टिप्पणी—**व्यथाम्**—√व्यथ्+अङ्+टाप्+विभक्तिः । **अवाप्य**-अव+√आप्+ल्यप् । **परिवारयत्सु**-परि+ √वृ + णिच् + शतृ + विभक्तिः, **सन्त्रस्तया**-सम्+√त्रस्+क्त+टाप्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में अप्रस्तुत परिभव, घोर वन और व्यथा का 'अवाप्य' इस क्रिया से संबन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार है ।

यहाँ प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—सबहुमान-खेद-कौतुकम्—विशेष आदर दुःख और कुतूहल के साथ । दुरात्मनाम्=दुष्ट हृदयवाले; पौराणाम्=पुरवासियों की । क्षिप्रकारिता-शीघ्रता, जल्दबाजी ॥

टीका—लव इति । सबहुमानखेदकौतुकम्-बहुमानेन=कौसल्याजनकयोः पूज्यत्वादतिशयसंमानेन खेदेन=तद्दुःखदर्शनोत्पन्नदुःखेन कौतुकेन=असम्भवदर्शनजनितकुतूहलेन च सहितं यथा स्यात्तथा । दुरात्मनाम्—दुर्=दुष्टः आत्मा=बुद्धिर्येषां तेषाम्, दुर्बुद्धीनामित्यर्थः, पौराणाम्=पुरवासिनाम् । क्षिप्रकारिता=असमीक्ष्यकारिता ।

टिप्पणी—**सबहुमान०**—लव जनक और कौसल्या की दशा देखकर दुःखी और उनके आकस्मिक दर्शन पर कुतूहलयुक्त थे ।

पौराणाम्—पुर्+अण्+आदिवृद्धि-विभक्तिश्च । **क्षिप्रकारिता**—क्षिप्र+√कृ+णिनिः+विभक्तिः ॥

एतद्वैशसवज्रघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः
क्रोधस्य ज्वलितुं [1]झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा ।

कौसल्या—(सभयकम्पम् ।) भगवति ! परित्रायताम् ! प्रसादय, कुपितं राजर्षिम् । (भअवदि ! परित्ताअदु । पसादेहि कुविदं राएसिम् ।)

लवः—

एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम् ।

अरुन्धती—

राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणाः जनाः[2] ॥ २४ ॥

जनकः—

शान्तं वा [3]रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्डं हि मे
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः ॥ २५ ॥

अन्वयः—(पूर्वार्ध) एतत्, वैशसवज्रघोरपतनम्, शश्वत्, उत्पश्यतः, मम, क्रोधस्य, चापेन, वा, शापेन, झटिति, ज्वलितुम्, अवसरः ।

शब्दार्थः—एतत् = इस, वैशसवज्रघोरपतनम्=(सीता के) हनन रूप भयंकर वज्रपात का, शश्वत्=निरन्तर, उत्पश्यतः=चिन्तन करते हुए, सोचते हुए, मम=मेरे, क्रोधस्य=क्रोध के, चापेन=धनुष के द्वारा; वा=अथवा, शापेन=शाप के द्वारा, झटिति = शीघ्र, ज्वलितुम्=प्रज्वलित होने के लिये, अवसरः=अवसर है ।

टीका—एतदिति । एतत् = इदम्, समीपवर्तीत्यर्थः, वैशसवज्रघोरपतनम्—वैशसम्=हननम्, सीतापरित्यागरूपं हननमित्यर्थः तदेव वज्रस्य=अशनेः घोरम्=भयंकरं यत् पतनम्=पातः, सीताहननरूपं भीषणमशनिपातम्, शश्वत्=निरन्तरम्, उत्पश्यतः=चिन्तयतः, मम=मे, जनकस्य सीतापितुरित्यर्थः, क्रोधस्य = कोपस्य, चापेन=धनुषा, वेति विकल्पे, शापेन=शपनेन, धनुर्गृहीत्वा संग्रामेण शापप्रदानेन वा, झटिति=शीघ्रम्, ज्वलितुम्=दाहयितुम्, 'कालसमयवेलासु तुमुन्' इति तुमुन्, अवसरः= प्रसङ्गः ("प्रसङ्गः स्यादवसर" इत्यमरः), उपस्थित इति शेषः ।

टिप्पणी—वैशसम् विशस+अण्+विभक्त्यादिः । जनक के मन में यह भाव बैठ गया है कि सीता अब इस संसार में है ही नहीं । अतः उनका कहना यह है कि—"सीता के हनन रूपी वज्रपात का जब-जब चिन्तन करता हूँ तब-तब यही मन में आता है कि धनुष उठाकर राम से इसका बदला ले लूँ और यदि युद्ध में राम को पराजित न कर सकूँ तो शाप देकर उन्हें भस्म कर डालूँ । जनक क्षत्रिय होने के कारण युद्धकला एवं राजर्षि होने के कारण शापकला में भी समर्थ थे ।

उत्पश्यतः—उत्+√दृश्+शतृ+षष्ठैचकवचने विभक्तिकार्यम् ॥

---

१. धगिति, २. प्रजाः, ३. न रुषं दधे यदुभयं तत्पु० ।

(परित्याग के द्वारा सीता के) हननरूप भयंकर इस वज्रपात का निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरे क्रोध के, धनुष अथवा शाप के द्वारा, शीघ्र प्रज्वलित होने का यह अवसर है।

कौसल्या--(भय और कम्पन से साथ) भगवती (अरुन्धती जी), रक्षा कीजिये। क्रुद्ध राजर्षि (जनक) को प्रसन्न कीजिये।

लव—तिरस्कृत मनस्वी जनों के लिये यही प्रतिकार है।

अरुन्धती--राजन्, राम आपके पुत्र (पुत्रतुल्य) है और दीन प्रजाजन (आपके द्वारा) पालनीय हैं॥ २४॥

जनक—अथवा राम के विषय में वे दोनों बातें (चाप और शाप) शान्त हों, क्योंकि वह (राम) मेरा पुत्ररूपी मूलधन है और पुरवासी लोगों में अधिकतर ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, विकलाङ्ग और स्त्रियाँ हैं॥ २५॥

अन्वयः--परिभूतानाम्, मनस्विनाम्, एतत्, हि, प्रायश्चित्तम्, (अस्ति), च, कृपणाः, जनाः, पाल्याः, (सन्ति)॥ २४॥

शब्दार्थः—परिभूतानाम्=तिरस्कृत, अपमानित, मनस्विनाम्=मनस्वीजनों के लिये, एतत् हि=यही, प्रायश्चित्तम्=प्रतिकार, (अस्ति=है); राजन्=राजन्, रामः= राम, ते=आपके, अपत्यम्=पुत्र हैं; च=और, कृपणाः=दीन, जनाः=प्रजाजन, पाल्याः= पालनीय, (सन्ति=हैं)॥ २४॥

टीका--एतद्धीति। परिभूतानाम्=अवमतानाम् मनस्विनाम्=महामनसाम्, एतत्=चापग्रहणं शापप्रदानं वा, प्रसादनमिति तु न समीचीनं प्रसङ्गप्रतिकूलत्वात्, हीति निश्चये पादपूर्तौ, वा, प्रायश्चित्तम्=स्वावमानप्रतिकारसाधनमित्यर्थः, राजन्= हे राजर्षे, रामः=रामचन्द्रः, ते=तव, अपत्यम्=सन्ततिः, जामातृत्वेन पुत्रतुल्य इत्यर्थः, अस्तीति योज्यम्; च=तथा, कृपणाः=दीनाः, जनाः=प्रजाश्च, पाल्याः= पालनीयाः, सन्तीति शेषः। अत्र अनुष्टुप् छन्दः॥ २४॥

अन्वयः--(उत्तरार्ध) वा, रघुनन्दने, तत्, उभयम्, शान्तम्, हि, तत्, मे, पुत्रभाण्डम्; च, पौरः, जनः, भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणः, (अस्ति)॥२५॥

शब्दार्थः—वा=अथवा, रघुनन्दने=राम के विषय में, तत्=वह, उभयम्=दोनों बातें (चाप और शाप), शान्तम्=शान्त हो, हि=क्योंकि, तत्=वह, मे=मेरा, पुत्रभाण्डम्=पुत्ररूपी मूल धन है, च=और, पौरः=पुरवासी, जनः=लोगों में, भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणः=अधिकतर ब्राह्मण, बालक, विकलाङ्ग और स्त्रियाँ हैं॥ २५॥

टीका—शान्तं वेति। वा=अथवा, रघुनन्दने=रामभद्रे, अत्र वैषयिकी सप्तमी बोधव्या, तत्=पूर्वकथितम्, उभयम्=द्वयम्, चापग्रहणं शापप्रदानं च, शान्तम्=

(प्रविश्य सम्भ्रान्ताः ।)

[1]वटवः—कुमार ! कुमार !! अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमधुनाऽस्माभिः स्वयं प्रत्यक्षीकृतः ।

लवः—अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते, तद् ब्रूत कीदृशः ?

वटवः—अये ! श्रूयताम्—

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं,
दीर्घग्रीवः स भवति, खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति, प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥ २६ ॥

([2]इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षयन्ति ।)

निवारितम्, अस्तु इति भावः । हि=यतः, तत्=राम इत्यर्थः, अत्र विधेयप्राधान्यात् क्लीवत्वं ज्ञेयम्, मे=मम, पुत्रभाण्डम्=पुत्ररूपं मूलं धनम्, ("भाण्डं पात्रे वणिङ्मूलधने" इति मेदिनीकाराः), अस्तीति क्रियाशेषः, पौरः=पुरवासी, जनः= लोकश्च, भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणः—भूयिष्ठाः=अत्यधिका द्विजाः=ब्राह्मणाः बालाः=बालकाः वृद्धाः=स्थविराः विकलाः=विकलाङ्गाः स्त्रैणम्=स्त्री-समूहश्च यस्मिन् सः तादृशः अस्ति । नागरिकेष्वपि तदुभयं शान्तं भवत्वित्यर्थः । अत्र काव्यलिङ्गम् । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—पुत्रभाण्डम्=पुत्ररूपी मूलधन । भाण्ड का अर्थ मूलधन भी होता है । यहाँ यही अर्थ अभिप्रेत है । जैसे व्यापारी अपने मूलधन की रक्षा करते हैं, वैसे ही राम उनके मूलधन हैं । अतः विशेषरूप से उनकी सुरक्षा करनी चाहिये ।

भूयिष्ठ०—बहु+इष्ठन्+विभक्तिः । बहु को भू ओर इ को यि आदेश होता है । स्त्रैणम्—स्त्री+नञ्+विभक्त्यादिः ।

इस श्लोक में 'तदुभयं शान्तम्" (चाप और शाप दोनों ही शान्त हों) के प्रति राम का पुत्रसदृश होना और नागरिकों का द्विजयुक्त होना कारण है । अतः काव्यलिंग अलङ्कार है ।

श्लोक में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—सम्भ्रान्ताः=घबराये हुए, वटवः=बालक ब्रह्मचारी, भूतविशेषः= प्राणिविशेष, एक विशेष प्रकार का प्राणी, जनपदेषु=जनपदों में, बस्तियों में, प्रत्यक्षीकृतः=आँखों से देखा गया है। पशुसमाम्नाये=पशुवर्ग में, सांग्रामिके=धनुर्वेदमें ।

---

१. सम्भ्रान्ता वटवः, २. इत्युपसृत्याजिने ।

(प्रवेश करके घबराये हुए)

बालक ब्रह्मचारी—कुमार, कुमार, जनपद में अश्व (घोड़ा) नामक कोई प्राणि-विशेष सुना जाता है, उसको हम लोगों ने अभी स्वयं अपनी आंखों से देखा है।

लव—पशुवर्ग में और धनुर्वेद में 'अश्व' यह नाम पढ़ा गया है। तो बतलाओ वह कैसा है ?

वटुलोग—अरे, सुनो--

पीछे की ओर बड़ी पूँछ धारण किये हुए है और उसे निरन्तर हिलाता रहता है। वह लम्बी गर्दनवाला है। उसके चार ही खुर हैं। वह घास खाता है और आम के बराबर पुरीष-पिण्ड (लीद) को बिखेर रहा है। अधिक व्याख्या से क्या लाभ है ? वह दूर जा रहा है। आओ-आओ। हम लोग (उसे देखने) जा रहे हैं॥ २६॥

(ऐसा कहकर उसके मृगचर्म और दोनों हाथों को पकड़कर खीचते हैं।)

टीका—प्रविश्येति। संभ्रान्ताः=हर्षपूर्वकं वेगयुक्ताः ("संभ्रमो वेगहर्षयोः" इत्यमरः), कृतत्वरा इति यावत्, वटवः=बालकब्रह्मचारिणः, भूतविशेषः=प्राणि-विशेषः, जनपदेषु=कोसलादिदेशेषु, वटूनामारण्यकत्वादियमुक्तिः, प्रत्यक्षीकृतः—अप्रत्यक्षः प्रत्यक्षः कृत इति प्रत्यक्षीकृतः=चक्षुर्विषयीकृतः। पशुसमाम्नाये=पशूनाम्-संग्राहके शास्त्रे, कोशादाविति भावः, सांग्रामिके=युद्धशास्त्रे, धनुर्वेदे चेत्यर्थः॥

टिप्पणी—संभ्रान्ताः—सम्+√भ्रम्+क्त+विभक्तिः। **प्रत्यक्षीकृतः**--अक्ष्णोः प्रति इति प्रत्यक्षम्, अव्ययीभावसमासः, "प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः" (वा०) इति टच् समासान्तः, प्रत्यक्षम् अस्ति अस्येति प्रत्यक्षः, अर्शआदित्वात् अच्, अप्रत्यक्षः प्रत्यक्षः कृत इति प्रत्यक्षीकृतः, अभूततद्भावे च्विः।

समाम्नायः—सम्यक् आम्नायते अस्मिन् इति, सम्+आ+√म्ना+घञ्+(अधिकरणे)+विभक्तिः।

सांग्रामिके--संग्राममर्हति इति सांग्रामिकः, संग्राम+ठञ्+विभक्तिः॥

अन्वयः--पश्चात्, विपुलम्, पुच्छम्, वहति, च, तत्, अजस्रम्, धुनोति, सः, दीर्घग्रीवः, भवति, तस्य, चत्वारः, एव, खुराः, (सन्ति), शष्पाणि, अत्ति, आम्र-मात्रान्, शकृत्पिण्डकान्, प्रकिरति, व्याख्यानैः, किम् ? सः, दूरम्, व्रजति, एहि, एहि, यामः॥ २६॥

शब्दार्थः—पश्चात्=पीछे की ओर, विपुलम्=बड़ी, विशाल, पुच्छम्=पूंछ, वहति=धारण किये हुए है; च=और, तत्=उसको, अजस्रम्=निरन्तर, धुनोति=हिलाता रहता है; सः=वह, दीर्घग्रीवः=लम्बी गर्दनवाला, भवति=है; तस्य=उसके,

लवः—(सकौतुको[1]परोधविनयम् ।) आर्याः ! पश्यत । एभिर्नीतोऽस्मि । (इति त्वरितं परिक्रामति ।)

अरुन्धतीजनकौ—[2]महत्कौतुकं वत्सस्य ।

कौसल्या–अरण्यगर्भरूपालापैर्यूयं तोषिता वयं च । भगवति ! जानामि तं पश्यन्ती वञ्चितेव । तस्मादितोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमानं दीर्घायुषम् । (अरण्णगब्भरूवालावेहिं तुह्मे तोसिता अह्मे अ । भअवदि ! जाणामि

चत्वारः=चार, एव=ही, खुराः=खुर, (सन्ति=हैं); शष्पाणि=घास को, अत्ति=खाता है; आम्रमात्रान्=आम के फल बराबर, आम की तरह, शकृत्पिण्डकान्=पुरीष-पिण्डों को, लीद को, प्रकिरति=बिखेर रहा है, कर रहा है; व्याख्यानैः=अधिक व्याख्या से, किम्=क्या लाभ है ? सः=वह, दूरम्=दूर, व्रजति=जा रहा है, एहि एहि=आओ-आओ, यामः=हम लोग जा रहे हैं ॥ २६ ॥

टीका—पश्चात्पुच्छमिति । सः= अश्व इत्यध्याहार्यः, पश्चात्=पृष्ठदेशे, विपुलम्=विशालम्, अतिलम्बमानमित्यर्थः, पुच्छम्=लाङ्गूलम्, वहति=धारयति, च=तथा, तत्=लाङ्गूलमित्यर्थः, अजस्रम्=निरन्तरम्, धुनोति=चालयति । स अश्वः दीर्घग्रीवः–दीर्घा=विशाला, लम्बमानेति यावत्, ग्रीवा=कन्धरा यस्य स तादृशः, भवति=जायते । तस्य=अश्वस्येत्यर्थः, चत्वारः=चतुःसंख्याकाः एवेति निर्धारणे, खुराः=शफानि, भवन्ति । सः, शष्पाणि=बालतृणानि, अत्ति=खादति, तथा आम्रमात्रान्=आम्रफलं प्रमाणं येषां तान् आम्रफलप्रमाणानित्यर्थः, 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' इतिमात्रच्प्रत्ययः, एतादृशान्, शकृत्पिण्डान्–शकृतःपिण्डान्', पुरीषपिण्डान्, प्रकिरति=विक्षिपति । व्याख्यानैः=विशेषवर्णनैः, किम्=किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः, सः=अश्व इत्यर्थः, पुनः=भूयः, दूरम्=विप्रकृष्टम्, व्रजति=गच्छति, एहि=आगच्छ, यामः=गच्छामः, वयं सर्वे इति शेषः । अत्रोपमा दीपकं स्वभावोक्तिश्चालङ्काराः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—आम्रमात्रान्–आम्रं प्रमाणं येषां तान्, आम्र+मात्रच् (मात्र)+विभक्तिः । यहाँ प्रमाण अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होता है ।

इस श्लोक में शकृत्पिण्ड की आम्र-फल से तुलना की गई है । अतः उपमा अलंकार है । अश्व की वहति धुनोति आदि अनेक क्रियाओं से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार है । अश्व का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है ।

---

१. कापराध०, २. पूरयतु कौतुकं वत्सः ।

लव––(कुतूहलता, अनुरोध और विनय के साथ) पूज्यगण ! देखिये, इन लोगों के द्वारा खींच कर ले जाया जा रहा हूँ अर्थात् ये लोग मुझे खींच कर ले जा रहे हैं । (ऐसा कहकर शीघ्रता से चला जाता है ।)

विशेष––यहाँ घोड़ा देखने के लिए कौतुक, साथियों का अनुरोध एवं जनक आदि के प्रति विनय समझना चाहिये ।

अरुन्धती–जनक––बालक लव को (अश्व देखने का) बड़ा कुतूहल है ।

कौसल्या—वन में रहनेवाले बालक के रूप और वार्तालापों से आप और हम लोग सन्तुष्ट कर दिये गये हैं । भगवती (अरुन्धती), उसको देखकर मैं अपने आपको ठगी हुई-सी अनुभव कर रही हूँ । अतः यहाँ से दूसरी ओर होकर भागते हुए उस चिरञ्जीवी बालक को देखें ।

विशेष—कौसल्या बालक लव में राम की छाया देख रही हैं––वही रूप-रंग, वही चाल–ढाल और वैसी ही बात-चीत । अतः वह अपनेको ठगी हुई-सी कह रही हैं, क्योंकि सीता के अभाव में इसे राम पुत्र मानना उन्हें संभव नहीं लग रहा है ।

यहाँ प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण है—मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—कौतुकम्=उत्कण्ठा, उपरोधः=अनुरोध, विनयः=विनय । नीतः= खींच करके ले जाया जा रहा हूँ । त्वरितम्=शीघ्रता से । अरण्यगर्भरूपालापैः=वन में रहने वाले बालक के रूप और वार्तालापों से, तोषिताः=सन्तुष्ट कर दिये गये हैं । वञ्चितेव=ठगी हुई-सी । अन्यतोभूत्वा=दूसरी ओर होकर, दीर्घायुषम्=चिरञ्जीवी को ।

टीका—लव इति । सकौतुकोपरोधविनयम्–कौतुकञ्च=कुतूहलञ्च उपरोधश्च= अनुरोधश्च विनयश्च=विनम्रता चेति कौतुकोपरोधविनयास्तैः सह यथास्यत्तथा । एभिः=वयस्यैः, नीतः=हठादाकृष्य गन्तुं प्रेरितः । त्वरितम्=शीघ्रम्, परिक्रामति= परिभ्रमति, ततो गच्छतीति भावः । कौतुकम्=अश्वं द्रष्टुं कुतूहलम् । वत्सस्य= बालकस्य लवस्येत्यर्थः । अरण्यगर्भरूपालापैः=अरण्यम्=वनं, गर्भः=निवासो यस्य सोऽरण्यगर्भः=वनवासी तस्य रूपञ्च=आकृतिश्चालापाश्च=वचनव्यवहाराश्च तैः, तोषिताः=सन्तुष्टाः=कृताः । वञ्चितेव=प्रतारितेव । इतः=अस्मात् स्थानात्, अन्यतः= अन्यस्मिन् प्रदेशे, दीर्घायुषम्=चिरञ्जीविनम्, लवमित्यर्थः ।

टिप्पणी—नीतः—√नी+क्त+विभक्तिः । तोषिताः–√तुष्+णिच्+ क्त+विभक्त्यादिः । वञ्चिता–√वञ्च्+णिच्+क्त+विभक्तिः । अतिक्रान्तः– अति+√क्रम्+क्त+विभक्तिः ॥

तं पेक्खन्ती वञ्चिदा विअ । ता इदो अण्णदो भविअ पेक्खम्ह दाव पलायन्तं दीहाउम् ।)

अरुन्धती—[1]अतिजवेन दूरमतिक्रान्तः स चपलः कथं दृश्यते ?

कञ्चुकी—(प्रविश्य) भगवान् वाल्मीकिराह—'ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि'रिति ।

जनकः—अतिगम्भीरमेतत्किमपि[2] । भगवत्यरुन्धति ! सखि ! कौसल्ये ! आर्ये गृष्टे ! स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः ।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्गः ।)

(प्रविश्य ।)

वटवः—पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्[3] ।

लवः—दृष्टमवगतं च । नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः ।

वटवः—कथं ज्ञायते ?

लवः—ननु मूर्खाः ! पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्[4] । किं न पश्यथ ? प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रक्षितारः । तत्प्रायमेवान्यदपि[5] दृश्यते । यदि च विप्रत्ययस्तत्पृच्छथ[6] ।

वटवः—भो भोः ! किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति ?

लवः—(सस्पृहमात्मगतम् ।) अश्वमेध इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः ।

शब्दार्थः—अतिजवेन = अत्यन्त वेग से, दूरम्=दूर, अतिक्रान्तः=चला गया ।। चञ्चलः=चञ्चल, दृष्टम्=देख लिया गया, च=और, अवगतम्=समझ लिया गया, अर्थात् देख लिया और समझ लिया । आश्वमेधिकः = अश्वमेध नामक यज्ञ का । कवचिनः=कवचधारी, दण्डिनः=दण्डधारी, निषङ्गिणः=तरकशधारी, रक्षितारः= रक्षक । तत्प्रायम् = प्रायः उसी प्रकार का । विप्रत्ययः = अविश्वास, संशय । किंप्रयोजनः=किस प्रयोजन से, परिवृतः=घिरा हुआ । पर्यटति=घूम रहा है ? सस्पृहम्=अभिलाषा के साथ, विश्विजयिनाम्=विश्वविजयी, ऊर्जस्वलः=शक्तिशालिनी, बलवती, सर्वक्षत्रपरिभावी=सारे क्षत्रियों को तिरस्कृत करने वाली, उत्कर्षनिकषः= उत्कर्ष की कसौटी ।।

टीका—प्रविश्येति । अतिजवेन=अतिवेगेन, अतिक्रान्तः=अतिक्रम्य गतः, चपलः=चञ्चलः, दृष्टम् = अवलोकितम्, च = तथा, अवगतम् = ज्ञातम्, अवबुद्धम् । आश्वमेधिकः-अश्वमेधः प्रयोजनमस्येति आश्वमेधिकः=अश्वमेधार्थकः ।

---

१. एतन्नास्ति क्वचित्, २. किमपि भविष्यति, ३. तदाश्चर्यम्, ४. तत्काण्डे, ५. 'मेवेदमपि' इति पाठान्तरम्, ६. 'पृच्छत' इति पाठान्तरम् ।

अरुन्धती--वह चञ्चल बालक अत्यन्त वेग से दूर चला गया, अब कैसे दिखलाई पड़ेगा ?

कञ्चुकी– (प्रवेश करके) भगवान् वाल्मीकि ने कहा है कि—"आप लोग इसे उचित अवसर पर जान जायेंगे।"

जनक—यह कुछ अत्यन्त गम्भीर (बात) है। पूज्य अरुन्धती जी, सखी कौसल्या और आदरणीय गृष्टि जी, हम लोग स्वयं ही चल कर पूज्य वाल्मीकि जी का दर्शन करें।

(इस प्रकार वृद्धवर्ग निकल गया)

(प्रवेश करके)

वटुलोग--कुमार, इस आश्चर्य को तो देखिये।

लव—देख लिया और समझ लिया। निश्चय ही यह घोड़ा अश्वमेध यज्ञ का है।

वटुलोग—कैसे मालूम ?

लव--अरे मूर्खों, तुम लोगों ने भी तो वह काण्ड पढ़ा ही है। क्या नहीं देख रहे हो कि प्रत्येक सौ संख्यावाले कवचधारी दण्डधारी और तरकशधारी (इसके) रक्षक हैं ? प्रायः उसी के अनुरूप अन्य बातें भी दिखलाई पड़ रही हैं। यदि तुम लोगों को अविश्वास हो तो पूछ लो।

वटुलोग—हे हे, किस प्रयोजन से यह घोड़ा (सैनिकों से) घिरा हुआ घूम रहा है ?

लव--(अभिलाषा के साथ अपने आप) 'अश्वमेध' यह नाम विश्वविजयी क्षत्रियों की, सारे क्षत्रियों को तिरस्कृत करने वाली, शक्ति-शालिनी महती उत्कर्ष की कसौटी है।

कवचिनः=कवचाः सन्ति येषान्ते, कवचधारिणः, दण्डिनः=दण्डवन्तः; निषङ्गाः सन्ति येषान्ते निषङ्गिणः=तूणीरवन्तश्च, रक्षितारः=रक्षकाः, सन्तीति शेषः। तत्प्रायम्–कवच्यादिबहुलम्। विप्रत्ययः=अविश्वास इत्यर्थः। किंप्रयोजनः–किंप्रयोजनं यस्य सः, किंनिमित्तकः। परिवृतः=परिवेष्टितः। पर्यटति=परिभ्रमति। विश्वजयिनाम्–विश्वम्=संसारं जयन्ते=विजयन्ते तच्छीला इति विश्वजयिनस्तेषाम्। ऊर्जस्वलः–ऊर्जः=बलम् अस्ति अस्येति, अतिशयबल इत्यर्थः, सर्वक्षत्रपरिभावी—सर्वान् क्षत्रान् परिभवतीति तच्छीलः समस्तक्षत्रियतिरस्करणशील इत्यर्थः, उत्कर्षनिकषः–उत्कर्षस्य=श्रेष्ठतायाः=निकषः=शाणः, प्रकर्षज्ञापक इत्यर्थः॥

टिप्पणी—दृष्टम्– √दृश+क्त+विभक्तिः। अवगतम्–अव+ √गम्+क्तः+विभक्तिः। आश्वमेधिकः–अश्वमेध+ठञ् (इक्)+विभक्तिः आदिवृद्धिश्च।

(नेपथ्ये ।)

[1]योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा ।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः ॥ २७ ॥

लवः—([2]सगर्वम् ।) अहो संदीपनान्यक्षराणि ।

वटवः—किमुच्यते ? प्राज्ञः खलु कुमारः ।

लवः—भो भोः तत्किमक्षत्रिया पृथिवी ? [3]यदेवमुद्घोष्यते ।

(नेपथ्ये)

[4]रे रे ! महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ?

लवः—धिग्जाल्मान्[5] !

यदि नो[6] सन्ति ? [7]सन्त्येव, केयमद्य विभीषिका ?
[8]किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ॥ २८ ॥

कवचिनः–कवच+इन्+प्रथमाबहुवचने विभक्तिः । निषङ्गिणः–निषङ्ग+इन्+विभक्तिः । परिवृतः–परि+ √वृ+क्त+विभक्तिः । विश्वजयिनाम्=विश्व+√जि+इन्+विभक्तिः । ऊर्जस्वलः–ऊर्जस्+वलच्+विभक्ति। ।

उत्कर्षनिकषः—अश्वमेध यज्ञ के पूर्व विश्वविजय की प्रक्रिया पूरी की जाती है । इस प्रकार भूतल का सर्वश्रेष्ठ वीर क्षत्रिय ही अश्वमेध का अधिकारी होता है । यही कारण है कि अश्वमेध को क्षत्रियों के उत्कर्ष का निकष कहा गया है ।

अन्वयः—अयम्, यः, अश्वः, (अस्ति), इयम्, सप्तलोकैकवीरस्य, दशकण्ठकुलद्विषः, पताका, अथवा, वीरघोषणा, (वर्तते) ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—अयम्=यह, यः=जो, अश्वः=अश्व, घोड़ा, (अस्ति=है), इयम्=यह, सप्तलोकैकवीरस्य=सातों लोकों के अप्रतिम योद्धा, दशकण्ठकुलद्विषः=रावण-वंश के शत्रु की, पताका=विजयपताका, अथवा=अथवा, वीरघोषणा=वीरत्वकी प्रकाशिका घोषणा, (अस्ति=है) ॥ २७ ॥

टीका—योऽयमिति । अयम्=एषः, पुरोवर्तीत्यर्थः, योऽश्वः=यो हयः, अस्तीति-शेषः, इयम्-एषा, विधेयप्राधान्यात् स्त्रीलिंगनिर्देशः, सप्तलोकैकवीरस्य—सप्तसु=सप्तसंख्याकेषु, लोकेषु=भुवनेषु एकः=अद्वितीयो यो वीरस्तस्य, दशकण्ठकुलद्विषः—दशकण्ठस्य=रावणस्य कुलम् = वंशं द्वेष्टि = विनाशयतीति तस्य, रामचन्द्रस्येत्यर्थः, पताका=विजय-वैजयन्ती, अथवा=वा, वीरघोषणा=वीरत्वस्य द्योतिकोद्घोषणा, अस्तीति शेषः । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥२७॥

---

१. अयमश्वः, २. सगर्वमिव, सव्यथमिव, ३. यदुद्धतमुद्घो०, उदीर्यते, ४. अरे रे, ५. जाल्माः, ६. ते, ७. सन्त्वेव, ८. किमुक्तैः, संनिपत्यैव ।

(पर्दे के पीछे)

यह जो अश्व है, यह सातों लोकों के अप्रतिम योद्धा और रावण-वंश के शत्रु (राजा राम) की विजय-पताका अथवा वीरत्व की प्रकाशिका घोषणा है ॥ २७ ॥

लव—(साभिमान) ओह, ये अक्षर बहुत उत्तेजक हैं।

वटुलोग—क्या कहना ? निश्चय ही कुमार बहुत बुद्धिमान् हैं।

लव—हे हे (सैनिकों), तो क्या पृथिवी क्षत्रियों से खाली है जो ऐसी घोषणा कर रहे हो ?

(पर्दे के पीछे)

रे, रे, महाराज (राम) के समक्ष क्षत्रिय (योद्धा) कहाँ ?

लव—तुम मूर्खों को धिक्कार है।

यदि कहते हैं कि (राम के सामने क्षत्रिय) नहीं हैं तो (मैं कहता हूँ कि) वे हैं ही। आज यह कैसी भय-प्रदर्शनी है ? (अर्थात् यह क्या डर दिखला रहे हो ?) सम्प्रति इन वचनों के कहने से क्या लाभ ? तुम लोगों की उस (घोड़ा रूप) पताका को ही हर रहा हूँ ॥ २८ ॥

टिप्पणी—इयम्—अश्व के लिये आने के कारण इसे पुंलिंग होना चाहिये था, किन्तु विधेय पताका के कारण यह स्त्रीलिंग प्रयोग है—ऐसा समझना चाहिये।

अश्व को पताका अथवा वीरघोषणा के रूप में वर्णित होने से भेद में अभेद का बोध होता है ; अतः अतिशयोक्ति अलंकार है।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—सगर्वम्=साभिमान, संदीपनानि=बहुत उत्तेजक। प्राज्ञः=बुद्धिमान्। अक्षत्रिया=क्षत्रिय-विहीन ॥

टीका—लव इति। सगर्वम् = गर्वेण=अभिमानेन सह इति सगर्वम्,=साभिमानं यथा स्यात्तथा। संदीपनानि=कोपोत्तेजकानि। प्राज्ञः = कुशाग्रबुद्धिः। अक्षत्रिया—अविद्यमानाः क्षत्रियाः=योद्धारो यस्यां सा तादृशी, पृथिवी=भूः। पृथिवी किं क्षत्रिय-विहीना वर्तते ? ॥

टिप्पणी—प्राज्ञः—प्रज्ञः एव प्राज्ञः, स्वार्थ में "प्रज्ञादिभ्यश्च" (५।४।३८) से अण् प्रत्यय, प्र+ज्ञ+अण्+विभक्तिः। प्रज्ञः—प्र+ √ज्ञा+क (अ)+विभक्तिः ॥

अन्वयः—यदि, नो, सन्ति, सन्ति, एव, अद्य, इयम्, का विभीषिका ?, अधुना, एभिः, उक्तैः, किम् ? वः, ताम्, पताकाम्, हरामि ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—यदि=यदि, नो=नहीं, सन्ति=हैं, सन्ति=हैं, एव=ही; अद्य=आज, इयम् = यह, का=कैसी, विभीषिका = भय-प्रदर्शनी है, डर का दिखाना है; अधुना=सम्प्रति, एभिः=इन, उक्तैः=वचनों के कथन से, किम्=क्या लाभ; वः=तुम लोगों की, ताम्=उस, पताकाम्=पताका को, हरामि=हर रहा हूँ ॥ २८ ॥

[1]हे वटवः! परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्त उपनयतैनमश्वम् । एष रोहितानां मध्येचरो भवतु ।

(प्रविश्य सक्रोधः[2])

पुरुषः—धिक्चपल[3] ! किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा[4] ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्तः[5], सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति[6] तावत्त्वरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत ।

वटवः—कुमार ! [7]कृतं कृतमश्वेन । तर्जयन्ति । विस्फारितशरासनाः कुमारभायुधीयश्रेणयः । दूरे चाश्रमपदम् । इतस्तदेहि । हरिणप्लुप्तैः पलायामहे !

टीका—यदि नो सन्तीति । यदि=चेत्, नो सन्ति=वीराः क्षत्रिया न वर्तन्ते, रामसमक्षमिति शेषः, तर्ह्यहं वदामि—सन्त्येव=वर्तन्त एव । अद्य=अधुना, इयम्=एषा, का=कीदृशी, विभीषिका=भीतिप्रदर्शनी ? अधुना=सम्प्रति, एभिः=एतादृशैः, उक्तैः=वचनप्रयोगैः, किम्=को लाभः ? वः=युष्माकम्, ताम् = पूर्वोक्ताम्, अश्वरूपिणीमित्यर्थः, पताकाम्=ध्वजम्, हराभि = अपनयामि ? अर्थापत्तिरलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ।। २८ ।।

टिप्पणी—जाल्मान्—विना विचारे कार्य करने वाले लोगों को 'जाल्म' कहते हैं । ('जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात्' इत्यमरः) ।

नो सन्ति=लव के कहने का भाव यह है कि यदि आप लोग यह कहते हैं कि राम के समक्ष कोई वीर क्षत्रिय नहीं है, तो मैं कहता हूँ कि अवश्य ही क्षत्रिय हैं ।

इस श्लोक में अर्थापत्ति अलङ्कार है । अश्वरूपी तुम्हारी पताका का हरण कर रहा हूँ । इससे यह अर्थ निकलता है कि यदि शक्ति हो तो रोक लो ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ।। २८ ।।

शब्दार्थः—परिवृत्य=घेर कर, लोष्ठैः=ढेलों से, कङ्कणों से, अभिघ्नन्तः=मारते हुए । रोहितानाम्=हरिणों के, मध्येचरः=मध्य में विचरण करने वाला । तीक्ष्णतराः=अत्यन्त तीक्ष्ण, आयुधीयश्रेणयः=अस्त्र-शस्त्रों को धारण करने वाले-सैनिकों की पंक्तियाँ, दृप्ताम्=गर्वीली, वाचम्=वाणी को । दुर्दान्तः=अजेय, अदमनीय । अपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयः=वनकी अपूर्व शोभा के अवलोकन में आकृष्टचित्त । तरुगहनेन=वृक्षों के झुरमुट से, अपसर्पत=भागजाओ ।

---

१. भो भो वटवः, २. सक्रोधदर्पः, ३. धिक्चापलं, ४. तीक्ष्णनीरसाः, ५. अरिमर्दनः, ६. परापतति, ७. कृतमनेनाश्वेन,

हे ब्रह्मचारियों घेर कर ढेलों से मारते हुए इस घोड़े को ले चलो। यह (आश्रम के) हरिणों के बीच में विचरण करेगा।

(प्रवेश करके क्रोधपूर्वक)

पुरुष--अरे चञ्चल बालक, तुम्हें धिक्कार है। अत्यन्त तीखे अस्त्र-शस्त्रों को धारण करने वाले सैनिकों की पंक्तियाँ बालक की भी गर्वीली वाणी को नहीं सहन करती हैं। राजपुत्र चन्द्रकेतु दुर्दान्त हैं। वन की अपूर्व शोभा के अवलोकन में आकृष्टचित्त वे जब तक नहीं आ जाते हैं, तब तक वृक्षों के इस झुरमुट से होकर भाग जाओ।

वटुलोग--कुमार, बस, बस, छोड़ो घोड़ा की बात। धनुषों को चमकाती हुई अस्त्रधारियों की श्रेणियाँ कुमार को धमका रही हैं। और आश्रम भी यहाँ से दूर है। तो आओ, हरिणों की तरह उछलते हुए भाग चलें।

टीका–हे वटव इति। परिवृत्य=वेष्टयित्वा, लोष्ठैः=शुष्कमृत्पिण्डैः, अभिघ्नन्तः=ताडयन्तः। रोहितानाम् = मृगविशेषाणाम्, मध्येचरः—मध्ये चरतीति तादृशः, तैः सह विहरणशील इत्यर्थः। तीक्ष्णतराः=निशिततराः, आयुधश्रेणयः--आयुधानि=अस्त्रशस्त्राणि सन्ति येषान्ते आयुधाः, अर्शआदित्वात् मत्वर्थीयोऽच्, आयुधानाम्=आयुधधारिणां श्रेणयः=पंक्तयः, अथवा आयुधपदस्य असहनक्रियान्वयानुपपत्तेः आयुधपदस्य आयुधीये लक्षणा कार्या, इत्थमपि आयुधधारिपंक्तय इत्यर्थः। दृप्ताम्=दर्पयुक्ताम्, वाचम्=वाणीम्, न सहन्ते=न मर्षयन्ति। दुर्दान्तः=अमर्षशीलः, अपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयः=अपूर्वस्य = अदृष्टपूर्वस्य अरण्यस्य=वनस्य दर्शने=अवलोकने आक्षिप्तम्=आकृष्टं हृदयम्=चित्तं यस्य स तादृशः, त्वरितम्=अतिशीघ्रम्, अनेन=एतेन, तरुगहनेन—तरूणाम्=वृक्षाणां गहनेन=दुर्गमसन्निवेशेन, अपसर्पत=पलायध्वम्॥

टिप्पणी– **अभिघ्नन्तः**--अभि √हन्+शतृ+विभक्तिः। **दृप्ताम्**— √दृप्+क्त+विभक्तिः॥

शब्दार्थः—कृतं कृतम्=बस, बस। तर्जयन्ति=धमका रही हैं, विस्फारितशरासनाः=धनुषों को चमकाती हुई, आयुधीयश्रेणयः=अस्त्रधारियों के समूह, अस्त्रधारियों की श्रेणियाँ। इतः=यहाँ से। हरिणप्लुतैः=हरिणों की तरह उछलते हुए।

टीका—वटव इति। कृतं कृतमश्वेन=अश्वेन अलमलम्, त्यज्यतामश्ववार्ता। तर्जयन्ति=भयमुत्पादयन्ति, विस्फारितशरासनाः—विस्फारितानि–प्रकाशितानि—शरासनानि=धनूंषि यासां तास्तथोक्ताः, आयुधीयश्रेणयः—आयुधीयानाम्=अस्त्र-

लवः—[1]किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ? (इति धनुरारोपयन् ।)

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्[2]भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥२९॥

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कौसल्याजनकयोगो नाम चतुर्थोऽङ्कः ॥ ४ ॥

धारिणां सैनिकानाम् श्रेणयः = पंक्तयः, इतः = अस्मात् स्थानात् । हरिणप्लुतैः—हरिणानाम् = मृगाणाम् इव प्लुतैः = तीव्रधावनैः, पलायामहे=पलायनं कुर्मः ॥

टिप्पणी—**कृतमश्वेन**—यहाँ कृतं के कारण ही अश्व में तृतीया विभक्ति आई है।

आयुधीय०—आयुधेन जीवन्ति इति आयुधीयाः—आयुध + छ (ईय) + विभक्तिः ॥

अन्वयः—ज्याजिह्वया, वलयितोत्कटकोटिद्रंष्ट्रम्, उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषम्, एतत्, चापम्, ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-जृम्भाविडम्बि, (अतः) विकटोदरम्, अस्तु ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—ज्याजिह्वया=प्रत्यञ्चारूपी जिह्वा से, वलयितोत्कटकोटिद्रंष्ट्रम्=बँधी हुई हैं, दोनों छोर रूपी दाढ़ें जिसकी ऐसा, उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषम्=असंख्य भयङ्कर तथा निबिड घर्घर घोष करने वाले, एतत् = यह (मेरा), चापम् = धनुष, ग्रासप्रासक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि=(संसार को) निगलने में संलग्न एवं हँसते हुए यम के मुखरूपी यन्त्र की जँभाई का अनुकरण करने वाला, (अतः = इसीलिये), विकटोदरम्=भीषण मध्यभागवाला, अस्तु=हो जाय ॥२९॥

टीका—**ज्याजिह्वयेति** । ज्या=मौर्वी एव जिह्वा=रसना तया, वलयितोत्कट-कोटिदंष्ट्रम् - वलयिते=वेष्टिते उत्कटकोटी=उन्नताग्रभागौ अटन्यौ इत्यर्थः, एव दंष्ट्रे स्थूलदन्तौ यस्त तत् तथाविधम्, उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषम्—उद्भूरयः= असंख्याता घोराः=भयोत्पादकाः घनाः=निबिडाः घर्घरघोषाः=घर्घरध्वनयो यस्य

---

१. स्मितं कृत्वा इति अधिकः पाठः पुस्तकान्तरेषु । २. उद्गारि ।

लव—क्या कहा ? शस्त्र चमक रहे हैं ? (ऐसा कहकर धनुष को चढ़ाते हुए) प्रत्यञ्चारूपी जिह्वा से बँधी हुई हैं दोनों छोर रूपी दाढ़ें जिसकी ऐसा, असंख्य, भयङ्कर तथा निबिड घर्घर घोष करनेवाला यह (मेरा) धनुष (संसार को) ग्रसने में संलग्न एवं हँसते हुए यम के मुखरूपी यन्त्र की जँभाई का अनुकरण करने वाला, (अतः) भीषण मध्यभागवाला बन जाय ॥ २९ ॥

॥ आचार्य रमाशङ्कर त्रिपाठी के द्वारा विरचित उत्तररामचरित की व्याख्या का यह चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ ॥४॥

□

तथोक्तम्, एतत् = इदम्, मम हस्ते स्थितमित्यर्थः, चापम्=धनुः, ग्रासप्रसक्तेत्यादिः—ग्रासे=संसारस्य कवलने प्रसक्तः=प्रवृत्तः हसन्=हास्यं कुर्वन् योऽन्तकः=यमस्तस्य वक्त्रम्=मुखमेव यन्त्रं तस्य जृम्भाम्=व्यादानं विडम्बयति=अनुकरोतीति तच्छीलम्, विकटोदरम्—विकटम्=भयङ्करम् उदरम् = मध्यं यस्य तत् तादृशम्, अस्तु=भवतु। अत्र रूपकमलङ्कारः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ २९ ॥

॥ इत्याचार्यरमाशङ्करत्रिपाठिकृतायामुत्तररामचरितव्याख्यायां शान्त्याख्यायां चतुर्थोऽङ्कः समाप्तिमगात् ॥ ४ ॥

टिप्पणी—**चापम्**—'चपस्य=वेणोः विकारः चापम्, (क्षी० स्वा०), यहाँ विकार अर्थ में अण् प्रत्यय किया गया है।

इस श्लोक में वीर रस, ओजोगुण तथा गौड़ी रीति है। रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति (जृम्भाविडम्बि) तथा अनुप्रास अलङ्कार है। इस श्लोक का वसन्ततिलका छन्द वीर रस के अनुकूल नहीं है। छन्द का लक्षण—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥ २९ ॥

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥४॥

□

पञ्चम अङ्कः

(नेपथ्ये ।)

भोः भोः सैनिकाः ! जातमवलम्बनमस्माकम् ।

नन्वेष त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रो[1]द्वल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन ।

[2]उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः श्रुत्वा [3]वः प्रधनमुपैति चन्द्रकेतुः ॥१॥

(ततः प्रविशति सुमन्त्रसारथिना रथेन धनुष्पाणिः साद्भुतहर्षसंभ्रमश्चन्द्रकेतुः ।)

चन्द्रकेतुः—आर्य सुमन्त्र ! पश्य पश्य !

अन्वयः—ननु, त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना, रथेन, उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः, एषः, चन्द्रकेतुः, वः, प्रधनम्, श्रुत्वा, उपैति ॥ १ ॥

शब्दार्थः—नूनम्=निश्चय ही, त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना=शीघ्रता से सारथी सुमन्त्र के द्वारा सञ्चालित होने के कारण दौड़ते हुए एवं वेगशाली घोड़ों से युक्त, रथेन=रथ से, उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः=ऊँची-नीची भूमि पर चलने के कारण झूम रहा है (लहरा रहा है) कचनार के काष्ठ से बना हुआ ध्वजदण्ड जिसका ऐसे, एषः=यह, चन्द्रकेतुः=चन्द्रकेतु, वः=तुम्हारे, आप लोगों के, प्रधनम्=युद्ध को, श्रुत्वा=सुनकर, उपैति=आ रहे हैं ॥ १ ॥

टीका—नन्वेष इति । नन्विति निश्चये, त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना—त्वरितेन=त्वरायुक्तेन सुमन्त्रेण=तदाख्येन सारथिना नुद्यमानाः=प्रेर्यमाणाः प्रोद्वल्गन्तः=धावन्तः प्रजविताः=अतिशयवेगयुक्ताः वाजिनः=अश्वाः यस्य तादृशेन, रथेन=स्यन्दनेन, उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः—उत्खातेषु=निम्नोन्नतप्रदेशेषु प्रचलितः=प्रकम्पमानः कोविदारकेतुः=कोविदारतरुदण्डनिर्मितध्वजदण्डो यस्य सः, एषः=अयम्, चन्द्रकेतुः=लक्ष्मणपुत्रः, वः=युष्माकम्, प्रधनम्=युद्धम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, उपैति=समीपमागच्छति । अत्र काव्यलिङ्गं यमकञ्चालङ्कारौ । प्रहर्षिणी छन्दः ॥ १ ॥

टिप्पणी—भोभोः सैनिकाः—पर्दे के पीछे से यह सूचना दी गई है । अतः यह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है । चूलिका का लक्षण है—"अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका" (साहित्यदर्पण ६।५८) ।

---

१. व्यावल्गत्, २. उद्घात, ३ नः ।

(पर्दे के पीछे)

हे हे सैनिकों, हम लोगों को सहारा प्राप्त हो गया है।

निश्चय ही, शीघ्रता से सारथी सुमन्त्र के द्वारा सञ्चालित होने के कारण दौड़ते हुए एवं वेगशाली घोड़ों से युक्त रथ से, ऊँची-नीची भूमि पर चलने के कारण झूम रहा है (अर्थात् लहरा रहा है) कचनार के काष्ठ से बना हुआ ध्वज-दण्ड जिसका ऐसे यह चन्द्रकेतु आप लोगों के युद्ध को सुनकर आ रहे हैं ॥ १ ॥

(उसके बाद सुमन्त्र के द्वारा हाँके जाते हुए रथ पर आरूढ़, हाथ में धनुष लिये हुए, आश्चर्य हर्ष और शीघ्रता से युक्त चन्द्रकेतु प्रवेश करते हैं)।

चन्द्रकेतु–आदरणीय सुमन्त्रजी, देखिये, देखिये—

त्वरित०—त्वरा+इतच्+विभक्तिः अथवा त्वरा + क्त + विभक्तिः। **नुद्यमान०**—√ नुद्+शानच् (आन)+ विभक्तिः। **प्रोद्वलगत्०**–प्र √उद्+ √वल्ग+शतृ+विभक्तिः। **उत्खात०**--उत्+ √ खन्+क्त + विभक्त्यादिः। **प्रचलित०**—प्र+ √चल्+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में अश्वों के दौड़ने का हेतु सुमन्त्र की प्रेरणा है तथा कोविदार केतु के कम्पन का हेतु उत्खात है। अतः काव्यलिंग अलङ्कार है। तृतीय और चतुर्थ पाद के अन्त में केतु शब्द की आवृत्ति हुई है। अतः अन्त्ययमक है।

प्रहर्षिणी छन्द का लक्षण—

त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—सुमन्त्रसारथिना=सुमन्त्र हैं सारथी जिसके ऐसे, धनुष्पाणिः=हाथ में धनुष लिये हुए, साद्भुतहर्षसंभ्रमः=आश्चर्य हर्ष और शीघ्रता से युक्त ॥

टीका—**ततः प्रविशतीति**। सुमन्त्रसारथिना-सुमन्त्रः सारथिः=प्रेरयिता यस्य तेन तादृशेन, रथेन=स्यन्दनेन, धनुष्पाणिः–धनुः=कोदण्डः पाणौ=हस्ते यस्यासौ, साद्भुतहर्षसम्भ्रमः -अद्भुतेन=आश्चर्येण हर्षेण=आनन्देन संभ्रमेण=त्वरया च सह। अत्र स्वल्पबालकस्य पराक्रमदर्शनेनाश्चर्यं स्वसदृशवीरलाभेनानन्दस्तथा स्वसैनिकाणां संहारदर्शनेन त्वरा बोद्धव्या।

टिप्पणी—**धनुष्पाणिः** —"प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः" इस नियम के अनुसार सप्तम्यन्त पाणि शब्द का पर निपात होता है।

साद्भुतहर्षसंभ्रमः—लघुकाय मुनि बालक के ऐसे पराक्रम प्रदर्शन से आश्चर्य, ऐसे वीर प्रतिद्वन्द्वी के लाभ के कारण हर्ष तथा सैनिकों की रक्षा के लिये संभ्रम (जल्दबाजी) समझनी चाहिये ॥

किरति कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्री-
रवि[1]रतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण ।
समरशिरसि चञ्चत्पञ्चचडश्चमूना-
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः ॥ २ ॥

(साश्चर्यम्)

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः संप्रकोपा-[2]
न्नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धिप्ररोहः ।
दलितकरिकपोलग्रन्थिटङ्कारघोर-[3]
ज्वलितशरसहस्रः[4] कौतुकं मे करोति ॥ ३ ॥

अन्वयः—कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्रीः, चञ्चत्पञ्चचूडः, कोऽपि, अयम्, वीरपोतः, समरशिरसि, अविरतगुणगुञ्जत्कोटिना, कार्मुकेण, चमूनाम्, उपरि, शरतुषारम्, किरिति ।। २ ।।

शब्दार्थः—कलित-किञ्चित्-कोप-रज्यद्-मुख–श्रीः=किये गये कुछ क्रोध के कारण लाल मुख-कान्तिवाला, चञ्चत्-पञ्च-चूडः=हिलती हुई पाँचों शिखाओं (चोटियों) वाला, कोऽपि=कोई, अयम्=यह, वीरपोतः=वीर बालक, समरशिरसि=युद्धाङ्गण में, युद्ध के मैदान में, अविरतगुणगुञ्जत्कोटिना=निरन्तर प्रत्यञ्चा पर गूँजते हुए दोनों किनारों से युक्त, कार्मुकेण=धनुष से, चमूनाम्=(हमारी) सेना के, उपरि=ऊपर, शरतुषारम्=हिम के तुल्य बाण–वृष्टि, किरति=कर रहा है ।। २ ।।

टीका—किरतीति । कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्रीः—कलितेन=कृतेन, आहृतेनेति यावत्, किञ्चित्कोपेन=ईषन्मन्युना रज्यन्ती=रक्तीभवन्ती मुखश्रीः=आननशोभा यस्य तथोक्तः, अत्र प्रत्यर्थिनामकिञ्चित्करत्वात् किञ्चित्कोपेनेत्युक्तम्, चञ्चत्पञ्चचूडः—चञ्चन्त्यः=चञ्चलाः पञ्च चूडाः=शिखाः यस्य स तथाविधः, कोऽपि=अपूर्व इत्यर्थः, अयम्=एषः, वीरपोतः=वीरबालकः, समरशिरसि=युद्धरङ्गे, अविरतगुणगुञ्जत्कोटिना—अविरतम्=विश्रान्तिरहितं यथा स्यात्तथा गुणे=ज्यायां गुञ्जन्त्यौ=अव्यक्तशब्दवत्यौ कोटी=अग्रे यस्य तथोक्तेन, कार्मुकेण=धनुषा, चमूनाम्=सेनानाम्, ("पृतनाऽनीकिनी चमूः" इत्यमरः) उपरि=ऊर्ध्वम्, शरतुषारम्—शराः=बाणाः तुषार इव=हिममिव तम्, बाणवर्षमित्यर्थः, किरति=क्षिपति । अत्र लुप्तोपमाऽलंकारः । मालिनी च छन्दः ॥ २ ॥

---

१ प्रवितत, २. सैन्यकाये, ३. घोरं, ४. सहस्रैः ।

किये गये कुछ क्रोध के कारण लाल मुख–कान्ति वाला, हिलती हुई पाँचों शिखाओं (चोटियों) वाला, कोई (अज्ञात) यह वीर बालक युद्ध के मैदान में निरन्तर प्रत्यञ्चा पर गूंजते हुए दोनों किनारों से युक्त धनुष के द्वारा (हमारी) सेना के ऊपर हिम के तुल्य बाण-वृष्टि कर रहा है ॥ २ ॥

विशेष—पञ्चचूडः–प्राचीन समय में क्षत्रिय बालक अपये बालों की पाँच चोटियाँ बनाते थे। इन चोटियों के द्वारा बिना कहे भी यह विदित हो जाता था कि यह क्षत्रिय ब्रह्मचारी है ॥ २ ॥

(आश्चर्य के साथ)

रघुकुल के अप्रसिद्ध नवीन अङ्कुर की तरह अकेला यह मुनि-बालक अत्यन्त कोप के कारण चतुर्दिक् हाथियों के कपोलों की ग्रन्थियों की टंकार से भयङ्कर एवं प्रदीप्त सहस्रों बाणों से युक्त होकर मेरे लिये कौतुक उत्पन्न कर रहा है ॥ ३ ॥

टिप्पणी—किञ्चित्कोप० चन्द्रकेतु की सेना से युद्ध प्रारम्भ करते हुए लव को थोड़ा-सा ही क्रोध आया था। इसका कारण यह था कि चन्द्रकेतु की सेना लव के सामने बहुत तुच्छ पड़ रही थी।

इस श्लोक में 'शरतुषारम्' में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है। यहाँ व्यञ्जना यह की गई है कि श्याम वर्ण का होने के कारण लव मेघ हैं, चञ्चल पाँच शिखाएँ बिजलियाँ हैं, उनका धनुष इन्द्रधनुष है तथा बाणवर्षा हिमवर्षा है।

इस श्लोक में प्रयुक्त मालिनी छन्द का लक्षण—

न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ २ ॥

अन्वयः—रघुवंशस्य, अप्रसिद्धः, नवः, प्ररोहः, इव, एकः, मुनिजनशिशुः, संप्रकोपात्, सर्वतः, दलितकरिकपोलग्रन्थिटंकारघोरज्वलितशरसहस्रः, (सन्), मे, कौतुकम्, करोति ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—रघुवंशस्य=रघुकुल के, अप्रसिद्धः=अप्रसिद्ध, अविदित, नवः=नवीन, प्ररोहः=अङ्कुरकी, इव=तरह, एकः=एक, अकेला, मुनिजनशिशुः=मुनि–बालक, संप्रकोपात्=अत्यन्त कोप के कारण, सर्वतः=चतुर्दिक्, दलितकरिकपोलग्रन्थिटंकार-घोरज्वलितशरसहस्रः=हाथियों के विदीर्ण किये गये कपोलों की ग्रन्थियों की टङ्कार से भयङ्कर एवं प्रदीप्त सहस्रों बाणों से युक्त (सन्=होकर), मे=मेरे लिये, कौतुकम्=आश्चर्य, करोति=उत्पन्न कर रहा है ॥ ३ ॥

टीका—मुनिजनशिशुरिति। रघुवंशस्य=रघुकुलस्य, अप्रसिद्धः=रघुवंशप्ररोहत्वेन संसारेऽविदितः, नवः=नूतनः, प्ररोहः=अङ्कुरः, इव=यथा, एकः=एकाकी, अद्वितीय इति यावत्, मुनिजनशिशुः—मुनिजनस्य शिशुः=बालकः, संप्रकोपात्=क्रोधा-

सुमन्त्रः—आयुष्मन् !

अतिशयितसुरासुरप्रभावं शिशुमवलोक्य तथैव[१] तुल्यरूपम् ।
कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि ॥ ४ ॥

धिक्यात्, सर्वतः=चतुर्षु दिक्षु, दलितेत्यादिः–दलिताः=विमर्दिताः करिकपोलानाम्=हस्तिगण्डस्थलानां ग्रन्थयः=सन्धिभागास्तेषां टङ्कारेण टमिति दलनध्वनिना घोरम्=भयजनकं ज्वलितम्=प्रदीप्तं शराणाम्=बाणानां सहस्रम्=दशशतं यस्य सः तादृशः, (सन्–भूत्वा), मे=मम, चन्द्रकेतोः, कौतुकम्=आश्चर्यं हर्षं वा, करोति=उत्पादयति । अत्रोपमालङ्कारो मालिनी च छन्दः ॥ ३ ॥

टिप्पणी--संप्रकोपात्--सम्+प्र+ √कुप्+घञ्+विभक्तिः । अप्रसिद्धः--अ+प्र+ √सिध्+क्त+विभक्तिः । प्ररोहः--प्र+ √रुह्+घञ्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में 'नव इव' के द्वारा उपमा अलंकार है । यहाँ प्रयुक्त मालिनी छन्द का लक्षण—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ ३ ॥

अन्वयः--अतिशयितसुरासुरप्रभावम्, तथा, एव, तुल्यरूपम्, शिशुम्, अवलोक्य, कुशिकसुतमखद्विषाम्, प्रमाथे, धृतधनुषम्, रघुनन्दनम्, स्मरामि ॥ ४ ॥

शब्दार्थः--अतिशयितसुरासुरप्रभावम्=देवों एवं दानवों के प्रभावका अतिक्रमण करने वाले, तथा=उसी प्रकार के रूप वाले , शिशुम्=बालक को, अवलोक्य=देखकर, कुशिकसुत–मखद्विषाम्=विश्वामित्र के यज्ञ के विध्वंसक (मारीच आदि) राक्षसों के, प्रमाथे=विनाश के लिये, संहार के लिये, धृतधनुषम्=धनुर्धारी, रघुनन्दनम्=राम को, स्मरामि=याद कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

टीका—अतिशयितसुरासुरप्रभावम्=अतिशयितः=अतिक्रान्तः सुराश्च असुराश्चेति सुरासुरास्तेषां सुरासुराणाम्=देवदानवानां प्रभावः=पराक्रमो येन तम्, बालकस्य रामचन्द्रस्यापि विशेषणमेतत्, तथैव=तेनैव प्रकारेण, तुल्यरूपम्=समानाकृतिम्, लवमिति यावत्, अवलोक्य=दृष्ट्वा, कुशिकसुतमखद्विषाम्—कुशिको नाम महात्मा तस्य सुतः=पुत्रः, विश्वामित्र इत्यर्थः, तस्य मखम्=यज्ञ द्विषन्तीति तेषां मखद्विषाम्=यज्ञविघातकानाम्, प्रमाथे=संहारे, धृतधनुषम्-धृतम्=गृहीतं धनुः=

---

१. तवैव ।

सुमन्त्र--चिरंजीव,

देवों एवं दानवों के प्रभाव का अतिक्रमण करने वाले, तथा उसी प्रकार की आकृतिवाले इस बालक को देखकर विश्वामित्र के यज्ञ के विध्वंसक (मारीच आदि) राक्षसों के संहार के लिये धनुषको धारण करनेवाले राम का स्मरण कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

विशेष--सुमन्त्र के कहने का भाव यह है कि इस बालक के पराक्रम को देखकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय धनुष धारण करनेवाले राम की याद आ रही है। उस समय राम भी प्रायः इसी की वय के थे और उनका रूप-रङ्ग भी ऐसा ही था ॥ ४ ॥

कोदण्डो येन तम्, रघुनन्दनम्=रामचन्द्रम्, स्मरामि=चिन्तयामि । अत्रातिशयोक्तिरुपमा स्मरणश्चालङ्काराः । पुष्पिताग्रा छन्दः ॥ ४ ॥

टिप्पणी—अतिशयित०—अति+ √शी+क्त+विभक्तिः । **प्रभावः**—प्र+ √भू+घञ्+विभक्तिः । **अवलोक्य**—अव+ √लोक्+णिच्+ल्यप् ।

कुशिकसुत--विश्वामित्र वस्तुतः कुशिक के पुत्र न होकर कुशिक के वंशज एवं गाधि के पुत्र थे । वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड (३२ श्लोक से ३४ श्लोक तक) में विश्वामित्र को गाधि-पुत्र बतलाते हुए उनका वंशवृक्ष इस प्रकार दिया गया है--ब्रह्मा→कुश→कुशनाभ→गाधि→विश्वामित्र । सम्भवतः कुश को ही कुशिक कहा जाता था । अतः उनके वंश में उत्पन्न होने के कारण विश्वामित्र कौशिक कहलाते हैं । राम के द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की बात रामायण की प्रसिद्ध घटना है ।

प्रमाथे—प्र+ √मथ्+घञ्+विभक्तिः ।

धृतधनुषम्—यहाँ पर 'धनुषश्च' (५।४।१३२) से समासान्त अनङ् प्रत्यय होकर धृतधन्वन् शब्द बनना चाहिये, जैसे--उदीर्णधन्वन्, पुष्पधन्वन् आदि किन्तु समासान्त विधि अनित्य है अतः अनङ् नहीं हुआ है ।

इस श्लोक के प्रथम चरण में 'अतिशयित०' के द्वारा अतिशयोक्ति अलङ्कार है । द्वितीय चरण में 'तथैव' के द्वारा उपमा है । बालक लव को देखकर राम का स्मरण हो रहा है अतः स्मरण अलङ्कार है ।

॥ यहाँ प्रयुक्त पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण-अयुजि नयुगरेफतो यकारो ।
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ ४ ॥

चन्द्रकेतुः—[1]मम त्वेकमुद्दिश्य भूयसामारम्भ[2] इति हृदयमपत्रपते ।

अयं हि शिशुरेकको[3]मदभरेण भूरिस्फुर-
त्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैर्बलैः ।
क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनै-
रमन्दमददुर्दिनद्विरद[4]डामरैरावृतः ॥ ५ ॥

सुमन्त्रः—वत्स ! एभिः समस्तैरपि नालमस्य, किं पुनर्व्यस्तैः ?

चन्द्रकेतुः—आर्य ! त्वर्यतां त्वर्यताम् । अनेन हि महानाश्रितजन[5]प्रमारोऽस्माकमारब्धः । तथा हि--

---

अन्वयः—हि, अयम्, एककः, शिशुः, मदभरेण, भूरिस्फुरत्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैः, क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनैः, अमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैः, बलैः, आवृतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—हि=क्योंकि, अयम्=यह, एककः=एकाकी, अकेला, शिशुः=बालक; मदभरेण=मदकी अधिकता के कारण, मतवालापन के कारण, भूरिस्फुरत्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैः=अत्यन्त चमकते हुए भयङ्कर कदली वृक्ष के सदृश विशाल हाथों में शस्त्र-धारण की हुई, क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनैः=बजती हुई सुवर्ण की घण्टियों की झनझनाहट करने वाले रथों से भरपूर, अमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैः=अत्यधिकमद की वर्षा से दुर्दिन के दृश्य को उपस्थित करने वाले हाथियों के कारण अतिभीषण, बलैः=सेनाओं से, आवृत्तः=घिरा हुआ है ॥ ५ ॥

टीका—अयं हीति । हि=यतः, अयम्=एषः, एककः=एकाकी, एक एवेत्यर्थः, 'एकादाकिनिच्चाऽसहाये' इत्यत्र चात्कन्, 'एकाकी त्वेक एककः' इत्यमरः, चाल्लुकि 'एक' इत्यपि, शिशुः=बालकः, मदभरेण=समुपजनितमदातिशयेन, वीरमानेनेत्यर्थः, भूरिस्फुरत्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैः=भूरि=अत्यधिकं यथा स्यात्तथा स्फुरन्ति=चलितानि तेजोमयानि वा करालानि=क्रूराणि करकन्दलीषु=करशाखाग्रेषु कदलीसदृश-विशालकरेषु वा जटिलानि=गृहीतानि शस्त्रजालानि=आयुधसमूहाः येषां तैः, क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनैः—क्वणन्तीभिः=शब्दायमानाभिः कनककिङ्किणीभिः=सुवर्णक्षुद्रघण्टिकाभिः झणझणायिताः=झण=झणेति शब्दं कुर्वन्तः स्यन्दनाः=रथाः येषां तैः, अमन्ददुर्दिनद्विरदडामरैः—अमन्दः=अनल्पः, अत्यधिक

---

१. इममेकमु, २. अवष्टम्भः, ३. वारिदैः, ४. प्रमाथो ।

चन्द्रकेतु--एक (बालक) को लक्ष्य करके बहुत से सैनिकों का यह आक्रमण हो रहा है, अतः मेरा हृदय लज्जा से भर रहा है।

क्योंकि यह अकेला बालक मद की अधिकता के कारण कदली वृक्ष के सदृश विशाल हाथों में, अत्यन्त चमकते हुए शस्त्र धारण की हुई, बजती हुई सुवर्ण की घण्टियों की झन-झनाहट करने वाले रथों से भरपूर, अत्यधिक मद की वर्षा से दुर्दिन के दृश्य को उपस्थित करने वाले हाथियों के कारण अतिभीषण, सेनाओं से घिरा हुआ है ॥ ५ ॥

सुमन्त—वत्स, ये सारे के सारे सैनिक मिलकर भी इसके लिये पर्याप्त नहीं हैं, फिर अलग-अलग का तो कहना ही क्या है ?

चन्द्रकेतु—आर्य, शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये। इसने हमारे आश्रित लोगों का महान् संहार प्रारम्भ कर दिया है। जैसे कि—

इत्यर्थः, मदः=दानवारि एव दुर्दिनम्=वृष्टिः येषां ते, ते च ते द्विरदाः=हस्तिनः तैः डामरैः=भीषणैः बलैः=असमत्सैन्यैः, आवृतः=परिवृतः। अतो मे लज्जेति भावः। अत्रोपमालङ्कारः। पृथिवी च छन्दः ॥ ५ ॥

टिप्पणी--उद्दिश्य—उत्+ √दिश्+ल्यप्।

आवृतः—आ+ √वृत्+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में 'करकन्दली' और 'मददुर्दिन' में उपमाऽअलंकार है। यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—पृथिवी। छन्द का लक्षण—

जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—समस्तैः=इकट्ठे हुए, एकत्रित, अलम्=पर्याप्त, व्यस्तैः=अलग-अलग, यहाँ 'अलम्' के कारण तृतीया विभक्ति आई है। त्वर्यताम्=शीघ्रता कीजिये। आश्रितजनप्रमारः=आश्रित लोगों का संहार, आरब्धः=प्रारम्भ कर दिया है।

टीका—सुमन्त इति। समस्तैः=सहितैः, मिलितैरिति यावत्, नालम्=न पर्याप्तम्, व्यस्तैः=पृथक्स्थितैः। अस्य मुनिकुमारकस्य समक्षं सर्वेऽपि मिलिताः सैनिकाः स्थातुं न शक्नुवन्तीति भावः। आश्रितजनप्रमारः--आश्रितजनानाम्=उपजीविनां प्रमारः=मारणम्। आरब्धः=प्रारब्धः ॥

टिप्पणी--समस्तैः--सम्+ √अस्+क्त+विभक्तिः। **वयस्तैः**--वि+ √अस्+क्त+विभक्तिः ॥

[1]आगर्जद्गिरिकुञ्जरघटा[2]निस्तीर्णकर्णज्वर[3]-
ज्यानिर्घोषममन्दुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन् ।
वेल्लद्भैरवरुण्ड[4]खण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं[5]
[6]तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव ॥६॥

सुमन्त्रः—(स्वगतम् ।) कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसंप्रहार-मनुजानीमः । (विचिन्त्य ।) अथवा इक्ष्वाकुकुलवृद्धाः खलु वयम् । प्रत्युपस्थिते रणे का गतिः ?

चन्द्रकेतुः--(सविस्मयलज्जासम्भ्रमम् ।) हन्त धिक् ! [7]अपावृत्तान्येव सर्वतः सैन्यानि मम ।

अन्वयः—(अयम्), वीरः, अमन्ददुन्दुभिरवैः, आध्मातम्, आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरज्यानिर्घोषम्, उज्जृम्भयन्, वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैः, भुवम्, तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणाम्, इव, विधत्ते ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—(अयम्=यह), वीरः=वीर, अमन्ददुन्दुभिरवैः=नगाड़ों की गंभीर ध्वनियों से, आध्मातम्=बढ़े हुए, आगर्जद्गिरिकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरज्यानिर्घोषम्=जोर से गरजते हुए जङ्गली हाथियों की घटाओं के कानों को पीडित करने वाले प्रत्यञ्चा के टंकार को, उज्जृम्भयन्=उत्पन्न करता हुआ, वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैः=छटपटाते हुए भीषण रुण्ड (धड़)–मुण्ड के समूहों से, भुवम्=पृथिवी को, तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणाम्=प्यासे काल (यमराज) के कराल मुख के उच्छिष्ट पदार्थों से व्याप्त, इव=सा, विधत्ते=कर रहा है ॥ ६ ॥

टीका—आगर्जदिति । (अयम्=एषः), वीरः=शूरः, मुनिकुमारक इति यावत्, ("वीरो शूरश्च विक्रान्त" इत्यमरः), अमन्ददुन्दुभिरवैः अमन्दैः=अतिशयितैः दुन्दुभिरवैः=भेरीशब्दैः, आध्मातम्=प्रवृद्धम्, आगर्जद्गिरि—कुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरज्यानिर्घोषम्--आगर्जताम्=भीतिवशाद्गाढगर्जनं कुर्वताम्, गिरिकुञ्जकुंजराणाम्=पर्वतगुहावर्तिगजानां घटायै=पंक्तये निस्तीर्णः=दत्तः कर्णज्वरः=श्रोत्रपीडा येन तं तथाविधं ज्यानिर्घोषम्=प्रत्यञ्चाशब्दम्, उज्जृम्भयन्=उत्पादयन्, वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैः-—वेल्लद्भिः = लुठद्भिर्भैरवैः=भयंकरैः रुण्डखण्डानाम्=शिरः-कपालानामथवा कबन्धानां तच्छिरसां च निकरैः=समूहैः, भुवम्=पृथिवीम्, तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघस-व्याकीर्यमाणाम्—तृष्यन् = पिपासितो यः कालः=

---

१. आगुञ्जत्, २. विस्ती०, ३. ज्वरज्या, ४. मुण्ड, ५. भुवः ··· व्याकीर्यमाणा इव, ६. तृष्यत्, ७. प्रतिनिवृत्तानि ।

(यह) वीर बालक नगाड़ों की गम्भीर ध्वनियों से बढ़े हुए, (भयवश) जोर से गरजते हुए जङ्गली हाथियों की घटाओं के कानों को पीडित करने वाले प्रत्यञ्चा के टंकार को उत्पन्न करता हुआ, छटपटाते हुए भीषण रुण्ड (धड़)—मुण्ड के समूहों से पृथिवी को, प्यासे काल (यमराज) के कराल मुख के उच्छिष्ट पदार्थों से व्याप्त—सा कर रहा है ॥ ६ ॥

विशेष—'आध्मातम्' 'ज्यानिर्घोषम्' का विशेषण है। नगाड़े की आवाज प्रत्यञ्चा की टंकार की वृद्धि कर रही है।

रुण्डखण्डनिकरै···व्याकीर्यमाणाम्—यह वीर बालक वीरों के शिरों को काट-काट कर पृथिवी पर गिरा रहा है। इससे ऐसा मालूम पड़ रहा है मानो यमराज मानव शरीर को चबा-चबा कर खा रहा है और मुख से उच्छिष्ट गिरा-गिरा कर पृथिवी को आच्छादित कर रहा है ॥ ६ ॥

सुमन्त्र—(अपने आप) ऐसे बेजोड़ वीर के साथ बच्चे चन्द्रकेतु को युद्ध की कैसे अनुमति दूँ। (सोचकर) अथवा हम इक्ष्वाकु कुल में पले हुए वृद्ध व्यक्ति हैं। अब संग्राम के उपस्थित होने पर कौन (दूसरा) उपाय है ? (अर्थात् अब तो युद्ध की अनुमति देनी ही होगी।)

चन्द्रकेतु—(आश्चर्य, लज्जा और शीघ्रता के साथ) ओह, धिक्कार है, मेरी सेनायें चारों तरफ पीछे ढकेल दी गई हैं।

मृत्युस्तस्य यत् करालम्=भीतिजनकं वक्त्रम्=मुखं तस्य विघसैः=भुक्तशिष्टैः ("विघसो यज्ञशेषभोजनशेषयोः" इत्यमरः), व्याकीर्यमाणामिव=संस्तीर्यमाणामिव, विधत्ते=करोति। अत्रातिशयोक्तिरुत्प्रेक्षा चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—आगर्जत्०-आ + √गर्ज + शतृ + विभक्तिः। **निस्तीर्ण**०-नि + √स्तृ + क्त + विभक्त्यादिः। **आध्मातम्**--आ + √ध्मा + क्त + विभक्तिः। **उज्जृम्भयन्**--उत् + √जृम्भ + णिच् + शतृ + विभक्तिः। **व्याकीर्यमाणाम्**--वि + आ + √कृ + शानच् + विभक्तिः।

यहां ज्यानिर्घोष को कान के लिये ज्वरप्रद कहा गया है। अतः असम्बन्ध में सम्बन्ध के वर्णन से अतिशयोक्ति अलङ्कार है। अन्तिम चरण में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है। इस श्लोक में वीर तथा अद्भुत रस हैं।

यहाँ प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण--

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥६॥

सुमन्त्रः--(रथवेगं निरूप्य ।) आयुष्मन् ! एष ते वाग्विषयीभूतः[१] स वीरः ।

चन्द्रकेतुः--(विस्मृतिमभिनीय।) आर्य ! किं नामधेयमाख्यातमाह्वायकैः[२] ?

सुमन्त्रः—'लव' इति ।

चन्द्रकेतुः--भो भो लव ! [३]महाबाहो ! किमेभिस्तव सनिकैः ? ।

एषोऽहमेहि मामेव, तेजस्तेजसि शाम्यतु ।। ७ ।।

सुमन्त्रः--कुमार ! पश्य पश्य ।

[४]विनिर्वर्तित एष वीरपोतः[५] पृतनानिर्मथनात्त्वयोपहूतः ।
स्तनयित्नुरवादिभावलीनामवमर्दादिव दृप्तसिंहशावः ।। ८ ।।

शब्दार्थः—ईदृशेन = ऐसे, अर्थात् बेजोड़ वीर, वत्सस्य=बच्चे, द्वन्द्वसम्प्रहारम्= द्वन्द्वयुद्ध को, अनुजानीमः=अनुमोदित करें, इक्ष्वाकुकुलवृद्धाः=इक्ष्वाकु कुल में पला हुआ वृद्ध, प्रत्युपस्थिते=उपस्थित होने पर, का गतिः=कौन उपाय है । सविस्मय-लज्जासम्भ्रमम्=आश्चर्य लज्जा और शीघ्रता के साथ, अपावृत्तानि=पीछे हटा दी गई हैं अथवा पीछे हट गई हैं, सर्वतः=चारों ओर । वाग्विषयीभूतः=वाणी का विषय, अर्थात् तुम्हारी बात को सुनने की परिधि में स्थित । किं नामधेयम् = क्या नाम, आख्यातम्=कहा है, आह्वायकैः=पुकारने वालों ने ।।

टीका—सुमन्त्र इति । ईदृशेन = एतादृशेन, अनुपमेन वीरेणेत्यर्थः, वत्सस्य= शिशोः, तत्समक्षं वत्सभूतस्येत्यर्थः, द्वन्द्वसम्प्रहारम्=द्वन्द्वयुद्धम्, अनुजानीमः=अनुज्ञां कुर्मः, इक्ष्वाकुकुलवृद्धाः—इक्ष्वाकुकुलस्य = रघुवंशस्य वृद्धाः=स्थविराः, मर्यादाऽभिज्ञा इत्यर्थः, 'अस्मदो द्वयोश्च' इत्येकत्वे बहुवचनम्, खल्वित्यनेन विमृश्यकारित्वमवश्यमिति व्यज्यते । प्रत्युपस्थिते=सम्प्राप्ते, का गतिः=क उपायः ? सविस्मयलज्जासम्भ्रमम्-- विस्मयेन=लवपराक्रमदर्शनजनितेन आश्चर्येणेत्यर्थः, लज्जया = व्रीडया सम्भ्रमेण= स्वसैन्यरक्षणत्वरयेत्यर्थः, च सहितं यथा स्यात्तथा । सर्वतः=समन्तात्, अपावृत्तानि= पराङ्मुखीभूतानि, वाग्विषयीभूतः=वाचः=वाण्याः विषयीभूतः=गोचरीभूतः, तव सम्भाषणीयो जात इत्यर्थः । किं नामधेयम्--किं नामास्येत्यर्थः, आख्यातम्=कथितम्, आह्वायकैः=आह्वानं कुर्वद्भिः ।।

टिप्पणी—०वृद्धाः--वृद्ध शब्द के दो अर्थ होते हैं--पले हुए और बूढ़े । यहाँ प्रथम अर्थ ही लेना उचित है ।

प्रत्युपस्थिते--प्रति+उप+ √स्था + क्त + विभक्तिः । अपावृत्तानि-अप्+ आ+ √वृत्+क्त+विभक्तिः ।

---

१. कृतः, २. आह्वायकैः, ३. महाभाग विनिवर्तितः, ४. विनिवर्तत, ५. बालवीरः ।

सुमन्त्र—(रथ के वेग का अभिनय करके) चिरञ्जीविन्, वह वीर अब तुम्हारी वाणी का विषय (अर्थात् तुम्हारी बात को सुनने की परिधि में स्थित) है।

चन्द्रकेतु—(विस्मरण का अभिनय करके) आर्य, पुकारने वाले बालकों ने इसका क्या नाम लिया था ?

सुमन्त्र—'लव' यह नाम लिया था।

चन्द्रकेतु—हे हे महाबाहु लव, इन सैनिकों से तुम्हारा क्या प्रयोजन ? यह मैं (चन्द्रकेतु) हूँ। मेरे सामने ही आओ। (तुम्हारा) तेज (मेरे) तेज में शान्त हो जाय ॥ ७ ॥

सुमन्त्र—कुमार, देखिये देखिये—

यह वीर बालक तुम्हारे द्वारा चुनौती दिये जाने पर, गर्वीला सिंह शावक बादल के गर्जन को सुनकर जैसे गज-पंक्तियों के संहार से निवृत्त होता है, वैसे ही सेना के संहार से लौट आया है ॥ ८ ॥

सैन्यानि—सेना एव सैन्यम्। सेना+ष्यञ्+विभक्तिः। सैन्यं का अर्थ होता है सेना तथा सैन्यः का अर्थ है—सैनिक।

अभिनीय—अभि+ √नी + ल्यप् ॥

अन्वयः—भो भो महाबाहो, लव, एभिः, सैनिकैः, तव, किम्; एषः, अहम्; माम्, एव, एहि; तेजः, तेजसि, शाम्यतु ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—भो भो=हे हे, महाबाहो=बड़ी बड़ी भुजाओं वाले, महाबाहु, लव=लव, एभिः=इन, सैनिकैः=सैनिकों से, तव=तुम्हारा, किम्,=क्या प्रयोजन, क्या मतलब, एषः=यह, अहम्=मैं हूँ; माम्=मेरे समक्ष, एव=ही, एहि=आओ; तेजः=तेज, तेजसि=तेज में, शाम्यतु=शान्त हो जाय ॥ ७ ॥

टीका—**भो भो लवेति**। भो भो=हे हे, महाबाहो—महान्तौ=विशालौ बाहू=भुजौ यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ, लवेति नाम्ना सम्बोधनम्, एभिः=एतैः, सैनिकैः=सैन्यैः, तव=भवतः, किम्=किं प्रयोजनम्; एषः=अयम्, अहम्=वीररूपेण प्रसिद्धश्चन्द्रकेतुः, अस्मीति शेषः। मामेव=चन्द्रकेतुमेव, एहि=युद्धार्थमागच्छ। तेजः=त्वदीयं शौर्यम्, तेजसि = मम शौर्ये, शाम्यतु = शान्ति गच्छतु। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ ७ ॥

अन्वयः—एषः, वीरपोतः, त्वया, उपहूतः (सन्), दृप्तसिंहशावः, स्तनयित्नुरवात्, इभावलीनाम्, अवमर्दात्, इव, पृतनानिर्मन्थनात्, विनिवर्तितः ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—एषः=यह, वीरपोतः=वीर बालक, त्वया=तुम्हारे द्वारा, उपहूतः सन्=चुनौती दिये जाने पर, ललकारे जाने पर, दृप्तसिंहशावः=गर्वीला सिंह-शावक,

(तत प्रविशति [1]धीरोद्धतपराक्रमो लवः ।)

लवः—साधु राजपुत्र ! साधु । सत्यमैक्ष्वाकः खल्वसि । तदहं परागत एवास्मि ।

(नेपथ्ये महान् कलकलः ।)

लवः—([2]सावष्टम्भं परावृत्य) कथमिदानीं भग्ना अपि पुनः प्रतिनिवृत्ताः[3] पृष्ठानुसारिणः [4]पर्यवष्टम्भयन्ति मां चमूपतयः ? धिग्जाल्मान् !

स्तनयित्नुरवात्=बादल के गर्जन को सुन कर, इभावलीनाम्=गज-पंक्तियों के, अवमर्दात्=संहार से, मर्दन से, इव=जैसे (लौट आता है, वैसे ही), पृतनानिर्मन्थनात्=सेना के संहार से, विनिवर्तितः=लौट आया है, निवृत्त हो गया है ॥ ८ ॥

टीका—विनिवर्तित इति । एषः=अयं सम्मुखस्थ इत्यर्थः, वीरपोतः—शूरः शिशुः ("पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः" इत्यमरः), त्वया=भवता, उपहूतः=आहूतः सन्, द्वन्द्वयुद्धाय इति शेषः, दृप्तसिंहशावः—दृप्तः=गर्वयुक्तश्चासौ सिंहशावः=सिंहशिशुः, केसरिकिशोरक इत्यर्थः, स्तनयित्नुरवात्—स्तनयित्नुः=मेघस्तस्य रवात्=गर्जनात्, इभावलीनाम्=हस्तियूथानाम्, अवमर्दात्=विमर्दात्, संहारात्, इव=यथा, पृतनानिर्मन्थनात्—पृतना=सेना तस्याः निर्मन्थनात्=संहारात्, विनिवर्तितः=निवृत्तः । गजावलीसंहारे संलग्नः केसरिकिशोरको मेघगर्जनं श्रुत्वाऽमर्षवशाद्यथा हस्तियूथं परित्यज्य मेघमुखो भवति तथैवायं बालकस्त्वया युद्धार्थमाहूतः सन् सेनासंहारं विहाय त्वदभिमुखो जात इत्यभिप्रायः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । औपच्छन्दसिकं (मालभारिणी) छन्दः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—विनिवर्तितः-वि+नि+ √वृत्+णिच्+क्त+विभक्तिः । उपहूतः उप+ √ह्वे+क्त+विभक्तिः । अवमर्दात्-अव+ √मृद्+घञ्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में चतुर्थ पंक्ति में 'इव' के द्वारा उपमा अलङ्कार है । यहाँ प्रयुक्त मालभारिणी छन्द का लक्षण—

विषमे ससजा गुरू समे चेत्,
सभरा येन तु मालभारिणीयम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—धीरोद्धतपराक्रमः=धीर एवम् उद्धत पराक्रमवाले । धीर=निर्भीक, उद्धत=गर्वयुक्त, पराक्रमः=पराक्रमवाले । ऐक्ष्वाकुः=इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न, इक्ष्वाकु-

---

१. धीरोद्धतपरिक्रमः २. सावेगं, ३. प्रतिनिवृत्य, ४. पर्यवष्टभ्य निघ्नन्ति ।

(तदनन्तर निर्भीक एवं गर्वयुक्त पराक्रमवाले लव प्रवेश करते हैं ।)

लव--वाह राजकुमार, वाह । सचमुच ही तुम इक्ष्वाकुवंशी हो । अतः मैं लौट आया हूँ ।

(पर्दे के पीछे कोलाहल होता है ।)

लव--(गर्व के साथ लौट कर) किस प्रकार इस समय, छिन्न-भिन्न हो गये हुए भी सेनापति, फिर लौट कर पीछा करते हुए मेरा घेराव कर रहे हैं ? इन पापियों को धिक्कार है ।

वंशी । परागतः=लौट आयाहूँ, आ ही गया हूँ । सावष्टम्भम्=साभिमान, गर्व के साथ, परावृत्य=लौट कर । भग्नाः=भागे हुए, छिन्न-भिन्न, प्रतिनिवृत्ताः=लौटे हुए, वापस आये हुए, पृष्ठानुसारिणः=पीछे आने वाले, पीछा करनेवाले, पर्यवष्टम्भयन्ति= घेर रहे हैं, घेराव कर रहे हैं, चमूपतयः=सेनापति । धिग्जाल्मान्=पापियों को धिक्कार है--

टीका—ततः प्रविशतीति । धीरोद्धतपराक्रमः--धीरः=निर्भीक उद्धतः= गर्वयुक्तः=पराक्रमः=शौर्यं यस्य स तादृशः । सत्यम्=वस्तुतः, ऐक्ष्वाकः--इक्ष्वाकोः गोत्रापत्यं पुत्रानैक्ष्वाकः=इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः । तत्=तस्मात्, अहं परागतः=परावृत्तः, युद्धार्थं तव सम्मुख आगत इत्यर्थः । सावष्टम्भम्--अवष्टम्भेन=गर्वेण सहितं यथा स्यात्तथेत्यर्थः, भग्नाः=छिन्न-भिन्नाः, पलायिता इत्यर्थः, प्रतिनिवृत्ताः=सन्निवृत्ताः, पृष्ठानुसारिणः=मत्पृष्ठानुसरणशीलाः, चमूपतयः=सेनापतयः, पर्यवष्टम्भयन्ति= आवृण्वन्ति । मत्प्रहारेण पलायमाना अपि चन्द्रकेतुसकाशं मां गच्छन्तं दृष्ट्वा प्रहर्तु-कामा मां परित आवृण्वन्ति इति भावः । धिग्जाल्मान्=धिक् पापान् ॥

टिप्पणी—ऐक्ष्वाकः--सूर्यवंश में इक्ष्वाकु एक पराक्रमी राजा थे । उस समय भूमण्डल का कोई भी योद्धा उनके सम्मुख युद्ध करने का साहस नहीं कर पाता था । यही कारण है कि लव चन्द्रकेतु से कह रहे हैं कि--तुम्हारे इस वीरतापूर्ण वचन को सुन कर ऐसा प्रतीत होता है कि तुम सचमुच इक्ष्वाकुवंशी हो । इक्ष्वाकु+ अङ्+वृद्धिः उकारलोपश्च+विभक्तिः ।

परागतः—परा+आ+ √गम्+क्त+विभक्तिः ।

सावष्टम्भम्--अव+ √स्तम्भ+घञ्+विभक्तिः । **भग्नाः**— √भञ्ज्+ क्त+विभक्तिः । **प्रतिनिवृत्ताः**—प्रति+नि+ √वृत्+क्त+विभक्तिः । **पृष्ठानु-सारिणः**—पृष्ठ+अनु+ √सृ+णिनिः+विभक्तिः । **पर्यवष्टम्भयन्ति**—परि+ अव+ √स्तम्भ+णिच्+विभक्तिः ॥

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभु-
क्प्रचण्डक्रोधार्चिनिचयकवलत्वं व्रजतु मे ।
समन्तादुत्स[1]र्पद्घनतुमुलहेला[2]कलकलः
पयोराशेरोघः प्रलयपवनास्फालित इव ॥९॥

(सवेगं परिक्रामति)

चन्द्रकेतुः--भो भोः कुमार !

अत्यद्भुता[3]दपि गुणातिशयात्प्रियो मे
तस्मात्सखा त्वमसि, यन्मम तत्तवैव ।

अन्वयः--प्रलयपवनास्फालितः, पयोराशेः, ओघः, इव, अयम्, समन्तात्, उत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः, मे, शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्प्रचण्डक्रोधार्चिनिचयकवलत्वम्, व्रजतु ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—प्रलयपवनास्फालितः=प्रलयकालीन वायु से आन्दोलित, पयोराशेः=सागर के, ओघः=प्रवाह की, इव=तरह,अयम् = यह, समन्तात्=चारों ओर, उपसर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः=फैलता हुआ गम्भीर तथा प्रचण्ड युद्ध–रूपी क्रीडा का कोलाहल, मे=हमारे, शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्प्रचण्डक्रोधार्चिनिचयकवलत्वम् = पर्वतों से टकराने के कारण क्षुब्ध हुए वडवानल की भाँति भयङ्कर क्रोधरूपी ज्वालासमूह का ग्रास (कौर), व्रजतु = बने, हो जाय ॥ ९ ॥

टीका--अयमिति । प्रलयपवनास्फालितः—प्रलयपवनेन = प्रलयकालीनवायुना संवर्तकवायुनेत्यर्थः, आस्फालितः = ताडितः, पयोराशेः=सागरस्य, ओघः=प्रवाहः, इव=यथा, अयम्=एषः, निकटोत्पन्न इत्यर्थः, समन्तात्=सर्वतः, चतुर्ष्वदिक्ष्वित्यर्थः, उत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः—उत्सर्पन्=प्रसरन् घनः=गम्भीरः तुमुलः=सङ्कुलः, प्रचण्ड इति यावत्, यो हेलायाः=रणक्रीडायाः कलकलः=कोलाहलः, मे=मम, शैलाघातेत्यादिः = शैलानाम्=पर्वतानाम् आघातेन=ताडनेन क्षुभितः=उद्दीपितः यो वडवावक्त्रहुतभुक्=अश्वतरीमुखनिर्गतवह्निः, वडवानल इत्यर्थः, स इव प्रचण्डः=कठोरः यः क्रोधः=कोपः स एव अर्चिषाम्=ज्वालानां निचयः=समूहस्तस्य कवलत्वम्=ग्रासत्वम् व्रजतु = गच्छतु । समुद्रस्य महाप्रवाहो यथा वडवाग्निं प्राप्य विनश्यति तथैवायं सेनासमूहो मत्क्रोधाग्निं प्राप्य नश्यत्विति भावः । अत्रोपमा रूपकश्चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ॥ ९ ॥

---

१. उत्सर्पन्घन०, २. सेनाकलकलः, ३. दसि ।

प्रलयकालीन वायु से आन्दोलित सागर के प्रवाह की तरह यह चारों ओर फैलता हुआ गम्भीर तथा प्रचण्ड युद्ध-रूपी क्रीडा का कोलाहल, पर्वतों से टकराने के कारण क्षुब्ध हुए वडवानल की भाँति, मेरे भयङ्कर कोपरूपी ज्वाला-समूह का ग्रास बने ॥ ९ ॥

विशेष—लव के कहने का भाव यह है कि चारों ओर से ललकारते हुए ये जो प्रतिपक्ष के सैनिक मेरी ओर बढ़ रहे हैं, इन्हें क्रोधपूर्वक छोड़े गये अपने बाणों से अभी मैं विनष्ट करता हूँ ॥ ९ ॥

(वेग से घूमता है।)

चन्द्रकेतु—हे हे राजकुमार,

अत्यन्त आश्चर्यजनक गुणोत्कर्ष के कारण भी तुम मेरे प्रिय हो। इसलिये तुम (मेरे) मित्र हो। जो मेरा है, वह तुम्हारा ही है।

टिप्पणी--आघात०—आ + √ हन् + घञ् + विभक्त्यादिः, **क्षुभित०**—√क्षुभ + क्त + विभक्त्यादिः। इसका क्षुब्ध रूप भी बनता है।

०वडवा०—समुद्र के भीतर स्थित अग्नि को वडवानल कहते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार--कार्तवीर्य के पुत्रों ने भृगुवंशियों के कुल के संहार की बात मन में ठानी। फलतः उन लोगों ने भृगुवंश की स्त्रियों के गर्भस्थ शिशुओं का संहार प्रारम्भ कर दिया। भृगुवंश का समूलोन्मूलन उनका लक्ष्य था। अतः भृगुवंश की एक स्त्री ने अपने गर्भस्थ शिशु को उरु (जाँघ) में छिपा लिया। उत्पन्न होने के बाद बालक का नाम और्व (उरु से उत्पन्न) रक्खा गया। शिशु और्व को देखते ही कार्तवीर्य के पुत्र अन्धे हो गये। बालक और्व के कोप की ज्वाला संसार को भस्म करने लगी। पितरों के कहने पर उसने अपनी वह क्रोधाग्नि समुद्र में डाल दी। समुद्र में वह अग्नि वडवा (घोड़ी) के आकार को धारण कर सागर के जल को भस्म करती रहती है। वस्तुतः सागर के भीतर बहने वाली उष्ण जल-धारा को ही कवियों ने वडवाग्नि का नाम दिया है।

उत्सर्पत्०—उत् + √सृप् + शतृ + विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में वडवाग्नि रूपी क्रोधाग्नि है। अतः रूपक अलङ्कार है। चतुर्थ चरण में इव उपमा का बोधक है।

शिखरिणी छन्द का लक्षण--

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ९ ॥

अन्वयः--अत्यद्भुतात्, गुणातिशयात्, अपि, त्वम्, मे, प्रियः; तस्मात्, त्वम्,

तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि ?
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः ॥१०॥

लवः--(सहर्षसंभ्रमं परावृत्य ।) अहो महानुभावस्य प्रसन्नकर्कशा वीरवचनप्रयुक्तिर्विकर्तनकुलकुमारस्य । तत्किमेभिः ? एनमेव तावत्संभावयामि ।

(पुनर्नेपथ्ये कलकलः)

लवः--(सक्रोधनिर्वेदम्) आः ! कदर्थीकृतोऽहमेभिर्वीरसंवादविघ्नकारिभिः पापैः ।

(इति तदभिमुखं परिक्रामति ।)

सखा, असि; यत्, मम, तत्, तव, एव; तत्, निजे, परिजने, किम्, कदनम्, करोषि ? ननु, एषः, चन्द्रकेतुः, तव, दर्पनिकषः, (अस्ति) ॥ १० ॥

शब्दार्थः—अत्यद्भुतात्=अत्यन्त आश्चर्यजनक, गुणातिशयात्=गुणोत्कर्ष के कारण, अपि=भी, त्वम्=तुम, मे=मेरे, प्रियः=प्रिय हो, तस्मात्=इसलिये, उस कारण से, त्वम्=तुम, सखा=मित्र, असि=हो; यत्=जो, मम=मेरा है, तत्=वह, तव=तुम्हारा, एव=ही (है), ततः=उस कारण से, निजे=अपने, परिजने=परिजनों पर, किम्=क्यों, किस लिये, कदनम्=जुल्म, करोषि=ढहा रहे हो, ननु=निश्चय ही, एषः=यह, चन्द्रकेतुः=चन्द्रकेतु, तव=तुम्हारे, दर्पनिकषः=गर्व की कसौटी, (अस्ति=है) ॥ १० ॥

टीका--अत्यद्भुतादिति । अत्यद्भुतात्=अतिशयाश्चर्यजनकाद्, गुणातिशयात्—गुणानाम्=शौर्यादिभावानाम् अतिशयात्=आधिक्यात्, अपि=च, त्वं मे=मम, प्रियः=प्रेमपात्रम्, असीति शेषः । तस्मात्=ततः, त्वम्=चन्द्रकेतुरित्यर्थः, सखा=मित्रम्, असि=भवसि । अतो यत्=यद्वस्त्वित्यर्थः, मम=मे, तत्=तद्वस्तु, तव=ते, एव=च; तत्=तस्मात्, निजे=स्वकीये, परिजने=पोष्यवर्गे, मत्सैन्यरूप इति भावः, किम्=किमर्थम्, कदनम्=मारणप्रयोगम्, हननमिति यावत्;, "निर्वापणनिवासनकदनव्यापादनानि तुल्यानि" इति हलायुधः । करोषि=विदधासि ? मित्रपोष्यवर्गस्य हननमनुचितमिति भावः । नन्विति निश्चये, एषः=अयम्, तव पुरो वर्तमान इत्यर्थः, चन्द्रकेतुः=लक्ष्मणसुतोऽहमित्यर्थः, तव=ते, दर्पनिकषः--दर्पस्य=गर्वस्य निकषः=परीक्षास्थानम् । अस्तीति शेषः । इमान् वराकान् विहाय त्वं मया सह युद्धं कर्तुमर्हसीति भावः । अत्र परिणामोऽलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १० ॥

टिप्पणी—**अतिशयात्**०—अति+√शी+अच्+पञ्चमीविभक्तिः । **कदनम्**—√कद्+ल्युट् (अन)+विभक्तिः । निकषः—नि+√कष्+अच्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में चन्द्रकेतु में निकष का आरोप किया गया है और दर्पपरीक्षा में उसका उपयोग किया गया है, अतः परिणाम अलङ्कार है ।

है। अतः अपने परिजनों पर क्यों जुल्म ढहा रहे हो ? निश्चय ही यह चन्द्रकेतु तुम्हारे गर्व की कसौटी है ॥ १० ॥

लव—(प्रसन्नतापूर्वक वेग से लौट कर) ओह, अतिशय प्रभावशाली सूर्यवंशी राजकुमार के वीर-वचनों का प्रयोग प्रसाद गुण युक्त एवं कर्कश है। तो इन (सामान्य सैनिकों) से क्या प्रयोजन ? सबसे पहले (तावत्) इन्हीं (चंद्रकेतु) का ही (बाणों से) सत्कार करूँगा।

(फिर पर्दे के पीछे)

लव—(क्रोध और खेद के साथ) ओह, वीर के साथ संवाद में विघ्न करने वाले इन पापियों के द्वारा मैं तिरस्कृत किया गया हूँ।

(ऐसा कहकर सेना की तरफ ही चल पड़ता है।)

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है--वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण--

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ॥ १० ॥

शब्दार्थः--महानुभावस्य=अतिशय प्रभावशाली, प्रसन्नकर्कशा = प्रसाद गुणयुक्त एवं कर्कश, वीरवचनप्रयुक्तिः = वीरवचयों का प्रयोग, विकर्तनकुलकुमारस्य = सूर्यवंशी राजकुमार के। संभावयामि=सत्कार करूँगा। कदर्थीकृतः=तिरस्कृत किया गया हूँ, वीरसंवादविघ्नकारिभिः=वीर के साथ संवाद में विघ्न करने वाले, पापैः= पापियों के द्वारा ॥

टीका—लव इति। महानुभावस्य--महान् अनुभावः=प्रभावो यस्य स तादृशः, विकर्तनकुलकुमारस्य--विकर्तनस्य=सूर्यस्य कुलम् = वंशस्तस्य=तत्सम्बन्धिनः कुमारस्य=राजपुत्रस्य, प्रसन्नकर्कशा--प्रसन्ना=प्रसादगुणबहुला चासौ कर्कशा=कठोरा, आपाततो हृद्या पर्यालोचने तु कठिनेत्यर्थः, वीरवचनप्रयुक्तिः--वीरवचनानाम्= वीरजनोचितानां वाक्यानां प्रयुक्तिः=प्रयोगः। एनमेव=चंद्रकेतुमेव, सम्भावयामि= सत्करोमि, बाणव्यापारैः सत्करोमीत्यर्थः। कदर्थीकृतः=तिरस्कृतः, कुत्सितः अर्थः कदर्थः, अकदर्थः कदर्थः कृतः इति कदर्थीकृतः, वीरसम्वादविघ्नकारिभिः--वीरेण= शूरेण चंद्रकेतुना सह सम्वादः=वचनादानप्रदानप्रयोगस्तस्मिन् विघ्नम्=प्रतिबन्धं कुर्वन्तीति तच्छीलास्तैः, एभिः = एतैः सैनिकैः ॥

टिप्पणी—परावृत्य--परा+ √वृत्+ल्यप्।

प्रसन्नकर्कशा—लव के कहने का भाव यह है कि—चंद्रकेतु का कथन प्रारम्भ में तो बड़ा ही सुन्दर तथा चित्त को प्रसन्न करने वाला है, किन्तु उत्तरार्द्ध कर्कश है जहाँ वे अपने आपको मेरे अभिमान की कसौटी बतलाते हैं।

चन्द्रकेतुः--आर्य ! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत् ।

दर्पेण कौतुकवता मयि बद्धलक्ष्यः
पश्चाद्बलैरनुसृतोऽयमुदीर्णधन्वा ।
द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य धत्ते
मेघस्य माघवतचापधरस्य लक्ष्मीम् ॥११॥

सुमन्त्रः--कुमार एवैनं द्रष्टुमपि जानाति ! वयं तु केवलं परवन्तो विस्मयेन ।

विकर्तन०—विकर्तन कहते हैं—सूर्य को । विशेषेण कर्तनमस्येति विकर्तनम् । विश्वकर्मा ने बहुत घिस-घिस कर सूर्य को गोलाकार बनाया है । (देखिये रघुवंश ६।३२) ॥

अन्वयः—कौतुकवता, दर्पेण, मयि, बद्धलक्ष्यः, पश्चात्, बलैः, अनुसृतः, उदीर्णधन्वा, अयम्, द्वेधा, समुद्धतमरुत्तरलस्य, माघवतचापधरस्य, मेघस्य, लक्ष्मीम्, धत्ते ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—कौतुकवता=कुतूहलयुक्त, दर्पेण=अभिमान से, गर्व से, मयि=मुझ पर, बद्धलक्ष्यः=दृष्टि लगाये हुए, पश्चात्=पीछे की ओर से, बलैः=सेनाओं से, अनुसृतः=पीछा किया जाता हुआ; उदीर्णधन्वा=धनुष चढ़ाये हुए, अयम्=यह वीर बालक, द्वेधा=दोनों ओर से, समुद्धतमरुत्तरलस्य=तीव्र गति वाले वायु के द्वारा चञ्चल, माघवतचापधरस्य=इन्द्र धनुष को धारण करने वाले, मेघस्य=बादल की, लक्ष्मीम्=शोभा को, धत्ते=धारण कर रहा है ॥ ११ ॥

टीका—दर्पेणेति । कौतुकवता—कौतुकम् अस्य अस्ति इति कौतुकवान् तेन कौतुकवता=कुतूहलयुक्तेन, दर्पेण=गर्वेण, मयि=चन्द्रकेतौ, बद्धलक्ष्यः—बद्धं लक्ष्यं येन सः बद्धलक्ष्यः=दत्तदृष्टिः; पश्चात्=पृष्ठदेशे, बलैः=सैन्यैः, अनुसृतः=अनुधावितः; उदीर्णधन्वा—उदीर्णम्=उत्थापितं धनुः=कोदण्डो येन सः, धनुषश्च (५।४।१३२) इति समासान्तोऽनङ्, अयम्=एष वीरबालकः, द्वेधा=द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्, समुद्धत–मरुत्तरलस्य—समुद्धतेन=सञ्चालितेन मरुता=वायुना तरलस्य=चञ्चलस्य, माघवत-चापधरस्य--मघवतः=इन्द्रस्यायं माघवतः=ऐन्द्र इति यावत्, एतादृशो यश्चापः=धनुः, इन्द्रधनुरित्यर्थः, तद्धरस्य=तद्धारकस्य, मेघस्य=जलधरस्य, लक्ष्मीम्=शोभाम्, धत्ते=धारयति । अत्र निदर्शनालङ्कारः । वसन्ततिलका च छन्दः ॥ ११ ॥

चन्द्रकेतु—आर्य, देखने योग्य इस दृश्य को देखिये—

कुतूहलयुक्त गर्व से मुझ पर दृष्टि लगाये हुए, पीछे की ओर से सेनाओं के द्वारा पीछा किया जाता हुआ, धनुष चढ़ाये हुए वह (बालक), दोनों ओर से तीव्र गति वाले वायु के द्वारा चञ्चल मेघ की शोभा को धारण कर रहा है ॥ ११ ॥

विशेषः—लव के आगे चन्द्रकेतु धनुष लिये खड़े थे। अतः लव धनुष पर बाण चढ़ाये उनकी तरफ मुख किये हुए थे। पीछे से सेनाओं ने आक्रमण किया, अतः ऊधर भी उसने क्षण भर के लिये मुख किया। लव कभी आगे की ओर बढ़ते हैं तो कभी पीछे की ओर सेना को लक्ष्य बनाते हैं। अतः उनकी शोभा वैसी हीं हो रही है -जैसे इन्द्रधनुष से युक्त मेघ की जिसे दोनों दिशाओं की हवायें कभी इधर प्रेरित करती हैं और कभी उधर ॥ ११ ॥

सुमन्त्र—कुमार ही इन (लव) को देखना भी जानते हैं। हम लोग तो केवल विस्मय से परवश हैं।

टिप्पणी—**कौतुकवता**—कौतुक + मतुप् + तृतीयैकवचने विभक्तिकार्यम्। **बद्ध०**—√वन्ध् + क्त + विभक्त्यादिः। **द्वेधा** - द्वि + एधाच् + विभक्त्यादिः। यहाँ "एधाच्च" (५।३।४६) से विधा अर्थ में एधाच् प्रत्यय होता है। 'धा' तथा 'धमुञ्' प्रत्यय भी इसीं अर्थ में 'द्वि' तथा 'त्रि' शब्द से जुडते हैं, इससे 'द्विधा' तथा 'द्वैधम्' रूप भी बनते हैं। **समुद्धत०**—सम् + उद् + √हन् + क्त + विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में लव के द्वारा मेघ की शोभा को धारण करने से असम्भवद्वस्तु-सम्बन्धरूपी निदर्शना अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—एनम्=इनको, लव को, परवन्तः=परवश हैं, विस्मयेन=विस्मय से।

टीका—सुमन्त्र इति। एनम्=अमुं लवमित्यर्थः, परवन्तः=परवशाः, ("परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि।" इत्यमरः) विस्मयेन=आश्चर्येण, वीर एव वीरं द्रष्टुं जानाति वयं तु केवलं विस्मयरसाविष्टा इति भावः।

चन्द्रकेतुः--भो भो राजानः !

संख्यातीतैर्द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः पदाता-
वत्रैकस्मिन् कवचनिचितैर्न[1]द्धचर्मोत्तरीये ।
कालज्येष्ठैरपरवयसि[2] ख्यातिकामैर्भवद्भि-
र्योऽयं बद्धो युधि [3]समभरस्तेन धिग्वो धिगस्मान् ॥१२॥

लवः--(सोन्माथम्) आः ! [4]कथमनुकम्पते नाम ? (ससंभ्रमं विचिन्त्य ।) भवतु । कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि । (इति ध्यानं नाटयति ।)

सुमन्त्रः--तत्किमकस्मादुल्लोलाः[5] सैन्यघोषाः प्रशाम्यन्ति ?

लवः--पश्याम्येनमधुना प्रगल्भम् ।

अन्वयः—द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः, कवचनिचितैः, कालज्येष्ठैः, ख्यातिकामैः, संख्यातीतैः, भवद्भिः, पदातौ, नद्धचर्मोत्तरीये, अपरवयसि, एकस्मिन्, अत्र, युधि, यः, अयम्, समभरः, बद्धः, तेन, वः, धिक्; अस्मान्, च, धिक् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः=हाथी घोड़े और रथों पर सवार, कवच-निचतैः=कवच बाँधे हुए, कालज्येष्ठैः=आयु में बड़े, ख्यातिकामैः=यश के इच्छुक, संख्यातीतैः=अगणित, भवद्भिः=आप लोगों के द्वारा, पदातौ=पैदल, नद्धचर्मोत्तरीये=मृगचर्म का उत्तरीय (दुपट्टा) बाँधे हुए, अपरवयसि=छोटी आयुवाले, एकस्मिन्=अकेले, अत्र=इस बालक पर, युधि=युद्ध में, यः=जो, अयम्=यह, समभरः=सामूहिक आक्रमण का आयोजन, बद्धः=बाँधा गया है, तेन=इस कारण से, वः=आप सबको, अस्मान्=हम लोगों को, च=भी, धिक्=धिक्कार है ॥ १२ ॥

टीका—संख्यातीतैरिति । द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः--द्विरदाः=गजाः तुरगाः=अश्वाः स्यन्दनानि=रथाः इति द्विरदतुरगस्यन्दनं "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इति सेनाङ्गत्वात्समाहारद्वन्द्वः, तस्मिन् तिष्ठन्तीति तैः, कवचनिचितैः—कवचैः=वर्मभिः निचिताः=व्याप्तास्तैः, बद्धकवचैरित्यर्थः, कालज्येष्ठैः—कालेन=समयेन, वयसेत्यर्थः, ज्येष्ठाः=अधिकास्तैः, ख्यातिकामैः=कीर्तिलिप्सुभिः, भवद्भिः=युष्माभिः, राजभिरित्यर्थः, पदातौ—पादचारिणि, "पादे च" इतीण् प्रत्ययः, "पादस्य पदाज्याति-गोपहतेषु" इति पदादेशः, नद्धचर्मोत्तरीये--नद्धम्=बद्धं चर्म=मृगाजिनम् एव उत्त-

---

१. मेध्यचर्मोत्तरीये, २. अभिनववयः, ३. परिकरस्तेन, वो धिक्, ४. आः कथं, मय्यप्य०, ५. अस्मत्सैन्यघोषः प्रशाम्यति ।

चन्द्रकेतु—हे हे राजाओं,

हाथी घोड़े तथा रथों पर सवार, कवच बाँधे हुए, आयु में बड़े, (विजय के) यश के इच्छुक, अगणित आप लोगों के द्वारा पैदल, मृगचर्म का उत्तरीय (दुपट्टा) बाँधे हुए, छोटी आयु वाले, अकेले, इस बालक पर युद्ध में जो यह सामूहिक आक्रमण का आयोजन बाँधा गया है, इस कारण से आप सबको तथा हम लोगों को भी धिक्कार है ॥ १२ ॥

लव—(खेद के साथ) आह, क्या मुझ पर कृपा कर रहे हैं ? (शीघ्रता से सोचकर) अच्छा, समय को व्यर्थ बर्बाद होने से रोकने के लिये जृम्भकास्त्र से सेनाओं को स्तम्भित करता हूँ। (ऐसा कह कर ध्यान लगाने का अभिनय करता है।)

सुमन्त्र—तो बढ़ा हुआ सेना का कोलाहल अचानक क्यों शान्त हो रहा है ?

लव—अब इस ढीठ (चंद्रकेतु) से निपटता हूँ।

रीयम्=प्रावारो येन तस्मिन्, अपरवयसि—अपरम्=न्यूनं वयः=आयुर्यस्य तस्मिन्, अल्पवयस्के इत्यर्थः, एकस्मिन्=एकाकिनि, अत्र=अस्मिन् लवे इत्यर्थः, युधि=युद्धे, यः अयम्—य एषः, समभरः—समेषाम्=सर्वेषां भरः=समरभारः, जयार्थमुद्योगः, बद्धः=प्रारब्धः, तेन=तेन हेतुना, वः=युष्मान्, धिक्=धिक्कारः, अस्मान्=मां च, धिक्=धिक्कारोऽस्तीति शेषः। अत्र विषमालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ १२ ॥

टिप्पणी—पदातौ—पाद + √अत् + इण् + विभक्तिः, पादस्य० (६।३।५२) से पाद को पद् आदेश होता है। **नद्ध०**— √नह् √क्त + विभक्त्यादिः। **बद्धः**— √बन्ध् + क्त + विभक्तिः।

अस्मान् धिक्—युद्ध के नियम के अनुसार पैदल से पैदल को रथ पर बैठे हुए से रथारूढ़ को हाथी पर बैठे हुए से गजारूढ़ को लड़ना चाहिये। रथारूढ़ एवं गजारूढ़ का पैदल के साथ लड़ना अधर्म है। इसी प्रकार एक के साथ अनेक का युद्ध करना अधर्म है। यही कारण है कि चन्द्रकेतु अपने लोगों को धिक्कार रहे हैं।

असमान गुणवालों के युद्ध के वर्णन से यहाँ विषम अलंकार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द मन्दाक्रान्ता का लक्षण—मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—सोन्माथम्=दुख के साथ, अनुकम्पते=कृपा कर रहा है। कालहरण-प्रतिषेधाय=समय को व्यर्थ बर्बाद होने से रोकने के लिये, संस्तम्भयामि=निश्चेष्ट

सुमन्त्रः—(ससंभ्रमम् ।) वत्स । मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्त्रमामन्त्रितमिति ।

चन्द्रकेतुः—अत्र कः सन्देहः ?

व्यतिकर इव[1] भीमस्तामसो वैद्युतश्च
प्रणिहितमपि चक्षुर्ग्रस्तमुक्तं हिनस्ति ।
अथ लिखितमिवैतत्सैन्यमस्पन्दमास्ते
नियतमजि[2]तवीर्यं जृम्भते जृम्भकास्त्रम् ॥१३॥

करता हूँ, स्तम्भित करता हूँ । उल्लोलाः=बढ़ा हुआ, चञ्चल, सैन्यघोषाः=सेना के कोलाहल, प्रशाम्यन्ति=शान्त हो रहे हैं । पश्यामि=देख लेता हूँ, समझ लेता हूँ, प्रगल्भम्=ढीठ को ॥

टीका—लव इति । सोन्माथम्—उन्माथेन=खेदेन पीडया वा सहितं यथा स्यात्तथा, सखेदमिति यावत् । अनुकम्पते=दयते । कालहरणप्रतिषेधाय—कालहरणस्य=समययापनस्य प्रतिषेधाय=वारणाय, संस्तम्भयामि=निश्चेष्टानि करोमि । उल्लोलाः=अतिचञ्चलाः, सैन्यघोषाः—सैन्यस्य=बलस्य घोषाः=कोलाहलाः, प्रशाम्यन्ति=विरमन्ति । पश्यामि=अवलोकयामि, प्रगल्भम्=धृष्टम् ॥

टिप्पणी—प्रगल्भम्—प्र+ √गल्भ्+अच्+विभक्तिः ।

अन्वयः—तामसः, च, वैद्युतः, भीमः, व्यतिकरः, इव । (एतत्), प्रणिहितम्, अपि, ग्रस्तमुक्तम्, चक्षुः, हिनस्ति; अथ, एतत्, सैन्यम्, लिखितम्, इव, अस्पन्दम्, आस्ते; नियतम्, अजितवीर्यम्, जृम्भकास्त्रम्, जृम्भते ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—तामसः=अन्धकार सम्बन्धी, अन्धकार के, च=और, वैद्युतः=विद्युत् सम्बन्धी, बिजली के, भीमः=भयङ्कर, व्यतिकरः=संमिश्रण, इव=तरह, जैसा, (एतत्=यह), प्रणिहितम=ध्यानपूर्वक लगाये गये, अपि=भी, ग्रस्तमुक्तम्=पहले ग्रस्त और बाद में मुक्त, चक्षुः=नेत्र को, हिनस्ति=पीडित कर रहा है । देखने में असमर्थ बना रहा है । अथ=और, एतद्=यह, सैन्यम्=सेना, लिखितम्=चित्रलिखित, निश्चेष्ट, इव=जैसी, आस्ते=हो रही है । नियतम्=निश्चय ही, अजितवीर्यम्=अजेय, जृम्भकास्त्रम्=जृम्भकास्त्र, जृम्भक नामक आयुध, जृम्भते=प्रकट हो रहा है ॥ १३ ॥

---

१. इह, २. अमित० ।

सुमन्त्र—(घबराहट के साथ) वत्स, मैं समझता हूँ कि इस कुमार ने जृम्भकास्त्र का आवाहन किया है।

चन्द्रकेतु—इसमें क्या सन्देह ?

अन्धकार और विद्युत् के भयङ्कर सम्मिश्रण की तरह यह ध्यानपूर्वक लगाये गये भी नेत्र को पहले ग्रस्त (अर्थात् अन्धकार से आवृत) और बाद में मुक्त (अर्थात् प्रकाश के कारण अन्धकार से मुक्त) करता हुआ पीड़ित कर रहा है। अर्थात् चकाचौंध के कारण चौंधिया रहा है। और यह हमारी सेना चित्रलिखित की भाँति निश्चेष्ट हो रही है। अतः निश्चय ही अजेय जृम्भकास्त्र प्रकट हो रहा है ॥ १३ ॥

विशेष—जृम्भकास्त्रम्—जृम्भकास्त्र का प्रयोग होने पर पहले धुँआ फैल जाता था जिससे लोग देख नहीं पाते थे और फिर बाद में बिजली की कौंध जैसा प्रकाश फैलता था। इससे लोगों की आँखें चौंधिया जाती थीं। फिर जँभाई आने लगती थी जिससे सेना तन्द्रा की स्थिति में आकर निश्चेष्ट हो जाती थी ॥ १३ ॥

टीका—व्यतिकर इवेति। तामसः—तमसः=अन्धकारस्यायं तामसः = अन्धकारसम्बन्धी, च = तथा, वैद्युतः—विद्युतः = तडितः अयं वैद्युतः = विद्युत्-सम्बन्धी च, भीमः = भयङ्करः, व्यतिकर इव = सम्पर्क इव, अयमिति शेषः, प्रणिहितम्=प्रयत्नेन निर्धारितम्, अपि=च, ग्रस्तमुक्तम्—प्राक् तमसा ग्रस्तम् = आच्छादितं पश्चात् तेजसा मुक्तम्=अन्धकारादुन्मोचितम्, चक्षुः=नेत्रम्, हिनस्ति= पीडयति, विषयदर्शनेऽसमर्थं करोतीत्यर्थः। अथ=तथा, एतत्=इदम्, सैन्यम्=मम बलम्, लिखितमिव=चित्रार्पितमिव, अस्पन्दम्=निश्चेष्टम्, आस्ते=वर्तते। अतो नियतम्=निश्चितम्, अजितवीर्यम्—अजितं वीर्यम्=पराक्रमो यस्य तत् तादृशम्, जृम्भकास्त्रम्=जृम्भकाख्यं शस्त्रम्, जृम्भते=आविर्भवति। अत्रोपमोत्प्रेक्षाऽनुमानं चालङ्काराः मालिनी च छन्दः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—व्यतिकरः—वि+अति+ √कृ+अप्+विभक्तिः। तामसः—तमस्+अण्+विभक्त्यादिः। वैद्युतः–विद्युत्+अण्+विभक्त्यादिः। प्रणिहितम्–प्र+नि+ √धा+क्त+विभक्तिः। यहाँ धा को हि हो जाता है।

यहाँ प्रथम पंक्ति में इव उपमा का सूचक है। 'लिखितमिव' में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है। कार्य स्वरुप अस्पन्दता आदि के द्वारा जृम्भक अस्त्र का अनुमान होने से अनुमान अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—मालिनी। छन्द का लक्षण—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ १३ ॥

आश्चर्यमाश्चर्यम् !

पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमःश्यामैर्नभो जृम्भकै-
रुत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः ।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभि[1]स्तीर्यते
[2]लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव ।१४।।

सुमन्त्रः--कुतः पुनरस्य [3]जृम्भकाणामागमः स्यात् ?

चन्द्रकेतुः—भगवतः प्राचेतसादिति मन्यामहे ।

अन्वयः--कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैः, लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैः, विन्ध्याद्रिकूटैः, इव, पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमः श्यामैः, उत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः, जृम्भकैः, नभः, अभिस्तीर्यते ॥ १४ ॥

शब्दार्थः--कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैः=कल्प की समाप्ति पर प्रचण्ड और भयङ्कर वायु से इधर-उधर फेंके गये, लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैः=अन्दर विद्यमान बादल और बिजली से पीली गुफाओं से युक्त, विन्ध्याद्रिकूटैः=विन्ध्य पर्वत के शिखरों के, इव=समान, पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमःश्यामैः=पाताल के मध्य भाग में स्थित लता-कुञ्जों में एकत्रित अन्धकार की भाँति काले, उत्तप्तस्फुरदारकूट—कपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः = तपाये गये अतः चमकते हुए पीतल की पीली कान्ति के तुल्य देदीप्यमान कान्ति से युक्त, जृम्भकैः = जृम्भकास्त्रों के द्वारा, नभः = आकाश, अभिस्तीर्यते = व्याप्त किया जा रहा है ॥ १४ ।

टीका--पातालोदरेति । कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैः---कल्पस्य = ब्रह्मणो दिनस्य आक्षेपे=अवसाने कठोराः=दृढाःभैरवाः=भयङ्करा ये मरुतः=वायवस्तैर्व्यस्तैः = वियोजितैः, संचालितैरिति यावत्, लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैः--लीनाः—श्लिष्टाः अम्भोदाः=मेघा येषु तानि तडिद्भिः=विद्युद्भिः कडाराणि=पिङ्गलानि ('कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ'' इत्यमरः), च कुहराणि=गुहाः येषां तानि तैः, विन्ध्याद्रिकूटैः—विन्ध्याद्रेः=विन्ध्यपर्वतस्य कूटैः=शृङ्गैः, इव = यथा, पातालोदरकुंजपुंजिततमःश्यामैः—पातालस्य=रसातलस्य उदरे=मध्ये ये कुंजाः=लतागृहाणि तेषु पुंजितानि=राशीभूतानि यानि तमांसि=अन्धकाराः तानि इव श्यामानि=कृष्णवर्णानि तैः, उत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः—उत्तप्तम्=सन्तप्तं यत् आरकूटम्=रीतिः, पित्तलमिति यावत्, ("रीतिः स्त्रियामारकूटम्'' इत्यमरः),

---

१. 'वाकीर्यत', अवस्तीर्यते, २. मीलन्मेघ, ३. ०कास्त्राधिगमः, ४. 'नास्य व्यवहारोऽस्त्रेषु' पाठान्तरम् ।

आश्चर्य है, आश्चर्य है !

कल्प की समाप्ति पर प्रचण्ड और भयङ्कर वायु से इधर-उधर फेंके गये तथा अन्दर विद्यमान बादल और बिजली से पीली गुफाओं से युक्त विन्ध्य पर्वत के शिखरों के समान पाताल के मध्य भाग में स्थित लता-कुञ्जों में एकत्रित अन्धकार की भाँति काले एवं तपाये गये अतः चमकते हुए पीतल की पीली कान्ति के तुल्य देदीप्यमान कान्ति से युक्त जृम्भकास्त्रों के द्वारा आकाश व्याप्त किया जा रहा है ॥ १४ ॥

विशेष –प्रलय काल उपस्थित था। चारों ओर प्रलयकालीन मेघ दौड़ रहे थे। वायु के झकोरों के कारण मेघ विन्ध्यपर्वत की चोटियों की गुफाओं में घुस गये थे। उनमें बिजली चमक रही थी। प्रलयकालीन वायु के वेग से विन्ध्याद्रि की ये चोटियाँ उखड़ कर इधर-उधर उड़ रही थीं। ऐसी ही चोटियों के समान जृम्भ-कास्त्रों की उत्प्रेक्षा की गई है। क्योंकि जृम्भकास्त्र भी धुँआ के अन्धेरे और चमक (प्रकाश) से युक्त रहते हैं—और आकाश में इधर-उधर दौड़ते हैं ॥

कल्पाक्षेप०—एक कल्प में एक सहस्र महायुग होते हैं। एक महायुग में सत-युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं। एक कल्प ४ अरब ३२ करोड़ मानवीय वर्ष का हुआ करता है। यह ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि मानी गई है ॥ १४ ॥

सुमन्त्र—किन्तु इस बालक को जृम्भकाशास्त्र की प्राप्ति कहाँ से हुई ?

चन्द्रकेतु—हम समझते हैं कि भगवान् वाल्मीकि से हुई होगी।

तस्य यत् कपिलम्=पिशङ्गं ज्योतिः=तेजः इव ज्वलन्ती दीप्यमाना दीप्तिः=प्रभा येषां तानि तैस्तादृशैः, जृम्भकैः=जृम्भकास्त्रैः, नभः=आकाशम्, अभिस्तीर्यते=व्याप्यते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १४ ॥

टिप्पणी—**०स्फुरत०**—√स्फुर+शतृ + विभक्त्यादिः। **०ज्वलत्०**—√ज्वल्+शतृ+विभक्तिः। **०आक्षेप०**–आ+ √क्षिप्+विभक्तिः। **०व्यस्त०**–वि+ √अस्+क्त कर्मणि+विभक्तिः।

इस श्लोक की चतुर्थ पंक्ति में आया 'इव' उत्प्रेक्षा का सूचक है।

यहाँ प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—कुतः = कहाँ से, आगमः=प्राप्ति। प्राचेतसात् = वाल्मीकि से।

सुमन्त्रः—वत्स ! नैतदेवमस्त्रेषु[४] विशेषतो जृम्भकेषु । यतः—

[१]कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात्कौशिकं गताः ।
अथ तत्संप्रदायेन रामभद्रे [२]स्थिता इति[३] ॥१५॥

चन्द्रकेतुः—अपरेऽपि [४]प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः स्वयं सर्वं [५]मन्त्रदृशः पश्यन्ति ।

सुमन्त्रः—वत्स ! सावधानो भव । परागतस्ते प्रतिवीरः[६] ।

कुमारौ—(अन्योन्यं प्रति ।) अहो ! प्रियदर्शनः कुमारः । (सस्नेहानुरागं निर्वर्ण्य)

विशेषतः=विशेष रूप से ॥

टीका—सुमन्त्र इति । कुतः=कस्मात् पुरुषात्, आगमः=प्राप्तिः । प्राचेतसात्=वाल्मीकेः । विशेषतः=विशेषरूपेण ॥

टिप्पणी—आगमः—आ+√गम्+अप्+विभक्तिः ॥

अन्वयः—एते, हि, कृशाश्वतनयाः, कृशाश्वात्, कौशिकम्, गताः । अथ, तत्सम्प्रदायेन, रामभद्रे, स्थिताः, इति ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—एते=ये, हि=वस्तुतः, कृशाश्वतनयाः=कृशाश्व के पुत्र हैं, कृशाश्व के तपोबल से उत्पन्न हुए हैं, कृशाश्वात्=कृशाश्व से, कौशिकम्=विश्वामित्र को, गताः=प्राप्त हुए हैं, गये हैं । अथ=तदनन्तर, उसके बाद, तत्सम्प्रदायेन=विश्वामित्र के उपदेश से, रामभद्रे=रामचन्द्र में, स्थिताः=स्थित हो गये हैं, इति=यही परम्परा है ॥ १५ ॥

टीका—**कृशाश्वतनया** इति । एते=इमे, जृम्भकास्त्ररूपपदार्थाः, हि=वस्तुतः, कृशाश्वतनयाः—कृशाश्वस्य=कृशाश्वनाम्नो मुनेः तनयाः=पुत्राः, कृशाश्वेन तपोबलादधिगता इत्यर्थः, पुनः कृशाश्वात्=कृशाश्वनामकमुनेः, कौशिकम्=कुशिकपुत्रम्, विश्वामित्रमित्यर्थः, गताः=प्राप्ताः । अथ=अनन्तरम्, तत्सम्प्रदायेन=विश्वामित्रोपदेशेन, रामभद्रे=रामचन्द्रे, स्थिताः=विद्यमाना जाता इत्यर्थः, इति=एष एव सम्प्रदायः । अत्र पर्यायोऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १५ ॥

---

१. भृशाश्वतनयाः, २. व्यवस्थिताः, ३. अपि, ४. परमोपचीयमान, ५. हि, ६. प्रवीरः ।

सुमन्त्र—वत्स, अस्त्रों के विषय में और विशेष रूप से जृम्भकास्त्रों के विषय में यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि—

ये जृम्भकास्त्र वस्तुतः कृशाश्व मुनि के पुत्र हैं (अर्थात् कृशाश्व मुनि इन्हें अपने तपोबल से प्राप्त किये हैं)। फिर मुनि कृशाश्व से कुशिकपुत्र (विश्वामित्र) को प्राप्त हुए हैं। तदनन्तर विश्वामित्र के उपदेश से रामचन्द्र में स्थित हो गये हैं। यही परम्परा है (इति)॥ १५॥

चन्द्रकेतु—अपने अन्दर बढ़े हुए सत्त्वगुण के प्रकाश वाले दूसरे भी मन्त्रद्रष्टा ऋषि स्वयं ही (अर्थात् गुरु के उपदेश के विना ही) सब कुछ साक्षात्कार कर लेते हैं।

सुमन्त्र—वत्स, सावधान हो जाओ। तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी वीर आ पहुँचा है।

दोनों कुमार—(एक दूसरे के प्रति) अहो कुमार देखने में प्रिय हैं (अर्थात् अत्यन्त सुन्दर हैं)। स्नेह और अनुराग के साथ ध्यान से देखकर)

टिप्पणी—कृशाश्वतनया—महर्षि कृशाश्व तपोधन थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से जृम्भकास्त्रों को प्राप्त किया था। अतः इन्हें कृशाश्व का पुत्र कहा गया है।

गताः—√गम्+क्त+विभक्तिः। **स्थिताः** √स्था+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में जृम्भक अस्त्रों का अनेक लोगों के पास जाना वर्णित है। अतः एक के अनेक गत होने से पर्याय अलंकार है।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप्॥ १५॥

शब्दार्थः—अपरे=दूसरे, प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः—अपने अन्दर बढ़े हुए सत्त्वगुण के प्रकाशवाले, मन्त्रदृशः=मन्त्रद्रष्टा, परागतः=आ पहुँचा है, प्रतिवीरः=प्रतिद्वन्द्वी वीर। प्रियदर्शनः=सौम्यमूर्ति, देखने में प्रिय हैं।

टीका—चन्द्रकेतुरिति। अपरे=भवदुक्तेभ्योऽन्ये, प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः—प्रचीयमानः=उपचीयमानः सत्त्वस्य=सत्त्वगुणस्य प्रकाशः=आविर्भावो येषु ते तादृशाः, स्वयम्=उपदेष्टारं विनैव, मन्त्रदृशः=मन्त्रद्रष्टारः, पश्यन्ति=साक्षात्कुर्वन्ति। सावधानः=अनन्यमनाः, परागतः=प्रत्यागतः, प्रतिवीरः=प्रतिद्वन्द्वी वीरः। अन्योन्यम्=परस्परम्।

टिप्पणी—॰प्रचीयमान॰—प्र+√चि+कर्म॰ शानच्+विभक्तिः। मन्त्रदृशः—मन्त्र+√दृश्+क्विप्+विभक्तिः। परागतः—परा+आ+√गम्+क्त (कर्तरि)+विभक्तिः। निर्वर्ण्य—निर्+√वर्ण्+णिच्+ल्यप्+विभक्त्यादिः॥

यदृच्छासंवादः किमु[1] गुणगणानामतिशयः
पुराणो वा जन्मान्तरनिबिडबद्धः[2] परिचयः ।
निजो वा संबन्धः किम विधिवशात्कोऽप्यविदितो
ममैतस्मिन्दृष्टे हृदयमवधानं रचयति ।। १६ ।।

सुमन्त्रः—भूयसां[3] जीविनामेव धर्म एषः, यत्र स्वरसमयी कस्यचित्क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति। तदप्रतिसङ्ख्येयनिबन्धनं प्रमाणमामनन्ति।

अन्वयः—यदृच्छासंवादः, किमु, गुणगणानाम्, अतिशयः, (किमु); वा, जन्मान्तरनिबिडबद्धः, पुराणः, परिचयः; वा, विधिवशात्, अविदितः, कोऽपि, निजः, सम्बन्धः, किमु; एतस्मिन्, दृष्टे, मम, हृदयम्, अवधानम्, रचयति ।। १६ ।।

शब्दार्थः—यदृच्छासम्वादः = दैवसंयोग से मिलन, आकस्मिक मिलन, किमु= क्या; गुणगणानाम् = गुण-समूहों का, अतिशयः=उत्कर्ष, (किमु = क्या); वा= अथवा, जन्मान्तरनिबिडबद्धः=पूर्व जन्म का घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाला, पुराणः= पुराना, परिचयः=परिचय है, वा = अथवा, विधिवशात्=भाग्यवश, अविदितः= अज्ञात, कोऽपि=कोई, निजः=अपना, सम्बन्धः=सम्बन्धी, किमु=क्या है ? एतस्मिन्= इसके, दृष्टे=दिखलाई पड़ने पर, मम=मेरा, हृदयम्=हृदय, अवधानम्=एकाग्रता को, रचयति=धारण कर रहा है ।। १६ ।।

टीका—यदृच्छासंवाद इति । यदृच्छासम्वादः—यदृच्छया = दैवसंयोगेन संवादः = समागमः, यदृच्छया=दैवेन संवादः=एकरूपं यस्य तथोक्तो वा, रामादिगुणगणैकरूप इति हृदयम्, किमु=किम् । गुणगणानाम्=शौर्यादिगुणसमूहानाम्, अतिशयः=आधिक्यम्, किमु=किम्, वेति विकल्पे, जन्मान्तरनिबिडबद्धः—जन्मान्तरेषु= अन्येषु जन्मसु, निबिडबद्धः=दृढारूढः, पुराणः=प्राचीनः, परिचयः = संस्तवो वासना वा किमु; वा=अथवा, विधिवशात् = भाग्यवशात्, दैवेच्छयेत्यर्थः, अविदितः=अज्ञातः, कोऽपि=कश्चन, निजः = आत्मीयः, सम्बन्धः=जननसम्बन्धः, किमु=किम्, एतस्मिन्= अस्मिन्, लवे चन्द्रकेतौ वा, दृष्टे=अवलोकिते, मम = मे, लवस्य चन्द्रकेतोर्वा, हृदयम्=चेतः, अवधानम्=व्यापारान्तररहितताम्, एकाग्रतामिति यावत्, रचयति = करोति । अत्र सन्देहःकाव्यलिङ्गश्चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ।। १६ ।।

टिप्पणी—०संवादः—संवाद का अर्थ होता है—सम्भाषण, मिलन और मिलती-जुलती आकृति । क्या संयोगवश हम दोनों की आकृति एक जैसी है ?—यह अर्थ भी किया जा सकता है ।

---

१. किमु किमु गुणानाम्, २. बन्धः, ३. भूयसा जीविधर्म एष यद्रसमयी ।

क्या यह दैवसंयोग से मिलन है ? क्या यह गुण-समूहों का उत्कर्ष है ? अथवा पूर्व जन्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला पुराना परिचय है ? अथवा भाग्य-वश अज्ञात कोई अपना सम्बन्धी है ? इसके दिखलाई पड़ने पर मेरा हृदय एकाग्रता को धारण कर रहा है (अर्थात् इसकी ओर आकृष्ट हो रहा है) ॥ १६ ॥

सुमन्त्र—बहुत से प्राणियों का यह स्वभाव है कि किसी का किसी के प्रति स्वाभाविक आनन्दमय प्रेम हो ही जाता है, जिसके विषय में लोगों की कहावत है– "पुतलियों की मित्रता" अथवा "जन्मकालीन नक्षत्रों का मेल" या "आँखों का प्रेम।" ऐसे प्रेम को अनिर्वचनीय बन्धन वाला और प्रामाणिक कहते हैं।

अतिशयः—अति + √शी + अच् + विभक्तिः ।

०बद्धः—√बन्ध + क्त + विभक्तिः । परिचयः = परि + √चि + अच् + विभक्तिः ।

सम्बन्धः—यहाँ सम्बन्धी के अर्थ में सम्बन्ध शब्द का लाक्षणिक प्रयोग किया गया है।

इस श्लोक में प्रथम तीन पदों में किमु आदि के द्वारा सन्देह अलङ्कार है । हृदय का एक दूसरे की ओर आकृष्ट होना कारण है । अतः चौथी पंक्ति में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द शिखरिणी का लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ १६ ॥"

शब्दार्थः—भूयसाम्=बहुत से, जीविनाम्=प्राणियों का, स्वरसमयी=आत्मिक आनन्दयुक्त, आनन्दमय, स्वाभाविक, अकृत्रिम, प्रीतिः=प्रेम, उपचारः=कहावत, परम्परागत प्रवाद, तारामैत्रकम्=आँख की पुतलियों का प्रेम, अथवा जन्मकालीन नक्षत्रों का मेल, चक्षूरागः=आँख देखे का प्रेम, अप्रतिसङ्ख्येयनिबन्धनम्=अनिर्वचनीय बन्धन वाला, आमनन्ति=कहते हैं, मानते हैं ॥

टीका—सुमन्त्र इति । भूयसाम्=बहूनाम्, जीविनाम्=प्राणिनाम्, स्वरसमयी=आत्मानन्दमयी, आकृत्रिमा वा, प्रीतिः=प्रेम, यत्र=यस्यां प्रीतौ, उपचार=व्यवहारः, तारामैत्रकम्-तारयोः=कनीनिकयोः मैत्रकम्=सख्यम्, तारामैत्री वा, चक्षूरागः—चक्षुषोः=नेत्रयोः रागः=प्रीतिः, अप्रतिसंख्येयनिबन्धनम्—अप्रतिसंख्येयम्=अनिर्वचनीयं निबन्धनम्=मूलं यस्य तत्, प्रमाणम्=यथार्थानुभवविषयम्, आमनन्ति=असकृद्वदन्ति, कथयन्तीति यावत् ॥

टिप्पणी—भूयसाम्—भूयस्—बहु + ईयसुन् + विभक्तिः । उपचारः—उप + √चर् + घञ् + विभक्त्यादिः ॥

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया ।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्त[१]र्भूतानि सीव्यति ।। १७ ।।

कुमारौ—(अन्योन्यमुद्दिश्य)

एतस्मिन्मसृणितराजपट्टकान्ते,
मोक्तव्याः कथमिव सायकाः शरीरे ?
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा–
दुन्मी[२]लत्पुलककदम्बमङ्गमास्ते ।। १८ ।।

अन्वयः—यः, अहेतुः, पक्षपातः, (भवति), तस्य, प्रतिक्रिया, न, अस्ति; हि, सः, स्नेहात्मकः, तन्तुः, (अस्ति, यः), भूतानि, अन्तः, सीव्यति ।। १७ ।।

शब्दार्थः—यः=जो, अहेतुः=अकारण, पक्षपातः=पक्षपात, प्रेम, (भवति=होता है), तस्य=उसका, प्रतिक्रिया=प्रतिकार, न=नहीं, अस्ति=है । हि=क्योंकि, सः=वह, स्नेहात्मकः = प्रेमरूपी, तन्तुः = धागा, (अस्ति=है, यः=जो), भूतानि= प्राणियों के, अन्तः=हृदय को, सीव्यति = सी देता है ।। १७ ।।

टीका—**अहेतुरिति** । यः, अहेतुः—अविद्यमानो हेतुर्यस्य सोऽहेतुः = अकारणः, पक्षपातः=आसक्तिः, प्रेम वा, (भवति=जायते), तस्य=अहेतुकपक्षपातस्येत्यर्थः, प्रतिक्रिया=प्रतिविधानम्, नास्ति=न वर्तते । हि=यतः, सः=अहेतुकपक्षपात इत्यर्थः, स्नेहात्मकः—स्नेहः=प्रेम आत्मा=तत्त्वं यस्य सः, प्रेमरूप इति यावत्, तन्तुः=सूत्रम्, भूतानि=प्राणिनः, अन्तः=मर्माणि, सीव्यति=स्यूतानि करोति । अत्रार्थान्तरन्यासो रूपकं चालंकारौ । अनुष्टुप् छन्दः ।। १७ ।।

टिप्पणी—**प्रतिक्रिया**—प्रति + √कृ + श (स्त्रियां भावे) + विभक्तिः । **स्नेहात्मकः**—स्नेह + आत्मा + क + विभक्तिः ।

इस श्लोक में पूर्वार्धगत कार्य का उत्तरार्धगत कारण से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । स्नेहरूपी तन्तु में रूपक है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ।। १७ ।।

अन्वयः—मसृणितराजपट्टकान्ते, एतस्मिन्, शरीरे, सायकाः, कथमिव, मोक्तव्याः; यत्प्राप्तौ, परिरम्भणाभिलाषात्, मम, अङ्गम्, उन्मीलत्पुलककदम्बकम्, आस्ते ।। १८ ।।

शब्दार्थः—मसृणितराजपट्टकान्ते=चिकने एवं सुकोमल मखमल की तरह मनोहर, एतस्मिन्=इस, शरीरे=शरीर पर, सायकाः=वाण, कथमिव=कैसे, मोक्तव्याः= छोड़े जा सकते हैं ? यत्प्राप्तौ = जिसके मिलने पर, परिरम्भणाभिलाषात्=आलिङ्गन की इच्छा से, मम = मेरा, अङ्गम्=अङ्ग, शरीर, उन्मीलत्पुलककदम्बम्=निकल रहे हैं रोमांच के समूह जिसमें ऐसा, रोमाञ्चित, आस्ते=हो रहा है ।। १८ ।।

---

१. अन्तर्मर्माणि, २. आबद्धोत्पु० ।

जो अकारण प्रेम होता है, उसका प्रतिकार नहीं है, क्योंकि वह प्रेम रूपी धागा है, जो प्राणियों के हृदय को सी देता है ॥ १७ ॥

विशेष—वस्त्र के दो टुकड़ों को सीकर एक बना देने के लिये सामान्य धागे का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार दो प्राणियों के हृदयों को जोड़कर एक बना देने वाला प्रेमरूपी धागा है। अर्थात् प्रेम ही दो हृदयों को मिलाकर एक कर देता है ॥ १७ ॥

दोनों कुमार—(एक दूसरे को लक्ष्य करके)

चिकने एवं सुकोमल मखमल की तरह मनोहर इस शरीर पर बाण कैसे छोड़े जा सकते हैं? जिसके मिलने पर आलिङ्गन की इच्छा से मेरा शरीर रोमाञ्चित हो रहा है ॥ १८ ॥

विशेष--जिस सुकोमल सुन्दर शरीर को देखकर उससे लिपट जाने की इच्छा से शरीर रोमाञ्चित हो उठे उस पर बाणों की बौंछार कैसे की जा सकती है? यही सोच रहे हैं लव एवं चन्द्रकेतु एक दूसरे के प्रति ॥ १८ ॥

टीका—एतस्मिन्निति। मसृणितराजपट्टकान्ते—मसृणितः = मसृणः कृतः, संस्कारविशेषेण संघट्टित इत्यर्थः, यो राजपट्टः = राजकीयो वस्त्रविशेषः, स इव कान्तम् = कमनीयं तस्मिन्, एतस्मिन् = अस्मिन्, शरीरे = देहे, लवस्य चन्द्रकेतोर्वा शरीर इत्यर्थः, सायकाः = शराः, कथमिव = केन प्रकारेण, मोक्तव्याः = प्रहर्तव्याः? एतादृशे सुकोमले शरीरे बाणप्रहारोऽनुचित इत्यर्थः। कस्मादेतादृशी भावनोत्पद्यत इति जिज्ञासायामाह—यत्प्राप्ताविति। यत्प्राप्तौ—यस्य देहस्य प्राप्तौ = अधिगते, परिरम्भणाभिलाषात्—परिरम्भणस्य = आलिंगनस्य अभिलाषात् = इच्छावशात्, मम = मे, अङ्गम् = देहावयवः, उन्मीलत्पुलककदम्बकम्—उन्मीलत् = उद्गच्छत् पुलकानाम् = रोमाञ्चानां कदम्बकम् = समूहो यस्मिन् तत्, तादृशम्, आस्ते = वर्तते। अत्र लुप्तोपमा काव्यलिङ्गञ्चालङ्कारौ। प्रहर्षिणी च छन्दः ॥ १८ ॥

टिप्पणी—**मसृणित०**—मसृण + णिच् + क्त + विभक्तिः। **मोक्तव्याः**—√मुच् + तव्यत् + विभक्तिः। **परिरम्भण०**—परि + √रभ + ल्युट् (अन्) + विभक्तिः। **अभिलाषात्**—अभि + √लष् + घञ् + विभक्तिः।

उन्मीलत०—उत् + √मील् + शतृ + विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में 'राजपट्टकान्ते' में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है। राजपट्टवत् कान्तता परिरम्भणका कारण है, अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त प्रहर्षिणी छन्द का लक्षण—म्याशाऽभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ॥१८॥

[1]किंचाक्रान्तकठोरतेजसि गतिः का नाम शस्त्रं विना ?
शस्त्रेणापि हि तेन किं न विषयो जायेत यस्येदृशः ।
किं वक्ष्यत्ययमेव[2] युद्धविमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे
वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते ॥ १९ ॥

सुमन्त्रः—(लवं निर्वर्ण्य सास्रमात्मगतम् ।) हृदय ! किमन्यथा [3]परिप्लवसे ?

मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो [4]हृतम् ।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसव[5]स्योद्भवः कुतः ? ॥ २० ॥

अन्वयः—किं च, आक्रान्तकठोरतेजसि, शस्त्रं विना, का नाम, गतिः ? हि, तेन, शस्त्रेण, अपि, किम्, यस्य, विषयः, ईदृशः, न, जायेत ? आयुधे, उद्यते, अपि, युद्धविमुखम्, माम्, अयम्, एव, किम्, वक्ष्यति ? हि, दारुणरसः, वीराणाम्, समयः, स्नेहक्रमम्, बाधते ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—किं च=किन्तु, आक्रान्तकठोरतेजसि=प्राप्त किया है पूर्ण तेज को जिसने ऐसे व्यक्ति के विषय में, पूर्ण तेजस्वी व्यक्ति के प्रति, शस्त्रं विना=शस्त्र के अतिरिक्त, का नाम=कौन-सा, गतिः=उपाय है ? हि=निश्चय ही, तेन=उस, शस्त्रेण=शस्त्र से, अपि=भी, किम्=क्या लाभ ? यस्य=जिसका, विषयः=लक्ष्य, ईदृशः=ऐसा, न जायेत=न हो, न बने, आयुधे=अस्त्र-शस्त्र के, उद्यते=उठने पर, अपि=भी, युद्धविमुखम्=युद्ध से विरत; माम्=मुझको, अयम्=यह, एव=ही, किम्=क्या, वक्ष्यति=कहेगा ? हि=क्योंकि, दारुणरसः=वीररस से युक्त, वीराणाम्=वीरों का, समयः=आचार, स्नेहक्रमम्=प्रेम-व्यवहार को, बाधते=रोक देता है ॥ १९ ॥

टीका—किं चाक्रान्तेत्यादिः । किं च=किन्तु पूर्वोक्तादन्यदित्यर्थः, आक्रान्तकठोरतेजसि—आक्रान्तम्=प्राप्तं कठोरम्=पूर्णं तेजः=पराभिभवनसामर्थ्यं येन तस्मिन् विषये, शस्त्रं विना=शस्त्रप्रयोगाद् ऋते, शस्त्रसाधनकयुद्धादृत इत्यर्थः, का नाम=को नाम, गतिः=उपायः ? किं कर्तव्यम् ? न किमपीत्यर्थः । तर्हि शरीरसौभाग्यानुरोधेन शस्त्रन्यास एव क्रियतामित्यत्राह—शस्त्रेणेति । तेन=तादृशेन, शस्त्रेण=आयुधेन, अपि=च, किम्=किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः, यस्य शस्त्रस्य, विषयः=लक्ष्यम्, ईदृशः=एतादृशो वीरः, न जायेत=न भवेत् ? तर्हि सौकुमार्य-वीर्ययोः प्राबल्यदौर्बल्यविचारेण सौकुमार्यानुसारेण शस्त्रन्यासः क्रियतामित्यत्राह—आयुधे=प्रहरणे, उद्यते=प्रहारार्थमुत्थापिते, अपि=च, युद्धविमुखम्—युद्धात्=संग्रामात्, विमुखम्=पराङ्मुखम्, माम्=लवं चन्द्रकेतुं वा, अयमेव=एष चन्द्रकेतुर्लवो वा, किं वक्ष्यति=किं कथयिष्यति ? हि=यतः, दारुणरसः—दारुणः=क्रूरो रसः=वीररसो यस्मिन् सः, तादृशः, वीराणाम्=

---

१. किन्त्वा, २. मेवमद्य, ३. परिकल्पसे, ४. हतम्, ५. प्रसूनस्यागमः ।

किन्तु पूर्ण तेजस्वी व्यक्ति के प्रति शस्त्र के बिना और कौन-सा उपाय है ? निश्चय ही उस शस्त्र से भी क्या लाभ, जिसका लक्ष्य ऐसा वीर न बने ? (युद्ध के लिये) अस्त्र-शस्त्र के उठने पर भी मुझे युद्ध से विरत देखकर यह (बालक) ही क्या कहेगा ? क्योंकि वीर रस से युक्त वीरों का आचार प्रेम-व्यवहार को रोक देता है ॥ १९ ॥

विशेष—युद्धार्थ समराङ्गण में उपस्थित वीरों के आचार में प्रेम-व्यवहार के लिये स्थान नहीं होता है । अतः युद्ध ही कर्तव्य है ॥ १९ ॥

सुमन्त्र—(लव को ध्यान से देख कर, आँखों में आँसू भर कर, अपने आप) हृदय, क्यों दूसरे प्रकार की कल्पना में बह रहे हो ?

(पुत्ररूपी) मनोरथ का जो (सीतारूप) मूल कारण है वह दैव के द्वारा पहले से ही छीन लिया गया है । लता के पहले ही काट दी जाने पर फूल-फल की उत्पत्ति कहाँ से हो सकती है ? ॥ २० ॥

विशेष—सुमन्त्र ने लव को देखा । लव की आकृति ठीक-ठीक रामचन्द्र जी से मिलती-जुलती थी । एक क्षण के लिये उनके मनमें आया कि कदाचित् यह सीता का ही पुत्र हो । इसे राम का ही पुत्र होना चाहिये । किन्तु दूसरे ही क्षण उनके मन ने कहा कि जब सीता ही इस संसार में नहीं हैं, तो उनका पुत्र कहाँ से हो सकता है ? जब लता ही काट दी गई तो फिर फूल-फल कहाँ से हो सकता है ? ॥२०॥

शूराणाम्, समयः=आचारः, ("समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः" इत्यमरः), स्नेहक्रमम्–स्नेहस्य=प्रेम्णः क्रमम्=परिपाटीम्, स्नेहव्यापारपरिपाटीमित्यर्थः, बाधते=रुणद्धि । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—**आक्रान्त०**—आ + √क्रम् + क्त + विभक्तिः । **उद्यते**–उद् + √यम् + क्त + विभक्तिः ।

यहाँ चतुर्थ पंक्ति में सामान्य का वर्णन है । सामान्य के द्वारा प्रथम तीन पंक्तियों में वर्णित विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

इस श्लोक में वर्णित शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—मनोरथस्य, यत्, बीजम्, तत्, दैवेन, आदितः, हृतम्; लतायाम्, पूर्वलूनायाम्, (सत्याम्), प्रसवस्य, उद्भवः, कुतः ॥ २० ॥

शब्दार्थः—मनोरथस्य=(पुत्र रूपी) मनोरथ का, यत्=जो, बीजम्=बीज है, मूल कारण है, तत् = वह, दैवेन=दैव के द्वारा, आदितः = पहले से ही, हृतम् = छीन लिया गया है । लतायाम्=लता के, पूर्वलूनायाम् (सत्याम्)=पहले ही काट दी जाने पर, प्रसवस्य = फूल की, फल की, उद्भवः = उत्पत्ति, कुतः = कहाँ से (हो सकती है) ॥ २० ॥

चन्द्रकेतुः—अवतराम्यार्य सुमन्त्र ! स्यन्दनात् ।

सुमन्त्रः—कस्य हेतोः ?

चन्द्रकेतुः—एकस्तावदयं वीरपुरुषः पूजितो भवति, अपि च खल्वार्य ! क्षत्रधर्मः [1]परिपालितो भवति । 'न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्तो'ति [2]शास्त्रविदः परिभाषन्ते ।

सुमन्त्रः—(स्वगतम् ।) आः ! कष्टां दशामनुप्रपन्नोऽस्मि ।

कथं [3]हीदमनुष्ठानं मादृशः प्रतिषेधतु ।
कथं [4]वाऽभ्यनुजानातु साहसैकरसां क्रियाम् ॥ २१ ॥

टीका--मनोरथस्येति । मनोरथस्य='अयं बालको रामपुत्रो भविष्यति' इत्यभिलाषस्य, यत् बीजम्=यत्कारणम्, तद्बीजम्, दैवेन=भाग्येन, विधात्रेत्यर्थः, आदितः=पूर्वमेव, हृतम्=अपहृतम्; लतायाम्=व्रतत्याम्, पूर्वलूनायाम्-पूर्वम्=प्रथमं लूना=कृत्ता तस्यां सत्याम्, प्रसवस्य=पुष्पस्य फलस्य च, उद्भवः=उत्पत्तिः, कुतः= कस्मात्, भवितुमर्हतीति । अयमाशयः-प्रसवात्प्रागेव हिंस्रश्वापदसङ्कुले वने परित्यक्तायाः सीताया लवरूपापत्योत्पत्तिर्न सम्भाव्यत इति । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी—किमन्यथा—सुमन्त्र के कहने का भाव यह है कि—'अरे मेरे मन, लव को सीता का पुत्र समझ कर क्यों उद्विग्न हो रहे हो ? सीता तो नष्ट हो चुकी हैं । अतः उनके पुत्र की कल्पना ही व्यर्थ है ।

बीजम्—पुत्ररूपी अङ्कुर के लिये सीता ही बीज थीं ।

लूनायाम्— √लू+क्त+विभक्तिः । यहाँ ल्वादिभ्यः (८।२।४४) से त को न हो जाता है ।

प्रसवस्य—प्र+√सू+अप्+विभक्तिः ।

उद्भवः—उद्+ √भू+अप् (अ)+विभक्तिः ।

यहाँ पूर्वार्द्ध के दृष्टान्त रूप में उत्तरार्द्ध है । अतः बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अवतरामि=उतर रहा हूँ, स्यन्दनात्=रथ से । पूजितः=सत्कृत, सम्मानित, रथिनः=रथारूढ, रथ पर सवार, पादचारम्=पदाति को, पैदल को, अभियुञ्जन्ति=आक्रान्त करते हैं, युद्ध करते हैं । अनुप्रपन्नः=प्राप्त ॥

---

१. समनुगतो, २. शास्त्राजीवः, ३. न्याय्यम्, ४. वाप्य० ।

चन्द्रकेतु—आदरणीम सुमन्त्र जी, (अब) मैं रथ से उतर रहा हूँ।

सुमन्त्र—किस लिये ?

चन्द्रकेतु—पहली बात तो यह है कि—(ऐसा करने से) इस वीर पुरुष का सम्मान होता है। आर्य, और दूसरी बात यह है कि क्षत्रिय-धर्म का पालन भी होता है। शास्त्रवेत्ताओं का कथन है कि—"रथारूढ़ पैदल से युद्ध नहीं करते हैं।"

विशेष:—अवतरामि—मनु का कथन है कि—

न हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।

(मनु० ७।९१)

चतुर्वर्गचिन्तामणि का कथन है—रथी च रथिना सार्धं पदातिश्च पदातिना। कुञ्जरस्थो गजस्थेन योद्धव्यो भृगुनन्दन ॥

सुमन्त्र:—(अपने आप) आह, बड़ी कठिन दशा में पड़ गया हूँ।

क्योंकि मेरे जैसा व्यक्ति इस न्यायोचित कार्य को कैसे रोके ? अथवा साहस ही है मुख्य रस जिसका ऐसी क्रिया का (अर्थात् युद्ध का) कैसे अनुमोदन करे ॥२१॥

टीका—चन्द्रकेतुरिति। स्यन्दनात्=रथात्, अवतरामि=अधो गच्छामि। पूजितः=सत्कृतः, रथिनः=स्यन्दनारूढाः, पादचारम्, अभियुञ्जन्ति=युद्धयन्ति, शास्त्रविदः=मनुप्रभृतयो धर्मशास्त्रकाराः। कष्टाम्=दुःखमयीम्, दशाम्=अवस्थाम्, अनुप्रपन्नः=प्राप्तः ॥

टिप्पणी—पूजितः—√पूज्+णिच्+क्त+विभक्तिः। अनुप्रपन्नः—अनु+प्र+√पद्+क्त+विभक्तिः। न्याय्यम्—न्यायादनपेतं न्याय्यं न्याय+यत्+विभक्तिः ॥

अन्वयः—हि, मादृशः, इदम्, अनुष्ठानम्, कथम्, प्रतिषेधतु; वा, साहसैकरसाम्, क्रियाम्, कथम्, अभ्यनुजानातु ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—हि=क्योंकि, मादृशः=मेरे जैसा व्यक्ति, इदम्=इस, अनुष्ठानम्=न्यायोचित कार्य को, कथम्=कैसे, प्रतिषेधतु=रोके, वा=अथवा, साहसैकरसाम्=साहस ही है मुख्य रस जिसका ऐसी, क्रियाम्=क्रिया का, कथम्=कैसे, अभ्यनुजानातु=अनुमोदन करे ॥ २१ ॥

टीका—कथं हीति। हि=यतः, मादृशः=मत्सदृशः, इदम्=एतत्, युद्धरूपमिति यावत्, अनुष्ठानम्=क्षात्रोचितं धर्मकार्यम्, न्याय्यं कार्यमिति यावत्, कथम्=केन प्रकारेण, प्रतिषेधतु=निवारयतु ? वेति विकल्पे, साहसैकरसाम्—साहसम्=सहसा प्रवृत्तिः एव एकः=मुख्यः रसः=रागो ("शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः" इत्यमरः) क्रियाम्=कार्यम्, युद्धकार्यमित्यर्थः, कथम्=केन प्रकारेण, अभ्यनुजानातु—अनुमन्येत। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २१ ॥

चन्द्रकेतुः—यदा तातमिश्रा अपि पितुः प्रियसखं [1]त्वामर्थसंशयेषु पृच्छन्ति, तत्किमार्यो विमृशति ?

सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! एवं यथाधर्ममभिमन्यसे ।

एष सांग्रामिको न्याय एष धर्मः सनातनः ।
इयं हि रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः ॥ २२ ॥

चन्द्रकेतुः—अप्रतिरूपं वचनमार्यस्य ।

इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च ।
भवन्त एव जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम् ॥ २३ ॥

टिप्पणी—कथं हीदमनुष्ठानम्—क्षत्रिय का कार्य है चुनौती मिलने पर युद्ध करना । अतः रोकना भी उचित नहीं है । युद्ध का अनुमोदन करने पर चन्द्रकेतु के प्राणों को संकट में डालना है । अतः हाँ करने में भी संकोच हो रहा है ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—तातमिश्राः=पूज्य पितृचरण, पितुः=पिता (दशरथ) के, प्रियसखम्=प्रियमित्र, अर्थसंशयेषु=संशयवाले कार्यों में, पृच्छन्ति=पूछते हैं, राय लेते हैं, विमृशति=सोच रहे हैं, विचार कर रहे हैं । यथार्थम्=धर्म के अनुसार, अभिमन्यसे=समझ रहे हो ॥

टीका—चन्द्रकेतुरिति । तातमिश्राः = पूज्याः पितरो रामादय इति भावः, पितुः=स्वजनकस्य दशरथस्येत्यर्थः, प्रियसखम्—प्रियः=अभीप्सितः सखा = मित्रं प्रियसखस्तम्, अर्थसंशयेषु=कर्तव्याकर्तव्यसन्देहेषु आर्यः=पूज्यः, पृच्छन्ति=मन्त्रयन्ति, विमृशति=विचारयति । आयुष्मन्=चिरञ्जीविन्, यथाधर्मम्—धर्मम्=सनातनीं मर्यादाम् अनतिक्रम्येति यथाधर्मम्, अभिमन्यसे=जानासि ॥

टिप्पणी—तातमिश्राः—इसका साभिप्राय अर्थ है—आदरणीय पितृचरण । मिश्र शब्द आदर का अभिव्यञ्जक है । यह प्रायः बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है ।

विमृशति—चन्द्रकेतु के कहने का भाव यह है कि आपकी राय तो बड़े-बड़े लोग लिया करते हैं । फिर इस प्रसङ्ग में आप मुझे आज्ञा देने में हिचक क्यों रहे हैं । आप चिन्ता छोड़ कर मुझे आज्ञा दीजिये । वस्तुतः चन्द्रकेतु लव के पराक्रम को देखकर लड़ने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं । अतः इस प्रकार की बातें कर रहे हैं ॥

अन्वयः—एषः, सांग्रामिकः, न्यायः, एषः, सनातनः, धर्मः; हि, इयम्, रघुसिंहानाम्, वीरचारित्रपद्धतिः ॥ २२ ॥

---

१. प्रियसखमर्थ० ।

चन्द्रकेतु—जब कि (राम लक्ष्मण आदि) पूज्य पितृचरण भी पिता (दशरथ) के प्रिय मित्र आप से संशयवाले कार्यों में पूछते हैं तो आप इस समय क्या सोच रहे हैं ?

सुमन्त्र—चिरञ्जीविन्, इस प्रकार तुम क्षात्रधर्म के अनुसार ही विचार कर रहे हो।

यह युद्ध-सम्बन्धी न्याय है, यही अति प्राचीन कालसे चला आ रहा धर्म है। निश्चय ही यह रघुकुल के शेरों की वीरोचित आचार की परम्परा है ॥ २२ ॥

चन्द्रकेतु—आपका कथन अनुपम है।

आप ही इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और रघुवंशियों की कुल-परम्परा को भी जानते हैं ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—एषः=यह, सांग्रामिकः=युद्ध का, युद्ध सम्बन्धी, न्यायः=न्याय है, एषः=यही, सनातनः=अति प्राचीन काल से चला आ रहा, धर्मः=धर्म है; हि=निश्चय ही, इयम्=यह, रघुसिंहानाम्=रघुकुल के शेरों की, वीरचारित्रपद्धतिः=वीरोचित आचार की परम्परा है ॥ २२ ॥

टीका--**एष सांग्रामिक इति**। एषः=अयम्, सांग्रामिकः—संग्रामे=युद्धे भवः सांग्रामिकः=युद्धसम्बन्धी, न्यायः=समीचीना नीतिः, एषः=अयम्, सनातनः=अति-प्राचीनकालादागतः, धर्मः=आचारः, अस्तीति शेषः। हीति निश्चये, इयम्=एषा, रघुसिंहानाम्—रघवः=रघुकुलोत्पन्नाः क्षत्रियाः हिंसाः=व्याघ्रा इवेति रघुसिंहास्तेषाम्, वीरचारित्रपद्धतिः—चरित्रमेव चारित्रं स्वार्थेऽण्, वीराणाम्=शूराणां चारित्रस्य=आचारस्य पद्धतिः=पद्भ्यां हन्यत इति पद्धतिः=परम्परा, वर्तत इति क्रियाशेषः अनुष्टुप् छन्दः ॥ २२ ॥

टिप्पणी—**सांग्रामिकः**—संग्रामे भवः, संग्राम+ठक् (इक्)+विभक्त्यादिः। **चारित्रम्**—चरित्र+अण्+विभक्त्यादिः। **पद्धतिः**—पाद+हतिः, √हन्+क्तिन्+विभक्तिः ॥

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ २२ ॥

अन्वयः—भवन्तः, एव, इतिहासम्, पुराणम्, च, धर्मप्रवचनानि, च, रघूणाम्, कुलस्थितिम्, च, जानन्ति ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—भवन्तः=आप, एव=ही, इतिहासम्=इतिहास को, पुराणम्=पुराण को, च=और, धर्मप्रवचनानि=धर्मशास्त्र, च=और, रघूणाम्=रघुवंशियों की, कुल-स्थितिम्=कुलपरम्परा को, च=भी, जानन्ति=जानते हैं ॥ २३ ॥

टीका--**इतिहासमिति**। भवन्त एव=आर्याः सुमन्त्रवर्या एव, इतिहासम्=ऐतिह्यम्, पुराणम्=पञ्चलक्षणम्, ब्राह्मादिकमिति भावः, च=तथा, धर्मप्रवचनानि=

सुमन्त्रः—(सस्नेहास्रं परिष्वज्य ।)

जातस्य ते पितुरपीन्द्रजितो [1]निहन्तु-
र्वत्सस्य वत्स ! कति नाम दिनान्यमूनि ?
तस्याप्यपत्यमनुतिष्ठति [2]वीरधर्मं
दिष्टचागतं दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम् ॥ २४ ॥

चन्द्रकेतुः—(सकष्टम् ।)

'अप्रतिष्ठे [3]कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः' ?
इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे ॥२५॥

धर्मशास्त्राणि, च=अपि च, रघूणाम्=रघुकुलोत्पन्नानां राज्ञाम्, कुलस्थितिम्—कुलस्य=वंशस्य स्थितिम्=मर्यादाम्, च=अपि, जानन्ति=अवगच्छन्ति । अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २३ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक में इतिहास, पुराण आदि अनेक पदार्थों की एक 'जानन्ति' क्रिया के साथ अन्वय होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे वत्स, इन्द्रजितः, निहन्तुः, वत्सस्य, ते, पितुः, अपि, जातस्य, अमूनि, कतिनाम, दिनानि ? तस्य, अपत्यम्, अपि, वीरधर्मम्, अनुतिष्ठति; दिष्टचा, दशरथस्य, कुलम्, प्रतिष्ठाम्, आगतम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—हे वत्स=हे बेटा, इन्द्रजितः=मेघनाथ को, निहन्तुः=मारने वाले, वत्सस्य=वत्स, प्रिय, ते=तुम्हारे, पितुः=पिता (लक्ष्मण) के, अपि=भी, जातस्य=उत्पन्न हुए, अमूनि=ये, कति नाम=कितने, दिनानि=दिन हुए हैं ? तस्य=उनका, अपत्यम्=बेटा, अपि=भी, वीरधर्मम्=वीरोचित धर्म का, अनुतिष्ठति=पालन कर रहा है, दिष्टचा=सौभाग्य से, दशरथस्य=दशरथ का, कुलम्=कुल, वंश, प्रतिष्ठाम्=प्रतिष्ठा को, आगतम्=प्राप्त हो गया है ॥ २४ ॥

टीका—जातस्येति । हे वत्स=हे प्रिय चन्द्रकेतो, इन्द्रजितः—इन्द्रं जयतीति इन्द्रजित्=मेघनादस्तस्य, निहन्तुः=विनाशयितुः, वत्सस्य=प्रियस्य, बालकस्येति यावत्, ते=तव, पितुः=जनकस्य, लक्ष्मणस्येति यावत्, अपि=च, जातस्य=उत्पन्नस्य, अमूनि=एतानि, कति नाम=कियन्ति नाम, दिनानि=दिवसानि, अतिक्रान्तानीति शेषः; सोऽपि मद्दृष्टौ बाल एवेति भावः । तस्य=तादृशस्य, बालकस्य लक्ष्मणस्यापीति भावः, अपत्यम्=सन्ततिः, पुत्र इति यावत्, अपि=च, वीरधर्मम्—वीराणाम्=शूराणां

---

१. विजेतुः, २. वीरवृत्तम्, ३. रघुज्येष्ठे ।

सुमन्त्र--(आँखों में स्नेहाश्रु के साथ आलिङ्गन करके)—

हे बेटा, मेघनाथ को मारने वाले प्रिय तुम्हारे पिता (लक्ष्मण) के भी उत्पन्न हुए अभी ये कितने दिन हुए हैं ? उनका बेटा भी वीरोचित धर्म का पालन कर रहा है । (इससे स्पष्ट है कि) सौभाग्य से दशरथ का कुल प्रतिष्ठा को प्राप्त हो गया है ॥ २४ ॥

विशेष—कति नाम दिनानि--सुमन्त्र महाराज दशरथ के समकालीन थे । उन्होंने लक्ष्मण को गोद में खेलाया था । अतः लक्ष्मण अभी भी उनकी दृष्टि में बालक ही हैं ।

तस्याप्यपत्यम्—लक्ष्मण का भी बेटा अर्थात् तुम भी वीर धर्म का पालन कर रहे हो ॥ २४ ॥

चन्द्रकेतु--(बड़े कष्ट के साथ) ।

कुल में ज्येष्ठ (रामचन्द्र) के (सन्तानहीनता के कारण) प्रतिष्ठित न होने पर हमारे कुल की क्या प्रतिष्ठा है ? इसी दुःख से हमारे और तीन (भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न) पिता लोग सन्तप्त होते रहते हैं ॥ २५ ॥

धर्मम्=आचारम्, अनुतिष्ठति=अनुपालयति । दिष्ट्या=सौभाग्येन, दशरथस्य=महाराजस्य तव पितामहस्य, कुलम्=वंशः, प्रतिष्ठाम्=माहात्म्यम् ("प्रतिष्ठा स्थिति माहात्म्ये" इति यादवः), वृद्धिमिति यावत्, आगतम्=प्राप्तम् । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २४ ॥

टिप्पणी--परिष्वज्य—परि + √स्वञ्ज + ल्यप् । निहन्तुः-नि + √हन् + तृच् + षष्ठ्यैकवचने विभक्तिः ।

इस श्लोक में वीरधर्म का अनुष्ठान कुल की प्रतिष्ठा का कारण है । अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है ।

यहाँ प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ २४ ॥"

अन्वयः—कुलज्येष्ठे, अप्रतिष्ठे (सति), नः, कुलस्य, का, प्रतिष्ठा ? इति, दुःखेन, नः, अपरे, त्रयः, पितरः, तप्यन्ते ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—कुलज्येष्ठे=कुल में ज्येष्ठ (रामचन्द्र) के, अप्रतिष्ठे सति=प्रतिष्ठित न होने पर, नः=हमारे, कुलस्य=कुल की, का=क्या, प्रतिष्ठा=प्रतिष्ठा है ?, इति=इसी, दुःखेन=दुःख से, नः =हमारे, अपरे=और, त्रयः=तीन, पितरः=पिता लोग, तप्यन्ते=सन्तप्त होते रहते हैं ॥ २५ ॥

सुमन्त्रः—हृदयमर्म[1]दारणान्येव चन्द्रकेतोर्वचनानि ।

लवः—हन्त ! [2]मिश्रीकृतक्रमो रसो वर्तते ।

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी
तथैवास्मिन्दृष्टिर्मम, कलहकामः पुनरयम् ।
[3]रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु-
र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकराल[4]व्रणमुखः ॥ २६ ॥

टीका—अप्रतिष्ठ इति । कुलज्येष्ठे—कुले वंशे ज्येष्ठः=श्रेष्ठस्तस्मिन्, कुलज्येष्ठे रामचन्द्रे इत्यर्थः, अप्रतिष्ठे—अविद्यमाना प्रतिष्ठा=स्थितिर्यस्य तस्मिन्, प्रतिष्ठारहिते सति, अनपत्ये सतीति यावत्, नः=अस्माकम्, कुलस्य=वंशस्य, का=कीदृशी, प्रतिष्ठा=स्थितिः ? इति=ईदृशेन, दुःखेन=कष्टेन, नः=अस्माकम्, अपरे=अन्ये, भरतादय इत्यर्थः, त्रयः=त्रिसंख्यकाः, पितरः=ताताः, तप्यन्ते=तापमनुभवन्ति । अत्रार्थापत्तिरलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—अप्रतिष्ठे--कुल की प्रतिष्ठा सन्तान से होती है । कुल के ज्येष्ठ राम को कोई सन्तान नहीं है । अतः उन्हें अप्रपिष्ठ कहा गया है ।

'का प्रतिष्ठा' का भाव है—अर्थात् कोई प्रतिष्ठा नहीं है । अतः अर्थापत्ति होने के कारण यहाँ अर्थापत्ति नामक अलंकार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप् ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—अहह=बड़ा कष्ट है, 'अहह' यह अत्यन्त कष्ट का सूचक अव्यय है, हृदयमर्मदारणानि—हृदय के मर्म स्थल का भेदन करने वाले, वचनानि=वचन । मिश्रीकृतक्रमः—मिश्रीकृतः=मिला हुआ, मिश्रित है क्रमः=क्रम जिसका ऐसा, रसः=रस, वर्तते=है ॥

टीका—सुमन्त्र इति । अहह इति खेदे अव्ययपदम्; हृदयमर्मदारणानि—हृदयस्य=चेतसो मर्माणाम्=सन्धीनां दारणानि=छेदकानि, वचनानि=वाक्यानि । चन्द्रकेतोर्वचनं श्रुत्वा हृदयं स्फुटतीति भावः । चन्द्रकेतोः=लक्ष्मणपुत्रस्य, वचनानि=वाक्यानि। मिश्रीकृतक्रमः–मिश्रीकृतः=संयोजितः क्रमः=परिपाटी यस्य स तादृशः, रसः=अनुरागः ॥

अन्वयः—यथा, इन्दौ, समुपोढे (सति), कुमुदिनी, आनन्दम्, व्रजति; तथैव, अस्मिन्, (दृष्टे, सति), मम, दृष्टिः, (आनन्दम्, व्रजति); रणत्कार-क्रूरक्वणित-गुणगुञ्जद्गुरुधनुर्धृतप्रेमा, विकचविकरालव्रणमुखः, अयम्, (मम) बाहुः, पुनः, कलहकामः, (अस्ति) ॥ २६ ॥

---

१. दारुणानि, २. मिश्रीकृतो रसक्रमः, ३. टणत्कार०, ४. ०लोल्बणरसः ।

सुमन्त्र—चन्द्रकेतु के ये वचन तो हृदय के मर्मस्थल का भेदन करने वाले हैं।

लव—खेद है, (वात्सल्य तथा वीर) रसों का क्रम मिश्रित हो रहा है अर्थात् वात्सल्य एवं वीररस दोनों एक साथ हृदय-पटल पर उभर रहे हैं।

विशेष—मिश्रीकृतक्रमः—वात्सल्य एवं वीर रस एक दूसरे के विरोधी हैं। एक के रहने पर दूसरा नहीं रह सकता। लव के मन में चन्द्रकेतु को देखकर जब प्रेम उमड़ता है उसी समय उनके वीरवेष को देख कर वीर रस का भी सञ्चार होने लगता है। अतः उनके हृदय की स्थिति द्विविधा पूर्ण है ॥ २५ ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा के उदित होने पर कुमुदिनी विकसित होती है, उसी प्रकार इसके दिखलाई पड़ने पर मेरी दृष्टि आनन्दित हो रही है (किन्तु) रण-रण इस प्रकार के शब्द से कठोर झंकार करने वाली प्रत्यञ्चा से गुञ्जार करते हुए विशाल धनुष से प्रेम करने वाला तथा स्पष्ट और विकराल व्रण हैं अग्रभाग में जिसके ऐसा यह (मेरा) वाहु तो युद्ध का इच्छुक है ॥ २६ ॥

विशेषः—व्रणमुखः—वार-वार प्रत्यञ्चा खींचने से दाहिने हाथ के अँगूठे तथा तर्जनी में बड़े-बड़े घट्ठे पड़ जाते हैं। बाएँ हाथ की हथेली के मूल में प्रत्यञ्चा के घर्षण से विशाल घाव होकर घट्ठा पड़ जाता है। इससे धनुष-वाण चलाने की हाथों की निपुणता प्रतीत होती है ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—यथा=जिस प्रकार, इन्दौ = चन्द्रमा के, समुपोढे सति = बढ़ने पर, उदित होने पर, कुमुदिनी=कोइनी, आनन्दम्=आनन्द (विकाश) को, व्रजति=प्राप्त करती है, तथैव=उसी प्रकार, अस्मिन्=इसके, (दृष्टे सति=दिखलाई पड़ने पर), मम=मेरी, दृष्टिः=दृष्टि, आँख, (आनन्दम्=आनन्द को, व्रजति=प्राप्त कर रही है), रणत्कार-क्रूर-क्वणित-गुण-गुञ्जद्-गुरु-धनु-र्धृत-प्रेमा=रण-रण इस प्रकार के शब्द से कठोर झंकार करने वाली प्रत्यञ्चा से गुंजार करते हुए विशाल धनुष से प्रेम करने वाली, विकचविकरालव्रणमुखः=स्पष्ट और विकराल व्रण हैं अग्रभाग में जिसके ऐसा, अयम्=यह, (मम=मेरा), बाहुः = बाहु, पुनः=तो, कलहकामः = युद्ध का इच्छुक, (अस्ति=है) ॥ २६ ॥

टीका—यथेन्दाविति—यथा=येन प्रकारेण, इन्दौ=चन्द्रे, समुपोढे सति = समुदिते सति, कुमुदिनी=कुमुद्वती, आनन्दम् = विकासम्, व्रजति=गच्छति; तथैव= तेनैव प्रकारेण, अस्मिन् = एतस्मिन् चन्द्रकेतौ, मम=मे, लवस्येत्यर्थः, दृष्टिः = नेत्रम्, आनन्दं व्रजतीति योजना। रणत्कारेत्यादिः—रणत्कारेण=रणदिति शब्देन क्रूरम्= भयङ्करं क्वणितम्=घण्टिकादिरणितं येन तथोक्तेन गुणेन=ज्यया गुञ्जत्=शब्दं कुर्वत्

चन्द्रकेतुः—(अवतरणं निरूपयन् ।) आर्य ! अयमसावै[1]क्ष्वाकश्चन्द्रकेतुरभिवादयते ।

सुमन्त्रः—[2]अहितस्यैव पुनः पराभवाय महानादिवराहः कल्पताम् । अपि च ।

देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्ते पति-[3]
स्त्वां मंत्रावरुणोऽभिनन्दतु गुरुर्यस्ते गुरूणामपि ।
[4]ऐन्द्रावैष्णवमाग्निमारुतमथो सौपर्णमोजोऽस्तु ते
देयादेव च रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम् ॥ २७ ॥

गुरु=महत् धनुः=कोदण्डस्तस्मिन् धृतम्—बद्धं प्रेम=प्रणयो येन स तादृशः, विकचविकरालव्रणमुखः—विकचानि=स्फुटानि विस्तृतानि वा विकरालानि=भयङ्कराणि व्रणानि=प्रत्यश्चाक्षतचिह्नानि मुखे=अग्रे यस्य स तादृशः, अयम्=एषः, ममेति शेषः, बाहुः=भुजः, पुनः=तु, कलहकामः—कलहे=युद्धे कामः=इच्छा यस्य स तादृशः, अस्तीति क्रियाशेषः । अत्र विषममुपमा चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—**समुपोढे**–सम् + उप + √वह् + क्त + विभक्तिः । यहाँ सम्प्रसारण होकर वह् के स्थान में ऊढ हो गया है । **क्वणत०**—√क्वण + क्त + विभक्तिः । **गुञ्जत**—√गुञ्ज + शतृ + विभक्तिः ।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में वात्सल्य रस के अनुरूप कोमलकान्त पदावली का विन्यास हुआ है और उत्तरार्द्ध में वीर रस के अनुकूल कठोर वर्णों का प्रयोग तथा ओजोगुण का विन्यास हुआ है ।

वात्सल्य और वीर रस एक दूसरे के विरोधी हैं । इन दोनों के एकत्र रखने से विषम अलङ्कार है । प्रथम पंक्ति में 'यथा' के द्वारा उपमा है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी" ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—अवतरणम्=उतरने का, ऐक्ष्वाकः=इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न, इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न, अहितस्य=शत्रु के, पराभवाय=पराजय के लिये, कल्पताम्=समर्थ हों ।

टीका—चन्द्रकेतुरिति । अवतरणम्=रथादवरोहणम्, निरूपयन्=नाटयन् । ऐक्ष्वाकः=इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः, 'सावित्र' इति पाठे सूर्यवंशोत्पन्न इत्यर्थः । अहितस्य=शत्रोः, पराभवाय=पराजयाय, आदिवराहः=सूकरावतारधारी भगवान् विष्णुः, कल्पताम्=आविर्भवतु ॥

---

१. सावित्रः, २. 'अजितं पुण्यमूर्जस्वि ककुत्स्थस्येव ते महः । श्रेयसे शाश्वतो देवो वराहः परिकल्पताम् ॥' ३. पिता, ४. ऐन्द्रं ।

चन्द्रकेतु—(रथ से उतरने का अभिनय करते हुए) आर्य, सम्प्रति इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न यह चन्द्रकेतु आप को प्रणाम कर रहा है ।

सुमन्त्र—शत्रु के पराभव के लिये ही महान् आदिवराह (अर्थात् सूकरावतार-धारी भगवान् विष्णु) पुनः अवतार धारण करें । और भी—

जो तुम्हारे कुल के प्रवर्तक हैं वे भगवान् सूर्य युद्ध में तुम्हें प्रसन्न रक्खें । जो तुम्हारे पूर्वजों के भी गुरु हैं वे महर्षि वसिष्ठ तुम्हें अभिनन्दित करें । इन्द्र और विष्णु का, अग्नि और वायु का तथा गरुड का तेज तुम्हें प्राप्त हो । राम और लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यञ्चा का घोषरूपी मन्त्र भी तुम्हें विजय प्रदान करे ॥ २७ ॥

टिप्पणी—भगवान् विष्णु ने वराह का अवतार धारण कर पृथिवी का उद्धार किया था और उस समय उन्होंने त्रिलोकजयी दैत्य हिरण्याक्ष का वध किया था । सुमन्त्र के कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त कर वराह ने पृथिवी का उद्धार किया था उसी प्रकार आप भी शत्रु को पराभूत करें ॥

अन्वयः—यः, ते, गोत्रस्य, पतिः, (अस्ति, सः), देवः, सविता, समरे, त्वाम्, धिनोतु; यः, ते, गुरूणाम्, अपि, गुरुः, (अस्ति, सः) मैत्रावरुणः, त्वाम्, अभिनन्दतु; ऐन्द्रावैष्णवम्, आग्निमारुतम्, अथो, सौपर्णम्, ओजः, ते, अस्तु, रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रः, च, जयम्, देयात्, एव ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—यः=जो, ते=तुम्हारे, गोत्रस्य=कुल का, पतिः=प्रवर्तक, (अस्ति=है, सः=वह), देवः=भगवान्, सविता=सूर्य, समरे=युद्ध में, त्वाम्=तुम्हें, धिनोतु=प्रसन्न रक्खें; यः=जो, ते=तुम्हारे गुरूणाम्=पूर्वजों के, अपि=भी, गुरुः=गुरु, (अस्ति=हैं, सः=वह), मैत्रावरुणः=मित्रावरुण के पुत्र, महर्षिवसिष्ठ, त्वाम्=तुम्हें, अभिनन्दतु=अभिनन्दित करें; ऐन्द्रावैष्णवम्=इन्द्र और विष्णु का, आग्निमारुतम्=अग्नि और वायु का, अथो=और, सौपर्णम्=गरुड का, तेजः=तेज, ते=तुम्हें, अस्तु=प्राप्त हो; रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रः=राम और लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यञ्चा का घोष रूपी मन्त्र, च=भी, जयम्=विजय, देयात्=प्रदान करे, एव=यह निश्चय अर्थ को बतलाने वाला अव्यय है ॥ २७ ॥

टीका—देवस्त्वामिति । यः=यः सूर्यः, ते=तव, गोत्रस्य=कुलस्य, पतिः=प्रवर्तकः, अस्ति सः, देवः=द्योतनात्मकः, भगवान्, सविता=सूर्यः, समरे=युद्धे, त्वाम्=चन्द्रकेतुमित्यर्थः, धिनोतु=प्रीणयतु; "धिवि प्रीणने" इति धातोर्लोट् । यः ते=यस्तव, गुरूणाम्=पूर्वजानाम्, अपि=च, गुरुः=पूज्यः, आचार्य इति यावत्, अस्ति सः=मैत्रावरुणः=मित्रावरुणयोः पुत्रः, महर्षिर्वसिष्ठ इत्यर्थः, त्वाम् अभिनन्दतु=आशीर्भिः वर्धयतु । ऐन्द्रावैष्णवम्—इन्द्रश्च विष्णुश्चेति इन्द्राविष्णू तयोरिदमैन्द्रावैष्णवम्=इन्द्रसम्बन्धि

लवः—[1]अतीव नाम शोभते रथस्थ एव। कृतं कृतमत्यादरेण।

चन्द्रकेतुः—तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलङ्करोतु।

लवः—आर्य! प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्।

सुमन्त्रः—त्वमप्यनुरुध्यस्व वत्सस्य चन्द्रकेतोर्वचनम्।

लवः—को विचारः स्वेषूपकरणेषु? किन्त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः।

सुमन्त्रः—जानासि वत्स! दर्पसौजन्ययोर्यदाचरितम्। यदि पुनस्त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदायमस्य स्नेहेन हृदयमभिष्यन्दयेत्[2]।

लवः—अन्यच्च चन्द्रकेतो! सुजनः स राजर्षिः श्रूयते। (सलज्जमिव।)

विष्णुसम्बन्धि च, आग्निमारुतम्–अग्निश्च मरुच्च अग्नामरुतौ अग्नामरुतोरिदम् आग्निमारुतम्=अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि च, अथो=अथ च, सौपर्णम्–सुपर्णस्य= गरुडस्येदं सौपर्णम्=गरुडसम्बन्धि; ओजः=तेजः, ते=तव, अस्तु=भवतु। रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रः–रामश्च लक्ष्मणश्चेति रामलक्ष्मणौ तयोः धनुषः=कोदण्डस्य ज्यायाः= प्रत्यञ्चाया घोषः=टङ्कारः, स एव मन्त्रः, च=अपि, जयम्=विजयम्, देयात्=वितरतु, एवेति निश्चये। अत्र निदर्शना रूपकं चालङ्कारौ। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः॥ २७॥

टिप्पणी—मैत्रावरुणः—मित्रावरुण के पुत्र थे वसिष्ठ। अतः उन्हें मैत्रावरुण कहा जाता है। मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ। यहाँ द्वन्द्व समास हुआ है। देवताद्वन्द्वे च (६।३।२६) से आनङ् होकर मित्र को मित्रा हो जाता है। मित्रावरुणयोः अपत्यम्, मित्रावरुण+अण्।

ऐन्द्रावैष्णवम्—ईन्द्रश्च विष्णुश्च, इन्द्राविष्णू, देवताद्वन्द्वे च (६।३।२६) से आनङ्, तयोरिदम्, इन्द्राविष्णू+अण्। देवताद्वन्द्वे च (७।३।२१) से उभयपद वृद्धि होकर रूप बनता है।

आग्निमारुतम्—अग्निश्च मरुच्च अग्नामरुतौ द्वन्द्वसमास। 'देवताद्वन्द्वे च' से आनङ्। अग्नामरुतोः इदम्, अग्नामरुत्+अण्, 'देवताद्वन्द्वे०' (७।३।२१) से उभयपद वृद्धि तथा इद्वृद्धौ (६।३।२८) से ग्ना के आ को इ होकर आग्निमारुत रूप निष्पन्न होता है।

सौपर्णम्—सुपर्ण कहते हैं गरुड को। इनकी माता का नाम था विनता। ये भगवान् विष्णु के वाहन कहे गये हैं। सुपर्ण+अण्+विभक्त्यादिः।

---

१. अति हि नाम, २. 'तदाऽस्य······मभिष्यन्देति इति पाठान्तरम्।

लव—रथ पर बैठे ही आप अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। अत्यधिक सम्मान दिखलाने की आवश्यकता नहीं है।

चन्द्रकेतु--तो अत्यन्त सौभाग्यशाली आप भी दूसरे रथ को अलंकृत करें अर्थात् दूसरे रथ पर सवार हों।

लवः--आर्य (सुमन्त्र जी), आप राजकुमार (चन्द्रकेतु) को रथ पर चढ़ाइये।

सुमन्त्र--तुम भी मानो वत्स चन्द्रकेतु की बात को।

लव—अपने साधनों (रथ आदि) के विषय में क्या विचार करना है? किन्तु हम लोग वनवासी हैं अतः रथ के उपयोग में अभ्यस्त नहीं हैं।

सुमन्त्र—वत्स, अभिमान और सौजन्य के आचरण को तुम जानते हो। यदि इक्ष्वाकुवंशी राजा रामचन्द्र इस प्रकार के स्वभाव वाले तुमको देखते तो उनका हृदय स्नेह से भर जाता।

लवः—आर्य, सुनते हैं कि वे राजर्षि (रामचन्द्र) सज्जन हैं। (लज्जित सा होकर)।

इस श्लोक में ज्याघोष को मन्त्र कहने में असंभवद्वस्तु-संबन्धरूपी निदर्शना है और ज्याघोषरूपी मन्त्र अर्थ होने से रूपक भी है।

यहाँ प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—अतीव = अत्यन्त, बहुत अच्छे, अत्यधिक, कृतम् = बस-बस; अत्यादरेण=अत्यधिक आदर से, महाभागः=अत्यन्त सौभाग्यशाली, आप। प्रत्यारोपय= चढ़ा लीजिये, रथोपरि=रथ के ऊपर। अनुरुध्यस्व=मान लो, स्वीकार कर लो। उपकरणेषु=साधनों के विषय में, अरण्यसदः=वनवासी, अनभ्यस्तरथचर्याः—रथ के उपयोग में अभ्यस्त नहीं हैं। दर्पसौजन्ययोः=अभिमान और सौजन्य को, सुजनः = सज्जनः॥

टीका—लव इति। अतीव=अत्यर्थम्, शोभसे=राजसे, रथस्थः—रथे आरूढ एव। कृतं कृतम्=अलमलम्, पर्याप्तमिति यावत्, आदरेण=सम्मानप्रदर्शनेन। महाभागः—महान्=श्रेष्ठो भागः=भाग्यं यस्यासौ, भवानपीति भावः, अलंकरोतु=उपवेशनेन भूषयतु। आर्येति सुमन्त्रं प्रति सम्बोधनपदम्, प्रत्यारोपय=आरोपय, स्थापयेति यावत्, राजपुत्रम्=राजकुमारम्, चन्द्रकेतुमित्यर्थः, स्वेषु=स्वकीयेषु, उपकरणेषु=रथाद्युपयोगिपदार्थेष्विति तात्पर्यम्। अरण्यसदः—अरण्ये=वने सीदन्तीति=वसन्तीति अरण्यसदः=वनवासिनः, अनभ्यस्तरथचर्याः--अनभ्यस्ता=अशिक्षिता रथचर्या=रथचरणप्रक्रिया यैस्ते तादृशाः। दर्पसौजन्ययोः--दर्पश्च=अभिमानश्च सौजन्यञ्च=विनयश्चेति तयोः। सुजनः=सज्जनः॥

[1]यदि च वयमप्येवंप्रायाः क्रतुद्विषतामरौ
क [2]इव न गुणैस्तं राजानं [3]जनो बहु मन्यते ।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरङ्गमरक्षिणां
विकृतिमखिलक्षत्राक्षेप[4]प्रचण्डतयाऽकरोत् ॥ २८ ॥

चन्द्रकेतुः—किन्नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्षः ?

लवः—[5]अस्त्विहामर्षो मा भूद्वा । [6]अन्यदेतत्पृच्छामि । दान्तं हि राजानं राघवं [7]श्रृणुमः स किल नात्मना दृप्यति, [8]नाप्यस्य प्रजा वा दृप्ता जायन्ते । तत्किं मनुष्यास्तस्य राक्षसीं वाचमुदीरयन्ति ?

टिप्पणी—अरण्यसदः—अरण्य + √सद् + क्विप् + प्रथमाबहुवचने विभक्तिकार्यम् । ०अभ्यस्त०—अभि + √अस् + क्त + विभक्तिः । चर्या—√चर् + श (अ) + टाप् + विभक्तिकार्यम् । ०सौजयन्य—सुजन + ष्यञ् + विभक्तिः । ञित् होने के कारण आदिवृद्धि हो जाती है ।।

अन्वयः—यदि च, क्रतुद्विषताम्, अरौ, वयम्, अपि, एवंप्रायाः, (स्मः), क इव, जनः, गुणैः, तम्, राजानम्, न, बहु, मन्यते ?, तदपि, तुरङ्गमरक्षिणाम्, सः, व्याहारः, अखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतया, खलु, मे, विकृतिम्, अकरोत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—यदि च=यद्यपि, क्रतुद्विषताम्=यज्ञ-विध्वंसक (राक्षसों) के, अरौ=शत्रु (रामचन्द्र) के विषय में, वयम्=हम, अपि=भी, एवंप्रायाः=इसी प्रकार के, ऐसी ही प्रीति रखने वाले, (स्मः=हैं), क इव=कौन-सा, जनः = व्यक्ति, गुणैः= गुणों के कारण, तम्=उस, राजानम्=राजा को, न = नहीं, बहु=अधिक, मन्यते= मानता है, आदर करता है ?, तदपि=तथापि, तुरङ्गमरक्षिणाम्=घोड़ों के रक्षकों की, सः=उस, व्याहारः=उक्ति ने, अखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतया=समस्त क्षत्रियों के अपमान के कारण उत्तेजक होने से, खलु=निश्चय ही, मे=मुझ में, विकृतिम्=विकार, क्रोध, अकरोत्=पैदा कर दिया ॥ २८ ॥

टीका—तदपीति । यदि च=यद्यपि, क्रतुद्विषताम्—क्रतुम्=यज्ञं द्विषन्ति= प्रतिघ्नन्ति इति क्रतुद्विषस्तेषाम्, यज्ञविध्वंसकानामित्यर्थः, अरौ=शत्रौ, रामचन्द्र इत्यर्थः, वयमपि=अहमपीत्यर्थः, "अस्मदो द्वयोश्च" इति बहुवचनम्, एवंप्रायाः=एवंविधाः, प्रेमपात्रभूता इति भावः, स्म इति क्रियाशेषः । क इव = कः, जनः = नरः गुणैः=दयादाक्षिण्यादिगुणैः, तं राजानम्=भूपतिं रामचंद्रमित्यर्थः, न बहु मन्यते= नाधिकं सत्करोति ? सर्व एव जनस्तं सम्मानयतीति भावः । तदपि=तथापि, तुरङ्गमरक्षिणाम्—तुरङ्गमस्य = अश्वस्य रक्षिणः=रक्षकास्तेषाम्, सः = तादृशः, व्याहारः= कथनम्, 'योऽयमश्वः' (४।२७) इति कथनम्, अखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतया—अखिला-

---

१ 'वयमपि न खल्वेवंप्रायाः क्रतुप्रविघातिनः', २. 'इह च', ३. 'न वा', ४. क्षेपः, ५. अस्त्वमर्षो, ६. एतत्तु पृच्छामि, ७. अनुशुश्रुम, ८. नास्य ।

यद्यपि यज्ञ-विध्वंसक (राक्षसों) के शत्रु (रामचन्द्र) के विषय में हम भी ऐसी ही प्रीति रखने वाले हैं। कौन-सा व्यक्ति गुणों के कारण उस राजा को अधिक आदर नहीं देता है ? (अर्थात् सभी आदर देते हैं)। तथापि घोड़ों के रक्षकों की उस उक्ति (योऽयमश्वः० ४।२७) ने समस्त क्षत्रियों के अपमान के कारण उत्तेजक होने से निश्चय ही मुझ में क्रोध पैदा कर दिया ॥ २८ ॥

चन्द्रकेतु--क्या आपको पिता (रामचन्द्र) जी के प्रताप के उत्कर्ष पर भी क्रोध आ रहा है ?

लव--इस विषय में क्रोध हो अथवा न हो मैं आप से एक दूसरी बात पूछना चाहता हूँ—हम लोग सुनते हैं कि राजा रामचन्द्र दम गुण से सम्पन्न हैं। वे न तो स्वयं गर्व करते हैं और न उनकी प्रजा ही अभिमान से फूलती है। तो क्यों उनके मनुष्य राक्षसी (दर्पपूर्ण) वाणी बोलते हैं ?

विशेष--दान्त—जिनकी बाह्याभ्यन्तर इन्द्रियाँ वश में रहती हैं उन्हें दान्त कहते हैं। राम शम-दम सम्पन्न हैं। अतः उन्हें जल्दी क्रोध नहीं आता है ॥

नाम्=सर्वेषां क्षत्राणाम्=क्षत्रियाणाम् आक्षेपेण=तिरस्कारेण अपमानेन वा प्रचण्डतया=उद्दीपकतया, खल्विति निश्चये, मे=मयि, लव इत्यर्थः, विकृतिम्=विकारम्, क्रोधमित्यर्थः, अकरोत् = व्यदधात्। अत्रार्थापत्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। हरिणी छन्दः ॥ २८ ॥

टिप्पणी—सलज्जम्--लव की लज्जा का कारण था राम जैसे राजा के यज्ञ में विघ्न डालना।

व्याहारः--अश्व के रक्षक सैनिकों ने चतुर्थ अंक के सत्ताइसवें श्लोक में कहा था कि—"यह अश्व सातों लोकों के बेजोड़ योद्धा रामचन्द्र की विजय-पताका अथवा वीरघोषणा है।" इस घोषणा से क्षत्रियों का अपमान होता है। अतः लव को अनुचित लगा। वि+आ+√हृ+घञ्+विभक्तिः। **०रक्षिणा०**-तुरङ्गम+√रक्ष्+णिनि+षष्ठीबहुवचने विभक्तिः।

०आक्षेप०—आ+√क्षिप्+घञ्+विभक्तिः।

द्वितीय पंक्ति में 'क इव न' इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी राम का आदर करते हैं। अतः अर्थापत्ति अलङ्कार है। चौथी पंक्ति में क्रोध का हेतु बतलाया गया है। उससे अश्व के हरणरूपी कार्य का बोध होता है। कारण में कार्य का बोध होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त हरिणी छन्द का लक्षण—"नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥"२८॥

शब्दार्थः—तातप्रतापोत्कर्षे=पिता (रामचन्द्र) के प्रताप के उत्कर्ष पर, अमर्षः=क्रोध। दान्तम्=दम गुण से सम्पन्न। दृप्यति=अभिमान करते हैं। दृप्ताः=अभिमान से फूली हुई। राक्षसीम्=राक्षसी, वाचम्=वाणी को, उदीरयन्ति=बोलते हैं।

ऋषयो राक्षसी[1]माहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य [2]निष्कृतिः ॥ २९ ॥
इति ह स्म तां निन्दन्ति इतरामभिष्टुवन्ति ।
कामं दुग्धे, विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं,
कीर्तिं सूते, [3]दुर्हृदो निष्प्रलाति ।
[4]शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥ ३० ॥

टीका--चन्द्रकेतुरिति । तातप्रतापोत्कर्षे—तातस्य=पितुः रामचन्द्रस्येत्यर्थः, प्रतापस्य=तेजसः उत्कर्षे=प्रकर्षे, अमर्षः=असहिष्णुता । दान्तम्=दमसम्पन्नम्, वशीकृतेन्द्रियमित्यर्थः, दृप्यति=दर्पं करोति, दृप्ताः=गर्वयुक्ताः । राक्षसीम्=रक्षः-सम्बन्धिनीम्, गर्वयुक्तामित्यर्थः, वाचम्=वाणीम्, उदीरयन्ति=उच्चारयन्ति ? ॥

टिप्पणी--**दान्तम्**— √दम् + क्त + विभक्तिः ॥

राक्षसीम्--रक्षस् + अण् + ङीप् + विभक्तिः ॥

अन्वयः—ऋषयः, उन्मत्त-दृप्तयोः, वाचम्, राक्षसीम्, (वाचम्), आहुः । सा, सर्ववैराणाम्, योनिः, हि, सा, लोकस्य, निष्कृतिः ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—ऋषयः=ऋषियों ने, उन्मत्त-दृप्तयोः=पागल और अभिमानी मनुष्य की, वाचम् = वाणी को, राक्षसीम्=राक्षसों की, राक्षसी, (वाचम्=वाणी), आहुः=कहा है । हि=क्योंकि, सा=वह, सर्ववैराणाम्=सारे झगड़ों की, योनिः=कारण है, जड़ है, सा = वह, राक्षसी वाणी, लोकस्य = लोगों के, निष्कृतिः=तिरस्कार का कारण है, अपमान का कारण है ॥ २९ ॥

टीका--ऋषय इति । ऋषयः=मुनयः, उन्मत्तदृप्तयोः--उन्मत्तश्च=विक्षिप्तश्च दृप्तश्च=गर्वयुक्तश्चेति उन्मत्तदृप्तौ तयोः, वाचम्=वाणीम्, साक्षसीम्=रक्षः-सम्बन्धिनीम्, वाचम्, आहुः = अकथयन् । हि = यतः, सा = राक्षसी वाणीत्यर्थः, सर्ववैराणाम् = सर्वविरोधानाम्, योनिः=कारणम्, सा=राक्षसी वाक्, लोकस्य, जनसमवायस्य, ("लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः), निष्कृतिः = परिभवहेतुः । अत्र रूपकमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २९ ॥

टिप्पणी--निष्कृतिः—निष्कृति का अर्थ है--पराभव अथवा तिरस्कार का कारण । निष्कृति का अर्थ उऋण होना भी कहा गया है । निर् + √कृ + क्तिन् + विभक्तिः ।

यहाँ वाणी को निष्कृति कहा गया है । अतः रूपक अलङ्कार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप् ॥ २९ ॥

---

१. ०सीं वाचं वदन्त्यु०, २. निर्ऋतिः, ३. दुष्कृतं या हिनस्ति, ४. तां चाप्येतां ।

ऋषियों ने पागल और अभिमानी मनुष्य की वाणी को राक्षसी (वाणी) कहा है। क्योंकि वह सारे झगड़ों की जड़ है और वही लोगों के तिरस्कार का कारण है ॥ २९ ॥

यही कारण है कि उसकी निन्दा करते हैं और दूसरी वाणी की प्रशंसा करते हैं।

(दैवी वाणी) मनोरथ को पूरा करती है, अलक्ष्मी को दूर करती है, कीर्ति को उत्पन्न करती है और शत्रुओं को नष्ट करती है। (इसलिये) विद्वानों ने पवित्र, शान्त, कल्याणों की जननी सत्य और प्रिय वाणी को कामधेनु कहा है ।।३०।।

अन्वयः--(दैवी, वाक्), कामम्, दुग्धे; अलक्ष्मीम्, विप्रकर्षति; कीर्तिम्, सूते; दुर्हृदः, निष्प्रलाति। (अतः), धीराः, शुद्धाम्, शान्ताम्, मङ्गलानाम्, मातरम्, सुनृताम्, वाचम्, धेनुम्, आहुः ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—(दैवी = देव सम्बन्धिनी, वाक्=वाणी), कामम्=मनोरथ को, दुग्धे=दुहती है अर्थात् पूर्ण करती है; अलक्ष्मीम्=अलक्ष्मी को, दुर्भाग्य को, विप्रकर्षति= दूर करती है, हटाती है, कीर्तिम्=कीर्ति को; यश को, सूते=उत्पन्न करती है। दुर्हृदः=शत्रुओं को, निष्प्रलाति=नष्ट करती है। (अतः=इसीलिये) धीराः= विद्वानों ने, शुद्धाम्=पवित्र, शान्ताम् = शान्त, मङ्गलानाम्=मङ्गलों की, कल्याणों की, मातरम्=जननी, सुनृताम्=सत्य और प्रिय, वाचम्=वाणी को, धेनुम्=कामधेनु, आहुः=कहा है ॥ ३० ॥

टीका--काममिति। (दैवी वाक् = सुनृता वाणी) कामम् = मनोरथम्, दुग्धे=प्रपूरयति; अलक्ष्मीम्=निर्ऋतिम्=अलक्ष्मीम् ("स्यादलक्ष्मीस्तु निर्ऋतिः" इत्यमरः), विप्रकर्षति = दूरीकरोति; कीर्तिम्=यशः, सूते=जनयति; दुर्हृदः—दुर् = दुष्टं हृदयम्=अन्तःकरणं येषां तान्, शत्रूनित्यर्थः, "सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः" इति हृदयस्य हृद्भावः, निष्प्रलाति=अतिशयेन विनाशयति। अतः=अस्मात् कारणात्, धीराः=विद्वांसः, शुद्धाम्=दोषविरहिताम्, शान्ताम्=शमगुणसम्पन्नाम्, मङ्गलानाम्= कल्याणानाम्, मातरम्=जननीम्, सुनृताम्=सत्यप्रियगुणोपेताम्, वाचम्=वाणीम्, धेनुम्=कामदुघाम्, आहुः=कथयन्ति। अत्र दीपकं निदर्शना चालंकारौ। शालिनी छन्दः ॥ ३० ॥

टिप्पणी--दुर्हृदः--दुर् + हृदय = दुर्हृद् + विभक्तिः। "सुहृद्दुर्हृदौ० (५।४।१५०) से हृदय को हृद् आदेश होता है।

धेनुम्--जैसे सेवा करने वाले को कामधेनु सब कुछ प्रदान करती है। उसी प्रकार सत्य और प्रिय वाणी व्यक्ति को सब कुछ देती है।

सुनृताम्--सत्य और प्रिय वाणी को सुनृत कहते हैं--"प्रियं च सत्यं च वचो हि सुनृतम्।"

सुमन्त्रः—[1]परिभूतोऽयं बत कुमारः प्राचेतसान्तेवासी। वदत्यय-मभ्यु[2]पपन्नामर्षेण संस्कारेण।

लवः—यत्पुनश्चन्द्रकेतो! वदसि 'किन्नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्य-मर्ष' इति, तत्पृच्छामि 'किं व्यवस्थितविषयः क्षात्रधर्म' ? इति।

सुमन्त्रः—नैव खलु जानासि देवमैक्ष्वाकम्! तद्विरमातिप्रसङ्गात्।

सैनिकानां प्रमाथे सत्यमोजायितं त्वया।
जामदग्न्यस्य दमने न[3] हि निर्बन्धमर्हसि॥ ३१॥

लवः—(सहासम्।) आर्य! जामदग्न्यस्य दमनः स राजेति कोऽ-यमुच्चैर्वादः ?

सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्यस्तस्मिन्दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः ? ॥३२॥

इस श्लोक में सुनृत वाणी का दुग्धे विप्रकर्षति आदि अनेक क्रियाओं के साथ अन्वय होने के कारण दीपक अलंकार है। सुनृत वाणी का धेनुके साथ सादृश्य बतलाने से असम्भवद्वस्तु सम्बन्धरूपी निदर्शना अलंकार है।

यहाँ प्रयुक्त शालिनी छन्द का लक्षण—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः॥ ३०॥

शब्दार्थः—परिभूतः=तिरस्कृत हुआ है, बत=यह खेद का सूचक अव्यय है, प्राचेतसान्तेवासी=वाल्मीकि का छात्र (शिष्य)। अभ्युपपन्नामर्षेण=क्रोधपूर्ण, संस्कारेण=भावना से। व्यवस्थितविषयः=व्यक्ति विशेष में ही सीमित, क्षात्रधर्मः=क्षत्रिय धर्म। विरम=रुको, अतिप्रसङ्गात्=शिष्टाचार के उल्लंघन से॥

टीका—सुमन्त्र इति। परिभूतः=तिरस्कृतः, प्राचेतसान्तेवासी—प्राचेतसस्य=महर्षेर्वाल्मीकेः; अन्तेवासी = शिष्यः। अभ्युपपन्नामर्षेण—अभ्युपपन्नः = स्वीकृतो योऽमर्षः=क्रोधो यस्य तेन, संस्कारेण=वासनया। व्यवस्थितविषयः—व्यवस्थितः=नियतः विषयः=आश्रयो यस्य सः, क्षात्रधर्मः=क्षत्रियधर्मः। विरम=विरतो भव, अतिप्रसङ्गात्=अनिष्टप्रसङ्गात्॥

टिप्पणी—परिभूतः=परि + √भू + क्त + विभक्तिः, **अभ्युपपन्न०**—अभि + उप + √पद् + क्त + विभक्तिः॥

अन्वयः—सत्यम्, सैनिकानाम्, प्रमाथेन, त्वया, ओजायितम्। जामदग्न्यस्य, दमने, निर्बन्धम्, न, हि, अर्हसि॥ ३१॥

शब्दार्थः—सत्यम्=वस्तुतः, सैनिकानाम्=सैनिकों का, प्रमाथेन=संहार करने के कारण, त्वया=तुम्हारे द्वारा, ओजायितम्=तेजस्विता का सा आचरण किया जा

---

१. परिपूतस्वभावोऽयं, २. वदत्यभिसंपन्नं, ० पन्नामर्षेण,
३. न तु, नैव; नातिवर्तितुम्,

सुमन्त्र—खेद की बात है कि महर्षि वाल्मीकि का यह शिष्य तिरस्कृत हुआ है। अतः यह क्रोधपूर्ण भावना के साथ बोल रहा है।

लव--और जो चन्द्रकेतु, कह रहे हो कि--"क्या आपकी पिता (रामचन्द्र) के प्रताप के उत्कर्ष के प्रति भी असहिष्णुता है?" इस पर मैं पूछ रहा हूँ कि—"क्या क्षात्रधर्म व्यक्तिविशेष में ही सीमित है?"

सुमन्त्र—तुम नहीं ही जानते हो इक्ष्वाकुवंशी महाराज (रामचन्द्र) को जिससे ऐसा बोल रहे हो। तो रुको शिष्टाचार के उल्लंघन से।

वस्तुतः सैनिकों का संहार करने के कारण तुम्हारा मन बढ़ गया है। जमदग्नि के पुत्र (परशुराम) का मानमर्दन करने वाले (राम) के प्रति तुम्हें उच्छृङ्खलता का आचरण नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

लव—(हँसी के साथ) आर्य, वह राजा परशुराम के दमनकर्ता हैं—यह कौन बड़ी बात है?

क्योंकि यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणों की वाणी में बल होता है और जो बाहुओं का बल है वह तो क्षत्रियों का होता है। परशुराम शस्त्रधारी ब्राह्मण हैं, उनके दमित होने में उस राजा की क्या प्रशंसा है? ॥ ३२ ॥

रहा है; जामदग्न्यस्य=जमदग्निपुत्र (परशुराम) का, दमने=दमन करने वाले, मानमर्दन करने वाले, (राम) के प्रति, निर्बन्धम्=उच्छृङ्खलता का आचरण, न हि=नहीं, अर्हसि=करना चाहिये, करने के योग्य हो ॥ ३१ ॥

टीका—सैनिकानामिति। सत्यम्=वस्तुतः, सैनिकानाम्=सामान्यसैन्यजनानाम्, प्रमाथेन=प्रमथनेन, दमनेनेति भावः, त्वया=भवता, लवेनेति यावत्, ओजायितम्=ओजस्विनेव आचरितम्। जामदग्न्यस्य=जमदग्निपुत्रस्य परशुरामस्य, दमने=जेतरि, रामचन्द्र इत्यर्थः, निर्बन्धम्=उच्छृङ्खताम्, न हि अर्हसि=कर्तुं न योग्योऽसि। अत्रोपमाऽलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—ओजायितम्—ओजस्+क्यङ् (य) =ओजाय+क्त+विभक्तिः। यहाँ ओजस् शब्द लक्षणा के द्वारा ओजस्वी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जामदग्न्यस्य--जमदग्नेः अपत्यम्--जमदग्नि+यञ्+विभक्त्यादिः। **दमने**-√दम्+ल्यु (अन)+विभक्तिः।

ओजायित में उपमा का अर्थ होने से उपमा अलङ्कार है।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हि, एतत्, सिद्धम्, (यत्), द्विजानाम्, वाचि, वीर्यम्, (भवति); यत्, बाह्वोः, वीर्यम्, तत्, तु, क्षत्रियाणाम्, (भवति); जामदग्न्यः, शस्त्रग्राही, ब्राह्मणः, (अस्ति); तस्मिन्, दान्ते, तस्य, राज्ञः, का, स्तुतिः, (अस्ति) ॥ ३२ ॥

चन्द्रकेतुः--(सोन्माथमिव ।) आर्य सुमन्त्र ! कृतमुत्तरोत्तरेण ।

कोऽप्येष संप्रति नवः पुरुषावतारो
वीरो[1] न यस्य भगवान्भृगुनन्दनोऽपि ।
पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि
पुण्यानि तात चरितान्यपि यो न वेद ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—हि=क्योंकि, एतत्=यह बात, सिद्धम् = सिद्ध है, (यत्=कि), द्विजानाम्=ब्राह्मणों की, वाचि=वाणी में, वीर्यम्=बल, (भवति=होता है)। यत्= जो, बाह्वोः=बाहुओं का, वीर्यम्=बल है, तत्=वह, तु=तो, क्षत्रियाणाम्=क्षत्रियों का, (भवति=होता है); जामदग्न्यः=परशुराम, शस्त्रग्राही=शस्त्रधारी, ब्राह्मणः= ब्राह्मण, (अस्ति=हैं), तस्मिन्=उनके, दान्ते=दमित होने में, तस्य=उस, राज्ञः= राजा की, का=क्या, स्तुतिः=प्रशंसा, (अस्ति=है) ? ३२ ॥

टीका—सिद्धमिति । हि=यतः, एतत्=इदम्, सिद्धम्=सुविदितम्, यत् द्विजानाम्=ब्राह्मणानाम्, वाचि=वाण्याम्, वीर्यम्=बलं भवति; यत्तु बाह्वोः=भुजयोः, वीर्यम् = बलमस्ति, तत्तु क्षत्रियाणाम्=राजन्यानामेव भवति । जामदग्न्यः=परशुरामः, शस्त्रग्राही—शस्त्रं गृह्णातीति शस्त्रग्राही=आयुधधारी, ब्राह्मणः=द्विजोऽस्ति; तस्मिन्= तत्र, परशुराम इत्यर्थः, दान्ते=रामेण दमिते, सति, तस्य राज्ञः=भूपालस्य रामस्य, का=कीदृशी, स्तुतिः=प्रशंसा, न कापि प्रशंसेत्यर्थः । अत्र परिसंख्याऽलङ्कारः । शालिनी छन्दः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—उच्चैर्वादः—बड़ी बात । राम ने एक ब्राह्मण को जीत लिया इसमें उनकी शूरता-वीरता की क्या बात है ? यदि किसी बलशाली क्षत्रिय को जीते होते तो यह अवश्य प्रशंसा की बात होती ।

सिद्धम्— √सिध+क्त+विभक्तिः ।

वाचि वीर्यम्--ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुआ है । अतः वह मुख से ही पराक्रम प्रकट करता है—"तस्मात् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति, मुखतो हि सृष्टः ।" (ताण्ड्य ब्रा०)।

शस्त्रग्राही—शस्त्र+ √ग्रह्+ णिनि (इन्)+विभक्तिः । दान्ते— √दम्+क्त+विभक्तिः । दमित रूप भी बनता है ।

"भुजबल क्षत्रियों में ही होता है"—इस कथन से यह भाव निकलता है कि— "भुजबल ब्राह्मणों में नहीं होता ।" इस प्रकार अन्य के निवारण के द्वारा यहाँ आर्थी परिसंख्या अलंकार है ।

यहाँ प्रयुक्त शालिनी छन्द का लक्षण—

"मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥ ३२ ॥"

---

१. श्लाघ्यो,

चन्द्रकेतु—(विकलसा होकर) आर्य सुमन्त्र, (अब अधिक) उत्तर-प्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं है।

इस समय यह कोई विष्णु का नवीन अवतार मालूम होता है, जिसके लिये भगवान् परशुराम भी वीर नहीं हैं और जो सातों लोकों को पूर्णरूप से अभयदान देने वाले पिता जी के पवित्र चरितों को भी नहीं जानता है ॥ ३३ ॥

विशेष—चन्द्रकेतु का यह वचन व्यङ्ग्य से भरा हुआ है। उनके कहने का भाव यह है कि यह लव विष्णु का कोई बड़ा भारी अवतार है। तभी तो यह परशुराम को वीर नहीं समझता, और पूज्य राम के अद्भुत चरितो को भी नहीं जानता है ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सम्प्रति, एषः, कोऽपि, नवः पुरुषावतारः, (प्रतीयते), यस्य, भगवान्, भृगुनन्दनः, अपि, वीरः, न, (अस्ति); यः, पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि, पुण्यानि, तातचरितानि, अपि, न, वेद ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—सम्प्रति=इस समय, आजकल, एषः=यह, कोऽपि=कोई, नवः=नवीन, पुरुषावतारः=विष्णु का अवतार, (प्रतीयते=मालूम पड़ता है), यस्य=जिसके लिये, भगवान्=भगवान्, भृगुनन्दनः=परशुराम, अपि=भी, वीरः=वीर, न=नहीं हैं। यः=जो, पर्याप्तसप्त-भुवनाभयदक्षिणानि=सातों लोकों को पूर्णरूप से अभयदान देने वाले, पुण्यानि=पवित्र, तातचरितानि=पिता जी के चरितों को, अपि=भी, न=नहीं, वेद=जानता है॥ ३३ ॥

टीका—कोऽप्येष इति। सम्प्रति=अधुना, एषः=अयं जनः, कोऽपि=अद्भुतः, क्षेपेऽयं किं शब्दः, नवः=नूतनः, पुरुषावतारः—पुरुषस्य=श्रीविष्णोः अवतारः=अवतारविशेषोऽस्ति; यस्य=यस्य जनस्य कृत इति शेषः, भगवान्=ऐश्वर्यसम्पन्नः, भृगुनन्दनः—भृगोर्नन्दनः=परशुरामः, अपि=च, वीरः=शूरः, न=नास्ति, यस्त्रिसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रियामकरोत् सोऽप्यस्य दृष्टया न वीरः, अतोऽयं कोऽपि नवः पुरुषावतार इति भावः। यः=योऽयं जनः, पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि—सप्तानां भुवनानां समाहारः सप्तभुवनम्=त्रिलोकी तस्याभयम्=भयनिवारणं तदेव दक्षिणा=प्रत्युपकार-निरपेक्षं स्वाभ्युदयमुद्दिश्य दानं सा पर्याप्ता=पूर्णा येषु तथोक्तानि, पुण्यानि=पवित्राणि, तातचरितानि—तातस्य=पितू रामचन्द्रस्य चरितानि=शुभकर्माणि, अपिना व्यङ्ग्यत्वं व्यज्यते, न वेद=न विजानाति। अतोऽपि ज्ञायते यदयं कश्चनापूर्वो विष्णोरवतारोऽस्ति। अत्र रूपकमलङ्कारः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—सोन्माथम्—पूज्य राम एवं परशुराम पर कहे गये लव के वचन को सुनकर चन्द्रकेतु का हृदय तिलमिला उठता है। वे आगे अब कुछ भी नहीं सुनना चाहते।

लवः—को हि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति ? यदि नाम किंचिदस्ति वक्तव्यम् । शान्तम् ।

[1]वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते[2]
सुन्दस्त्री[3]मथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते ।
यानि त्रीणि[4] कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने ।
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥ ३४ ॥

अवतारः--अव + √तॄ + घञ् + विभक्तिः । पर्याप्त–परि + √आप् + क्त + विभक्त्यादिः ।

यहाँ 'अभयदक्षिणा' में अभयरूपी दक्षिणा--यह अर्थ होने के कारण रूपक अलंकार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ३३ ॥"

अन्वयः—ते, वृद्धाः, (अतः), विचारणीयचरिताः, न, (सन्ति; ते, तथैव), तिष्ठन्तु; हुं, वर्तते, सुन्दस्त्रीमथने, अपि, अकुण्ठयशसः, हि, ते; लोके, महान्तः, (सन्ति); खरायोधने, यानि, त्रीणि, पदानि, कुतोमुखानि, अपि, आसन्, वा, इन्द्रसूनुनिधने, यत्, कौसलम्, (प्रदर्शितम्), तत्र, अपि, जनः, अभिज्ञः; (अस्ति) ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः--ते=वे, वृद्धाः = वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, पुराने हैं, (अतः=इसलिये), विचारणीयचरिताः=आलोचनीय चरित, जिनके चरित की आलोचना की जाय ऐसे, न=नहीं, (सन्ति=हैं, ते=वे, तथैव=उसी प्रकार, वैसे ही), तिष्ठन्तु=रहें; हुं= हूँ, वर्तते=है; कहने योग्य है, सुन्दस्त्रीमथने=सुन्द राक्षस की पत्नी (ताडका) का वध करने पर, अपि=भी, अकुण्ठ-यशसः=अप्रतिहत यशवाले, अकुण्ठित यशवाले, ते=वे, हि=निश्चय ही, लोके=संसार में, महान्तः = महान् बड़े, (सन्ति=हैं); खरायोधने=खरनामक राक्षस के साथ युद्ध में, यानि=जो, त्रीणि=तीन, पदानि=पग, कुतोमुखानि=पीछे की तरफ हटाये गये, अपि=भी, आसन्=थे, वा=अथवा, इन्द्रसूनुनिधने=इन्द्रपुत्र (बालि) के वध करने में, यत्=जो, कौशलम्=कुशलता, (प्रदर्शितम्=दिखलाई गई थी), तत्र=उससे, अपि=भी, जनः=जन-साधारण, अभिज्ञः= परिचित, (अस्ति = है) ॥ ३४ ॥

टीका--वृद्धास्त इति । ते=जगति प्रथिता रामभद्रा इत्यर्थः, वृद्धाः=वयोवृद्धाः सन्ति; वयोमात्रं तेषां गौरवहेतुरिति भावः, अतो विचारणीयचरिताः:--विचारणीयानि=अलोचनीयानि चरितानि=कर्तव्यानि येषां तादृशाः, न सन्ति=न वर्तन्ते, ते=

---

१. वन्द्यास्ते, २. किं वर्ण्यते, ३. निधने, दमने–प्यखण्डय०, ४. त्रीण्यपराङ् ।

लव--कौन व्यक्ति रघुपति के चरित एवं महिमा को नहीं जानता है ? यदि कुछ बतलाने लायक हो तो (बतलाइये)। अथवा रहने दीजिये।

वे बड़े हैं, अतः उनके चरित की आलोचना नहीं करनी चाहिये। वे उसी प्रकार रहें। हुं, कहने योग्य कुछ बातें हैं। सुन्द नामक राक्षस की पत्नी (ताडका) का वध करने पर भी अप्रतिहत यशवाले वे निश्चय ही संसार में महान् हैं। खर नामक राक्षस के साथ युद्ध में उन्होंने जो तीन पग पीछे की तरफ हटाये थे अथवा बाली के वध करने में जो कुशलता दिखलाई थी, उससे भी जन-साधारण परिचित है ॥ ३४ ॥

विशेष—तथैव तिष्ठन्तु—लव ने पहले तो कहा कि महाराज राम बड़े हैं। अतः उनके चरित की आलोचना नहीं करूँगा। किन्तु इतना कहते-कहते उन्हें क्रोध आ गया। अतः उन्होंने कहा—हाँ राम के चरित का कुछ अंश तो अवश्य वक्तव्य है। फिर तो उन्होंने राम की तीन ऐसी बातों का इस श्लोक में उद्धरण दिया है जो उनकी वीरता के महाचन्द्र में तीन काले धब्बे के समान हैं। स्त्री का वध किसी भी वीर के लिये प्रशस्त नहीं माना गया है, और उन्होंने ताडका के वध से ही अपनी वीरता की 'कहानी' प्रारम्भ की है। युद्ध में पीछे हटना कायरता है। खर के साथ लड़ते हुए राम तीन पग पीछे हटे थे। किसी को छिप कर मारना भी वीर-विद्या के विपरीत है। राम ने बालीको पेड़ की आड़ में छिप कर मारा था ॥ ३४ ॥

महाराजाः रामभद्राः, तथैव=आलोचनां विनैवेत्यर्थः, तिष्ठन्तु=वर्तन्ताम्; हुमिति परिहासे, कोपपूर्णे स्वीकारे वा, वर्तते=तेषां चरितमालोचनीयं वर्तते, अत्र किमपि वक्तव्यमास्त इति भावः। सुन्दरस्त्रीमथने—सुन्दस्य=सुन्दनाम्नो राक्षसस्य स्त्रियाः= भार्यायास्ताटकाया इत्यर्थः, मथने=मारणे, अपि=च, अकुण्ठयशसः—अकुण्ठम्= अप्रतिहतं यशः=कीर्तिर्येषां ते तादृशाः, अप्रतिहतकीर्तय इत्यर्थः, हीति निश्चये, ते= रामभद्राः, लोके=जगति, महान्तः=श्रेष्ठाः, महापुरुषाः, सन्ति=वर्तन्ते। शास्त्रप्रतीकूले स्त्रीवधाचरणेऽपि लोकस्तान् प्रशंसत्येवेति अहो तेषां महत्त्वमिति भावः। खरा-योधने—खरेण=तदाख्येन राक्षसेन सह आयोधने=युद्धे ("युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्" इत्यमरः) यानि=प्रगनुष्ठितानि, त्रीणि=त्रिसंख्याकानि, पदानि= पादन्यासाः, कुतोमुखानि=कुतो मुखं येषां तानि कुतोमुखानि=पराङ्मुखानि, अपिना निन्दाद्योतिता, आसन्=अभवन्। पादन्यासपराङ्मुखानीति वाचा वक्तुमपि जुगुप्सया कुतोमुखानीत्युक्तम्। वा=अथवा, इन्द्रसूनुनिधने-इन्द्रसूनोः=सुरराजपुत्रस्य बालिनो निधने=वधे, यत्=यादृशम्, कौशलम्=चातुर्यम्, प्रदर्शितमिति शेषः, तत्र=तस्मिन् विषये, अपि=च, जनः=लोकः, अभिज्ञः=विदितवृत्तान्तः, (अस्ति=वर्तते)। अत्रा-क्षेपालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ३४ ॥

चन्द्रकेतुः--आः तातापवादिन् ! भिन्नमर्याद ! अति हि नाम प्रगल्भसे।

लवः--अये ! मय्येव भ्रुकुटीमुखः संवृत्तः।

सुमन्त्रः--स्फुरितमनयोः क्रोधेन। तथा हि--

टिप्पणी—विचारणीय०—वि + √चर् + णिच् + अनीयर् + विभक्त्यादिः।

कुतोमुखानि—"पीछे की ओर हटे" यह कहने में भी लज्जा की अनुभूति लव को हो रही है। अतः उन्होंने "कुतोमुख" कहा है। खर नामक राक्षस को मारने के समय राम को तीन पग पीछे हटना पड़ा था। कथा का सार इस प्रकार है—खर राक्षस ने बड़े वेग के साथ राम के ऊपर आक्रमण किया। राम सँभलने के लिये और अपना निशाना ठीक ढंग से लगाने के लिये तीन पैर पीछे हटे थे। फिर तो सँभल कर उन्होंने खर का वध ही कर डाला था। यही बात वाल्मीकि रामायण (अरण्य० ३०-२३, २४) में कही गई है—

तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिरप्लुतम्।
अपासर्पद् द्वित्रिपदं किञ्चित्त्वरितविक्रमः॥
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम्।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम्॥

लव का अभिप्राय है कि शूर-वीर के लिये युद्ध करते समय एक पग भी पीछे हटना कलंक की बात है फिर राम तो तीन पग पीछे हटे थे। अतः यह उनके लिये महाकलंक है।

इन्द्रसूनुनिधने—वाली को वरदान था कि जिससे तुम लड़ोगे उसका आधा बल तुम में चला आवेगा। अतः राम के लिये यह संभव न था कि वे सामने लड़ कर बाली को मारते। इसीलिये जब बाली--सुग्रीव लड़ रहे थे उस समय पेड़ की आड़ लेकर राम ने बाली पर बाण से प्रहार किया था। यह कार्य भी युद्ध के नियमों के विरुद्ध होने के कारण अधार्मिक था।

नाटकीय नियमों के अनुसार नायक की न्यूनताओं या अवगुणों का प्रदर्शन अथवा वर्णन वर्जित है। अतः अपनी औचित्य विचार चर्चा में महाकवि क्षेमेन्द्र ने—"वीर-रसस्य'''स्ववचसा कविना विनाशः कृत इत्यनुचितमेतत्" कह कर भवभूति की तीव्र आलोचना की है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का कथन है कि—"नायक में जो दोष हो अथवा रस के विरुद्ध जो बात हो उसे या तो छोड़ देना चाहिये अथवा उसका वर्णन प्रकारान्तर से करना चाहिये।" राम के द्वारा छल पूर्वक बाली का वध अनुचित कार्य था। अतः इसका वर्णन नहीं करना चाहिये था।

चन्द्रकेतु—आह, पिता (रामचन्द्र) जी की निन्दा करने वाले मर्यादा के उल्लंघन कर्ता, बहुत ही अधिक वहक कर बातें कर रहे हो।

लव—अरे, मुझ पर ही भौंहें टेढ़ी कर रहा है।

सुमन्त्र—इन दोनों के क्रोध भड़क उठे हैं। जैसे कि—

यत् स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत् परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ॥

(साहित्यदर्पण ६।५०)

इस श्लोक में राम के दोष-वर्णन का "तिष्ठन्तु हुं वर्तते" आदि के द्वारा प्रदर्शित करने से आक्षेप अलंकार है।

यहाँ प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—तातापवादिन्=पिता (रामचन्द्र) जी की निन्दा करने वाले, भिन्नमर्याद=मर्यादा के उल्लंघनकर्ता, प्रगल्भसे=ढिठाई दिखला रहे हो। भ्रुकुटिमुखः= भौंह टेढ़ी करने वाला, संवृत्तः=हो गया है। स्फुरितम्=फड़क उठा है, प्रकट हो गया है॥

टीका—चन्द्रकेतुरिति। आः=क्रोधसूचकमव्ययपदम्, तातापवादिन्—तातस्य=पितू रामचन्द्रस्येत्यर्थः अपवादी=दोषाविष्कारकः तातमपवदतीति वा तातापवादी=पितुर्लाञ्छनदायकस्तत्सम्बुद्धौ, भिन्नमर्याद–भिन्ना=उल्लंघिता मर्यादा= सदाचारो येन तादृशस्तत्सम्बुद्धौ, अति हि=अत्यधिकमेव, नाम=क्रोधाभिव्यञ्जकमव्ययपदमिदम्, ("नाम=प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने" इत्यमरः), प्रगल्भसे=धाष्टर्यं प्रदर्शयसि, "गल्भ धाष्टर्ये" इति धातोर्लट्, भ्रुकुटीमुखः–भ्रुकुटी=भ्रूवक्रता मुखे=आनने यस्य तादृशः, कोपेन भ्रूभङ्गयुक्तवदनः, संवृत्तः=जातः। स्फुरितम्=प्रादुर्भूतम्। अत्र 'नपुंसके भावे क्त' इति क्त-प्रत्ययः॥

टिप्पणी—तातापवादिन्—तात+अप √वद्+णिनि+विभक्त्यादिः।

भ्रुकुटी—यह शब्द चार प्रकार से लिखा जाता है—(१) भ्रुकुटी (२) भ्रूकुटी (३) भ्रकुटी और (४) भृकुटी।

स्फुरितम्—√स्फुर+क्त+विभक्तिः॥

[1]क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजो वेपथुः
किञ्चित्कोकनदच्छदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः।
धत्ते [2]कान्तिमिदं च वक्त्रमनयोर्भङ्गेन भिन्नं भ्रुवो-
श्चन्द्रस्यो[3]द्भटलाञ्छनस्य कमलस्योद्भ्रान्तभृङ्गस्य च ॥ ३५॥

[4]लवः—कुमार! कुमार! एह्येहि। विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥ इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कुमारविक्रमो नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥ ५ ॥

अन्वयः—क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः, सर्वाङ्गजः, वेपथुः, (उत्पन्नः); कोकनदच्छदस्य, किञ्चित्, सदृशे, नेत्रे, स्वयम्, रज्यतः; भ्रुवोः, भङ्गेन, भीमम्, अनयोः, इदम्, वक्त्रम्, च, उद्भटलाञ्छनस्य, चन्द्रस्य, च, उद्भ्रान्तभृङ्गस्य, कमलस्य, कान्तिम्, धत्ते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—क्रोधेन=कोप के कारण, उद्धत–धूतकुन्तलभरः=केश–समूह को अत्यधिक हिलाने वाला, सर्वाङ्गजः=सारे अङ्गों में उत्पन्न, वेपथुः=कम्पनं, (उत्पन्नः= उत्पन्न हो गया है); कोकनदच्छदस्य = रक्त कमल की पंखुड़ी से, किञ्चित=कुछ, सदृशे=मिलते हुए, समान, नेत्रे=दोनों नेत्र, स्वयम्=अपने आप, रज्यतः = लाल हो रहे हैं; भ्रुवोः=भ्रुकुटियों के, भङ्गेन=टेढ़ी होने से, भीमम्=डरावना, अनयोः=इन दोनों का, इदम्=यह, वक्त्राम्=मुख, च = भी, उद्भटलाञ्छनस्य=स्पष्ट कलंक से युक्त, प्रकट लाञ्छनवाले, लाञ्छन से युक्त, चंद्रस्य=चंद्रमा की, च=तथा, उद्भ्रान्त-भृङ्गस्य = मँडराते हुए भौंरों से युक्त, कमलस्य=कमल की; कान्तिम्=शोभा को, धत्ते = धारण कर रहा है ॥ ३५ ॥

टीका—क्रोधेनेत्यादिः। क्रोधेन=कोपेन, उद्धत–कुन्तलभरः—उद्धतम् = सातिशयं यथा स्यात्तथा धूताः=चलन्तः कुन्तलभराः=केशसमूहाः यस्मिन् सः, ("चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केश-शिरोरुहः" इत्यमरः), सर्वांगजः—सर्वेषु= निखिलेषु अङ्गेषु=अवयवेषु जायते=उत्पद्यते इति तादृशः, वेपथुः=कम्पः, अस्तीति शेषः। कोकनदच्छदस्य=रक्तारविन्दपत्रस्य, ("रक्तोत्पलं कोकनदं", 'दलं पर्णं छदः पुमान्' इत्युभयत्राप्यमरः), किञ्चित्=ईषत्, सदृशे=तुल्ये, नेत्रे=लोचने, स्वयम्=स्वत एव, रज्यतः=रक्ते भवतः, कोपेनेति योज्यम्। भ्रुवोः = भ्रूयुगलस्य, भङ्गेन=कौटिल्येन, भीमम्=भयानकम्, अनयोः=एतयोः, इदम्–एतत्, पुरतो दृश्यमानमित्यर्थः, वक्त्रम्=मुखम्, च = अपि, उद्भटलाञ्छनस्य—उद्भटम् = सुस्पष्टं लाञ्छनम्=

---

१. चूडामण्डलबन्धनं तरलयत्याकूजतो, २. 'कान्तिमकाण्डताण्डवितयोर्भङ्गेन वक्त्रम्' इति पाठान्तरम्, ३. 'स्योत्कट', ४. कुमारौ।

कोप के कारण केश-समूह को अत्यधिक कम्पित करने वाला, सारे अङ्गों में उत्पन्न कम्पन दिखलाई पड़ रहा है और रक्त कमल की पंखुड़ी से कुछ मिलते हुए दोनों नेत्र अपने आप लाल हो रहे हैं तथा भ्रुकुटियों के टेढ़ी होने के कारण डरावना इन दोनों का यह मुख भी प्रकट लाञ्छन वाले चंन्द्रमा की और मँडराते हुए भौरों से युक्त कमल की शोभा को धारण कर रहा है ॥ ३५ ॥

लव—कुमार, कुमार, आओ आओ, हम दोनों युद्ध के योग्य मैदान में उतरें।

(इस प्रकार सभी निकल जाते हैं।)

॥ महाकवि भवभूति के द्वारा विरचित उत्तररामचरित का कुमार–विक्रम नामक पञ्चम अंक समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

कलङ्को यस्य तादृशस्य, चन्द्रस्य=शशिनः, च=तथा, उद्भ्रान्तभृङ्गस्य—उद्भ्रान्ताः=ऊर्ध्वं भ्रमन्तो भ्रमराः=भृङ्गाः यस्मिन् तस्य तादृशस्य, कमलस्य=जलजस्य, कान्तिम्=शोभाम्, धत्ते=धारयति । अत्र निदर्शनाऽनुमानं चालङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—०धूत०—√धू + क्त + विभक्तिः ।

वेपथुः— √वेप्+अथुच्+विभक्तिः ।

चन्द्रस्य—सुन्दर गौर गोल मुखमण्डल चन्द्रमा के तुल्य है । पुतली की कालिमा चन्द्रगत कलङ्क के समान है ।

कमलस्य—मुख कमल के समान है और घूमती हुई पुतलियाँ मँडराते हुए भौंरें की तरह हैं ।

इस श्लोक में वक्त्र (मुख) की चन्द्रमा और कमल से समता प्रदर्शित की गई है । अतः यहाँ असम्भवद्वस्तु सम्बन्धरूपी निदर्शना अलंकार है । कम्पन तथा लाल नेत्र के द्वारा क्रोध का अनुमान होने से अनुमान अलङ्कार है ।

यहाँ प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—एहि=आओ । विमर्दक्षमाम्=युद्ध के योग्य, भूमिम्=मैदान में, अवतरावः=उतरें ॥

टीका—लव इति । एहि=आगच्छ, विमर्दक्षमाम्–विमर्दाय=युद्धाय क्षमाम्=योग्याम्, भूमिम्=भूभागम्, अवतरावः=अवतीर्णौ भवावः ॥

॥ इत्याचार्यरमाशंकरत्रिपाठिविरचितायामुत्तररामचरितव्याख्यायां शान्त्याख्यायां पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विमानेनोज्ज्वलं विद्याधरमिथुनम्)

विद्याधरः--अहो नु खल्वनयोर्विकर्तनकुलकुमारयोरकाण्डकलह-प्रचण्डयोरुद्द्योतितक्षत्रलक्ष्मीकयोरत्यद्भुतोद्भ्रान्तदेवासुराणि विक्रान्त-विलसितानि। तथा हि प्रिये ! पश्य।

झणज्झ[1]णितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकं धनु-
र्ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्।
वितत्य किरतोः शरानविरतं [2]पुनः शूरयो-
र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम्॥ १॥

शब्दार्थः–विकर्तनकुलकुमारयोः=सूर्यवंशी राजकुमारों के, अकाण्डकलहप्रचण्डयोः =अनवसर में ही उपस्थित युद्ध से क्रुद्ध, उद्योतितक्षत्रलक्ष्मीकयोः=उद्दीप्त क्षत्रियोचित शोभा से सम्पन्न, अत्यद्भुतोद्भ्रान्तदेवासुराणि=देवों और असुरों को आश्चर्यचकित करने वाले, विक्रान्तविलसितानि=पराक्रम के कार्यों ने॥

टीका—तत इति। युद्धस्य "दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।" इति दृश्यत्व–प्रतिषेधाद्विष्कम्भकेन तदाह–विद्याधरमिथुनमित्यादिना। विद्याधरः=देवयोनि-विशेषः, स च विद्याधरी च विद्याधरौ, 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः, तयोर्मिथुनम्=द्वन्द्वम्, विमानेन=व्योमयानेन॥

विद्याधर इति। विकर्तनकुलकुमारयोः—विकर्तनस्य=सूर्यस्य कुलम्=वंश-स्तस्य कुमारयोः=राजकुमारयोः, अकाण्डकलहप्रचण्डयोः—अकाण्डे=अनवसरे यः कलहः=विरोधस्तेन प्रचण्डयोः=क्रूरयोः, उद्योतितक्षत्रलक्ष्मीकयोः—उद्योतिता= प्रकाशिता क्षत्रलक्ष्मीः=क्षत्रियशोभा ययोस्तयोस्तादृशयोः, अत्यद्भुतोद्भ्रान्तदेवा-सुराणि=अत्यद्भुतेन=अतिविस्मयेन उद्भ्रान्ताः=विमूढा देवासुराः=अमरदैत्या यैस्तथो-क्तानि, विक्रान्तविलसितानि–विक्रान्तस्य=विक्रमस्य विलसितानि=चरितानि अथवा विक्रान्तस्य=वीरस्य विलसितानि=कार्याणि ("शूरो वीरश्च विक्रान्त" इत्यमरः)॥

टिप्पणी—तत इति। वध युद्ध तथा राज्य और देश आदि का उजाड़ा-जलाया जाना आदि रङ्गमञ्च पर नहीं दिखलाया जाता है। अतः विष्कम्भक में विद्याधरों की जोड़ी के संवाद द्वारा युद्ध का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. रणात्–रणत्–करणझञ्झण०, २. स्फुरच्चूडयो।

(तदनन्तर विमान से उज्ज्वलवेशधारी विद्याधरों का जोड़ा प्रवेश करता है)।

विद्याधर—ओह, अनवसर में ही उपस्थित युद्ध से क्रुद्ध और उद्दीप्त क्षत्रियोचित शोभा से सम्पन्न इन दोनों सूर्यवंशी राजकुमारों के पराक्रम के कार्य देवों और असुरों को भी आश्चर्यचकित करने वाले हैं। जैसे कि हे प्रिये, देखो—

झन-झनाते हुए कङ्कण की भाँति शब्द करती हुई छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त तथा टङ्कार करने वाली विशाल प्रत्यञ्चा से मण्डित दोनों किनारों से भीषण कोलाहल करने वाले धनुष को फैला कर वाणों की वर्षा करने वाले दोनों वीरों का फिर अद्भुत, संसार के लिये भयावह युद्ध सामने हो रहा है ॥ १ ॥

विद्याधर—देवों की एक जाति है। इनमें अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। ये रूप और वेश आदि से उज्ज्वल हुआ करते हैं।

उद्योतित०—उत् + √द्युत् + णिच् + क्त + विभक्तिः। **उद्भ्रान्त०**—उद् + √भ्रम् + क्त + विभक्तिः। **विक्रान्त०**—वि + √क्रम् + क्त + विभक्तिः ॥

अन्वयः—झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकम्, ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्, धनुः, वितत्य, अविरतम्, शरान्, किरतोः, शूरयोः, पुनः, विचित्रम्, भुवनभीमम्, आयोधनम्, अभिवर्तते ॥ १ ॥

शब्दार्थः—झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकम्=झन-झनाते हुए कङ्कण की भाँति शब्द करती हुई किङ्किणियों (छोटी-छोटी घण्टियों) से युक्त, ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्=टङ्कार करने वाली विशाल प्रत्यञ्चा है जिसमें ऐसे (धनुष के) दोनों किनारों से भीषण कोलाहल करने वाले, धनुः=धनुष को, वितत्य=फैला कर, शरान्=बाणों की, किरतोः=वर्षा करने वाले, शूरयोः=दोनों वीरों का, पुनः= फिर, विचित्रम्=अद्भुत, भुवनभीमम्=संसार के लिये भयावह, आयोधनम्=युद्ध, अभिवर्तते=सामने हो रहा है ॥ १ ॥

टीका—**झणदिति**। झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकम्—झणज्झणितम्= झणझणशब्दयुक्तं यत् कङ्कणम्=हस्ताभूषणं तद्वत् क्वणिताः=ध्वनियुक्ताः किङ्किण्यः=क्षुद्रघण्टिकाः यस्य तत् यस्मिन् तद्वा, ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्—ध्वनता=शब्दं कुर्वता गुरुणा=महता गुणेन=प्रत्यञ्चया अटनीभ्याम्= धनुषः कोटिभ्यां च कृतः विहितः करालः=भयङ्करः कोलाहलः=कलकलो यस्य तत्, धनुः=कार्मुकम्, एतादृशं वितत्य=मण्डलीकृत्य, अविरतम्=निरन्तरम्, शरान्=बाणान्, किरतोः=वर्षतोः, शूरयोः वीरयोः, पुनः=मुहुः, विचित्रम्=अद्भुतम्, भुवनभीमम्—भुवनेषु=लोकेषु भीमम्, आयोधनम्=युद्धम्, ("युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्।" इत्यमरः), अभिवर्तते=सम्मुखे विद्यते इति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। पृथ्वी छन्दः ॥ १ ॥

[1]जृम्भितं च विचित्राय मङ्गलाय द्वयोरपि ।
स्तनयित्नोरिवामन्द[2]दुन्दुभेर्दुन्दुभायितम् ॥ २ ॥

[3]तत्प्रवर्त्यतामनयोः प्रवीरयोरनवरतमविरलमिलितविकचकनककमल-कमनीयसंहतिरमरतरुणमणिमुकुलनिकरमकरन्दसुन्दरः पुष्पनिपातः ।

विद्याधरी—तत्किमिति पुर आकाशं दुर्दर्शतरलतडिच्छटाकडारमपरमिव झटिति संवृत्तम् ? (ता किं ति पुरो आआसं दुद्दंततरलतडिच्छडाकडारं अवरं विअ झत्ति संवुत्तम् ?)

टिप्पणी—झणज्झणित०–झणञ्झण + इतच् (इत) + विभक्तिः । क्वणित०–क्वण + क्त + विभक्तिः । वितत्य–वि + √तन् + ल्यप्, न का लोप । किरतोः—√कृ + शतृ + विभक्तिः ।

इस श्लोक में कङ्कणक्वणित में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है । यहाँ प्रयुक्त पृथ्वी छन्द का लक्षण—"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।। १ ॥

अन्वयः—द्वयोः, अपि, विचित्राय, मङ्गलाय, स्तनयित्नोः, इव, अमन्ददुन्दुभेः, दुन्दुभायितम्, जृम्भितम् ।। २ ।।

शब्दार्थः - द्वयोः=दोनों (बालकों) के, अपि=भी, विचित्राय=अद्भुत, मङ्गलाय=मङ्गल के लिये, कल्याण के लिये, स्तनयित्नोः=गरजते हुए बादलों की, इव=तरह, अमन्ददुन्दुभेः=विशाल नगाड़े का, दुन्दुभायितम्=दुम्-दुम् शब्द, जृम्भितम्=प्रारम्भ हो गया है ॥ २ ।।

टीका—जृम्भितमिति । एतयोः द्वयोः बालकयोः=द्वयोर्लवचन्द्रकेत्वोरित्यर्थः, अपि=च, विचित्राय=शद्भुताय, मङ्गलाय=कल्याणाय, स्तनयित्नोः=गर्जतो जलदस्य, इव=यथा, अमन्ददुन्दुभेः=महाभेर्याः, दुन्दुभायितम्=दुम्-दुम्ध्वनिः, जृम्भितम्=प्रादुर्भूतम् । अत्रोपमाऽलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ।।

टिप्पणी—जृम्भितम्—√जृम्भ + क्त + विभक्तिः ।

इस श्लोक में इव के द्वारा उपमा अलङ्कार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ।। २ ॥

शब्दार्थः—प्रवर्त्यताम्=प्रारम्भ की जाय, अनवरतम्=निरन्तर, अविरलमिलित-विकचकनककमलकमनीयसंहतिः=घने मिले हुए तथा विकसित सुवर्ण कमलों के

---

१. जृम्भितं च विचित्राय, २. रिवामन्द्रं, ३. तत्प्रवर्तताम् ।

इन दोनों (बालकों) के भी अद्भुत मङ्गल के लिये, गरजते हुए बादलों की तरह, विशाल नगाड़े का दुम्-दुम् शब्द प्रारम्भ हो गया है (अर्थात् नगाड़े का बजना प्रारम्भ हो गया है) ॥ २ ॥

अतः इन दोनों श्रेष्ठ वीरों के ऊपर निरन्तर घने मिले हुए तथा विकसित सुवर्ण कमलों के मनोहर समूह से युक्त और कल्पवृक्ष की चमचमाती हुई मणि-सदृश कलिकाओं के समूह की मधु से सुशोभित फूलों की वर्षा प्रारम्भ की जाय ।

विद्याधरी—तो सामने यह आकाश चकाचौंध उत्पन्न करने वाली चञ्चल बिजली की चमक से पीले रंग का अतः सहसा दूसरा-सा क्यों हो गया है ?

मनोहर समूह से युक्त, अमरतरुतरुणमणिमुकुलनिकरमकरन्दसुन्दरः=कल्पवृक्ष की चमचमाती हुई मणिसदृश कलिकाओं के समूह की मधु से सुशोभित, पुष्पनिपातः= फूलों की वर्षा ॥

टीका—तत्प्रवर्त्यतामिति । तत् = तस्माद्धेतोः, प्रवीरयोः = महावीरयोः, अनयोः=लवचन्द्रकेत्वोः, अनवरतम्=निरन्तरम्, अविरलेत्यादिः—अविरलैः=निबिडैः मिलितैः=संमिलितैः विकचैः=विकसितैः, कनककमलैः=सुवर्णपङ्कजैः कमनीया= मनोहरा, संहतिः=पंक्तिः यस्य सः, अमरतरुरिति–अमरतरूणाम्=कल्पवृक्षाणां, पारिजातादीनां वेत्यर्थः, ये तरुणाः = नवीनाः मणिसदृशाः = रत्नकल्पा मुकुलाः = कुड्मलास्तेषांनिकरस्य=समूहस्य ये मकरन्दाः=पुष्परसास्तैः सुन्दरः=मनोरमः, ("कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्", "मकरन्दः पुष्परसः" इत्युभयत्राप्यमरः), पुष्पनिपातः–पुष्पाणाम्=प्रसूनानां निपातः=वृष्टिः, प्रवर्त्यताम्=आरभ्यताम् ॥

टिप्पणी—विद्याधर के कहने का अभिप्राय यह है कि ये दोनों वीर बालक अद्भुत युद्ध कर रहे हैं । अतः इनकी वीरता की प्रशंसा में फूलों की वर्षा इनके ऊपर की जाय ॥

शब्दार्थः—पुरः=सामने, दुर्दर्शतरलतडिच्छटाकटारम्=चकाचौंध उत्पन्न करने वाली चञ्चल बिजली की चमक से पीले रंग वाला, पीले रंग का, अपरमिव=दूसरा सा, अनोखा सा, संवृत्तम्=हो गया है ॥

टीका—विद्याधरीति । किमिति=केन हेतुना, पुरः=अग्रतः, आकाशम्=गगनमण्डलम्, दुर्दर्शतरलतडिच्छटाकडारम्—दुर्दर्शा=दुःखेन दर्शनीया तरला = चञ्चला या तडितः=विद्युतः छटा=आभा तया कडारम्=पीतवर्णम्, अपरमिव=अन्यमिव, परिवर्तितमिवेति यावत्, संवृत्तम्=निष्पन्नम् ॥

टिप्पणी—**संवृत्तम्**—सम् + √वृत् + क्त + विभक्तिः ॥

विद्याधरः—तत्किं नु खल्वद्य ?

[1]त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः[2] ।
पुटभेदो ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः ॥ ३ ॥

(विचिन्त्य) आं ज्ञातम् । [3]जातक्षोभेण चन्द्रकेतुना [4]प्रयुक्तमप्रतिरूपमाग्नेयमस्त्रम्, यस्यायमग्नि[5]च्छरसम्पातः । संप्रति हि ।

अवदग्ध[6]बर्बरितकेतुचामरैरपयातमेव हि विमानमण्डलैः ।
[7]दहति[8] ध्वजांशुकपटावलीमिमां नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी ॥४॥

अन्वयः—ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः, त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः, पुटभेदः, (सञ्जातः) ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—लललाटस्थनीललोहितचक्षुषः=रुद्र के ललाट में स्थित नेत्र की, त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः=विश्वकर्मा के शाणयन्त्र (शान की मशीन) के चक्राकार भ्रमण पर घुमाये गये सूर्य की ज्योति के समान उज्जवल, पुटभेदः=पलक का उन्मीलन, (सञ्जातः=हुआ है) ? ॥ ३ ॥

टीका—त्वष्टृयन्त्रेत्यादिः । ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः—ललाटस्थम्=भाले स्थितं यत् नीललोहितस्य=रुद्रस्य, शिवस्येति यावत्, चक्षुः=नेत्रम्, अग्निरूपं तृतीयं लोचनमिति भावः, तस्य तादृशस्य, त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः—त्वष्टा=विश्वकर्मा तस्य यन्त्रम्=शाणयन्त्रं तस्य भ्रमिभिः=भ्रमणैः, भ्रमणक्रियाभिरित्यर्थः, भ्रान्तः=घूर्णितः यो मार्तण्डः=सूर्यस्तस्य ज्योतिः,=तेज इव उज्ज्वलः=दीप्यमानः, पुटभेदः—पुटयोः=पक्ष्मणोर्भेदः=उन्मीलनम्, संवृत्तः=सम्पन्नः, किमिति पूर्वतो योज्यम् । अत्र लुप्तोपमा सन्देहश्चालंकारौ, अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ॥

टिप्पणी—त्वष्टृयन्त्र०—टीकाकारों ने पौराणिक कथा का इस प्रकार उल्लेख किया है—सूर्य की पत्नी का नाम था संज्ञा । वह अपने पति के तेज को सह नहीं पाती थी । अतः उसने अपने पिता विश्वकर्मा (त्वष्टा) से इस कष्ट का निवेदन कर सूर्य के तेज को कम करने की प्रार्थना की । त्वष्टा ने सूर्य को अपने शाणयन्त्र (सान) पर चढ़ा कर घुमाया । इससे सूर्य दुर्बल हो गये और उनका तेज सहने योग्य बन गया । इसी बात की ओर यहाँ संकेत किया गया है । विष्णुपुराण (३।२।९, १०) में कथा का प्रकार इस तरह है—

"भ्रमिमारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोविशातनम् ।
कृतवानष्टमं भागं न व्यशातयताव्ययम् ॥
यत् सूर्याद् वैष्णवं तेजः शातितं विश्वकर्मणा ।"

---

१. त्वाष्ट्र०, २. रुज्ज्वलम्, ३. वत्सेन, ४. प्रयुक्तमस्त्राग्नेयम्, ५. अग्निच्छटासंपातः, ६. कर्बुरित, ७. दधति, ८. ध्वजांशुकपटाः ।

विद्याधर—तो क्या आज—रुद्र के ललाट में स्थित नेत्र की, विश्वकर्मा के शाण-यन्त्र (शान की मशीन) के चक्राकार भ्रमण पर घुमाये गए सूर्य की ज्योति के समान उज्ज्वल, पलक का उन्मीलन (हुआ है) ? ॥ ३ ॥

अच्छा, समझ गया । क्रुद्ध हुए चन्द्रकेतु के द्वारा यह अनुपम आग्नेयास्त्र छोड़ा गया है, जिससे यह अग्नि के समान बाणों की वृष्टि हो रही है ।

अधजले अतः बर्बरध्वनि करने वाले ध्वज एवं चँवरों से युक्त विमान-मण्डल दूर हट गये हैं । पलास के नवीन पुष्प की भाँति कान्तिवाली आग पताकाओं के इस समूह को जला रही है ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ७७ में भी इस कथा का वर्णन है । महाकवि कालिदास ने रघुवंश (६।३२) में इस कथा का उल्लेख इस प्रकार किया है--

"आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यन्त्रोल्लिखितो विभाति ॥"

किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि शाण पर खरादी गई वस्तु का तेज बढ़ जाता है। उसकी चमक बढ़ जाती है । शाण पर चढ़ाकर घुमाये गये सूर्य की तेजोवृद्धि की ओर यहाँ संकेत भी किया गया है ॥

ललाटस्थ०--ललाट + √स्था + क (अ) + विभक्तिः ।

"मार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः" में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है । आग्नेय अस्त्र के द्वारा अग्निवर्षा को शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि बतलाने से सन्देह अलंकार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द है—अनुष्टुप् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः--जातक्षोभेण = कुपित, क्षुब्ध, चन्द्रकेतुना = चन्द्रकेतु के द्वारा, प्रयुक्तम्=छोड़ा गया है, अप्रतिरूपम्=अनुपम, शरसम्पातः=बाणों की वृष्टि ॥

टीका--आं ज्ञातमिति । **जातक्षोभेण**--जातः = उत्पन्नः क्षोभः=कोप इत्यर्थः यस्य तेन, चंद्रकेतुना=लक्ष्मणसुतेन, प्रयुक्तम्=प्रहृतम्, प्रेरितमिति यावत्, अप्रतिरूपम्=अनुपमम्, यस्य=आग्नेयास्त्रस्येत्यर्थः, शरसम्पातः—शराणाम्=बाणानां सम्पातः=धारावृष्टिः ॥

टिप्पणी—**आग्नेयम्**—अग्निर्देवताऽस्येति, अग्नि + ढक् (एय) + विभक्त्यादिः ॥

अन्वयः—अवदग्धबर्बरितकेतुचामरैः, विमानमण्डलैः, अपयातम्, एव, हि, नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः, शिखी, इमाम्, ध्वजांशुकपटावलीम्, दहति ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—अवदग्धबर्बरितकेतुचामरैः = अधजले अतः बर्बर ध्वनि करने वाले ध्वज एवं चँवरों से युक्त, विमानमण्डलैः=विमान-समूह, अपयातम्=दूर हट गये हैं, एव=यह निश्चय का सूचक अव्यय है; हि=यह पादपूर्ति के लिये आया है, नव-

आश्चर्यम् ! प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटु[1]रटत्स्फुलिङ्ग-गुरुरुत्तालतुमुल[2]लेलिहानोज्ज्वलज्वालासंभारभैरवो भगवानुषर्बुधः ! प्रचण्डश्चास्य सर्वतः संपातः। तत्प्रिया[3]मंशुकेनाच्छाद्य सुदूरमपसरामि (तथा करोति।)

विद्याधरी—दिष्टया एतेन विमलमुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृणमांसलेन नाथदेहस्पर्शेनानन्दसंदलितघूर्णमानवेदनाया अर्धोदित एवान्तरितो मे सन्तापः। (दिट्ठिया एदेण विमलमुत्ता[4]सेअसीअलसिणिद्धमसिणमंसलेण णाहदेहप्फंसेण [5]आणन्दसंदलिदघुण्णमाणवेअणाए अद्धोदिदो[6]एव्व अन्दरिदो मे संदावो।)

किंशुकद्युतिसविभ्रमः=पलास के नवीन पुष्प की भाँति कान्तिवाली, शिखी=आग, इमाम्=इस, ध्वजांशुकपटावलीम्=पताकाओं के समूह को, दहति=जला रही है ॥४॥

टीका—अवदग्धेत्यादिः। अवदग्धानि=किञ्चिद्दग्धानि अतो बर्बरितानि=दाहजबर्बरध्वनियुक्तानि, कर्बुरितानीति पाठे चित्रवर्णानि, एतादृशानि केतुचामराणि=ध्वजाः प्रकीर्णकानि च, येषां तथोक्तैः, ("चामरं तु प्रकीर्णकम्" इत्यमरः), विमानमण्डलैः—विमानानाम्=व्योमयानानां मण्डलैः=समूहैः, अपयातम्=पलाय्यान्यत्र गतम्, भावे क्तः, एवेति निश्चये, हीति पादपूर्तौ। नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः=नवम्=नवीनं यत् किंशुकम्=पलासपुष्पं तस्य द्युतेः=कान्तेः समानो विभ्रमः=शोभा यस्य स तादृशः, शिखी=अग्निः, इमाम्=एताम्, पुरोवर्तिनीमित्यर्थः, ध्वजांशुकपटावलीम्—ध्वजाः=महाकेतवस्तेषामंशुकानि=चीरांशुकानि तान्येव पटाः=वस्त्राणि तेषामवलीम्=पंक्तिम्, अत्र सामान्यविशेषशब्दयोः कर्मधारयः। "उत्तरीये वस्त्रमात्रे सूक्ष्मवस्त्रेऽपि चांशुकम्" इति रत्नमाला। अंशुकपदं सूक्ष्ममात्रपरं गोवलीवर्दन्यायेन। दहति=भस्मीकरोति। अत्र निदर्शनाऽलंकारः। मञ्जुभाषिणी छन्दः ॥ ४ ॥

टिप्पणी—अवदग्ध०—अव+√दह्+क्त+विभक्तिः। अपयातम्—अप+√या+क्त+विभक्तिः। शिखी—शिखा+इन्+विभक्तिः।

इस श्लोक में अग्निकी लपटों की समानता पलास के नवीन फूलों से बतलाई गई है।

अतः यहाँ निदर्शनाऽलङ्कार तथा मञ्जुभाषिणी छन्द है। छन्द का लक्षण—

"सजसा जगौ भवति मंजुभाषिणी ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—उच्चण्ड—वज्रखण्ड–अव–स्फोट—पटु—रटत्—स्फुलिंग— गुरुः=प्रचण्ड वज्रखण्डके टूटने की तरह तीक्ष्ण शब्द करती हुई चिनगारियों के कारण विशाल बने हुए, उत्ताल–तुमुल-लेलिहानोज्ज्वल–ज्वाला–सम्भार–भैरवः= ऊँची

---

१. रवस्फुलिंग, २. लोललेलिहानो०, ३. अङ्केना०, ४. फल, मोत्तिअसर, ५. आणन्दमन्दमुउलिदः, आनन्दमन्दमुकुलितः, ६. अप्पोदिदो (अर्धोदितो)।

आश्चर्य है ? प्रचण्ड वज्रखण्ड के टूटने की तरह तीक्ष्ण शब्द करती हुई चिनगारियों के कारण विशाल बने हुए, ऊची भयंकर लपलपाती हुई वेग से प्रज्ज्वलित ज्वालाओं के समूह से भयंकर यह भगवान् अग्निदेव प्रकट ही हो गये हैं। इनका चारों ओर फैलाव बड़ा भीषण है। तो मैं अपनी प्रिया को रेशमी वस्त्र से ढक कर वहुत दूर ले चलता हूँ। (वैसा ही करता है।)

विद्याधरी—सौभाग्य से, निर्मल मोती के पर्वत की तरह शीतल चिकने कोमल और पुष्ट, पतिदेव के शरीर के स्पर्श से उत्पन्न आनन्द के कारण बढ़ती हुई पीडा के नष्ट हो जाने से मेरा सन्ताप अधूरा ही प्रकट होकर समाप्त हो गयाहै।

भयंकर लपलपाती हुई वेग से जलती हुई ज्वालाओं के समूह से भयंकर, उषर्बुधः = अग्निदेव, प्रवृत्त एव=प्रकट ही हो गये हैं। संपातः=फैलाव ॥

टीका--आश्चर्यमिति । उच्चण्डेत्यादि—उच्चण्डः=अतिभयङ्करो यो वज्रखण्डः=अशनिशकलं तस्य अवस्फोटः=स्फुटनं तद्वत् पटुः=तीक्ष्णं यथा स्यात्तथा रटन्=शब्दं कुर्वन् स्फुलिङ्गैः=अग्निकणैर्गुरुः-महान् बाहुल्ययुक्तो वा, उत्तालेत्यादिः-उत्तालम्=अतितुमुलं यथास्यात्तथा तुमुलः=सङ्कुलः लेलिहानः=भृशं कवलनपरः उज्ज्वलः=प्रदीप्तो यो ज्वालासम्भारः=ज्वालातिशयस्तेन भैरवः=भयङ्करः, भगवान्=दीप्तिसम्पन्नः, उषसि=प्रातःकाले, सन्ध्यायामिति यावत्, बुध्यते=प्रज्वाल्यत इति। उषर्बुधः=अग्निदेवः, आहिताग्नयो हि अग्निमुषसि प्रादुष्कुर्वन्ति, प्रवृत्तः=प्रज्वलितः, एवेति निश्चये। अंशुकेन=पट्टवस्त्रेण, अपसरामि=अपनयामि ॥

टिप्पणी—लेलिहानः—√लिह् + यङ् + शानच्। यङ् के कारण द्वित्व आदि होगा। यहाँ पर यङ् का लोप हो गया है। सामान्यरूप से लेलिह्यमान यह रूप बनेगा।

उषर्बुधः—उषस् + √बुध + क (अ) + विभक्तिः। यहाँ "इगुपधज्ञा०" (३।१।१३५) से क प्रत्यय होता है।

आच्छाद्य--आ + √छद् + णिच् + ल्यप् ॥

शब्दार्थः—दिष्टचा = सौभाग्य से, विमल–मुक्ताशैल–शीतल–स्निग्ध–मसृण–मांसलेन = निर्मल मोती के पर्वत की तरह शीतल, चिकने, कोमल और पुष्ट, नाथदेहस्पर्शेन=पतिदेव के शरीर के स्पर्श से, आनन्दसंदलितघूर्णमानवेदनायाः = आनन्द के कारण बढ़ती हुई पीडा के नष्ट हो जाने से, अन्तरितः=समाप्त हो गया है।

टीका--विद्याधरीति । दिष्टचा = सौभाग्येन, विमलमुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृणमांसलेन—विमलः=निर्मलो यो मुक्ताशैलः=मौक्तिकपर्वतः स इव शीतलः=शैत्यस्पर्शयुक्तः स्निग्धः=स्नेहयुक्तो मसृणः=कोमलमांसलश्च=पुष्टश्च स्फीतश्चेति वा तेन

विद्याधरः—अयि ! किमत्र मया कृतम् ? अथवा ।

[1]न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥ ५ ॥

विद्याधरी–कथमविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लताविलासमांसलैर्मत्तमयूरकण्ठश्यामलैरवस्तीर्यते नभोऽङ्गणं जलधरैः । (कहं अविरलविलोलघुण्णमाणविज्जुल्लदाविलासमंसलेहिं मत्तमऊरकण्ठसामलेहिं ओत्थरीअदि णभो[2]ङ्गणं अलहरेहिं ?

विद्याधरः—[3]कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभावः खल्वेषः । कथमविरलप्रवृत्तवारिधारासंपातैः प्रशान्तमेव पावकास्त्रम् !

विद्याधरी—प्रियं मे, प्रियं मे । (पिअं मे, पिअं मे ।)

तादृशेन, नाथदेहस्पर्शेन—नाथस्य=पत्युर्देहस्य=शरीरस्य स्पर्शेन=आमर्शनेन, आनन्दसन्दलितघूर्णमानवेदनायाः—आनन्देन=स्पर्शजसुखेन सन्दलिता=विनष्टा घूर्णमाना=प्रसरन्ती वेदना=दुःखं यस्यास्तस्याः, मे=मम, विद्याधरपत्न्या इत्यर्थः, सन्तापः=पीडा, अर्धोदितः=किञ्चिदुत्पन्न एव, अन्तरितः=तिरोहितः ॥

टिप्पणी—०स्निग्ध०- √स्निह् + क्त + विभक्तिः । घूर्णमान०– √घूर्ण + शानच् + विभक्तिः । अन्तरितः—अन्तर् + इ + क्त + विभक्तिः ॥

अन्वयः—यः, जनः, यस्य, प्रियः, (अस्ति, सः), किञ्चित्, अपि, न, कुर्वाणः, सौख्यैः, दुःखानि, हि, अपोहति; तत्, तस्य, किमपि, द्रव्यम्, (अस्ति) ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—यः=जो, जनः=व्यक्ति, यस्य=जिसका प्रियः = प्रिय, प्रेमपात्र, (अस्ति = है), सः=वह, प्रेमपात्र व्यक्ति, किञ्चित्=कुछ, अपि=भी, न=नहीं, कुर्वाणः=करता हुआ, सौख्यैः=(सहवास से होने वाले) सुखों से, दुःखानि = दुःखों को, हि=निश्चय ही, अपोहति = दूर कर देता है; तत्=वह, तस्य=उसका, किमपि=कोई अद्भुत, कोई विलक्षण, द्रव्यम्=धन, (अस्ति=है) ॥ ५ ॥

टीका—न किञ्चिदपीति । यो जनः = यो मनुष्यः, वस्तुतस्तु प्राणीति वक्तव्यम्, यस्य प्रियः-प्रेमपात्रमस्ति स जनः, किञ्चिदपि=किमपि, न कुर्वाणः = न विदधदपि, सौख्यैः=सामीप्यजन्यैः सुखैः, दुःखानि = कष्टानि, हीति निश्चये, व्यपोहति = नाशयति । तत् = दुःखनाशहेतुभूतो जनः, विधेयप्राधान्यादत्र नपुंसकत्वम्, तस्य = अपोहनीयदुःखस्य, किमपि=अनिर्वचनीयम्, विलक्षणमिति भावः, द्रव्यम्=भव्यवस्तु, "द्रव्यं च भव्ये" इति निपातः, अस्तीति क्रियाशेषः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५ ॥

---

१. अकिंचि०, २. णहत्थल (णभोङ्गणं) ३. क्वचित्–हन्त, अयि, इत्यधिकः पाठः ।

विद्याधर—अरी, इसके लिये मैंने क्या किया है ? अथवा—

जो व्यक्ति जिसका प्रिय है (वह) कुछ न करता हुआ भी (एक साथ रहने के) आनन्द से दुःखों को निश्चय ही नष्ट कर देता है। वह (व्यक्ति) उसका अनिर्वचनीय धन (है) ॥ ५ ॥

विद्याधरी—निरन्तर चञ्चल तथा चतुर्दिक् घूमती हुई बिजली की चमक से परिपुष्ट तथा मतवाले मयूरों के कण्ठ के समान श्यामल मेघों से आकाश-मण्डल क्यों व्याप्त हो रहा है ?

विद्याधर—प्रसन्नता है कि कुमार लव के द्वारा छोड़े गये वारुणास्त्र का यह प्रभाव है। निरन्तर होनेवाली मूसलाधार वर्षा से क्या आग्नेयास्त्र शान्तही हो गया ?

विद्याधरी--(आग्नेयास्त्र की शान्ति) मुझे प्रिय है, मुझे प्रिय है।

टिप्पणी—यह श्लोक द्वितीय अङ्क के उन्नीसवें श्लोक के रूप में पीछे आ चुका है ॥ ५ ॥

शब्दार्थः--अविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लताविलासमांसलैः = निरन्तर चञ्चल तथा चतुर्दिक् घूमती हुई बिजली की चमक से परिपुष्ट, मत्तमयूरकण्ठश्यामलैः= मतवाले, मयूरों के कण्ठ के समान श्यामल, जलधरैः=मेघों से। नभोऽङ्गणम् = आकाशरूपी आँगन, आकाश-मण्डल। कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभावः=कुमार लव के द्वारा छोड़े गये वारुणास्त्र का यह प्रभाव है। अविरलप्रवृत्तवारिधारासम्पातैः= निरन्तर होने वाली मूसलाधार वर्षा से, पावकास्त्रम्=आग्नेयास्त्र ॥

टीका--विद्याधरीति। अविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लतामांसलैः=अविरलम्= निरन्तरं विलोलाः=चञ्चला घूर्णमानाः=भ्रमन्त्यो या विद्युल्लताः=तडिद्वल्ल्यस्तासां यो विलासः =स्फुरणं तेन मांसलैः = पुष्टैः, मत्तमयूरकण्ठश्यामलैः—मत्ताः=मद-विह्वला ये मयूराः=बर्हिणस्तेषां कण्ठाः=गलप्रदेशा इव श्यामलाः = नीलास्तादृशैः, जलधरैः=सजलमेघैः, नभोऽङ्गणम्—नभसः=आकाशस्य अङ्गणम्=चत्वरम्, ("अङ्गणं चत्वराजिरे" इत्यमरः), अवस्तीर्यते=आच्छाद्यते। कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभावः—कुमारलवेन=लवनाम्ना कुमारेण प्रयुक्तम्=प्रेरितं यद्वारुणास्त्रम्=वारुणदैवतास्त्रं तस्य प्रभावः=सामर्थ्यम्। अविरलप्रवृत्तवारिधारासम्पातैः—अविरलम्=निरन्तरं प्रवृत्ताः=प्रसृता या वारिधाराः=जलधारास्तासां सम्पातैः=सम्पतनैः, वर्षणैरिति यावत् ॥

टिप्पणी--**अवस्तीर्यते**—अव + √स्तृ + कर्मवाच्य लट् प्र०। **वारुण०**—वरुण + अण् + विभक्त्यादिः। **प्रशान्तम्**--प्र + √शम् + क्त + विभक्तिः ॥

विद्याधरः—[1]हन्त भोः! सर्वमतिमात्रं दोषाय। यत्प्रलयवा[2]तोत्क्षोभगम्भीर[3]गुलुगुलायमानमेघमेदुरितान्ध[4]कारनीरन्ध्रनद्धमिव एकवारविश्वग्रसन[5]विकटविकरालकालमुख[6]कन्दरविवर्तमानमिव युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारं नारायणोदरनिविष्टमिव भूतं विपद्यते[7]। साधु [8]चन्द्रकेतो! साधु! स्थाने वायव्यमस्त्रमीरितम्। यतः।

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि [9]प्रविलयः कृतः॥ ६॥

शब्दार्थः——सर्वम्=सब कुछ, अतिमात्रम्=अधिक मात्रा में होने पर, अधिक होने पर, दोषाय=दोष के लिये, बुरी होती है। प्रलयवातोत्क्षोभगम्भीरगुलगुलायमानमेघमेदुरितान्धकारनीरन्ध्रनद्धम्=प्रलयकालीन वायु से होने वाले विक्षोभ के कारण गम्भीर गड़गड़ाहट करने वाले बादलों के घोर अन्धकार से कसकर बँधा हुआ-सा, एकवार–विश्वग्रसनविकटविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव=एक बार में ही सारे विश्व को निगल जाने के लिये विशाल खुले हुए अति भीषण यमराज के कन्दरा सदृश मुख में छटपटाता हुआ-सा, युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारम्=युग की समाप्ति पर अर्थात् प्रलयकाल में योगरूपी निद्रा के द्वारा अपने सभी (मुख आदि) द्वारों को बन्द कर लेने वाले, नारायणोदरनिविष्टमिव=जलशायी विष्णु के पेट में पड़ा हुआ-सा, भूतम्=सारा प्राणि-समूह, विपद्यते=दुःखी हो रहा है॥

टीका—विद्याधर इति। हन्तेति खेदे, सर्वं वस्तु अतिमात्रम्=प्रमाणातिक्रान्तम्, दोषाय=दूषणाय, कल्पत इति शेषः। यत्=यस्मात्कारणात्, प्रलयवातोत्क्षोभगम्भीरगुलगुलायमानमेघमेदुरितान्धकारनीरन्ध्रनद्धम्——प्रलयवातेन = कल्पान्तमारुतेन उत्क्षोभाः=अतिशयक्षोभयुक्ताः गम्भीराः=अनल्पाः गुलगुलायमानाः=गुलगुल इत्याकारकवर्णध्वनियुक्ताः ये मेघास्तैर्मेदुरितेन=सान्द्रितेन अन्धकारेण=तमसा नीरन्ध्रम्=अविरलं नद्धमिव=बद्धमिव, एकवारविश्वग्रसनविकटविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव——एकेन वारेण=क्षणेन विश्वस्य=संसारस्य ग्रसनेन=कवलनेन विकटम्=निम्नोन्नतं विकरालम्=विशेषेण भीषणं यत् कालमुखम्=मृत्युवक्त्रं तस्मिन् विवर्तमानमिव=विकुर्वाणमिव, युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारम्–युगान्ते=कल्पान्ते योगनिद्रया=ध्यानात्मकस्वापेन निरुद्धानि=पिहितानि सर्वाणि=निखिलानि द्वाराणि=मुखादिनिर्गममार्गाः यस्य तत्तथोक्तम्, नारायणोदरनिविष्टम्—तादृशं यन्नारायणस्य=जलशायिनो भगवतः श्रीकृष्णस्य उदरम्=जठरं तस्मिन् निविष्टमिव=प्रविष्टमिव,

---

१. हन्त हन्त भोः, २. वातावलि०, ३. गुणगुणायमान०, गुमगुमायमान०, ४. मेदुरान्ध०, ५. विकच०, ६. कण्ठ०, ७. प्रवेपते, ८. वत्स चन्द्र०, ९. विप्रलयः।

विद्याधर--कष्ट है, अधिक मात्रा में होने पर सारी चीजें बुरी होती हैं। क्योंकि प्रलयकालीन वायु से होने वाले विक्षोभ के कारण गम्भीर गड़गड़ाहट करने वाले बादलों के घोर अन्धकार से कस कर बंधा हुआ-सा और एक बार में ही सारे विश्व को निगल जाने के लिये खुले हुए अति भीषण यमराज के कन्दरा सदृश विशाल मुख में छटपटाता हुआ-सा तथा युग की समाप्ति पर (अर्थात् प्रलय काल में) योगरूपी निद्रा के द्वारा अपने सभी (मुख आदि) द्वारों को बन्द कर लेने वाले जलशायी विष्णु के पेट में पड़ा हुआ-सा सारा प्राणि-समूह दुःखी हो रहा है। शाबाश चंद्रकेतु, शाबाश। तुमने बहुत उचित समय पर वायव्यास्त्र को छोड़ा है। क्योंकि--

तत्त्वज्ञान के सदृश वायु के द्वारा बहुत से भी मेघों का उसी प्रकार से न जाने कहाँ, लोप कर दिया गया जैसे तत्त्वज्ञान के द्वारा विवर्त (काल्पनिक जगत्) का ब्रह्म में लोप कर दिया जाता है ॥ ६ ॥

विशेषः—विवर्तानाम्—विवर्त वेदान्तशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है—काल्पनिक प्रपञ्च। अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म सत्य और जगत् उस ब्रह्म का उसी प्रकार विवर्त है जैसे अँधेरे की रस्सी का विवर्त है—सर्प। प्रकाश पड़ने पर सर्प मिथ्या हो जाता है और एकमात्र रस्सी ही सत्यरूप से बची रह जाती है। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान हो जाने पर प्रपञ्च गायब हो जाता है और एक मात्र ब्रह्म ही अवशिष्ट रह जाता है। ठीक इसी प्रकार वायव्यास्त्र के प्रभाव से चलने वाली वायु ने मेघों को उड़ाकर कहीं लुप्त ही कर दिया ॥ ६ ॥

भूतम्=प्राणिसमूहः, "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्" इति जातावेकवचनम्, विपद्यते=विपदं प्राप्नोति। वायव्यम्=वायुदैवत्यम्, "वाय्वृतु०" इति यत्प्रत्ययः, ईरितम्=प्रेरितम्, इति यत्तत् स्थाने=युक्तम् ॥

टिप्पणी--**गुलगुलायमान०**--गुलगुल+डाच्+क्यष्+शानच्, **०नद्धम्**–√नह्+क्त+विभक्त्यादिः। **०विवर्तमानम्**–वि+√वृत्+शानच्+विभक्तिः। **ईरितम्**--√ईर्+णिच्+क्त+विभक्तिः ॥

अन्वयः—विद्याकल्पेन, मरुता, भूयसाम्, अपि, मेघानाम्; विवर्तानाम्, ब्रह्मणि, इव; क्वापि, प्रविलयः, कृतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—विद्याकल्पेन=विद्या के तुल्य, तत्त्वज्ञान के सदृश, मरुता=वायु के द्वारा, भूयसाम्=बहुत से, अपि=भी, मेघानाम्=मेघों का, विवर्तानाम्=विवर्तों का, ब्रह्मणि=ब्रह्म में (जैसे लय हो जाता है), इव=उसी तरह, क्वापि=कहीं, न जाने कहाँ, प्रविलयः=लोप, कृतः=कर दिया गया ॥ ६ ॥

विद्याधरी—नाथ ! क इदानीमेष ससंभ्रममोत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तरीयाञ्चलो दूरत एव मधुरस्निग्धवचनप्रतिषिद्धयुद्धव्यापार एतयोरन्तरे विमानवरमवतारयति ? (णाध ! को दाणिं एसो ससंभमोक्खित्तकरम्भमदु[1]त्तरीअञ्चलोदूरदो एव्व[2] महुरसिणिद्धवअणपडिसिद्धजुद्धव्वावारो एदाणं अन्दरे[3] विमाणवरं ओदरावेदि ?)

विद्याधरः—(दृष्ट्वा)[4] एष शम्बूकवधात्प्रतिनिवृत्तो रघुपतिः ।

[5]शान्तं महापुरुषसंगदितं निशम्य तद्गौरवात्समुपसंहृतसंप्रहारः ।
शान्तो लवः, प्रणत एव च चन्द्रकेतुः, कल्याणमस्तु सुतसंगमनेन[6] राज्ञः ॥७॥

तदितस्तावदेहि । (इति निष्क्रान्तौ ।)

। मिश्र विष्कम्भकः ।

टीका--विद्याकल्पेनेति । विद्याकल्पेन = तत्त्वमस्यादिवाक्यजनिततत्त्वज्ञानसदृशेन, मरुता=वायुना कर्त्रा, भूयसाम् = बहुतराणाम्, अपि=च, मेघानाम्=जलदानाम्, विवर्तानाम्=ब्रह्मणि कल्पितानां नामरूपात्मकदृश्यपदार्थानाम्, ब्रह्मणि=निर्विशेषसन्मात्रे कूटस्थे चैतन्ये, इव=यथा, क्वापि=कुत्रापि, प्रविलयः = निवृत्तिः, कृतः=विहितः । यथा तत्त्वज्ञानेन नामरूपात्मकसकलजगतां ब्रह्मणि लयो भवति तथैव वायव्यास्त्रोत्थवायुना पर्जन्यास्त्रोत्थमेघानां क्वापि प्रविलयः कृत इति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—विद्याकल्पेन--विद्या + कल्पप् + विभक्तिः । कुछ कम अर्थ में "ईषदसमाप्तौ० (५ । ३।६७) से कल्पप् प्रत्यय होता है । भूयसाम्--बहु + ईयसुन् + विभक्तिः ।

प्रविलयः कृतः--आग्नेय आदि अस्त्रों का निर्माण विशेष प्रकार से हुआ करता था । इनके छोड़ने से अग्नि की वर्षा होने लगती थी । इस अस्त्र को शान्त करने के लिये विपक्षी वारुणास्त्र का प्रयोग करता था । इसके प्रयोग से घोर वर्षा होती थी । वरुणास्त्र की शान्ति के लिये दूसरी ओर से वायव्यास्त्र का प्रयोग होता था । इससे जोरों की आँधी चलती थी और सारे बादल गायब हो जाते थे । जृम्भकास्त्र के प्रयोग से शत्रु-सेना निश्चेष्ट होकर जँमाई लेने लगती थी । इस प्रकार इन अस्त्रों से घात-प्रतिघात हुआ करता था । इन अस्त्रों के निर्माण और प्रयोग की विधि अत्यन्त गुप्त रक्खी जाती थी ।

इस श्लोक में विद्याकल्पेन में कल्पप् प्रत्यय इव अर्थ का सूचक है और उत्तरार्ध में इव के द्वारा उपमा है । इस प्रकार इस श्लोक में दो उपमाएँ हैं ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप् ॥ ६ ॥

---

१. पट्टा–ट्टका–ञ्चलो, २. महुरवअण०, ३. मज्झेविमाणं, ४. दिष्टचा एष, ५. शब्दं महापुरुषसंविहितम्, ६. संमिलनेन, पुनरागमनेन ।

विद्याधरी—स्वामिन्, यह कौन है जो इस समय शीघ्रतापूर्वक उठाये हुए हाथ से दुपट्टे के छोर को हिलाते हुए दूर से ही मधुर तथा स्नेहपूर्ण वचनों से युद्ध कार्य को रोकते हुए इन दोनों के बीच में अपने विमान को उतार रहा है ?

विद्याधर—(देखकर) शम्बूक के वध से लौटते हुए यह रामचन्द्र हैं।

महापुरुष की शान्त वाणी को सुनकर उनके प्रति आदर भाव के कारण लव ने अपने अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार को रोक लिया और चन्द्रकेतु भी नतमस्तक हो गये। अपने पुत्रों (लव एवं कुश) के समागम से महाराज (रामचन्द्र) का कुशल हो ॥७॥

तो जरा इधर आओ। (दोनों निकल गये।)

॥ मिश्र विष्कम्भक समाप्त ॥

शब्दार्थः—ससम्भ्रमम्=शीघ्रतापूर्वक, उत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तरीयाञ्चलः=उठाये हुए हाथ से दुपट्टे के छोर को हिलाते हुए, मधुरस्निग्धवचनप्रतिषिद्धयुद्धव्यापारः=मधुर तथा स्नेह पूर्ण वचनों से युद्ध-कार्य को रोकते हुए। शम्बूकवधात्=शम्बूक के वध से, प्रतिनिवृत्तः=लौटते हुए, रघुपतिः=रामचन्द्र ॥

टीका—विद्याधरीति। ससंभ्रमम्—सम्भ्रमेण=वेगेन सहितं यथा स्यात्तथा, उत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तरीयाञ्चलः—उत्क्षिप्तः=उत्थापितो यः करः = हस्तस्तेन भ्रमन् = घूर्णन् उत्तरीयाञ्चलः=प्रावारप्रान्तो येन सः, मधुरस्निग्धवचनप्रतिषिद्धयुद्धव्यापारः—मधुरैः=मिष्टैः स्निग्धैः=स्नेहपूर्णैः वचनैः=वाक्यैः प्रतिषिद्धः=निवर्तितः युद्धव्यापारो येन तथोक्तः, एतयोः=लवकुशयोः, अन्तरे=मध्ये। शम्बूकवधात्=शम्बूकवधं निर्वर्त्येत्यर्थः, ल्यब्लोपे पञ्चमी; प्रतिनिवृत्तः=प्रत्यागतः, रघुपतिः=रामचन्द्रः ॥

टिप्पणी—०स्निग्ध०—√स्निह् + क्त + विभक्तिः।

०प्रतिषिद्ध०—प्रति + √सिध् + क्त + विभक्तिः। **अवतारयति**—अव + √तृ + णिच् + लट् प्रथमपुरुषैकवचने विभक्तिकार्यम् ॥

अन्वयः—शान्तम्, महापुरुषसंगदितम्, निशम्य, तद्गौरवात्, समुपसंहृतसम्प्रहारः, लवः, शान्तः, च, चन्द्रकेतुः, प्रणतः, एव, (जातः), सुतसङ्गमनेन, राज्ञः, कल्याणम्, अस्तु ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—शान्तम्=शान्त, महापुरुषसङ्गदितम्=महापुरुष की वाणी को, निशम्य=सुनकर, तद्गौरवात्=उनके प्रति आदरभाव के कारण, समुपसंहृतसम्प्रहारः=रोक लिया है अस्त्र-शस्त्र के प्रहारों को जिसने ऐसे, लवः=लव, (शान्तः=शान्त हो गये), च=और, चन्द्रकेतुः=चन्द्रकेतु, प्रणतः=नतमस्तक, एव=ही, (जातः=हो गये); सुतसङ्गमनेन=अपने पुत्रों के समागम से, राज्ञः=राजा का, कल्याणम्=मङ्गल, अस्तु=हो ॥ ७ ॥

(ततः प्रविशति रामो लवः प्रणतश्चन्द्रकेतुश्च ।)

रामः—(पुष्पकादवतरन् ।)

दिनकरकुलचन्द्र ! चन्द्रकेतो ! सरभसमेहि[1] दृढं परिष्वजस्व ।
तुहिनशकलशीतलैस्तवाङ्गैः शममुपयातु ममापि चित्तदाहः ॥ ८ ॥

(उत्थाप्य सस्नेहास्रं परिष्वज्य ।) अप्यनामयं नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य तत्र ?

चन्द्रकेतुः—कुशलमत्यदभुत[2]प्रियवयस्यलाभाभ्युदयेन । तद्विज्ञापयामि

टीका—शान्तमिति । शान्तम्=शमगुणसम्पन्नम्, महापुरुषसङ्गदितम्—महापुरुषेण=महज्जनस्य रामस्येत्यर्थः, सङ्गदितम्=वचनम्, निशम्य=श्रुत्वा, तद्गौरवात्—तस्य=महापुरुषस्य रामस्येत्यर्थः, गौरवात्=आदरातिशयात्, समुपसंहृतसम्प्रहारः—सम्=सम्यक् उपसंहृतः=सन्त्यक्तः सम्प्रहारः=युद्धं येन तादृशः, लवः शान्तः=शांति प्राप्तः, च=तथा, चन्द्रकेतुः=लक्ष्मणसुतः, रामसैन्यनायक इत्यर्थः, प्रणतः=रामं प्रणंसीत्, एव=च; इत्थं सुतसङ्गमनेन—सुतयोः=पुत्रयोः, कुशलवयोरित्यर्थः, सङ्गमनेन=समागमेन, राज्ञः=भूपते रामचन्द्रस्येत्यर्थः, कल्याणम्—मङ्गलम्, अस्तु=भवतु । अत्र समाहितमलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ७ ॥

टिप्पणी—०सङ्गदितम्—सम् + √गद् + क्त + विभक्तिः । **निशम्य**—नि + √शम् + णिच् + ल्यप् । **समुपसंहृत०**—सम् + उप + सम् + √हृ + क्त + विभक्त्यादिः । **शान्तः**—√शम् + क्त + विभक्तिः । **प्रणतः**—प्र √√नम् + क्त + विभक्तिः ।

राम के दर्शन से लव एवं चन्द्रकेतु का उग्र रूप शान्त होता है । अतः समाहित अलङ्कार है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द वसन्ततिलका का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ७ ॥

मिश्रविष्कम्भकः—यह मिश्रविष्कम्भक है । यहाँ दो मध्यम श्रेणी के पात्र विद्याधर एवं विद्याधरी हैं । इनमें एक संस्कृत में और दूसरा प्राकृत में बोलता है । अतः मिश्रविष्कम्भक है ।

युद्ध का दृश्य रङ्गमञ्च पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता । अतः इसे विष्कम्भक के द्वारा सूचित किया गया है ।

अन्वयः—दिनकरकुलचन्द्र, चन्द्रकेतो, सरभसम्, एहि, दृढम्, परिष्वजस्व; तुहिनशकलशीतलैः, तव, अङ्गैः, मम, चित्तदाहः, अपि, शमम्, उपयातु ॥ ८ ॥

---

१. ०मेह्यदयं, २. अत्यद्भुतक्रियस्य ।

(तदनन्तर राम लव और श्रद्धावनत चन्द्रकेतु प्रवेश करते हैं ।)

राम—(पुष्पक विमान से उतरते हुए) ।

सूर्य-वंश के चन्द्र चन्द्रकेतु, जल्दी आओ । गाढ आलिङ्गन करो । तुहिनखण्ड की भाँति शीतल तुम्हारे अङ्गों से मेरा हार्दिक सन्ताप भी दूर हो ॥ ८ ॥

(उठाकर, स्नेहजन्य आँसुओं को बहाते हुए आलिंगन करके) नवीन दिव्य अस्त्रों से युद्ध करने वाले तुम्हारा कुशल तो है ?

चन्द्रकेतु—अत्यन्त अद्भुत प्रिय मित्र के मिलन रूपी अभ्युदय से कुशल है ।

शब्दार्थः—दिनकरकुलचन्द्र=सूर्य-वंश के चन्द्र, चन्द्रकेतो=चन्द्रकेतु, सरभसम्=जल्दी, एहि=आओ, दृढम्=गाढा, कसकर, परिष्वजस्व=आलिंगन करो । तुहिनशकलशीतलैः=तुहिन खण्ड की भाँति शीतल, तव=तुम्हारे, अङ्गैः=अङ्गों से; मम=मेरा, चित्तदाहः=हार्दिक सन्ताप, अपि=भी, शमम्=शान्ति को, उपशम को, उपयातु=प्राप्त हो, अर्थात् दूर हो ॥ ८ ॥

टीका—दिनकरेत्यादिः । दिनकरकुलचन्द्र—दिनकरः=सूर्यस्तस्य कुलम्=वंशस्तत्र चन्द्रः=शशी तत्सम्बुद्धौ, हे चन्द्रकेतो=लक्ष्मणपुत्र, सरभसम्=सत्वरम्, एहि=आगच्छ; दृढम्=गाढम्, परिष्वजस्व=आलिंग, मामिति शेषः; तुहिनशकलशीतलैः—तुहिनस्य=हिमस्य शकलैरिव=खण्डैरिव, शीतलैः=शीतैः, मम=मे, चित्तदाहः—चित्तस्य=चेतसः, दाहः=ज्वलनम्, अपि=च, शमम्=शान्तिम्, उपयातु=प्राप्नोतु । अत्रोपमाऽर्थापत्तिलाटानुप्रासाश्चालङ्काराः । पुष्पिताग्रा छन्दः ॥ ८ ॥

टिप्पणी—अवतरन्—अव+√तॄ+शतृ+विभक्तिः ।

इस श्लोक में "तुहिनशकलशीतलैः" में 'इव' का अर्थ लुप्त है । अतः लुप्तोपमा है । 'अपि' शब्द से यह ज्ञात होता है कि चित्त के दाह के शान्त होने पर शरीर का दाह तो स्वयं ही समाप्त हो जायेगा । अतः अर्थापत्ति अलङ्कार है । प्रथम पंक्ति में दो बार चन्द्र का प्रयोग हुआ है । दोनों के तात्पर्य में अन्तर है । अतः लाटानुप्रास है ।

इस श्लोक में प्रयुक्त पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण—

अयुजि न युगरेफतो यकारो ।
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—सस्नेहास्रम्=स्नेहजन्य आँसुओं को बहाते हुए, परिष्वज्य=आलिंगन करके, अपि=क्या, अनामयम्=नीरोगता, स्वस्थता, नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य=नवीन दिव्य अस्त्रों से युद्ध करनेवाले, तव=तुम्हारा । अत्यद्भुतप्रियवयस्यलाभाभ्युदयेन=अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रिय मित्र के लाभरूपी अभ्युदय से (अर्थात् प्राप्त हो जाने से) ।

मामिव विशेषेण स्निग्धेन[1] चक्षुषा पश्यत्वमुं वीरमनरालसाहसं तातः।

रामः--(लवं निरूप्य ।) दिष्टया अति[2]गम्भीरमधुरकल्याणाकृतिरयं वयस्यो वत्सस्य ।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य[3] गुप्त्यै ।
सामर्थ्यानामिव समुदयः, सञ्चयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ॥ ९ ॥

अनरालसाहसम्=अकुटिल साहस से भरे हुए, अतिगम्भीरमधुरकल्याणाकृतिः= अत्यन्त गम्भीर मनोहर और कल्याणकारी आकृतिवाले ।।

टीका--उत्थाप्येति । सस्नेहास्रम्—स्नेहास्रैः=प्रेमाश्रुभिः सहितं यथा तथा, परिष्वज्य=आलिंग्य, अपीति प्रश्ने, अनामयम् =नीरुजम्, नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य- नूतनैः=नवीनैः, दिव्यास्त्रैः=अलौकिकायुधैरायोधनम्=संग्रामो यस्य स तादृशस्य, तव=ते, चन्द्रकेतोरित्यर्थः, अत्यद्भुतप्रियवयस्यलाभाभ्युदयेन—अत्यद्भुतः=अत्याश्चर्य- करो यः प्रियवयस्यः=सुहृत्तस्य यो लाभः=प्राप्तिः स एवाभ्युदयः=उन्नतिस्तेन, अन- रालसाहसम्=अनरालम्=अकुटिलम् ("अरालं वृजिनं जिह्मम्" इत्यमरः), साह- सम्=दुष्करं कर्म यस्य, तं तादृशम्, अतिगम्भीरमधुरकल्याणाकृतिः—अतिगम्भीरा= अक्षोभणीया मधुरा=प्रिया कल्याणी=सुलक्षणा आकृतिः=आकारो यस्य तादृशः ।।

टिप्पणी--**परिष्वज्य**—परि+ √ष्वञ्ज्+ल्यप् ।

अनामयम्—मिलने पर ब्राह्मण से कुशल पूछना चाहिये और क्षत्रिय से आरोग्य "ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् ।"

वयस्यः—वयसि भवो वयस्यः—वयस्+यत्+विभक्तिः । **अभ्युदय०**— अभि+उत्+√इ+अच्+विभक्त्यादिः ।।

अन्वयः--लोकान्, त्रातुम्, अस्त्रवेदः, कायवान्, परिणतः, इव, ब्रह्मकोशस्य, गुप्त्यै, क्षात्रः, धर्मः, तनुम्, श्रितः, इव; सामर्थ्यानाम्, समुदयः, इव, गुणानाम्, संचय,, वा, जगत्पुण्यनिर्माणराशिः, आविर्भूय, स्थितः, इव, (आस्ते) ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—लोकान्=लोकों की, त्रातुम्=रक्षा के लिये, अस्त्रवेदः=धनुर्वेद, कायवान्=शरीर धारण कर, शरीरी होकर, परिणतः=प्रकट हुआ है, अवतीर्ण हुआ है, इव=मानो; ब्रह्मकोशस्य=वेदरूपी निधि की, गुप्त्यै=रक्षा के लिये, क्षात्रः=क्षत्रिय का, क्षत्रियों का, धर्मः=धर्म, तनुम्=शरीर को, श्रितः=धारण किया है, इव= मानो; सामर्थ्यानाम्=शक्तियों का, समुदयः=भलीभाँति विकास हुआ है, इव=मानो;

---

१. शिवेन, शिवतरेण, २. ०म्भीराकृतिः, अतिकल्याणाकृतिः ३. घोषस्य ।

अतः निवेदन करता हूँ कि पिता जी, आप जैसे स्नेहभरी विशेष दृष्टि से मुझे देखते हैं उसी प्रकार अकुटिल साहसवाले इस वीर को भी आप देखें।

राम—(लव को ध्यान से देखकर) सौभाग्य से, वत्स चन्द्रकेतु का यह मित्र अति गम्भीर मनोहर और कल्याणकारी आकृति से सम्पन्न है।

लोकों की रक्षा के लिये मानों धनुर्वेद शरीर धारण कर प्रकट हुआ है। वेद-रूपी निधि की रक्षा के लिये मानो क्षात्रधर्म ने शरीर धारण किया है। शक्तियों का (इसके रूप में) मानो भलीभाँति विकास हुआ है। गुणों का मानो पुञ्ज है। मानो (इसके रूप में) संसार के पुण्यानुष्ठान की राशि ही प्रकट होकर स्थित है ॥९॥

गुणानाम्=गुणों का, सञ्चयः=पुञ्ज है, वा=यह इव के अर्थ में ही यहाँ प्रयुक्त हुआ है; जगत्पुण्यनिर्माणराशिः=संसार के पुण्यों के अनुष्ठान की राशि, आविर्भूय=प्रकट होकर, आविर्भूत होकर, स्थितः=स्थित है, इव=मानो ॥ ९ ॥

टीका—**त्रातुमिति**। लोकान्=भुवनानि, त्रातुम्=रक्षितुम्, अस्त्रवेदः=धनुर्वेदः, कायवान्=शरीरी सन्, परिणतः=आविर्भूतः, इवेत्युत्प्रेक्षा**याम**त्र श्लोके सर्वत्र बोध्यम्, ब्रह्मकोशस्य—ब्रह्म=वेदा एव कोशः=आकरः, निधिरिति यावत्, तस्य गुप्त्यै=रक्षायै, ("वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म, ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः" इत्यमरः), क्षात्रः=क्षत्रिय सम्बन्धी, धर्मः=वृषः, तनुम्=शरीरम्, श्रित इव=धृत इव। सामर्थ्यानाम्=शक्तीनाम्, **समुदय** इव=समूह इव, गुणानाम्=धैर्यादीनाम्, सञ्चयः=समूहः, वा=इव। जगत्पुण्य निर्माणराशिः—जगतः=संसारस्य पुण्यनिर्माणानाम्=पुण्यानुष्ठानानां राशिः=पुञ्जः, स्थितः=वर्तमानः, अयं वत्सस्य वयस्य इति पूर्वेण सम्बन्धः। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ९ ॥

टिप्पणी—**त्रातुम्**—√त्रै (त्रा)+तुमुन्। **परिणतः**—परि+√नम्+क्त+विभक्तिः। **कायवान्**—काय+मतुप्+विभक्त्यादिः।

ब्रह्मकोशस्य—वेदरूपी कोश की अथवा ब्राह्मणरूपी कोश की। ब्रह्मन् शब्द का अर्थ वेद और ब्राह्मण दोनों ही किया गया है। वेदों तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना क्षत्रिय का परम कर्तव्य है।

सामर्थ्यानाम्—समर्थस्य भावः सामर्थ्यम्, समर्थ+ष्यञ्+विभक्तिः। **आविर्भूय**—आविस्+भू+ल्यप्।

इस श्लोक में चार इव पदों तथा इव के अर्थ में ही प्रयुक्त एक वा के द्वारा पाँच उत्प्रेक्षा अलंकार है। यह श्लोक महावीर चरित में भी आया है।

यहाँ प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण—

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ ९ ॥

लवः—(स्वगतम् ।) अहो ! पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः ।

[1]आश्वासस्नेहभक्तीनामेकमायतन[2] महत् ।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः[3] ॥ १० ॥

आश्चर्यम् !

विरोधो विश्रान्तः, प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः प्रह्वयति माम् ।
झटित्यस्मिन्दृष्टे किमिति[4] परवानस्मि, यदिवा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः--अहो=यह आश्चर्य और प्रसन्नता का द्योतक निपात है, पुण्यानुभाव-दर्शनः=पवित्र हैं प्रभाव और दर्शन जिसके ऐसे, अयम्=यह, महापुरुष:=महापुरुष ॥

टीका—स्वगतमिति । अहो=आश्चर्यद्योतकोऽयं निपातः, पुण्यानुभावदर्शनः—पुण्ये=पवित्रे अनुभाव-दर्शने=प्रभावविलोकने यस्य सः तादृशः, अयम्=एषः, महा-पुरुषः=श्रेष्ठः पुरुषः ॥

अन्वयः—आश्वासस्नेहभक्तीनाम्, एकम्, महत्, आयतनम्, (अस्ति); प्रकृष्टस्य, धर्मस्य, मूर्तिसुन्दरः, प्रसादः, इव, (आस्ते) ॥ १० ॥

शब्दार्थः—आश्वासस्नेहभक्तीनाम्=विश्वास प्रेम और भक्ति के, एकम्=एकमात्र, महत्=महान्, आयतनम्=आश्रय, घर, (अस्ति=हैं); प्रकृष्टस्य=श्रेष्ठ, धर्मस्य=धर्म के, मूर्तिसुन्दरः=सुन्दर आकृतिधारी, प्रसादः=प्रसन्नता की, इव=तरह (आस्ते=हैं) ॥ १० ॥

टीका—आश्वास इति । आश्वासस्नेहभक्तीनाम्—आश्वासः=विश्वासः स्नेहः=प्रेम भक्तिश्च=पूज्येष्वादरभावश्चेति आश्वासस्नेहभक्तयस्तासाम्, एकम्=केवलम्, महत्=श्रेष्ठम्, आयतनम्=आश्रयः, अस्तीति शेषः । प्रकृष्टस्य=उत्कृष्टस्य, धर्मस्य=वृषस्य, मूर्तिसुन्दरः—मूर्त्या=आकृत्या सुन्दरः=शोभनः, प्रसादः=प्रसन्नता, इव=यथा, अस्तीति क्रियाशेषः । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१०॥

टिप्पणी—प्रसादः—प्र+ √सद्+घञ्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में 'इव' के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ १० ॥

अन्वयः—विरोधः, विश्रान्तः, निर्वृतिघनः, रसः, प्रसरति; तत्, औद्धत्यम्, क्वापि, व्रजति; विनयः, माम्, प्रह्वयति; किमिति, अस्मिन्, दृष्टे, झटिति, परवान्, अस्मि; यदि वा, तीर्थानाम्, इव, महताम्, कोऽपि, महार्घः, अतिशयः, हि ॥११॥

---

१. आश्वास इव भक्तीनाम्, २. आलम्बनम्, ३. मूर्तिसञ्चरः,४. किमिति, किमिव ।

लव—(अपने आप) ओह, इन महापुरुष के प्रभाव और दर्शन–दोनों ही–पवित्र हैं।

(यह) विश्वास प्रेम और भक्ति के एकमात्र महान् आश्रय हैं। श्रेष्ठ धर्म के सुन्दर आकृतिधारी प्रसाद की तरह हैं ॥ १० ॥

विशेष—लव के कहने का भाव यह है कि—राम को देखने से इनके प्रति विश्वास, प्रेम और भक्ति का आविर्भाव होता है। मालूम पड़ता है साक्षात् श्रेष्ठ धर्म ही अति सुन्दर रूप धारण कर प्रसन्नता से उमड़ रहा हो ॥१०॥

आश्चर्य है, वैर शान्त हो गया है, आनन्द से भरपूर प्रेमरस फैल रहा है, वह उद्दण्डता कहीं चली गई है, नम्रता मुझे विनम्र बना रही हैं, क्यों इस प्रकार इनके दिखलाई पड़ने पर शीघ्र ही मैं परवश हो गया हूँ ? अथवा तीर्थों की तरह महापुरुषों का भी कोई अनिर्वचनीय बहुमूल्य उत्कर्ष होता है—अवश्य ही ॥११॥

शब्दार्थः—विरोधः=विरोध, वैर, विश्रान्तः=शान्त हो गया है; निर्वृतिघनः=आनन्द से भरपूर, रसः=प्रेम रस, प्रसरति=फैल रहा है; तत्=वह, औद्धत्यम्=उद्दण्डता, प्रगल्भता, क्वापि=कहीं, कहीं भी, व्रजति=चली गई है; विनयः=विनय, नम्रता, माम्=मुझे, मुझको, प्रह्वयति=विनम्र बना रहा है; किमिति=क्यों इस प्रकार, अस्मिन्=इनके, दृष्टे=दिखलाई पड़ने पर, झटिति=शीघ्र ही, परवान्=परवश, पराधीन, अस्मि=हो गया हूँ; यदि वा=अथवा, तीर्थानाम्=तीर्थों की, इव=तरह, महताम्=महापुरुषों का, कोऽपि=कोई, अनिर्वचनीय, महार्घः=अतिशय मूल्यवान्, अतिशयः=उत्कर्ष (होता है), हि=यह निश्चयार्थक अव्यय है, अथवा यह यहाँ पाद-पूर्ति के लिये ही आया है ॥ ११ ॥

टीका—**विरोध इति**। विरोधः=वैरम्, विश्रान्तः=विरतः; निर्वृतिघनः-निर्वृत्या=आनन्देन घनः=सान्द्रः, आनन्दसान्द्र इत्यर्थः; रसः=रस्यते=चर्व्यत इति रसः=प्रेमरसः, प्रसरति=व्याप्नोति; तत्=विपुलम्, पूर्वमनुभूतमित्यर्थः, औद्धत्यम्=धाष्टर्यम्, क्वापि=कुत्रापि, व्रजति=गच्छति; विनश्यतीत्यर्थः, विनयः=विनम्रता, माम्=लवमित्यर्थः, प्रह्वयति=नमयति, विनम्रं करोतीत्यर्थः, किमिति=केन हेतुना इत्थम्, अस्मिन्=एतस्मिन् पुरोवर्तिनि महापुरुष इत्यर्थः, दृष्टे=साक्षात्कृते सति, झटिति=शीघ्रम्, परवान्=परवशः, अस्मि=भवामि; यदि वा=अथवा, तीर्थानामिव=पुण्यस्थानानामिवेत्यर्थः, गङ्गादिपावनसलिलानामिव महताम्=महापुरुषाणाम्, कोऽपि=अपूर्वः महार्घः=बहुमूल्यः, श्लाघ्य इति यावत्, अतिशयः=उत्कर्षः, हीति निश्चयदार्ढ्ये, भवतीति क्रियाशेषः। अत्रोपमाऽर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ। शिखरिणी छन्दः ॥११॥

टिप्पणी—**विश्रान्तः**—वि+√श्रम्+क्त+विभक्तिः। **निर्वृति**०—निर्+√वृ+क्तिन्+विभक्त्यादिः। **अतिशयः**—अति+√शी+अच्+विभक्तिः।

लवः—(स्वगतम् ।) अहो ! पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः ।
[1]आश्वासस्नेहभक्तीनामेकमायतन[2] महत् ।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः[3] ॥ १० ॥

आश्चर्यम् !

विरोधो विश्रान्तः, प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः प्रह्वयति माम् ।
झटित्यस्मिन्दृष्टे किमिति[4] परवानस्मि, यदिवा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—अहो=यह आश्चर्य और प्रसन्नता का द्योतक निपात है, पुण्यानुभाव-दर्शनः=पवित्र हैं प्रभाव और दर्शन जिसके ऐसे, अयम्=यह, महापुरुषः=महापुरुष ॥

टीका—स्वगतमिति । अहो=आश्चर्यद्योतकोऽयं निपातः, पुण्यानुभावदर्शनः—पुण्ये=पवित्रे अनुभाव-दर्शने=प्रभावविलोकने यस्य सः तादृशः, अयम्=एषः, महापुरुषः=श्रेष्ठः पुरुषः ॥

अन्वयः—आश्वासस्नेहभक्तीनाम्, एकम्, महत्, आयतनम्, (अस्ति); प्रकृष्टस्य, धर्मस्य, मूर्तिसुन्दरः, प्रसादः, इव, (आस्ते) ॥ १० ॥

शब्दार्थः—आश्वासस्नेहभक्तीनाम्=विश्वास प्रेम और भक्ति के, एकम्=एकमात्र, महत्=महान्, आयतनम्=आश्रय, घर, (अस्ति=हैं); प्रकृष्टस्य=श्रेष्ठ, धर्मस्य=धर्म के, मूर्तिसुन्दरः=सुन्दर आकृतिधारी, प्रसादः=प्रसन्नता की, इव=तरह (आस्ते=हैं) ॥ १० ॥

टीका—आश्वास इति । आश्वासस्नेहभक्तीनाम्—आश्वासः=विश्वासः स्नेहः=प्रेम भक्तिश्च=पूज्येष्वादरभावश्चेति आश्वासस्नेहभक्तयस्तासाम्, एकम्=केवलम्, महत्=श्रेष्ठम्, आयतनम्=आश्रयः, अस्तीति शेषः । प्रकृष्टस्य=उत्कृष्टस्य, धर्मस्य=वृषस्य, मूर्तिसुन्दरः—मूर्त्या=आकृत्या सुन्दरः=शोभनः, प्रसादः=प्रसन्नता, इव=यथा, अस्तीति क्रियाशेषः । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१०॥

टिप्पणी—प्रसादः—प्र+√सद्+घञ्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में 'इव' के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ १० ॥

अन्वयः—विरोधः, विश्रान्तः, निर्वृतिघनः, रसः, प्रसरति; तत्, औद्धत्यम्, क्वापि, व्रजति; विनयः, माम्, प्रह्वयति; किमिति, अस्मिन्, दृष्टे, झटिति, परवान्, अस्मि; यदि वा, तीर्थानाम्, इव, महताम्, कोऽपि, महार्घः, अतिशयः, हि ॥११॥

---

१. आश्वास इव भक्तीनाम्, २. आलम्बनम्, ३. मूर्तिसञ्चरः, ४. किमिति, किमिव ।

लव--(अपने आप) ओह, इन महापुरुष के प्रभाव और दर्शन-दोनों ही-पवित्र हैं।

(यह) विश्वास प्रेम और भक्ति के एकमात्र महान् आश्रय हैं। श्रेष्ठ धर्म के सुन्दर आकृतिधारी प्रसाद की तरह हैं॥ १०॥

विशेष—लव के कहने का भाव यह है कि—राम को देखने से इनके प्रति विश्वास, प्रेम और भक्ति का आविर्भाव होता है। मालूम पड़ता है साक्षात् श्रेष्ठ धर्म ही अति सुन्दर रूप धारण कर प्रसन्नता से उमड़ रहा हो ॥१०॥

आश्चर्य है, वैर शान्त हो गया है, आनन्द से भरपूर प्रेमरस फैल रहा है, वह उद्दण्डता कहीं चली गई है, नम्रता मुझे विनम्र बना रही हैं, क्यों इस प्रकार इनके दिखलाई पड़ने पर शीघ्र ही मैं परवश हो गया हूँ ? अथवा तीर्थों की तरह महापुरुषों का भी कोई अनिर्वचनीय बहुमूल्य उत्कर्ष होता है—अवश्य ही ॥११॥

शब्दार्थः—विरोधः=विरोध, वैर, विश्रान्तः=शान्त हो गया है; निर्वृतिघनः= आनन्द से भरपूर, रसः=प्रेम रस, प्रसरति=फैल रहा है; तत्=वह, औद्धत्यम् = उद्दण्डता, प्रगल्भता, क्वापि=कहीं, कहीं भी, व्रजति=चली गई है; विनयः=विनय, नम्रता, माम्=मुझे, मुझको, प्रह्वयति=विनम्र बना रहा है; किमिति=क्यों इस प्रकार, अस्मिन्=इनके, दृष्टे = दिखलाई पड़ने पर, झटिति = शीघ्र ही, परवान् = परवश, पराधीन, अस्मि=हो गया हूँ; यदि वा=अथवा, तीर्थानाम्=तीर्थों की, इव=तरह, महताम्=महापुरुषों का, कोऽपि=कोई, अनिर्वचनीय, महार्घः=अतिशय मूल्यवान्, अतिशयः=उत्कर्ष (होता है), हि-यह निश्चयार्थक अव्यय है, अथवा यह यहाँ पाद-पूर्ति के लिये ही आया है॥ ११॥

टीका--विरोध इति। विरोधः=वैरम्, विश्रान्तः = विरतः; निर्वृतिघनः-निर्वृत्या=आनन्देन घनः=सान्द्रः, आनन्दसान्द्र इत्यर्थः; रसः=रस्यते=चर्व्यत इति रसः=प्रेमरसः, प्रसरति=व्याप्नोति; तत्=विपुलम्, पूर्वमनुभूतमित्यर्थः, औद्धत्यम्= धाष्टर्यम्, क्वापि=कुत्रापि, व्रजति=गच्छति; विनश्यतीत्यर्थः, विनयः=विनम्रता, माम्=लवमित्यर्थः, प्रह्वयति=नमयति, विनम्रं करोतीत्यर्थः, किमिति=केन हेतुना इत्थम्, अस्मिन्=एतस्मिन् पुरोवर्तिनि महापुरुष इत्यर्थः, दृष्टे=साक्षात्कृते सति, झटिति=शीघ्रम्, परवान्=परवशः, अस्मि=भवामि; यदि वा=अथवा, तीर्थानामिव= पुण्यस्थानानामिवेत्यर्थः, गङ्गादिपावनसलिलानामिव महताम्=महापुरुषाणाम्, कोऽपि= अपूर्वः महार्घः=बहुमूल्यः, श्लाघ्य इति यावत्, अतिशयः=उत्कर्षः, हीति निश्चयदार्ढ्ये, भवतीति क्रियाशेषः। अत्रोपमाऽर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ। शिखरिणी छन्दः ॥११॥

टिप्पणी—विश्रान्तः—वि+ √श्रम्+क्त+विभक्तिः। निर्वृति०-निर्+ √वृ+क्तिन्+विभक्त्यादिः। अतिशयः—अति+ √शी+अच्+विभक्तिः।

रामः—तत्किमयमेकपद एव मे[1] दुःखविश्रामं ददात्युपस्नेहयति च कुतोऽपि निमित्तादन्तरात्मानम् ? अथवा 'स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष[2]' इति विप्रतिषिद्धमेतत् ।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ १२ ॥

इस श्लोक के चौथे पाद में इव के द्वारा उपमा अलकार है। तीन पादों में कथित राम के विशेष महत्त्व का सामान्य चौथे पाद के द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

यह श्लोक दशरूपक (१।४६) में अवमर्श सन्धि के शक्ति नामक अंग का उदाहरण दिया गया है।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—शिखरिणी—"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमन-सभला गः शिखरिणी" ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—एकपदे=सहसा, झटिति, तुरन्त, दुःखविश्रामम्=दुःख की शान्ति को, उपस्नेहयति=स्नेहयुक्त कर रहा है, कुतः=किसी, अपि=भी, निमित्तात्=कारण से, निमित्तसव्यपेक्षः=वाह्य कारण की अपेक्षा रखने वाला, विप्रतिषिद्धम्=विरुद्ध बात है, असंगत बात है ॥

टीका—राम इति। एकपदे=एकक्षणे, दुःखविश्रामम्—दुःखस्य=सीतावियोग-जन्यस्य कष्टस्य विश्रामम् = निर्वृतिम्, ददाति = अर्पयति, कुतोऽपि = अनिर्धारिता-दित्यर्थः, हेतोः = कारणात्, अन्तरात्मानम् = अन्तःकरणम्, उपस्नेहयति=स्नेहयुक्तं करोति। निमित्तसव्यपेक्षः—निमित्तम्=बाह्यकारणं विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा, व्यपेक्षया सहितः, निमित्तेन=कारणेन सव्यपेक्षः=हेतुसापेक्षः, विप्रतिषिद्धम्=व्याहतम्, एतत् = एतत्कथनमित्यर्थः ॥

टिप्पणी—विप्रतिषिद्धम्—इसका भाव यह है कि—प्रेम सर्वदा अकारण ही हुआ करता है। वि+प्रति+ √सिध्+क्त+विभक्तिः ॥

अन्वयः—आन्तरः, कोऽपि, हेतुः, पदार्थान् व्यतिषजति; प्रीतयः, बहिरुपाधीन्, खलु, न, संश्रयन्ते; हि, पतङ्गस्य, उदये, पुण्डरीकम्, विकसति, च, हिमरश्मौ, उद्गते, चन्द्रकान्तः, द्रवति ॥ १२ ॥

---

१. एतत् क्वचिन्नास्ति, २. क्वचित् च इत्यधिकः पाठः।

राम—तो क्यों यह बालक सहसा ही मेरे दुःख को शान्त कर रहा है और किसी कारण से मेरी अन्तरात्मा को स्नेह-युक्त कर रहा है ? अथवा 'स्नेह बाह्य कारण की अपेक्षा रखने वाला होता है' यह कथन संगत नहीं है ।

विशेष—राम के हृदय में विद्यमान सीता विषयक वियोग का दुःख लव को देखते ही शान्त हो रहा है और लव के प्रति उनके हृदय में स्नेह की धारा उमड़ रही है । ये बातें बिना कारण के नहीं हुआ करतीं । किन्तु यहाँ राम को कोई कारण ज्ञात नहीं हैं अतः उनका कथन है कि "स्नेह किसी न किसी कारण से ही हुआ करता है"—यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि इस बालक को देख कर मेरे मन की जो दशा हो रही है उसमें कोई बाह्य कारण नहीं है । बेचारे राम को क्या मालूम कि यह सब सकारण है, अकारण नहीं ।

कोई अज्ञात आन्तरिक कारण पदार्थों को परस्पर सम्बद्ध करता है । प्रेम केवल बाह्य हेतुओं का ही आश्रय नहीं लेता है, क्योंकि सूर्य के उदित होने पर कमल विकसित होता है और चन्द्रमा के निकलने पर चन्द्रकान्तमणि पिघलती है ।।१२।।

शब्दार्थः—आन्तरः=आन्तरिक, भीतरी, आभ्यन्तर, कोऽपि=कोई अज्ञात, हेतुः=कारण, पदार्थान्=पदार्थों को, व्यतिषजति=परस्पर सम्बद्ध करता है, जोड़ता है; प्रीतयः=प्रीतियाँ, प्रेम, बहिरुपाधीन्=बाहरी कारणों को, बाह्य हेतुओं को, खलु=निश्चय ही, न=नहीं, संश्रयन्ते=आश्रय बनाती हैं, हि=क्योंकि, उदाहरण के रूप में, पतङ्गस्य=सूर्य के, उदये=उदित होने पर, पुण्डरीकम्=कमल, विकसति=विकसित होता है, च=और, हिमरश्मौ=चन्द्रमा के, उद्गते=उदित होने पर, चन्द्रकान्तः=चन्द्रकान्तमणि, द्रवति=पिघलती है ।।१२।।

टीका—**व्यतिषजतीति**—आन्तरः=आभ्यन्तरः, कोऽपि=निर्वक्तुमशक्यो भवितव्यतारूपः, हेतुः=कारणम्, पदार्थान्=वस्तूनि, अन्तःकरण-प्रभृतिवस्तुजातमित्यर्थः, व्यतिषजति=अन्योन्यलग्नान् करोति, संयोजयतीति यावत्; प्रीतयः=स्नेहाः, अत्यन्तानुकूलत्वज्ञानरूपस्नेहः, बहिरुपाधीन्=बाह्यहेतून्, न संश्रयन्ते=स्वोत्पादकत्वेन नापेक्षन्ते, खल्विति निश्चये, दृष्टान्तमाह—विकसतीत्यादि । हि=यतः, पतङ्गस्य=सूर्यस्य, ("पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च" इत्यमरः) उदये=निर्गमे, पुण्डरीकम्=कमलम्, विकसति=प्रस्फुटति; च=तथा, हिमरश्मौ—हिमाः=शैत्ययुक्ता रश्मयः=किरणानि यस्य तस्मिन्, उद्गते=उदिते सति, चन्द्रकान्तः=शिलाविशेषः, चन्द्रकान्तमणिरित्यर्थः, द्रवति=आर्द्रीभवति । सूर्योदये कमलस्य विकासश्चन्द्रोदये चन्द्रकान्तमणेर्द्रवता च यथा हेतुनिरपेक्षा तथैवास्य कुमारस्यावलोकनेनोत्पन्नो मदीयः स्नेहो न कमपि हेतुमपेक्षते, अपि तु स्वाभाविक इति भावः । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मालिनी छन्दः ।।१२।।

लवः—चन्द्रकेतो ! क एते ?

चन्द्रकेतुः—प्रियवयस्य ! ननु तातपादाः[१] ।

लवः—ममापि धर्मतस्तथैव, यतः प्रियवयस्येति[२] भवतोक्तम् । किंतु चत्वारः किल[३] भवन्त्येवंव्यपदेशभागिनस्तत्रभवन्तो रामायणकथापुरुषाः । तद्विशेषं ब्रूहि ।

चन्द्रकेतुः—ज्येष्ठतात इत्यवेहि !

लवः—(सोल्लासम् ।) कथं रघुनाथ एव[४] ? दिष्टयासुप्रभातमद्य, यदयं देवो दृष्टः । (सविनयं निर्वर्ण्य ।) तात ! प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते ।

रामः—आयुष्मन् ! ऐह्येहि । (इति सस्नेहमालिङ्ग्य[५] ।) अयि वत्स ! कृतमत्यन्तविनयेन । अङ्गेन [६]मामपरिश्लथं परिरम्भस्व ।

टिप्पणी—व्यतिषजति—परस्पर मिलाता है, परस्पर संबद्ध करता है । इसमें णिच् का अर्थ गुप्त है । वि+अति+ √सञ्ज्+लटि प्रथमैकवचनेरू पम् । "उपसर्गात् सुनोति०" (८।३।६५) से स् को ष् हो जाता है । आन्तरः—अन्तरे भवः, अन्तर्+अण्+विभक्त्यादिः ।

उपाधीन्—उप+ √आ+ √धा+कि+विभक्तिः ।

पुण्डरीकम्—यद्यपि पुण्डरीक शब्द श्वेत कमल के अर्थ में प्रयुक्त होता है । किन्तु यहाँ यह कमलसामान्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ("पुण्डरीकं सिताम्भोजम्" इत्यमरः) ।

उद्गते—उद्+ √गम्+क्त+विभक्तिः ।

चन्द्रकान्तः—सूर्यकान्त मणि पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उससे अग्नि के स्फुलिंग छिटकने लगते हैं और चन्द्रकान्त मणि पर जब चन्द्र की किरणें पड़ती हैं तब उससे जल की बूंदें टपकने लगती हैं ।

पूर्वार्ध में वर्णित सामान्य अर्थ का उत्तरार्ध में वर्णित दो विशेष बातों से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

इस श्लोक से पूर्ववर्ती गद्य तथा यह श्लोक मालतीमाधव में भी इसी रूप से आया है ।

यहाँ प्रयुक्त मालिनी छन्द का लक्षण—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" ॥ १२ ॥

---

१. ०पादा एते, २. इत्यात्थ, ३. खलु, ४. एषः, ५. आश्लिष्य; परिष्वज्य, ६. अनेकवारमपरिश्लथं परिष्वजस्व माम् ।

लव—चन्द्रकेतु, ये कौन हैं ?

चन्द्रकेतु—प्रिय मित्र, ये (मेरे) पूज्य पिता जी हैं ।

लव—तो मेरे भी यह धर्म के नाते पिता हैं क्योंकि आपने मुझे प्रिय-मित्र कहा है । किन्तु रामायण-कथा के मुख्य पात्र (राम आदि) चार व्यक्ति आपके लिये इस प्रकार के व्यवहार के पात्र हैं (अर्थात् पिता कहे जाने के योग्य हैं) । अतः आप विशेष रूप से बतलाइये कि (उनमें से यह कौन हैं) ?

चन्द्रकेतु—यह बड़े पिता जी हैं—ऐसा समझो ।

लव—(अति आनन्द के साथ) क्या रामचन्द्र ही ? सौभाग्य से, आज का दिन सुन्दर प्रभातवाला रहा जो इन महापुरुष के दर्शन हुए । (विनयपूर्वक ध्यान से देख कर) पिता जी, महर्षि वाल्मीकि का छात्र लव प्रणाम कर रहा है ।

राम—चिरञ्जीविन्, आओ आओ । (ऐसा कह कर स्नेहपूर्वक आलिङ्गन करके) अरे बेटा, अत्यन्त विनय की आवश्यकता नहीं है । अपने शरीर से कस कर मेरा आलिंगन करो ।

शब्दार्थः—धर्मतः=धर्म के नाते, धर्म से, तथैव=वैसे ही अर्थात् धर्म पिता हैं । व्यपदेशभागिनः=व्यवहार के पात्र, इस शब्द के वाच्यार्थ । सोल्लासम्=अति आनन्द के साथ । प्राचेतसान्तेवासी=वाल्मीकि का छात्र । अपरिश्लथम्=गाढ़े रूप से, कस कर, अविरल, परिरम्भस्व=आलिङ्गन करो ॥

टीका—लव इति । धर्मतः=पुण्यात्, मित्रधर्मतो वा, तथैव=तातपादा एव, मित्रस्य पिता स्वस्य पितेति शास्त्रस्यायमर्थः । स्वपितृविषये यादृशमनुवर्तनं तादृशं मित्रपितृविषयकं महते श्रेयसे कल्पत इति । एवं च मद्धर्महेतुकपितृत्ववान् इत्यर्थः । व्यपदेशभागिनः—व्यपदेशस्य=तातपादशब्दस्य भागिनः=स्वामिनः, भागो हि स्वं भागी=स्वामी । सोल्लासम्-उल्लासेन=आनन्दविकासेन सहेति सोल्लासम्=सानन्दम्, प्राचेतसान्तेवासी–प्राचेतसस्य=वाल्मीकेः अन्तेवासी=शिष्यः, अपरिश्लथम्=अशिथिलम्, दृढमिति भावः, परिरम्भस्व=आलिङ्ग ॥

टिप्पणी—**धर्मतः**—चन्द्रकेतु ने लव को मित्र (वयस्य) कहा है । मित्र का पिता भी धर्म के नाते पिता होता है । अतः लव कह रहे हैं कि—"चन्द्रकेतु के पिता हैं । अतः धर्म के नाते हमारे भी पिता ही हैं ।" अभी तक लव को यह नहीं ज्ञात है कि राम उनके वास्तविक पिता ही हैं ।

व्यपदेशभागिनः—व्यपदेशः–व्यपदिश्यते अनेनेति व्यपदेशः, वि+अप+√दिश्+घञ्+विभक्तिः । **भागिनः**—√भज्+घिनुण् (इन्)+विभक्त्यादिः ।

आलिंग्य—आ+√लिङ्ग+ल्यप् ॥

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः ।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः ॥ १३ ॥

लवः—(स्वगतम् ।) ईदृशो [1]मां प्रत्यमोषामकारणस्नेहः । मया पुनरेभ्य एवाभिद्रोग्धु[2]मज्ञेनायुधपरिग्रहः कृतः । (प्रकाशम् ।) मृष्यन्तां त्विदानीं लवस्य बालिशतां तातपादाः ।

रामः—किमपराद्धं वत्सेन ?

चन्द्रकेतुः—अश्वानुयात्रिकेभ्यस्तातप्रतापाविष्करणमुपश्रुत्य वीरायितमनेन ।

रामः नन्वयमलङ्कारः क्षत्रियस्य ।

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां [3]विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः ।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो[4] ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ? ॥ १४ ॥

अन्वयः—परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः, चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडः, तव, स्पर्शः, नन्दयति ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—परिणत-कठोर-पुष्कर-गर्भच्छदपीन-मसृण-सुकुमारः=विकसित एवं पूर्ण कमल के भीतरी पंखुड़ी की तरह परिपुष्ट एवं चिकना तथा सुकोमल, चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडः=चन्द्रमा एवं चन्दन के रस की भाँति शीतल, तव=तुम्हारा, स्पर्शः=स्पर्श, नन्दयति=आनन्दित कर रहा है, आनन्द प्रदान कर रहा है ॥१३॥

टीका—परिणतेति । परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः—परिणतस्य=विकसितस्य कठोरस्य=समग्रस्य पुष्करस्य=पद्मस्य गर्भच्छदवत्=आतपाद्यनभिहतान्तरपत्रवत् पीनः=मांसलः मसृणः=दन्तुरतारहितः सुकुमारः=मृदुलः, चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडः=इन्दुश्रीखण्डद्रववत् जडः=शीतलः, तव=ते, लवस्येत्यर्थः, स्पर्शः=आमर्शनम्, नन्दयति=आनन्दयति, आह्लादयतीति भावः, मामिति शेषः । अत्रोपमालङ्कारः । आर्या जाति ॥ १३ ॥

टिप्पणी—परिणत०—परि+√नम्+क्तः+विभक्तिः । नन्दयति—√नन्द्+णिच्+लट् प्रथमैकवचने विभक्तिः ।

यहाँ दोनों पदों में उपमाएँ लुप्त हैं । अतः लुप्तोपमा अलङ्कार है ।

आर्या छन्दका लक्षणम्—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृ तीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥ १३ ॥

---

१. अस्मादृशान्, २. अभिद्रुग्धमज्ञेन यदायुधपरिग्रहं यावदध्यारूढो दुर्योगः, ३. हि स०, प्रसहते, ४. आग्नेयग्रा० ।

विकसित एवं पूर्ण कमल की भीतरी पंखुड़ी की तरह परिपुष्ट एवं चिकना, सुकोमल और चन्द्रमा एवं चन्दन के रस की भाँति शीतल तुम्हारा स्पर्श हमें आनन्दित कर रहा है ॥ १३ ॥

लव--(अपने आप) ऐसा मेरे प्रति इनका अकारण स्नेह है और मुझ अज्ञ के द्वारा इनसे ही द्रोह करने के लिए शस्त्र उठाया गया है। (प्रकट रूप से) क्षमा करें सम्प्रति लव की अज्ञता को पितृचरण।

राम--वत्स के द्वारा क्या अपराध किया गया है ?

चन्द्रकेतु--अश्व के अनुयायियों के द्वारा आपके प्रताप का वर्णन सुनकर इन्होंने वीरोचित आचरण किया है।

राम—निश्चय ही यह तो क्षत्रिय का आभूषण है।

तेजस्वी व्यक्ति दूसरों के फैले हुए तेज को नहीं बर्दास्त करता है। प्रकृति—प्रदत्त होने से वह उसका अकृत्रिम स्वभाव है। यदि भगवान् सूर्य अपनी किरणों से अनवरत तपते हैं तो सूर्यकान्त मणि तिरस्कृत-सा होकर क्यों आग उगलती है ?॥१४॥

शब्दार्थः—अकारणस्नेहः=अहैतुम प्रेम। द्रोग्धुम्=द्रोह करने के लिये, आयुध-परिग्रहः=अस्त्र-शस्त्रों का धारण, बालिशताम्=अज्ञता को। अपराद्धम्=अपराध किया गया। तातप्रतापाविष्करणम्=आपके प्रताप का वर्णन, वीरायितम्=विरोचित आचरण किया गया है॥

टीका--**लव इति**। अमीषाम्=एतेषाम्, रामचन्द्रस्येत्यर्थः, अकारणस्नेहः--अविद्यमानम्=अनुपलब्धं कारणम्-हेतुर्यस्य सः अकारणः, अकारणः=अहैतुकश्चासौ स्नेहः=अनुरागः कर्मधारयसमासः। अज्ञेन=अनभिज्ञेन, आयुधपरिग्रहः–आयुधानाम्=अस्त्रशस्त्राणां परिग्रहः=स्वीकरणम्, धारणमिति यावत्। बालिशताम्=मूर्खताम्। अपराद्धम् = अपराधोऽनुष्ठितः, वत्सेन = वात्सल्यभाजनेनानेन बालकेन। अश्वानुयात्रिकेभ्यः-अश्वस्य=यज्ञीयघोटकस्य अनु=पश्चात् यात्रिकेभ्यः=रक्षकेभ्यः, तातप्रतापाविष्करणम्–तातस्य=पितुस्तव प्रतापस्य=तेजस आविष्करणम्=प्रकाशनम्, कथनमिति यावत्, उपश्रुत्य=आकर्ण्य, वीरायितम्=वीरवदाचरितम्, संग्राम आरब्ध इति भावः। अलङ्कारः=आभूषणम्॥

टिप्पणी—**अपराद्धम्**-अप+√राध्+क्त+विभक्तिः। **उपश्रुत्य**–उप+√श्रु+ल्यप्। **वीरायितम्**—वीर+क्यङ् (य)+क्त+विभक्तिः॥

अन्वयः—तेजस्वी, अपरेषाम्, प्रसृतम्, तेजः, न, विषहते; प्रकृतिनियतत्वात्, तस्य, सः, अकृतकः, स्वः, भावः, (अस्ति); यदि, देवः, दिनकरः, मयूखैः, अश्रान्तम्, तपति, (तर्हि); आग्नेयः, ग्रावा, निकृतः, इव, (भूत्वा), तेजांसि, किम्, वमति ? ॥१४॥

चन्द्रकेतुः—[1]अमर्षोप्येस्यैव शोभते महावीरस्य। पश्यन्तु हि तातपादाः! प्रियवयस्य[2]नियुक्तेन जृम्भकास्त्रेण विक्रम्य स्तम्भितानि सर्वसैन्यानि।

रामः—(सविस्मयखेदं निर्वर्ण्य[3]। स्वगतम्।) अहो! वत्सस्य ईदृशः-प्रभावः? (प्रकाशम्) वत्स! संह्रियतामस्त्रम्। त्वमपि चन्द्रकेतो! निर्व्यापारतया विलक्षाणि सान्त्वय बलानि।

(लवः प्रणिधानं नाटयति।)

चन्द्रकेतुः—यथा[4] निर्दिष्टम (इति निष्क्रान्तः।)

लवः—तात! प्रशान्तमस्त्रम्।

रामः–[5]सरहस्यप्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि दिष्टचा वत्सस्यापिसंपद्यन्ते।

शब्दार्थः--=तेजस्वी=प्रतापवान्, अपरेषाम्=दूसरों के, प्रसृतम्=फैले हुए, तेजः=तेज को. प्रताप को, न=नहीं विषहते=सहन करता है, वर्दास्त करता है; प्रकृति-नियतत्वात्=प्रकृति–प्रदत्त होने से, जन्मजात होने के कारण, सः=वह, तस्य=उसका, अकृतकः=जन्म-सिद्ध, अकृत्रिम, स्वः=अपनी, भावः = आदत, प्रकृति, (अस्ति=है); यदि=यदि, देवः = भगवान्, प्रकाशशील, दिनकरः = सूर्य, मयूखैः=किरणों से, अश्रान्तम् = अनवरत, तपति=तपते हैं, (तर्हि=तो) आग्नेयः=अग्नि का, अग्नि से सम्बद्ध, ग्रावा=पाषाण, निकृतः=तिरस्कृत, इव=सा, (भूत्वा=होकर), किम्=क्यों, तेजांसि=आगको, आग की लपटों को, वमति = उगलता हे ? ॥ १४ ॥

टीका--न तेज इति। तेजस्वी=प्रतापवान् जनः, अपरेषाम्=अन्येषाम्, प्रसृतम्=विस्तृतम्, तेजः=प्रतापम्, न विषहते=न मृष्यति; प्रकृतिनियतत्वात्—प्रकृत्या=जन्मना नियतत्वात्=निर्धारितत्वात्, अन्मसिद्धत्वादित्यर्थः, तस्य=तेजस्विनो जनस्येत्यर्थः, सः=परप्रतापासहनरूपो धर्मः, अकृतकः=अनागन्तुकः, अकृत्रिमः इत्यर्थः, स्वः=स्वकीयः, भावः–धर्मः, अस्तीति क्रियाशेषः, यदि=चेत्, देवः=द्योतनशीलः, भगवानित्यर्थः, दिनकरः=सूर्यः, मयूखैः=किरणैः, अश्रान्तम् = अविरतम्, तपति=प्रकाशते, (तर्हि=तदा), आग्नेयः=अग्निसम्बन्धी, ग्रावा=प्रस्तरः, सूर्यकान्तमणिरित्यर्थः, निकृत इव=परिभूत इव, तिरस्कृत इवेत्यर्थः; भूत्वेति शेषः, तेजांसि=अग्निकणान्, किम्=किमर्थम्, वमति=उद्गिरति, किं न वमतीतिपाठे अपि तूद्गिरत्येव। तेजस्विनः परेषां तेजो न सहन्ते, यथा सूर्यकान्तमणि. सूर्यस्य तेजो न सहते। उभयत्रापि स्वभावादन्यो हेतुर्नास्ति। अतः परप्रतापामर्षणं क्षत्रियस्य धर्मः। इति पूर्ववाक्ये न सह संगतिः। अत्रोत्प्रेक्षाऽर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ। शिखरिणी छन्दः ॥ १४ ॥

---

१. तात अम०, २. विनिर्मुक्त०, ३. विलोक्य, स्वगतम् ४. यथादिष्टम्, ५. वत्स, रहस्यप्रयोगसंहाराण्यस्त्राण्याम्नायवन्ति।

चन्द्रकेतु—असहनशीलता भी इसी महावीर की शोभा देती है। देखें पितृचरण, (इस) प्रियमित्र के द्वारा प्रयुक्त जृम्भाकास्त्र से, पराक्रम प्रदर्शित करके, सैनिक निश्चेष्ट कर दिये गये हैं।

राम—(आश्चर्य और खेद के साथ ध्यान से देखकर अपने आप) ओह वत्स (लव) का ऐसा प्रभाव है। (प्रकट रूप से) बेटा, अस्त्र को लौटा लो। तुम भी चन्द्रकेतु, निश्चेष्टता के कारण आश्चर्यचकित अपने सैनिकों को सान्त्वना दो।

(लव ध्यान लगाने का अभिनय करते हैं।)

चन्द्रकेतु—जैसा (आपका) आदेश। (ऐसा कहकर निकल जाते हैं।)

लव—तात, अस्त्र पूर्णरूप से शान्त हो गया।

राम—सौभाग्य से प्रयोग और संहार के रहस्यपूर्ण मन्त्रों के साथ जृम्भक अस्त्र इस वत्स को भी प्राप्त हैं।

टिप्पणी—**प्रसृतम्**—प्र+सृ+क्त+विभक्तिः। **अकृतकः**—नञ्+कृत+स्वार्थे कन्+विभक्तिः। **अश्रान्तम्**—नञ् (अ)+ √श्रम्+क्तः+विभक्तिः।

आग्नेयो ग्रावा—सूर्यकान्तमणि। सूर्यकान्तमणि पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं उस समय उससे आग छिटकने लगती है।

निकृत-नि+ √कृ+क्तः+विभक्तिः।

इस श्लोक में 'निकृत इव' में 'इव' उत्प्रेक्षासूचक है, अतः क्रियोत्प्रेक्षा है। उत्तरार्धगत विशेष के द्वारा पूर्वार्धगत सामान्य का समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण--"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी" ॥ १४ ॥

शब्दार्थः--अमर्षः=असहिष्णुता, असहनशीलता, प्रियवस्यनियुक्तेन=प्रियमित्र के द्वारा प्रयुक्त, विक्रम्य=पराक्रम प्रदर्शित करके, स्तम्भितानि=निश्चेष्ट कर दिये गये हैं, सर्वसैन्यानि=सारे सैनिक। निर्वर्ण्य=ध्यान से देखकर, निर्व्यापारतया=निश्चेष्टता के कारण, विलक्षणानि=आश्चर्यचकित, बलानि=सैनिकों को। सरहस्य-प्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि=प्रयोग और संहार के रहस्यपूर्ण मन्त्रों के साथ जृम्भक अस्त्र।

टीका---चन्द्रकेतुरिति। अमर्षः=असहनशीलता, न केवलं तेजः किन्तु मन्युरपीति भावः, अस्यैव=एतस्यैव महावीरस्य शोभते=हृद्यो भवति। प्रियवयस्य-नियुक्तेन—प्रियवयस्येन=प्रियमित्रेण, लवेनेति भावः, नियुक्तेन=प्रयुक्तेन, प्रक्षिप्तेनेति भावः, विक्रम्य=पराक्रम्य, स्तम्भितानि=निर्व्यापाराणि; चित्रलिखितानीवेति भावः, सर्वसैन्यानि=निखिलानि बलानि। निर्वर्ण्य=ध्यानेन दृष्ट्वा। अस्त्रम्=जृम्भ-

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परः[१]सहस्रं शरदस्तपांसि ।
एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ॥१५॥

[२]अथैतामस्त्रमन्त्रोपनिषदं भगवान्कृशाश्वः परःसहस्राधिकसंवत्सरपरिचर्यानिरतायान्तेवासिने कौशिकाय प्रोवाच । स भगवान् मह्यमिति गुरु-[३]पूर्वानुक्रमः । कुमारस्य [४]कुतः संप्रदायः इति पृच्छामि ।

लवः—स्वतःप्रकाशान्यावयोरस्त्राणि ।

रामः—(विचिन्त्य ।) किं न संभाव्यते ? प्रकृष्टपुण्योपादानकः कोऽपि महिमा स्यात् । द्विवचनं तु कथम् ?

लवः—भ्रातरावावां यमौ !

रामः— स तर्हि द्वितीयः क्व[५] ?

कास्त्रमित्यर्थः, संह्रियताम्=निवार्यताम् । निर्व्यापारतया=क्रियाविरहितत्वेन, विलक्षानि=आश्चर्यचुम्बितचित्तानि, सान्त्वय=मधुरवचोभिः समाश्वासय । प्रशान्तम्=संहृतम् । सरहस्यप्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि—सरहस्यौ=मन्त्रप्रयोगाद्यनुष्ठानसहितौ प्रयोगसंहारौ=प्रहाराकर्षणे येषां तादृशानि जृम्भकास्त्राणि=जृम्भाप्रदायकायुधानि, दिष्टचेति सौभाग्येन ॥

टिप्पणी—जृम्भकास्त्रेण—जृम्भक अस्त्र का प्रयोग जिसके ऊपर किया जाता है उसे जँभाई आने लगती है । वह प्रायः निश्चेष्ट हो जाता है । वह कुछ भी प्रतिकार करने में समर्थ नहीं होता ।

प्रशान्तम्—शान्त हो गया । कहने का भाव यह है कि जृम्भकास्त्र वापस कर लिया गया है । प्र + √शम् + क्तः + विभक्ति ॥

अन्वयः—ब्रह्मादयः, पुराणाः, गुरवः, ब्रह्महिताय, परःसहस्रम्, शरदः, तपांसि, तप्त्वा, स्वानि, एव, तपोमयानि, तेजांसि, एतानि, अपश्यन् ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—ब्रह्मादयः=ब्रह्मा आदि, पुराणाः=प्राचीन, पुराने, गुरवः=गुरुओं ने आचार्यों ने, ब्रह्महिताय=ब्राह्मणों की रक्षा के लिये, वेदों की रक्षा के लिये, परःसहस्रम्=हजार वर्षों से भी अधिक, शरदः=शरद्, वर्ष, तपांसि=तपस्या, तप्त्वा=तपकर, करके, स्वानि=अपने, एव=ही, तपोमयानि=तपोमय, तेजांसि=तेजस्वरूप, एतानि=इनको, इन्हें, अपश्यन्=देखा था, प्राप्त किया था ॥ १५ ॥

टीका—ब्रह्मादय इति । ब्रह्मादयः—ब्रह्मा आदिः=प्रथमो येषान्ते तादृशाः, ब्रह्मप्रभृतय इत्यर्थः, पुराणाः=प्राचीनाः, गुरवः=आचार्याः, ब्रह्महिताय—ब्रह्मभ्यः=

---

१. परः सहस्राः, २. अथैतन्मन्त्रारायणोप०, ३. एष पूर्वा०, एष क्रमः, ४. तु कः, पुनः—तु—कुतः, ५. कः ।

ब्रह्मा आदि प्राचीन गुरुओं ने ब्राह्मणों की रक्षा के लिए हजार वर्षों से भी अधिक समय तक तपस्या करके अपने ही तपोमय तेजस्वरूप इन (अस्त्रों) को प्राप्त किया था ।। १५ ।।

जृम्भक अस्त्र की इस मन्त्रमयी रहस्य विद्या को भगवान् कृशाश्व ने हजारों वर्षों से भी अधिक समय तक सेवा में निरत अपने शिष्य महर्षि विश्वामित्र को बतलाया था । उन भगवान् विश्वामित्र ने मुझे प्रदान किया । यह इन अस्त्रों का गुरु-परम्परागत क्रम है । मैं यह पूछना चाहता हूँ कि कुमार को किस गुरु-परम्परा से ये अस्त्र प्राप्त हुए हैं ?

लव—हम दोनों भाइयों को ये अस्त्र स्वतः प्राप्त हुए हैं ।

राम—(सोचकर) क्या नहीं सम्भव है ? उत्कृष्ट पुण्य-मूलक कोई महिमा हो गयी (जिसके कारण ये अस्त्र इन्हें प्राप्त हुए हैं) । अच्छा, द्विवचन (आवयोः) का प्रयोग क्यों किया है ?

लव—हम दोनों जुड़वा भाई हैं ।

राम—तो वह दूसरा (भाई) कहाँ है ?

ब्राह्मणेभ्यः देवेभ्यो वा, हिताय=रक्षणाय, "हितयोगे च" इति चतुर्थी, ततः 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' इति चतुर्थी तत्पुरुषसमासः, (वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म, ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः "इत्यमरः), शरदम्=वर्षाणि ("हायनोऽस्त्री शरत्समाः" इत्यमरः), परःसहस्रम्=सहस्राधिकं यथा तथा, तपांसि=तपस्याः, तप्त्वा=कृत्वा, स्वानि=आत्मीयानि, एव=च, तपोमयानि=तपस्यारूपाणि, तेजांसि=तेजो भूतानि, एतानि=अमूनि जृम्भकादीनि अस्त्राणि, अपश्यन्=अदर्शयन् । उपजातिछन्दः ।। १५ ।।

टिप्पणी—**परः सहस्रम्**—इसका अभिप्राय यह है कि बहुत वर्षों तक । यह श्लोक प्रथम अंक में भी इसी रूप में आया है ।। १५ ।।

शब्दार्थः—अस्त्रमन्त्रोपनिषदम्=अस्त्रसञ्चालन की रहस्यमय विद्या को, गुरुपूर्वानुक्रमः=गुरुपरम्परागत क्रम । सम्प्रदायः=परम्परागत ज्ञान । स्वतःप्रकाशानि=स्वतः प्राप्त हुए हैं, स्वतः प्रतिभासित हुए हैं, आवयोः=हम दोनों भाइयों के, अस्त्राणि=अस्त्र । प्रकृष्टपुण्योपादानकः=उत्कृष्ट पुण्यमूलक ।।

टीका—**अथेतमिति** । अस्त्रमन्त्रोपनिषदम्—अस्त्रमन्त्रमयीं ब्रह्मविद्याम्, गुरुपूर्वानुक्रमः—गुरूणाम्=आचार्याणां पूर्वः=प्राचीनः अनुक्रमः=परम्परा, सम्प्रदाय इति यावत् । स्वतःप्रकाशानि स्वतः=स्वयमेव, गुरुशिक्षां विनैवेति भावः, प्रकाशः=प्रादुर्भावो येषां तानि, अस्त्राणि, आवयोः=भ्रातरो इत्यर्थः । प्रकृष्टपुण्योपादानकः—प्रकृष्टम्=उत्कृष्टं पुण्यम्=वृषः उपादानम्=कारणं यस्य स तादृशः, महिमा=महत्त्वम्,

(नेपथ्ये)

दण्डायन ! [1]

आयुष्मतः किल लवस्य नरेन्द्रसैन्यै-
रायोधनं ननु किमात्थ ? सखे ! तथेति ।
अद्यास्तमेतु भुवनेषु[2] च राजशब्दः
क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शममद्य यान्तु ॥ १६ ॥

रामः--

अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छविर्ध्वनिनैव बद्धपुलकं करोति माम् ।
नवनीलनीरधरगर्जितक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम् ॥१७॥

तु=किन्तु, द्विवचनम्=“आवयोः” इति षष्ठीद्विवचनं तु, कथम्=कस्मात् ? यमौ=युग्मौ, सहजातावित्यर्थः (“यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमे यमजेऽपि च।” इति विश्वः)॥

टिप्पणी—**उपनिषदम्**—उपनिषद् कहते हैं—रहस्य विद्या को। उप+नि+√सद्+क्विप्+विभक्तिः। यहाँ “सदिरप्रतेः” (८।३।६६) से स् को ष् हो जाता है।

सम्प्रदायः—सम्प्रदीयते इति सम्प्रदायः। सम्+प्र+√दा+ घञ् (अ)+विभक्तिः। यहाँ बीच में य का आगम हो जाता है।

अन्वयः—ननु, आयुष्मतः, लवस्य, नरेन्द्रसैन्यैः, आयोधनम्, (भवति), किल ? हे सखे, किम्, आत्थ, तथा, इति ?, अद्य, भुवनेषु, राजशब्दः, अस्तम्, एतु; अद्य, क्षत्रस्य, शस्त्रशिखिनः, शमम्, यान्तु ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—ननु=क्या, आयुष्मतः=चिरञ्जीवी, लवस्य=लव का, नरेन्द्रसैन्यैः=राजा (राम) के सैनिकों के साथ, आयोधनम्=युद्ध, (भवति=हो रहा है ?) किल=यह प्रसिद्धि का सूचक अव्यय है; हे सखे=हे, मित्र, किम्=क्या, आत्थ=कहा, तथा=हाँ हो रहा है, ऐसी ही बात है, इति=यह; अद्य=आज, भुवनेषु=संसार में, राजशब्दः=राजा यह शब्द, अस्तम्=समाप्त, एतु=हो जाये, अद्य=आज, क्षत्रस्य=क्षत्रियों की, शस्त्रशिखिनः=शस्त्ररूपी अग्नि, शमम्=उपशम को, यान्तु=प्राप्त हो जायें ॥१६॥

टीका—**आयुष्मतः** इति। नन्विति प्रश्ने, आयुष्मतः आयुः=जीवनमस्य अस्तीति आयुष्मान् तस्य आयुष्मतः=चिरञ्जीविनः, लवस्य=ममानुजस्य, नरेन्द्रसैन्यैः—नरेन्द्रस्य=राज्ञो रामस्य सैन्यैः=सैनिकैः, आयोधनम्=युद्धम्, (“युद्धमायोधनं जन्यम्” इत्यमरः), भवतीति शेषः, किलेति प्रसिद्धौ, हे सखे=हे मित्र, किमात्थ=किं कथयसि, तथा=ओम्, युद्ध प्रारब्धम्, इति=इत्थम्, अद्य=अस्मिन् दिने, भुवनेषु=संसारेषु,

---

१. भाण्डायन, भाण्डायन, २. ०ष्वधिराजशब्दः ।

(पर्दे के पीछे)

दाण्डायन,--

क्या चिरञ्जीवी लव का राजा (राम) के सैनिकों के साथ युद्ध हो रहा है? हे मित्र, क्या कहा तुमने कि "हाँ हो रहा है" ? (यदि ऐसी बात है तो) आज संसार में 'राजा' यह शब्द समाप्त हो जाएगा तथा क्षत्रियों की शस्त्ररूपी अग्नि (सर्वदा के लिये । शान्त हो जायेगी ।।१६।।

विशेष – **राजशब्दः**—नेपथ्य से कुश के कहने का भाव यह है कि—यदि लव के साथ राजाराम की सेना युद्ध कर रही होगी तो इतना निश्चय समझो कि मैं आज सेना के सहित राजा का भी विनाश कर दूँगा । आज से संसार में कोई राजा ही नहीं रहेगा और न कोई क्षत्रिय ही बचेगा। अतः भविष्य में क्षत्रियों के आयुधों की चिनगारी छिटकने का कोई अवसर नहीं रह जायेगा ।।१६।।

राम—अच्छा इन्द्रनीलमणि की तरह श्याम कान्तिवाला कौन यह ध्वनि से ही मुझे एवं नीले जलभरे मेघके गंभीर गर्जन के समय निकली हुई कलियों से मण्डित कदम्ब वृक्ष की भाँति रोमाञ्चित कर रहा है ? ।।१७।।

राजशब्दः='राजे' त्याकारकः शब्दः, अस्तम्=नाशम्, एतु=गच्छतु; अद्य=सम्प्रति, क्षत्रस्य=क्षत्रियस्य, शस्त्रशिखिनः—शस्त्राणि=आयुधानि एव शिखिनः=अग्नयः, शमम् =शान्तिम्, निर्वाणमिति यावत् । यान्तु=व्रजन्तु, प्राप्नुवन्त्विति यावत् । अत्र रूपकमलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ।।१६।।

टिप्पणी—**आयुष्मतः**—आयुष्+मतुप्+विभक्तिः ।

किमात्थ—यह कुश के द्वारा आकाशभाषित है। आकाशभाषित में एक ही व्यक्ति आकाश की ओर देखकर इस प्रकार उत्तरप्रत्युत्तर करता है मानो वह किसी से बात कर रहा हो ।

इस श्लोक के "शस्त्रशिखिनः" में रूपक अलङ्कार है। यहाँ प्रयुक्त छन्द वसन्ततिलका का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।। १६ ।।

अन्वयः—अथ, इन्द्रमणिमेचकच्छविः, कः, अयम्, ध्वनिना, एव, माम्, नवनील-नीरधरधीरगर्जितक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम्, बद्धपुलकम्, करोति ।।१७।।

शब्दार्थः--अथ=अच्छा, इन्द्रमणिमेचकच्छविः=इन्द्रनीलमणि की तरह श्याम कान्तिवाला, कः=कौन, अयम्=यह, ध्वनिना=ध्वनि से, आवाज से; एव=ही, माम्= मुझे, नवनीलनीरधरधीरगर्जितक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम्=नवीन एवं नीले जल भरे मेघ के गंभीर गर्जन के समय निकली हुई कलियों से मण्डित कदम्ब वृक्ष के सदृश, बद्धपुलकम्=रोमाञ्चित, करोति=कर रहा है ।।१७।।

लवः—अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात्प्रतिनिवृत्तः ।

रामः—(सकौतुकम् ।) तर्हि [1]वत्स ! इत एवैतमाह्वयायुष्मन्तम् ।

लवः—[2]यदाज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति कुशः ।)

कुशः—([3]सक्रोधं कृतधैर्यं धनुरास्फाल्य ।)

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादा मनो-
[4]र्दृप्तानां [5]दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः ।
आदित्यैर्यदि विग्रहो [6]नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
[7]दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः ॥१८॥

टीका—अथ कोऽयमिति—अथेति वाक्यारम्भार्थकमिदमव्ययपदम्, इन्द्रमणि-मेचकच्छविः—इन्द्रमणिः=इन्द्रनीलमणिवत् मेचका = नीलवर्णा छविः=कान्तिर्यस्य स तादृशः, कोऽयम्=कौऽसौ बालकः, ध्वनिना = शब्देन, एवेत्यन्ययोगव्यवच्छेदः, माम्= शब्दश्रोतारं राममित्यर्थः, नवनीलनीरधरेत्यादिः—नवः=नूतनो नीलः=श्यामो यो नीर-धरः=जलभरितो मेघः तस्य धीरम्=गम्भीरं यत् गर्जितम्=स्तनितं तस्य क्षणे=काले बद्धाः=उद्भिन्नाः कुड्मलाः=मुकुलाः यस्य तादृस्य कदम्बस्य=नीपतरोः डम्बरम्= सदृशम् बद्धपुलकम्—बद्धाः=उत्पन्नाः पुलकाः=रोमाञ्चाः यस्य तं तादृशम्, करोति= विदधाति । अत्रोपमालङ्कारः । मञ्जुभाषिणी छन्दः ॥ १७ ॥

टिप्पणी—०नीरधर०—धरतीति धरः √धृ + अच् + विभक्त्यादिः । **गर्जित०** √गर्ज + क्त + विभक्तिः । ०बद्ध० √बन्ध + क्त + विभक्तिः ।

इस श्लोक में इन्द्रमणिमेचक०में इव का अर्थ लुप्त है। अतः यहाँ लुप्तोपमा अलङ्कार है।

इस श्लोक में प्रयुक्त मञ्जुभाषिणी छन्द का लक्षण—सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—ज्यायान्=बड़े, श्रेष्ठ, प्रतिनिवृत्तः = लौटकर आये हैं। सकौतुकम्= उत्कण्ठापूर्वक, उत्सुकता के साथ, आह्वय=बुलाओ; आयुष्मन्तम्=चिरञ्जीवी को। आस्फाल्य=टङ्कार करके ।

टीका—लव इति । ज्यायान्=ज्येष्ठः, अग्रज इति यावत्, प्रतिनिवृत्तः=प्रत्या-

---

१. तर्हि वत्स, इत आह्वयैनं, आनय, २. एवम्, यदाज्ञापयति तात इति निष्क्रान्तः । ३. साकूतहर्षधैर्यं, साद्भुत०, ४. दृप्तानां, ५. दहनाय, ६. नृपति-भिर्वत्सस्य दिष्टया ततो, ७. दिव्यास्त्र, दीप्रास्त्र ।

लव—यह मेरे बड़े भाई आदरणीय कुश भरतमुनि के आश्रम से लौट आये हैं।
रामः—(उत्कण्ठापूर्वक) तो बेटा इस चिरञ्जीवी को इधर ही बुलाओ।
लवः—जो आप आज्ञा कर रहे हैं (वही करूँगा)। (ऐसा कह कर निकल गया।)

(तदनन्तर कुश प्रवेश करते हैं।)

कुशः—(क्रोध पूर्वक धैर्य के साथ धनुष की टङ्कार करके)

भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर, इन्द्र को अभयदान देनेवाले, गर्वीले राजाओं के दमन के लिये अपने क्षात्र-तेज रूपी अग्नि को उद्दीपित करनेवाले सूर्यवंशी राजाओं के साथ यदि युद्ध हो जाय तब दमकते हुए अस्त्रों की चमकती हुई तीक्ष्ण किरणों की शिखा से की गई आरती वाला मेरा यह धनुष धन्य हो जाय ॥ १८ ॥

गतः। सकौतुकम्—कौतुकेन = उत्कण्ठया सहितं सकौतुकम्-सोत्कण्ठम् आह्वय=आकारय। धनुः=कोदण्डम्, आस्फाल्य=ताडयित्वा।

टिप्पणी—**ज्यायान्**—वृद्ध+ईयसुन् (ईयस्), "वृद्धस्य च" (५।३।६२) इत्यनेन वृद्धस्य ज्यादेशः+विभक्तिः।

प्रतिनिवृत्तः—प्रति+नि+√वृत्+क्त+विभक्तिः। **आस्फाल्य**—आ+√स्फुर्+णिच्+ल्यप्।

अन्वयः—भगवतः, वैवस्वतात्, मनोः आ, दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः, दृप्तानाम्, दमनाय, दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः, आदित्यैः, नृपतिभिः, यदि; विग्रहः, (भवेत्), ततः, दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यम्, मम, एतत्, धनुः, धन्यम्, (भवेत्)॥१८॥

शब्दार्थः—भगवतः=भगवान्, वैवस्वतात्=वैवस्वत, मनोः=मनु से, आ=लेकर, दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः=इन्द्र को अभयदान देने वाले, इन्द्र को अभय की दक्षिणा देने वाले, दृप्तानाम्=गर्वीले (राजाओं) के, दमनाय=दमन के लिये, दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः=अपने क्षात्र-तेजरूपी अग्नि को उद्दीपित करने वाले, आदित्यैः=सूर्यवंशी, नृपतिभिः= राजाओं के साथ, यदि=यदि; विग्रहः=युद्ध, (भवेत्= हो जाय) ततः= तब, दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यम्=दमकते हुए अस्त्रों की चमकती हुई तीक्ष्ण किरणों की शिखा से की गई आरती वाला, मम=मेरा, एतत्=यह, धनुः= धनुष, धन्यम्=धन्य, (भवेत्=हो जाय) ॥ १८ ॥

टीका—**दत्तेन्द्राभयेति**। भगवतः=ऐश्वर्यशालिनः, वैवस्वतात्-विवस्वतः= सूर्यस्य अपत्यं पुमान् वैवस्वतः तस्मात्, मनोः आ=मनुमारभ्येत्यर्थः; "पञ्चम्यपाङ्-परिभिः" इति पञ्चमी, वैवस्वतमनोराज्यकालादारभ्येति भावः, दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः-दत्ता=वितीर्णा इन्द्राय=देवराजाय अभयमेव=अभीतिरेव दक्षिणा=दानं यैस्ते तैः; दृप्तानाम्=गर्वयुक्तानाम्, दमनाय शिक्षणाय, दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः-दीपितः= प्रज्वालितः निजः=स्वकीयः, असाधारण इति यावत्, क्षत्रप्रतापः=क्षात्रतेज एव

(विकटं परिक्रामति ।)

रामः--[1]कोऽप्यस्मिन् क्षत्रियपोतके पौरुषातिरेकः । तथाहि[2]--

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥१९॥

अग्निः=वह्निर्यैस्तथोक्तैः, आदित्यैः=सूर्यवंश्यैः, "दित्यदित्या०" (४।१।८५) इति ण्यः, नृपतिभिः=राजभिः, यदि=चेत्, विग्रहः=युद्धं भवेत्=स्यात्, ततः=तदा, दीप्तास्त्रेत्यादिः—दीप्तानाम्=तेजोमयानाम् अस्त्राणाम्=आयुधानां स्फुरन्त्यः=प्रकाशमानाः उग्राः=तीक्ष्णाः या दीधितयः=किरणाः तासां शिखया=कोटचा नीराजिता=कृतनीराजना, विहिताऽऽर्तिकेति भावः, ज्या=प्रत्यञ्चा यस्य तत् तादृशम्, मम=मे, कुशस्येत्यर्थः, एतत्=इदम्, ममहस्ते स्थितमिति यावत्, धनुः=कार्मुकम्, धन्यम्=कृतार्थम्, भवेदिति शेषः । अत्र प्रतिभटवैशिष्टचकथनेन कुशस्य पराक्रमातिशयो व्यज्यते । अत्र "दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः" इत्यत्र "दीपिते" त्यादौ च रूपकद्वयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थिते संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १८ ॥

टिप्पणी—दत्तेन्द्राभय०—सूर्यवंशी राजा अतिशय प्रतापी थे। इनके प्रताप का यश स्वर्ग तक व्याप्त था। इन्द्र के शत्रुओं को भी पराजित कर, ये राजा लोग, उन्हें भी उभय का दान देते थे।

दृप्तानाम्— √दृप्+क्त+विभक्तिः । **दीपित०**— √दीप्+णिच्+क्तः+विभक्तिः ।

आदित्यैः—अदितेरपत्यम् आदित्यः, अदिति+ण्य (य), दित्यदित्या० (४।१।८५) से ण्यप्रत्यय। आदित्यस्य अपत्यानि पुमांसः, आदित्य+अण्+विभक्त्यादिः, आदित्याः ।

नीराजित०—निर्+√राज्+णिच्+क्त+विभक्तिः ।

इस श्लोक में 'अभयदक्षिणैः' तथा 'क्षत्रप्रतापाग्निभिः' में रूपक अलङ्कार है। यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित । छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—कोऽपि=कोई, अद्भुत, अनिर्वचनीय, क्षत्रियपोतके=क्षत्रियकुमार में, पौरुषातिरेकः=पौरुष की चरमसीमा है।

टीका—राम इति । कोऽपि=अवर्णनीय इति यावत्, क्षत्रियपोतके—अज्ञातः पोतः पोतकः, अज्ञातार्थेऽत्र कन् प्रत्ययः, क्षत्रियस्य=बाहुजस्य पोतके=पुत्रे, पौरुषातिरेकः पौरुषस्य=पुरुषार्थस्य अतिरेकः=पराकाष्ठा, लक्ष्यत इति शेषः ॥

---

१. अहो नु खल्वस्मिन्; कोऽप्ययं क्षत्रियपोतः पुरुषातिरेकः, २. क्वचिदेतन्नास्ति ।

(क्रोध की मुद्रा में उद्धत भाव से घूमता है ।)

राम—इस क्षत्रियकुमार में अद्भुत पौरुष की चरम सीमा है । जैसे कि—

(इसकी) दृष्टि त्रिलोकी की शक्ति के उत्कर्ष को तृण की तरह तिरस्कृत कर रही है, धीर और दर्प पूर्ण गति पृथिवी को मनो झुका-सी रही है, कुमारावस्था में भी पर्वत की भाँति गौरव को धारण किये हुए क्या यह वीर रस है ? अथवा साक्षात् दर्प ही चला आ रहा है ? ।) ॥ १९ ॥

टिप्पणी—क्षत्रियपोतके—पोत कहते हैं बालक को, यहाँ अज्ञात अर्थ में कन् प्रत्यय हुआ है ।

पौरुषम्—पुरुष+अण्+विभक्त्यादिः । **अतिरेकः**–अति+ √रिच्+घञ्+ विभक्त्यादिः ॥

अन्वयः—दृष्टिः, तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा; धीरोद्धता, गतिः, धरित्रीम्, नमयति, इव; कौमारके, अपि, गिरिवत्, गुरुताम्, दधानः, किम्, अयम्, वीरः, रसः ? उत, दर्पः, एव, एति ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—दृष्टिः=दृष्टि, आँख, तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा=त्रिलोकी की शक्ति के उत्कर्ष को तृण की तरह तिरस्कृत कर रही है; धीरोद्धता=धीर और दर्पपूर्ण, गतिः=चाल, धरित्रीम्=पृथिवी को, नमयति इव=मानो झुकासी रही है; कौमारके= कुमारावस्था में, अपि=भी, गिरिवत्=पर्वत की भाँति, गुरुताम्=गौरवको, दधानः= धारण किये हुए, किम्=क्या, अयम्=यह, वीरः=वीर, रसः=रस है, उत=अथवा, दर्पः=साक्षात् दर्प, एव=ही, एति=चला आ रहा है ॥ १९ ॥

टीका—दृष्टिरिति । दृष्टिः=नेत्रम्, तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा—तृणीकृतः= तृणीवदवज्ञातः जगत्त्रयस्य=लोकत्रयस्य सत्त्वसारः=बलोत्कर्षो यया सा तादृशी; अस्यावलोकनेन प्रतीयते यदयं बालकः समग्रमपि जगत् तृणवन्मन्यते; धीरोद्धता– धीरा=गम्भीरा उद्धता=दर्पयुक्ता गतिः=गमनम्, अस्येति योज्यम्, धरित्रीम्=पृथिवीम्, नमयति=अवनतां करोति, इवेत्युत्प्रेक्षा; कौमारके=कुमारावस्थायाम्, अपि=च, गिरिवत्=पर्वत इव, गुरुताम्=गौरवम्, दधानः=धारयन्, किमयम्=किमेषः, वीरो रसः =वीराख्यो रसविशेषः ? उत=अथवा, दर्पः=अभिमानः, एव=च, एति=आगच्छति । अस्मिन् बालके लोकातिशायी उत्कर्षोऽभिव्यज्यत इति भावः । अत्र द्वितीयचरण उत्प्रेक्षा, गिरिवदित्यत्रोपमा, द्वयोर्मिथोऽनपेक्षयास्थितयोः संसृष्टिः । वसन्ततिलका छन्दः ॥१९॥

टिप्पणी—तृणीकृत०—ऊपर व्याख्या में मैंने सत्त्व का अर्थ बल, पौरुष किया है और सार का अर्थ उत्कर्ष । सत्त्व का अर्थ प्राणी भी होता है । प्राणी अर्थ मानने पर अर्थ इस प्रकार होगा—तीनों लोकों के प्राणियों के बल को तृण की भाँति समझने वाली ।

लवः--(उपसृत्य ।) जयत्वार्यः ।

कुशः--नन्वायुष्मन् ! किमियं वार्ता युद्धं युद्धमिति ?

लवः—यत्किंचिदेतत् ! [1]आर्यस्तु दृप्तं भावमुत्सृज्य विनयेन वर्तताम् ।

कुशः---किमर्थम् ?

लवः—यदत्र देवो [2]रघुनन्दनः स्थितः । स रामायणकथानायको ब्रह्मकोशस्य गोप्ता ।

कुशः—आशंसनीयपुण्यदर्शनः स महात्मा । किन्तु स कथमस्माभिरुपगन्तव्यः ? इति संप्रधारयामि ।

लवः—यथैव गुरुस्तथोपसदनेन ।

कुशः—[3]कथं हि नामैतत् ?

लवः-- अत्युदात्तः सुजनश्चन्द्रकेतुरौर्मिलेयः प्रियवस्येति सख्येन मामुपतिष्ठते । तेन संबन्धेन धर्मतस्तात एवायं राजर्षिः ।

कुशः--संप्रत्यवच[5]नीयो राजन्येऽपि प्रश्रयः ।

(उभौ परिक्रामतः)

लवः--पश्यत्वेनमार्यो महापुरुषमाकारानुभावगाम्भीर्यसंभाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरितातिशयम् ।

कौमारके--कुमारस्य भावः कौमारम्, कुमार+अण्+स्वार्थे कन्+विभक्त्यादिः । **दधानः**— √धा+शानच्+विभक्तिः ।

इस श्लोक में गिरिवद् में उपमा अलङ्कार, नमयतीव में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है । कुश को वीर रस तथा दर्प कहने से अतिशयोक्ति है । "किमयम्" के द्वारा सन्देह वतलाने से सन्देहालङ्कार भी है ।

यह श्लोक दशरूपक (२।११) में विलास के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है । यहाँ प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—दृप्तम्=गर्वपूर्ण, भावम्=भाव को, उत्सृज्य=छोड़कर, ब्रह्मकोशस्य=वेदरूपी कोश के, गोप्ता=रक्षक हैं ॥

टीका—लव इति । आर्यः=पूज्यो भवान्, दृप्तम्=दर्पयुक्तम्, उत्सृज्य=त्यक्त्वा, विनयेन=नम्रतया, वर्तताम्=तिष्ठतु । ब्रह्मकोशस्य--ब्रह्म=वेद एव कोशः=धनं तस्य, गोप्ता=रक्षकः ॥

टिप्पणी—**दृप्तम्**-- √दृप्+क्त+विभक्तिकार्यम् । **उत्सृज्य**--उत्+√सृज्+ल्यप् । **गोप्ता**-- √गुप्+तृच्+विभक्तिः ॥

---

१. दृप्तभावमुत्सृज्यार्योऽस्मिन् विनयेन, २. रघुपतिस्तिष्ठति, ३. अपि कथं नाम, ४. अत्युदात्तश्चन्द्र०, ५. सम्प्रति करणीयो ।

लव--(पास में जाकर) आर्य की विजय हो।

कुश--अच्छा, चिरञ्जीविन्, (यह बतलाओ कि) "युद्ध-युद्ध" यह क्या बात हो रही थी?

लव--जो कुछ यह था (अर्थात् यह कोई बात नहीं है)। पूज्य आप गर्वपूर्ण भाव को छोड़कर विनय के साथ व्यवहार करें।

कुश--किसलिये?

लव--क्योंकि यहाँ महाराज रघुनन्दन (राम) विराजमान हैं। वे रामायण के कथा-नायक तथा वेदरूपी कोश के रक्षक हैं।

कुश-उन महात्मा का पवित्र दर्शन वाञ्छनीय है। किन्तु मैं विचार कर रहा हूँ कि उनके पास हमें किस प्रकार से जाना चाहिये।

लव--जिस प्रकार गुरुजनों के पास जाया जाता है, उसी प्रकार उनके पास भी जाना चाहिये।

कुश--यह कैसे?

लव--अत्यन्त उत्कृष्ट विचार वाले एवं सज्जन उर्मिलापुत्र चन्द्रकेतु मुझे 'प्रिय-मित्र' कहते हुए मित्रतापूर्वक मिलते हैं। इस सम्बन्ध से यह राजर्षि (राम) हमारे धर्म-पिता ही हैं।

कुश--यदि यह बात है तब (सम्प्रति) क्षत्रिय के प्रति भी विनम्रता का व्यवहार निन्दनीय नहीं है।

(दोनों घूमते हैं।)

लव--आकार, प्रभाव और गंभीरता के द्वारा जिसके विविध अलौकिक सच्चरितों के उत्कर्ष का अनुमान किया जा सकता है ऐसे इन महानुभाव को आप देखें।

शब्दार्थः--आशंसनीयपुण्यदर्शनः=वाञ्छनीय है पवित्र दर्शन जिनका ऐसे, उपगन्तव्यः=समीप जाना चाहिये, संप्रधारयामि=विचार कर रहा हूँ। उपसदनेन=समीप जाने से। अत्युदात्तः=अत्यन्त उत्कृष्ट विचार वाले, औमिलेयः=उर्मिलापुत्र, अवचनीयः=निन्दा के योग्य नहीं है, पश्रयः=विनम्रता। आकारानुभावगाम्भीर्य-संभाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरिताशयम्=आकार, प्रभाव और गंभीरता के द्वारा जिसके विविध अलौकिक सच्चरितों के उत्कर्ष का अनुमान किया जा सकता है॥

टीका--कुश इति। आशंसनीयपुण्यदर्शनः-आशंसनीयम्=वाञ्छनीयं पुण्यम्=पवित्रं दर्शनम्=साक्षात्कारो यस्य स तादृशः, उपगन्तव्यः=उपस्थातव्यः, सम्प्रधारयामि=विचारयामि। उपसदनेन=समीपगमनेन। अत्युदात्तः=अत्युत्कृष्टविचारः, औमिलेयः-उर्मिलायाः पुत्रः, अवचनीयः=न वचनीयोऽवचनीयः=अनिन्दनीयः, प्रश्रयः=विनयः। ("प्रणयप्रश्रयौ समौ" इत्यमरः)। आकारानुभावेत्यादिः-आकारेण=आकृत्या

कुशः--(निर्वर्ण्य ।)

अहो प्रासादिकं[1] रूपमनुभावश्च पावनः ।
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचमवीवृधत्[2] ॥ २० ॥

(उपसृत्य) तात ! प्राचेतसान्तेवासी कुशोऽभिवादयते ।

रामः—एह्येह्यायुष्मन् !

अमृताध्मातजीमूतस्नि[3]ग्धसंहननस्य ते ।
परिष्वङ्गाय[4] वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः ॥ २१ ॥

अनुभावेन=प्रभावेण गाम्भीर्येण च=अक्षोभ्यत्वेन च सम्भाव्यमानः=अनुमीयमानो विविधः=अनेकविधो लोकोत्तरः=लोकातिशायी सुचरितानाम्=सुकर्मणाम् अतिशयः= उत्कर्षो यस्य तादृशम्, एनम्=समीपस्थं रामचन्द्रमित्यर्थः ॥

टिप्पणी—उपगन्तव्यः=-उप + √गम् + तव्य + विभक्तिः । उपसदनेन— उप+ √सद्+ल्युट् (अन)+तृतीयैकवचने विभक्तिः । और्मिलेयः--उर्मिलायाः अपत्यं पुमान्, उर्मिला+ढक् (एय)+विभक्त्यादिः । सख्येन–सख्युर्भावः सख्यम्, सखि+य+विभक्तिः ।

अवचनीयो राजन्येऽपि—वीर क्षत्रिय युद्धाङ्गण में प्रतिपक्षी को किसी भी मूल्य पर प्रणाम करने के लिये सहमत नहीं हो सकता । कुश अपने आपको भूमण्डल के किसी भी वीर से कम नहीं समझता है । अतः वह राम को प्रणाम करने के लिये सहमत नहीं । प्रतिपक्षी वीर को प्रणाम करना क्षत्रिय योद्धा के लिये अत्यन्त निन्दनीय माना जाता है । किन्तु जब लव यह कहता है कि—"चन्द्रकेतु के नाते राम हमारे धर्म-पिता हैं ।" तब कुश उन्हें प्रणाम करने के लिये तैयार होता है । और इस विनम्रता को वह क्षत्रिय के लिये भी निन्दनीय नहीं समझता है ।

अन्वयः—अहो, प्रासादिकम्, रूपम्; च, पावनः, अनुभावः, (वर्तते); रामायण-कविः, देवीम्, वाचम्, स्थाने, अवीवृधत् ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अहो=अहो, यह आश्चर्य सूचक अव्यय है, प्रासादिकम्=प्रसाद गुण से युक्त, प्रसन्नता से परिपूर्ण, रूपम्=रूप (है); च=और, पावनः = पवित्र, अनुभावः =अनुभाव है, प्रभाव है; रामायणकविः=रामायण के रचयिता कवि (वाल्मीकि) ने, देवीम्=देवी, भगवती, वाचम्=वाणी को, सरस्वती को, स्थाने=उचित स्थान पर, समुचित नायक के सम्बन्ध में, अवीवृधत्=बढ़ाया हैं, प्रयोग किया है ॥ २० ॥

टीका—अहो इति । अहो=आश्चर्यम्, प्रसादः = पारुष्यराहित्यं तस्मिन् भवं प्रासादिकम्=प्रसादगुणसम्पन्नम्, प्रसादगुण एवास्य रूपस्य उपादानकारणमिति भावः । रूपम्=आकृतिरस्ति; च=तथा, पावनः = पवित्रः, स्वसम्बद्धानामन्येषामपि शुद्धिहेतु-

---

१. 'प्रामोदिकम्', २. व्यवीवृतत्, ३. सिंह, ४. परिष्वङ्गस्य ।

कुश—(ध्यान से देख कर)

ओह, प्रसाद गुण से युक्त (इनका) रूप और पवित्र प्रभाव है। रामायण के रचयिता कवि (वाल्मीकि) ने देवी सरस्वती का उचित स्थान पर प्रयोग किया है ॥ २० ॥

विशेष--प्रासादिकम्--राम का रूप अनुपम है। उनके अंग-अंग से प्रसाद गुण प्रवाहित होता रहता है। देखने वाले का मन प्रसन्न हो उठता है। उनके प्रत्येक अंग पर सत्त्व गुण का साम्राज्य प्रदर्शित होता रहता है जो दर्शक के भीतर प्रसन्नता की लहरी प्रवाहित कर देता है।

स्थाने अवीवृधत्—जिस कवि की कविता का आलम्बन अनुपम हो, सत्त्व के मार्ग में सर्वातिशयी हो, वस्तुतः उस कवि की वाणी सार्थक है। उसी ने अपनी सरस्वती का उचित स्थान (अर्थात् आलम्बन) पर प्रयोग किया है। यही है कवि भवभूति का अभिप्राय। 'स्थाने' का अर्थ युक्त अर्थात् सर्वथा उचित आदि करना प्राचीन टीकाकार वीर राघव की भोड़ी नकल है ॥२०॥

(पास में जाकर) तात, वाल्मीकि का शिष्य कुश प्रणाम कर रहा है।

राम—चिरञ्जीविन्, आओ आओ।

यह (रामरूप) व्यक्ति स्नेह के कारण जल भरे मेघ की तरह चिकने एवं मनोहर शरीरवाले तुम्हारे आलिङ्गन के लिये लालायित है ॥२१॥

रित्यर्थः, अनुभावः=प्रभावो वर्तते। रामायणकविः—रामायणस्य=रामचरितस्य कविः= प्रणेता, वाल्मीकिलक्षणकविरित्यर्थः, देवीम्=भगवतीम्, वाचम्=वाणीम्, सरस्वतीमिति यावत्, स्थाने=उचिते भूमौ, समीचीन आलम्बन इत्यर्थः, अवीवृधत्=वर्द्धितवान्। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी--प्रासादिकम्—प्रसाद + ठक् (इक्) + विभक्त्यादिः। **अनुभावः**— अनु + √भू + घञ् + विभक्त्यादिः। **पावनः**— √पू + णिच् + ल्यु (अन्) + विभक्तिः।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ २० ॥

अन्वयः—अयम्, जनः, वात्सल्यात्, अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य, ते, परिष्वङ्गाय, उत्कण्ठते ॥२१॥

शब्दार्थः—अयम्=यह, जनः=आदमी, व्यक्ति, वात्सल्यात्=स्नेह के कारण, अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य=जल से परिपूर्ण मेघ की तरह चिकने एवं मनोहर शरीर वाले, ते=तुम्हारे, परिष्वङ्गाय=आलिङ्गन के लिये, उत्कण्ठते लालायित है ॥२१॥

टीका—**अमृतेति**। अयम्=एषः, त्वत्पुरःस्थित इत्यर्थः, जनः=व्यक्तिः, वात्सल्यात्=स्नेहाधिक्यात्, अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य = अमृतेन=जलेन ("पयः

(परिष्वज्य स्वगतम्) तत्किमि[1]त्ययं च दारकः—

अङ्गादङ्गात्सृत[2] इव निजः[3] स्नेहजो देहसारः
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेकः[4] ।
सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्र[5]वेणावसिक्तो[6]
[7]गाढाऽऽश्लेषः स हि मम हिमच्योतमाशंसतीव ॥ २२ ॥

लवः—[8]ललाटन्तपस्तपति घर्मांशुः । तदत्र साल[9]वृक्षच्छायायां मुहूर्त्तमासनपरिग्रहं करोतु तातः ।

कीलालममृतम्'' इत्यमरः), आध्मातः=भरितो यो जीमूतः=मेघः स इव स्निग्धम्=मसृणं सुन्दरञ्च, संहननम्=शरीरं यस्य तादृशस्य, ते=तव, परिष्वङ्गाय=आलिङ्गनाय, आलिङ्गनं कर्तुमित्यर्थः, ''तुमर्थाच्च भाववचनात्'' इति चतुर्थी, उत्कण्ठते=उत्सुको वर्तते । अत्रोपमाऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥२१॥

टिप्पणी—**०आध्मात०**—आ+ √ध्मा+क्त+विभक्त्यादिः । **०स्निग्ध०**—√स्निह्+क्त+विभक्तिः । **०संहननस्य**—सम्+√हन्+ल्युट् (अन्)+ विभक्तिः । **परिष्वङ्गाय**—परि+ √स्वञ्ज्+घञ् (अ)+विभक्तिः ।

इस श्लोक में 'जीमूतस्निग्ध' में इव अर्थ लुप्त है । अतः समासगता उपमा है । 'ते' का विशेषण 'स्निग्धसंहनन' साभिप्राय है, अतः परिकर अलङ्कार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ २१ ॥

अन्वयः—अङ्गात्, अङ्गात्, सृतः, निजः, स्नेहजः, देहसारः, इव, एकः, चेतनाधातुः, प्रादुर्भूय, बहिः, स्थितः, इव, सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेण, अवसिक्तः, सः, हि, गाढाश्लेषः, मम, हिमच्योतम्, आशंसति, इव ॥२२॥

शब्दार्थः—अङ्गात् अङ्गात्=प्रत्येक अङ्ग से, सृतः=बह कर निकला हुआ, स्नेहजः=मेरे स्नेह से उत्पन्न, निजः=अपना, देहसारः=शरीर के सार भाग की, इव=तरह, एकः=एक, चेतनाधातुः=चैतन्यतत्त्व, प्रादुर्भूय=प्रकट होकर, बहिः=बाहर, स्थितः=स्थित, इव=सा, (अस्ति=है); सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेण=घने आनन्द से क्षुभित हुए हृदय के रस से, अवसिक्तः=सींचा हुआ, सः=वह (वस्तुतः यह), हि=यह पादपूर्ति के लिये यहाँ आया है, गाढाश्लेषः=गाढ आलिङ्गन से युक्त, मम=मुझे, हिमच्योतम्=हिम के क्षरण को, आशंसति=सूचित कर रहा है, इव=मानो ॥२२॥

टीका—**अङ्गादङ्गादिति** । अङ्गात् अङ्गात्=अवयवात् अवयवात्, सर्वेभ्योऽङ्गेभ्य इत्यर्थः, सृतः=क्षरितः, निजः=स्वकीयः, देहसारः–देहस्य=शरीरस्य सारः=

---

१. किमपत्यम्, २ च्युत, स्नुत, ३. निजस्नेहजो, ४. रेव, ५. प्रस्रवेणेव, ६. ०सृष्टो, ७. गात्रं श्लेषे यदमृतरसस्रोतसा सिञ्चतीव, ८. ललाटंतपो घर्मांशुः, ९. सालवृक्षच्छाये ।

(आलिङ्गन करके, अपने आप) तो क्या यह बालक—

प्रत्येक अङ्ग से बह कर निकला हुआ सा, स्नेह से उत्पन्न मेरे शरीर का सार भाग है ? मानो यह शरीर-धारक एक चैतन्यतत्त्व है, जो (मेरे शरीर से) प्रकट होकर बाहर स्थित है। घने आनन्द से क्षुभित हुए हृदय के रस से सींचा हुआ, यह गाढ आलिंगन से युक्त होने पर मानो मुझे हिम से सिक्त कर रहा है ॥२२॥

विशेष—अयं दारकः—इसका सम्बन्ध श्लोक के साथ होगा। तभी श्लोक के अर्थ की पूर्ति होगी।

देहसारः—कुश के आलिंगन से राम को जो आनन्द हुआ वह अवर्णनीय है। अपने भावों को व्यक्त करते हुए राम कह रहे हैं—क्या यह मेरे शरीर का सार अंश है ? अथवा शरीर को धारण करने वाला चैतन्य-तत्त्व है ? इसे देखकर मेरा हृदय आनन्द से उद्वेलित होकर मानो मुझे सींच रहा है। इसका आलिंगन बर्फ की भाँति शीतल है ॥ २२ ॥

लव—भगवान् भास्कर ललाट को तपा रहे हैं। अतः पिता जी, यहाँ सालवृक्ष की छाया में थोड़ी देर तक आसन पर विराजमान हो जाँय।

उत्तमांशः, इव=यथा, एकः=मुख्यः, चेतनाधातुः—चेतना=चैतन्यमेव धातुः=पदार्थः, प्रादुर्भूय=आविर्भूय, बहिः=बाह्यदेशे, स्थित इव=वर्तमान इव, वर्तत इति शेषः; सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेण—सान्द्रः=गाढो य आनन्दः=प्रमोदः तेन क्षुभितम्=प्राप्तक्षोभं यद्धृदयं तस्य प्रस्रवेण=द्रवेण, अवसिक्तः=आर्द्रीकृतः, सः=पुरस्थो बालक इत्यर्थः, गाढाश्लेषः—गाढः=अशिथिल आश्लेषः=आलिंगनं यस्य स तादृशः, सन्निति भावः, मम=मे, रामस्येत्यर्थः, हिमच्योतम्=तुषारासेचनम्, आशंसति=सूचयति, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥२२॥

टिप्पणी—दारकः—कुछ टीकाकारों ने श्लोक के पहले आये हुए गद्य-खण्ड में—"तत्किमपत्यमयं दारकः"—ऐसा पाठ भेद मान कर इसका अर्थ यह किया है—"तो क्या यह बालक मेरा पुत्र है ?" किन्तु यह पाठ और अर्थ दोनों ही उपहासास्पद प्रतीत होते हैं। खींचतान कर अर्थ करना तर्कसंगत नहीं है।

सृत इव—√सृ+क्त+विभक्तिः।

प्रादुर्भूय—प्रादुस्+√भू+ल्यप्। **क्षुभित०**—√क्षुभ+क्त+विभक्तिः। **०प्रस्रवेण**—प्र+√स्रु+अप्+विभक्तिः। **अवसिक्तः**—अव+√सिच्+क्त+विभक्तिः। **०आश्लेषः**—आ+√श्लिष्+घञ्+विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में प्रथम द्वितीय और चतुर्थ पाद में इव के द्वारा तीन उत्प्रेक्षाएँ हैं।

यहाँ प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण—

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—ललाटन्तपः=ललाट को तपाने वाला, तपति=तप रहा है, घर्मांशुः=सूर्य। सालवृक्षच्छायायाम्=साल वृक्ष की छाया में, मुहूर्तम्=थोड़ी देर तक,

रामः—यदभिरुचितं वत्सस्य[1]।

(सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति ।)

रामः—(स्वगतम् ।)

अहो ! प्रश्रययोगेऽपि गतिस्थित्यासनादयः ।
साम्राज्यशंसिनो भावाः कुशस्य च लवस्य च ।। २३ ।।
वपुरवियु[2]तसिद्धा एव लक्ष्मीविलासाः
[3]प्रतिकलकमनीयां कान्तिमुद्भेदयन्ति ।
अमलिनमिव [4]चन्द्रं रश्मयः स्वे यथा वा
[5]विकसितमरविन्दं बिन्दवो माकरन्दाः ।। २४ ।।

आसनपरिग्रहम् = आसन को ग्रहण, करोतु = करें, बैठें । अभिरुचितम् = पसन्द है, अभिरुचि है ।।

टीका—लव इति । ललाटन्तपः–ललाटम्=भालं तपतीति ललाटन्तपः=भाल-सन्तापकः सन्निति भावः, तपति=तापं करोति, घर्मांशुः–घर्माः=उष्णाः अंशवः = किरणाः यस्य स तादृशः, सालवृक्षच्छायायाम्–सालवृक्षाणाम्=सालतरूणां छाया = अनातपस्तत्र, आसनपरिग्रहम्–आसनस्य परिग्रहम्=स्वीकरणम् । अभिरुचितम् = अभीष्टम् ।।

टिप्पणी—ललाटन्तपः—ललाटं तपति इति । ललाट + √तप् + खश् (अ) । असूर्यललाटयोः० (३।२।३६) से खश् प्रत्यय होता है । खित् होने से अरुर्द्विषद० (६।३।६७) से ललाट के बाद म् का आगम होकर रूप बनता है ।।

वृक्षच्छायायाम्—विभाषा सेना० (२।४।२५) से समासान्त छाया को विकल्प से नपुंसक होने के कारण यहाँ नपुंसक नहीं हुआ । वृक्षच्छायम् और वृक्षच्छाया—ये दोनों ही शब्द बनते हैं ।

अभिरुचितम् –अभि + √रुच् + क्त + विभक्तिः ।।

अन्वयः—अहो, प्रश्रययोगे, अपि, कुशस्य, च, लवस्य, च, गतिस्थित्यासनादयः, भावाः, साम्राज्यशंसिनः ।। २३ ।।

शब्दार्थः—अहो=ओह, प्रश्रययोगे=विनय का सम्बन्ध होने पर, अपि=भी, कुशस्य=कुश का, च=और, लवस्य=लव का, च=भी, गतिस्थित्यासनादयः=चलना, रुकना और बैठना आदि, भावाः=क्रियायें, साम्राज्यशंसिनः=सम्राट् होने की सूचक हैं ।। २३ ।।

---

१. वत्साय, २. अविहितसिद्धाः, ३. प्रतिकलकमनीयं कान्तिमत्केतयन्ति, ४. रत्नं रश्मयस्ते मनोज्ञाः, ५. विकसितमिव पद्मं ।

राम—वत्स की जैसी इच्छा।

(सभी घूम कर यथायोग्य बैठ जाते हैं)।

राम—(अपने आप)

अहो, विनय का सम्बन्ध होने पर भी (अर्थात् विनयी होने होने पर भी) कुश और लव का चलना, रुकना और बैठना आदि क्रियायें (इनके) सम्राट् होने की सूचक हैं ।। २३ ।।

जैसे अपनी (अर्थात् चन्द्रमा की) किरणें स्वच्छ चन्द्रमा को तथा जैसे मकरन्द की बूंदें खिले हुए कमल को (शोभित करती हैं अथवा सूचित करती हैं), वैसे ही शरीर के साथ जन्म से ही उत्पन्न शोभा के (हाव-भाव आदि) विलास इनकी प्रतिक्षण मनोहर कान्ति को उत्पन्न कर रहे हैं ।। २४ ।।

विशेष—स्वच्छ किरणों को देखकर चन्द्रमा के स्वच्छ होने का निश्चय कर लिया जाता है। वायु में मिश्रित कमल-पराग और पुष्परस को मिला देखकर पास में ही विकसित कमल वन का अन्दाज कर लिया जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति के अकृत्रिम हाव-भाव उसकी भाविनी समृद्धि अथवा विपन्नता की सूचना दे देते हैं। कुश-लव के दिव्य हाव-भाव इनके चक्रवर्ती होने की सूचना दे रहे हैं।

टीका—अहो इति । अहो=आश्चर्यम्, प्रश्रययोगे–प्रश्रयस्य=विनयस्य योगे= सम्बन्धे, सत्यपि, कुशस्य लवस्य च=उभयोरपि बालकयोरित्यर्थः, गतिस्थित्यासनादयः—गतिः=गमनं स्थितिः=अवस्थानम् आसनम्=उपवेश एतानि आदिर्येषां ते तादृशाः, 'आदि' कथनान्निरीक्षणादिपरिग्रहः, भावाः=क्रियाः, साम्राज्यशंसिनः–साम्राज्यं शंसन्तीति, सार्वभौमत्वसूचकाः सन्तीति क्रियाशेषः । अत्रानुमानमलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २३ ॥

टिप्पणी—साम्राज्यशंसिनः—कुश एवं लव अत्यन्त विनीत हैं। किन्तु उनका उठना, बैठना, बोलना और चलना आदि क्रियाएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें देखकर कोई भी कह सकता है कि ये बालक भविष्य में पृथिवी के शासक होंगे। साम्राज्य + √शंस् + इन् + विभक्तिः ।

इस श्लोक में अनुमान अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है ॥ २३ ॥

अन्वयः—यथा, स्वे, रश्मयः, अमलिनम्, चन्द्रम्, इव, वा, माकरन्दाः, बिन्दवः, विकसितम्, अरविन्दम्, वपुरवियुतसिद्धाः, एव, लक्ष्मीविलासाः, प्रतिकलकमनीयाम्, कान्तिम्, उद्भेदयन्ति ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—यथा=जैसे, स्वे=अपनी, रश्मयः=किरणें, अमलिनम्=निर्मल, चन्द्रम्= चन्द्रमा को, इव=जैसे, वा=अथवा, माकरन्दाः=पुष्प-रस की, मकरन्द की, बिन्दवः= बूंदें, विकसितम्=खिले हुए, अरविन्दम्=कमल को, (सूचित करती हैं), वपुरवियुत-

[1]भूयिष्ठं च रघुकुलकौमारमनयोः पश्यामि ।
कठोरपारावतकण्ठमेचकं वपुर्वृषस्कन्धसुबन्धुरांस[2]योः ।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः ॥ २५॥
(निपुणं निरूपयन् ।) अये ! न केवलमस्मद्वंश[3]संवादिन्याकृतिः—

सिद्धाः=शरीर के साथ स्वभावसिद्ध, अवियुतसिद्ध=स्वभावसिद्ध, जन्मसिद्ध, एव=ही, लक्ष्मीविलासाः=शोभा के विलास, विलास=हाव-भाव, प्रतिकलकमनीयाम्=प्रतिक्षण मनोहर, क्षण-क्षण नवीन, कान्तिम्=शोभा को, उद्भेदयन्ति=उत्पन्न कर रहे हैं, विकसित कर रहे हैं ॥ २४ ॥

टीका—वपुरिति । यथा=येन प्रकारेण, स्वे=स्वीकीयाः, रश्मयः=किरणाः=, अमलिनम्=निर्मलम्, निष्कलङ्कमिति भावः,चन्द्रमिव=इन्दुमिव, उद्भेदयन्तीत्यत्रान्वयः, माकरन्दाः–मकरन्दः=पुष्परसः ("मकरन्दः पुष्परसः" इत्यमरः), तस्य इमे माकरन्दाः=पुष्परससम्बन्धिनः, बिन्दवः=कणाः, विकसितम्=प्रफुल्लम्, अरविन्दम्=कमलम्, वा=यथा, वेति विकल्पेऽथवा उद्भेदयन्ति; वपुरवियुतसिद्धाः–वपुषा=शरीरेण अवियुतसिद्धाः=स्वभावसिद्धाः, जन्मजाता इत्यर्थः, एवेति पादपूर्तौ, लक्ष्मीविलासाः–लक्ष्मणः=शोभायाः=विलासाः=विभ्रमाः, प्रतिकलकमनीयाम्–प्रतिकलम्=प्रतिक्षणं कमनीयाम्=मनोहराम्, कान्तिम्=प्रभाम् उद्भेदयन्ति=उत्पादयन्ति, सूचयन्तीति यावत् । धातूपसर्गाणामनेकार्थत्वाद्यथायथं योज्यम् । अत्रोपमाऽलङ्कारः । मालिनी च छन्दः ॥ २४ ॥

टिप्पणी–उद्भेदयन्ति—उद् + √भिद् + णिच् + लट् प्रथमैकवचने विभक्तिः ।
माकरन्दाः—मकरन्द + अण् + विभक्त्यादिः ।

इस श्लोक में उपमालङ्कार तथा मालिनी छन्द है । छन्द का लक्षण—

"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥२४॥

अन्वयः—वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः, वपुः, कठोरपारावतकण्ठमेचकम्; वीक्षितम्, च, प्रसन्नसिंहस्तिमितम्; च, ध्वनिः, माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः, (अस्ति) ॥२५॥

शब्दार्थः—वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः = वृषभ के स्कन्ध की भाँति सुन्दर स्कन्धवाले इन दोनों (बालकों) का, वपुः=शरीर, कठोरपारावतकण्ठमेचकम्=जवान कबूतर के कण्ठ के समान श्यामवर्ण का है, च=तथा, वीक्षितम्=अवलोकन, देखना, प्रसन्नसिंहस्तिमितम्=मनोहर सिंह के समान निश्चल है, च=और, ध्वनिः=आवाज, बोली, माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः=मङ्गल सूचक मृदङ्ग की ध्वनि की भाँति गम्भीर है ॥ २५ ॥

१. भूयिष्ठां च रघुकुमारच्छायामनयोः पश्यामि, २. ०आंसकम्, ३. अस्मदङ्ग ।

मैं इन दोनों बालकों में रघुवंशी बालकों की बहुत-सी समानताएँ देख रहा हूँ– वृषभ के स्कन्ध की भाँति सुन्दर स्कन्ध वाले इन दोनों (बालकों) का शरीर तरुण कबूतर के कण्ठ के समान श्याम वर्ण का है तथा इनका देखना मनोहर सिंह के समान निश्चल है। और ध्वनि मङ्गल सूचक मृदङ्ग की ध्वनि की भाँति गम्भीर है ॥ २५ ॥

विशेष—ऊपर जिन बातों का वर्णन किया गया है वे प्रायः रघुवंशी कुमारों में ही मिला करती हैं। अतः रामचन्द्र का मन इस आशंका की ओर दौड़ रहा है कि कहीं ये सीता के पुत्र तो नहीं हैं? ॥ २५ ॥

(ध्यान से देखते हुए) अरे, न केवल इनकी आकृति ही हमारे वंश से मिलती-जुलती है, अपितु —

टीका—कठोरेति। वृषस्य=वृषभस्य स्कन्धौ–अंसौ इव सुबन्धुरौ=अतिसुन्दरौ अंसौ=स्कन्धौ ययोस्तयोः, कुशलवयोरिति भावः, वपुः=शरीरम्, कठोरपारावतकण्ठ-मेचकम्–कठोरः=तरुणो यः पारावतः=कपोतस्तस्य कण्ठः=गल इव मेचकम्=नीलम्, अस्तीति क्रियायोगः सर्वत्र वाक्यसमाप्तौ योजनीयः, वीक्षितम् =अवलोकनम्, दृष्टि-पात इति यावत्, च=अपि, प्रसन्नसिंहस्तिमितम्—प्रसन्नः=अक्रुद्धः, शान्त इति यावत्, यः सिंहः=केशरी तस्य सिंहस्य दर्शनमिव स्तिमितम्=निश्चलम्, वर्तते, च=तथा, ध्वनिः=कण्ठस्वरश्च, माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः—माङ्गल्यः=मङ्गलसूचको यो मृदङ्गः= मुरजः, लक्षणया मृदङ्गध्वनिः, इव मांसलः=गम्भीरः, अस्तीति शेषः। इत्थं सर्वथाऽ-नयोः कुमारयोश्चेष्टादिकं रघुकुलकौमारं सूचयतीति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। वंशस्थं च छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—भूयिष्ठम्—बहु (भू)+इष्ठन् इ को यि+विभक्तिकार्यम्। वीक्षितम्–वि+ √ईक्ष्+क्त+विभक्तिः। माङ्गल्यम्—मङ्गलाय हितं मङ्गल्यम्–मङ्गल+यत्। मङ्गलमेव माङ्गल्यम् – मङ्गल+स्वार्थे अण्+विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में चारों पदों में इव का अर्थ लुप्त है, अतः समासगत चार लुप्तोपमाएँ हैं। यहाँ प्रयुक्त वंशस्थ छन्द का लक्षण— "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—निपुणम्=सावधानी से, निरूपयन्=देखते हुए, विचार करते हुए। अस्मद्वंशसंवादिनी=हमारे वंश से मिलती-जुलती, आकृतिः =आकार, चेहरा।

टीका– निपुणमिति। निपुणम्=सम्यक्, निरूपयन्=अवलोकयन्, विचारयन्नि-त्यपि, अस्मद्वंशसम्वादिनी—अस्माकं वंशेन=कुलेन सम्वादिनी=सम्बन्धिनी, आकृतिः= आकारः।

टिप्पणी--सम्वादिनी--सम्+ √वद्+णिनिः+ङीप्+विभक्तिः।

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति ।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो-
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यं प्रियायाः ॥ २६ ॥

शुक्ला[1]च्छदन्तच्छविसुन्द[2]रीयं सैवोष्ठमुद्रा स च कर्णपाशः ।
नेत्रे पुनर्यद्यपि [3]रक्तनीले तथापि सौभाग्यगुणः स एव ॥२७॥

अन्वयः—इह, शिशुयुग्मे, नैपुणोन्नेयम्, जनकसुतायाः, तच्च, तच्च, अनुरूपम्, अपि, स्फुटम्, अस्ति; ननु, अभिनवशतपत्रश्रीमत्, तत्, प्रियायाः, आस्यम्, पुनः, मे, अक्ष्णोः, गोचरीभूतम्, इव ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—इह=इन, शिशुयुग्मे=बालकद्वय में, दोनों बालकों में, नैपुणोन्नेयम्=निपुणता से अनुमान करने के योग्य, जानने के योग्य, जनकसुतायाः=जानकी की, तच्च=वह, अनुरूपम्=समानताएँ, अपि=भी, स्फुटम् = स्पष्ट, अस्ति = हैं । ननु= वस्तुतः, निश्चय ही, अभिनवशतपत्रश्रीमत्=नवीन कमल के समान सुन्दर, तत्= वह, प्रियायाः = प्रियतमा (सीता) का, आस्यम् = मुख, पुनः=फिर से, मे=मेरे, अक्ष्णोः=नेत्रों के, गोचरीभूतम् इव=सामने आ सा गया है, विषय बन-सा गया है ॥

टीका—अपि जनकसुताया इति । इह=अस्मिन्, शिशुयुग्मे–शिश्वोः= बालकयोर्युग्मे = युगले, कुशलवयोरिति भावः, ("युग्मं तु युगलं युगम्" इत्यमरः), नैपुणोन्नेयम्–निपुणस्य=कुशलस्य भावो नैपुणम्=निपुणता तेन उन्नेयम्–अनुमेयम्, जनकसुतायाः–जनकस्य=सीरध्वजस्य सुतायाः=पुत्र्याः, तच्च तच्च=तद्विविधमित्यर्थः, अनुरूपम्=साम्यम्, अपि=च, स्फुटम् = व्यक्तम्, अस्ति=वर्तते । अनयोरङ्गानां सीताया अवयवैः स्फुटं साम्यमस्तीत्यर्थः । नन्विति वाक्यालङ्कारे याथार्थ्ये वा, अभिनवशत-पत्र-श्रीमत्—अभिनवम्=नूतनं शतपत्रमिव=कमलमिव श्रीमत्=शोभायुक्तम्, तत् = पूर्वानुभूतं बहुशो दृष्टञ्च, प्रियायाः=प्रियतमायाः आस्यम् = मुखम्, पुनः=मुहुः, मे = मम, अक्ष्णोः=नयनयोः, गोचरीभूतमिव=विषयीभूतमिव, अस्तीति क्रियाशेषः । अत्रोपमोत्प्रेक्षास्मरणश्चालङ्काराः । मालिनी च छन्दः ॥ २६ ॥

टिप्पणी—नैपुणम्—निपुण+अण्+विभक्त्यादिः । उन्नेयम्–उत्+ √नी +यत् (य)+विभक्तिः ।

इस श्लोक में अभिनव० में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है । पुनरिव में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है ।

यहाँ प्रयुक्त मालिनी छन्द का लक्षण–ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥२६॥

---

१. 'मुक्ता' इति पाठान्तरम् । २. सुन्दरेयं, ३. नैव,

इन दोनों बालकों में निपुणता से देखने पर प्रतीत होने वाली, जानकी की वे-वे समानताएँ भी स्पष्ट दीख रही हैं। वस्तुतः नवीन कमल के समान सुन्दर प्रियतमा (सीता) का वह मुख फिर से मेरी आँखों के सामने आ-सा गया है ॥ २६ ॥

विशेष--आस्यं गोचरीभूतमिव--राम के कहने का भाव यह है कि यदि इन बालकों के अङ्गों को सावधानी से देखा जाय तो जानकी की बहुत-सी विशेषताएँ इनमें देखी जा सकती हैं। उदाहरणके लिए इन बालकों का मुख सीता के ही मुख-जैसा है। इनके मुख को देखने से लग रहा है कि मैं मानो बहुत दिनों के बाद जानकी के ही मुख को फिर से देख रहा हूँ ॥ २६ ॥

धवल एवं निर्मल दाँतों की कान्ति से सुन्दर ओठों का विन्यास वही (अर्थात् सीता के ओठों के विन्यास की ही तरह) है, वैसे ही सुन्दर कान हैं। यद्यपि नेत्र लाल और नीलें हैं, फिर भी सौन्दर्य-सुण वैसा ही है ॥ २७ ॥

विशेष--नेत्रे रक्तनोले--राम लव-कुश के अङ्गों में सीता के अंगों का साम्य देख रहे हैं। उनका कहना है कि इन बालकों के दाँत कान और नेत्र सीता के दाँत, कान और नेत्रों जैसे ही हैं। नेत्रों में केवल अन्तर इतना ही है कि स्त्री होने के कारण सीता के नेत्र धवल थे और पुरुष होने के नाते इनके नेत्र लाल और किञ्चित् नीलें हैं ॥ २७ ॥

अन्वयः—शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरा, इयम्, ओष्ठमुद्रा, सा, एव, च, सः, कर्णपाशः, यद्यपि, नेत्रे, पुनः, रक्तनीले, तथापि, सौभाग्यगुणः, सः, एव, (वर्तते) ॥२७॥

शब्दार्थः—शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरा=धवल एवं निर्मल दाँतों की कान्ति से सुन्दर, इयम्=यह, ओष्ठमुद्रा=ओठों की बनावट, ओठों का विन्यास, सा=वह, सीता के ओष्ठ जैसी, एव=ही (है), च=और, सः=वही, कर्णपाशः=सुन्दर कान (हैं)। यद्यपि=यद्यपि, नेत्रे=आँखें, पुनः=फिर, रक्तनीले=लाल और नीले हैं, तथापि=तो भी, सौभाग्यगुणः=सौन्दर्यरूपी गुण, सौन्दर्य, सः=वह, एव=ही (है) ॥ २७ ॥

टीका—शुक्लाच्छेति। शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरा—शुक्लाः=श्वेताः अच्छाः= निर्मलाः ये दन्ताः=दशनाः तेषां छबिभिः-कान्तिभिः सुन्दरा=सुशोभना, इयम्=एषा, अनयोर्बालकयोरित्यर्थः, ओष्ठमुद्रा—ओष्ठयोः=अधरोष्ठपुटयोः मुद्रा=विन्यासः, रचनेति यावत्, सा=सीतासदृशीत्यर्थः, एवेति निश्चये; च=तथा, सः=तादृशः, सीताकर्ण-सदृश इत्यर्थः, कर्णपाशः=सुन्दरौ कर्णौ स्तः। ("पाशः केशादिपूर्वः स्यात्तत्सङ्घे, कर्णपूर्वकः। सुकर्णे" इति मेदिनीकाराः); यद्यपि=पुनः, अनयोः, नेत्रे=नयने, पुनः= मुहुः, रक्तनीले=अरुण,कृष्णे, स्त्रीत्वात्, सीताया धवले एवेति भावः, तथापि= नेत्रयोर्भेदे सत्यपीति भावः, सौभाग्यगुणः—सौभाग्यम्=सौन्दर्यमेव गुणः स एव= तादृश एवास्ति। अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः। छन्दस्तु उपजातिः ॥ २७ ॥

(विचिन्त्य) तदेतत्प्राचेतसाध्युषितमरण्यं, यत्र किल देवी परित्यक्ता। इयं चानयोराकृति[1]र्वयोऽनुभावश्च। यत्स्वतःप्रकाशान्यस्त्राणीति च। तत्रापि[2] स्मरामि खलु तदपि चित्रदर्शनप्रासङ्गिकं शस्त्राभ्यनुज्ञानं प्रबुद्धं[3] स्यात्। न ह्यसाम्प्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामपि शुश्रुमः। अयं विस्मयसंप्लवमानसुखदुःखातिशयो हृदयस्य मे[4] विप्रलम्भः। यमाविति च भूयिष्ठ[5]मात्मसंवादः। जीवद्वयापत्यचिह्नो हि देव्या गर्भिणीभाव आसीत् (सास्रम्।)

[6]परां कोटिं स्नेहे परिचयविकासादधिगते
रहो विस्रब्धाया अपि सहजलज्जाजडदृशः।
मयैवादौ ज्ञातः करतलपरार्शकलया
द्विधा गर्भग्रन्थिस्तदनु दिवसैः कैरपि तया॥ २८॥

(रुदित्वा।) तत्किमेतौ पृच्छामि[7] केनचिदुपायेन ?

टिप्पणी—कर्णपाशः—पाश का अर्थ सुन्दर अथवा उत्तम है। प्रशस्तौ कर्णौ इस अर्थ में "प्रशंसावचनैश्च" (२।१।६६) से पाश के साथ समास हुआ है।

सौभाग्यम्—सुभग+ष्यञ्+विभक्तिः, उभयपदवृद्धिश्च।

इस श्लोक में कुश आदि के ओठों की समता सीता के ओठों से बतलाई गई है। दोनों में साम्यप्रदर्शित किया गया है। अतः निदर्शना अलंकार है।

यहाँ प्रयुक्त उपजाति छन्द का लक्षण है—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः॥ २७॥

शब्दार्थः—प्राचेतसाध्युषितम्=वाल्मीकि मुनि के द्वारा अधिष्ठित, अरण्यम्=वन; देवी=भगवती (सीता), परित्यक्ता=छोड़ी गई थीं। आकृतिवयोऽनुभावश्च=आकार, अवस्था और प्रभाव, चित्रदर्शनप्रासङ्गिकम्=चित्र–दर्शन के प्रसङ्ग में। विस्मयसंप्लवमानसुखदुःखातिशयः=आश्चर्य में तैर रहा है सुख और दुःख का आधिक्य जिसऐसा; भूयिष्ठम्=बहुत अधिक, आत्मसंवादः=बुद्धिसंगत है॥

टीका—तदेतदिति। प्राचेतसाध्युषितम्–प्राचेतसेन=वाल्मीकिना अध्युषितम्=अधिष्ठितम्, यत्र=यस्मिन् वने, देवी=महाराज्ञी सीता, परित्यक्ता=लक्ष्मणेन निर्वासिता। अनयोः=कुशलवयोरित्यर्थः, आकृतिः=आकारः, वयः=द्वादशवत्सरपरिमितमायुरित्यर्थः, अनुभावः=प्रभावः। अस्त्राणि=जृम्भकास्त्राणि, स्वतःप्रकाशानि=गुरूपदेशं

---

१. वपुश्च, इयं चानयोराकृतिर्वत्सयोः, २. तत्र विमृशामि, ३. उद्भूतं स्यात्, ४. विस्रम्भयते, विप्रलभते, विस्रम्भः, ५. जीवद्वयापत्यचिह्नो हि देव्याः, ६. पुरा रूढे, ७. केनाप्युपायेन।

(सोच कर) यह वन वाल्मीकि मुनि के द्वारा अधिष्ठित है, जहाँ देवी (सीता) छोड़ी गई थीं। इन दोनों की अवस्था, आकार और प्रभाव वैसा ही है (अर्थात् सीता को जितने वर्ष छोड़े हुए उतनी ही इनकी अवस्था है, आकार और प्रभाव भी सीता जैसा ही है)। जो इन दोनों को जृम्भक अस्त्र स्वयं प्रकाशित हुए हैं, उनके विषय में मुझे याद है कि चित्र-दर्शन के प्रसङ्ग में (गर्भस्थ शिशु के लिये) मैंने जृम्भक अस्त्रों की प्राप्ति की जो स्वीकृति दी थी, वही शायद प्रकट हुई है। मैंने अभी तक ऐसा नहीं सुना है कि पूर्वजों को भी ये जृम्भक अस्त्र विना गुरु-परम्परा के प्राप्त हुए हों। हमारे हृदय में जो विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार है, उसके सुख और दुःख का आधिक्य आश्चर्य के प्रवाह में तैर रहा है। ये दोनों जुडवा बन्धु हैं, यह बात भी बहुत अधिक बुद्धि-संगत है, क्योंकि देवी सीता का गर्भिणीभाव दो सन्तानों के चिह्नों से युक्त था। (आँखों में आँसू भर कर)

परिचय की वृद्धि होने से प्रेम के चरम सीमा को प्राप्त होने पर एकान्त में विश्वस्त एवं स्वाभाविक लज्जा के कारण निश्चेष्ट दृष्टिवाली (सीता) के गर्भ को, मैंने ही सर्वप्रथम हाथ फेरने की क्रिया से, यह दो भागों में विभक्त है (अर्थात् दो बच्चे हैं)—इस प्रकार जाना था, तदनन्तर कुछ दिनों के बाद उसे भी इसका पता लगा था ॥ २८ ॥

(रोकर) तो क्या किसी उपाय से इन दोनों बालकों से पूछूँ ?

विनैवाधिगतानि। चित्रदर्शनप्रासङ्गिकम्–चित्रदर्शने=आलेख्यावलोकने प्रासङ्गिकम्= प्रसङ्गात् प्रोक्तम्, चित्रावलोकनोद्गतमिति भावः। असम्प्रदायिकानि = गुरूपदेशं विनैवाधिगतानि, पूर्वेषाम् = प्राचीनानामपि। विस्मयसंप्लवमानसुखदुःखातिशयः– विस्मये=आश्चर्ये संप्लवमानः=मज्जन् सुख-दुःखप्रकर्षो येन तादृशः, मे=मम, हृदयस्य =चेतसः विप्रलम्भः = विप्रयोगः। यमौ = सहोत्पन्नौ, आत्मसंवादः–आत्मनः बुद्धेः संवादः=सङ्गतिः। जीवद्वयापत्यचिह्नः—जीवद्वयम्=जीवद्वितयं यदपत्यम्=सन्ततिः तस्य चिह्नम्=लक्षणं यस्मिन् स तादृशः, गर्भिणीभावः=गुर्विणीत्वमित्यर्थः ॥

टिप्पणी—**अध्युषितम्**—अधि + √वस् + क्त + विभक्तिः। यहाँ व को सम्प्रसारण से उ हो जाता है। **परित्यक्ता**—परि + √त्यज् + क्त + टाप् + विभक्त्यादिः। **प्रासङ्गिकम्**–प्रसङ्ग + ठक् (इक्) + विभक्त्यादिः। **अभ्यनुज्ञानम्**– अभि + अनु + √ज्ञा + ल्युट् (अन) + विभक्तिः।

प्रबुद्धम्—प्र + √बुध् + क्त + विभक्तिः ॥

अन्वयः—परिचयविकासात्, स्नेहे, पराम्, कोटिम्, अधिगते; रहोविस्रब्धायाः, अपि, सहजलज्जाजडदृशः, (सीतायाः); गर्भग्रन्थिः, मया, एव, आदौ, करतल-परामर्शकलया, द्विधा, ज्ञातः; तदनु, कैः, अपि, दिवसैः, तया (ज्ञातः) ॥२८॥

लवः—तात ! किमेतत् ?

बाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मङ्गलमाननम् ।
अवश्याया[1]वसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम् ॥ २९ ॥

कुशः—अयि वत्स !

विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः ?
प्रियानाशे कृत्स्नं [2]किल जगदरण्यं हि भवति ।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः
किमेवं त्वं[3] पृच्छस्यनधिगतरामायण इव ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—परिचयविकासात्=परिचय की वृद्धि होने से, स्नेहे=प्रेम के, पराम्=चरम, कोटिम्=सीमा को, अधिगते=प्राप्त होने पर, रहोविस्रब्धायाः=एकान्त में विश्वस्त, अपि=भी, सहजलज्जाजडदृशः=स्वाभाविक लज्जा के कारण निश्चेष्ट-दृष्टिवाली, (सीतायाः=सीता की) गर्भग्रन्थिः=गर्भ-गाँठ को, गर्भ को, मया=मैंने, एव=ही, आदौ=सर्वप्रथम, करतलपरामर्शकलया=हाथ फेरने की क्रिया से, द्विधा=दो भागों में विभक्त है, (इति=यह), ज्ञातः=पता लगाया था, तदनु=तदनन्तर, कैः=कुछ, अपि=भी, दिवसैः=दिनों से, तया=सीता के द्वारा, (ज्ञातः=मालूम किया गया था) ॥ २८ ॥

टीका—**परां कोटिमिति** । परिचयविकासात्–परिचयस्य=संस्तवस्य विकाशात्=वृद्धेः, स्नेहे=प्रेम्णि, पराम्=उत्कृष्टाम्, कोटिम्=सीमानम्, अधिगते=प्राप्ते सति; रहोविस्रब्धायाः–रहसि=एकान्ते, विस्रब्धायाः=विश्वासमुपगतायाः, अपि=तथा, सहजलज्जाजडदृशः–सहजा=स्वाभाविकी या लज्जा=व्रीडा तया जडे=निश्चेष्टे दृशौ=लोचने यस्याः सा तस्याः, लज्जास्तिमितलोचनायाः सीतायाः इति भावः, गर्भग्रन्थिः–गर्भस्य=भ्रूणस्य ग्रन्थिः=बन्धः, अथवा ग्रन्थिभूतो गर्भपिण्डः, मया=रामेणैवेत्यर्थः, आदौ=प्रथमम्, करतलपरामर्शकलया–करतलेन=पाणितलेन यः परामर्शः=आमर्शनं तस्य कलया=चातुर्येण, द्विधा=द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्, अपत्यद्वयप्रकारेणेत्यर्थः, अवस्थित इति शेषः; तदनु=तदनन्तरम्, मज्ज्ञानानन्तरमिति भावः, कैः=कतिपयैः, अपि=च, दिवसैः=दिनैः, "अपवर्गे तृतीया" इति तृतीया, तया=सीतया अपि, ज्ञातः=विदितः । अतोऽपि इमौ मदीयौ पुत्राविति तर्कयामि । तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । शिखरिणी छन्दः ॥ २८ ॥

टिप्पणी—**विस्रब्धायाः**—वि+ √स्रम्भ+क्त+विभक्तिः । **परामर्श०**—परा+ √मृश्+घञ्+विभक्तिः ।

---

1. याम्बु०, 2. जगदिदम, 3 'किमित्येवम्' ।

लव—तात, यह क्या ?

संसार के लिये मङ्गलकारी आपका यह मुख आँसुओं की वर्षा के कारण ओस के कणों से भीगे हुए कमल की सुन्दरता को प्राप्त करा दिया गया है ॥२९॥

कुश—हे वत्स,—

देवी सीता केविना राम के लिये (संसार की) कौन-सी वस्तु दुःखदायी नहीं है ? क्योंकि प्रियतमा का नाश हो जाने पर सारा जगत् ही जङ्गल-सा हो जाता है। कहाँ उनका (सीता के प्रति) वह प्रेम और कहाँ यह निःसीम वियोग ? तुम रामायण न पढ़े हुए व्यक्ति की तरह क्यों इस प्रकार पूछ रहे हो ? ॥ ३० ॥

इस श्लोक में राम और सीता (मया, तया) दो प्रस्तुतों का 'ज्ञातः' इस एक क्रियारूपी धर्म से सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ २८ ॥

अन्वयः—जगन्मङ्गलम्, वः, आननम्, वाष्पवर्षेण, अवश्यायावसिक्तस्य, पुण्डरीकस्य, चारुताम्, नीतम् ॥२९॥

शब्दार्थः—जगन्मङ्गलम्=संसार के लिये मङ्गलकारी, वः=आपका, आननम्=मुख, वाष्पवर्षेण=आँसुओं की वर्षा के कारण, अवश्यायावसिक्तस्य=ओस के कणों से भीगे हुए, पुण्डरीकस्य=कमल की, चारुताम्=सुन्दरता को, नीतम्=प्राप्त करा दिया गया है ॥ २९ ॥

टीका—**वाष्पवर्षेणेति**। जगन्मङ्गलम्=जगताम्=लोकानां मङ्गलम्=मङ्गलकारकम्, वः=युष्माकम्, आननम्=वदनम्, वाष्पवर्षेण=अश्रुवृष्टया, अवश्यायावसिक्तस्य–अवश्यायैः=तुषारकणैः ("अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम्" इत्यमरः)। अवसिक्तस्य=आर्द्रस्य, पुण्डरीकस्य=कमलस्य, चारुताम्=शोभाम्, नीतम्=प्रापितम्। अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥२९॥

टिप्पणी—**अवसिक्तस्य**—अव+√सिच्+क्त+विभक्तिः। **नीतम्**—√नी+क्त+विभक्तिः।

यहाँ निदर्शनाऽलङ्कार तथा अनुष्टुप् छन्द है ॥ २९ ॥

अन्वयः—सीतादेव्याः, विना, रघुपतेः, किमिव, दुःखम्, न हि ? हि, प्रियानाशे, कृत्स्नम्, जगत्, किल, अरण्यम्, भवति। सः, च, तावान्, स्नेहः, अयम्, अपि, निरवधिः, वियोगः; त्वम्, अनधिगतरामायणः, इव, किम्, एवम्, पृच्छसि ? ॥३०॥

शब्दार्थः—सीतादेव्याः=देवी सीता के, विना=अभाव में, रघुपतेः=राम के लिये, किमिव=कौन-सी वस्तु, दुःखम्=दुःखदायी, न हि=नहीं है ? हि=क्योंकि,

रामः—(स्वगतम् ।) अये, [1]तटस्थ आलापः । कृतं प्रश्नेन । [2]मुग्धहृदय ! कोऽयमाकस्मिकस्ते [3]संप्लवाधिकारः ? एवं निर्भिन्नहृदयावेगः शिशुजनेनाप्यनुकम्पितोऽस्मि । भवतु तावदन्तरयामि (प्रकाशम् ।) वत्सौ ! 'रामायणं रामायणमिति श्रूयते भगवतो वाल्मीकेः सरस्वतीनिष्यन्दः प्रशस्तिरादित्यवंशस्य' [4]तत्कौतूहलेन यत्किंचिच्छ्रोतुमिच्छामि ।

कुशः—कृत्स्न एव सन्दर्भोऽस्माभिरा[5]वृत्तः, स्मृतिप्रत्युपस्थितौ तावदिमौ बालचरितस्यासाते द्वौ श्लोकौ ।

रामः—[6]उदीरयतं वत्सौ !

प्रियानाशे=प्रियतमा का नाश हो जाने पर, कृत्स्नम्=सारा, जगत्=संसार, किल=निश्चय ही, अरण्यम्=जङ्गल, भवति=हो जाता है; सः=वह, च=भी, तावान्=उतना, स्नेहः=स्नेह, अयम्=यह, अपि=भी, निरवधिः=निःसीम, वियोगः=वियोग; त्वम्=तुम, अनधिगतरामायणः=रामायण न पढ़े हुए व्यक्ति की, इव=तरह, किम्=क्यों, एवम्=इस प्रकार, पृच्छसि=पूछ रहे हो ? ॥ ३० ॥

टीका—विनेति । सीतादेव्याः=जानक्याः, विना=अन्तरेण, रघुपतेः=राघवस्य, किमिव=किं वस्तु, दुःखम्=दुःखकरम्, न हि=नैवास्ति । सीतावियुक्तस्य रामस्य कृते निखिलमेव वस्तु दुःखकरमेवेति भावः । हि=यतः, प्रियानाशे—प्रियायाः=प्रेयस्याः नाशे=निधने, कृत्स्नम्=अखिलम्, जगत्=संसारः, किलेति निश्चये, अरण्यम्=वनतुल्यम्, भवति=जायते । स च=पूर्वानुभूतः, तावान्=तत्परिमाणः, तादृश इत्यर्थः, स्नेहः=प्रेम, अयमपि=एषः, सम्प्रति प्रचलित इति यावत्, निरवधिः—निर्गतः अवधिर्यस्य तादृशः, अनन्त इत्यर्थः, वियोगः=विरहः । त्वम्=लवः, अनधिगतरामायणः—न अधिगतम्=अधीतम् रामायणम्=रामायणनामकं महाकाव्यं येन तादृशः, इव=यथा, किम्=किमर्थम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, पृच्छसि=जिज्ञाससे ? अत्रार्थान्तरन्यासः परिणामश्चालङ्कारौ । शिखरिणी छन्दः ॥ ३० ॥

टिप्पणी—अनधिगत०—नञ्+अधि+√गम+क्त+विभक्तिः । कुश के कहने का भाव यह है कि जिसने रामायण पढ़ी है, वह ऐसा प्रश्न नहीं कर सकता। अतः लवं, लगता है तुमने रामायण मानो पढ़ी ही नहीं है ।

इस श्लोक में द्वितीय चरण के सामान्य अर्थ के द्वारा प्रथम चरण के विशेष अर्थ का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । संसार को जंगल की भाँति शून्य बतलाने से परिणाम अलङ्कार भी है ।

---

१. तटस्थ इव, तटस्थितः, २. दग्ध०, ३. स्नेहपरिप्लवो विकारः, पारिप्लवो विकारः, ४. किंचित्कौतु०, ५. अस्माकं विदितः, ६. उदीरयतु वत्सः ।

राम (अपने आप) अरे, इन दोनों का वार्तालाप तटस्थ (अर्थात् राम-सीता के प्रसंग से अछूता) है। अतः इनसे कुछ पूछना व्यर्थ है। मेरे मूढ हृदय, तुझे सहसा इस प्रकार बह जाने का क्या अधिकार है ? इस प्रकार मनोभाव के प्रकट हो जाने से मैं बालकों की भी दया का पात्र बन गया हूँ। अच्छा, अब (अपने मनोभाव को) छिपाता हूँ। (प्रकट रूप से) बालकों, 'पूज्य वाल्मीकि की वाणी का प्रवाह, सूर्य-वंश की प्रशस्ति यह रामायण-रामायण'—ऐसा सुना जाता है। तो उत्कण्ठावश उसका कुछ अंश मैं सुनना चाहता हूँ।

कुश—वह सम्पूर्ण प्रकरण हम लोगों के द्वारा अभ्यस्त किया गया है। सम्प्रति (उसके) बालचरित के ये दो श्लोक याद आ रहे हैं।

राम—बच्चों, सुनाओ।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—तटस्थः=उदासीन, उदासीन व्यक्तियों के तुल्य, आलापः=बात-चीत। कृतम्=व्यर्थ है, मुग्धहृदय=मूढ हृदय, संप्लवाधिकारः=बहने का अधिकार। निर्भिन्नहृदयावेगः=मनोभाव प्रकट हो गया है जिसका ऐसा, अन्तरयामि=छिपाता हूँ। सरस्वतीनिष्यन्दः=विद्या का प्रवाह, प्रशस्तिः=प्रशंसा, कौतूहलेन=उत्कण्ठावश, उत्कण्ठा के कारण ॥

टीका—राम इति। तटस्थः=उदासीनः, आलापः=भाषणम्। राम-सीता-सम्बन्धशून्य इत्यर्थः। प्रश्नेन=अनुयोगेन, कृतम्=अलम्, मुग्धहृदय-मुग्धम्=मूढं च तत् हृदयम्=अन्तःकरणं तत्सम्बुद्धौ, संप्लवाधिकारः—संप्लवस्य=दूरगमनस्येत्यर्थः अधिकारः=अधिकृतिः। निर्भिन्नहृदयावेगः—निर्भिन्नः=आविर्भूतः हृदयस्य=अन्तः-करणस्य आवेगः=संभ्रमो यस्य स तादृशः, अहमिति शेषः। अन्तरयामि=प्रच्छाद-यामि। सरस्वतीनिष्यन्दः—सरस्वत्याः=वाण्याः निष्यन्दः=प्रवाहः, प्रशस्तिः=चरित्र-कीर्तनम्, प्रशंसेति यावत्। कौतूहलेन=उत्कण्ठया ॥

टिप्पणी—कृतं प्रश्नेन—राम के कहने का भाव यह है कि—ये बालक आपस में जो बात-चीत कर रहे हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इनका राम और सीता से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। अतः इनके विशेष परिचय के बारे में कुछ भी पूछना व्यर्थ है।

आकस्मिकः—अकस्मात् भवः, अकस्मात्+ठञ् (इक)+विभक्त्यादिः।

निर्भिन्न०—निर्+√भिद्+क्त+विभक्त्यादिः ॥

शब्दार्थः—कृत्स्नः=सम्पूर्ण, आवृत्तः=अभ्यास किया गया है, अभ्यस्त है। स्मृतिप्रत्युपस्थितौ=याद हैं, कण्ठस्थ हैं ॥

कुशः— [1]प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ।
गुणै रूपगुणैश्चापि प्रीतिर्भूयोऽप्यवर्धत ॥ ३१ ॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत् ।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ ३२ ॥

रामः—कष्टमतिदारुणो हृदय[2]मर्मोद्घातः । हा देवि ! [3]एवं किलैतदासीत् ! अहो निरन्वयविपर्यासविप्रलम्भस्मृतिपर्यवसायिनस्तावकाः संसारवृत्तान्ताः ।

टीका—कुश इति । कृत्स्नः=समग्रः, सन्दर्भः=ग्रन्थः, आवृत्तः=अभ्यस्तः । स्मृतिप्रत्युपस्थितौ—स्मृतौ=स्मरणे प्रत्युपस्थितौ=विषयभूतौ ॥

टिप्पणी—आवृत्तः—आ + √वृत् + क्त + विभक्तिः ।

उदीरयतम्—उत् + √ईर् + णिच् + लोट् म० पु० द्विवचने विभक्तिकार्यम् ।

अन्वयः—पितृकृताः, दाराः, इति, सीता, रामस्य, तु, प्रिया (आसीत्); गुणैः, च, रूप-गुणैः, अपि, प्रीतिः, भूयः, अपि, अवर्धत ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—पितृकृताः=पिता (महाराज जनक) के द्वारा दी गई, दाराः= पत्नी, इति=इस रूप में, सीता=जानकी, रामस्य=राम की, तु=यह पादपूर्ति के लिये आया है । अथवा इसका अर्थ है—स्वभावतः, प्रिया=प्रिय, (आसीत्=थीं); गुणैः= दया आदि गुणों से, च=तथा, रूपगुणैः=सौन्दर्य आदि गुणों से, अपि=भी, प्रीतिः= प्रेम, भूयः अपि=और अधिक, अवर्धत=बढ़ गया था ॥ ३१ ॥

टीका—प्रियेति । पितृकृताः—पित्रा=जनकेन कृताः=शास्त्रानुसारं समर्पिताः, दाराः=पत्नी ("भार्या जायाथ पुंभूम्नि दाराः" इत्यमरः), इति=एवंरूपा, सीता= जानकी, रामस्य=रामचन्द्रस्य, तु=स्वभावतः, प्रिया=वल्लभा, आसीदिति शेषः । गुणैः=शीलादिभिः, च=तथा, रूपगुणैश्च=सौन्दर्यादिभिः, अपि=च, प्रीतिः=प्रेमा, सीतायामिति शेषः, भूयोऽपि=पुनरपि, अवर्धत=ववृधे । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—दाराः—दार शब्द का अर्थ होता है—पत्नी । दार शब्द पुंलिंग तथा बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है ।

गुणै रूपगुणैश्चापि—कोई भी तरुण अपनी पत्नीअथवा किसी भी तरुणी पर सर्वप्रथम रूप के कारण ही मोहित होता है । आकर्षण की केन्द्रभूता उस तरुणी में यदि आभ्यन्तरिक शील भी विराजमान है तब तो मानो सोने में सुगन्ध ही आ गई है । वह तरुण ऐसी स्थिति में उसे अपने प्राणों से भी अधिक मानता है । यही स्थिति

---

१. प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः । प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः ॥ २. मर्मोपघातः, ३. किल तदासीत् ।

कुश—पिता (महाराज जनक) के द्वारा (वैवाहिक विधि से) पत्नी रूप में प्रदान की गई सीता राम की प्रिया थीं। (दया आदि) गुणों से तथा सौन्दर्य आदि गुणों से भी (सीता के लिये उनका) प्रेम और अधिक बढ़ गया था ॥३१॥

उसी प्रकार राम भी सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। क्योंकि हृदय ही आपस के प्रेम–सम्बन्ध को जानता है ॥ ३२ ॥

राम––कष्ट, है, हृदय के मर्म-स्थल पर होने वाला प्रहार अत्यन्त कठोर है। हा देवि, उस समय ऐसा ही था। ओह, तुम्हारे सांसारिक वृत्तान्त अब आकस्मिक परिवर्तन के कारण वियोग और याद में ही समाप्त हो जाते हैं।

राम और सीता की भी थी। इसीलिये भागवतकार ने कहा है––"भर्तुः सीताः हरन्मनः" ॥

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ ३१ ॥

अन्वयः––तथा एव, रामः, सीतायाः, प्राणेभ्यः, अपि, प्रियः, अभवत्। तु, हृदयम्, एव, परस्परम्; प्रीतियोगम्, जानाति ॥३२॥

शब्दार्थः—तथा एव = उसी प्रकार, रामः=रामचन्द्र, सीतायाः=सीता को प्राणेभ्यः=प्राणों से, अपि=भी, प्रियः=प्रिय, अभवत्=थे। तु=क्योंकि, हृदयम्=हृदय, एव=ही, परस्परम्=आपस के, प्रीतियोगम्=प्रेमसम्बन्ध को, जानाति=जानता है।३२।

टीका––तथैवेति। तथैव=तेनैव प्रकारेण, सीता यथा रामस्य प्रिया तथैवेति भावः, रामः=रामचन्द्रः, सीतायाः=जानक्याः प्राणेभ्यः=असुभ्योऽपि, प्रियः=अभीष्टतरः, अभवत्=आसीत्। तु=यतो हि, हृदयम्=चेतः, एव, परस्परम्=मिथोभूतम्, प्रीतियोगम्=प्रेमसम्बन्धम्, जानाति=वेत्तीत्यर्थः। अत्र परिसंख्याऽलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी–– इस श्लोक में अर्थगत परिसंख्या अलङ्कार है। सीता राम के अतिरिक्त कभी अन्य का चिन्तन नहीं करती थीं।

वाल्मीकि रामायण के उपलब्ध संस्करण में ये श्लोक इस प्रकार से प्राप्त होते हैं–

प्रिया तु सीता रामस्य दारा पितृकृता इति।
गुणाद् रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते ॥
तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते।
अन्तर्गतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ॥
बालकाण्ड अ० ७७ श्लोक–२६–२७ ॥

शब्दार्थः—अतिदारुणः=अत्यन्त कठोर, हृदयमर्मोद्घातः=हृदय के मर्मस्थल पर प्रहार करनेवाला। निरन्वय–विपर्यास–विप्रलम्भ–स्मृति–पर्यवसायिनः=आकस्मिक परिवर्तन के कारण वियोग और याद में समाप्त होनेवाले, तावकाः=तुम्हारे, संसार-वृत्तान्ताः=सांसारिक वृत्तान्त।

क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः ?
[1]क्व वाऽन्योन्यप्रेम ? क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः ? ।
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो-
स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति ॥ ३३ ॥

भोः कष्टम् ।

प्रियागुणसहस्राणां [2]क्रमोन्मीलनतत्परः ।
य एव [3]दुःसहः कालस्तमेव स्मारिता वयम् ॥ ३४ ॥

टीका—राम इति । अतिदारुणः=अतिकठोरः, हृदयमर्मोद्घातः–हृदयस्य=चित्तस्य मर्मणि=सन्धिस्थाने उद्घातः=प्रहारः । निरन्वय–विपर्यास-विप्रलम्भ–स्मृति–पर्यवसायिनः–निरन्वयः–निःसम्बन्धः, आकस्मिक इत्यर्थः, अहेतुक इति यावत्, यो विपर्यासः=परिवर्तनं तेन ये विप्रलम्भस्मृती=वियोगस्मरणे तत्पर्यवसायिनः=तद्विषयतामात्रवन्तः, तावकाः=त्वदीयाः, संसारवृत्तान्ताः=संसारोदन्ताः ।

टिप्पणी—उद्घातः—उत्+ √हन्+घञ् (अ)+विभक्त्यादिः । **पर्यवसायिनः**—परि+अव+ √ सो (सः)+णिनि+विभक्तिः ।

अन्वयः—निरतिशयविस्रम्भबहुलः, तावान्, आनन्दः, क्व ? वा, अन्योन्यप्रेम, क्व ? च, गहनाः, कौतुकरसाः, क्व नु ? सुखे, वा, दुःखे, वा, हृदययोः, तत्, ऐक्यम्, क्व, नु, खलु ? तथापि, एषः, पापः; प्राणः, स्फुरति, न च, विरमति ॥३३॥

शब्दार्थः—निरतिशयविस्रम्भबहुलः=अत्यधिक विश्वास के कारण प्रवृद्ध, तावान्=वैसा, निःसीम, आनन्दः=आनन्द, क्व=कहाँ ? वा=अथवा, अन्योन्यप्रेम=पारस्परिक प्रेम, क्व=कहाँ ? च=और, गहनाः=अगाध, कौतुकरसाः=भौतिक विलासों का रसास्वाद, क्व नु=कहाँ ? सुखे=सुख में, वा=अथवा, दुःखे=दुःख में, वा=यह पादपूर्ति के लिये आया है, हृदययोः=दोनों के हृदयों की, तत्=वह, ऐक्यम्=एकता, क्व=कहाँ; नु खलु=यह प्रश्न सूचक अव्यय है, तथापि=तो भी, फिर भी, एषः=यह, पापः=पापी, प्राणः=प्राण, स्फुरति=चल रहा है, न तु=न कि, विरमति=बन्द हो रहा है ॥ ३३ ॥

टीका—क्व तावानिति । निरतिशयविस्रम्भबहुलः—निरतिशयः—निर्गतोऽतिशयो यस्मादसौ निरतिशयः=अत्यधिक इति भावः, यो विस्रम्भः=विश्वासस्तेन बहुलः=प्रवृद्धः, तावान्=तत्प्रमाणः, अपरिमेय इति भावः, आनन्दः=हर्षः, क्व=कुत्र ? वा=अथवा, अन्योन्यप्रेम=पारस्परिकः प्रणयः, क्व=कुत्र ? च=तथा, गहनाः=गम्भीराः, कौतुकरसाः=कौतुकानाम्=भोगानां रसाः=विलासाः, रसास्वादा इत्यर्थः, ("कौतुकं

---

१. क्व तेऽन्योन्यं यत्नाः, २. एकोन्मीलनपेशलः, ३. दुःस्मरः, ।

अत्यधिक विश्वास के कारण प्रवृद्ध, वह (निःसीम) आनन्द कहाँ ? अथवा हम दोनों का (प्रगाढ़) पारस्परिक प्रेम कहाँ ? अगाध भौतिक विलासों का रसास्वादन कहाँ ? सुख में अथवा दुःख में हम दोनों के हृदयों की वह अभिन्नता कहाँ ? फिर भी यह पापी प्राण चल रहा है, बन्द नहीं हो रहा है ॥३३॥

विशेष—आनन्दः क्व—राम के कहने का भाव यह है कि सीता के साथ हमारा जो आनन्दपूर्ण अद्भुत जीवन बीता उसे स्मरण कर, सीता के विना, अब तक हमें अपने प्राणों को छोड़ देना चाहिए था। किन्तु अभी तक जो मैं जीवित हूँ यही आश्चर्य है ॥३३॥

हाय कष्ट है,

प्रिया (सीता) के हजारों गुणों को क्रमशः प्रकाशित करने में तत्पर जो दुःसह काल है, उसका ही हमें स्मरण दिलाया गया है ॥ ३४ ॥

विशेष—राम के कहने का भाव यह है कि बालकों द्वारा गाये गये उक्त श्लोकों में हमारे उन्हीं कार्यों का वर्णन है जो युवावस्था से सम्बन्ध रखते हैं। उन्हें सुनकर उस काल की और प्रिया सीता के हजारों गुणों की याद हमें आ रही हैं जो कष्ट प्रद है ॥ ३४ ॥

त्वभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः" इति मेदिनी); क्व=कुत्र, न्विति प्रश्ने; सुखे वा =आनन्दे वा, दुःखे वा=कष्टे वा, हृदययोः= आवयोश्चित्तयोः, तत्=पूर्वानुभूतम्, ऐक्यम्=अभिन्नत्वम्, क्व=कुत्र ! नु खल्विति प्रश्ने; तथापि=एतादृश्यां दशायामनुभूतायामपीति, एषः=अयम्, पापः=पापी, मरणप्रतिबन्धकपापवानित्यर्थः, प्राणः=प्राणवायुः, आत्मा वा, स्फुरति=चलति, तु=किन्तु, न=नहि, विरमति=नश्यति, नावसानं प्राप्नोतीत्यर्थः। अत्र विशेषोक्तिरलङ्कारः। छन्दस्तु शिखरिणी ॥३३॥

टिप्पणी—ऐक्यम्—एकस्य भावः ऐक्यम्—एक+ष्यञ्+विभक्त्यादिः। **पापः**—पापमस्यास्तीति—पाप+अच् (अ)+विभक्तिः।

इस श्लोक में प्राणों के नष्ट होने के कारण के रहने पर भी नष्ट न होने के कारण कार्य का अभाव है। अतः विशेषोक्ति अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ३३ ॥

अन्वयः—प्रियागुणसहस्राणाम्, क्रमोन्मीलनतत्परः, यः, एव, दुःसहः, कालः, (अस्ति), तम्, एव, वयम्, स्मारिताः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—प्रियागुणसहस्राणाम्=प्रिया (सीता) के सहस्रों गुणों को, क्रमोन्मीलनतत्परः=क्रमशः प्रकाशित करने में तत्पर, यः=जो, एव=ही, दुःसहः=दुःसह,

[1]तदा किंचित्किंचित्कृतपदमहोभिः कतिपयै-
स्तदेतद्विस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगदृशः ।
वयःस्नेहाकूतव्यतिकरघनो यत्र मदनः
प्रगल्भव्यापारः स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि ॥ ३५ ॥

असह्य, कालः=समय, (अस्ति=है), तम्=उसको, उसे, एव=ही, वयम्=हम लोग, स्मारिताः=स्मरण दिलाये गये हैं ॥ ३४ ॥

टीका–प्रियागुणसहस्राणामिति। प्रियायाः=प्रियतमायाः सीतायाः गुणानाम्=सौन्दर्यसौजन्यादीनां सहस्राणि=दशशतयः तेषां क्रमेण=शनैरुन्मीलने=उद्घाटने तत्परः=उद्युक्तः, य एव, दुसहः=दुःखेन सोढुं शक्यः विरहावस्थायां स्मर्तुमशक्य इति भावः, कालः=समयः, तमेव=तमेव पूर्वोक्तं कालमित्यर्थः, वयम्=अहमित्यर्थः, अत्र "अस्मदो-द्वयोश्च' इति बहुवचनम्, स्मारिताः=तद्विषयकस्मरणवन्तः कृताः । अत्र स्मरणमलङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—उन्मीलन०—उत्+√मील्+ल्युट् (अन)+विभक्तिः । **दुःसहः**-दुर्+√सह्+खल् (अ)+विभक्तिः । **स्मारिताः**=√स्मृ+णिच्+क्त+विभक्तिः ।

इस श्लोक में पूर्वावस्था का स्मरण होने से स्मरण अलङ्कार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है--अनुष्टुप् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यत्र, वयःस्नेहाकूतव्यतिकरघनः, मदनः, हृदि, प्रगल्भव्यापारः, वपुषि, च, मुग्धः स्फुरति; तदा, किञ्चित् किञ्चित्, मृगदृशः, स्तनमुकुलम्, कतिपयैः, अहोभिः; ईषद्विस्तारि, आसीत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—यत्र=जिस समय, जिस काल में, वयःस्नेहाकूतव्यतिकरघनः=युवावस्था, प्रेम तथा पारस्परिक अभिलाष के सम्बन्ध के कारण प्रवृद्ध, मदनः=कामदेव, हृदि=हृदय में, प्रगल्भव्यापारः=धृष्ट चेष्टा से युक्त, च=तथा, वपुषि=शरीर पर, मुग्धः=मुग्धतापूर्वक, स्फुरति=व्यञ्जित हो रहा था; तदा=उस समय, किञ्चित् किञ्चित्=कुछ-कुछ, कृतपदम्=अपना स्थान बनाने वाला, मृगदृशः=मृगनयनी (सीता) का, तत्=वह, स्तनमुकुलम्=कुड्मल की तरह स्तन, कतिपयैः=कुछ ही, अहोभिः = दिनों में, ईषद्विस्तारि = थोड़ा विस्तृत, आसीत्=हो गया था, हो गये थे ॥ ३५ ॥

टीका—तदा किञ्चिदिति । यत्र=यदा, यस्मिन् काले, वयःस्नेहाकूतव्यतिकरघनः—वयसः=अवस्थायाः, तारुण्यस्येत्यर्थः, स्नेहस्य=अनुरागस्य आकूतस्य=

---

१. यदा ।

जिस समय युवावस्था, प्रेम तथा पारस्परिक अभिलाष के सम्बन्ध के कारण प्रवृद्ध कामदेव हृदय में धृष्ट चेष्टा कर रहा था और शरीर पर मुग्धतापूर्वक व्यञ्जित हो रहा था, उस समय थोड़ा-थोड़ा अपना स्थान बनाने वाला, मृगनयनी (सीता) का वह कुड्मल की तरह स्तन कुछ ही दिनों में थोड़ा विस्तृत हो गया था ॥ ३५ ॥

विशेष:—हृदि प्रगल्भव्यापार:—किशोरावस्था के अन्तिम चरण में पहुँचते-पहुँचते युवक-युवतियों के हृदय में कामदेव धृष्टतापूर्वक उत्पात मचाने लगता है। उनके हृदय को काम-क्रीडा के लिये बेचैन करने लगता है। उस समय लड़की अथवा लड़के यही सोचते हैं कि सारी मर्यादाओं को तोड़ कर मैं अपने हृदयेश्वर या हृदयेश्वरी से जा मिलूँ। यही है कामदेव का हृदय में प्रगल्भ व्यापार।

मुग्धश्च वपुषि—कामदेव हृदय में चाहे जितना उत्पात मचाले किन्तु प्रतिष्ठित घरों के लड़के अथवा लड़किया लज्जा और शालीनता के कारण उसे अपने शरीर पर स्वच्छन्द आचरण नहीं करने देते। उनके शरीर पर काम की सारी चेष्टाएँ शालीनता से नियन्त्रित हुआ करती हैं। यही है काम का मुग्धता-पूर्वक शरीर पर व्यञ्जित होना।

विस्तारि—तरुणियों का उभरता हुआ, कमल की कली-जैसा स्तन पुरुषों के साहचर्य को पाकर विस्तृत होने लगता है। आखिर स्तनमर्दन तो काम-क्रीडा का प्राण ठहरा ॥ ३५ ॥

विशिष्टविषयाभिप्रायस्य व्यतिकर:=सम्बन्धस्तेन घन:=निबिड:, एतादृशो मदन:=काम:, हृदि=चेतसि, प्रगल्भव्यापार: — प्रगल्भ:=प्रौढो व्यापार:=चेष्टा यस्य तादृश: सन्, मनस्यतिशयितशरपातनादिचेष्टायुक्त: सन्, च=तथा, वपुषि=शरीरे, मुग्ध: सन्=नातिप्रौढ: सन्, लज्जयेति भाव:, स्फुरति=चेष्टते; तदा=तस्मिन् काले, किञ्चित् किञ्चित्=ईषदीषित्, कृतपदम्—कृतम्=विहितं पदम्=स्थानं येन तत् तादृशम्, मृगदृश:—मृगस्य=हरिणस्य दृशौ=नेत्रे इव दृशौ=नेत्रे यस्यास्तस्या:, हरिणनयनाया: सीताया इत्यर्थ:, तत्=पूर्वानुभूतमित्यर्थ:, स्तनमुकुलम्—स्तनौ=कुचौ मुकुले=कुड्मले इवेति स्तनमुकुलम्=कुचकुड्मलम्, कतिपयै:=परिमितैरिति यावत्, अहोभि:=दिवसै:, ईषद्विस्तारि=अल्पविस्तारशीलम्, आसीत्=अभवत्। अत्र पर्यायो विरोधाभासश्चालङ्कारौ। छन्दस्तुशिखरिणी ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक में एक ही मदन का हृदय और शरीर इन दोनों के साथ अन्वय होने से पर्याय अलङ्कार है। एक सीता में ही काम की प्रगल्भता और मुग्धता

लवः—अयं तु [1]चित्रकूटवर्त्मनि मन्दाकिनीविहारे सीतादेवीमुद्दिश्य रघुपतेः श्लोकः—

त्वदर्थमिव विन्यस्तः शिला[2]पट्टोऽयमा[3]यतः ।
यस्यायमभितः पुष्पैः प्रवृष्ट इव केसरः ।। ३६ ।।

रामः—([4]सलज्जास्मितस्नेहकरुणम् ।) अति हि नाम मुग्धः[5] शिशुजनः विशेषतस्त्वरण्यचरः । हा देवि ! स्मरसि वा तस्य तत्समयविस्रम्भातिप्रसङ्गस्य ?

का वर्णन होने से विरोधाभास अलङ्कार है । इस विरोधाभास का परिहार हृदय में प्रगल्भता और शरीर पर अप्रगल्भता को मान कर किया जाता है ।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।। ३५ ।।

शब्दार्थः—चित्रकूटवर्त्मनि=चित्रकूट (पर्वत) के मार्ग में, मन्दाकिनीविहारे= मन्दाकिनी में जल-विहार के समय, सीतादेवीम् = देवी सीता को, उद्दिश्य = लक्ष्य करके ।।

टीका—लव इति । चित्रकूट-वर्त्मनि—चित्रकूटस्य=चित्रकूटनाम्नः पर्वतस्य वर्त्म = मार्गस्तस्मिन्, मन्दाकिनीविहारे–मन्दाकिन्याम् = अत्रिपत्न्या अनसूयया आनीता = तपोबलादानीता मन्दाकिनी तस्यां विहारः = जलक्रीडा तत्र, सीतादेवीम्= जानकीम्, उद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य ।।

टिप्पणी—मन्दाकिनीविहारे—शिवमहापुराण के अनुसार महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से मन्दाकिनी (गङ्गा) को चित्रकूट में अपने आश्रम के निकट प्रकट किया था ।।

अन्वयः—अयम्, आयतः, शिलापट्टः, त्वदर्थम्, विन्यस्तः, इव, (आस्ते), यस्य, अभितः, अयम्, केसरः, पुष्पैः, प्रवृष्टः, इव ।। ३६ ।।

शब्दार्थः—अयम्=यह, आयतः=विशाल, चौड़ा, शिलापट्टः = प्रस्तरखण्ड, त्वदर्थम्=तुम्हारे लिये, विन्यस्तः=बिछाया गया, रक्खा गया, इव=सा, मानो, (आस्ते=है); यस्य = जिसके, अभितः=चतुर्दिक्, चारों ओर, अयम्=यह, केसरः = केसर का वृक्ष, वकुल का वृक्ष, पुष्पैः=फूलों से, प्रवृष्टः=बरस, इव=सा रहा है ।।३६।।

---

१. मन्दाकिनीचित्रकूटवनविहारे, २. शिलापादः, ३. अग्रतः, ४. सलज्जितस्ने०, ५. मुग्धोऽयं ।

लव—चित्रकूट (पर्वत) के मार्ग में मन्दाकिनी में जल-विहार के समय देवी सीता को लक्ष्य करके राम के द्वारा कहा गया यह श्लोक है--

यह विशाल प्रस्तर-खण्ड तुम्हारे लिये मानो रक्खा गया है, जिसके चतुर्दिक् यह मौलश्री का वृक्ष फूलों की वर्षासा कर रहा है ।। ३६ ।।

राम—(लज्जा, मुस्कराहट, प्रेम और करुणा के साथ) बच्चे अत्यधिक भोले-भाले होते हैं, विशेष कर जंगल के निवासी (बच्चे) । हा देवी सीता, क्या तुम्हें अत्यन्त विश्वास के कारण किये गये तत्कालीन भोग-विलासों का स्मरण है ?

टीका—त्वदर्थमिति । अयम्=एषः, आयतः=विशालः, शिलापट्टः=प्रस्तरखण्डः, त्वदर्थम् = तवोपवेशनार्थमिति भावः, विन्यस्तः इव=स्थापित इव, आस्त इति क्रियाशेषः; यस्य=शिलापट्टस्येत्यर्थः, अभितः=परितो, वर्तमानः, अभितः पदप्रयोगेऽपि द्वितीयाऽभाव आर्षः, अयम्=एषः, केसरः= बकुलवृक्षः, पुष्पैः=प्रसूनैः, प्रवृष्टः= पुष्पकरणकप्रवर्षणकर्ता, इवेत्युत्प्रेक्षा, वर्तत इति क्रियाशेषः । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥३६॥

टिप्पणी—विन्यस्तः—वि + नि + √अस् + क्तः + विभक्तिः । **आयतः** – आ + √यम् + क्तः + विभक्तिः ।

यस्य अभितः—व्याकरण के अनुसार यहाँ 'अभितः' के योग में "अभितः परितः०, (वार्तिक) से द्वितीया होकर 'यम् अभितः' होना चाहिये । किन्तु ऐसा हुआ नहीं है । अतः इस प्रयोग को आर्ष प्रयोग समझना चाहिये ।

प्रवृष्टः– प्र + √वृष् + क्तः + विभक्तिः ।

इस श्लोक में दोनों इव पदों के द्वारा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥३६॥

शब्दार्थः--मुग्धः=भोले-भाले, शिशुजनः=बच्चे, अरण्यचरः=जंगल के निवासी । तत्समयविस्रम्भातिप्रसङ्गस्य=तत्कालीन अत्यन्त विश्वास के कारण किये गये भोग-विलासों का, स्मरसि=स्मरण है ? याद है ॥

टीका—राम इति । मुग्धः=मूढः, वक्तव्यावक्तव्यविवेकहीनः,सरल इति भावः, अरण्यचरः-अरण्ये=विपिने चरति=निवसतीति, विपिनविहारीत्यर्थः, तत्समय-विस्रम्भातिप्रसङ्गस्य-तस्मिन् समये=काले यो विस्रम्भः=अतिविश्वासः, आवामृतेऽत्र कोऽपि नास्तीति ज्ञानजनितो विस्रम्भ इत्यर्थः, तेन योऽतिप्रसङ्गः=भोगातिमात्रता तस्य, अत्र कर्मणि षष्ठी बोध्या ।

टिप्पणी--अरण्यचरः—अरण्य + √ चर् + चरेष्टः (३।२।१६) + इति टप्रत्ययः + विभक्तिः ।

प्रसङ्गस्य स्मरसि—अधीगर्थ० (२।३।५२) से यहाँ षष्ठी विभक्ति होती है ।

श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृतमन्दमन्दाकिनी-
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति ।
अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं[1] मुखम् ॥ ३७ ॥

(स्तम्भित इव स्थित्वा, सकरुणम् ।) अहो नु खलु भोः !

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः ।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च[2] कलत्रे[3] ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥ ३८ ॥

अन्वयः—श्रमाम्बुशिशिरीभवत्, प्रसृतमन्दमन्दाकिनीमरुत्तरलितालकाकुलललाट-चन्द्रद्युति, अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलम्, निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धम्, मुखम्, उत्प्रेक्ष्यते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—श्रमाम्बुशिशिरीभवत्=(सम्भोगजन्य) श्रम से उत्पन्न पसीने से शीतल होता हुआ, प्रसृतमन्दमन्दाकिनीमरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति=धीरे-धीरे चलती हुई, गङ्गा के जल-कणों से युक्त हवा के कारण चञ्चल केशपाश से ढकी हुई चन्द्रमा की कान्तिवाले ललाट की आभा से युक्त, अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलम्=विना कुङ्कुम लगाये भी प्रभा-मण्डित कपोलों से युक्त, निराभरणसुन्दरश्रवण-पाशमुग्धम्=विना आभूषणों के भी मनोहर प्रशस्त कानों से आकर्षक, मुखम्=मुख, उत्प्रेक्ष्यते=दिखलाई-सा पड़ रहा है ॥३७॥

टीका—श्रमाम्बिवति । श्रमाम्बुशिशिरीभवत्–श्रमेण=सुरतकालपरिश्रमेण जनितं यत् अम्बु=जलम्, स्वेदजलमितिभावः, तेन शिशिरीभवत्=शीतलीभवत्, इदं भिन्नं पदं मुखविशेषणम्, प्रसृतमन्दमन्दाकिनीमरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति–प्रसृतः=प्रचलितो यो मन्दः=मन्थरो मन्दाकिन्याः=गङ्गाया मरुत्=वायुस्तेन तरलिताः=चञ्चलीकृताः ये अलकाः=चूर्णकुन्तलास्तैः आकुलाः=व्याप्ता ललाटचन्द्रस्य=भालपट्ट-शशिनः द्युतिः=कान्तिः=यस्य तत् तादृशम्; अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलम्-सञ्जातः कलङ्को ययोस्तौ कलङ्कितौ=चिह्नितौ अकुङ्कुमकलङ्कितौ=केसरेण अचिह्नितौ अपि उज्ज्वलौ-प्रभामण्डितौ कपोलौ=गण्डस्थलौ यस्मिंस्तत् तादृशम्, ("कलङ्कोऽङ्का-पवादयोः" इत्यमरः), निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धम्–निराभरणौ=ताटङ्कमौक्तिक-गुच्छादिभूषणरहितौ अपि सुन्दरौ=मनोहरौ यौ श्रवणपाशौ=प्रशस्तौ कर्णौ ताभ्यां मुग्धम्=सुन्दरम् ("मुग्धः सुन्दरमूढयोः" इति विश्वः), मुखम्=त्वदीयम् आननम्

---

१. सौम्यं, २. हि, तु. ३. विकलपव्युपरते ।

(सम्भोगजन्य) श्रम से उत्पन्न पसीने से शीतल होता हुआ, धीरे-धीरे चलती हुई, गङ्गा के जल-कणों से युक्त हवा के कारण चञ्चल केशपाश से ढकी हुई चन्द्रमा की कान्तिवाले ललाट की आभा से सम्पन्न; बिना कुङ्कुम लगाये भी प्रभा-मण्डित कपोलों से युक्त, बिना आभूषणों के भी मनोहर प्रशस्त कानों से आकर्षक (तुम्हारा) मुख (मुझे) दिखलाई-सा पड़ रहा है ॥२७॥

(निश्चेष्ट सा खड़े होकर, करुणा के साथ ओह, अरे,

प्रवास के समय में भी बहुत दिनों तक बारम्बार ध्यान करके (कल्पना के द्वारा मानसिक मूर्ति) बनाकर सामने प्रतिष्ठापितसा प्रिय व्यक्ति सान्त्वना नहीं देता है, ऐसी बात नहीं है (अर्थात् सान्त्वना देता ही है); किन्तु पत्नी के मर जाने पर तो संसार जीर्ण-शीर्ण अरण्य की भाँति हो जाता है और तदनन्तर उसका हृदय धान की भूसी की आग की ढेर पर मानो पकता रहता है ॥ ३८ ॥

विशेष—प्रवासे—किसी तरुण की प्राणप्रिया अपने माता-पिता के साथ कुछ काल के लिये अमेरिका चली गई। तरुण को बड़ा कष्ट होता था। वह उसकी याद कर करके, उसकी प्रतिमा देख-देख कर, सान्त्वना पाता था। कभी-कभी तो मानो उसकी प्राण-वल्लभा सामने खड़ी होकर उससे बातें भी करती प्रतीत होती थी। इसमें दुःख के साथ एक प्रकार का आनन्द भी था। किन्तु कालान्तर में, दूसरी यात्रा के समय, जब तरुण को यह पता चला कि उसकी हृदयेश्वरी इस संसार में अब नहीं रही तो उसका दिल टूट गया। संसार उसके लिये उजड़े हुए जंगल की भाँति प्रतीत होने लगा। बस, यही दशा राम की है॥ ३८ ॥

उत्प्रेक्ष्यते=मया पुरतोऽवलोक्यत इव। अत्रोत्प्रेक्षारूपकं विभावना स्मरणं चालङ्काराः। छन्दस्तु पृथिवी ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—शिशिरीभवत्--अशिशिरं शिशिरं भवत्, शिशिर+च्वि+भवद्, अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है। ०तरलित०--तरल+णिच्+क्त+विभक्त्यादिः।

इस श्लोक में उत्प्रेक्ष्यते के कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार की व्यञ्जना है, अतः प्रतीयमान उत्प्रेक्षा है। ललाटचन्द्र में रूपक है। अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वल० और निराभरण० में दो विभावना है। सीता के मुख का स्मरण करने के कारण स्मरण अलंकार है ॥ ३७ ॥

अन्वयः—प्रवासे, च, चिरम्, ध्यात्वा, ध्यात्वा, निर्माय, पुरतः, निहितः, इव, प्रियजनः, आश्वासम्, न, खलु, करोति, (इति), न; हि, कलत्रे, उपरते, च, जगत्, जीर्णारण्यम्, भवति; तदनु, हृदयम्, कुकूलानाम्, राशौ, पच्यते, इव ॥३८॥

(नेपथ्ये ।)

वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथमहिष्योऽथ जनकः
सहैवारुन्धत्या शिशुकलहमाकर्ण्य सभयाः ।
जराग्रस्तैर्गात्रैरथ खलु [1]सुदूराश्रमतया
चिरेणागच्छन्ति [2]त्वरितमनसो [3]विश्लथजटाः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः--प्रवासे=प्रवास के समय में, च=भी, चिरम्=बहुत दिनों तक, ध्यात्वा=ध्यान करके, ध्यात्वा=ध्यान करके, निर्माय=बनाकर, पुरतः=सामने, निहितः=प्रतिष्ठापित, इव=सा, प्रियजनः=प्रिय व्यक्ति, आश्वासम्=सान्त्वना को, ढाढस को, न खलु=नहीं, करोति=करता है, (इति=ऐसी बात), न=नहीं है; हि=किन्तु, कलत्रे=पत्नी के, उपरते=मर जाने पर, नष्ट हो जाने पर, च=तो, जगत्=संसार, जीर्णारण्यम्=जीर्ण-शीर्ण अरण्य, भवति=हो जाता है; तदनु=तदनन्तर, हृदयम्=हृदय; कुकूलानाम्=धान की भूसी की आग की, राशौ=ढेर पर, पच्यते=पक रहा है, इव=मानो ॥ ३८ ॥

टीका--चिरमिति । प्रवासे=प्रियजनस्य देशान्तरगमने, च=अपि, चिरम्=बहुकालं यावत्, ध्यात्वा ध्यात्वा=बारम्बारं स्मृत्वा, निर्माय=कल्पनया रचयित्वा, पुरतः=अग्रतः, निहितः=स्थापितः, इव=यथा, प्रियजनः=अभीप्सितो जनः, आश्वासम्=सान्त्वनाम्, न करोति=न विदधाति, इति=इत्थम्, न=नास्ति, अपित्वाश्वासं करोत्येवेत्यभिप्रायः; हि=किन्तु, कलत्रे=भार्यायाम्, उपरते=मृतायाञ्च, जगत्=संसारः, जीर्णारण्यम्-जीर्णम्=नष्टप्रायं च तत् अरण्यम्=वनमिव, भवति=जायते । तदनु=तदनन्तरम्, हृदयम्=चित्तम्, कुकूलानाम्=तुषाग्नीनाम्, ('कुकूलं शङ्कुभिः कीर्णे श्वभ्रे ना तु तुषानले' इत्यमरः), राशौ=समूहे, पच्यत इव=दह्यत इव । पत्नीनाशे, विशेषतस्तु प्रौढावस्थायां, हृदयं पुटपाकवदत्यर्थं तप्यत इत्यभिप्रायः । अत्रोत्प्रेक्षा रूपकं चालङ्कारौ । छन्दस्तु शिखरिणी ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—स्तम्भित०--√स्तम्भ् + णिच् + क्त + विभक्तिः । ध्यात्वा—√ध्यै (ध्या) + क्त्वा । निहितः—नि + √धा + क्त + विभक्तिः । निर्माय—निर् + √मा + ल्यप् । कलत्रे—कलत्र का अर्थ पत्नी होता है, किन्तु इसका प्रयोग सर्वदा नपुंसक लिङ्ग में हुआ करता है । उपरते—उप + √रम् + क्त + विभक्तिः । कुकूलानां राशौ—जाड़े की ऋतु में ग्रामवासी धान की भूसी का अलाव लगा कर तापते हैं । धान की भूसी को तुष कहते हैं । तुष की आग प्रज्ज्वलित होकर लौ तो नहीं फेंकती, भीतर ही भीतर जलती है, सुलगती है । किन्तु

---

१. विदू०, २. त्वरितगतयः, ३. अपि श्रमजडाः ।

(पर्दे के पीछे)

अरुन्धती के साथ ही वसिष्ठ, वाल्मीकि, दशरथ की महारानियाँ तथा जनक बच्चों के युद्ध को सुन कर भयपूर्वक (अतः) उतावले होकर, अस्त-व्यस्त जटाओं से युक्त (ये सभी) आश्रम के अधिक दूर होने के कारण वृद्धावस्था से आक्रान्त अवयवों के कारण विलम्ब से आ रहे हैं ॥ ३९ ॥

इसकी आँच बड़ी तेज होती है । उस पर लोग बैंगन, आलू तथा शकरकन्द आदि भूनते हैं । इस पर रक्खी वस्तु शीघ्र जल कर राख नहीं होती अपितु धीरे-धीरे पकती है । सीता के वियोग में राम के हृदय की यही दशा है । इसी को घुट-घुट कर मरना कहते हैं ।

इस श्लोक में दोनों इव उत्प्रेक्षा के सूचक हैं, अतः दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं । "जगज्जीर्णारण्यं" रूपक है । संसार को जीर्ण वन कहा गया है ।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी" ॥ ३८ ॥

अन्वयः—अरुन्धत्या, सह, एव, वसिष्ठः, वाल्मीकिः, दशरथमहिष्यः, अथ, जनकः, शिशुकलहम्, आकर्ण्य, सभयाः, (अतः), त्वरितमनसः, विश्लथजटाः, (सन्तः), अथ, सुदूराश्रमतया, जराग्रस्तैः, गात्रैः, चिरेण, आगच्छन्ति, खलु ॥३९॥

शब्दार्थः—अरुन्धत्या=अरुन्धती के, सह=साथ, एव=ही, वसिष्ठः=वसिष्ठ, वाल्मीकिः=वाल्मीकि, दशरथमहिष्यः=दशरथ की महारानियाँ, अथ=और, जनकः=जनक, शिशुकलहम्=बच्चों के युद्ध को, आकर्ण्य=सुन कर, सभयाः=भयभीत होकर, भयपूर्वक, (अतः=इसीलिये), त्वरितमनसः=उतावले होकर, विश्लथजटाः=अस्त-व्यस्त जटाओं से युक्त, (सन्तः=होते हुए), अथ=तथा, सुदूराश्रमतया=आश्रम के अधिक दूर होने के कारण, जराग्रस्तैः=वृद्धावस्था से आक्रान्त, गात्रैः=अवयवों से, चिरेण=विलम्ब से, आगच्छन्ति=आ रहे हैं, खलु=यह वाक्य को सुन्दर बनाने के लिये प्रयुक्त हुआ है ॥ ३९ ॥

टीका—वसिष्ठ इति। अरुन्धत्या=वसिष्ठपत्न्या, सह=साकम्, एवेत्यन्ययोगव्यवच्छेदार्थम्, वसिष्ठः=तन्नामा रघुकुलपुरोहितः, वाल्मीकिः=आदिकविर्वाल्मीकिः, दशरथमहिष्यः—दशरथस्य=रामजनकस्य महिष्यः=पत्न्यः कौसल्यादयः, अथ=तथा, अपि च, जनकः=सीतापिता विदेहः, एते सर्वे, शिशुकलहम्—शिशूनाम्=बालकानां कलहम्=युद्धम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, सभयाः—भयेन=भीत्या सहिताः=युक्ताः सभयाः, अतः=अतो हेतोरेव, त्वरितमनसः—त्वरितानि=शीघ्रतायुक्तानि मनांसि=चेतांसि येषां ते तादृशाः, अतो विश्लथजटाः—विश्लथाः=इतस्ततः प्रकीर्णाः जटाः=केशाः येषां ते

रामः—कथंभगवत्यरुन्धती वसिष्ठोऽम्बाश्च जनकश्चात्रैव । कथं खलु ते द्रष्टव्याः ? (सकरुणं विलोक्य ।) तातजनकोऽप्यत्रैवायात[1] इति वज्रेणेव ताडितोऽस्मि मन्दभाग्यः ।

सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितै[2]र्जुष्टे वसिष्ठादिभि-
र्दृष्ट्वापत्यविवाहमङ्गल[3]विधौ तत्तातयोः सङ्गमम्[4] ।
पश्यन्नीदृशमीदृशः[5] पितृसखं वृत्तं महावैशसे
दीर्ये किं न सहस्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम् ॥ ४० ॥

तादृशाः सन्तः, अथ=अपि च, सुदूराश्रमतया—सुदूरः=अतिदूरः आश्रमः सुदूराश्रमस्तस्य भावः सुदूराश्रमता तया, आश्रमस्य युद्धस्थलाद् दूरवर्तित्वेनेति भावः, जराग्रस्तैः—जरया=वृद्धावस्थया ग्रस्तैः=आक्रान्तैः, गात्रैः=शरीरावयवैः, चिरेण=विलम्बेन, आगच्छन्ति, खल्विति वाक्यालङ्कारे ।। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । शिखरिणी च छन्दः ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—शिशुकलहम्—लव और चन्द्रकेतु इन दोनों बालकों के युद्ध को सुन कर।

आकर्ण्य—आ + √कर्ण् + णिच् + ल्यप् ।

गात्रैः—गात्र का अर्थ शरीर होता है। इसका प्रयोग अङ्गों के अर्थ में भी किया जाता है। अन्तर इतना ही है कि गात्र शब्द जब शरीर के अर्थ में प्रयुक्त होता है तब इसका प्रयोग एक वचन में किया जाता है और जब शरीरावयव अर्थ में यह प्रयुक्त होता है तब इसका प्रयोग बहुवचन में होता है।

त्वरितमनसः—वसिष्ठ आदि वृद्ध हैं। अतः उनकी शीघ्रता मानसिक है। किन्तु शरीर के साथ न देने से वे धीरे-धीरे आ रहे हैं।

इस श्लोक में विलम्ब से आने का कारण गात्र का जरा से ग्रस्त होना है। अतः पदार्थ-हेतुक काव्यलिंग अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त शिखरिणी छन्द का लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—कथम्=कैसे, भगवती=अत्यन्त आदरणीया, तातजनकः=पिता विदेहराज, ताडितः=मारा गया, मन्दभाग्यः=भाग्यहीन, अभागा ॥

टीका—राम इति । कथम्=केन प्रकारेण, निर्दोषाया गर्भिण्या धर्मपत्न्याः परित्यागकर्ताऽहं कथं पूज्यजनानां समक्षं मुखं प्रदर्शयिष्यामीति भावः । भगवती= अत्यन्तमादरणीया, तातजनकः=पितृसमपूजनीयो जनकोऽपि, भार्यापितृत्वात्स्वपितृत्वोपचारः, ताडितः=प्रहृतः । मन्दभाग्यः—मन्दं भाग्यं यस्य तादृशः, भाग्यहीन इत्यर्थः ।

---

१. दैवादत्रैवायातः, २. जुष्टैः, ३. विवाहमङ्गलमहे, ४. संगतम्, ५. ईदृशे ।

राम--क्या भगवती अरुन्धती, वसिष्ठ, माताएँ और जनक भी यहीं हैं ? मैं उनसे कैसे मिलूँगा ? (करुणापूर्वक देखकर) पिता (अर्थात् श्वसुर) जनक भी यहीं आ गये हैं, यह सुनकर अभागा मैं मानो वज्र से मारा गया हूँ ।

विशेष--वज्रेणेव--राम ने जब जानकी का निर्वासन किया था उस समय इनमें से कोई भी अयोध्या में न था। अतः राम इन लोगों के सामने अपना मुख दिखलाने में लज्जित हो रहे हैं। जनक के समक्ष उपस्थित होने में उन्हें प्राणान्त पीडा का अनुभव हो रहा है ॥

(रघुवंश और जनकवंश के) वैवाहिक सम्बन्ध की प्रशंसनीयता के कारण प्रसन्न, वसिष्ठ आदि (महनीय व्यक्तियों) के द्वारा सेवित (Attended), (सीता और राम आदि) सन्तानों के माङ्गलिक विवाह के अवसर पर अपने दोनों पिताओं (अर्थात् दशरथ और जनक) के मिलन को देख कर (अब सीता-परित्यागरूपी) घोर हत्या के हो जाने पर इस प्रकार (दुःखित), पिता जी के मित्र (जनक) को देखता हुआ ऐसा (पापकर्मा) मैं क्यों नहीं हजारों टुकड़ों में विदीर्ण हो जाता हूँ ? अथवा राम के लिये क्या दुष्कर है ? ॥४०॥

विशेष--सम्बन्धस्पृहणीयता--एक समय था रघुवंश अपनी शूरता-वीरता के लिये और मिथिला का राज-वंश अपनी ज्ञानगरिमा के लिये जगद्विदित था। इन राजवंशों के साथ सम्बन्ध बनाने के लिये लोग लालायित रहते थे। यही कारण था कि राम-सीता के विवाह के अवसर पर दोनों राज-वंश परस्पर सम्बन्ध स्थापित कर प्रसन्न थे।

वसिष्ठादिभिर्जुष्टे—सीता-राम का विवाह-मंगल अपने आप में महनीय था, प्रशंसनीय था। उस विवाह में वसिष्ठ आदि बड़े-बड़े महर्षि सम्मिलित हुए थे। अतः उसकी महत्ता तथा प्रशंसा और अधिक बढ़ गई थी।

पितृसखम्—दशरथ और जनक का केवल समधी होने मात्र का ही सम्बन्ध न था। वे परस्पर एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र भी थे।

अन्वयः--सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैः, वसिष्ठादिभिः, जुष्टे, अपत्यविवाहमङ्गलविधौ, तत्तातयोः, सङ्गमम्, दृष्ट्वा, महावैशसे, वृत्ते, ईदृशम्, पितृसखम्, पश्यन्, ईदृशः, अहम्, किम्, सहस्रधा, न, दीर्ये ? अथवा, रामेण, किम्, दुष्करम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैः=(रघुवंश और जनकवंश के) वैवाहिक सम्बन्ध की प्रशंसनीयता के कारण प्रसन्न, वसिष्ठादिभिः=वसिष्ठ आदि (महनीय

(नेपथ्ये ।)

भो भोः ! कष्टम् ।

अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं[1] सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम् ।
प्रथमप्र[2]बुद्धजनकप्रबोधिता[3] विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः ॥ ४१ ॥

व्यक्तियों) के द्वारा, जुष्टे=सेवित (Attended), अपत्यविवाहमङ्गलविधौ=(सीता और राम आदि) सन्तानों के माङ्गलिक विवाह के अवसर पर, तत्तातयोः=उनके पिताओं के, (अर्थात् दशरथ और जनक के), संगमम्=मिलन को, दृष्ट्वा=देख कर, महावैशसे=(सीता-परित्यागरूपी) घोर हत्या के हो जाने पर, ईदृशम्=इस प्रकार (दुःखित), पितृसखम्=पिता जी के मित्र (जनक) को, पश्यन्=देखता हुआ, ईदृशः=ऐसा (पापकर्मा), अहम्=मैं, किम्=क्यों, सहस्रधा=हजारों टुकड़ों में, न=नहीं, दीर्ये=फट जाता हूँ, विदीर्ण हो जाता हूँ, अथवा=अथवा, रामेण=राम के द्वारा, राम के लिये, किम्=क्या, दुष्करम्=दुष्कर है, कठिन है ॥४०॥

टीका—सम्बन्धेत्यादिः । सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैः—सम्बन्धस्य = अपत्यानां विवाहमङ्गलस्य स्पृहणीयता=श्लाघ्यता तया प्रमुदितैः = प्रसन्नैः, वसिष्ठादिभिः = वसिष्ठप्रभृतिभिः, जुष्टे=सेविते, अधिष्ठित इत्यर्थः, अपत्यविवाहमङ्गलविधौ—अपत्यानाम्=सन्ततीनां विवाहमङ्गलम्=माङ्गलिको विवाहस्तस्य विधौ=विधाने, तत्तातयोः—तेषाम्=अपत्यानामित्यर्थः तातयोः=जनकयोः, दशरथविदेहयोरित्यर्थः, अथवा तयोः=तथाविधयोस्तातयोः = पित्रोः, जनक-दशरथयोरिति भावः, संगमम् = सम्मेलनम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, महावैशसे—महच्च तत् वैशसम्=सीतात्यागरूपमहाहिंसनं तस्मिन्, वृत्ते=घटिते, ईदृशम्=अतिदुःखितम्, पितृसखम्—पितुः=जनकस्य दशरथस्य सखम्=मित्रम्, जनकराजमित्यर्थः, पश्यन्=अवलोकयन्, ईदृशः=सीतापरित्यागरूपमहावैशसनिमित्तभूतः, अहम्=रामः, किम्=कथम्, सहस्रधा=सहस्रप्रकारैः, न दीर्ये=न विदीर्णो भवामि ? अथवा=पक्षान्तरे, विदीर्णत्वाभाव इति भावः, रामेण=मया रामचन्द्रेण, किम्=किं कार्यम्, दुष्करम्=दुःखेन कर्तुं शक्यम् । अर्थात् रामः सर्वं कर्तुं समर्थः । यो रामः कठोरगर्भां सीतां परित्यक्तवान् स सर्वमपि दुष्करं कर्म कर्तुं समर्थः । अतो जनकमपि दृष्ट्वा न विदीर्णो भवति । अत्र विशेषोक्तिरर्थापत्तिश्चालङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—स्पृहणीयता०—स्पृह्+अनीयर्+तल्+विभक्तिः । जुष्टे—√जुष्+क्त+विभक्तिः । वृत्ते—√वृत्+क्त+विभक्तिः ।

दुष्करम्—दुस्+√कृ+खल्+विभक्तिः ।

---

१. समुपस्थितश्रियं, २. प्रमूढ, ३. प्रबोधनात् ।

(पर्दे के पीछे)

हाय दुःख की बात है कि—केवल आभामात्र से शोभा-सम्पन्न, ऐसे (अतिक्षीण) राम को सहसा ही देख कर (मूर्च्छित हुए फिर) सर्वप्रथम होश में आए हुए जनक के द्वारा होश में लाई गई माताएँ शोक से व्याकुल होकर (पुनः) मूर्च्छित हो रही हैं ॥ ४१ ॥

इस श्लोक में हृदय-विदीर्ण होने के कारण के रहने पर भी हृदय-विदीर्ण होना रूपी कार्य के न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है। "किं दुष्करम्" में अर्थापत्ति से सिद्ध होता है कि राम के लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है। अतः अर्थापत्ति अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियम्, ईदृशम्, रघुनाथम्, सहसा, एव, वीक्ष्य, प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिताः, मातरः, विधुराः, प्रमोहम्, उपयान्ति ॥४१॥

शब्दार्थः—अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियम्=केवल आभामात्र से शोभा-सम्पन्न, ईदृशम्=ऐसे, रघुनाथम्=राम को, सहसा=अचानक, एव=ही, वीक्ष्य=देख कर, प्रथम-प्रबुद्धजनक-प्रबोधिताः=सर्वप्रथम होश में आये हुए जनक के द्वारा होश में लाई गई, मातरः=माताएँ, विधुराः=शोक से व्याकुल होकर, प्रमोहम्=मूर्च्छा को, उपयान्ति=प्राप्त हो रही हैं ॥ ४१ ॥

टीका—अनुभावेति। अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियम्–अनुभावः=प्रभावः, कन्तिरित्यर्थः, तन्मात्रेण समवस्थिता=वर्तमाना श्रीः=शोभा यस्य तं तादृशम्, ईदृशम्=एतादृशम्, अतिक्षीणमिति भावः, रघुनाथम्=रामचन्द्रम्, महसैव=झटित्येव, वीक्ष्य=अवलोक्य, प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिताः–प्रथमम्-पूर्वं प्रबुद्धः=प्राप्तसंज्ञः जनकः=दिदेहराजस्तेन प्रबोधिताः=संज्ञामानीताः, मातरः=कौसल्यादिजनन्यः, विधुराः=दुःखभराक्रान्ताः सत्यः, प्रमोहम्=मूर्च्छाम्, उपयान्ति=उपगच्छन्ति। मञ्जुभाषिणी छन्दः ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—०**समवस्थित**०–सम्+अव+√स्था+क्त+विभक्तिः। **वीक्ष्य**–वि+√ईक्ष+ल्यप्। **प्रबुद्ध**०–प्र+√बुध्+क्त+विभक्तिः। **प्रबोधिताः**—प्र+√बुध्+णिच्+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में मञ्जुभाषिणी छन्द है। छन्द का लक्षण—

सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ॥ ४१ ॥

रामः— जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् ।
[1]तत्राप्यकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ ४२ ॥

यावत्संभावयामि । (इत्युत्तिष्ठति ।)

कुशलवौ—इत इतस्तातः ।

([2]सकरुणं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते
कुमारप्रत्यभिज्ञानं नाम षष्ठोऽङ्कः ॥ ६ ॥

□

अन्वयः—जनकानाम्, च, रघूणाम्, यत्, कृत्स्नम्, गोत्रमङ्गलम्, (आसीत्), तत्र, अपि, अकरुणे, पापे, मयि, वः, करुणा, वृथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—जनकानाम्=जनकवंशी, च=तथा, रघूणाम्=रघुवंशी राजाओं का, यत्=जो (सीता), कृत्स्नम्=पूर्णरूप से, गोत्रमङ्गलम्=कुल का मङ्गल, (आसीत्=थी), तत्र=उसके विषय में, अपि=भी, अकरुणे=निष्ठुर, करुणाशून्य, पापे=पापी, मयि=मेरे ऊपर, वः=आप लोगों की, करुणा=करुणा, वृथा=व्यर्थ है ॥ ४२ ॥

टीका—जनकानामिति । जनकानाम्=जनकवंशजातानाम्, च=तथा, रघूणाम्=रघुवंशोत्पन्नानां राज्ञाम्, यत्=सीतारूपं वस्तु, कृत्स्नम्=संपूर्णम्, ("विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम्" इत्यमरः), गोत्रमङ्गलम्—गोत्रस्य=कुलस्य मङ्गलम्=कल्याणम्, आसीदिति शेषः, तत्र=तस्मिन् सीतारूपे मङ्गल इत्यर्थः, अपि=च, अकरुणे=करुणाशून्ये, निर्दय इत्यर्थः, अतः, पापे=पापयुक्ते, मयि=रामे, वः=युष्माकम्, करुणा=दया, वृथा=व्यर्थैवास्ति । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ ४२ ॥

॥ इत्याचार्यरमाशङ्करत्रिपाठिविरचितायामुत्तररामचरितव्याख्यायां
शान्त्याख्यायां षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—अकरुणे—"सीता पितृकुल एवं श्वसुर कुल—दोनों के लिये मङ्गलकारिणी थीं । उस पर भी वे कठोरगर्भा थीं । शीघ्र ही उनका प्रसव होने वाला था । फिर भी राम को दया न आई । उन्होंने उसे घोर जङ्गल में निर्वासित कर दिया । अतः आज पापी राम पर भी दया नहीं करनी चाहिये ।" यही है अभिप्राय राम के कहने का ।

राम पर दया की व्यर्थता का कारण है, उनकी निर्दयता, अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलङ्कार है । यहाँ प्रयुक्त छन्द है—अनुष्टुप् ॥ ४२ ॥

---

१. तस्मिन्नकरुणे, तस्याम०, २. सकरुणाकुलं ।

राम—जनकवंशी तथा रघुवंशी राजाओं के लिये जो (सीता) पूर्णरूप से कुल का मङ्गल थी, उसके विषय में भी करुणाशून्य मुझ पापी के ऊपर आप लोगों की करुणा व्यर्थ है। अच्छा, मैं इन लोगों का सम्मान करता हूँ। (ऐसा कह कर उठते हैं) ॥ ४२ ॥

कुश और लव--तात, इधर से, इधर से आएँ।

(शोक-विह्वलता के साथ घूम कर सभी निकल गये।) ॥

॥ इस प्रकार महाकवि भवभूति के द्वारा रचित उत्तररामचरित में 'कुमार-प्रत्यभिज्ञान' नामक षष्ठ अङ्क समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

□

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः ।)

लक्ष्मणः–भोः, अद्य खलु[1] भगवता वाल्मीकिना सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः प्रजाः[2] सहास्माभिराहूय कृत्स्न एव [3]सदेवासुरतिर्यङ्निकायः सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण संनिधापितः । आदिष्टश्चाहमार्येण—'वत्स लक्ष्मण ! भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्मः । [4]गङ्गातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियतां समाजसंनिवेशः' इति । कृतश्च मर्त्यामर्त्यस्य भूतग्रामस्य समुचितस्थानसंनिवेशो मया । अयं नु—

राज्याश्रमनिवासो[5]ऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः ।
वाल्मीकिगौरवादार्य इत एवाभिवर्तते ॥ १ ॥

शब्दार्थः--सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः=ब्राह्मण, क्षत्रिय, नागरिक और ग्रामीण लोगों के सहित, कृत्स्नः=सारा, समूचा, सदेवासुरतिर्यङ्निकायः=देवता, राक्षस, पशु-पक्षि–गणों के साथ, भूतग्रामः=प्राणि-समूह, सन्निधापितः=अपने पास एकत्रित कर लिया है । स्वकृतिम्=अपनी रचना को, प्रयुज्यमानाम्=प्रयोग की जाती हुई । आतोद्यस्थानम्=चार प्रकार के वाद्यों के स्थान को, रङ्गशाला को, समाजसन्निवेशः= सामाजिकों अर्थात् दर्शकों को यथास्थान बैठाने का कार्य । मर्त्यामर्त्यस्य=मानव एवं देवों के लिये ॥

टीका--लक्ष्मण इति । सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः—ब्रह्मभिः=ब्राह्मणैः क्षत्रैः= क्षत्रियैः पौरैः=नागरिकैः जानपदैः=देशवासिभिः सहिताः सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः, प्रजाः=जनाः ("प्रजा स्यात् सन्ततौ जने" इत्यमरः), कृत्स्नः=समग्रः, सदेवासुर-तिर्यङ्निकायः—देवाः=अमरा असुराः=दैत्याः तिर्यञ्चः=नागादयः एषां निकायः= समूहस्तेन सहितः, भूतग्रामः—भूतानाम्-प्राणिनां ग्रामः=समवायः, सन्निधापितः= सन्निधिं प्रापितः । स्वकृतिम्=स्वकीयां रचनाम्, प्रयुज्यमानाम्=अभिनीयमानाम् । आतोद्यस्थानम्=चतुर्विधवाद्यस्थानम्, रङ्गशालामिति यावत्, समाजसन्निवेशः— समाजस्य=सभायाः सन्निवेशः=यथोचितस्थानविभागः । मर्त्यामर्त्यस्य-मर्त्याश्च=मरण-शीलाश्च अमर्त्याश्च=मरणरहिताश्च तेषां समाहारस्तस्य, भूतग्रामस्य=प्राणिसमूहस्य ॥

---

१. भो भो अद्य खलु, भोः, किन्तु खलु, २. प्रजाः सर्वा, ३. सुरमनुष्यति०··· निकायसंतानः, ४. तद्गंगा०, ५. 'निवासे' ।

(तदनन्तर लक्ष्मण प्रवेश करते हैं ।)

लक्ष्मण—अजी, आज भगवान् वाल्मीकि ने हम लोगों के साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, नागरिक और ग्रामीण लोगों के सहित सारी प्रजा को बुलाकर देवता, राक्षस और पशु-पक्षि-गणों के साथ सारे के सारे स्थावर एवं जंगम प्राणिसमूह को अपने प्रभाव से अपने पास एकत्रित कर लिया है। पूज्य (राम) के द्वारा मुझे आदेश दिया गया है कि—"वत्स लक्ष्मण, भगवान् वाल्मीकि ने अप्सराओं के द्वारा प्रयोग की जाती हुई अपनी रचना को देखने के लिये हम सब को बुलाया है। गंगा के तट पर रङ्गशाला में जाकर दर्शकों के यथास्थान बैठाने का कार्य करो।" मैंने मानवों एवं देवों के सहित समस्त प्राणि-समूह के बैठने का समुचित प्रबन्ध कर दिया है। यह तो—

राज्य रूपी आश्रम में निवासकरते हुए भी कष्टदायक मुनि-व्रत को धारण करने वाले पूज्य (रामचन्द्र) वाल्मीकि के प्रति आदर-भाव के कारण इधर ही आरहे हैं ॥ १ ॥

टिप्पणी—**आहूय**—आ + √ह्वे + ल्यप् । **सन्निधापितः**—सम् + नि + √धा + णिच् + क्त + विभक्तिः । **उपनिमन्त्रिताः**—उप + नि + √मन्त्र् + णिच् + क्त + विभक्तिः ।

आतोद्यस्थानम्—वाद्य चार प्रकार के होते हैं। ये इस प्रकार हैं—(१) तन्तु वाद्य सारङ्गी आदि। (२) मुख से फूंक कर बजाये जाने वाले वाद्य, जैसे बाँसुरी आदि। (३) हाँथ से ठोंक कर बजाये जाने वाले वाद्य, जैसे तबला, ढोलक आदि और। (४) झंकृति वाद्य जैसे मजीरा आदि। इन्हें आतोद्य कहते हैं। आतोद्य का स्थान जहाँ होता है उसे आतोद्यस्थान अर्थात् रङ्गशाला कहते हैं।

अप्सरोभिः प्रयुज्यमानाम्—महर्षि वाल्मीकि ने इसके आगे कथानक की सुखद समाप्ति की है। उन्होंने संसार के समक्ष सीता की पवित्रता को सिद्ध करते हुए पुत्रों के साथ सीता-राम का मिलन करवाया है। महर्षि वाल्मीकि ने इस अंश के कथानक का अभिनय अप्सराओं के द्वारा करवाया है। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय स्त्री-पात्र नाटकीय अभिनय करते थे। शायद पुरुष-पात्रों का अभिनय भी स्त्रियाँ ही किया करती थीं। कम से कम इस अंश से तो यही संकेत मिलता है॥

अन्वयः—राज्याश्रमनिवासः, अपि, प्राप्तकष्टमुनिव्रतः, आर्यः, वाल्मीकिगौरवात्, इतः, एव, अभिवर्तते ॥ १ ॥

शब्दार्थः—राज्याश्रमनिवासः = राज्यरूपी आश्रम में निवास करते हुए, अपि = भी, प्राप्तकष्टमुनिव्रतः = कष्टदायक मुनि-व्रत को धारण करने वाले, आर्यः = पूज्य,

(ततः प्रविशति रामः ।)

रामः—वत्स लक्ष्मण ! अपि स्थिता रङ्गप्राश्निकाः[1] ?

लक्ष्मणः—अथ किम् ।

रामः—इमौ पुनर्वत्सौ कुमारचन्द्रकेतु[2]समां [3]प्रतिपत्तिं लम्भयितव्यौ ।

लक्ष्मणः—प्रभुस्नेहप्रत्ययात्तथैव कृतम् । इदं चास्तीर्णं राजासनम् । तदुपविशत्वार्यः ।

रामः—(उपविश्य ।) प्रस्तूयतां भोः !

सूत्रधारः—(प्रविश्य) भगवान्भूतार्थवादी प्राचेतसः स्थावरजङ्गमं जगदाज्ञापयति—'यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य [4]पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धम् । तत्र काव्यगौरवादवधातव्यम्' इति ।

(रामचन्द्र), वाल्मीकिगौरवात्=वाल्मीकि के प्रति आदर-भाव के कारण, इतः= इधर, एव=ही, अभिवर्तते=आ रहे हैं ॥ १ ॥

टीका--राज्याश्रमेति । राज्याश्रमनिवासः—राज्यमेव=प्रजापालनरूपं कर्मैव आश्रमः=तपोमयजीवनयापनस्थलं तस्मिन् निवासः=स्थितिर्यस्य तादृशः, अपि=च, प्राप्तकष्टमुनिव्रतः—प्राप्तम्=अधिगतं, स्वीकृतमिति भावः, कष्टम्=कष्टकरं मुनिव्रतम्=तपोमयं जीवनं येन स तादृशः, आर्यः=पूज्यः, रामचन्द्र इति यावत्, वाल्मीकिगौरवात्--वाल्मीकौ=प्राचेतसे यद् गौरवम्=बहुमानस्तस्मात्, इतः=अस्यां दिशि, एव=हि, अभिवर्तते=आयाति । अत्र विरोधाभासोऽलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक में विरोधाभास उलंकार है। राज्य करते हुए भी मुनिव्रत को धारण करना यही विरोध है ।

यहाँ प्रयुक्त अनुष्टुप् छन्द का लक्षण--

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १ ॥

शब्दार्थः--रङ्गप्राश्निकाः=रङ्गशाला के विशेषज्ञ विद्वान् । प्रतिपत्तिम्=आदर को, सम्मान को । प्रभु-स्नेह-प्रत्ययात्=स्वामी (आप) के (इनके ऊपर) स्नेह का ज्ञान होने के कारण । प्रस्तूयताम्=प्रस्तुत कीजिये, प्रारम्भ कीजिये ।

टीका--तत प्रविशतीति । रङ्गप्राश्निकाः-रङ्गस्य=रङ्गशालायाः प्राश्निकाः= सामाजिकाः, दर्शका इति यावत् । प्रतिपत्तिम्=सम्मानम्, लम्भयितव्यौ=प्रापयितव्यौ । प्रभु-स्नेहप्रत्ययात्--प्रभोः=महाराजस्य कुशलवयोः प्रदर्शितस्य स्नेहस्य प्रत्ययः= ज्ञानं तस्मात् । प्रस्तूयताम्=अभिनय आरभ्यतामित्यर्थः ॥

---

१. रङ्गप्रेक्षकाः, २. ०सदृशीं, ३. स्थानप्रतिपत्तिं, ४. पावनं वचनामृतम्; पावनकरुण० ।

(तदनन्तर राम प्रवेश करते हैं ।)

राम--वत्स लक्ष्मण, क्या रङ्गशाला के विशेषज्ञ विद्वान् (यथास्थान) बैठ गये ?

लक्ष्मण--और क्या ? (अर्थात् हाँ) ।

राम--इन वत्स कुश और लव को कुमार चन्द्रकेतु के समान ही आदर देना (अर्थात् चन्द्रकेतु के समान ही सम्मानित स्थान पर बैठाना) ।

लक्ष्मण--स्वामी (आप) के (इनके ऊपर) स्नेह का ज्ञान होने के कारण वैसा ही किया है । (अर्थात् इन्हें चन्द्रकेतु के बराबर ही दर्जा दिया है) । यह राजासन बिछा हुआ है आप इस पर बैठें ।

राम—(बैठकर) प्रारम्भ किया जाय ।

सूत्रधार--(प्रवेश करके) यथार्थवादी भगवान् वाल्मीकि स्थावर-जङ्गम सकल संसार को आदेश देते हैं कि—"मैंने आर्ष (ऋषिजनों को प्राप्त) दृष्टि से भली-भाँति देखकर करुणा एवम् अद्भुत रस से युक्त, पावन तथा अमृतमय वचनों से परिपूर्ण कुछ लिपिबद्ध किया है (अर्थात् लिखा है) । काव्य के प्रति आदर-भाव के कारण आप लोगों को उस पर ध्यान देना चाहिये ।

टिप्पणी--प्राश्निकाः--प्रश्नम् अर्हन्ति इति प्राश्निकाः । प्रश्न+ठञ् (इक्)+विभक्त्यादिः । प्रतिपत्तिम्--प्रति+√पद्+क्तिन्+विभक्तिः । लम्भयितव्यौ—√लभ्+णिच्+तव्यत्+प्रथमाद्विवचने विभक्तिः ।

आस्तीर्णम्--आ+√स्तृ+क्त+विभक्तिः । राजासनम्--राजासन का अर्थ होता है--सिंहासन । किन्तु यहाँ वास्तविक सिंघासन नहीं लगाया गया है । राजा के योग्य उत्तम आसन बिछाया गया है । यहाँ राजासन का अर्थ उत्कृष्ट आसन है ।

शब्दार्थः--भूतार्थवादी = यथार्थवादी, प्राचेतसः = वाल्मीकि, आर्षेण=आर्ष, प्रामाणिक, दिव्य, चक्षुषा=दृष्टि से, समुद्वीक्ष्य=भली-भाँति देखकर, पावनम्=पवित्र करने वाले, करुणाद्भुतरसम्=करुणा और अद्भुत रस से युक्त, उपनिबद्धम्=लिपिबद्ध किया है, लिखा है, काव्यगौरवात्=काव्य के प्रति आदरभाव के कारण, अवधातव्यम्=ध्यान देना चाहिये ॥

टीका--सूत्रधार इति । भूतार्थवादी-भूतार्थम्=यथार्थम्, सत्यमिति यावत्, वदतीति तादृशः, यथार्थवक्तेत्यर्थः, प्राचतेसः--प्रचेतसः=वरुणस्य अपत्यं पुमान् प्राचेतसः=वाल्मीकिः, आर्षेण--ऋषेः=महर्षेरिदमार्षं तेन आर्षेण=ऋषिसम्बन्धिना, अलौकिकेनेत्यर्थः, चक्षुषा=दृष्टया, समुद्वीक्ष्य सम्यक्=अतिशयेन उद्वीक्ष्य=दृष्ट्वा,

रामः—एतदुक्तं भवति । साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः । तेषा[1]मृतम्भराणि भगवतां परोरजांसि प्रज्ञानानि न क्वचिद्व्याहन्यन्त इति[2] न हि शङ्कनीयानि ।

(नेपथ्ये)

हा आर्यपुत्र ! कुमारलक्ष्मण ! एकाकिनीमशरणामासन्नप्रसववेदनामरण्ये हताशां श्वापदा अभिलषन्ति । हा ! इदानीं मन्दभाग्या भागीरथ्यामात्मानं निक्षिपामि । (हा अज्जउत ! हा कुमार लक्खण ! एआइणिं असरणं आसण्णप्पसववेअणं अरण्णे हदासं सावदा अहिलसन्दि । हा ! दाणिं मन्दभाइणी भाईरईए अत्ताणं णिक्खिविस्सम् ।)

लक्ष्मणः—कष्टं बतान्यदेव किमपि ।

पावनम्=दर्शनात् श्रवणाद्वाऽन्येषां शुद्धिकरम्, करुणाद्भुतरसम्—करुणाद्भुतौ रसौ यस्मिस्तत् तादृशम्, करुणाद्भुतरससंवलितम्, वचनामृतम्=अमृततुल्यं वचनम्, काव्यमिति यावत्, उपनिबद्धम्=रचितम् । तत्र=तस्मिन्, काव्यगौरवात्—काव्यस्य=रूपकस्वरूपस्य कविकर्मणः गौरवात्=महनीयत्वात्, अवधातव्यम्=अवधानं देयम्, सर्वैः सावधानैर्भवितव्यमिति भावः ॥

टिप्पणी—भूतार्थवादी—भूतार्थ + √वद् + णिनिः + विभक्तिः । आर्षेण—ऋषि + अण् + विभक्त्यादिः । उपनिबद्धम्—उप + नि + √बन्ध् + क्त + विभक्तिः । अवधातव्यम्—अव + √धा + तव्यत् + विभक्तिः ।

साक्षात्कृत०—साक्षात्कृतो धर्मो यैस्ते साक्षात्कृतधर्माणः । यह कथन निरुक्त, अध्याय एक, के इस वचन का सारांश है—

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः ॥"

शब्दार्थः—ऋतम्भराणि=सत्य से भरी हुई, सत्य से ओत-प्रोत, परोरजांसि=रजोगुणरहित, प्रज्ञानानि=उत्कृष्ट ज्ञान, व्याहन्यन्ते=कुण्ठित होती हैं या होते हैं । अशरणम्=असहाय, आसन्नप्रसवेदनाम्=शीघ्र होने वाले प्रसव की पीडा से युक्त, हताशाम्=निराश, माम्=मुझे, श्वापदाः=जङ्गली जानवर, अभिलषन्ति=खाना चाहते हैं । मन्दभाग्या=अभागिन, निक्षिपामि=फेंक रही हूँ, प्रवाहित कर रही हूँ ॥

---

१. ऋतसाराणि, २. नाभिशंकनीयानि ।

राम--यह कहा गया है कि--"महर्षियों ने धर्म (ब्रह्म) का साक्षात्कार किया है। (अतः) ऐश्वर्य-सम्पन्न उन महर्षियों के सत्य से भरे हुए तथा रजोगुण से रहित उत्कृष्ट ज्ञान कहीं भी कुण्ठित नहीं हुआ करते। इसलिये (उनके वचन में) कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये।

(पर्दे के पीछे)

हा आर्यपुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण ! अकेली, असहाय, शीघ्र होने वाले प्रसव की पीडा से युक्त तथा घोर जंगल में (जीवन के प्रति) निराश मुझे जङ्गली जानवर खाना चाहते हैं। हाय, अभागिन मैं अब आपने आपको गङ्गा में फेंक रही हूँ।

लक्ष्मण--खेद की बात है कि यहाँ यह कुछ और (ही उपस्थित) है।

टीका--**राम** इति। ऋतम्भराणि--ऋतम् = सत्यं बिभ्रति=धारयन्तीति ऋतम्भराणिः=सत्यधारकाणीत्यर्थः, भराणि इति पदेन योगेऽपि "कर्तृकर्मणोः कृति" इत्यस्य अनित्यत्वान्न षष्ठीति वीरराघवः। परोरजांसि--रजसः = रजोगुणस्य पराणि=रहितानि, प्रज्ञानानि=प्रकृष्टतत्त्वबोधाः, न व्याहन्यन्ते=न कुण्ठितानि भवन्ति। अशरणम्--अविद्यमानं शरणम्=रक्षकः ("शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः) यस्याः सा तादृशी, आसन्नप्रसववेदनाम्—आसन्नः=समीपवर्ती यः प्रसवः=सन्तानोत्पादस्तेन वेदना=व्यथा यस्याः सा तादृशी, हताशाम्—हता = समाप्ता आशा=जीवनाशा यस्याः सा ताम्, माम्=सीतामित्यर्थः, श्वापदाः=हिंसका जन्तवो व्याघ्रादयः, अभिलषन्ति=अत्तुमिच्छन्ति। मन्दभाग्या—मन्दम्=अल्पं भाग्यं यस्याः सा मन्दभाग्या = अल्पभाग्या, निक्षिपामि=प्रवाहितां करोमि, गङ्गायां लीना भवामीत्यर्थः॥

टिप्पणी-ऋतम्भराणि—ऋतं बिभ्रति इति, ऋत + √भृ + खच् (अ) + विभक्तिः। संज्ञायां भृतृ० (३।२।४६) से खच् प्रत्यय होता है। खित् होने के कारण ऋत के बाद मुम् (म्) का आगम होता है। यह प्रयोग अपाणिनीय है, क्योंकि संज्ञावाचक होने पर ही उक्त सूत्र से खच् प्रत्यय होता है जैसे—विश्वम्भरा आदि। योगदर्शन में ऋतम्भरा प्रज्ञा का वर्णन आता है। इसी के अनुकरण पर कवि ने यहाँ ऋतम्भर शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में किया है। यहाँ पर भी ऋतम्भराणि प्रज्ञानानि का भाव ऋतम्भरा प्रज्ञा ही समझना चाहिये।

परोरजांसि—राजदन्तादि गण में होने के कारण पर का पूर्वप्रयोग तथा पारस्करादि गण में होने से पर के बाद सुट् (स्) का आगम होता है॥

सूत्रधारः—विश्वम्भराऽऽत्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने ।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुञ्चति ॥ २ ॥

। इति निष्क्रान्तः ।

। प्रस्तावना ।

रामः—(सावेगम्) [1]देवि ! देवि ! [2]लक्ष्मणम[3]वेक्षस्व ।

लक्ष्मणः—आर्य ! नाटकमिदम् ।

रामः—हा देवि ! दण्डकारण्यवासप्रियसखि ! एष ते [4]रामाद्विपाकः ।

लक्ष्मणः—आर्य ! [5]आश्वस्य दृश्यताम् । प्रबन्धस्त्वार्षः ।

रामः—एष सज्जोऽस्मि वज्रमयः ।

(ततः प्रविशति उत्सङ्गितैकैकदारकाभ्यां पृथिवीगङ्गाभ्यामालम्बिता [6]प्रमुग्धा सीता)

रामः—[7]वत्स ! असंविज्ञातपदनिबन्धने तमसीवाहमद्य प्रविशामि, धारय माम् ।

अन्वयः—विश्वम्भरात्मजा, देवी, राज्ञा, महावने, त्यक्ता, प्राप्तप्रसवम्, आत्मानम्, गङ्गादेव्याम्, विमुञ्चति ॥ २ ॥

शब्दार्थः—विश्वम्भरात्मजा=पृथिवी की बेटी, देवी=महारानी सीता, राज्ञा=राजा (राम) के द्वारा, महावने=घोर जङ्गल में, त्यक्ता=छोड़ी जाने पर, प्राप्तप्रसवम्=प्रसव-वेदना से पीडित होकर, आत्मानम्=अपने आपको, गङ्गादेव्याम्=भगवती भागीरथी के जल में, विमुञ्चति=प्रवाहित कर रही हैं, छोड़ रही हैं ॥ २ ॥

टीका—विश्वम्भरेति । विश्वम्=जगत् बिभर्ति=धारयतीति विश्वम्भरा=पृथिवी, ('भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा ।' इत्यमरः), तस्याः=आत्मनः=स्वस्माज्जाता=उत्पन्ना, विश्वम्भरात्मजा=भूमि-सुता, अनेन तस्या अयोनिजत्वं संसूच्य पवित्रता ध्वनिता, देवी=द्योतनशीला, महाराज्ञीति यावत्, राज्ञा=भूपालेन रामेण, महावने—महच्च तत् वनम्=अरण्यं तस्मिन्, त्यक्ता=निस्सारिता, प्राप्तप्रसवम्—प्राप्तः=समुपस्थितः प्रसवः=प्रसववेला यस्य तम्, आत्मनम्=स्वम्, गङ्गादेव्याम्—भागीरथ्याम्, विमुञ्चति=पातयति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

प्रस्तावना—इयमन्तर्नाटकस्य प्रस्तावना बोध्या ।

टिप्पणी—**विश्वम्भरा**—एक बार यज्ञ के लिये जनक पृथिवी को सुवर्ण के

---

१. हा देवि हा, २. क्षणम्, ३. अपे०, क्षमस्व, ४. दैवदुर्विपाकः, ५. दृश्यतां तावत्प्रबन्धार्थः, ६. क्वचित् प्रमुग्धा नास्ति, ७. वत्स लक्ष्मण असंविज्ञातमनिबन्धनमन्धतमसमिव प्रविशामि ।

सूत्रधार—पृथिवी की बेटी महारानी सीता राजा (राम) के द्वारा घोर जङ्गल में छोड़ी जाने पर प्रसव-वेदना से पीडित होकर अपने आप को भगवती भागीरथी के जल में प्रवाहित कर रही हैं ॥ २ ॥

(ऐसा कह कर निकल गया ।)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

राम—(घबराहट के साथ) देवी, लक्ष्मण को देखो ।

विशेष—राम के कहने का भाव यह है कि—यदि तुम मेरी करनी के कारण मुझसे निरपेक्ष हो गई हो तो अपने सेवक लक्ष्मण का कम से कम ख्याल कर ऐसा मत करो ।

लक्ष्मण—पूज्यचरण, यह नाटक है ।

राम—हा देवी, दण्डकारण्य में निवास के समय की प्रिय सहचरी, राम के कारण ही तुम्हारा यह परिणाम हुआ ।

लक्ष्मण—आर्य, धैर्य धारण कर देखें । नाटक ऋषि-प्रणीत है ।

विशेष आर्षः—आर्ष कहने का भाव यह है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने तपोमय ज्ञाननेत्र से सब कुछ देखकर इसकी रचना की है ।अतः इससे सीता विषयक जो जानकारी मिलेगी वह सत्य सिद्ध होगी ।

राम—वज्र का बना हुआ यह मैं (देखने के लिये) तत्पर हूँ ।

(तदनन्तर एक-एक शिशु को गोद में ली हुई पृथिवी और गङ्गा के द्वारा सँभाली गई मूर्च्छित सीता प्रवेश करती हैं ।)

राम—लघुबन्धु, अब मैं एक ऐसे अन्धकार में प्रवेश कर रहा हूँ, जिसमें पैर रखने के स्थान का भी मुझे पता नहीं है । अतः मुझे सँभालो ।

हल से जोत रहे थे । उसी समय सीता जी भूमि से निकली थीं । विश्व + √भृ + खच् (अ) + खित् होने से पूर्वपद को मुम् + विभक्तिः ।

त्यक्ता— √त्यज् + क्त + टाप् + विभक्तिः ।

प्रस्तावना—यहाँ पर गर्भ अंक की प्रस्तावना समाप्त होती है । युद्ध और सीता का गङ्गा में डूबना रङ्गमञ्च पर नहीं दिखलाया जा सकता था । अतः इन घटनाओं की पात्रों के द्वारा सूचना देने के लिये इस प्रस्तावना की योजना की गई है युद्ध तथा आत्महत्या जैसे दृश्य रङ्गमञ्च पर नहीं दिखलाने का विधान है ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सावेगम्=घबराहट के साथ, अवेक्षस्व=देखो । विपाकः=फल, परिणाम । प्रबन्धः=नाटक, आर्षः=ऋषि-प्रणीत है । वज्रमयः=वज्र का बना हुआ, वज्रनिर्मित । असंविज्ञातपदनिबन्धने=जिसमें पैर रखने तक का पता नहीं है ऐसे ।

[1]देव्यौ—

समाश्वसिहि कल्याणि ! दिष्टचा वैदेहि ! वर्धसे ।
[2]अन्तर्जले प्रसूतासि रघुवंशधरौ सुतौ ॥ ३ ॥

सीता—(आश्वस्य) दिष्टचा दारकौ प्रसूतास्मि । हा आर्यपुत्र[3] ! (दिठ्ठिआ दारए पसूदह्मि । हा अज्जउत्त !)

लक्ष्मणः—(पादयोर्निपत्य ।) आर्य ! दिष्टचा वर्धामहे । कल्याणप्ररोहो रघुवंशः । (विलोक्य ।) हा ! कथं [4]क्षुभितबाष्पोत्पीडनिर्भरः प्रमुग्ध एवार्यः । (बीजयति ।)

[5]देव्यौ—वत्से ! समाश्वसिहि ।

सीता—(समाश्वस्य ।) भगवत्यौ ! के युवाम् ? मुञ्चतम् । (भअवदीओ ! का तुह्मे ? मुञ्चह ।)

पृथिवी—इयं ते श्वशुरकुलदेवता भागीरथी ।

सीता—नमस्ते भगवति ! (णमो दे भअवदि !)

भागीरथी—[6]चारित्रोचितां कल्याणसंपदमधिगच्छ ।

टीका—सावेगमिति । आवेगेन=भयेन सहितं यथा स्यात्तथा । अवेक्षस्व= अवलोकय मयि सापराधेऽपि स्वसेवकं लक्ष्मणं विलोक्य त्वया गङ्गायां एवमात्माव-पातनं नैव करणीयमिति भावः । विपाकः=परिणामः । आर्षः=ऋषिप्रणीतः । अतस्तत्र मिथ्यात्वाशङ्का नैव करणीया । सज्जः=तत्परः, वज्रमयः=वज्रनिर्मितः । असंविज्ञातपदनिबन्धने—असंविज्ञातम् = अविदितम्, पदनिबन्धनम् = पादविन्यासो यस्मिन् तादृशे, तमसि=अन्धकारे ॥

टिप्पणी—विपाकः—वि + √पच् + घञ् + विभक्तिः । आर्षः—ऋषि + अण् + विभक्त्यादिः ।

प्रमुग्धा—प्र + √मुह् + क्त + टाप् + विभक्तिः ॥

अन्वयः—हे कल्याणि, वैदेहि, समाश्वसिहि; दिष्टचा, वर्धसे; अन्तर्जले, रघुवंशधरौ, सुतौ, प्रसूता, असि ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—हे कल्याणि=हे मङ्गलमयी, वैदेहि=जानकी, समाश्वसिहि=धैर्य धारण करो । दिष्टचा=सौभाग्य से, वर्धसे=बढ़ रही हो । अन्तर्जले=जल के भीतर, रघुवंशधरौ=रघुकुल को धारण करने वाले, सुतौ=दो पुत्रों को, प्रसूता=पैदा की, असि=हो ॥ ३ ॥

---

१. गङ्गा २, ०जलं, ३. इति मूर्च्छति इत्यधिकः पाठः, ४. बाष्पोद्भेद, ५. पृथिवी, ६. चारित्रोपचिताम् ।

दोनों देवियाँ--हे मङ्गलमयी जानकी, धैर्य धारण करो। सौभाग्य से बढ़ रही हो। जल के भीतर रघुकुल को धारण करनेवाले दो पुत्रों को पैदा की हो ॥३॥

सीता--भाग्य से दो पुत्रों को पैदा की हूँ। हा पतिदेव !

लक्ष्मण—(चरणों पर गिरकर) आर्य, सौभाग्य से हम लोग बढ़ रहे हैं। रघुवंश शुभ अंकुर से सम्पन्न हुआ है। (ध्यान से देख कर) हाय, क्या बहती हुई अश्रुधाराओं के प्रवाह से व्याकुल पूज्य (राम) मूच्छित ही हो गये ? (पंखे से हवा करते हैं।)

दोनों देवियाँ--बेटी, धैर्य धारण करो।

सीता--(आश्वस्त होकर) पूज्य देवियों, आप दोनों कौन हो ?

पृथिवी--यह तुम्हारे श्वसुर-कुल की देवता भागीरथी (गंगा) हैं।

सीता--हे भगवती, आप को प्रणाम है।

भागीरथी--अपने (सुन्दर) चरित्र के अनुरूप कल्याण रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करो।

टीका—समाश्वसिहीति। हे कल्याणि=हे मङ्गलवति, वैदेहि=सीते, समाश्वसिहि=आश्वस्ता भव। दिष्टया=सौभाग्येन, वर्धसे=एधसे, यदन्तर्जले--जलस्य= सलिलस्य अन्तः=आभ्यन्तरभाग इति अन्तर्जलं तस्मिन्, जलाभ्यन्तरे, रघुवंशधरौ-धरत इति धरौ रघुवंशस्य=रघुकुलस्य धरौ=धारकौ, सुतौ=पुत्रौ, युग्माविति भावः, प्रसूता=कृतप्रसवा, असि = वर्तसे। अत्र वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ॥

टिप्पणी--दिष्टचा वर्धसे--यह मुहावरा है। इसका अर्थ है--तुम्हें इसके लिये बधाई है।

प्रसूता--प्र + √सू + क्त + टाप् + विभक्तिकार्यम्।

इस श्लोक में बधाई का कारण रघुकुल के धारक पुत्रों को जन्म देना है, अतः वाक्यार्थमूलक काव्य अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है :—अनुष्टुप् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—वर्धामहे=हम लोग बढ़ रहे हैं। कल्याणप्ररोहः=शुभ अंकुरवाला, शुभ अंकुर से सम्पन्न, क्षुभितबाष्पोत्पीडनिर्भरः=बहती हुई अश्रुधाराओं के प्रवाह से व्याकुल; प्रमुग्धः=मूच्छित। श्वसुरकुलदेवता=श्वसुर कुल की देवता। चरित्रोचिताम्=चरित्र के अनुरूप, आचरण के अनुसार, कल्याणसम्पदम्=कल्याणरूपी संपत्ति को।

टीका—लक्ष्मण इति। वर्धामहे=वृद्धिमधिगच्छामः। कल्याणप्ररोहः-कल्याणः= शुभकरः प्ररोहः=अंकुरो यस्य तादृशः, क्षुभितबाष्पोत्पीडनिर्भरः--क्षुभितः=प्रवाहितो

लक्ष्मणः—अनुगृहीताः स्मः ।

भागीरथी—इयं ते जननी विश्वम्भरा[1] ।

सीता—हा अम्ब ! ईदृश्यहं त्वया दृष्टा । (हा अम्ब ! ईरिसी अहं तुए दिट्ठा ?)

पृथिवी—एहि पुत्रि वत्से सीते !

([2]उभौ आलिङ्ग्य मूर्च्छतः ।)

लक्ष्मणः—(सहर्षम् ।) [3]कथमार्या गङ्गापृथिवीभ्यामभ्युपपन्ना ।

रामः—दिष्टया खल्वेतत् । करुणान्तरं तु वर्तते ।

भागीरथी—अत्रभवती विश्वम्भरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन । सर्वसाधारणो ह्येष मनसो [4]मूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः । [5]सखि भूतधात्रि ! वत्से वैदेहि ! समाश्वसिहि ।

पृथिवी—(आश्वस्य ।) देवि ! सीतां प्रसूय कथमाश्वसिमि ?

सोढश्चिरं राक्षसमध्यवासस्त्यागो द्वितीयस्तु[6] सुदुःसहोऽस्याः ।

गङ्गा—

को नाम पाकाभिमुखस्य [7]जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ? ॥ ४ ॥

यो बाष्पस्य=अश्रुण उत्पीडः=समूहस्तेन निर्भरः = आकुलः, प्रमुग्धः=मूर्च्छितः । श्वसुरकुलदेवता–श्वसुरकुलस्य=श्वसुरवंशस्य देवता=देवी । चरित्रोचिताम्–चरित्रस्य=आचरणस्य उचिताम्=योग्याम्, चरित्रानुरूपामित्यर्थः, कल्याणसम्पदम्–कल्याणम्=श्रेय एव संपत्=सम्पत्तिस्ताम्, अधिगच्छ=प्राप्नुहि ॥

टिप्पणी—आश्वस्य—आ + √श्वस् + ल्यप् । निपत्य—नि + √पत् + ल्यप् । प्ररोहः—प्र + √रुह् + घञ् + विभक्तिः । प्रमुग्धः—प्र + √मुह् + क्त + विभक्त्यादिः । विश्वम्भरा—विश्व + √भृ + खच् + टाप् + विभक्तिः ।

आलिङ्ग्य—आ + √लिङ्ग् + ल्यप् ॥

शब्दार्थः—अभ्युपपन्ना=अनुगृहीत की गई हैं । अपत्यस्नेहेन=सन्ततिप्रेम की । सर्वसाधारणः=सब के लिये एक समान, सब पर लागू होनेवाला । उपप्लवः=चञ्चलता का कारण । प्रसूय=पैदा करके ॥

टीका—लक्ष्मण इति । अभ्युपपन्ना=अनुगृहीता । अपत्यस्नेहेन—अपत्यस्य=सन्ततेः स्नेहेन=प्रेम्णा । सर्वसाधारणः—सर्वेषु=निखिलेषु साधारणः=सामान्यः, सर्वे प्राणिनोऽपत्यं प्रति स्नेहभाजो भवन्तीति भावः । उपप्लवः=चाञ्चल्यकारणमिति भावः । प्रसूय=जनयित्वा, कथम्=केन प्रकारेण, आश्वसिमि=क्षीणदुःखा भवामिति भावः ॥

---

१. भगवती वसुन्धरा, २. इति सीतामालिङ्ग्य मूर्च्छति, ३. दिष्टया । ४. मोहग्रन्थिः, ५. देवि, ६. द्वितीयश्च, ७. जन्तोः ।

लक्ष्मण –हम लोग अनुगृहीत हैं (आप के)।

भागीरथी––यह तुमको उत्पन्न करने वाली विश्वधात्री (अर्थात् पृथिवी) हैं।

सीता––हाय माता, आपने मुझे ऐसी अवस्था में देखा।

पृथिवी––आओ बेटी सीता।

(दोनों आलिङ्गन करके मूर्च्छित हो जाती हैं।)

लक्ष्मण—(प्रसन्नतापूर्वक) क्या आर्या (सीता) गङ्गा और पृथिवी के द्वारा अनुगृहीत की गई हैं?

राम—निश्चय ही सौभाग्य से यह हुआ है। किन्तु यह एक दूसरी करुणा की बात है।

भागीरथी—विश्व को धारण करनेवाली पूजनीया पृथिवी भी व्यथित हो रही हैं, अतः कहना पड़ेगा कि सन्ततिस्नेह सर्वातिशायी है। अथवा यह (सन्तति-स्नेह) सब में समान रूप से वर्तमान मन का मोहात्मक बन्धन, प्राणिमात्र के लिये आन्तरिक चञ्चलता का कारण और संसार को एक साथ गूँथ कर रखने वाला सूत्र है। हे प्राणिमात्र को धारण करने वाली पृथिवी, हे प्रिय बेटी सीता धैर्य धारण करो।

पृथिवी—(आश्वस्त होकर) देवि, सीता को पैदा करके कैसे धैर्य धारण करूँ?

इस (सीता) के राक्षसों के मध्य में निवास को बहुत दिनों तक सहन किया गया, किन्तु दूसरी बार का (यह) त्याग अत्यन्त असह्य है।

गङ्गा—ऐसा कौन प्राणी है (जो) फलोन्मुख भाग्य के दरवाजे को बन्द करने में समर्थ है? ॥४॥

टिप्पणी—**अभ्युपपन्ना**—अभि + उप + √ पद् + क्त + टाप् + विभक्तिः। **आन्तरः**—अन्तः = भवः आन्तरः, अन्तर् + अण् + विभक्त्यादिः। **उपप्लवः**—उप + √प्लु + अप्(अ) + विभक्तिः। **प्रसूय** —प्र + √सू + ल्यप्॥

अन्वयः—अस्याः, राक्षसमध्यवासः, चिरम्, सोढः; तु, द्वितीयः, त्यागः, सुदुः-सहः; को नाम, जन्तुः, पाकाभिमुखस्य, दैवस्य, द्वाराणि, पिधातुम्, ईष्टे॥ ४॥

शब्दार्थः—अस्याः=इस (सीता) के, राक्षसमध्यवासः = राक्षसों के मध्य निवास को, चिरम्=बहुत दिनों तक, सोढः=सहन किया गया; तु=किन्तु, द्वितीयः= दूसरी बार का, त्यागः = त्याग, सुदुःसहः=अत्यन्त असह्य है। को नाम=ऐसा कौन, जन्तुः=प्राणी है, (यः =जो), पाकाभिमुखस्य=परिणामोन्मुख, फलोन्मुख, दैवस्य = भाग्य के, द्वाराणि=दरवाजे को, द्वार को, पिधातुम् = बन्द करने में, ईष्टे= समर्थ है?॥ ४॥

पृथिवी—भगवति भागीरथि ! युक्तमेतत्सर्वं वो रामभद्रस्य ?

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
नाहं, न जनको नाग्निर्न [1]तु वृत्तिर्न संततिः ॥ ५ ॥

सीता—हा आर्यपुत्र ! [2]स्मरसि ! (हा अज्जउत्त ! सुमरेसि ?)

पृथिवी—आः ! कस्तवार्यपुत्रः ?

सीता–(सलज्जास्रम् ।) यथाम्बा भणति । (जह अम्बा भणादि ।)

रामः—अम्ब पृथिवि ! ईदृशोऽस्मि ।

टीका—सोढश्चिरमिति ।अस्याः=एतस्याः, दुःखसंविग्नायाः सीतायाः इत्यर्थः, राक्षसमध्यवासः—राक्षसानाम्=निशाचराणां मध्ये=समवायान्तराले वासः=निवासः, चिरम्=बहुकालपर्यन्तम्, सोढः=मर्षितः; तु=किन्तु, द्वितीयः = अपरः अस्यास्त्यागः=परित्यागः, निर्वासनमिति यावत्, सुदुःसहः=नितरामसह्यो वर्तते । को नाम जन्तुः=को नाम प्राणी, पाकाभिमुखस्य—पाकस्य=परिणामस्य, फलस्येति यावत्, अभिमुखस्य=कर्मफलप्रदानतत्परस्य, दैवस्य=भाग्यस्य, द्वाराणि=प्रवेश-मार्गान्, पिधातुम्=आच्छादयितुम्, रोद्धुमिति यावत्, ईष्टे=प्रभवति । अत्रार्थापत्ति-रर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ । छन्दस्तु इन्द्रवज्रा ॥ ४ ॥

टिप्पणी–सुदुःसहः—सु+दुर्+ √सह + खल्(अ)+विभक्तिः । पिधातुम्–अपि+√धा+तुमुन् । यहाँ आचार्य भागुरि के मत के अनुसार अपि के अ का लोप हो जाता है ।

इस श्लोक का भाव है कि भाग्य के चक्र को कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई नहीं । अतः अर्थापत्ति अलङ्कार है । पूर्वार्द्ध विशेष का सामान्य उत्तरार्द्ध के द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

इस भाव की और सूक्तियाँ इस प्रकार हैं ।

(क) अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र । (शाकु० १।१५)

(ख) दैवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या । (मृच्छ०)

(ग) यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः । (भर्तृहरि)

(घ) नियतिः केन लङ्घ्यते । (काव्यादर्श २–११७)

यहाँ प्रयुक्त इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥ ४ ॥

अन्वयः—बाल्ये, बालेन, पीडितः, पाणिः, न, प्रमाणीकृतः; न, अहम्, न, जनकः, न, अग्निः, न तु, वृत्तिः, न, सन्ततिः ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—बाल्ये=बाल्यावस्था में, बालेन=बालक राम के द्वारा, पीडितः=पकड़ा गया, पाणिः=हाथ, न=नहीं, प्रमाणीकृतः=प्रमाण माना गया । न=न, अहम्=

---

१. नानुवृत्तिः २. स्मारितास्मि ।

पृथिवी—हे भगवती भागीरथी, आपके रामभद्र के लिये यह सब (नृशंस कर्म भी) ठीक ही है।

बाल्यावस्था में बालक (राम) के द्वारा (सीता का) पाणिग्रहण भी प्रमाण नहीं माना गया, न मैं, न जनक, न अग्नि, न सीता का पातिव्रत्याचरण और न वंश अथवा सीता की गर्भस्थ सन्तति ही प्रमाणरूप में विचारी गई ॥ ५ ॥

विशेष--पीडितः पाणिः--विवाह में पाणिग्रहण संस्कार होता है। वर कन्या का हाथ पकड़ता है। उस दिन से कन्या का सारा भार वर के कन्धे पर आ जाता है। सीता-त्याग के समय राम ने इसका भी विचार नहीं किया।

नाहं न जनकः--राम ने यह भी नहीं सोचा कि पृथिवी माता की पवित्र सन्तान अथवा महाज्ञानी जनक की पुत्री सीता का परित्याग इन दोनों का अपमान होगा। जो कथमपि उचित नहीं है।

नाग्निः—अग्नि को साक्षी रखकर विवाह किया जाता है। पृथिवी के कहने का भाव यह है कि राम ने उसकी भी चिन्ता न की।

वृत्तिः सन्ततिः--सीता की पवित्रता एवं गर्भस्थ शिशुओं की परवाह भी राम ने न की ;

सीता--हा आर्यपुत्र, (क्या आप मुझे) याद करते हैं ?

पृथिवी--ओह, तुम्हारा (अब) आर्यपुत्र (अर्थात् पतिदेव) कौन है ?

सीता--(लज्जापूर्वक आँसू बहाती हुई) माँ (आप) ठीक ही कह रही हैं।

राम--माँ पृथिवी, मैं ऐसा ही हूँ।

मैं, न=न, जनकः=जनक, न=न, अग्निः=अग्नि, न तु=न तो, वृत्तिः=चरित्र, न=न, सन्ततिः=सन्तान, (प्रमाणीकृतः=प्रमाणरूप में स्वीकार किया गया है) ॥ ५ ॥

टीका—न प्रमाणीकृत इति। बाल्ये=शैशवे, बालेन = बालकेन रामेण, पीडितः=विवाहसंस्कारे गृहीतः, पाणिः=करः, न प्रमाणीकृतः=प्रमाणरूपेण न गृहीतः; नाहम्=नाहं पृथिवीत्यर्थः, न जनकः=न च विदेहराजः, नाग्निः=न वह्निः, न तु=न च, वृत्तिः=सीतायाः पातिव्रत्याचरणम्, न सन्ततिः=न तु वंशः, सीतागर्भस्थसन्ततिरित्यपि ज्ञेयम्, प्रमाणीकृतः, सीतापरित्यागकाले एतेषु सर्वेषु तथ्येषु एकमपि तथ्यं न विचारितम्।

अत्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५ ॥

टिप्पणी—पीडितः-- √पीड् + क्त + विभक्तिः।

यहाँ पर प्रस्तुत पाणिपीडन, जनक आदि का 'प्रमाणीकृतः' इस एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है। छन्द—है अनुष्टुप् ॥ ५ ॥

गङ्गा--[1]भगवति वसुन्धरे ! शरीरमसि संसारस्य । तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि ?

घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि-
र्लङ्काद्वीपे कथमिव जनस्तामिह श्रद्दधातु ? ।
इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः
कृत्स्नो लोकस्तदिह[2] विषमे किं स वत्सः करोतु ? ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः—अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु[3] ।

शब्दार्थः—असंविदाना=न जानती हुई, जामात्रे=दामाद पर, कुप्यसि=कोप कर रही हो ॥

टीका--भागीरथीति । असंविदाना—न संविदाना=जानती असंविदाना=अजानती, इव=यथा, जामात्रे=पुत्रीभर्त्रे, कुप्यसि=क्रुध्यसि । 'कुप्यसी'ति क्रियापदेन योगे 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोप' इति चतुर्थी । सीतायाः परित्यागे रामस्य कोऽप्यपराधो नास्तीति भावः ॥

टिप्पणी--संविदाना--सम् + √विद् + शानच् + विभक्तिः ।

जामात्रे--क्रुधद्रुहेर्ष्या०(१।४।३७) से क्रुध् के योग में चतुर्थी होती है । अतः जामात्रे में चतुर्थी विभक्ति आई है ॥

अन्वयः - लोके, घोरम्, अयशः, विततम्; च, या, लंकाद्वीपे, वह्नौ, विशुद्धिः, (आसीत्), ताम्, इह, कः, जनः, कथमिव, श्रद्धातु; इक्ष्वाकूणाम्, इदम्, कुलधनम्, (अस्ति), यत्, कृत्स्नः, लोकः, समाराधनीयः; तत्, इह, विषमे, सः, वत्सः, किम्, करोतु ॥ ६ ॥

शब्दार्थः लोके=संसार में, घोरम् = घोर, भयंकर, अयशः=अपयश, विततम्= फैल गया था; च=और, या=जो, लंकाद्वीपे=लंकाद्वीप में, वह्नौ=अग्नि में, विशुद्धिः= परीक्षा, (आसीत्=हुई थी), ताम्=उसको, इह=यहाँ, जनः=लोग, कथमिव=कैसे, श्रद्धधातु=विश्वास करें; इक्ष्वाकूणाम्=इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का, इदम् = यह, कुलधनम्=वंश-परम्परा से प्राप्त धन, (अस्ति=है), यत्=कि, कृत्स्नः=सारी, समूची; लोकः=प्रजा, समाराधनीयः=प्रसन्न रक्खी जाय । तत्=तो, इह=इस, ऐसी, विषमे= विकट परिस्थिति में, सः = वह, वत्सः=बालक, किम्=क्या, करोतु=करे ? करता ? ॥ ६ ॥

---

१. प्रसीद भगवति, २. तदति०, तमसि, तदतिगहनं ३. भूतेषु, सत्त्वेषु विशेषतो गङ्गा । तदयमञ्जलिस्ते ।

भागीरथी—देवी पृथिवी, आप संसार की शरीररूप हो। अतः अनजान की भाँति क्यों अपने दामाद (राम) पर नाराज हो रही हो ?

संसार में (राम का) घोर अपयश फैल गया था और लंकाद्वीप में (सीता की) जो अग्नि-परीक्षा हुई थी, उस पर यहाँ लोग कैसे विश्वास करें ? इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओं का वंश–परम्परा से प्राप्त यह धन है कि—"सारी प्रजा प्रसन्न रक्खी जाय।" तो ऐसी विकट परिस्थिति में वह बालक (राम) क्या करता ? ॥६॥

लक्ष्मण—प्राणियों के विषय में देवताओं का आन्तरिक-भाव-ज्ञान निर्बाध हुआ करता है।

विशेष—लक्ष्मण के कहने का भाव यह है कि—देवता लोग दूसरे के हृदय के भावों को भली-भाँति जान लेते हैं। यही कारण है कि गंगा राम की विवशता को समझती हैं।

टीका—घोरमिति। लोके=जगति, घोरम्=भयङ्करम्, अयशः=अकीर्तिः, विततम्=प्रसृतम्, आसीदिति शेषः; च=अपि च, लङ्काद्वीपे=लङ्कानाम्नि द्वीपे, वह्नौ=अग्नौ, या विशुद्धिः=परीक्षणेन शुद्धता, आसीदिति योज्यम्; ताम्=तादृशीं विशुद्धिमित्यर्थः, इह=अत्रोत्तरे भारते, अयोध्यायां वा, जनः=लोकः, कथमिव=केन प्रकारेण, श्रद्दधातु=विश्वसितु ? इक्ष्वाकूणाम्=इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां नृपाणाम्, इदम्=एतत्, वक्ष्यमाणमिति यावत्, कुलधनम्=वंशपरम्पराप्राप्तं द्रविणम्, यत् कृत्स्नः=समग्रः, लोकः=प्रजावर्गः, समाराधनीयः=अनुरञ्जनीयो भवति; तत्=तस्मात्, इह=अस्मिन्, विषमे=घोरे काले, विषमायां परिस्थितौ वा, सः=तादृशः, वत्सः=बालको रामभद्रः, किं करोतु=किं विदधातु ? सीतापरित्याग विना नासीदन्य उपायो लोकानुरञ्जनस्य। अतो रामस्य नासीत् कोऽपि दोषः। अत्र पर्यायोक्तमलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ६ ॥

टिप्पणी—विततम्—वि+√तन्+क्त+विभक्तिः। यहाँ न् का लोप हो जाता है। **विशुद्धिः**—वि+√शुध्+क्तिन्+विभक्तिः। **समाराधनीयः**—सम्+आ+√राध्+अनीयर्+विभक्तिः।

किं करोतु—बेचारा बालक राम क्या करता ? अर्थात् सीता-परित्याग के अतिरिक्त कोई भी मार्ग राम के सामने न था।

इसी उक्त कथन के द्वारा प्रकारान्तर से यह कहा गया है कि राम को विवश होकर सीता-परित्याग करना पड़ा। प्रकारान्तर से उसी अर्थ को बतलाने से पर्यायोक्त अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण—मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—अव्याहतान्तःप्रकाशाः=निर्बाध परोक्षज्ञानवाले, जिनका ज्ञान निर्बाध

गङ्गा--तथाप्येष तेऽञ्जलिः ।

रामः--अम्ब ! अनुवृत्तस्त्वया [1]भगीरथकुले प्रसादः ।

पृथिवी--नित्यं प्रसन्नास्मि तव[2]। किं त्वसावापातदुःसहः स्नेहसंवेगः । न पुनर्न जानामि सीतास्नेहं रामभद्रस्य ।

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय सः ।
लोकोत्तरेण [3]सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति ॥ ७ ॥

रामः--सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु ।

सीता--(रुदती कृताञ्जलिः ।) नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा । (णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अम्बा ।)

गङ्गा--किं ब्रवीषि ? अविलीना वत्से ! संवत्सरसहस्राणि[4] भूयाः ।

पृथिवी--वत्से ! अवेक्षणीयौ ते पुत्रौ[5] ।

सीता--किमेताभ्यामनाथाभ्याम् ? (किं एहिं अणाहेहिं ?[6])

होता है ऐसे, प्राणियों के भीतरी भावों को भी जानने वाले, सत्त्वेषु=प्राणियों के विषय में । अनुवृत्तः=चालू रक्खा है, पुनः प्रदर्शित किया है, प्रसादः=कृपा, अनुग्रह । आपात-दुःसहः=प्रारम्भिक क्षणों में दुःसह, स्नेहसंवेगः =प्रेम के कारण उत्पन्न क्षोभ ॥

टीका--लक्ष्मण इति । अव्याहतान्तःप्रकाशाः--अव्याहतः = अकुण्ठितः, अप्रतिबन्ध इति यावत्, अन्तःप्रकाशः=अन्तःकरणज्ञानरूपः, परोक्षज्ञानरूपो वा, यासां तथोक्ताः, देवताः=देवाः, सत्त्वेषु=प्राणिषु । अनुवृत्तः=पुनः प्रदर्शितः, प्रसादः=अनुग्रहः । आपातदुःसहः--आपाते=प्रारम्भिके काले दुःसहः=सोढुमशक्यः, स्नेहसंवेगः-स्नेहस्य=प्रेम्णः संवेगः=त्वरा, प्रवाह इति यावत् ॥

टिप्पणी--अव्याहत०--नञ्+वि+आ+√हन्+क्त+विभक्तिः । अनुवृत्तः--अनु√वृत्+क्त+विभक्तिः । प्रसन्ना--प्र+√सद्+क्त+टाप्+विभक्तिः ॥

अन्वयः--सः, दह्यमानेन, मनसा, दैवात्, वत्साम्, विहाय, लोकोत्तरेण, सत्त्वेन, च, प्रजापुण्यैः, जीवति ॥ ७ ॥

शब्दार्थः--सः=वह (राम), दह्यमानेन=जलते हुए, मनसा=हृदय से, दैवात्=दुर्भाग्य से, भाग्य के कारण, वत्साम्=बेटी (सीता) को, विहाय=छोड़ कर, लोको-

---

१. भगीरथगृहे, २. वः, ३. धैर्येण, ४. पुस्तकान्तरेषु 'किमन्यद् ब्रवीतु ?' इति रामोक्त्यनन्तरं 'शान्तम्, अविलीना वत्सर...' इति भागीरथ्युक्तिरूपं पाठान्तरं वर्तते, ५. 'अपि रक्षणीयौ ते पुत्रकौ' इति पाठान्तरम् ६. 'अणाधम्हि । (अनाथास्मि) इति पाठान्तरम् ।

गङ्गा—फिर भी मैं आप से हाथ जोड़ती हूँ।

राम—हे माता जी, आपने भगीरथ के कुल पर पुनः कृपा प्रदर्शित की है।

पृथिवी—हे देवी भागीरथी, मैं तुम पर सर्वदा प्रसन्न हूँ। किन्तु प्रेम के कारण उत्पन्न यह क्षोभ प्रारम्भिक क्षणों में दुःसह हुआ करता है। सीता के ऊपर राम के स्नेह को मैं नहीं जानती हूँ—ऐसी बात नहीं है।

वह (राम) जलते हुए हृदय से दुर्भाग्यवश बेटी (सीता) का परित्याग कर अलौकिक धैर्य से और प्रजाओं के पुण्यों से ही जी रहा है ॥ ७ ॥

राम—गुरुजन सन्तान-तुल्य हम लोगों पर कृपालु हैं।

सीता—(रोती हुई हाथ जोड़कर) माँ पृथिवी, मुझे अपने अङ्गों में विलीन कर लो।

गङ्गा—क्या कह रही हो? बेटी, हजारों वर्ष तक (इसी प्रकार) बिना विलीन हुए बनी रहो।

पृथिवी—बेटी, तुम्हें इन दोनों पुत्रों की देखभाल भी करनी है।

सीता—क्या इन अनाथ पुत्रों के साथ (जीवित रहना है) ?

त्तरेण=अलौकिक, लोकातिशायी, सत्त्वेन=धैर्य के साथ, च=और, प्रजापुण्यैः=प्रजाजनों के पुण्यों से, जीवति=जी रहा है ॥ ७ ॥

टीका—दह्यमानेनेति। सः=रामभद्र इत्यर्थः, दैवात्=भाग्यवशात्, दह्यमानेन=सन्तप्यमानेन, मनसा=हृदयेन, वत्साम्=पुत्रीं सीताम्, विहाय=त्यक्त्वा, लोकोत्तरेण=लोकश्रेष्ठेन, अलौकिकेनेति भावः, सत्त्वेन=धैर्येण, च=तथा, प्रजापुण्यैः—प्रजानाम्=प्रकृतीनां पुण्यैः=सुकृतैः, जीवति=प्राणान् धारयति। अन्यथाऽवश्यमेव सीतावियोग-वह्निना स दग्धो भवेदित्यभिप्रायः, अत्रासङ्गतिरलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥७॥

टिप्पणी—दह्यमानेन—√दह्+कर्मवाच्ये शानच्+विभक्तिः। **विहाय**—वि+√हा+ल्यप्।

इस श्लोक में—राम प्रजा के पुण्यों से जीवित हैं। कारणभूत पुण्य प्रजा में है और कार्यभूत जीवन राम में। अतः कारण और कार्य के भिन्न देश में होने से असंगति अलङ्कार है ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—गर्भरूपेषु=सन्तान-तुल्य। अवेक्षणीयौ=पालनीय। सनाथत्वम्=सनाथता ॥

रामः--हृदय ! वज्रमसि[१]।

गङ्गा--कथं वत्सौ सनाथावप्यनाथौ ?[२]

सीता--कीदृशं मे अभाग्यायाः सनाथत्वम् ? (कीरिसं मे अभग्गाए सणाहत्तम[3]) ?

देव्यौ—

जगन्मङ्गलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे ?।
आवयोरपि यत्सङ्गात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते ॥ ८ ॥

लक्ष्मणः –आर्य ! श्रूयताम् ।

रामः--लोकः शृणोतु ।

(नेपथ्ये कलकलः ।)

रामः--अद्भुततरं किमपि ।

सीता--किमित्या[४]बद्धकलकलं प्रज्वलितमन्तरिक्षम् ? (किंत्ति आवद्धकलकलं पज्जसिअं अन्तरिक्खम् ?)

देव्यौ--ज्ञातम् ।

टीका—राम इति । गर्भरूपेषु–गर्भाणाम्=भ्रूणानामिव रूपम्=स्वरूपं येषां तेषु, अपत्यतुल्येष्वित्यर्थः, अविलीना=जीविता । अवेक्षणीयौ=पालनीयौ । सनाथत्वम्= स्वामियुक्तता ॥

टिप्पणी--रुदती— √रुद्+शतृ+ङीप्+विभक्तिः । **अविलीना**—नञ्+वि+ √ली+क्त+विभक्तिः । त को न हो जाता है । **अवेक्षणीयौ**—अव= √ईक्ष्+अनीयर्+विभक्तिः ॥

अन्वयः--त्वम्, जगन्मङ्गलम्, आत्मानम्, कथम्, अवमन्यसे; यत्सङ्गात्, आवयोः, अपि पवित्रत्वम्, प्रकृष्यते ॥ ८ ॥

शब्दार्थः--त्वम्=तुम, जगन्मङ्गलम्=संसार के लिये मङ्गलकारी, आत्मानम्= अपने आपको, कथम्=क्यों, अवमन्यसे=तिरस्कृत कर रही हो, अपमानित कर रही हो ? यत्सङ्गात्=जिसके संसर्ग के कारण, आवयोः=हम दोनों (गङ्गा और पृथिवी) की, अपि=भी, पवित्रत्वम्=पवित्रता, प्रकृष्यते=बढ़ रही है ॥८॥

---

१. 'वज्रमयमसि' इति पाठान्तरम् । २. 'कथं त्वं सनाथाप्यनाथा ?' इति पाठान्तरम् । ३. 'कीदिसं मम अभव्वाए सणाधत्तणं ? (कीदृशं ममाभव्यायाः सनाथत्वम् ?) इति पाठान्तरम्, ४. किमित्यन्तरिक्षं प्रज्वलति ।

राम--हृदय, वज्र हो।

भागीरथी--सनाथ होते हुए भी ये दोनों बच्चे अनाथ कैसे हैं ?

सीता--मुझ अभागिन की कैसी सनाथता ?

दोनों देवियाँ—(बेटी सीता) तुम संसार के लिये मङ्गलकारी अपने आपको तिरस्कृत कर रही हो ? क्योंकि (तुम्हारे) संसर्ग के कारण हम दोनों (गंगा और पृथिवी) की भी पवित्रता बढ़ रही है ॥८॥

लक्ष्मण--आर्य, सुनिये।

राम--संसार सुने।

(पर्दे के पीछे कोलाहल होता है)।

राम--यह कुछ अधिक आश्चर्य की बात है।

सीता--क्यों इस प्रकार से आकाश कोलाहल से परिपूर्ण और प्रकाशमय हो रहा है ?

दोनों देवियाँ—मालूम हो गया।

टीका--**जगन्मङ्गलमिति**। हे सीते, त्वम्=भवती, जगन्मङ्गलम्-जगताम्=लोकानां मङ्गलम्=कल्याणकरम्, आत्मानम्=स्वम्, केन प्रकारेण, अवमन्यसे=तिरस्करोषि ? यत्सङ्गात्-यस्याः=तवेत्यर्थः सङ्गात्=संसर्गात्, आवयोः=गङ्गापृथिव्योः, अपि=च, पवित्रत्वम्=शुद्धत्वम्, प्रकृष्यते=प्रकर्षत्वमवाप्नोति। अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥८॥

टिप्पणी--इस श्लोक में गङ्गा और पृथिवी की पवित्रता से भी अधिक सीता की पवित्रता का वर्णन किया गया है। अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥८॥

शब्दार्थः--अद्भुततरम्=अधिक आश्चर्यजनक। आबद्धकलकलम्=कोलाहल से परिपूर्ण, अन्तरिक्षम्=आकाश ॥

टीका—**राम इति**। अद्भुततरम्=अत्याश्चर्यजनकम्। आबद्धकलकलम्—आबद्धः=उत्पन्नः कलकलः=कोलाहलो यस्मात्तत्, अन्तरिक्षम्=आकाशः ॥

टिप्पणी -लोकः शृणोतु--इस कथन के द्वारा राम ने जनता के ऊपर अपना आक्रोश व्यक्त किया है। उनका भाव यह है कि—जिस सीता को लोग रावण की लंका में रहने के कारण अपवित्र समझते हैं उसके संसर्ग से गङ्गा और पृथिवी भी अपने को पवित्र मानती हैं।

आबद्धः--आ=√बन्ध्+क्त+विभक्तिः। **प्रज्वलितम्**--प्र+√ज्वल्+क्त+विभक्तिः ॥

कृशाश्वः कौशिको राम इति येषां गुरुक्रमः ।
प्रादुर्भवन्ति तान्येव शस्त्राणि सह जृम्भकैः ॥ ९ ॥

(नेपथ्ये ।)

देवि ! सीते ! नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हि ते ।
[1]आलेख्यदर्शनादेव ययोर्दाता रघूद्वहः ॥ १० ॥

सीता--दिष्ट्या अस्त्रदेवता एताः । आर्यपुत्र ! अद्याऽपि ते प्रसादाः परिस्फुरन्ति । (दिट्ठिआ अत्थदेवदाओ एदाओ । अज्जउत्त ! अज्जावि दे पसादा पडिप्फुरन्दि ।)

लक्ष्मणः--उक्तमासीदार्येण 'सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्तो'ति । देव्यौ—

नमो वः परमास्त्रेभ्यो धन्याः स्मो वः परिग्रहात् ।
[2]काले ध्यातैरुप[3]स्थेयं वत्सयोर्भद्रमस्तु वः ॥ ११ ॥

अन्वयः--कृशाश्वः, कौशिकः, रामः, इति, येषाम्, गुरुक्रमः, (वर्तते); तानि, एव, शस्त्राणि, जृम्भकैः, सह, प्रादुर्भवन्ति ॥ ९ ॥

शब्दार्थः--कृशाश्वः=कृशाश्व, कौशिकः=विश्वामित्र, रामः = राम, इति=यह, येषाम्=जिनकी, गुरुक्रमः=गुरु-परम्परा, (वर्तते=है); तानि=वे, एव=ही, शस्त्राणि=शस्त्र, जृम्भकैः=जृम्भक अस्त्रों के, सह=साथ, प्रादुर्भवन्ति=प्रकट हो रहे हैं ॥ ९ ॥

टीका--कृशाश्व इति । कृशाश्वः=तन्नामा कश्चिदृषिः, कौशिकः=विश्वामित्रः, रामः = रामचन्द्रः, इति=एवम्, येषाम्=शस्त्राणाम्, गुरुक्रमः = आचार्य-परम्परा, अस्तीति शेषः; तान्येव=तादृशानि एव, शस्त्राणि=आयुधानि, जृम्भकैः=तन्नामकैः शस्त्रैः, सह = साकम्, प्रादुर्भवन्ति=प्रकटीभवन्ति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ९ ॥

टिप्पणी--कृशाश्व--परम्परा महर्षि कृशाश्व को जृम्भक अस्त्रों का आविष्कारक मानती है । सम्भवतः ये जिस घोड़े पर चढ़ते थे वह दुर्बल था । अतः इन्हें कृशाश्व कहा जाता था ।

कौशिकः--कुशिकस्य अपत्यं पुमान् कौशिकः, कुशिक+अण्+विभक्त्यादिः । महर्षि कृशाश्व ने विश्वामित्र को जृम्भकास्त्रों की शिक्षा प्रदान की थी । विश्वामित्र से इन अस्त्रों की शिक्षा राम को मिली । यही जृम्भक अस्त्रों की गुरुपरम्परा है ॥९॥

अन्वयः--हे देवि सीते, ते, नमः, अस्तु; हि, ते, पुत्रकौ, नः, गतिः, आलेख्यदर्शनात्, एव, रघूद्वहः, ययोः, दाता, (अस्ति) ॥ १० ॥

शब्दार्थः—हे देवि सीते=हे देवी सीता, ते=तुम्हें, नमः=नमस्कार, अस्तु=हो, है; हि=क्योंकि, ते=तुम्हारे, पुत्रकौ=दोनों पुत्र, नः=हमारे, गतिः=आश्रय हैं;

---

१. आलेख्यदर्शने देवो यथाह रघुनन्दनः, २. अनुध्यातैः, ३. उपेतव्यम् ।

कुशाश्व, विश्वामित्र और राम--यह जिनकी गुरु-परम्परा है, वे ही शस्त्र जृम्भक अस्त्रों के साथ प्रकट हो रहे हैं ।। ९ ।।

(पर्दे के पीछे)

हे देवी सीता, तुम्हें नमस्कार है, क्योंकि तुम्हारे दोनों पुत्र हमारे आश्रय हैं। चित्र-दर्शन के काल से ही रघुवंश शिरोमणि (राम) ने हमें उन दोनों को प्रदान कर दिया है ।। १० ।।

सीता—सौभाग्य से ये अस्त्र-देवता हैं। हा आर्यपुत्र, आज भी आपके अनुग्रह प्रकट हो रहे हैं।

लक्ष्मण—आर्य, आपके द्वारा कहा गया था कि ये अस्त्र तुम्हारी सन्तान को भी पूर्णरूप से प्राप्त होंगे।

दोनों देवियाँ--श्रेष्ठ अस्त्ररूपी आप लोगों को (अर्थात् जृम्भकादि अस्त्रों के अधिष्ठाता देवों को) प्रणाम है। आप लोगों को ग्रहण करने से हम धन्य हो गये हैं। यथा समय ध्यान करने पर इन दोनों बालकों (लव और कुश) के पास उपस्थित हो जाया करें। आप लोगों का कल्याण हो ।। ११ ।।

आलेख्यदर्शनात्=चित्रदर्शन के काल से, एव=ही रघूद्वहः=रघुवंशशिरोमणि (राम), ययोः=जिन दोनों के लिये, दाता=दाता हैं ।। १० ।।

टीका—हे देवि सीते=हे भगवति जानकि, ते=तुभ्यम्, नमः=प्रणामः, अस्तु=भवतु। हि=यतः, ते=तव, पुत्रकौ=अनुकम्पितौ तनयौ, 'अनुकम्पायां कन्' इति कन् प्रत्ययः, नः=अस्माकम्, गतिः=आश्रयभूतौ; आलेख्यदर्शनात्--आलेख्यस्य=चित्रस्य दर्शनात्=अवलोकनात्, आलेख्यदर्शनञ्च प्रथमाङ्के संवृत्तमिति; एवेति निर्धारणे, रघूद्वहः रघूणाम्=रघुवंशानाम् उद्वहः=श्रेष्ठः, ययोः=त्वत्पुत्रयोः, त्वत्पुत्राभ्यामिति भावः, 'कर्मादीनामपि' सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव' ऐति सम्प्रदानार्थे षष्ठी; दाता=दायकः, अस्तीति क्रियाशेषः। अनुष्टुप् छन्दः ।। १० ।।

टिप्पणी—**ते नमः**—यहाँ नमः के कारण ते=तुभ्यम् में चतुर्थी है। यह युष्मद् के चतुर्थी एकवचन का रूप है ।। १० ।।

शब्दार्थः—प्रसादाः=अनुग्रह, परिस्फुरन्ति=प्रकट हो रहे हैं, चमक रहे हैं। सर्वथा=पूर्ण रूप से, त्वत्प्रसूतिम्=तुम्हारी सन्तान को, उपस्थास्यन्ति=प्राप्त होंगे ।।

टीका—सीतेति। अस्त्रदेवताः=अस्त्राधिष्ठात्र्यो देवताः, प्रसादाः=अनुग्रहाः, परिस्फुरन्ति=प्रकाशन्ते। सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, त्वत्प्रसूतिम्—तव प्रसूतिम्=सन्ततिम्, उपस्थास्यन्ति=प्राप्तानि भविष्यन्ति ।।

अन्वयः—परमास्त्रेभ्यः, वः, नमः; वः, परिग्रहात्, धन्याः, स्मः; काले, ध्यातैः, उपस्थेयम्; वः, भद्रम्, अस्तु ।। ११ ।।

रामः--क्षुभिताः कामपि दशां कुर्वन्ति मम संप्रति[1]।
विस्मयानन्दसंदर्भजर्जराः करुणोर्मयः ।। १२ ।।

देव्यौ--मोदस्व वत्से ! मोदस्व। रामभद्रतुल्यौ ते पुत्रकाविदानीं संवृत्तौ।

सीता--भगवत्यौ ! क एतयोः क्षत्रियोचितविधिं कारयिष्यति ? (भअवदीओ ! को एदाणं खत्तिओइदविहिं कारइस्सदि ?)

रामः--

एषा वसिष्ठ[2]शिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी।
कष्टं सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति ।। १३ ।।

शब्दार्थः--परमास्त्रेभ्यः=श्रेष्ठ अस्त्ररूपी, वः=आप लोगों को, नमः=प्रणाम है; वः=आप लोगों को, परिग्रहात्=ग्रहण करने से, धन्याः=धन्य, कृतकृत्य, स्मः= हैं; काले=यथासमय, ध्यातैः=ध्यान करने पर, वत्सयोः=इन दोनों बालकों के पास, उपस्थेयम्=उपस्थित हो जाया करें; वः=आप लोगों का, भद्रम्=कल्याण, अस्तु= हो ।। ११ ।।

टीका–नम इति। परमास्त्रेभ्यः=जृम्भकादिश्रेष्ठास्त्रेभ्यः, वः=युष्माकम्, नमः =प्रणामः, अस्तु; वः=युष्माकम्, परिग्रहात्=स्वीकरणात्, धन्याः=कृतकृत्याः, स्मः=भवामः। काले=समये, ध्यातैः=चिन्तितैः, युष्माभिरिति शेषः, वत्सयोः=पुत्रयोः, कुशलवयोरित्यर्थः, उपस्थेयम्=पार्श्वे आगन्तव्यम्। वः=युष्माकम्, भद्रम्=कुशलम्, अस्तु=भवेत्। अनुष्टुप् छन्दः ।। ११ ।।

टिप्पणी—ध्यातैः—√ध्या—(ध्यै)+क्त+तृतीयाबहुवचने विभक्तिः। उपस्थेयम्—उप+√स्था+यत् (य)+विभक्तिः ।। ११ ।।

अन्वयः—संप्रति, क्षुभिताः; विस्मयानन्दसंदर्भजर्जराः, करुणोर्मयः, मम, काम्, अपि, दशाम्, कुर्वन्ति ।। १२ ।।

शब्दार्थः—सम्प्रति=इस समय, क्षुभिताः=क्षोभयुक्त, विस्मयानन्दसन्दर्भ-जर्जराः=आश्चर्य और आनन्द के संयोग से जर्जर, करुणोर्मयः=शोक (रूपी सागर) की लहरियाँ, मम=मेरी, काम् अपि=कुछ अनिर्वचनीय सी, दशाम्=अवस्था को, कुर्वन्ति=कर रही हैं ।। १२ ।।

टीका--क्षुभिता इति। सम्प्रति=अधुना, क्षुभिताः=क्षोभं प्राप्ताः, चञ्चला इति यावत्, विस्मयानन्दसंदर्भ-जर्जराः--विस्मयः=आश्चर्यम् आनन्दः=सुखं तयोः आश्चर्यहर्षयोरित्यर्थः, सन्दर्भेण=संमिश्रणेन जर्जराः=विशीर्णाः, करुणोर्मयः—

---

१. सांप्रतम्, २. वसिष्ठगुमानाम्।

राम—सम्प्रति क्षोभ-युक्त, आश्चर्य और आनन्द के संयोग से जर्जर, शोक (रूपी सागर) की लहरियाँ मेरी कुछ अनिर्वचनीय-सी, अवस्था कर रही हैं ॥ १२ ॥

दोनों देवियाँ—प्रसन्न रहो पुत्री प्रसन्न रहो। अब तुम्हारे दोनों पुत्र रामभद्र के सदृश हो गये हैं।

सीता—देवियों, कौन इन दोनों (बालकों) का क्षत्रियोचित संस्कार करवायेगा ?

राम—वसिष्ठ के शिष्य रघुवंशियों के वंश को आनन्दित करने वाली यह सीता भी (अपने) बालकों के संस्कार करने वाले आचार्य को नहीं पा रही है, यह कितने कष्ट की बात है ॥ १३ ॥

करुणस्य=सीतावियोगजन्यशोकसिन्धोः = उर्मयः-लहर्यः, मम = रामस्य, कामपि= अनिर्वचनीयामित्यर्थः, दशाम्=अवस्थाम्, कुर्वन्ति=विदधति। अत्र रूपकमलङ्कारः। अनुष्टुप छन्दः ॥ १२ ॥

टिप्पणी—क्षुभिताः= √क्षुभ्+क्त+विभक्तिः।

इस श्लोक में करुणोर्मयः में करुण-रूपी सिन्धु अर्थ होने से रूपक अलंकार हैं।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥ १२ ॥

अन्वयः—वशिष्ठशिष्याणाम्, रघूणाम्, वंशनन्दिनी, एषा, सीता, अपि, सुतयोः, संस्कर्तारम्, न, विन्दति, (इति), कष्टम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—वशिष्ठशिष्याणाम्=वसिष्ठ के शिष्य, रघूनाम्=रघुवशियों के, वंशनन्दिनी=वंश को आनन्दित करने वाली, एषा=यह, सीता=जानकी, अपि=भी, सुतयोः=बालकों के, संस्कर्तारम्=संस्कार करने वाले आचार्य को, न=नहीं, विन्दति= प्राप्त कर रही है, (इति=यह), कष्टम्=कष्ट है, दुःख है ॥ १३ ॥

टीका—एषेति। वसिष्ठशिष्याणाम् = वशिष्ठोपदेश्यानाम्, रघूणाम् = रघुवंशे जातानां नृपाणाम्, वंशनन्दिनी—वंशं=कुलं नन्दयति=आनन्दयतीति वंशनन्दिनी, रघुकुलानन्दहेतुरित्यर्थः, एषा=इयम्, सीता=जानकी, अपि=च, सुतयोः=पुत्रयोः, संस्कर्तारम्=उपनयनादिसंस्कारकर्तारमाचार्यम्, न=नहि, विन्दति=प्राप्नोति; (इति= एतत्), कष्टम्=दुःखदमस्तीति शेषः। अनुष्टुप् छन्दः ॥

टिप्पणी—नन्दिनी- √नन्द्+णिच्+णिनिः+ङीप्+विभक्तिः। संस्कर्तारम्—सम्+ √कृ+=संस्कृ+तृच्+विभक्तिः।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥१३॥

गङ्गा--[1]भद्रे ! किं तवानया चिन्तया ? एतौ हि वत्सौ स्तन्यत्यागात्परेण भगवतो वाल्मीकेरर्पयिष्यामि ।[2]

[3]वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य संप्रति ।
स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति ।। १४ ।।
यथा वसिष्ठाङ्गिरसावृषिः प्राचेतसस्तथा ।
रघूणां जनकानां च वंशयोरुभयोर्गुरुः ।। १५ ।।

रामः—सुविचिन्तितं भगवत्या ।

लक्ष्मणः—आर्य ! सत्यं विज्ञापयामि । तैस्तैरुपायैरिमौ वत्सौ कुशलवावुत्प्रेक्षे ।

एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ [4]प्राप्तप्राचेतसावुभौ ।
आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ ।। १६ ।।

अन्वयः--सम्प्रति, हि वसिष्ठः, एव, रघुवंशस्य, आचार्यः, (अस्ति); सः, एव, च, अनयोः, ब्रह्मक्षत्रकृत्यम्, करिष्यति ।। १४ ।।

यथा, रघूणाम्, च, जनकानाम्, उभयोः, वंशयोः, वसिष्ठाङ्गिरसौ, (गुरू, स्तः), तथा, प्राचेतसः, ऋषिः, गुरुः ।। १५ ।।

शब्दार्थः—सम्प्रति=इस समय, हि=तो, वसिष्ठः=वसिष्ठ, एव=ही, रघुवंशस्य=रघुवंश के, आचार्यः=आचार्य, गुरु, (अस्ति=हैं); सः=वह, एव=ही, च=यह पादपूर्ति के लिये आया है, अनयोः=इन दोनों बालकों के, ब्रह्म-क्षत्रकृत्यम्=ब्राह्मणोचित (वेदाध्ययनादि) और क्षत्रियोचित (धनुर्वेदाध्ययनादि) कार्य, करिष्यति=करेंगे ।। १४ ।।

यथा=जिस प्रकार, रघूणाम्=रघुवंशी, च=और, जनकानाम्=जनकवंशी, उभयोः=इन दोनों, वंशयोः=वंशों के राजाओं के, वशिष्ठाङ्गिरसौ=वसिष्ठ और शतानन्द (गुरू=गुरु, स्तः=हैं), तथा=उसी प्रकार, प्राचेतसः=वाल्मीकि, ऋषिः=ऋषि, गुरुः=गुरु हैं ।। १५ ।।

टीका—वशिष्ठ इति । सम्प्रति=अधुना, हि=तु, वसिष्ठः=तन्नामा ऋषिरेव, रघुवंशस्य=रघुकुलस्य, आचार्यः=गुरुः, अस्तीति शेषः, स एव=गुरुर्वसिष्ठ एव, चेति-पादपूर्तौ, अनयोः=सद्योजातयोरेतयोः=ब्रह्मक्षत्रकृत्यम्=ब्राह्मणक्षत्रियकर्म, ब्राह्मणत्वोचितं वेदाध्यापनं क्षत्रियत्वोचितं धनुर्वेदाध्यापनं चेति भावः, करिष्यति=विधास्यति । कालान्तर इति शेषः । बहुषु पुस्तकेषु नायं श्लोकः । अनुष्टुप् छन्दः ।। १४ ।।

---

१. पुत्रि, २. स एतयोः क्षत्रकृत्यं करिष्यति, ३. क्वचिन्नास्त्ययं श्लोकः ।
४. जातौ-उभौ-प्राचेतसान्मुने । वीरौ प्राप्तसंस्कारौ ।

गङ्गा—भली बेटी, तुम्हें इसकी क्या चिन्ता है ? इन दोनों बालकों को दूध पीना छोड़ने के बाद मैं भगवान् वाल्मीकि को सौंप दूँगी।

इस समय तो वशिष्ठ ही रघुवंश के आचार्य हैं। वही इन दोनों बालकों के ब्राह्मणोचित (वेदाध्यापनादि) और क्षत्रियोचित (धनुर्वेदाध्यापनादि) कार्य करेंगे ॥ १४ ॥

जिस प्रकार रघुवंशी और जनकवंशी—इन दोनों वंशों के—राजाओं के वशिष्ठ और शतानन्द गुरु हैं, उसी प्रकार वाल्मीकि ऋषि (भी) गुरु हैं ॥ १५ ॥

राम—आपने बहुत ठीक सोचा है।

लक्ष्मण—पूज्य बड़े भैया, सच निवेदन करता हूँ कि विभिन्न (पाँच) कारणों से मैं इन दोनों बालकों को कुश और लव समझता हूँ।

क्योंकि (१) ये दोनों (जन्मजात) वीर हैं, (२) इन्हें जन्म से ही जृम्भक अस्त्र प्राप्त हैं, (३) ये महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में निवास कर रहे हैं, (४) आपके समान आकृति वाले हैं, और (५) आयु में बारह वर्ष के हैं ॥ १६ ॥

यथेति। यथा=येन प्रकारेण, रघूणाम्=रघुकुलजातानाम्, च=तथा, जनकानाम्=जनकवंशोत्पन्नानाम्, उभयोः=द्वयोः, वंशयोः=कुलयोः, वसिष्ठाङ्गिरसौ=ब्रह्मपुत्रशतानन्दौ, गुरू स्त इति शेषः। तथा=तेनैव प्रकारेण, प्राचेतसः—प्रचेतसोऽपत्यं पुमान् प्राचेतसः=वाल्मीकिः, ऋषिः=मुनिः, गुरुः=आचार्यः, भवतीति यावत्। अनुष्टुप् छन्दः ॥ १५ ॥

टिप्पणी—वसिष्ठाङ्गिरसौ—वसिष्ठ रघुकुल के गुरु हैं और गौतम पुत्र शतानन्द जनकवंश के गुरु हैं।

प्राचेतसः—उसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि भी उक्त दोनों कुलों के आचार्य होते हैं।

उक्त दोनों ही श्लोकों के छन्द अनुष्टुप् है ॥ १४–१५ ॥

अन्वयः—हि, एतौ उभौ, वीरौ, जन्मसिद्धास्त्रौ, प्राप्तप्राचेतसौ, आर्यतुल्याकृती, वयसा, द्वादशाब्दकौ, (स्तः) ॥ १६ ।

शब्दार्थः—हि=क्योंकि, एतौ=ये, उभौ=दोनों, वीरौ=वीर, जन्मसिद्धास्त्रौ=जन्म से ही जृम्भक अस्त्र प्राप्त हैं, प्राप्तप्राचेतसौ=महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में निवास कर रहे हैं, आर्यतुल्याकृती=आप के समान आकृति वाले हैं, वयसा=आयु में, द्वादशाब्दकौ=बारह वर्ष के हैं ॥ १६ ॥

टीका—एताऽविति। हि=यतः, एतौ=इमौ, अंगुल्यानिर्दिष्टावित्यर्थः, उभौ=द्वौ, वीरौ=जन्मना शूरौ, जन्मसिद्धास्त्रौ—जन्मनः=जन्मारभ्यैव सिद्धानि=प्राप्तानि

रामः—वत्सावित्येवाहं परिप्लवमानहृदयः प्रमुग्धोऽस्मि ।

पृथिवी—एहि वत्से ! पवित्रीकुरु रसातलम् ।

रामः—हा प्रिये ! लोकान्तरं गताऽसि ?

सीता—नयतु मामात्मनोऽङ्गे विलयमम्बा । न सहिष्यामीदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम् । (णेदु मं अत्तणो अङ्गेसु विलअं अम्बा। ण सहिस्सं ईरिसं जीअलोअस्स परिभवं अणुभविदुम् ।)

लक्ष्मणः किमुत्तरं स्यात् ?

पृथिवी—मन्नियोगतः स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व । परेण तु यथा रोचिष्यते तथा करिष्यामि ।

[1]गङ्गा—एवं [2]तावत् ।

(इति [3]निष्क्रान्ते देव्यौ सीता च ।)

रामः—कथं प्रतिपन्न एव तावत् । हा चारित्रदेवते ! लोकान्तरे पर्यवसिताऽसि ? (इति मूर्च्छति ।)

अस्त्राणि=जृम्भकादीनि ययोस्तौ तादृशौ, प्राप्तप्राचेतसौ—प्राप्तः=अधिगतः प्राचेतसः=वाल्मीकिर्याभ्यां तौ, आर्यतुल्याकृती—आर्येण=पूज्येन भवता तुल्या=समाना आकृतिः=आकारो ययोस्तौ, वयसा=आयुषा, द्वादशाब्दकौ=द्वादशवर्षीयौ, स्त इति शेषः । अत्रानुमानमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ।। १६ ।।

टिप्पणी—सुविचिन्तितम्—सु+वि+√चिन्त् णिच्+क्त+विभक्तिः ।

द्वादशाब्दकौ—द्वादश अब्दा ययोस्तौ । सीता का निर्वासन जब किया गया था उस समय उनके प्रसव का काल एकदम सन्निकट था । सीता का यह निर्वासन बारह वर्ष पूर्व हुआ था । अतः इससे भी प्रतीत होता है कि ये कुश और लव सीता-माता के ही पुत्र हैं ।

इस श्लोक में दोनों बालकों को कुश और लव मानने में पाँच हेतु दिये गये हैं । पाँच हेतुओं से अनुमान होने से यहाँ अनुमान अलङ्कार है ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ।। १६ ।।

शब्दार्थः—परिप्लवमानहृदयः=उद्वेलित मनवाला, प्रमुग्धः=मोहयुक्त । लोकान्तरम्=दूसरे लोक में । परिभवम्=तिरस्कारको, अपमानको । मन्नियोगतः=मेरे आदेश से, आदेशानुसार, स्तन्यत्यागम्=दूध छोड़ने तक ।

टीका—राम इति । परिप्लवमानहृदयः—परिप्लवमानम्=उद्वेलितं हृदयम्=चेतो यस्य तादृशः । प्रमुग्धः=मोहयुक्तः । रसातलम्—रसायाः=पृथिव्याः तलम्=अधो-

---

१. भागी०, २. नाम, ३. निष्क्रान्ता गङ्गापृथिवीसीताः ।

राम—ये दोनों (कुश और लव) मेरे पुत्र हैं, इसीलिये मेरा मन उद्वेलित हो गया है और मैं अत्यन्त मोहित हो गया हूँ ।

पृथिवी—आओ बेटी रसातल (१–भूतल, २–पाताल) को पवित्र करो ।

राम—हाय प्रिय सीता, तुम पाताल में चली गई हो ।

विशेष—राम ने रसातल का अर्थ पाताल समझ कर ऐसा कहा है ।

सीता—मां तुम मुझे अपने अङ्गों में विलीन कर ले । मैं संसार के ऐसे अपमान को सहन नहीं कर सकती हूँ ।

लक्ष्मण—(देखना है इस पर पृथिवी का) क्या उत्तर होगा ?

पृथिवी—मेरे आदेश से दूध छोड़ने तक इन दोनों पुत्रों की देख-भाल करो । बाद में तुझे जैसा रुचेगा वैसा मैं करूँगी ।

गङ्गा—ऐसा ही ठीक है ।

(ऐसी बात चीत करके दोनों देवियाँ और सीता निकल गईं) ।

राम—क्या (सीता ने पाताल में जाना) स्वीकार ही कर लिया ? हाय चरित्रता की देवता, क्या पाताल में ही तुम समाप्त हो ओगी ? (ऐसा कहकर मूर्च्छित होते हैं) ।

भागम्, पातालमिति यावत् । ('भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा', 'अधः स्वरूपयोरस्त्री तलम्' इति चामरः) । लोकान्तरम्–अन्यः=अपरो लोको लोकान्तरम् । परिभवम् = तिरस्कारम्, ('अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया' इत्यमरः) । नियोगतः=ममाज्ञायाः कारणात्, स्तन्यत्यागं यावत्=मातृदुग्धत्यागपर्यन्तम् ॥

टिप्पणी—परिप्लवमानम्--परि + √प्लु + शानच् + विभक्तिः । **प्रमुग्धः**- प्र + √मुह् + क्त + विभक्तिः ।

रसातलम्—रसातल के दो अर्थ होते हैं—१–पृथिवी और २–पाताल । पृथिवी के कहने का भाव यह है कि तुम पृथिवी पर अर्थात् मेरे साथ ही रहो । किन्तु राम ने रसातल का अर्थ पाताल समझा है । अतः वे समझ रहे हैं कि सीता अब पाताल लोक को जा रही है ।

अनुभवितुम्—अनु + √भू + तुमुन् ॥

शब्दार्थः--प्रतिपन्नः=स्वीकार कर लिया । पर्यवसिता = समाप्त हो ओगी ।

लक्ष्मणः—भगवन् वाल्मीके परित्रायस्व, परित्रायस्व। [1]एष ते काव्यार्थः ?

(नेपथ्ये)

[2]अपनीयतामातोद्यम्। भो जङ्गमस्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्याः। श्यन्त्विदानीं वाल्मीकिनाभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्।

लक्ष्मणः—(विलोक्य।)

मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो व्याप्तं च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां गङ्गामहीभ्यां सलिलादुपैति[3] ॥ १७ ॥

(नेपथ्ये।)

अरुन्धति ! जगद्वन्द्ये ! गङ्गापृथ्व्यौ [4]जुषस्व नौ।
अर्पितेयं [5]तवावाभ्यां सीता पुण्यव्रता वधूः ॥ १८ ॥

अपनीयताम्=बन्द किया जाय। आतोद्यम्=चारों प्रकार के वाद्य। मर्त्यामर्त्याः=मानव और देवगण ॥

टीका—राम इति। प्रतिपन्नः=स्वीकृतः। पर्यवसिता=विश्रामं गता। अपनीयताम्=निवर्त्यताम्, आतोद्यम्=चतुर्विधं वाद्यमित्यर्थः। प्राणभृतः=प्राणिनः, मर्त्यामर्त्याः—मर्त्याश्च=मरणधर्माणश्च अमर्त्याश्च=देवाश्चेति। अभ्यनुज्ञातम्=समादिष्टम् ॥

टिप्पणी—प्रतिपन्नः—प्रति+√पद्+क्त+विभक्तिः। पर्यवसिता—परि+अव+√सो (सा)+क्त+टाप्+विभक्तिः। अभ्यनुज्ञातम्—अभि+अनु+√ज्ञा+क्त+विभक्तिः ॥

अन्वयः—गाङ्गम्, अम्भः, मन्थात् इव, क्षुभ्यति; च, अन्तरिक्षम्, देवर्षिभिः, व्याप्तम्; आश्चर्यम्, आर्या, देवताभ्याम्, गङ्गामहीभ्याम्, सह, सलिलात्, उपैति ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—गाङ्गम्=गंगा का, अम्भः=जल, मन्थात्=मथ देने की, इव=भाँति, क्षुभ्यति=क्षुभित हो रहा है; च=और, अन्तरिक्षम्=आकाश, देवर्षिभिः=देवताओं और ऋषियों से, व्याप्तम्=व्याप्त हो गया है; आश्चर्यम्=आश्चर्य है, आर्या=पूज्या सीता जी, देवताभ्याम्=देवी, गङ्गापृथिवीभ्याम्=गङ्गा और पृथिवी के, सह=साथ; सलिलात्=जल से, उपैति=ऊपर आ रही हैं ॥ १७ ॥

टीका—मन्थादिवेति। गाङ्गम्-गङ्गायाः=भागीरथ्या इदं गाङ्गम्=गङ्गायाः, "तस्येदम्" इत्यण्, अम्भः=जलम्, मन्थात्=मथनात्, इव=यथा, क्षुभ्यति=क्षोभमधिगच्छति; च=तथा, अन्तरिक्षम्=आकाशम्, देवर्षिभिः-देवाश्च ऋषयश्चेति देवर्षयस्तैः, अमरैर्मुनिभिश्चेत्यर्थः, व्याप्तम्=आकीर्णम्; आश्चर्यम्=आश्चर्यम्, अद्भुतमिति यावद्,

---

१. एष किं, २. अपनोद्यतां; आतोद्यकम्, ३. उदेति, ४. भजस्व, ५. तवाभ्यासे।

लक्ष्मण—हे भगवान् वाल्मीकि, (राम को) बचाइये, बचाइये। क्या आपके काव्य का यही अभिप्राय है ?

विशेष—लक्ष्मण के कहने का भाव यह है कि क्या राम के जीवन का अन्त करना ही आपके काव्य का अभिप्राय है ?

(पर्दे के पीछे)

चारों प्रकार के वाद्य बन्द किये जायँ। हे स्थावर जङ्गम, हे प्राणियों मानव और देवगण, अब आप लोग महर्षि वाल्मीकि के द्वारा स्वीकृत पवित्र आश्चर्य देखिये।

लक्ष्मण—(ध्यान से देखकर) गङ्गा का जल, मथ देने की भाँति, क्षुभित हो रहा है और आकाश देवताओं तथा ऋषियों से व्याप्त हो गया है। आश्चर्य है, पूज्या सीता जी देवी गङ्गा एवं पृथिवी के साथ जल से ऊपर उठ रही हैं ॥१७॥

(पर्दे के पीछे)

हे जगत्पूज्य अरुन्धतीजी, हम दोनों गङ्गा और पृथिवी पर कृपा करो। हम दोनों के द्वारा पवित्र व्रतवाली यह बहू सीता तुम्हें सौंपी गई है ॥१८॥

आर्या=पूज्या सीता, देवताभ्याम्=देवीभ्याम्, गङ्गामहीभ्याम्=भागीरथीपृथिवीभ्याम्, सह=साकम्, सलिलात्=जलात्, उपैति=उद्गच्छति। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ १७ ॥

टिप्पणी—मन्थादिव में इव उत्प्रेक्षा का सूचक है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

यहाँ प्रयुक्त छन्द इन्द्रवज्रा का लक्षण—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥१७॥

अन्वयः—हे जगद्वन्द्ये अरुन्धति, नौ, गङ्गापृथिव्यौ, जुषस्व; आवाभ्याम्, इयम्, पुण्यव्रता, वधूः, सीता, तव, अर्पिता ॥१८॥

शब्दार्थः—हे जगद्वन्द्ये अरुन्धति=हे संसार पूज्य अरुन्धती जी, नौ=हम दोनों, गङ्गापृथिव्यौ=गङ्गा और पृथिवी पर, जुषस्व=कृपा करो। आवाभ्याम्=हम दोनों के द्वारा, इयम्=यह, पुण्यव्रता=पवित्र व्रतवाली, वधूः=बहू, सीता=जानकी, तव=तुम्हें, अर्पिता=सौंपी गई है ॥१८॥

टीका—अरुन्धतीति। हे जगद्वन्द्ये-जगताम्=लोकानां वन्द्या=पूज्या तत्सम्बुद्धौ, अरुन्धति=वसिष्ठपत्नि, नौ=आवाम्, गङ्गापृथिव्यौ=भागीरथीपृथिव्यौ, जुषस्व=प्रीयस्व, 'जुषीप्रीतिसेवनयोः' इति धातोर्लोट्। आवाभ्याम्=गङ्गापृथिवीभ्याम्, इयम्=एषा, पुण्यव्रता-पुण्यम्-पवित्रं व्रतम्=नियमो यस्याः=सा तादृशी, वधूः=स्नुषा, सीता=मैथिली, तव=भगवत्याः समीप इत्यर्थः, अर्पिता=न्यस्ता। अद्य प्रभृति सीताया रक्षणं तवार्पितमिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥१८॥

लक्ष्मणः--[1]अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम् । आर्ये ! पश्य पश्य । कष्टमद्यापि नोच्छ्वसित्यार्यः ।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती सीता च ।)

अरुन्धती—

त्वरस्व वत्से ! वैदेहि ! मुञ्च शालीनशीलताम् ।
एहि जीवय मे वत्सं[2] सौम्यस्पर्शेन पाणिना ॥ १९ ॥

सीता—(ससम्भ्रमं स्पृशति[3] ।) समाश्वसितु समाश्वसित्वार्यपुत्रः ! (समस्ससद समस्ससद अज्जउत्तो ।)

रामः—(समाश्वस्य सानन्दम् ।) भोः ! किमेतत् ? (दृष्ट्वा सहर्षाद्भुतम् ।) कथं देवी जानकी ? (सलज्जम् ।) अये ! कथमम्बाऽरुन्धती ? कथं सर्वे ऋष्यश्शृङ्गादयोऽस्मद्गुरवः ?

अरुन्धती--वत्स ! एषा भागीरथी रघुकुलदेवता देवी गङ्गा सुप्रसन्ना ।

(नेपथ्ये)

जगत्पते [4]रामभद्र ! स्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मवचनम् । 'सा त्वमम्ब ! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवे' ति । तदनृणास्मि[5] ।

अरुन्धती—इयं ते श्वश्रूर्भगवती वसुन्धरा ।

टिप्पणी—वन्द्या-- √ वन्द् + ण्यत् (य) +टाप् + विभक्तिकार्यम् । अर्पिता- √ऋ+णिच् + क्त+टाप्+विभक्तिकार्यम् ।

यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप् ॥१८॥

अन्वयः—हे वत्से, वैदेहि, त्वरस्व; शालीनशीलताम्, मुञ्च; एहि, सौम्यस्पर्शेन, पाणिना, मे, वत्सम्, जीवय ॥१९॥

शब्दार्थः—हे वत्से=हे बेटी, वैदेहि=सीता, त्वरस्व=जल्दी करो; शालीनशीलताम्=शालीनताको, लज्जाशीलताको, मुञ्च=छोड़ो; एहि=आओ, सौम्यस्पर्शेन=सुखद स्पर्शवाले, पाणिना=हाथ से, मे=मेरे, वत्सम्=बेटे (राम) को, जीवय=जीवित करो ॥१९॥

टीका--त्वरस्वेति । हे वत्से=हे पुत्रि, वैदेहि=सीते, त्वरस्व=शीघ्रतां विधेहि; शालीनशीलताम्=शालीनं शीलं यस्य सः शालीनशीलस्तस्य भावस्ताम्, विनयस्वभावम्, लज्जाशीलतामिति यावत्, मुञ्च=त्यज, लज्जां त्यजेति भावः, एहि=आगच्छ, सौम्य-

---

१. दिष्टया अहो, २. प्रिय, ३. स्पृशन्ती ४. रामचन्द्र, ५. क्वचित् 'जाता' इत्यधिकः पाठः ।

लक्ष्मण—ओह, आश्चर्य है, आश्चर्य है। पूज्या अरुन्धतीजी, देखिये देखिये। बड़ा कष्ट है, अब भी पूज्य (भैया राम) चेतना में नहीं आ रहे हैं।

(तदनन्तर अरुन्धती और सीता प्रवेश करती हैं)।

अरुन्धती—हे बेटी सीता, जल्दी करो, शालीनता छोड़ो। आओ, सुखद स्पर्श-वाले (अपने) हाथ से मेरे बेटे (राम) को जीवित करो ॥१९॥

सीता--(घबराहट से साथ सहलाती हुई) आश्वस्त हों, आश्वस्त हों आर्यपुत्र।

राम—(आश्वस्त होकर आनन्दपूर्वक) अजी, यह क्या? (देख कर हर्ष और आश्चर्य के साथ) क्या महारानी जानकी? (लज्जा के साथ) अरे, क्या माता अरुन्धती? क्या कारण है कि सभी प्रसन्न हो रहे हैं ऋष्यशृङ्ग आदि हमारे गुरुजन?

अरुन्धती--बेटा, यह भगीरथ के द्वारा लाई गई रघुकुल की देवता भगवती गङ्गा (तुम पर) बहुत प्रसन्न हैं।

(पर्दे के पीछे)

हे जगत्पति रामभद्र, चित्रदर्शन के अवसर पर मेरे लिये कहे गये अपने वचन का स्मरण करो। (उस समय आपने कहा था—) "ऐसी हे माता आप अपनी पुत्रवधू सीता के प्रति अरुन्धती की भाँति, कल्याण की चिन्ता करने वाली होओ।" तो (आपके कथन के अनुसार कार्य सम्पन्न कर अब मैं) उऋण हो गई हूँ।

अरुन्धती—यह तुम्हारी सास भगवती पृथिवी हैं।

स्पर्शेन=सौम्य:=सुखद: स्पर्श:=आमर्शनं यस्य तेन तादृशेन, पाणिना=हस्तेन, मे=मम, वत्सम्=वालकम्, राममिति यावत्, जीवय=जीवितं कुरु। अनुष्टुप् छन्दः ॥१९॥

टिप्पणी—शालीनशीलताम्--शालीनशील + तल् + टाप् + विभक्तिः। पाणिनि व्याकरण के अनुसार शालीन शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार होती है—शाला-प्रवेशम्=गृहप्रवेशम् अर्हति इति शालीनः। शाला+खञ् (ईन)+विभक्तिः। निपातन से खञ् प्रत्यय और उत्तर पद प्रवेश का लोप होता है। शालीनकौपीने अधृष्टकार्ययोः (५।२।२०)। जो घर में प्रवेश करने के योग्य हो उसे शालीन कहते हैं ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—आलेख्यदर्शने=चित्र देखने के अवसर पर, आत्मवचनम्=अपने वचन को। शिवानुध्याना=कल्याण की चिन्ता करने वाली, अनृणा=उऋण। श्वश्रूः=सास,

(नेपथ्ये ।)

उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे 'भगवति वसुन्धरे ! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्' इति । तदधुना कृतवचनाऽस्मि[१] ।

रामः--कृतापराधोऽपि भगवति ! त्वयानुकम्पयितव्यो रामः प्रणमति[२] ।

अरुन्धती—भो भोः पौरजानपदाः ! इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेवं प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या समर्पिता[३] पूर्वं भगवता वैश्वानरेण निर्णीतपुण्यचारित्रा सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता [४]सावित्रकुलवधूर्देवयजनसंभवा जानकी परिगृह्यताम् । कथमिह भवन्तो मन्यन्ते ?

लक्ष्मणः--आर्य ! एवमम्बयाऽरुन्धत्या[५] च निर्भर्त्सिताः [६]पौरजानपदाः कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्यां नमस्कुर्वन्ति । लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते ।

सुश्लाघ्याम् = प्रशंसनीय, दुहितरम् = पुत्री को, बेटी को, अवेक्षस्व = देखो, सभालो । कृतापराधः=अपराधी, अनुकम्पयितव्यः=कृपा का पात्र ।।

टीका—नेपथ्य इति । सुश्लाघ्याम्=अतिप्रशंसनीयाम्, शिवानुध्याना–शिवम्=कल्याणकरम् अनुध्यानम्=चिन्तनं यस्याः=सा तादृशी । श्वश्रूः–श्वसुरस्य=जायापितुः=स्त्री श्वश्रूः वसुन्धरा=पृथिवी । आलेख्यदर्शने–आलेख्यस्य=चित्रस्य दर्शने=अवलोकने, कृतवचना–कृतम्=सम्पादितं वचनम्=कथनम्, प्रार्थनेति यावत्, यया सा तादृशी । कृतापराधः–कृतः=विहितः=अपराधः=सीतापरित्यागरूपमागो येन स तादृशः, अनुकम्पयितव्यः=दयनीयः, प्रणमति=नमस्करोति ।।

टिप्पणी--स्नुषायाम्—स्नुषा का अर्थ होता है—पुत्रवधू । श्वश्रूः-श्वसुरस्य स्त्रीः, श्वसुर+ऊङ् (ऊ) "श्वसुरस्योकाराकारलोपश्च" (वा०) से ऊङ् प्रत्यय और श्वसुर के उ तथा ऊ को लोप होकर श्वश्रू शब्द निष्पन्न होता है ।

शब्दार्थः--प्रशस्यमाना=प्रशंसा की गई, वैश्वानरेण=अग्नि के द्वारा, निर्णीतपुण्यचारित्रा=जिसके चरित्र की पवित्रता का निर्णय किया गया है ऐसी, सब्रह्मकैः=ब्रह्मासमेत, स्तुता=स्तुति की गई, सावित्रकुलवधूः=सूर्यवंश की बहू, देवयजनसंभवा=यज्ञस्थल से उत्पन्न । निर्भर्त्सिताः=भर्त्सना किये गये, कृत्स्नः=सम्पूर्ण, भूतग्रामः=प्राणि-समुदाय ।।

---

१. 'अस्मि प्रभोर्वत्सस्य' इत्यधिकः पुस्तकान्तरेषु पाठः, २. 'कथं कृतमहापराधो भगवतीभ्यामनुकम्पितः ? प्रणमामि वः' इति पाठान्तरम्, ३.......पदाः,भगवतीभ्यां जाह्नवी वसुन्धराभ्यामेवं प्रशस्यमाना ममारुन्धत्याः समर्पिता' इति पाठान्तरम्, ४. सवितृकुल०, ५. 'एवमार्ययाऽरुन्धत्या' इति पाठान्तरम्, ६. प्रजाः ।

(पर्दे के पीछे)

बेटी सीता के परित्याग के अवसर पर चिरञ्जीवी आपने (मुझ से) कहा था—"भगवती पृथिवी, अत्यन्त प्रशंसनीय अपनी बेटी जानकी की देख-भाल करना।" तो अब मैं तुम्हारे कथन को पूर्ण कर चुकी हूँ।

राम—हे भगवती, अपराधी होते हुए भी तुम्हारी कृपा का पात्र राम प्रणाम कर रहा है।

अरुन्धती—हे हे नागरिकों और ग्रामवासीजनों, सम्प्रति पृथिवी और गंगा के द्वारा इस तरह प्रशंसा की गई, मुझ अरुन्धती के द्वारा सौंपी गई, पहले भगवान् अग्निदेव के द्वारा जिसके चरित्र की पवित्रता का निर्णय किया गया है ऐसी, ब्रह्मा के सहित सारे देवों के द्वारा स्तुति की गई, सूर्य-वंश की वहू एवं यज्ञस्थल से उत्पन्न इस जानकी को आप लोग स्वीकार करें। इस विषय में आप सब का क्या मत है ?

विशेष—जानकी के लिये यहाँ दिये गये सारे विशेषण उसकी विभिन्न प्रकार से पवित्रता को द्योतित करते हैं। किसी में एक प्रकार की पवित्रता होती है, किन्तु जानकी में तो बहुत प्रकार की विशिष्टता और पवित्रता का संयोग है।

लक्ष्मण—आर्य इस प्रकार माता अरुन्धती के द्वारा भर्त्सना किये गये समस्त नगर-निवासी और ग्राम-वासी जन तथा समस्त प्राणि-समुदाय पूज्या (सीता) को प्रणाम कर रहे हैं। लोक-पाल और सप्तर्षि पुष्पों की वर्षा से उनकी पूजा कर रहे हैं।

टीका—अरुन्धतीति। प्रशस्यमाना=कृतप्रशंसा, वैश्वानरेण=वह्निना, निर्णीत-पुण्यचारित्रा–निर्णीतम्=परीक्षितं पुण्यम्=पवित्रं चारित्रम्=सच्चरित्रम्, पातिव्रत्य-मिति भावः, यस्याः सा तादृशी, सावित्रकुलवधूः–सवितुः=सूर्यस्येदं सावित्रम्= सूर्यसंबन्धि तादृशं च तत् कुलम्=वंशस्तस्य वधूः=स्नुषा, देवयजनसंभवा–देवयजनात्= यज्ञस्थलात् संभवः=उत्पत्तिर्यस्याः सा तादृशी। निर्भर्त्सिताः=उपालब्धाः, पौरजानपदाः= पुरवासिनो जनपदनिवासिनश्च, कृत्स्नः=समग्रः, भूतग्रामः=प्राणिसमवायः, आर्याम्= पूज्यां सीताम्, उपतिष्ठन्ते=पूजयन्ति॥

टिप्पणी—पौरजानपदाः—पुरे भवा=पौराः, जनपदे भवा जानपदाः, पौराश्च ते जानपदाः, पुर+अण्+विभक्त्यादिः, जनपद+अण्+विभक्त्यादिः।

प्रशस्यमाना—प्र+ √शंस्+ शानच्+टाप् + विभक्तिः। समर्पिता— सम+ऋ+णिच्+क्त+टाप्+विभक्तिः। निर्भर्त्सिताः—निर्+√भर्त्स्+ णिच्+क्त+विभक्तिः॥

अरुन्धती—जगत्पते रामभद्र !

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम् ।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः [१]पुण्यां प्रकृतिमध्वरे ॥ २० ॥

सीता—(स्वगतम् ।) अपि जानात्यार्यपुत्रः सीताया दुःखं परिमार्ष्टुम् ? (अवि जाणादि अज्जउत्तो सीदाए दुक्खं पडिमज्जिदुम् ?)

रामः—यथा भगवत्यादिशति ।

लक्ष्मणः—कृतार्थोऽस्मि ।

सीता—प्रत्युज्जीवितास्मि । (पज्जुज्जीविदह्मि ।)

लक्ष्मणः—आर्ये ! अयं लक्ष्मणः प्रणमति ।

सीता—वत्स ! ईदृशस्त्वं चिरं जीव (वच्छ ! ईरिसो तुमं चिरं जीअ ।)

अरुन्धती—भगवन् वाल्मीके ![२] उपनयेदानीं सीतागर्भसंभवौ रामभद्रस्य कुशलवौ । (इति निष्क्रान्ता ।)

रामलक्ष्मणौ—दिष्टचा तथैवैतत्[३] ।

सीता—(सबाष्पाकुला) क्व तौ पुत्रकौ ? (कहि ते पुत्तआ ?)

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः कुशलवौ च ।)

वाल्मीकिः—वत्सौ ! एष वां रघुपतिः पिता । एष लक्ष्मणः कनिष्ठतातः । एषा सीता जननी । एष राजर्षिर्जनको मातामहः ।

सीता—कथं तातः ? कथं जातौ ? (सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य ।) (कहं तादो ? कहं जादा ?)

अन्वयः—त्वम्, हिरण्मय्याः, प्रतिकृतेः, पुण्याम्, प्रकृतिम्, धर्मचारिणीम्, प्रियाम्, अध्वरे, यथाधर्मम्, नियोजय ॥२०॥

शब्दार्थः—त्वम्=तुम, हिरण्मय्याः=सुवर्णनिर्मित, प्रतिकृतेः=प्रतिमा की, पुण्याम्=पवित्र, प्रकृतिम्=आधारभूत, धर्मचारिणीम्=धर्मचारिणी, प्रियाम्=प्रिया सीता को, अध्वरे=यज्ञ में, यथाधर्मम्=धर्मानुसार, नियोजय=नियुक्त करो ॥२०॥

टीका—नियोजयेति । त्वम्=भवान्, हिरण्मय्याः=सुवर्णनिर्मितायाः, "तस्य विकार" इति मयट्, टित्वान्ङीप्, 'दाण्डिनायने' त्यादिसूत्रेण यलोपनिपातः, प्रतिकृतेः=प्रतिमायाः, पुण्याम्=पवित्राम्, प्रकृतिम्=बिम्बभूताम्, धर्मचारिणीम्=धर्मानुष्ठाने सहयोगिनीम्, प्रियाम्=वल्लभाम्, अध्वरे=यज्ञे, यथाधर्मम्=धर्मानुरूपम्; नियोजय=प्रवर्तय । सीतया सह अश्वमेधानुष्ठानमाचर । अनुष्टुप् छन्दः ॥२०॥

टिप्पणी—अरुन्धती के कहने का भाव यह है कि – सीता की सुवर्ण-प्रतिमा के स्थान पर सीता को ही बैठा कर अश्वमेध की अवशिष्ट क्रिया को सम्पन्न करो ॥२०॥

टिप्पणी – परिमार्ष्टुम्-परि+ √मृज् + तुमुन् । प्रत्युज्जीविता—प्रति + उत्+ √जीव् + क्त+टाप् + विभक्तिः ।

---

१. पुण्यप्रकृतिम्, २. उपनीयेतामिमौ, ३. तथैव तत् ।

अरुन्धती—जगत् के स्वामी हे रामभद्र, आप सुवर्ण-निर्मित प्रतिमा की पवित्र आधारभूत धर्मचारिणी प्रिया सीता को यज्ञ में धर्मानुसार नियुक्त करो ॥२०॥

सीता—(अपने आप) क्या आर्यपुत्र सीता के दुःख को मिटाना जानते हैं ?

राम—जैसी भगवती आप आदेश दे रही हैं (वैसा ही करूँगा)।

लक्ष्मण—मैं कृतार्थ हो गया हूँ।

सीता—मैं पुनः जीवित हो उठी हूँ।

लक्ष्मण—आर्ये, यह लक्ष्मण प्रणाम कर रहा है।

सीता—वत्स, इसी प्रकार तुम चिरञ्जीवी बनो!

अरुन्धती—भगवान् वाल्मीकि, सीता के गर्भ से उत्पन्न लव और कुश को रामभद्र के पास ले जाइये। (ऐसा कहकर निकल गई)।

राम और लक्ष्मण—सौभाग्य से यह वही बात है।

सीता—(आँखों में आँसू भर कर) कहाँ हैं वे दोनों प्यारे बेटे ?

(तदनन्तर वाल्मीकि और कुश एवं लव प्रवेश करते हैं)।

वाल्मीकि—वत्स लव एवं कुश, यह तुम दोनों के पिता रामचन्द्र हैं। यह तुम्हारे चाचा लक्ष्मण हैं। यह तुम्हारी माता सीता हैं। यह राजर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं।

सीता—(प्रसन्नता, करुणा और आश्चर्य के साथ ध्यान से देख कर) क्या पिता जी ! क्या मेरे दोनों बेटे (कुश और लव) !

प्रत्युज्जीविता—सीता के कथन का भाव यह है कि राम के मिल जाने से अब हमारा सारा कष्ट दूर हो गया और मैं मानो फिर से जीवित हो उठी।

कुश-लवौ—यहाँ सीता-राम का मिलनरूप गर्भाङ्क अर्थात् अन्तर्नाटक समाप्त होता है। अरुन्धती के प्रस्थान के साथ ही गर्भाङ्क की समाप्ति समझनी चाहिये।

गर्भाङ्क का लक्षण इस प्रकार है—

"अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्गद्वारा मुखादिमान्।
अङ्कोऽपरः स गर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि॥
(सा० द० ६-२०)

यह नाटक के भीतर एक उपनाटक है। यही कारण है कि इसे गर्भाङ्क कहते हैं। इसी अंक का सीता का वाक्य—"हा आर्यपुत्र···निक्षिपामि।" इस गर्भाङ्क का बीज है। "सूत्रधारः (प्रविश्य)" से लेकर "विश्वम्भरा······विमुञ्चति।" तक प्रस्तावना है। इस गर्भाङ्क का फल है—सीता और राम का मिलन॥

वत्सौ--हा तात ! हा अम्ब ! हा मातामह !

रामलक्ष्मणौ—(सहर्षमालिङ्गय ।) ननु वत्सौ ! युवां प्राप्तौ स्थः ।

सीता--एहि जात कुश ! एहि जात लव ! चिरस्य मां परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम् । (एहि जाद कुस ! एहि जाद लव ! चिरस्स मं परिस्सजह लोअन्दरादो आअदं[२] जणणिम् ।)

कुशलवौ--(तथा कृत्वा ।) धन्यौ स्वः ।

सीता--भगवन् ! एषाऽहं प्रणमामि । (भअवं ! एसा हं पणमामि ।)

वाल्मीकिः--वत्से ! एवमेव चिरं भूयाः[१] ।

(नेपथ्ये[२] ।)

[३]उत्खातलवणो मथुरेश्वरः प्राप्तः ।

लक्ष्मणः--सानुषङ्गाणि कल्याणानि ।

रामः--सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येमि । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।

वाल्मीकिः--रामभद्र ! उच्यतां, किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ?

रामः--अतः परमपि प्रियमस्ति ? किं त्विदं भरतवाक्यमस्तु ।

टिप्पणी—आलिङ्गय—आ + √लिङ्ग् + ल्यप् ।

चिरस्य—यह षष्ठी विभक्तियुक्त अव्यय है । जैसे--चिरेण, चिरात् आदि ॥

शब्दार्थः—उत्खातलवणः=लवण नामक असुर को समूलोन्मूलितकर, मार कर, मधुरेश्वरः = मथुरा के स्वामी शत्रुघ्न । सानुषङ्गाणि = एक के बाद दूसरे होने वाले, क्रमबद्ध आने वाले, कल्याणानि = मङ्गल । अभ्युदयानाम् = उन्नतियोंकी, प्रकृतिः = स्वभाव ।

टीका—नेपथ्य इति । उत्खातलवणः—उत्खातः=उन्मूलितो लवणः=लवणनामा असुरो येन स तादृशः, घातितलवणासुर इत्यर्थः, मधुरेश्वरः—मधुरायाः=मथुराया ईश्वरः=शासकः, शत्रुघ्न इति भावः । कल्याणानि = मङ्गलानि, सानुषङ्गाणि—अनुषङ्गेण=अनुबन्धेन सहितानि=युक्तानि । कल्याणानि अन्यैः कल्याणैरनुगतानि भवन्तीति भावः । न प्रत्येमि = न विश्वसिमि । अभ्युदयानाम् = अभ्युन्नतीनाम्, इयम् = एषा, प्रकृतिः=स्वभावः ॥

---

१. 'कहं जादा ? (कथं जातौ ?) इति नास्ति क्वचित्पुस्तकेषु । २. 'जम्मंतरगदं (जन्मान्तरगताम्) ३. एतदग्रे—'सीता । 'अम्महे, तादो, कुलगुरु, अज्जाजणो, सभतुआ अज्जा संतादेई सलक्खणा सुप्पसण्णा अज्जउत्तचलणा, समं कुसलवावि दिसंति, ता णिब्भरम्हि आणंदेण । (आश्चर्यम्, तातः, कुलगुरुः, आर्याजनः, सभर्तृका आर्या शान्तादेवी, सलक्ष्मणाः सुप्रसन्ना आर्यपुत्रचरणाः, समं कुशलवावपि दृश्यन्ते; तन्निर्भरास्मि आनन्देन) इतिच्छाया' इत्यधिकः पाठो वर्तते पुस्तकान्तरेषु । ४. 'कलकलः' इत्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरेषु । ५ 'वाल्मीकिः । (उत्थायावलोक्य च)' इत्यधिकेन पुस्तकान्तरपाठेन सहोक्तिरियं वाल्मीकेरिति बोध्यम् ।

दोनों बच्चे (कुश और लव)—हा पिता जी, हा माता जी, हा नाना जी !

राम और लक्ष्मण—(प्रसन्नतापूर्वक आलिङ्गन करके) हे पुत्रों, तुम दोनों (बड़े) पुण्य से प्राप्त हुए हो।

सीता—आओ बेटा कुश, आओ बेटा लव। तुम दोनों दूसरे लोक (अर्थात् पाताल) से आई हुई मुझ अपनी माता को बहुत देर तक (अर्थात् जी भर कर) आलिङ्गन करो।

कुश और लव—(वैसा करके) हम दोनों धन्य हैं।

सीता—हे भगवन्, यह मैं (सीता) आपको प्रणाम कर रही हूँ।

वाल्मीकि—बेटी, इसी प्रकार बहुत दिनों तक रहो (अर्थात् अपने पति और पुत्रों के साथ बहुत दिनों तक रहो)।

(पर्दे के पीछे)

लवण नामक असुर का वध करके मथुरा प्रदेश के शासक (शत्रुघ्न) भी आ गये हैं।

लक्ष्मण—मङ्गल भी (जब आने लगते हैं, तब) एक के बाद दूसरे चले ही आते हैं।

राम—यह सब कुछ अनुभव करते हुए भी मुझे इस पर विश्वास नहीं हो रहा है। अथवा अभ्युदयों का यह स्वभाव ही होता है (कि वे जब आते हैं, तब चारों ओर से आते हैं)।

वाल्मीकि—रामभद्र, बोलो, और क्या अधिक प्रिय (वस्तु) तुम्हें उपहार के रूप में प्रदान करूँ ?

राम—इससे बढ़ कर भी क्या कोई प्रिय (वस्तु) है ? फिर भी यह भरत-वाक्य पूर्ण हो—

टिप्पणी--**मधुरेश्वरः**—आज की मथुरा नगरी का प्राचीन नाम था–मधुवन और फिर बाद में मधुरा। लवण नामक असुर मधुरा का शासक था। लवण के पिता का नाम था मधु। उसी के नाम से उस प्रदेश को मधुवन और बाद में नगरी का नाम मधुरा पड़ा। शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध कर मधुवन का नाम मथुरा रक्खा था। राम ने प्रथम अंक में लवणासुर का वध करने के लिये शत्रुघ्न को भेजा था। रामचन्द्र ने शत्रुघ्न के अयोध्या से प्रस्थान के पूर्व ही उन्हें मथुरा प्रदेश का राजतिलक दे दिया था। अतः उन्हें मधुरेश्वर या मथुरेश्र कहा गया है। वे अब वहाँ से लौटे हैं।

सानुषङ्गाणि--स+अनु+ √सञ्ज्+घञ् (अ)+विभक्तिः।

उपहरामि--उपहार में दूँ। उप+ √हृ+लटि उत्तमपुरुषैकवचने विभक्तिः॥

[1]पाप्मभ्यश्च [2]पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च ।
[3]तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥ २१ ॥

(। निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते 'सम्मेलनं' नाम सप्तमोऽङ्कः ॥

— : —

अन्वयः—माता, इव, च, गङ्गा, इव, जगतः, मङ्गल्या, च, मनोहरा, च, सा, इयम्, कथा, पाप्मभ्यः, च, पुनाति, च, श्रेयांसि, वर्धयति, च; अभिनयैः, विन्यस्तरूपाम्, शब्दब्रह्मविदः, प्राज्ञस्य, कवेः, परिणताम्, इमाम्, ताम्, एताम्, वाणीम्, बुधाः, परिभावयन्तु ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—माता=माता की, इव=तरह, च=और, गङ्गा=गङ्गाकी, इव=तरह, जगतः=संसार का, मङ्गल्या=मङ्गल करने वाली, च=तथा, मनोहरा=मनोहर, च=भी, सा=वह, सुप्रसिद्ध, इयम्=यह, कथा=कथा, पाप्मभ्यः=पापों से, पुनाति=पवित्र करती है, पवित्र बनाती है, च=और, श्रेयांसि=कल्याणों को, तनोति=बढ़ाती है; अभिनयैः=अभिनयों के द्वारा, विन्यस्तरूपाम्=रूप को प्राप्त कराई गई, शब्दब्रह्मविदः=शब्द ब्रह्म के वेत्ता, प्राज्ञस्य=बुद्धिमान्, कवेः=कवि की, परिणताम्=रूपान्तरित, इमाम्=इस, ताम्=जगत्प्रसिद्ध, वाणीम्=वाणी को, भारती को, बुधाः=विद्वान् जन, परिभावयन्तु=विचार करें ॥ २१ ॥

टीका—पाप्मभ्य इति । माता इव=जननीव, च=तथा, गङ्गा इव=भागीरथीव, जगतः=संसारस्य, मङ्गल्या—मङ्गलाय=कल्याणाय हिता मङ्गल्या=मङ्गलकारिणी, च=तथा, मनोहरा=मनोज्ञा च, सा=सुविदिता, इयम्=एषा, कथा=रामायणात्मकप्रबन्धकल्पना, पाप्मभ्यः=पापेभ्यः, ("अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्बिषकल्मषम्" इत्यमरः), पुनाति=पवित्रयति च; च = अपि च, श्रेयांसि=कल्याणानि च, वर्धयति=विस्तारयति । अभिनयैः = सात्त्विकादिभिरवस्थानुकारैः, आङ्गिकादिचतुर्विधैः अवस्थानुकारैः, विन्यस्तरूपाम्—विन्यस्तम्=प्रापितं रूपम्=स्वरूपं यस्यास्ताम्, शब्दब्रह्मविदः—शब्दरूपं ब्रह्म वेत्तीति तस्य, ब्रह्मसाक्षात्कर्तुरित्यर्थः, प्राज्ञस्य=विदुषः, कवेः=महाकविभवभूतेः, परिणताम् = प्राप्तपरिणामाम्, रूपान्तरं प्राप्तामिति तात्पर्यम्, इमाम्=एताम्, ताम्=जगति विदिताम्, एताम्=इमाम्, वाणीम् = वाचम्, उत्तररामचरितनामकं नाटकमित्यर्थः, बुधाः=विद्वांसः, परिभाव-

---

१. पापेभ्यश्च, २. पुनातु वर्धयतु च । ३. वाल्मीकेः ।

माता और गङ्गा की भाँति जगत् का मङ्गल करने वाली तथा मनोहर यह अति प्रसिद्ध (रामायण की) कथा पापों से छुटकारा दिला कर पवित्र बनाती है और कल्याणों की वृद्धि करती है। अभिनयों के द्वारा (नाटकीय) रूप को प्राप्त कराई गई, शब्द ब्रह्म के वेत्ता, बुद्धिमान् कवि की रूपान्तरित (अर्थात् नाटक के रूप में प्रस्तुत), जगद्विदित इस वाणी पर विज्ञ-जन विचार करें ।। २१ ।।

(इस प्रकार सब निकल जाते हैं।)

।। महाकवि भवभूति-विरचित उत्तर रामचरित नाटक में सम्मेलन नामक सप्तम अङ्क समाप्त ।। ७ ।।

यन्तु =परिशीलयन्तु, विचारयन्त्विति यावत्। बुधा मन्निर्मितस्यैतस्य नाटकस्य गुणदोषानुशीलनं कुर्वन्त्वित्यर्थः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।।२१।।

।। इत्याचार्यरमाशङ्करत्रिपाठिकृतायामुत्तररामचरितव्याख्यायां शान्त्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।। ७ ।।

— : —

टिप्पणी—भरतवाक्यम्—नाटक के अभिनेताओं को भरत कहते हैं। वे नाटक के अन्त में सब के लिये मङ्गल की कामना करते हैं। कभी-कभी नाटक का नायक ही इस कार्य को पूरा करता है। नाट्यशास्त्र के निर्माता भरत-मुनि के वाक्य को अमर रखने के उद्देश्य से भी इसे भरत-वाक्य कहा जाता है।

श्रेयांसि—प्रशस्य + ईयसुन् + विभक्तिः। यहाँ प्रशस्य को श्र आदेश हो जाता है। **मङ्गल्या**—मङ्गल + यत् + टाप् + विभक्तिः।

अभिनयैः—अभिनय चार प्रकार के होते हैं—

(१) आङ्गिक, (२) वाचिक, (३) आहार्य और, (४) सात्त्विक। "भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः। आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा ।। (सा० द० ६।२) ।।

परिणताम्—परि + √नम् + क्त + टाप् + विभक्तिः। **प्राज्ञस्य**—प्र + √ज्ञा + क (अ) + विभक्तिः।

इस श्लोक में 'माता इव' और 'गङ्गा इव' में इव उपमाबोधक है। यहाँ उपमा के चारों अंगों के होने के कारण पूर्णोपमा अलंकार है।

यहाँ प्रयुक्त छन्द शार्दूलविक्रीडित का लक्षण—

"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।। २१ ।।

।। इत्याचार्यरमाशङ्करत्रिपाठिकृतायामुत्तररामचरितव्याख्यायां शान्त्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः समाप्तः ।। ७ ।।

— : —

व्याख्याकर्तुः परिचयः

विन्ध्यक्षेत्रान्तरे रम्ये मीरजापुरमण्डले ।
गम्भीरपुरनामाऽस्ति ग्रामः ख्यातो महीतले ॥ १ ॥
तत्र रामप्रसादाख्यस्त्रिपाठी ब्राह्मणो ह्यभूत् ।
तस्यासीत् प्रबला भक्तिर्विष्णोश्चरणपङ्कजे ॥ २ ॥
अतो नामापरं तस्य रामदासेति विश्रुतम् ।
जातः परमहंसोऽयमन्तिमे समये महान् ॥ ३ ॥
चत्वार आत्मजास्तस्य बभूवुः कृतिनां वराः ।
ज्येष्ठो गणपतिस्तेषु सोमदत्तोऽपरस्तथा ॥ ४ ॥
तृतीयो देवदत्तश्च कृष्णदत्तश्चतुर्थकः ।
कृष्णदत्तस्य तुर्यस्य द्वौ सुतौ प्रबभूवतुः ॥ ५ ॥
दीनान्तः शीतलस्तत्र प्रथमः प्रथितोऽभवत् ।
श्रीमान् रामदयाल्वाख्यो द्वितीयोऽभूत् परःकृती ॥ ६ ॥
आद्यः शीतलदीनो यश्चतुरः सुषुवे सुतान् ।
चतुरान् कृतविद्यांश्च चतुरस्सागरानिव ॥ ७ ॥
आदित्यरामस्तत्रैकः कर्मकाण्डी महायशाः ।
दिवाकरो भास्करश्च प्रभाकर इतीरिताः ॥ ८ ॥
आदित्यरामस्यैकोऽभूज्जेष्ठः पुत्रः सुधीवरः ।
शिवप्रतापनाम्ना यः प्रसिद्धिं परमां गतः ॥ ९ ॥
द्वितीयः शिवसम्पत्तिर्गुणज्ञो गुणवान् मतः ।
शिवप्रतापस्य पुत्रो द्वेषमात्सर्यवर्जितः ॥ १० ॥
श्रीमान् रामसुमेरुर्हि पुण्यवान् भाग्यवांस्तथा ।
तस्य भार्याऽञ्जनानाम्नी शङ्करस्य सती यथा ॥ ११ ॥
साऽसूत् चतुरः पुत्रान् प्राणौपम्येन संस्मृतान् ।
तेषां ज्येष्ठो रामरूपो दयाधर्मान्वितः सुधीः ॥ १२ ॥
त्रिवेणीशङ्करः ख्यातः पण्डितोऽस्ति द्वितीयकः ।
रमाशङ्करनामाऽहं व्याख्याकृत्तु तृतीयकः ॥ १३ ॥
वात्सल्यभाङ्नः सततं चतुर्थो हरिशङ्करः ।
सहायभूतः सर्वेषामेषां स्नेहानुवर्धितः ॥ १४ ॥
सोऽहं सम्प्रार्थये मूलं परमात्मानमीश्वरम् ।
हृदयग्राहिणी भूयात् कृतिः कान्ता विदां मम ॥ १५ ॥

॥ शम् ॥

—:—

परिशिष्ट–१

उत्तररामचरितस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमणी

श्लोकारम्भः	अङ्काङ्काः	श्लोकाङ्काः
अङ्गादङ्गात्सृत इव	६	२२
अतिशयितसुरासुर–	५	४
अत्यद्भुतादपि गुणा–	५	१०
अथ कोऽयमिन्द्रमणि–	६	१७
अथेदं रक्षोभिः कनक–	१	२८
अद्वैतं सुखदुःखयोः	१	३९
अनियतरुदितस्मितम्	४	४
अनिर्भिन्नो गभीरत्वात्	३	१
अनुदिवसमवर्धयत्	३	१८
अनुभावमात्रसमव०	६	४१
अन्तःकरणतत्त्वस्य	३	१७
अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेः	३	९
अन्वेष्टव्यो यदसि	२	१३
अपत्ये यत्तादृग्दुरितम्	४	३
अपरिस्फुटनिक्वाणे	३	७
अपि जनकसुतायाः	६	२६
अपूर्वकर्मचण्डालम्	१	४६
अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे	५	२५
अमृताध्मातजीमूत०	६	२१
अयं शैलाघातक्षुभित०	५	९
अयं हि शिशुरेककः	५	५
अयं तावद्बाष्पत्रुटित०	१	२९
अयि कठोर यशः किल	३	२७
अरुन्धति जगद्वन्द्ये	७	१८
अलसललितमुग्धा०	१	२४
अवदग्धबर्बरित०	६	४
अवनिरमरसिन्धुः	३	४८
अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः	२	३
अस्मिन्नेव लतागृहे	३	३७
अस्यैवासीन्महति	२	२५
अहेतुः पक्षपातो यः	५	१७
अहो प्रश्रययोगेऽपि	६	२३
अहो प्रासादिकं रूपम्	६	२०
आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जर०	५	६
आयुष्मतः किल लवस्य	६	१६
आलिम्पन्नमृतमयैः	३	३९
आविर्भूतज्योतिषाम्	४	१८
आविवाहसमयाद् गृहे	१	३७
आश्च्योतनं नु	३	११
आश्वास इव भक्तीनाम्	६	१०
आसीदियं दशरथस्य	४	६
इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः	१	४४
इङ्गुदीपादपः सोऽयम्	१	२१
इतिहासं पुराणं च	५	२३
इदं विश्वं पाल्यम्	३	३०
इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यः	१	१
इयं गेहे लक्ष्मीरिय०	१	३८
इह समदशकुन्ता०	२	२०
ईदृशानां विपाकोऽपि	३	३
उत्पत्तिपरिपूतायाः	१	१३
उपायानां भावादवि०	३	४४
ऋषयो राक्षसीमाहुः	५	२९
ऋषीणामुग्रतपसाम्	१	५०
एको रसः करुण एव	३	४७
एतत्पुनर्वनमहो	२	२२
एतद्विपरिभूतानाम्	४	२४
एतद्वैशसवज्रघोर०	४	२५
एतस्मिन्मदकलमल्लि०	१	३१
एतस्मिन्मसृणितराज०	५	१८
एतानि तानि गिरिनिर्झर०	१	२५

श्लोकारम्भः	अङ्काङ्काः	श्लोकाङ्काः
एते त एव गिरय०	२	२३
एते ते कुहरेषु गद्गद०	२	३०
एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ	७	१६
एष वः श्लाघ्यसंबन्धी	४	९
एष सांग्रामिको न्याय्यः	५	२२
एष वशिष्ठशिष्याणाम्	७	१३
कठोरपारावतकण्ठ०	६	२५
कण्डूलद्विपगण्डपिण्ड०	२	९
कतिपयकुसुमोद्गमः	३	२०
कथं हीदमनुष्ठानम्	५	२१
कन्यां दशरथो राजा	१	४
कन्यायाः किल पूजयन्ति	४	१७
करकमलवितीर्णैः	३	२५
करपल्लवः स तस्याः	३	४१
कामं दुग्धे विप्रकर्ष०	५	३०
किं चाक्रान्तकठोर०	५	१९
किं त्वनुष्ठाननित्यत्वम्	१	८
किमपि किमपि मन्दम्	१	२७
किरति कलितकिंचित्०	५	२
किसलयमिव मुग्धम्	३	५
कुवलयदलस्निग्धश्यामः	४	१९
कृशाश्वः कौशिको रामः	७	९
कृशाश्वतनया ह्येते	५	१५
कोऽप्येष संप्रति नवः	५	३३
क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तल०	५	३५
क्लिष्टो जनः किल जनैः	१	१४
क्व तावानानन्दः	६	३३
क्षुभिताः कामपि दशाम्	७	१२
गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिक०	२	२९
गृहीतो यः पूर्वं परिणय०	३	४०
घोरं लोके विततमयशः	७	६
चतुर्दश सहस्राणि	२	१५
चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा	६	३८
चिराद्वेगारम्भी प्रसृत०	२	२६
चूडाचुम्बितकङ्कपत्र०	४	२०
जगन्मङ्गलमात्मानम्	७	८
जनकानां रघूणां तत्रा०	६	४२
जनकानां रघूणां याम्	१	५१
जनकानां रघूणां च सम्बन्धः	१	१७
जातस्य ते पितुरपीन्द्र०	५	२४
जामातृयज्ञेन वयम्	१	११
जीवत्सु तातपादेषु	१	१९
जीवयन्निव ससाध्वस०	१	३४
जृम्भितं च विचित्राय	६	२
ज्याजिह्वया वलयितो०	४	२९
झणज्झणितिकिङ्किणी०	६	१
तटस्थं नैराश्यादपि	३	१३
तत्कालं प्रियजनविप्र०	१	३०
तथैव रामः सीतायाः	६	३२
तदा किंचित्किंचित्	६	३५
तुरगविचयव्यग्रानुर्वी	१	२३
ते हि मन्ये महात्मानः	१	४८
त्रस्तैकहायनकुरङ्ग०	३	२८
त्रातुं लोकानिव परिणतः-	६	९
त्वं वह्निर्मुनयो वशिष्ठ०	४	५
त्वं जीवितं त्वमसि मे	३	२६
त्वदर्थमिव विन्यस्तः	६	३६
त्वमेव ननु कल्याणि	३	१०
त्वया जगन्ति पुण्यानि	१	४३
त्वया सह निवत्स्यामि	२	१८
त्वरस्व वत्से वैदेहि	७	१९
त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्त०	६	३
दत्ताभये त्वयि	२	११
दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः	६	१८

श्लोकारम्भः	अङ्काङ्काः	श्लोकाङ्काः
ददतु तरवः पुष्पैः	३	२४
दधति कुहरभाजाम्	२	२१
दर्पण कौतुकवता	५	११
दलति हृदयं शोकः	३	३१
दह्यमानेन मनसा	७	७
दिनकरकुलचन्द्र	६	८
दिष्टया सोऽयं महाबाहुः	१	३२
दुःखसंवेदनायैव	१	४७
दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रय०	६	१९
देवस्त्वां सविता धिनोतु	५	२७
देवि सीते नमस्तेऽस्तु	७	१०
देव्या अपि हि वैदेह्याः	१	६
देव्या शून्यस्य जगतः	३	३३
न किंचिदपि कुर्वाणः	२	१९
,,	६	५
न किल भवतां देव्याः	३	३२
न तेजस्तेजस्वी प्रसृत०	६	१४
नन्वेष त्वरितसुमन्त्र०	५	१
न प्रमाणीकृतः पाणिः	७	५
नमो वः परमास्त्रेभ्यः	७	११
नवकुवलयस्निग्धैः	३	२२
नियोजय यथाधर्मम्	७	२०
निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्	२	१६
नीरन्ध्रबालकदली०	३	२१
नीवारोदनमण्डमुष्ण०	४	१
नूनं त्वया परिभवं च	४	२३
नैताः प्रियतमा वाचः	३	३४
पञ्चप्रसूतेरपि तस्य	४	१६
परां कोटिं स्नेहे परि०	६	२८
परिणतकठोरपुष्कर०	६	१३
परिपाण्डुदुर्बलकपोल०	३	४
पश्चात्पुच्छं वहति विपुलम्	४	२६
पश्यामि च जनस्थानम्	२	१७

श्लोकारम्भः	अङ्काङ्काः	श्लोकाङ्काः
पातालोदरकुञ्जपुञ्ज०	५	१४
पाप्मभ्यश्च पुनाति	७	२१
पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः	१	२२
पुरा यत्र स्रोतः	२	२७
पूरोत्पीडे तटाकस्य	३	२९
पौलस्त्यस्य जटायुषा	३	४३
प्रतनुविरलैः प्रान्तो०	१	२०
प्रत्युप्तस्येव दयिते	३	४६
प्रसाद इव मूर्तस्ते	३	१४
प्रियप्राया वृत्तिर्विनय०	२	२
प्रियागुणसहस्राणाम्	६	३४
प्रिया तु सीता रामस्य	६	३१
बाष्पवर्षेण नीतं वः	६	२९
ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय	१	१५
,,	६	१५
भो भो लव महाबाहो	५	७
भ्रमिषु कृतपुटान्त०	३	१९
मनोरथस्य यद्बीजम्	५	२०
मन्थादिव क्षुभ्यति	७	१७
महिम्नामेतस्मिन्विनय०	४	२१
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्	२	५
मुनिजनशिशुरेकः	५	३
मेघमालेव यश्चायम्	२	२४
म्लानस्य जीवकुसुमस्य	१	३६
य एव मे जनः पूर्वम्	४	७
यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि	३	८
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च	२	१२
यत्सावित्रैर्दीपितम्	१	४२
यथा तिरश्चीनमलातशल्यम्	३	३५
यथा वसिष्ठाङ्गिरसौ	७	१५
यथेच्छाभोग्यं वः	२	१
यथेन्दावानन्दं व्रजति	५	२६
यदस्याः पत्युर्वा रहसि	४	१४
यदि च वयमप्येवंप्रायाः	५	२८

श्लोकारम्भः	अङ्काकाः	श्लोकाङ्काः
यदि नो सन्ति सन्त्येव	४	२८
यदृच्छासंवादः किमु	५	१६
यं ब्रह्माणमियं देवी	१	२
यया पूतंमन्यो निधिरपि	४	१०
यस्यां ते दिवसास्तया	२	२८
येनोद्गच्छद्बिसकिसलय०	३	१५
योऽयमश्वः पताकेयम्	४	२७
राज्याश्रमनिवासोऽपि	७	१
रे हस्त दक्षिण	२	१०
लीलोत्खातमृणाल०	३	१६
लौकिकानां हि साधूनाम्	१	१०
वज्रादपि कठोराणि	२	७
वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च	४	२२
वपुरवियुतसिद्धा	६	२४
वसिष्ठ एव ह्याचार्यः	७	१४
वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यः	१	३
वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथ०	६	३९
वितरति गुरुः प्राज्ञे	२	४
विद्याकल्पेन मरुता	६	६
विना सीतादेव्या किमिव	६	३०
विनिर्वर्तित एष०	५	८
विनिश्चेतुं शक्यो न	१	३५
विरोधो विश्रान्तः	६	११
विलुलितमतिपूरैर्बाष्प०	३	२३
विश्वम्भरात्मजा देवी	७	२
विश्वम्भरा भगवती	१	९
विस्रम्भादुरसि निपत्य	१	४९
वीचीवातैः शीकरक्षोद०	३	२
वृद्धास्ते न विचारणीय०	५	३४
वेलोल्लोलक्षुभितकरुणो०	३	३६
व्यतिकर इव भीमः	५	१३
व्यतिषजति पदार्थान्	६	१२
व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यम्	३	४५
शम्बूको नाम वृषलः	२	८
शान्तं महापुरुषसंगदितम्	६	७
शिशुर्वा शिष्या वा	४	११
शुक्लाच्छदन्तच्छवि०	६	२७
शैशवात्प्रभृति पोषिताम्	१	४५
श्रमाम्बुशिशिरीभवत्	६	३७
स एष ते वल्लभशाखि	२	६
संख्यातीतैर्द्विरदतुरग०	१	१२
सतां केनापि कार्येण	१	४१
सन्तानवाहीन्यपि	४	८
समग्रः स वर्तत इवैष०	१	१८
समाश्वसिहि कल्याणि	७	३
सम्बन्धस्पृहणीयता०	६	४०
सम्बन्धिनो वसिष्ठादीन्	१	१६
स राजा तत्सौख्यं स च	४	१२
सर्वथा व्यवहर्तव्यम्	१	५
स सम्बन्धी श्लाघ्यः	४	१३
सस्वेदरोमाञ्चितकम्पि०	३	४२
सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यम्	५	३२
सीतादेव्या स्वकरकलितो	३	६
सुहृदिव प्रकटय्य	४	१५
सैनिकानां प्रमाथेन	५	३१
सोढश्चिरं राक्षसमध्यवासः	७	४
सोऽयं शैलः ककुभ०	१	३३
स्निग्धश्यामाः क्वचिदप०	२	१४
स्नेहं दयां च सौख्यं च	१	१२
स्नेहात्सभाजयितुमेत्य	१	७
स्पर्शः पुरा परिचितो०	३	१२
स्मरसि सुतनु तस्मिन्	१	२६
हा हा देवि स्फुटति	३	३८
हा हा धिक्परगृहवास०	१	३०
हृदि नित्यानुषक्तेन	४	२
हे हस्त दक्षिण मृतस्य	२	१०

परिशिष्ट–२

उत्तररामचरितनाटकान्तर्गत सुभाषित

(क) सुभाषित वाक्य

पृष्ठ संख्या

१. अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य
तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिनः । ३०४
२. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् । ६६
३. अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः । ४१२
४. अयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः । ३४४
५. अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु । ५२०
६. अहो, अनवस्थितो भूतसंनिवेशः । १७०
७. आपातदुःसहः स्नेहसंवेगः । ५२२
८. इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः । ९०
९. एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः । २४
१०. करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी । १९०
११. कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि । २४८
१२. किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः । ९०
१३. कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम् ? २८८
१४, को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे । ५१६
१५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः । ३२२
१६. जितमपत्यस्नेहेन । ५१६
१७. तारामैत्रकं चक्षूरागः । ४०२
१८. तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः । ३८
१९. तेजस्तेजसि शाम्यतु । ३८४
२०. ते हि नो दिवसा गताः । ५०
२१. दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति । ६६
२२. ननु लाभो हि रुदितम् । २५०
२३. न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्ति । ४०८
२४. नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि । ३८
२५. पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः । १७८

१२. पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ ३–२९

१३. प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ २–२

१४. मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।। २–५

१५. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥ १–१०

१६. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।। २–७

१७. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः ॥ २–४

१८. व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ ६–१२

१९. सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥ ४–८

२०. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता ।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥ १–५

२१. सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां
प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः
परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम् ॥ ४–१५

□

परिशिष्ट–३

छन्दः-परिचय

(उत्तररामचरित में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण आदि)

सूचना---प्रत्येक छन्द के आगे विवरण दिया गया है कि वह प्रत्येक अङ्क में किन-किन श्लोकों में प्रयुक्त है। इसके साथ ही श्लोकों का योग भी दिया गया है।

(१) संस्कृत में प्रत्येक श्लोक में ४ पाद या चरण होते हैं। श्लोक के चतुर्थांश को पाद या चरण कहते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं—(क) वर्णवृत्त, (ख) मात्रिक। (क) वर्णवृत्तों में प्रत्येक पाद के वर्णों की गणना की जाती है। (ख) मात्रिकों में मात्राओं की संख्या गिनी जाती है। वर्णवृत्तों को 'वृत्त' कहते हैं, जैसे—इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि। मात्रिक छन्दों को 'जाति' कहते हैं, जैसे—आर्या। वृत्त तीन प्रकार के होते हैं--(क) समवृत्त--जिसमें चारों पादों में वर्णों की संख्या बराबर होती है। जैसे --इन्द्रवज्रा वसन्ततिलका आदि। अधिकांश छन्द इसी कोटि में आते हैं। (ख) अर्धसमवृत्त--जहाँ पर प्रथम और तृतीय चरण में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में समता होती है। जैसे—पुष्पिताग्रा। (ग) विषमवृत्त—जहाँ पर चरणों में समानता नहीं होती है।

(२) दोनों प्रकार के छन्दों में स्वरों पर ध्यान दिया जाता है। अ, इ, उ, ऋ और ऌ ये 'लघु' (ह्रस्व) स्वर हैं। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ये 'गुरु' (दीर्घ) स्वर कहे जाते हैं। अनुस्वार, विसर्ग तथा संयुक्त अक्षर से पूर्व यदि लघु स्वर भी होता है तो वह गुरु माना जाता है। पाद का अन्तिम लघु अक्षर आवश्यकतानुसार गुरु भी माना जाता है।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥

(३) संस्कृत में वर्णवृत्तों की गणना के लिए गण का उपयोग किया जाता है। एक गण में तीन अक्षर होते हैं। छन्दों के लक्षण में इन गणों का ही प्रयोग होता है, अतः इनको स्मरण करना अनिवार्य है। लघु वर्ण के लिए '।' सीधी लकीर चिह्न है और गुरुवर्ण के लिए 'ऽ' चिह्न है। अँग्रेजी छन्दविचार के अनुसार क्रमशः '‿ —' चिह्न हैं। गण ८ हैं। इनके नाम और लक्षण के लिए निम्नलिखित श्लोक याद रखना चाहिए।

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः, सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः ॥

मगण ऽ ऽ ऽ, नगण । । ।, भगण ऽ । ।, यगण । ऽ ऽ
जगण । ऽ ।, रमण ऽ । ऽ, सगण । । ऽ, तगण ऽ ऽ ।

दूसरा लक्षण निम्नलिखित है—

आदिमध्यावसानेषु य-र-ता यान्ति लाघवम् ।
भ-ज-सा गौरवं यान्ति म-नौ तु गरुलाघवम् ।

जैसे—म या मगण कहने पर अर्थ होगा—तीन गुरु अक्षर, न का अर्थ होगा तीनों लघु अक्षर, भ का अर्थ होगा प्रथम गुरु अक्षर शेष दो लघु अक्षर।

(४) (क) लक्षणों में जहाँ पर 'ल' आता है, उसका अर्थ होगा 'लघु' और 'ग' का अर्थ 'गुरु' अक्षर। यदि 'लौ' या 'गौ' हो तो दो लघु या दो गुरु अर्थ होगा।

(ख) 'यति' का अर्थ है विराम या विश्राम। जहाँ पर एक पद के बीच में उच्चारण करते समय थोड़ा रुकना होता है, उसे 'यति' कहते हैं। लक्षणों में इसका निर्देश किया गया है कि कितने वर्णों के बाद यति आती है। इसका नीचे कोष्ठों में निर्देश किया गया है।

(ग) 'गति' का अर्थ है प्रवाह। श्लोक का अस्खलित गति से धाराप्रवाह पढ़ा जाना।

उत्तररामचरित में १९ छन्दों का प्रयोग हुआ है। अकारादि-क्रम से उनका विवरण यहाँ प्रस्तुत है। उनके लक्षण आदि निम्नलिखित हैं—

(१) अनुष्टुप् अथवा श्लोक—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

अनुष्टुप् या श्लोक के प्रत्येक पाद में ८ अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

इस नाटक में अनुष्टुप् छन्द वाले श्लोक ८४ हैं। जैसे—

१—१ से ६, ८, १०, १२, १३, १६, १७, १९, २१, २२ आदि।

(२) आर्या—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम पाद में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८, तृतीय में १२ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ।

उत्तर०—३—४१; ६—१३=(२)

(३) इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। २ तगण, १ जगण, २ गुरु अक्षर।

उत्तर०—१—११, ४४; २—३; ४—८; ६—२७; ७—४, १७=(७)

(४) उपजाति—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम॥

उपजाति के प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण, १ जगण, २ गुरु। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु।

उत्तर०—१—११; २—६; ३—३५; ४२; ४—१६; ६—१५, २७=(७)

(५) औपच्छन्दसिक या मालभारिणी—

विषमे ससजा गुरू समे चेत्,
सभरा येन तु मालभारिणीयम्।

औपच्छन्दसिक या मालभारिणी के प्रथम और तृतीय चरण में ११ वर्ण होते हैं—२ सगण, १ जगण, २ गुरु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ सगण, १ भगण, १ रगण, १ यगण। यह अर्धसमवृत्त है।

उत्तर०—५—८=(१)

(६) द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं। १ नगण, २ भगण, १ रगण।

उत्तर०—३—२७; ४—१५=(२)

(७) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ रगण, १ यगण। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं—१ नगण, २ जगण, १ रगण, १ गुरु। यह अर्धसमवृत्त है।

उ०—३—१८, २०; ४—४; ५—४; ६—८=(५)

(८) पृथ्वी--(८, ९) जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।

पृथ्वी छन्द के प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं--१ जगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ यगण, १ लघु, १ गुरु। इसमें ८--९ पर यति (विराम) होती है।

उ०--५--५; ६--१, ३७=(३)

(९) प्रहर्षिणी--(३, १०) त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

प्रहर्षिणी छन्द के प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु। इसमें ३--१० पर यति, विराम, होती है।

उ०--१--३०, ३१, ४०, ४९; ३--६, १५, ३६, ३९, ४--२६; ५—१, १८; ७--६=(१२)

(१०) मञ्जुभाषिणी—सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ।

मञ्जुभाषिणी छन्द के प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं--१ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण, १ गुरु।

उ०--१--१८; ३--४; ६--४, १७, ४१=(५)

(११) मन्दाक्रान्ता--(४, ६, ७)

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ भगण १ नगण, २ तगण, २ गुरु। इसमें ४--६--७ पर यति होती है।

उ०--१--३३; २--१३, १४, २५; ३--६, १५, ३६, ३८; ४—२६; ५—१२; ६--९, २२; ७—६=(१३)

(१२) मालिनी--(८, ७) ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

मालिनी छन्द के प्रत्येक पाद में १५ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ मगण २ यगण। इसमें ८—७ पर यति होती है।

उ०--१--२४, २६, २७; २--२०, २१; ३--५, १९, २३, २५, ४८; ५—२, ३, १३; ६--१२, २४, २६=(१६)

(१३) रथोद्धता--रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।

रथोद्धता के प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं—१ रगण, १ नगण, १ रगण, १ लघु, १ गुरु।

उ०—१—३४, ३७, ४५=(३)

(१४) वंशस्थ—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।

वंशस्थ के प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण।

उ०--६--२५=(१)

(१५) वसन्ततिलका--उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

वसन्ततिलका छन्द के प्रत्येक पाद में १४ वर्ण होते हैं--१ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु ।

उ०--१--७, ९, १४, २५, ३६; २--१०, ११, २२, २३; ३—८, ११, १२, २१, २६, २८, ४७; ४--६, २३, २९; ५--१०, ११, २४, ३३; ६--७, १६, १९=(२६)

(१६) शार्दूलविक्रीडित--(१२, ७)

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद में १९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण, १ गुरु । इसमें १२--७ पर यति होती है ।

उ०--१--३९; २—९, १६, २८, २९, ३०; ३--१६, ३७, ४३, ४५; ४--१, ५, १७, २०, २२, २४; ५--६, १८, १९, २७, ३४, ३५; ६--१८, ४०; ७—२१=(२५)

(१७) शालिनी--(४, ७) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।

शालिनी के प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण, २ गुरु । इसमें ४--७ पर यति होती है ।

उ०--१—४२; ३--२; ४—१८; ५—३०, ३२=(५)

(१८) शिखरिणी--(६, ११) रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

शिखरिणी छन्द के प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं--१ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण १ लघु, १ गुरु । इसमें ६--११ पर यति होती है ।

उ०--१--२८, २९, ३५, ३८; २--१, २, २६, २७; ३--१३, ३०, ४०, ४४; ४--३, १०, ११, १२, १३, १४, २१; ५--९, १६, २६; ६--११, १४, २८, ३०, ३३, ३५, ३८, ३९=(३०)

(१९) हरिणी--(६, ४, ७) नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।

हरिणी छन्द के प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु । इसमें ६—४--७ पर यति होती है ।

उ —१—२०, २३; २--४; ३—२२, २४, ३१, ३२; ४--१९; ५--२८=(९)

□

परिशिष्ट–४

उत्तर रामचरित में आये हुए पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

(१) नाटक—(क) वीरश्रृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम्॥

जिसमें वीर और श्रृङ्गार में से एक रस प्रधान हो, अन्य रस गौण हों और नायक प्रसिद्ध हो, उसे 'नाटक' कहते हैं।

(ख) नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥

(सा० दर्पण ६. ७—१०)

नाटक उसे कहते हैं जिसका कथानक प्रसिद्ध हो, जिसमें मुख, प्रतिमुख आदि पाँचों सन्धियाँ हों। इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होते हैं। इसका नायक प्रसिद्ध वंश का, धीरोदात्त, प्रतापी, राजर्षि होता है। उसे दिव्य अथवा दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के मिश्रित गुणों से युक्त तथा गुणवान् होना चाहिये। इसमें श्रृङ्गार या वीर में से एक रस मुख्य होता है, अन्य रस उसके सहायक तथा गौण होते हैं। इसमें अन्त में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए।

(२) नायक—त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता॥

(सा० द०–३–३०)

नायक को त्यागी, वीर, कुलीन, समृद्ध, सुन्दर, युवा, उत्साही, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी, पटु एवं सुशील होना चाहिये।

(३) धीरोदात्त नायक—महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥

(दशरूपक २. ४–५)

धीरोदात्त नायक उसे कहते हैं जो महाबली, अतिगम्भीर, क्षमाशील, स्वयं स्वप्रशंसा न करने वाला, स्थिर-प्रकृति, अहंकारहीन तथा दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति हो।

(४) नायिका—अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणी स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥

(सा० द० ३–५६)

नायिका नायक के सामान्य गुणों से युक्त होती है। वह तीन प्रकार की होती है—स्वकीया, अन्या, और साधारणी।

(५) पूर्वरङ्ग—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

(सा० द० ६–२२)

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पूर्व रंगमंच के विघ्नों को दूर करने के लिए अभिनेता जो मंगलाचरणादि करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

(६) नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

(सा० द० ६–२४)

नाटक के प्रारम्भ में जिससे देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है, उसे नान्दी कहते हैं।

(७) सूत्रधार—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥

बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं, जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ-देव की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

(८) नेपथ्य—कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

अभिनेता-गण जहाँ पर नाटक के उपयुक्त वेषभूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं।

(९) प्रस्तावना—सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

(दशरूपक ३. ७–८)

जहाँ सूत्रधार नटी मार्ष (पारिपार्श्विक) या विदूषक के साथ इस प्रकार की बात करता है, जिससे प्रस्तुत नाटकीय कथा का निर्देश हो जाए उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं।

(१०) कञ्चुकी—अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ (नाट्यशास्त्र)

अन्तःपुर में जाने-आने वाले, सब कार्यों को करने में कुशल, गुणवान् ब्राह्मण को, कञ्चुकी कहते हैं।

(११) विदूषक—कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥
(सा० द० ३–४२)

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष और बोली आदि के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम करता है और अपने हास्य के कार्य को ठीक जानता है, उसे विदूषक कहते हैं। कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं। यह नायक का मित्र होता है और साधारणतया ब्राह्मण होता है।

(१२) अङ्क—अङ्क इति रूढिशब्दो भावैः रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ॥
(नाटचशास्त्र अ० २०. १४–१६)

जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुटित करता है, जहाँ पर अनेक प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ पर एक अर्थ की समाप्ति होती है और बीज का उपसंहार होता है तथा अंशतः बिन्दु का सम्बन्ध बना रहता है, उसे 'अंक' कहते हैं। (१. बीज—उसे कहते हैं, जो प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जाता है और आगे चलकर विस्तृत हो जाता है। २. बिन्दु—बीच की कथा के समाप्त होने पर भी प्रधान कथा को आगे अविच्छिन्न रखने के कारण को बिन्दु कहते हैं)।

(१३) स्वगत—अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।
(सा० द० ६—१३७)

जो बात दूसरों को सुनाने योग्य नहीं होती है, उसे 'स्वगत' कहते हैं। इसको 'आत्मगत' भी कहते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है कि साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही उसे सुन पावें।

(१४) प्रकाश—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।
(सा० द० ६–१३८)

जो बात सबको सुनाने के लिए कही जाती है, उसे 'प्रकाश' कहते हैं।

(१५) अपवारित—रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।
(दशरूपक १–६६)

जहाँ मुँह दूसरी ओर करके कोई पात्र दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात कहता है, उसे अपवारित' कहते हैं।

(१६) जनान्तिक—त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्॥
(सा० द० ६-१३९)

जहाँ दूसरे पात्रों के होते हुए भी दो पात्र परस्पर इस प्रकार मन्त्रणा करें कि उसे दूसरे पात्रों को सुनाना अभीष्ट न हो तथा दूसरे पात्रों की ओर त्रिपताका वाले हाथ से संकेत किया जाए कि उसका वारण किया जा रहा है, उसे 'जनान्तिक' कहते हैं। (हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना जनान्तिक है।)

(१७) आकाशभाषित—किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम्॥
(सा० द० ६-१४०)

जहाँ कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ दूसरे पात्र के विना ही बातचीत करता है तथा अन्य पात्रों के कथन के विना भी बात को सुनने का अभिनय करके वार्तालाप करता है, उसे 'आकाश-भाषित' कहते हैं। इसके लिए ही 'आकाशे' (आकाश में) भी प्रयुक्त होता है।

(१८) विष्कम्भक—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥
(सा० द० ६-५५, ५६)

विष्कम्भ या विष्कम्भक भूत और भावी घटनाओं की सूचना के लिए होता है। इसका प्रयोग नाटक में संक्षेप के उद्देश्य से किया जाता है। यह अंक के आदि में रक्खा जाता है। जहाँ पर विष्कम्भ में एक या दो मध्यम कोटि के पात्र आते हैं, उसे 'शुद्ध विष्कम्भ' कहते हैं। यदि उसमें नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हैं तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं।

(१९) प्रवेशक—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषो विष्कम्भके यथा॥

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्र ही रहते हैं। यह दो अंकों के बीच में आता है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के तुल्य हैं। यह नाटक के प्रारम्भ में नहीं आ सकता है।

(क) विष्कम्भक और प्रवेशक की समता और भिन्नता इस प्रकार समझनी चाहिए—

विष्कम्भक	प्रवेशक
१—यह भूत और भावी घटना का सूचक है।	१—यह भी भूत और भावी घटना का सूचक है।
२—इसमें एक या दो मध्यम पात्र होते हैं।	२—इसमें सारे पात्र निम्न कोटि के होते हैं।
३—इसकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है।	३—इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होती।
४—इसका प्रयोग नाटक के प्रथम अंक के प्रारंभ में भी हो सकता है और दो अंकों के बीच में भी।	४—इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में ही होगा। प्रथम अंक के प्रारम्भ में कभी नहीं।

(ख) शुद्ध विष्कम्भक, मिश्र विष्कम्भक और प्रवेशक में ये अन्तर हैं—

नाम	पात्र	भाषा
१—शुद्ध विष्कम्भक	मध्यम (१ या २)	संस्कृत
२—मिश्र विष्कम्भक	मध्यम और नीच	संस्कृत और प्राकृत
३—प्रवेशक	नीच	प्राकृत

(२०) भरतवाक्य—

यह नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक होता है। भरत का अर्थ नट या अभिनेता है। भरतानां वाक्यम्। नाटकीय पात्रों की ओर से जनता या राष्ट्र की समृद्धि के लिए जो आशीर्वादात्मक श्लोक होता है, वह भरतवाक्य है। नाटक के अन्त में अभिनेताओं के प्रतिनिधि के रूप में सूत्रधार इस श्लोक को बोलता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार भरतवाक्य यह नाम नाट्यशास्त्र के जन्मदाता और नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के रचयिता भरत मुनि की स्मृति के लिए रक्खा गया है। तब इसका अर्थ होगा—भरत मुनि द्वारा आदिष्ट आशीर्वादात्मक वाक्य। कुछ भरतवाक्यों में कवि के जीवन से सम्बद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत भी प्राप्त होते हैं।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
पुस्तकालय
परिग्रहण सं० 10865

कृष्णदास अकादमी

वाराणसी